January To March 2024
E-Journal
Volume I, Issue XLV

RNI No. – MPHIN/2013/60638
ISSN 2320-8767, E-ISSN 2394-3793
Scientific Journal Impact Factor - 7.671

Naveen Shodh Sansar

(An International Refereed/ Peer Review Research Journal)

नवीन शोध संसार

Editor - Ashish Narayan Sharma

Office Add. "Shree Shyam Bhawan", 795, Vikas Nagar Extension 14/2, **NEEMUCH** (M.P.) 458441, (INDIA)
Mob. 09617239102, **Email** : nssresearchjournal@gmail.com, **Website** www.nssresearchjournal.com

Index

01. Index 02

02. Regional Editor Board / Editorial Advisory Board 08/09

03. Referee Board 10

04. Spokesperson 12

05. Financial Inclusion Implementation: A Study of Adaptation of Digital Payments Among Youth 14
(Dr. Jaya Sharma)

06. Ethnobotany and Traditional Plant Knowledge (Dr. Ragini Sikarwar) 18

07. Importance of Sanskars in Our Life (Dr. Seema Sharma) 24

08. Medicinal Plants and Phytochemistry (Dr. Ragini Sikarwar) 26

09. Artificial Intelligence Effects on Accounting: A Review (Mangi Lal Jain) 31

10. Plant Diversity and Conservation (Dr. Ragini Sikarwar) 36

11. Role of Emotional Branding in Shaping Consumer Behavior in Luxury Goods Market 41
(Dr. Preeti Anand Udaipure)

12. सुविधायुक्त उत्सव आयोजन का पर्याय - इवेंट मेनेजमेंट (डॉ. कलिका डोलस) 48

13. मीडिया एवं महिला सशक्तिकरण (डॉ. नसीम अख्तर) 51

14. भारतीय अर्थव्यवस्था 2024 की चुनौतियाँ (डॉ. प्रवीण ओझा) 53

15. दक्षिण अरावली क्षेत्र में निवासरत कथौडी जनजाति का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक जीवन 55
(डॉ. सुदर्शन सिंह राठौड)

16. वित्तीय समावेशन - लक्ष्य एवं चुनौतियाँ (डॉ. शैलप्रभा कोष्टा) 58

17. मूल्य आधारित शिक्षा का उद्देश्य और मानव विकास के बहुआयाम में समालोचना 60
(डॉ. नरेन्द्र कुमार हनोते, डॉ. रीमा नागवंशी)

18. निमाड की भावपूर्ण विरासत : भित्तिचित्र (डॉ. रश्मि दीक्षित) 64

19. नागार्जुन के उपन्यासों में स्त्री पात्रों की भूमिका (श्रीमती गंगा) 66

20. भारतीय समाज में साधु-सन्यासियों की परम्पराओं के प्रकार व प्रकृति (डॉ. प्रमिला वाधवा) 70

21. काव्य शास्त्रीय परम्परा में अलंकार की धारणाओं का संक्षिप्त विश्लेषण (डॉ. पी. एस. बघेल) 73

22. भारत में कृषि एवं खाद्य सुरक्षा पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव (सुभाष कुमार भारती, डॉ. शशि बाला सिंह) 75

23. भारतीय संस्कृति, साहित्य एवं पर्यावरण (डॉ. जी. एल. मालवीय, डॉ. खुमेश सिंह ठाकुर) 84

24. भारतीय परिदृष्य में हिन्दी भाषीय राष्ट्रीय विज्ञान पत्रिकाओं का अध्ययन 88
(डॉ. सावित्री परिहार, मनीष श्रीवास्तव)

25. भारत में पर्यटन उद्योग से आर्थिक विकास : एक अध्ययन (डॉ. राम सिंह धुर्वे) 92

26. भारत में तलाक की समस्या (डॉ. पूजा तिवारी) 96

27. पर्यटन - पर्यावरण और रोजगार (डॉ. जयकुमार सोनी) 98

28. पिलखुवा में हथकरघा उद्योग के विकास पर समस्याओं और संभावनाओं के बारे में विशेष अध्ययन 100
(मानवी शर्मा, डॉ. ईशा भट्ट)

29. Sustainable Developmental Goals and Women Empowerment (Mrs. Seema Naik) 105

30. A Study on Blue Bull (*Boselaphustragocamelus*) Conflict in Jhalawar (Rajasthan) 107
(Dr. Sapna Bhargava, Somlata)

31. The Role of Government and Policy in Encouraging Digital Payment Adoption Among 111
MSMEs in India (Dr. Vibha Vasudeo, Utkarsh Khanna)

32. Study of Ecological Status of Abheda Pond, Kota (Rajasthan) 115
(Sushma Agrawal, Veena Chourasia)

33. Chromotherapy- Nature Based Therapy System for Mankind (Kumud Dubey, Avinash Dube) 118

34. Limnological Studies on Datuni Dam of district Dewas (M.P.) (Dr. D.S. Waskel, Dr. B.S. Patel) 120

35. Ethnomedicinal Trends of Fabaceae Family Plants Used by Tribal's of Dhar District, ... 123
Madhya Pradesh, India (Dr. Kamal Singh Alawa)

36. हिन्दी लोक नाट्य की परम्परा (डॉ. बिन्दू परस्ते) 126

37. शमशेर बहादुर सिंह के काव्य में भाषा,बिम्ब और प्रतीक (डॉ. ज्योति सिंह, शिव औतार) 128

38. लघु एवं संक्रमणशील नगरीय क्षेत्रों में स्थित कृषि उपज मण्डीयों की आय एवं व्यय का तुलनात्मक अध्ययन..... 132
(राजगढ़ एवं विदिशा जिले के विशेष संदर्भ में) (मुकेश शाक्यवार, डॉ.सुनील आडवानी)

39. प्राकृतिक एवं मानव निर्मित आपदाओं के रोकथाम एवं प्रबंध (डॉ. विनिता भालसे, प्रो. ममता कनेश) 139

40. Study of Phytochemicals Profile of Using Different Solvent of Fruit Extract of Gardenia 141
latifolia Ait. (Nirvani Bharti, Renu Sharma, Manisha Singh)

41. पर्यावरण संकट और आपदा प्रबंधन (डॉ. रितु उमाहिया) 145

42. बनारस घराने में टप्पा गायन (डॉ. निलांभ राव नलवडे) 148

43. छात्रावासी और गैर छात्रावासी छात्राओं के समायोजन पर सांवेगिक बुद्धि के प्रभाव का अध्ययन-स्वयं सिद्धा.... 150
छात्रावास जबलपुर की छात्राओं और होम साइंस कॉलेज जबलपुर की गैर छात्रावासी छात्राओं के संदर्भ में
(श्रीमती माधुरी खांडेलकर)

44. आपदा प्रबंधन में संचार माध्यम की अहम् भूमिका (लखनलाल कलेशरिया) 155

45. Microplastics as Vectors for Pollutants (Dr. Rashmi Ahuja) 159

46. स्त्री विमर्श की चुनौतियां और मैत्रेयी पुष्पा की रचनाएं (डॉ. मुकेश कुमार, डॉ. नविता चौधरी) 162

47. साइबर अपराध और सोशल मीडिया की भूमिका (डॉ. संगीता कुंभारे) 165

48. कृषि भूमि उपयोग में जल संरक्षण की परम्परागत एवं आधुनिक विधियां कि आवश्यकता बड़वानी 168
जिले के संदर्भ में (रमेश पवार, डॉ. मोहन निमोले)

49. जनजातियों के शैक्षिक सुधार हेतु सरकार द्वारा उपलब्ध सुविधाओं का अध्ययन (अमित कोटेड) 171

50. यात्रा साहित्य का सामाजिक-सांस्कृतिक अवलोकन : अजय सोडाणी के दर्रा-दर्रा हिमालय के 175
विशेष संदर्भ में (दिनेश कुमार)

51. राजस्थान के टोंक जिले के सन्दर्भ में जनसंख्या के आकार के आधार पर सेवा केन्द्रों के पदानुक्रम निर्धारण 178
का विश्लेषणात्मक अध्ययन (प्रवीण यादव, डॉ. काश्मीर कुमार भट्ट)

52. परसंस्कृतिकरण के प्रभाव से भील महिलाओं की सामाजिक समस्याओं में आई कमी का अध्ययन (धार जिले के विशेष संदर्भ में) (कीर्ति गोस्वामी) 183

53. Digital Age Communication Device: A Cross-Functional Analysis (Dr. Khatoon Aftab Kathawala) 186

54. Impact of Influencer Marketing on Purchase Decision with Special Reference to Restaurant Industry (Ms. Shraddha Sengar, Ms. Anukruti Jain) 192

55. The Importance of Biodiversity and Human Health (Dr. Nasreen Anjum Khan) 199

56. Impact of Sodium Chloride and Sodium Carbonate on Photocatalalytic Degradation of Azure B dye. (Dr. David Swami) 202

57. Challenges and Opportunities for Implementing NEP 2020 in the Higher Education Sector: A Comprehensive Analysis (Gajendra Kumar Singh, Dr. Neeraj Jaiswal) 204

58. How to Minimize the Risk of Cancer (Dr. Rajesh Masatkar) 210

59. वर्तमान विधिक शिक्षा एवं विधिक व्यवस्था एक मूल्यांकन (डॉ. ज़ाकिर खान) 213

60. श्राद्ध माता-पिता के ऋण से उऋण होने के लिए सरल मार्ग (डॉ. दादूभाई त्रिपाठी) 218

61. दक्षिणी राजस्थान में जनंसंख्या की व्यावसायिक संरचना का एक तुलनात्मक भौगोलिक विश्लेषण (2001-2011) (डॉ. राजेन्द्र कुमार मेघवाल) 220

62. Conflict between Hate Speech and Indian Laws (Pawan Kumar Chaurasia) 224

63. Acharya Vinoba Bhave A Social Reformer (Dr. Arvind Sirohi) 227

64. Political Parties and their Role in Indian Democracy (Tejasvi Dubey, Prabhanshu Tiwari) 230

65. Utilizing Gamma Ray Spectrometry for Enhancing Food and Agriculture Quality Assurance (Parth Gupta, Kartikey Pandey, Dr. Anjul Singh) 233

66. उद्योग के क्षेत्र में ई-कॉमर्स का बड़ता योगदान (नवीन कुमार बिठौरे, डॉ. बी.आर. नलवाया) 240

67. वर्तमान में जलवायु परिर्वतन के दुष्प्रभाव, वित्तीय सहायता एवं निवारण हेतु उपाय (अंचल रामटेके) 243

68. नागरिकता संशोधन अधिनियम 2019 (डॉ. आभा सैनी) 246

69. सोशल मीडिया का युवाओं पर प्रभाव (डॉ. सोनिका बघेल) 249

70. The Future of Military Applications of Artificial Intelligence: An overview of the Role for Confidence-Building Measures (Santosh Ambhore, Ashok Shrama) 251

71. राजगढ जिले का जनसंख्या स्वरूप सम्बन्धी-एक भौगोलिक अध्ययन (डॉ. रानी वास्केल) 255

72. मध्यप्रदेश स्टार्टअप योजना एवं क्रियान्वयन का अध्ययन (डॉ. रश्मि चौहान) 258

73. दल-बदल कानून की प्रासंगिकता (कमलेश पवार) 261

74. मध्यप्रदेश में महिला नीति एवं कल्याणकारी योजनाएं एक अध्ययन (रीवा जिले के सेमरिया तहसील के विशेष संदर्भ में) (डॉ. अर्चना श्रीवास्तव, मंजुला द्विवेदी) 264

75. राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय राजनयिक संबंधों में कौटिल्य के षाड्गुण्य नीति की उपयोगिता- एक अध्ययन (डॉ. शोभाराम सोलंकी) 267

76. हिन्दी साहित्य में पर्यावरणीय संचेतना (डॉ. सपना) 271

77. Callus culture from apical bud of *Bombax ceiba* L. (semul) (Dr. Kanchan Vaidya) 273

78. An Overview of AI Technology in Society (Dalendra Kumar Bhatt) 276
79. Offloading Methods in Mobile Cloud Computing (Prof. Syed Asif Ali) 278
80. समाज में व्यक्ति का असामान्य व्यवहार (श्रीमती कविता आर्य रामाणी) 281
81. An Audit of Integrated Child Development Services Program (A Study of Salumbar Project) 286
(Manish Bansal)
82. शोषण का शिकार नारी (डॉ. वंदना अग्निहोत्री, हिना) 289
83. साहित्य मे स्त्री विमर्श की आवश्यकता (डॉ. सरला पण्ड्या) 291
84. पद्मावत में लोक-संस्कृति की अभिव्यक्ति (डॉ. संगीता मरावी) 293
85. वित्तीय समावेशन (डॉ. रुकमणी यादव) 297
86. योग और ध्यान के वैज्ञानिक पहलू (प्रियंका गुप्ता, हिमांशु मुछाल, सुजीत भट्ट) 300
87. कर्मचारी प्रतिधारण एवं वित्तीय व गैर-वित्तीय अभिप्रेरक तत्व के मध्य संबंध (साक्षी शर्मा, डॉ. अक्षिता तिवारी) 304
88. Transforming Curriculum with Information Communication Technology (ICT): 309
Toward Sustainable Education Goals (Dr. Dharmendra Kumar Meena)
89. Impact of Internet Banking on Customer Satisfaction:An Empirical Study 312
(Rajesh Kumar Saini, Dr. Laxmi Narayan Sharma)
90. भारत-चीन के मध्य आर्थिक संबंधों का विश्लेषणात्मक अध्ययन (डॉ. शकुन शुक्ला, कामना देवी साहू) 317
91. Impact of Training on Sales Person of Private Insurance Companies 320
(Taranjeet Kaur Monga, Dr. Bhoj Raj Nalwaya)
92. Animal Rights and the Importance of Their Protection (Dr. Mamta Pandey) 323
93. Electronic Contracts: Legal Validity and Enforcement in the Digital Age (Dr. Rashmi Sharma) ... 326
94. A Study of The Phenomena of Action, Meditation and Liberation in Early Buddhism 332
(Dr. Punit Kumar Pandya, Mr. Karmveer Singh Bhati)
95. Different Learning Styles as the Method of Addressing Individual Child Needs 335
(Manasvi Tungare Jaiswal)
96. Information and Communication Technology as Pedagogy For Effective Teaching 338
(Rozina William)
97. The Role of Critical Thinking in Education (Sakina Attar) 341
98. प्रभावी शिक्षण के लिए, शिक्षा शास्त्र के रूप में सूचना एवं संचार तकनीकी प्रौद्योगिकी 344
(डॉ. मिताली बजाज, बलजीत सिंह)
99. प्रभावी शिक्षण के लिए शिक्षाशास्त्र के रूप में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (तृप्ति दवे) 346
100. सरकार की प्राथमिकता में शिक्षा का स्थान : शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में एक दृष्टिकोण (सिम्पल रजक) 348
101. Representation of Women in Jane Austen Pride & Prejudice (Prof. Swati Sharma) 352
102. भारत में महिलाओं के विरूद्ध अपराध : एक सॉंख्यकीय अध्ययन (विनोद कुमार तिवारी) 355
103. भरतपुर परिक्षेत्र की संस्कृति एवं पर्यटन (डॉ. निमेश कुमार चौबीसा, रोहित सिंह) 357

RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Regional Editor Board - International & National

1. Dr. Manisha Thakur - Fulton College, Arizona State University, America.
2. Mr. Ashok Kumar - Employbility Operations Manager, Action Training Centre Ltd. London, U.K.
3. Ass. Prof. Beciu Silviu - Vice Dean (Management) Agriculture & Rural Development, UASVM, Bucharest, Romania.
4. Mr. Khgendra Prasad Subedi - Senior Psychologist, Public Service Commission, Central Office, Anamnagar, Kathmandu, Nepal.
5. Prof. Dr. G.C. Khimesara - Former Principal, Govt. PG College, Mandsaur (M.P.) India
6. Prof. Dr. Pramod Kr. Raghav - Research Guide, Jyoti Vidhyapeeth Women University, Jaipur (Raj.) India
7. Prof. Dr. Anoop Vyas - Former Dean, Commerce, Devi Ahilya University, Indore (India) India
8. Prof. Dr. P.P. Pandey - Dean, Commerce, Avadesh Pratapsingh University, Rewa (M.P.) India
9. Prof. Dr. Sanjay Bhayani - HOD, Business Management Deptt., Saurashtra University, Rajkot (Guj.) India
10. Prof. Dr. Pratap Rao Kadam - HOD, Commerce, Govt. Girls PG College, Khandwa (M.P.) India
11. Prof. Dr. B.S. Jhare - Professor, Commerce Deptt., Shri Shivaji College, Akola (Mh.) India
12. Prof. Dr. Sanjay Khare - Prof., Sociology, Govt. Auto. Girls PG Excellence College, Sagar (M.P.) India
13. Prof. Dr. R.P. Upadhayay - Exam Controller, Govt. Kamlaraje Girls Auto. PG College, Gwalior (M.P.) India
14. Prof. Dr. Pradeep Kr. Sharma - Professor, Govt. Hamidia Arts & Commerce College, Bhopal (M.P.) India
15. Prof. Akhilesh Jadhav - Prof., Physics, Govt. J. Yoganandan Chattisgarh College, Raipur (C.G.) India
16. Prof. Dr. Kamal Jain - Prof., Commerce, Govt. PG College, Khargone (M.P.) India
17. Prof. Dr. D.L. Khadse - Prof., Commerce, Dhanvate National College, Nagpur (Maharastra) India
18. Prof. Dr.Vandna Jain - Prof., Hindi, Govt. Kalidas Girls College, Ujjain (M.P.) India
19. Prof. Dr. Hardayal Ahirwar - Prof.,Economics, Govt. PG College, Shahdol (M.P.) India
20. Prof. Dr. Sharda Trivedi - Retd. Professor, Home Science, Indore (M.P.) India
21. Prof. Dr. Usha Shrivastav - HOD, Hindi Deptt., Acharya Institute of Graduate Study, Soldevanali, Bengaluru (Karnataka) India
22. Prof. Dr. G. P. Dawre - Professor, Commerce, Govt. College, Badwah (M.P.) India
23. Prof. Dr. H.K. Chouarsiya - Prof., Botany, T.N.V. College, Bhagalpur (Bihar) India
24. Prof. Dr. Vivek Patel - Prof., Commerce, Govt. College, Kotma, Distt., Anooppur (M.P.) India
25. Prof. Dr. Dinesh Kr. Chaudhary - Prof., Commerce, Rajmata Sindhiya Govt. Girls College, Chhindwara (M.P.) India
26. Prof. Dr. P.K. Mishra - Prof., Zoological, Govt. PG College, Betul (M.P.) India
27. Prof. Dr. Jitendra K. Sharma - Prof., Commerce, Maharishi Dayanand Uni. Centre, Palwal (Haryana) India
28. Prof. Dr. R. K. Gautam - Prof., Govt. Manjkuwar Bai Arts & Commerce College, Jabalpur (M.P.) India
29. Prof. Dr. Gayatri Vajpai - Professor, Hindi, Govt. Maharaja Autonomus College, Chhattarpur (M.P.) India
30. Prof. Dr. Avinash Shendare - HOD, Pragati Arts & Commerce College, Dombivali, Mumbai (Mh.) India
31. Prof. Dr. J.C. Mehta - Fr. HOD, Research Centre, Commerce, Devi Ahilya Uni., Indore (M.P.) India
32. Prof. Dr. B.S. Makkad - HOD, Research Centre Commerce, Vikram University, Ujjain (M.P.) India
33. Prof. Dr. P.P. Mishra - HOD, Maths, Chattrasal Govt. PG College, Panna (M.P.) India
34. Prof. Dr. Sunil Kumar Sikarwar - Professor, Chemistry, Govt. PG College, Jhabua (M.P.) India
35. Prof. Dr. K.L. Sahu - Professor, History, Govt. PG College, Narsinghpur (M.P.) India
36. Prof. Dr. Malini Johnson - Professor, Botany, Govt. PG College, Mahu (M.P.) India
37. Prof. Dr. Ravi Gaur - Asso. Professor, Mathematics, Gujarat University, Ahmedabad (Gujarat) India
38. Prof. Dr. Vishal Purohit - M.L.B. Govt. Girls PG College, Kila Miadan, Indore (M.P.) India

Editorial Advisory Board, INDIA

1. Prof. Dr. Narendra Shrivastav - Scientist , ISRO, Bengaluru (Karnataka) India
2. Prof. Dr. Aditya Lunawat - Director, Swami Vivekanand Career Guidance deptt. M.P. Higher Education, M.P. Govt., Bhopal (M.P.) India
3. Prof. Dr. Sanjay Jain - O.S.D., Additional Director Office, Bhopal (M.P.) India
4. Prof. Dr S.K. Joshi - Former Principal, Govt. Arts & Science College, Ratlam (M.P.) India
5. Prof. Dr. J.P.N. Pandey - Fr. Principal, Govt. Auto.Girls P.G. Excellence College, Sagar (M.P.) India
6. Prof. Dr. Sumitra Waskel - Principal, Govt. Girls P.G. College, Moti Tabela, Indore (M.P.) India
7. Prof. Dr. P.R. Chandelkar - Principal, Govt. Girls P.G. College, Chhindwara (M.P.) India
8. Prof. Dr. Mangal Mishra - Principal, Shri Cloth Market, Girls Commerce College, Indore (M.P.) India
9. Prof. Dr. R.K. Bhatt - Former Principal, Govt. Girls College, Narsinghpur (M.P.) India
10. Prof. Dr. Ashok Verma - Former HOD, Commerce (Dean) Devi Ahilya University, Indore (M.P.) India
11. Prof. Dr. Rakesh Dhand - HOD, Student Welfare Deptt., Vikram University, Ujjain (M.P.) India
12. Prof. Dr. Anil Shivani - HOD, Commerce /Management, Govt. Hamidiya Arts And Commerce Degree College, Bhopal (M.P.) India
13. Prof. Dr. PadamSingh Patel - HOD, Commerce Deptt., Govt. College, Mahidpur (M.P.) India
14. Prof. Dr. Manju Dubey - HOD (Dean), Home Science Deptt. Jiwaji University, Gwalior (M.P.) India
15. Prof. Dr. A.K. Choudhary - Professor, Psychology, Govt. Meera Girls College, Udiapur (Raj.) India
16. Prof. Dr. T. M. Khan - Principal, Govt. College, Dhamnod, Distt. Dhar (M.P.) India
17. Prof. Dr. Pradeep Singh Rao - Principal, Govt. College, Sailana, Distt. Ratlam (M.P.) India
18. Prof. Dr. K.K. Shrivastava - Professor, Eco., Vijaya Raje Govt. Girls P.G. College, Gwalior (M.P.) India
19. Prof. Dr. Kanta Alawa - Professor, Pol. Sci., S.B.N.Govt. P.G. College, Badwani (M.P.) India
20. Prof. Dr. S.C. Jain - Professor, Commerce, Govt. P.G. College, Jhabua (M.P.) India
21. Prof. Dr. Kishan Yadav - Asso. Professor, Research Centre Bundelkhand College, Jhasi (U.P.) India
22. Prof. Dr. B.R. Nalwaya - Chairman,Commerce Deptt.,Vikram University, Ujjain (M.P.) India
23. Prof. Dr. Purshottam Gautam - Dean, Commerce Deptt.,Devi Ahilya University, Indore (M.P.) India
24. Prof. Dr. Natwarlal Gupta - HOD, Commerce Deptt.,Devi Ahilya University, Indore (M.P.) India
25. Prof. Dr. S.C. Mehta - Former, Professor/HOD, Govt. Bhagat Singh P.G. College, Jaora (M.P.) India
26. Prof. Dr. A. K. Pandey - HOD, Economics Deptt., Govt. Girls College, Satna (M.P.)

****

Referee Board

Maths	-	(1)	Prof. Dr. V.K. Gupta, Director Vedic Maths - Research Centre, Ujjain (M.P.)
Physics	-	(1)	Prof. Dr. R.C. Dixit, Govt. Holkar Science College, Indore (M.P.)
		(2)	Prof. Dr. Neeraj Dubey, Govt. Arts & Commerce College, Sagar (M.P.)
Computer Science	-	(1)	Prof. Dr. Umesh Kr. Singh, HOD, Computer Study Centre, Vikram University, Ujjain (M.P.)
Chemistry	-	(1)	Prof. Dr. Manmeet Kaur Makkad, Govt. Kalidas Girls College,Ujjain (M.P.)
Botany	-	(1)	Prof. Dr. Suchita Jain, Govt. Girls P.G. College, Kota (Raj.)
		(2)	Prof. Dr. Akhilesh Aayachi, Govt. Adarsh Science College, Jabalpur (M.P.)
		(3)	Prof. Dr. Jolly Garg,HOD, D.A.K. P.G. College, Moradabad (U.P.)
Life Science	-	(1)	Prof. Dr. Manjulata Sharma, M.S.J. Govt. College, Bharatpur (Raj.)
	-	(2)	Prof. Dr. Amrita Khatri, Mata Jijabai Govt. Girls P.G. College, Moti Tabela, Indore (M.P.)
Statitics	-	(1)	Prof. Dr. Ramesh Pandya, Govt. Arts - Commerce College, Ratlam (M.P.)
Military Science	-	(1)	Prof. Dr. Kailash Tyagi, Govt. Motilal Science College, Bhopal (M.P.)
Biology	-	(1)	Dr. Kanchan Dhingara, Govt. M.H. Home Science College, Jabalpur (M.P.)
Geology	-	(1)	Prof. Dr. R.S. Raghuvanshi, Govt. Motilal Science College, Bhopal (M.P.)
		(2)	Prof. Dr. Suyesh Kumar, Govt. Adarsh College, Gwalior (M.P.)
Medical Science	-	(1)	Dr.H.G. Varudhkar, R.D. Gardi Medical College, Ujjain (M.P.)
Microbiology Sci.	-	(1)	Anurag D. Zaveri, Biocare Research (I) Pvt. Ltd., Ahmedabad (Gujarat)

***** Commerce *****

Commerece	-	(1)	Prof. Dr. P.K. Jain, Govt. Hamidia College, Bhopal (M.P.)
		(2)	Prof. Dr. Shailendra Bharal, Govt. Kalidas Girls College, Ujjain (M.P.)
		(3)	Prof. Dr. Laxman Parwal, Govt. Commerce College, Ratlam (M.P.)
		(4)	Prof. Naresh Kumar, NSCBM Govt. College, Hamirpur (H.P.)

***** Management *****

Management	-	(1)	Prof. Dr. Anand Tiwari, Govt. Autonomus PG Girls Excellence College, Sagar (M.P.)
Human Resources	-	(1)	Prof. Dr. Harwinder Soni, Pacific Business School, Udaipur (Raj.)
Business Admin.	-	(1)	Prof. Dr. Kapildev Sharma, Govt. Girls P.G. College, Kota (Raj.)
		(2)	Dr. Kuldeep Agnihotri, Modern Group of Institutions, Indore (M.P.)

***** Law *****

Law	-	(1)	Prof. Dr. S.N. Sharma, Principal, Govt. Madhav Law College, Ujjain (M.P.)
		(2)	Prof. Dr. Narendra Kumar Jain, Principal, Shri Jawaharlal Nehru PG Law College, Mandsaur (M.P.)
		(3)	Prof. Lok Narayan Mishra, Govt. Law College, Rewa (M.P.)
		(4)	Dr. Bijay Kumar Yadav, Om Sterling Global University, Hisar (Haryana)

***** Arts *****

Economics	-	(1)	Prof. Dr. P.C. Ranka, Sri Sitaram Jaju Govt. Girls P.G. College, Neemuch (M.P.)
		(2)	Prof. Dr. J.P. Mishra, Govt. Maharaja Autonomus College, Chhattarpur (M.P.)
		(3)	Prof. Dr. Anjana Jain, M.L.B. Govt. Girls P.G. College, Kila Maidan, Indore (M.P.)
		(4)	Prof. Rakesh Kumar Gupta, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur (C.G.)
Political Science	-	(1)	Prof. Dr. Ravindra Sohoni, Govt. P.G. College, Mandsaur (M.P.)
		(2)	Prof. Dr. Anil Jain, Govt. Girls College, Ratlam (M.P.)
		(3)	Prof. Dr. Sulekha Mishra, Mankuwar Bai Govt. Arts & Commerce College, Jabalpur (M.P.)
Philosophy	-	(1)	Prof. Dr. Hemant Namdev, Govt. Madhav Arts, Commerce & Law College, Ujjain (M.P.)
Sociology	-	(1)	Prof. Dr. Uma Lavania, Govt. Girls College, Bina (M.P.)
		(2)	Prof. Dr. H.L. Phulvare, Govt. P.G. College, Dhar (M.P.)
		(3)	Prof. Dr. Indira Burman, Govt. Home Science College, Hoshangabad (M.P.)

Hindi -	(1)	Prof. Dr. Vandana Agnihotri, Chairperson, Devi Ahilya University, Indore (M.P.)
	(2)	Prof. Dr. Kala Joshi , ABV Govt. Arts & Commerce College, Indore (M.P.)
	(3)	Prof. Dr. Chanda Talera Jain, M.J.B. Govt. Girls P.G. College, Indore (M.P.)
	(4)	Prof. Dr. Amit Shukla, Govt. Thakur Ranmatsingh College, Rewa (M.P.)
	(5)	Prof. Dr. Anchal Shrivastava, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur (C.G.)
English -	(1)	Prof. Dr. Ajay Bhargava, Govt. College, Badnagar (M.P.)
	(2)	Prof. Dr. Manjari Agnihotri, Govt. Girls College, Sehore (M.P.)
Sanskrit -	(1)	Prof. Dr. Bhawana Srivastava, Govt. Autonomus Maharani Laxmibai Girls P.G. College, Bhopal (M.P.)
	(2)	Prof. Dr. Balkrishan Prajapati, Govt. P.G. College, Ganjbasauda, Distt. Vidisha (M.P.)
History -	(1)	Prof. Dr. Naveen Gidiyan, Govt. Autonomus Girls P.G. Excellence College, Sagar (M.P.)
Geography -	(1)	Prof. Dr. Rajendra Srivastava, Govt. College, Pipliya Mandi, Distt. Mandsaur (M.P.)
	(2)	Prof. Kajol Moitra, Dr. C.V. Raman University, Bilaspur (C.G.)
Psychology -	(1)	Prof. Dr. Kamna Verma, Principal, Govt. Rajmata Sindhiya Girls P.G. College, Chhindwara (M.P.)
	(2)	Prof. Dr. Saroj Kothari, Govt. Maharani Laxmibai Girls P.G. College, Indore (M.P.)
Drawing -	(1)	Prof. Dr. Alpana Upadhyay, Govt. Madhav Arts-Commerce-Law College. Ujjain (M.P.)
	(2)	Prof. Dr. Rekha Srivastava, Maharani Laxmibai Govt. Girls P.G. College, Bhopal (M.P.)
	(3)	Prof. Dr. Yatindera Mahobe, Govt. Girls College, Narsinghpur (M.P.)
Music/Dance -	(1)	Prof. Dr. Bhawana Grover (Kathak),Swami Vivekanand Subharti University, Meerut (U.P.)
	(2)	Prof. Dr. Sripad Aronkar, Rajmata Sindhiya Govt. Girls College, Chhindwara (M.P.)
		***** Home Science *****
Diet/Nutrition Science -	(1)	Prof.Dr. Pragati Desai, Govt. Maharani Laxmibai Girls P.G. College, Indore (M.P.)
	(2)	Prof. Madhu Goyal, Swami Keshavanand Home Science College, Bikaner (Raj.)
	(3)	Prof. Dr. Sandhya Verma, Govt. Arts & Commerce College, Raipur (Chhattisgarh)
Human Development -	(1)	Prof. Dr. Meenakshi Mathur, HOD, Jainarayan Vyas University, Jodhpur (Raj.)
	(2)	Prof. Dr. Abha Tiwari, HOD, Research Centre, Rani Durgawati University, Jabalpur (M.P.)
Family Resource Management -	(1)	Prof. Dr. Manju Sharma, Mata Jijabai Govt. Girls P.G. College, Moti Tabela, Indore (M.P.)
	(2)	Prof. Dr. Namrata Arora, Vansthali Vidhyapeeth (Raj.)
		***** Education *****
Education -	(1)	Prof. Dr. Manorama Mathur, Mahindra College of Education, Bangluru (Karnataka)
	(2)	Prof. Dr. N.M.G. Mathur, Principal/Dean, Pacific EducationCollege, Udaipur (Raj.)
	(3)	Prof. Dr. Neena Aneja, Principal, A.S. College Of Education, Khanna (Punjab)
	(4)	Prof. Dr. Satish Gill, Shiv College of Education,Tigaon, Faridabad (Haryana)
	(5)	Prof. Dr. Mahesh Kumar Muchhal, Digambar Jain (P.G.) College, Baraut (U.P.)
		***** Architecture *****
Architecture -	(1)	Prof. Kiran P. Shindey, Principal,School of Architecture,IPS Academy, Indore (M.P.)
		***** Physical Education *****
Physical Education -	(1)	Prof. Dr. Joginder Singh, Physical Education, Pacific University, Udaipur (Raj.)
	(2)	Dr. Ramneek Jain, Associate Professor, Madhav University, Pindwara (Raj.)
	(3)	Dr. Seema Gurjar, Associate Professor, Pacific University, Udaipur (Raj.)
		***** Library Science *****
Library Science -	(1)	Dr. Anil Sirothia, Govt. Maharaja College, Chhattarpur (M.P.)

Spokesperson's

1.	Prof. Dr. Davendra Rathore	-	Govt. P.G. College, Neemuch (M.P.)
2.	Prof. Smt. Vijaya Wadhwa	-	Govt. Girls P.G. College, Neemuch (M.P.)
3.	Dr. Surendra Shaktawat	-	Gyanodaya Institute of Management - Technology, Neemuch (M.P.)
4.	Prof. Dr. Devilal Ahir	-	Govt. College, Jawad, Distt. Neemuch (M.P.)
5.	Shri Ashish Dwivedi	-	Govt. College, Manasa, Distt. Neemuch (M.P.)
6.	Prof. Manoj Mahajan	-	Govt. College, Sonkach, Distt. Dewas (M.P.)
7.	Shri Umesh Sharma	-	Shree Sarvodaya Institute Of Professional Studies, Sarwaniya Maharaj, Jawad, Distt. Neemuch (M.P.)
8.	Prof. Dr. S.P. Panwar	-	Govt. P.G. College, Mandsaur (M.P.)
9.	Prof. Dr. Puralal Patidar	-	Govt. Girls College, Mandsaur (M.P.)
10.	Prof. Dr. Kshitij Purohit	-	Jain Arts, Commerce & Science College, Mandsaur (M.P.)
11.	Prof. Dr. N.K. Patidar	-	Govt. College, Pipliyamandi, Distt. Mandsaur (M.P.)
12.	Prof. Dr. Y.K. Mishra	-	Govt. Arts & Commerce College, Ratlam (M.P.)
13.	Prof. Dr. Suresh Kataria	-	Govt. Girls College, Ratlam (M.P.)
14.	Prof. Dr. Abhay Pathak	-	Govt. Commerce College, Ratlam (M.P.)
15.	Prof. Dr. Malsingh Chouhan	-	Govt. College, Sailana, Distt. Ratlam (M.P.)
16.	Prof. Dr. Gendalal Chouhan	-	Govt. Vikram College, Khachrod, Distt. Ujjain (M.P.)
17.	Prof. Dr. Prabhakar Mishra	-	Govt. College, Mahidpur, Distt. Ujjain (M.P.)
18.	Prof. Dr. Prakash Kumar Jain	-	Govt. Madhav Arts, Commerce & Law College, Ujjain (M.P.)
19.	Prof. Dr. Kamla Chauhan	-	Govt. Kalidas Girls College, Ujjain (M.P.)
20.	Prof. Abha Dixit	-	Govt. Girls P.G. College, Ujjain (M.P.)
21.	Prof. Dr. Pankaj Maheshwari	-	Govt. College, Tarana, Distt. Ujjain (M.P.)
22.	Prof. Dr. D.C. Rathi	-	Swami Vivekanand Career Gudiance Deptt., Higher Education Deptt., M.P. Govt., Indore (M.P.)
23.	Prof. Dr. Anita Gagrade	-	Govt. Holkar Science College, Indore (M.P.)
24.	Prof. Dr. Sanjay Pandit	-	Govt. M.J.B. Girls P.G. College, Moti Tabela, Indore (M.P.)
25.	Prof.Dr. Rambabu Gupta	-	Govt. Arts & Commerce College, Indore (M.P.)
26.	Prof. Dr. Anjana Saxena	-	Govt. Maharani Laxmibai Girls P.G. College, Indore (M.P.)
27.	Prof. Dr. Sonali Nargunde	-	Journalism & Mass Comm .Research Centre, D.A.V.V., Indore (M.P.)
28.	Prof. Dr. Bharti Joshi	-	Life Education Department, Devi Ahilya University, Indore (M.P.)
29.	Prof. Dr. M.D. Somani	-	Govt. M.J.B. Girls P.G. College, Moti Tabela, Indore (M.P.)
30.	Prof. Dr. Priti Bhatt	-	Govt. N.S.P. Science College, Indore (M.P.)
31.	Prof. Dr. Sanjay Prasad	-	Govt. College, Sanwer, Distt. Indore (M.P.)
32.	Prof. Dr. Meena Matkar	-	Suganidevi Girls College, Indore (M.P.)
33.	Prof. Dr. Mohan Waskel	-	Govt. College, Thandla Distt. Jhabua (M.P.)
34.	Prof. Dr. Nitin Sahariya	-	Govt. College, Kotma Distt. Anooppur (M.P.)
35.	Prof. Dr. Manju Rajoriya	-	Govt. Girls College, Dewas (M.P.)
36.	Prof. Dr. Shahjad Qureshi	-	Govt. New Arts & Science College, Mundi, Distt. Khandwa (M.P.)
37.	Prof. Dr. Shail Bala Sanghi	-	Maharani Lakshmibai Govt. Girls P.G. College, Bhopal (M.P.)
38.	Prof. Dr. Praveen Ojha	-	Shri Bhagwat Sahay Govt. P.G. College, Gwalior (M.P.)
39.	Prof. Dr. Omprakash Sharma	-	Govt. P.G. College, Sheopur (M.P.)
40.	Prof. Dr. S.K. Shrivastava	-	Govt. Vijayaraje Girls P.G. College, Gwalior (M.P.)
41.	Prof. Dr. Anoop Moghe	-	Govt. Kamlaraje Girls P.G. College, Gwalior (M.P.)
42.	Prof. Dr. Hemlata Chouhan	-	Govt. College, Badnagar (M.P.)
43.	Prof. Dr. Maheshchandra Gupta	-	Govt. P.G. College, Khargone (M.P.)
44.	Prof. Dr. Mangla Thakur	-	Govt. P.G. College, Badhwah, Distt. Khargone (M.P.)
45.	Prof. Dr. K.R. Kumhekar	-	Govt College, Sanawad, Distt. Khargone(M.P.)

46. Prof. Dr. R.K. Yadav - Govt. Girls College, Khargone (M.P.)
47. Prof. Dr. Asha Sakhi Gupta - Govt. P.G. College, Badwani (M.P.)
48. Prof. Dr. Hemsingh Mandloi - Govt. P.G. College, Dhar (M.P.)
49. Prof. Dr. Prabha Pandey - Govt. P.G. College, Mehar, Distt. Satna (M.P.)
50. Prof. Dr. Rajesh Kumar - Govt. College, Amarpatan, Distt. Satna (M.P.)
51. Prof. Dr. Ravendra singh Patel - Govt. P.G. College, Satna (M.P.)
52. Prof. Dr. Manoharlal Gupta - Govt. P.G. College, Rajgarh, Biora (M.P.)
53. Prof. Dr. Madhusudan Prakash - Govt. College, Ganjbasauda, Distt. Vidisha (M.P.)
54. Prof. Dr. Yuwraj Shirvatava - Dr. C.V. Raman Univeristy, Bilaspur (C.G.)
55. Prof. Dr. Sunil Vajpai - Govt. Tilak P.G. College, Katni (M.P.)
56. Prof. Dr. B.S. Sisodiya - Govt. P.G. College, Dhar (M.P
57. Prof. Dr. Shashi Prabha Jain - Govt. P.G. College, Agar-Malwa (M.P.)
58. Prof. Dr. Niyaz Ansari - Govt. College, Sinhaval, Distt. Sidhi (M.P.)
59. Prof. Dr. ArjunSingh Baghel - Govt. College, Harda (M.P.)
60. Dr. Suresh Kumar Vimal - Govt. College, Bansadehi, Distt. Betul (M.P.)
61. Prof. Dr. Amar Chand Jain - Govt. Arts & Commerce College, Sagar (M.P.)
62. Prof. Dr. Rashmi Dubey - Govt. Autonomus Girls P.G. Excellence College, Sagar (M.P.)
63. Prof. Dr. A.K. Jain - Govt. P.G. College, Bina, Distt. Sagar (M.P.)
64. Prof. Dr. Sandhya Tikekar - Govt. Girls College, Bina, Distt. Sagar (M.P.)
65. Prof. Dr. Rajiv Sharma - Govt. Narmada P.G. College, Hoshangabad (M.P.)
66. Prof. Dr. Rashmi Srivastava - Govt. Home Science College, Hoshangabad (M.P.)
67. Prof. Dr. Laxmikant Chandela - Govt. Autonomus P.G. College, Chhindwara (M.P.)
68. Prof. Dr. Balram Singotiya - Govt. College, Saunsar, Distt. Chhindwara (M.P.)
69. Prof. Dr. Vimmi Bahel - Govt. College, Kalapipal, Distt. Shajapur (M.P.)
70. Dr. Aprajita Bhargava - R.D.Public School, Betul (M.P)
71. Prof. Dr. Meenu Gajala Khan - Govt. College, Maksi, Distt. Shajapaur (M.P.)
72. Prof. Dr. Pallavi Mishra - Govt. College, Mauganj Distt. Rewa (M.P.)
73. Prof. Dr. N.P. Sharma - Govt. College, Datia (M.P.)
74. Prof. Dr. Jaya Sharma - Govt. Girls College, Sehore (M.P.)
75. Prof. Dr. Sunil Somwanshi - Govt. College, Nepanagar, Distt. Burhanpur (M.P.)
76. Prof. Dr. Ishrat Khan - Govt. College, Raisen (M.P.)
77. Prof. Dr. Kamlesh Singh Negi - Govt. P.G. College, Sehore (M.P.)
78. Prof. Dr. Bhawana Thakur - Govt. College, Rehati, Distt. Sehore (M.P.)
79. Prof. Dr. Keshavmani Sharma - Pandit Balkrishan Sharma New Govt. College, Shajapur (M.P.)
80. Prof. Dr. Renu Rajesh - Govt. Nehru Leading College ,Ashok Nagar (M.P.)
81. Prof. Dr. Avinash Dubey - Govt. P.G. College, Khandwa (M.P.)
82. Prof. Dr. V.K. Dixit - Chhatrasal Govt. P.G. College, Panna (M.P.)
83. Prof. Dr. Ram Awdesh Sharma - M.J.S. Govt. P.G. College, Bhind (M.P.)
84. Prof. Dr. Manoj Kr. Agnihotri - Sarojini Naidu Govt. Girls P.G. College, Bhopal (M.P.)
85. Prof. Dr. Sameer Kr. Shukla - Govt. Chandra Vijay College, Dhindori (M.P.)
86. Prof. Dr. Anoop Parsai - Govt. J. Yoganand Chattisgarh P.G. College, Raipur (Chattisgarh)
87. Prof. Dr. Anil Kumar Jain - Vardhaman Mahavir Open University, Kota (Rajasthan)
88. Prof. Dr. Kavita Bhadiriya - Govt. Girls College, Barwani (M.P.)
89. Prof. Dr. Archana Vishith - Govt. Rajrishi College, Alwar (Rajasthan)
90. Prof. Dr. Kalpana Parikh - S.S.G. Parikh P.G. College, Udaipur (Rajasthan)
91. Prof. Dr. Gajendra Siroha - Pacific University, Udaipur (Rajasthan)
92. Prof. Dr. Krishna Pensia - Harish Anjana College, Chhotisadri, Distt. Pratapgarh (Rajasthan)
93. Prof. Dr. Pradeep Singh - Central University Haryana, Mahendragarh (Haryana)
94. Prof. Dr. Smriti Agarwal - Research Consultant, New Delhi

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Financial Inclusion Implementation: A Study of Adaptation of Digital Payments Among Youth

Dr. Jaya Sharma*

*Asst. Professor (Commerce) Govt. Girls College, Sehore (M.P.) INDIA

Abstract - The economic and social development in any country is quite related with Financial Inclusion in today's world. Financial inclusion has been explained as the availability of reliable medium for financial products and services like banking, insurance, financial advisory services etc., to various deprived sections of society and low-income group. The offline and online payment system plays a very important role in bridging the gap between the haves and have nots. In past two decades India has been working on developing such a system of financial service providing which is easily accessible, cost effective and risk free for its citizens. Moving forward in this way various online digital payment services have been initiated and people are now using latest technologies regarding their financial work leading to financial inclusion. This research paper focuses on the finding out various factors affecting the adoption of online banking services and other modes of digital payments specially among youth. The primary data has been collected from the students of colleges and universities situated Sehore. The collected data has been analysed, and interpretation is based on the output-derived. The data collection from the youngsters was not too easy as many of the students who come to sehore are from nearby villages and thus they hesitate to share their financial information. In this research article, an attempt has been made to study significantly on the factors affecting the utilization of online financial services. This work would contribution to the literature regarding analysis of financial inclusion.
Keywords: Financial Inclusion, Digital Payments, Online Financial Services, Financial Literacy.

Introduction - The traditional banking system has indeed been characterized by a preference for cash transactions, but technological advancements have introduced significant changes. The shift towards online modes of payment and digital finance has been a transformative trend in recent years, bringing about various opportunities and innovative solutions to the traditional finance sector. Technology has played a crucial role in promoting financial inclusion by providing banking services to individuals who were previously excluded from the traditional banking system. Mobile banking and digital wallets have made it easier for people in remote or underserved areas.Some key points highlighting the impact of technology on the financial service sector are :

Convenance and accessibility: Online banking and digital payment methods offer convenience and accessibility to users. Customers can conduct transactions, check balances, and manage their finances from the comfort of their homes or on the go through mobile devices.

Cost Efficiency: Digital transactions are often more cost-effective for both banks and customers compared to traditional methods involving physical infrastructure, paperwork, and manual processes

Innovative products and services: Fintech companies and digital platforms have introduced a wide range of innovative financial products and services.

The Demonetization move announced by Prime Minister Shri Narendra Modi on November 8, 2016, indeed had a significant impact on the financial landscape in India. The decision involved the invalidation of high-denomination currency notes, leading to a temporary disruption in traditional currency transactions. This event prompted a shift towards digital modes of payment and significantly contributed to the growth of Digital Finance in our country leading to a major shift regarding use of financial services. The intention was to eliminate black money transactions and bring out a new and improved currency system for the wellbeing of all sectors of the society.

Financial Inclusion refers to providing affordable and accessible financial products and services to all sections of society, especially those in vulnerable or low-income groups. The shift towards digital modes of payment facilitates easier access to financial services, overcoming geographical barriers and reducing transaction costs. Financial Inclusion aims to reach the 'unbanked' sections of society, referring to individuals who do not have access to traditional banking services. Digital Finance, through initiatives like the Pradhan Mantri Jan Dhan Yojana

(PMJDY), has played a crucial role in bringing banking services to remote and underserved areas, helping to bridge the gap between the banked and unbanked citizens.

Review of literature

Information related to the conceptual framework and theories explaining the factors influencing the adoption of online banking products and services many studies have been conducted. The following studies have been considered for our interpretations.

According to Singh Gagandeep (2014)"the age group from 21-35 years are mostly using the e-wallets for the purpose of mobile and DTH recharges, booking of movie tickets, bill payments, money transfers. The reason behind such adoption is availability of security, easy procedure , convenience of use and the most important is about not being sure of not losing any personal information because of scan and pay method. It is also found that many studies say that there is no significant relation between gender and the use of digital wallets. The study also stated that e-wallets are the new face of the plastic money which indicate that the deployment of technology for digital payments have improved the performance of banking sector and able to achieve the motive cashless country". A study by Levy and Hino (2016) found that respondents use the Internet because it is informative, believable helpful as a buying guide. Respondents avoid the internet because it may be cause of wrong decision. Besides all these things, respondents spent most of their time on Internet by both types of consumers i.e. rural and urban consumers. Raja M Senthil Velmurugan& Seetharaman A(2015) concluded in their study that the cause of intention to transact as because of the easiness and cheaper use of electronic cash when compared to the physical cash and not only that it cannot be counterfeited and it can also be used in telecommunications and data networks for e-commerce. Vinitha and Vasantha (2017) reviled in their study that however, Digital payment system is getting more advanced and is being used extensively there is still very much to be done as there are Still many people who are reluctant to get accustomed such payment methods as a result most of the transactions are cash based. Hence the need to enlighten online and cashless payments is a necessity for us.

Objectives Of The Study: This study is focused on the given objectives:

1. To understand the current status of Financial Inclusion in Sehore.
2. To study the major factors influencing the adoption of Digital payments among the youth.
3. To understand the impact of Digital Finance on Financial Inclusion.

Research Methodology: The study is descriptive in nature, where current and old students were selected as respondents from various institutes in Sehore. Primary data were collected primarily through google form as a questionnaire. The questionnaire was sent in the form of link of the concerning google form to various students and alumni of different Institutes, and data was collected from them.

Sample Size: 105 respondents from different Institutes.

Sampling Technique: Probability method of sampling (the Random sampling technique)

Table 1 (see in last page)

The data collected through survey has been analysed and the details shows that 105respondents filled the questionnaire.We find the demographic character of respondents. It was found that out of 105 respondents around 49% of respondents are between the age group 18-20 years, about 34% are between the age group 21-22 years, about 13.5% are between the age group 23-25, and the rest 3.5% belongs to the age group of 26-28 years which reflects high students' involvement in the survey.

Occupation wise the major contributors are students with 86.5% share. As major contribution from students with age group of 18-22 years,its impact on the income of the respondents is seen as it lies a range of 0-3 lakhs. The major finding regarding financial inclusion is that 100% respondents have a bank account thus they are capable of availing financial services. As far as it is about awareness about online services being offered by their bank 77.5% respondents knew it whereas 22.5 were not aware about it which indicates that still there is still lack of proper approach regarding online financial services. As most of the respondents are students who are well educatedonly 50.6% are availing of those services among 77.5% who are aware of such services.

People who are aware of the banking services are primarily using UPI 42.4%, followed by mobile banking 40.4% and internet banking (12%) for various payments. Most of the respondents have not used these services for last few months that shows that it is not so popular among students and also one reason of not posing an income too seems a reason for this. On a regular basis, UPI is used by the respondents for various purposes like Payment for online shopping, payment to a third party, and for many other payments.

Payment through digital mode has been adopted by students as it has many benefits like easy to use, secure, fast, provide online cash back and discounts and lesser risk of losing money as in case of physical cash.

In contrast, fear of losing money and low internet speed are some major barriers to using online financial services. They mostly prefer Phonepay for payment over other UPI Apps like Paytm, Google Pay, BHIM, and many others. Finally, it can be concluded that online banking services are more convenient rather than offlinebanking peraccording to the view obtained in the research.

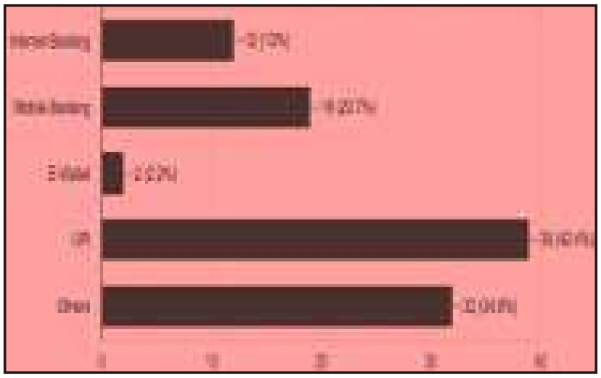

Figure 1: Use of various digital services

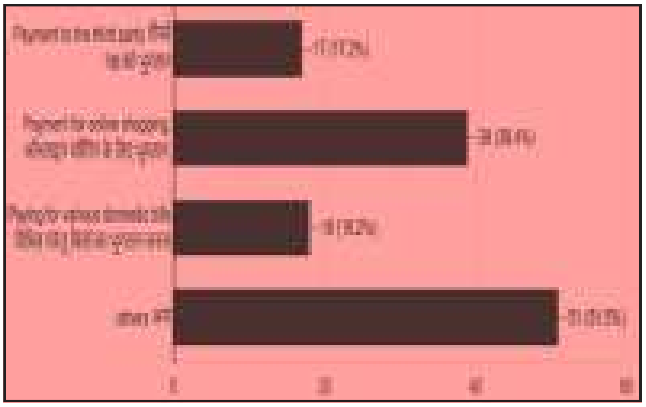

Figure 2: kind of payments for digital payments system

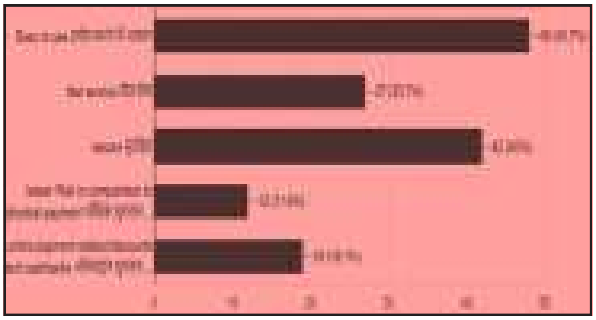

Figure 3: benefits of online payment services

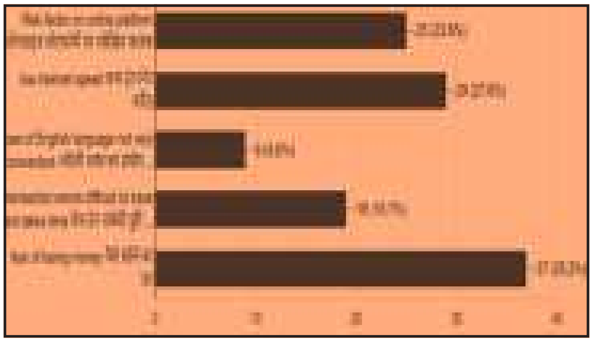

Figure 4: problems with online payment services

Analysis And Interpretation: As per the first research objectives, it was found that to understand the current status of Financial Inclusion in Sehore, the analysis indicates that 100% of respondents are having bank accounts and 96.6% of them are using smartphones, out of which 78% respondents are aware of the online banking services and among them only 50.6% are using online banking services. The result indicates that they are aware of the banking services provided by their bank, but only half of them are using it. With regards to the frequency of use it is found them most of them have not been using it regularly.

As per the second research objective, it was found that various factors influence the adoption of digital payment among students. Payment through digital mode has many benefits like easy to use, secure, fast, provide online cash back and discounts and lesser risk of losing money. Figure 1 shows the use of online payment services for payments .

There are various reasons why they don't refer to digital payment adoption to others, like internet connection, security, trust, low-cost involvement, and delay in transaction processing. They mostly prefer UPI over various other modes of payment like mobile banking, net banking, e-wallets, etc. According to figure 2, almost 48% of the respondents prefer Phone pe over G-pay, BHIM, Paytm, and many other apps due to convenience, time-saving, and low cost. Internet connection, security, trust, delay in processing a transaction, and High charges are certain barriers to students' adoption of digital payment methods. After analysing all the merits and demerits of digital payment modes, almost 72.4% of the students prefer online banking over traditional banking as per figure 5.Lastly, as per the third objective, it was found that most of the respondents belong to the age group of 18-20 years, which indicates a young generation; they are aware of the banking services provided by their bank, and even though 77.5% of them are also using it for various purposes. The concern is about its lower use among them as sehore is a semi urban area and most of the people here are from nearby villages the tendency of physical cash still exists.Still it is a good sign that they are of a view to find online financial services better than traditional ones.

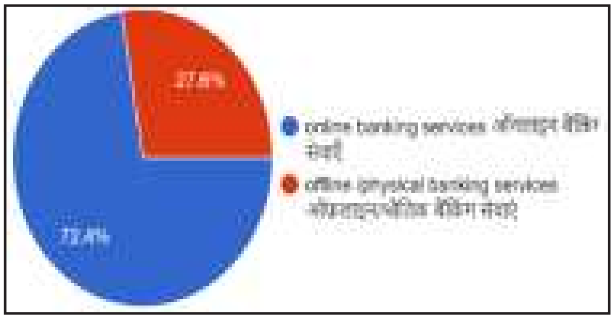

Figure 5: offline vs online banking services

Conclusion: From last few decades special measures are taken by the Indian government to spread financial inclusion and thus the emergence of online banking services have changed traditional models. The Unified Payments Interface (UPI), Aadhaar-based services, and the Direct Benefit Transfer (DBT) scheme are some of the measures that have helped government achieve its goal. With quick, reliable and cost-effective services access has increased

and thus savings and investment opportunities seems to speed up. These steps may help achieve economic growth and alleviate the problem of poverty and unemployment in our country.

The research results prove that digital finance positively impacts financial inclusion through digital financial services, facilitating access to financial services.

As per our survey, we found that the young generation who are well educated are more inclined towards the use of technology and they are also referring it to others as well. But there is a need of awareness among the senior citizens about the usage of technology in different fields. Though technology has many benefits but it has certain limitation as well which we need to identify and then use it. Fishing is a major concern nowadays during Digital payment. So, we need to be well aware about it, and then we should adopt it. Access to financial services enables individuals and businesses to participate more actively in economic activities, potentially improving living standards.

References:-

1. Singh, G. (2019). A review of factors affecting digital payments and adoption behaviour for mobile e-wallets. International Journal of Research in Management & Business Studies, 6(4), 89-96.
2. K. H. D. K.Sumavally, "A study on the future of digital payments in India," Int. J. Res. Anal. Rev., vol. 119, no. 5, pp. 1259–1267, 2018
3. 2016 Levy & Hino, "International Journal of Bank Mar -keting," Int. J. Bank Mark., vol. 12,no.7, pp. 1–32, 2016
4. Dr.J. Raja M Senthil VelmurganA Seetharaman E-payments problems and prospects http:// www.mmu.edu.my/%7Ebm/fbl/ ISSN: 1204-5357 2015.
5. Vinitha, K., & Vasantha, S. (2017). Factors Influencing Consumer's Intention to Adopt Digital Payment-Conceptual Model. Indian Journal of Public Health Research & Development, 8(3).
6. Dadhich, M., Pahwa, M. S., & Rao, S. S. (2018). Factor influencing to users acceptance of digital payment system. International Journal of Computer Sciences and Engineering, 6(09), 46-50.

Table 1

Particulars	Frequency in percentage	Particulars	Frequency in percentage
Age		Do you have a smart phone with internet connectivity?	
18 years -20 years	49.4	Yes	96.6
21 years -22 years	33.7	NO	3.4
23 years -25 years	13.5	Are you aware of the online financial services provided by your bank ?	
26 years -28 years	3.4	Yes	77.5
occupation		NO	22.5
student	86.5	Are you availing any of the online banking services/ channel ?	
Govt. Employee	3.4	Yes	50.6
Private Employee	2.2	NO	49.4
Business/profession	1.1	If yes, which online banking services are you using?	
others	6.7	Internet Banking	12
Income		Mobile Banking	40.4
0- 3 lakh	93.3	E-Wallet	2.1
3- 5 lakh	3.4	UPI	42.4
5- 7 lakh	3.4	Others	3.1
more than 7 lakh		How often do you use online banking services?	
Do you have a Bank Account		Daily	11.4
Yes	100	Weekly	19
No	0	Monthly	22.9
which mode of banking & financial services would you suggest better ?		Not used in the last few months	46.7
online banking services	72.4	which UPI app do you use often?	
offline /physical banking service	27.6	Paytm	23
		Phonepay	52
		Google pay	22
		BHIM	3
		Other	

Source: Primary data collected and analysed from Questionnaire

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Ethnobotany and Traditional Plant Knowledge

Dr. Ragini Sikarwar*

***HOD (Botany) Govt. Home Science PG Lead College, Narmadapuram (M.P.) INDIA**

Abstract - Ethnobotany, the interdisciplinary field encompassing the study of the relationships between plants and people, is increasingly recognized for its vital role in understanding traditional plant knowledge (TPK). This abstract explores the significance of TPK within ethnobotanical research, emphasizing its importance in preserving cultural heritage, promoting sustainable practices, and advancing modern science.

TPK, rooted in centuries-old traditions and passed down through generations, holds a wealth of information about the uses, properties, and ecological roles of plants in diverse ecosystems. Through ethnobotanical studies, researchers document and analyze this knowledge, revealing insights into indigenous cultures, medicinal practices, agricultural techniques, and environmental conservation strategies.

Furthermore, TPK serves as a bridge between traditional wisdom and contemporary scientific inquiry, facilitating the discovery of novel bioactive compounds, agricultural innovations, and conservation strategies. Its integration into modern practices holds promise for addressing global challenges such as biodiversity loss, food security, and healthcare disparities.

This abstract underscores the importance of recognizing, respecting, and incorporating traditional plant knowledge into scientific discourse and policymaking. By fostering collaboration between indigenous communities and researchers, ethnobotany not only enriches our understanding of plant-human interactions but also offers holistic solutions to pressing societal and environmental issues.

Keywords: Ethnobotany, Traditional plant knowledge, Cultural heritage, Sustainability, Indigenous communities, Medicinal plants, Conservation.

Introduction to Ethnobotany and Traditional Plant Knowledge: Ethnobotany, at its core, is an interdisciplinary field that examines the dynamic relationships between plants and people across different cultures and societies. It encompasses a diverse range of disciplines including anthropology, botany, ecology, pharmacology, and indigenous studies. One of the key focal points within ethnobotany is the study of traditional plant knowledge (TPK), which refers to the accumulated knowledge, practices, and beliefs surrounding the use of plants within indigenous and traditional communities (Ferrara et al.,2023).

Traditional plant knowledge is deeply rooted in the cultural heritage of societies around the world, passed down through generations via oral traditions, rituals, and practical experiences (Balick et al.,2020). It encompasses a wide array of information, including plant identification, medicinal properties, culinary uses, agricultural practices, spiritual significance, and ecological observations. This knowledge is often intricately intertwined with local customs, beliefs, and worldview, reflecting the intimate connection between people and their natural environment.

Throughout history, traditional plant knowledge has played a fundamental role in sustaining human livelihoods, providing food, medicine, shelter, and cultural identity. Indigenous cultures have developed sophisticated systems of plant classification, cultivation, and utilization, honed over centuries of close observation and experimentation. Moreover, traditional plant knowledge has served as the foundation for numerous modern scientific discoveries, with many pharmaceuticals, agricultural practices, and ecological insights derived from indigenous plant wisdom. In recent years, ethnobotanical research has gained increasing recognition for its importance in documenting, preserving, and valorizing traditional plant knowledge (Sõukand et al.,2024). This recognition stems from growing concerns about biodiversity loss, cultural erosion, and the need for sustainable solutions to pressing global challenges. Ethnobotanists work closely with indigenous communities to record and validate traditional plant knowledge, fostering collaborative partnerships that respect local perspectives and empower indigenous voices.

In summary, ethnobotany and traditional plant knowledge are essential components of our shared human heritage, offering valuable insights into the complex relationships between people and plants. By bridging

traditional wisdom with modern science and promoting cultural preservation and sustainability, ethnobotanical research contributes to a more holistic understanding of the natural world and offers pathways towards a more harmonious relationship between humans and their environment.

Table 1 (see in last page)

The Significance of Traditional Plant Knowledge in Ethnobotanical Research: Ethnobotanical research delves into the intricate relationships between humans and plants, seeking to understand the cultural, ecological, and medicinal significance of plant species to various societies (Banisetti et al.,2023; Ellis et al.,2018). At the heart of this field lies traditional plant knowledge (TPK), which serves as a cornerstone for ethnobotanical investigations. The significance of TPK in such research is multifaceted and profound, encompassing cultural preservation, sustainable resource management, healthcare, and scientific discovery.

First and foremost, TPK plays a crucial role in preserving cultural heritage. Indigenous and traditional communities have cultivated deep connections with their surrounding environments over centuries, developing intricate knowledge systems regarding plant identification, uses, and management practices. By documenting and validating TPK, ethnobotanical research helps to safeguard indigenous cultures from cultural erosion and supports the transmission of traditional knowledge to future generations.

Furthermore, TPK provides invaluable insights into sustainable resource management practices. Indigenous peoples have long relied on traditional ecological knowledge to sustainably harvest wild plants, manage agroecosystems, and conserve biodiversity. Ethnobotanical research uncovers traditional resource management techniques, such as rotational cropping, companion planting, and selective harvesting, which can inform modern conservation efforts and promote sustainable land use practices.

In the realm of healthcare, TPK offers a rich repository of medicinal plant knowledge. Indigenous healers and traditional medicine practitioners have developed sophisticated herbal remedies based on centuries of empirical knowledge and observation. Ethnobotanical studies document traditional medicinal plant uses, identify bioactive compounds, and validate the efficacy of traditional remedies through scientific inquiry. This collaboration between traditional healers and researchers holds promise for the development of novel pharmaceuticals and alternative healthcare solutions.

Moreover, TPK serves as a reservoir of biodiversity knowledge, offering valuable insights into plant taxonomy, ecology, and evolutionary relationships. Indigenous peoples possess detailed knowledge of plant species distribution, habitat preferences, and seasonal patterns, which contribute to our understanding of ecosystem dynamics and plant evolution. Ethnobotanical research helps bridge traditional ecological knowledge with modern scientific methodologies, enriching our understanding of plant biodiversity and ecosystem functioning.

Preservation of Cultural Heritage through Traditional Plant Knowledge: The preservation of cultural heritage is a crucial aspect of ethnobotanical research, and traditional plant knowledge (TPK) plays a central role in this endeavor. TPK embodies the wisdom, practices, and beliefs surrounding plant use within indigenous and traditional communities, reflecting centuries-old connections between people and their natural environments. Through the documentation, validation, and promotion of TPK, ethnobotanical research contributes to the conservation and revitalization of cultural heritage in several key ways.

Firstly, TPK serves as a repository of indigenous knowledge systems, encompassing plant identification, uses, cultivation techniques, harvesting practices, and folklore (Magaya et al.,2021). These knowledge systems are deeply rooted in the cultural identity of indigenous peoples, embodying their values, spirituality, and worldview. By documenting and preserving TPK, ethnobotanical research helps to safeguard cultural heritage from the impacts of globalization, environmental change, and cultural assimilation.

Secondly, the preservation of TPK contributes to the empowerment of indigenous communities. Indigenous peoples have historically faced marginalization, discrimination, and loss of land and resources. By recognizing the value of traditional knowledge and fostering collaborative partnerships with indigenous knowledge holders, ethnobotanical research empowers indigenous communities to reclaim their cultural heritage, assert their rights to land and resources, and participate in decision-making processes that affect their lives and environments.

Thirdly, TPK provides a bridge between past traditions and future generations. Many indigenous languages, customs, and practices are at risk of being lost as younger generations increasingly adopt modern lifestyles. By documenting and transmitting TPK to younger generations, ethnobotanical research helps to ensure the continuity of cultural traditions, fostering intergenerational knowledge transfer and preserving cultural diversity for future generations.

Moreover, the preservation of TPK contributes to cultural revitalization and resilience. Indigenous communities often face social, economic, and environmental challenges that threaten their cultural survival. By revitalizing traditional practices, such as medicinal plant use, sustainable agriculture, and cultural ceremonies, ethnobotanical research strengthens cultural resilience, promotes community well-being, and fosters pride in indigenous identity.

In conclusion, the preservation of cultural heritage through traditional plant knowledge is a fundamental aspect of ethnobotanical research. By documenting, validating, and promoting TPK, ethnobotanists contribute to the

conservation of cultural diversity, the empowerment of indigenous communities, and the revitalization of traditional knowledge systems. This collaborative effort helps to ensure the survival of indigenous cultures and their invaluable contributions to the conservation of biodiversity, sustainable resource management, and human well-being.

Promoting Sustainability through Traditional Plant Knowledge: Traditional plant knowledge (TPK) holds significant potential for promoting sustainability in various aspects of human interaction with the environment. This knowledge, accumulated over generations by indigenous and traditional communities, encompasses diverse practices related to plant cultivation, harvesting, and utilization that are inherently sustainable. Through the integration of TPK into modern practices and policies, ethnobotanical research contributes to fostering sustainable relationships between people and plants in the following ways:

1. **Agroecology and Traditional Farming Practices**: Indigenous and traditional farming systems often prioritize ecological sustainability by utilizing agroecological principles such as polyculture, crop rotation, and agroforestry (Singh et al.,2017; Patel et al.,2020). TPK provides valuable insights into these sustainable farming practices, which enhance soil fertility, reduce the reliance on chemical inputs, and promote biodiversity conservation. By documenting and promoting traditional farming techniques, ethnobotanical research supports the transition towards more sustainable agricultural systems.
2. **Wild Harvesting and Sustainable Resource Management**: Indigenous communities have long practiced sustainable harvesting of wild plants, respecting seasonal cycles, population dynamics, and ecosystem resilience (Chanza et al.,2021). TPK includes guidelines for sustainable wild harvesting, such as selective harvesting, habitat conservation, and cultural taboos regulating plant use. Ethnobotanical research documents and validates these traditional harvesting practices, informing sustainable management strategies for wild plant resources and promoting conservation efforts to preserve biodiversity.
3. **Traditional Medicinal Plant Use and Healthcare**: Traditional medicine systems based on plant remedies have a long history of promoting health and well-being in indigenous communities (Sakapaji et al.,2024). TPK encompasses knowledge of medicinal plant identification, preparation, and administration, as well as holistic approaches to healthcare that emphasize the interconnectedness of human health and the environment. Ethnobotanical research validates the efficacy of traditional medicinal plants, facilitating their integration into modern healthcare systems and promoting the sustainable utilization of medicinal plant resources.
4. **Cultural Practices and Conservation Ethics**: Indigenous cultures often have deep spiritual and cultural connections to their natural environments, reflected in traditional practices, rituals, and belief systems. TPK includes cultural values and conservation ethics that guide respectful interactions with plants and ecosystems, promoting stewardship and environmental conservation (Bowers et al.,2023). Ethnobotanical research documents and preserves these cultural practices, highlighting their significance for biodiversity conservation and promoting cultural revitalization and resilience.
5. **Community-Based Conservation and Livelihoods**: Integrating TPK into conservation initiatives and sustainable development projects fosters community participation and ownership, empowering indigenous and traditional communities to manage their natural resources sustainably (Brown et al.,2022; Kenney et al.,2015). Ethnobotanical research collaborates with local communities to develop community-based conservation strategies that respect traditional knowledge systems, support local livelihoods, and promote biodiversity conservation.

Bridging Traditional Wisdom and Modern Science: Integrating Traditional Plant Knowledge into Contemporary Practices: The integration of traditional plant knowledge (TPK) into contemporary practices represents a synergistic approach that leverages the strengths of both traditional wisdom and modern science. This process involves recognizing the value of indigenous and traditional knowledge systems, validating them through scientific inquiry, and incorporating them into sustainable practices and policies. By bridging traditional wisdom and modern science, ethnobotanical research fosters innovation, promotes cultural preservation, and contributes to addressing pressing global challenges.

1. **Documentation and Validation of Traditional Knowledge**: Ethnobotanical research plays a critical role in documenting and validating TPK, which encompasses diverse practices related to plant use, cultivation, and conservation. Through rigorous scientific inquiry, researchers verify the efficacy and safety of traditional medicinal plants, the sustainability of traditional agricultural practices, and the ecological knowledge embedded in indigenous plant classifications. This validation process builds trust and credibility, laying the foundation for the integration of TPK into contemporary practices.
2. **Bioprospecting and Drug Discovery**: Traditional medicine systems have long been a source of inspiration for drug discovery, with many modern pharmaceuticals derived from natural products based on traditional plant knowledge. Ethnobotanical research identifies promising medicinal plants, validates their bioactivity through laboratory studies, and investigates their therapeutic potential for treating various diseases. By integrating TPK into bioprospecting efforts, researchers facilitate the discovery of novel compounds with pharmaceutical applications, benefiting both traditional healers and modern medicine.
3. **Sustainable Agriculture and Food Security**:

Indigenous and traditional farming systems offer valuable insights into sustainable agriculture practices that prioritize soil health, biodiversity conservation, and resilience to environmental stressors. Ethnobotanical research documents traditional crop varieties, agroecological techniques, and soil management practices, which can inform the development of climate-resilient agricultural systems. By integrating TPK into contemporary agriculture, researchers promote food security, enhance ecosystem services, and support the livelihoods of smallholder farmers.

4. Conservation and Sustainable Resource Management: Indigenous and traditional communities have developed intricate knowledge systems for managing natural resources sustainably, including wild plant harvesting, habitat conservation, and community-based governance mechanisms. Ethnobotanical research collaborates with local communities to document traditional resource management practices, assess their effectiveness, and develop conservation strategies that respect traditional knowledge systems. By integrating TPK into conservation efforts, researchers promote biodiversity conservation, support indigenous land rights, and foster community empowerment.

5. Cultural Revitalization and Empowerment: The integration of TPK into contemporary practices contributes to cultural revitalization and empowerment, affirming the value of indigenous and traditional knowledge systems in addressing contemporary challenges. By recognizing the contributions of traditional knowledge holders, promoting intercultural dialogue, and supporting community-led initiatives, ethnobotanical research strengthens cultural identity, promotes social equity, and fosters collaboration between diverse knowledge systems (Turner et al.,2022).

Figure 1 : Integration of Traditional Plant Knowledge into Contemporary Practices

Collaborative Approaches with Indigenous Communities in Ethnobotanical Research: Ethnobotanical research thrives on collaboration with indigenous communities, recognizing their invaluable contributions to understanding traditional plant knowledge (TPK) and fostering mutual respect, trust, and equitable partnerships (Dapar et al.,2020). Collaborative approaches with indigenous communities in ethnobotanical research not only ensure the accuracy and cultural relevance of research findings but also promote community empowerment, cultural preservation, and sustainable development. Several key principles guide such collaborative endeavors:

1. Community Engagement and Consultation: Collaborative ethnobotanical research begins with meaningful engagement and consultation with indigenous communities, respecting their autonomy, cultural protocols, and decision-making processes. Researchers work closely with community leaders, elders, knowledge holders, and other stakeholders to establish rapport, build trust, and co-create research objectives, methodologies, and outcomes.

2. Respect for Indigenous Knowledge and Cultural Protocols: Indigenous knowledge systems are the foundation of ethnobotanical research, and respect for traditional knowledge holders and cultural protocols is paramount. Researchers acknowledge the intellectual property rights of indigenous communities over their traditional knowledge, seek informed consent for research activities, and ensure that research findings are shared with communities in accessible and culturally appropriate formats.

3. Participatory Research Methods: Collaborative ethnobotanical research employs participatory research methods that prioritize community participation, ownership, and capacity building. Researchers involve community members in all stages of the research process, from data collection and analysis to interpretation and dissemination. Participatory methods such as participatory mapping, focus group discussions, and participatory action research empower communities to actively contribute their knowledge and insights to the research process.

4. Reciprocity and Benefits Sharing: Collaborative ethnobotanical research is guided by principles of reciprocity and benefits sharing, ensuring that communities derive tangible benefits from their participation in research activities. Researchers share research findings with communities in a timely and accessible manner, provide training and capacity-building opportunities, and support community-led initiatives that promote cultural preservation, environmental conservation, and sustainable development.

5. Ethical Considerations and Indigenous Rights: Collaborative ethnobotanical research upholds ethical standards that prioritize the well-being, rights, and interests of indigenous communities. Researchers adhere to ethical guidelines and protocols established by relevant institutions and organizations, including the principles of free, prior, and informed consent (FPIC) and the Nagoya Protocol on Access and Benefit Sharing. Researchers also advocate for the recognition and protection of indigenous rights,

including land rights, cultural rights, and intellectual property rights.

6. Long-term Relationships and Sustainability: Collaborative ethnobotanical research fosters long-term relationships and partnerships with indigenous communities, recognizing that sustainable change takes time and commitment. Researchers invest in building trust, nurturing relationships, and addressing the needs and priorities of communities beyond the scope of individual research projects. Sustainable partnerships contribute to the continuity of research efforts, the preservation of traditional knowledge, and the empowerment of indigenous communities to shape their own futures.

Conclusion: In conclusion, collaborative approaches with indigenous communities are indispensable for advancing ethnobotanical research in a manner that is ethical, culturally sensitive, and socially just. Throughout this exploration, we have seen how these collaborative endeavors uphold principles of respect, reciprocity, and sustainability, ensuring that research efforts benefit both researchers and indigenous communities alike.

By engaging in meaningful consultation and participation, researchers can establish trust and build rapport with indigenous communities, fostering a sense of ownership and empowerment. Through the integration of traditional knowledge systems into research methodologies, indigenous communities contribute invaluable insights that enhance the accuracy, relevance, and cultural sensitivity of research findings.

Furthermore, collaborative ethnobotanical research promotes the preservation of cultural heritage, the revitalization of indigenous knowledge systems, and the empowerment of communities to shape their own futures. By recognizing the intellectual property rights of indigenous peoples over their traditional knowledge, researchers uphold ethical standards and promote social justice.

Sustainable partnerships between researchers and indigenous communities are essential for the continuity of research efforts, the preservation of traditional knowledge, and the promotion of environmental conservation and human well-being. These partnerships transcend individual research projects, fostering long-term relationships and mutual learning that contribute to positive social change and the advancement of knowledge.

In essence, collaborative approaches with indigenous communities in ethnobotanical research embody the principles of respect, reciprocity, and sustainability, offering a model for ethical and culturally sensitive research practices. By embracing these principles, researchers can contribute to the co-creation of knowledge, the preservation of cultural diversity, and the promotion of environmental sustainability, ultimately working towards a more equitable and harmonious relationship between humans and their natural environments.

References :-

1. Balick, M. J., & Cox, P. A. (2020). *Plants, people, and culture: the science of ethnobotany*. Garland Science.
2. Banisetti, D. K., & Kosuri, N. P. (2023). International Journal of Indigenous Herbs and Drugs.
3. Bowers, J. R., & Richmond, G. (2023). Investigating representations of indigenous peoples and indigenous knowledge in zoos. *Interdisciplinary Journal of Environmental and Science Education*, *19*(4), e2321.
4. Brown, S., & Vacca, F. (2022). Cultural sustainability in fashion: reflections on craft and sustainable development models. *Sustainability: Science, Practice and Policy*, *18*(1), 590-600.
5. Chanza, N., & Musakwa, W. (2021). Indigenous practices of ecosystem management in a changing climate: Prospects for ecosystem-based adaptation. *Environmental Science & Policy*, *126*, 142-151.
6. Dapar, M. L. G., & Alejandro, G. J. D. (2020). Ethnobotanical studies on indigenous communities in the Philippines: current status, challenges, recommendations and future perspectives. *Journal of Complementary Medicine Research*, *11*(1), 432-446.
7. Ellis, W. (2018). Plant knowledge: Transfers, shaping and states in plant practices. *Anthropology Southern Africa*, *41*(2), 80-91.
8. Ferrara, V., & Ingemark, D. (2023). The entangled phenology of the olive tree: A compiled ecological calendar of Olea europaea L. over the last three millennia with Sicily as a case study. *GeoHealth*, *7*(3), e2022GH000619.
9. Kenney, C. M., & Phibbs, S. (2015). A Mâori love story: Community-led disaster management in response to the Ôtautahi (Christchurch) earthquakes as a framework for action. *International Journal of Disaster Risk Reduction*, *14*, 46-55.
10. Magaya, S., & Fitchett, J. M. (2021). *Indigenous knowledge systems cues essential in agricultural management and tracking seasonality in KwaZulu-Natal and Eastern Cape, South Africa* (Doctoral dissertation, University of the Witwatersrand, Faculty of Science, School of Geography, Archaeology and Environmental Studies).
11. Patel, S. K., Sharma, A., & Singh, G. S. (2020). Traditional agricultural practices in India: an approach for environmental sustainability and food security. *Energy, Ecology and Environment*, *5*, 253-271.
12. Sakapaji, S. C., Molinos, J. G., Parilova, V., Gavrilyeva, T., & Yakovleva, N. (2024). Navigating Legal and Regulatory Frameworks to Achieve the Climate Resilience and Sustainability of Indigenous Socioecological Systems (ISESs).
13. Singh, R., & Singh, G. S. (2017). Traditional agriculture: a climate-smart approach for sustainable food production. *Energy, Ecology and Environment*, *2*, 296-316.

14. Sõukand, R., Kalle, R., Prakofjewa, J., Sartori, M., & Pieroni, A. (2024). The importance of the continuity of practice: Ethnobotany of Kihnu island (Estonia) from 1937 to 2021. *Plants, People, Planet*, *6*(1), 186-196.

15. Turner, N. J., Cuerrier, A., & Joseph, L. (2022). Well grounded: Indigenous Peoples' knowledge, ethnobiology and sustainability. *People and Nature*, *4*(3), 627-651.

Table 1 : Comparative Overview of Ethnobotany and Traditional Plant Knowledge

Aspect	**Ethnobotany**	**Traditional Plant Knowledge**
Definition	Interdisciplinary study of plant-human relationships, encompassing cultural, ecological, and medicinal aspects	Cumulative knowledge, practices, and beliefs about plant use within indigenous and traditional communities
Scope	Includes various disciplines such as anthropology, botany, ecology, pharmacology, and indigenous studies	Encompasses plant identification, uses, cultivation techniques, medicinal properties, and ecological knowledge
Methods	Fieldwork, interviews, surveys, participatory research, and laboratory analysis	Oral tradition, observation, experimentation, and transmission through generations
Importance	Preserves cultural heritage, promotes sustainability, advances modern science	Sustains livelihoods, enhances biodiversity conservation, preserves cultural identity
Applications	Medicinal plant research, sustainable agriculture, biodiversity conservation, cultural revitalization	Traditional medicine, food security, cultural preservation, environmental management

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Importance of Sanskars in Our Life

Dr. Seema Sharma*

*Professor (English) Govt. Sanskrit College, Ujjain (M.P.) INDIA

Introduction - 'Sanskar' word is derived from सम् + कृ + धञ, which means to do good, to purify, to beautify by avoiding our evils in life. To increase the value of moral values in our life is known as Sanskars.

Life is based on our physical as well as mental activities. India is known for the 'Sanskars' which are described in Vedas.

In 'Vyas Smriti' 16 Sanskars are described. These are as follows :

1) गर्भाधान, 2) पुंसवन, 3) सीमान्तोन्नयन, 4) जातकर्म, 5) नामकरण, 6) निष्क्रमण, 7) अन्नप्रा–रु39यान, 8) चूड़ाकर्म, 9) कर्मवेध, 10) उपनयन, 11) वेदारम्भ, 12) के–रु39यान्त, 13) समावर्तन, 14) विवाह, 15) विवाहाग्निगहण, 16) अग्निहोगग्रहण [1]

The question arises what is the importance of Sanskars in our life. It is often said that spiritual lie education or the needs for spiritual values starts at old age. We say that when we get retired we will start reading religions books life the Gita, the Ramayan, the Mahabharat, The Bhagwat Puranas etc. This is a false myth because the need for spiritual education starts at an early age. The Sanskars become a part of our life if we are aware to give value based education since childhood.

So we can say that moral education, which includes the Sanskars starts with an early age.

The aim of religion is for humanity. The religious books include the stories of great ideals like Rama, Krishna and other such great avatars. The aim of all these books is to create a peaceful world, full of great Sanskars. The main motto of Indian philosophy is to love everyone in the Earth.

'सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया:
सर्वे भद्राणि पष्यन्तु माकष्चिद् दु:ख भागभवेत्।।'

The importance of 'Sanskars' can be easily seen in the society. The impact of 'Satya' or the 'Truth' and Ahimsa or Non violence in life was depicated by Mahatma Gandhi. 'Truth', Non violence, love for humanity, Brotherhood, Peace of humanity, Love for our motherland are the Sanskars that can be seen in the life of great people. The question arises how these moral values are inculcated in a person's life. One is from the family and second is from the society. The family is the first school of child which educates him to be a good citizen. When he goes out in the society he barns some values from the society. Society also teaches him. Our country is famous for spiritual and moral values. We live in a country where our mother and motherland are given the utmost importance.

'अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते
जननी जन्मभूमिष्च स्वर्गादिपि गरीयसी।'[2]

Ram says to Lakshman that for him the golden Lanka is not as lovable as my mother or my motherland.

The Aachar Vichar or the ethics of our lives depends on how we inculcate Sanskar in our children.

"Religion and culture" are taken in a very narrow scope. Religion is not for a person but it is for the welfare of the "human being". Religion is not only to follow a thinking but to accept it as a part of life. In Manusamhita the religion or the Dharma is described as :

'धृति: क्षमादयोस्तेयं –रु39योचमिन्द्रियनिग्रह:
धीर्विघा सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।'[3]

This means that patience, to be with clam and controlled behavior, not to be influenced in robbery to have mental purity, truth and absence of anger are the indications of being religious.

Sanskars (Meaning) : Sanskar means to purify our external as well as our internal life. There are same ambignity related to the number of Sanskars. GautamSmriti shows 48 Sanskars. According to Puran there are 16 Sanskars. Maharshi Vyas has depicted 16 Sanskars : -

1) गर्भाधान, 2) पुंसवन, 3) सीमान्तोन्नयन, 4) जातकर्म, 5) नामकरण, 6) निष्क्रमण, 7) अन्नप्रा–रु39यान, 8) चूणाकरण, 9) कर्मवेध, 10) व्रतादे–रु39या (उपनयन), 11) वेदारम्भ, 12) के–रु39यान्त, 13) समावर्तन, 14) विवाह, 15) विवाहाग्निपरिग्रह, 16) त्रेताग्निसंग्रह

1. The Importance of Garbhadhan Sanskar during the Garbhadhan the effect of mantras and the prayer can be seen in the child that were become a good citizen.
2. Punsavan Sanskar : In our country the wish to get – a son this Sanskar is performed.

'पुत्राम्नो नरकात् त्रायते इति पुत्र:।'

अर्थात् पुम नामक नरक से त्राण (रक्षा) करता है, उसे पुत्र कहा जाता है।[4]

3. Seemantonnyan Sanskar : To protect the abdominal infant from any injury and to inculcate

good virtues in the infant, after four months he is able to learn indirectly through his parents.

Therefore parents are advised to give the infant a proper atmosphere and good healthy food to the mother.

4. Jat Karm Sanskar : During the birth of the newborn baby, this Sanskar is done. Here with a good needle, ghee and honey are placed on the tongue to increase the intelligence of the child.

5. Naamkaran Sanskar : After 10 or eleven days or after one year Naamkaran is done or the name of the child is declared.

6. Nishakraman Sanskar : This is done in fourth or sixth month of the child, the sun and the moon are worshipped and shown to the child. This darshan of the sun and the moon is considered good for the child.

7. Annprashan Sanskar : When the child is 6-7 months old, to strengthen his digestive system with a silver spoon some sweet is given to the child.

8. Chudakaran Sanskar : To increase the wisdom power in the child, the fifth or seventh year child, choti is kept on his centre of the head for the safety of his head.

9. Karna Vedhan : When the child is six months or till 16 years age, ears are pierced to get the effect of sunlight.

10. Upnayan Sanskar : To get the higher education Vidhivat yagyopavit dharan (यतोपवीतधारण) for the Veda studies or the Gayatri Jap.

11. Vedarambh Sanskar : After Uphayan a child gets the right for Veda Adhyayan.

विद्यया लुप्यते पापं विद्ययाऽऽयु: प्रवर्धते।[5]

12. Keshant Sanskar (Godaan) : After completing his Vedaadhyayan shaving kriya is done which is also known as Shamashru Sanskar (मश्रुसंस्कार)

केषानाम् अन्त: समीपस्थित: – मश्रुमाग इति
व्युत्पत्या केषान्तषब्देन .... मश्रुसंस्कार एव

13. Samavartan (समावर्तन) : After completing education returns to his home it is known as Samavartan, after that he is ready for marriage and to start a happy family life.

14. Vivah Sanskar (विवाह संस्कार) : The aim of marriage is to get a son for the welfare of our ancestors. In India marriage is not for one Janam it is for ages.

15. Vivahagni parigrah (विवाहग्निपरिग्रह) : Agni which is the witness of the marriage is considered pure is kept in home and yagya is performed every day.

16. Antim Sanskar (अंतिम संस्कार) : After the death of a person the dead body is kept on the floor after purifies it by gobar and the pure Gangajal, By Vedikmantras Antim Kriya is done in our country.

So these are the 16 Sanskars necessary for not only external but internal purification to become a good citizen. Thus the Sanskars are necessary for everyone.

References:-

1. संस्कार सर्वस्व दण्डीस्वामी श्री महत्त्योगेश्वर देवतीर्थजी महाराज) संस्कार अंक कल्याण गीताप्रेस, गोरखपुर, पेज.न. 159–160
2. वाल्मीकि रामायण गीताप्रेस, गोरखपुर
3. कल्याण धर्मशास्त्र अंक 70 जनवरी 1996,
4. कल्याण संस्कार अंक गीताप्रेस गोरखपुर, पेज.न. 39
5. कल्याण संस्कार अंक गीताप्रेस गोरखपुर, पेज.न. 42

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Medicinal Plants and Phytochemistry

Dr. Ragini Sikarwar*

*HOD (Botany) Govt. Home Science PG Lead College, Narmadapuram (M.P.) INDIA

Abstract - The phytochemistry and therapeutic potential of plants are thoroughly examined in this article. It looks at historical applications, methods of extraction, and analytical approaches to determine the phytochemical components. The many groups of compounds—terpenoids, flavonoids, phenolics, and alkaloids, among others—are explained along with their pharmacological properties. There is discussion of therapeutic uses in the treatment of diseases like cancer, heart problems, diabetes, and neurological conditions. The review emphasizes how important clinical trials and scientific validation are for proving safety and efficacy. It also discusses issues with regulatory frameworks, quality assurance, and standardization. This study highlights the importance of medicinal plants as sources of innovative therapeutic molecules and provides future research and development directions by combining current knowledge.
Keywords: Medicinal plants, Phytochemistry, Pharmacological activities, Therapeutic potential, Traditional uses, Biochemical constituents, Clinical trials.

Introduction to Medicinal Plants: In many societies around the world, medicinal plants have long been a vital component of human civilization and the main source of healing (Upadhyay et al.,2024). Their use goes back to the prehistoric era, when people relied on the abundance of nature to treat illnesses and advance wellbeing. Indigenous cultures acquired extensive information about the therapeutic qualities of the native flora across a range of climates and terrain, and they passed this knowledge down through the generations.

Geographical and cultural barriers do not diminish the importance of medicinal plants, as every location has its own special botanic gems and healing customs. From the African savannas to the Australian bushlands, from the Amazon rainforest to the Himalayan foothills, indigenous peoples have developed a profound awareness of the local plant life and its medicinal potential.

In order to represent a holistic approach to health and wellness, these traditional healing methods frequently incorporate spiritual beliefs, cultural customs, and scientific observations.

Medicinal plants are significant not just in history and culture but also in current pharmaceutical research and therapy (Fitzgerald et al., 2020). Natural substances originating from plants are the source of many of the most powerful prescription medications in use today. For instance, morphine, a substance that relieves pain, comes from the opium poppy, but quinine, an anti-malarial medication, comes from the bark of the cinchona tree. Moreover, scientists continue to draw much inspiration from plants when creating new medications, with a growing trend toward the use of traditional medical knowledge as a source of fresh therapeutic ideas.

The continued importance of medicinal plants is fueled by cultural acceptance, affordability, and accessibility even in the face of advances in modern medicine. Research into the therapeutic potential of plant-based medications has also rekindled interest due to the growing incidence of chronic diseases, the development of antibiotic resistance, and the need for sustainable and natural healthcare solutions.

In this context, it is critical to comprehend the complex interaction between human health and medicinal plants(Jia et al., 2016). It entails identifying the synergistic interactions between the bioactive compounds found in plants as well as their impact on the human body in addition to revealing the compounds' individual properties. Sustainable practices and biodiversity preservation also depend on acknowledging the cultural, ecological, and ethical aspects of plant-based medicine.

Table 1 (see in last page)

Phytochemical Analysis Techniques

1. Extraction Techniques:

- **Solvent Extraction:** One of the most popular techniques for removing phytochemicals from plant materials is this one(Dev Silva et al., 2017). The bioactive substances found in the plant matrix are dissolved and extracted using solvents such water, ethanol, methanol, and chloroform.
- **Steam Distillation:** Particularly employed for extracting essential oils from aromatic plants, steam distillation involves passing steam through the plant

material, which vaporizes the essential oils. These oils are then condensed and collected.

2. Chromatographic Separation Techniques:

- **Thin-Layer Chromatography (TLC):** TLC involves separating components of a mixture based on their differential migration rates on a thin layer of adsorbent material(Monteiro et al., 2016). Different phytochemicals move at different rates, allowing for their visualization and identification.
- **Column Chromatography:** This technique involves passing a sample through a stationary phase packed in a column. Compounds are separated based on their affinity for the stationary phase and their partition coefficients.
- **High-Performance Liquid Chromatography (HPLC):** HPLC is a highly efficient chromatographic technique used for separating, identifying, and quantifying individual components in a mixture(Lozano-Sanchez et al., 2018). It offers high sensitivity and resolution, making it suitable for analyzing complex mixtures of phytochemicals.

3. Spectroscopic Identification Methods:

- **UV-Visible Spectroscopy:** UV-Vis spectroscopy is commonly used to analyze the absorption of light by phytochemicals in the ultraviolet and visible regions of the electromagnetic spectrum(Dhivya et al., 2017). It provides information about the electronic structure and concentration of compounds.
- **Infrared Spectroscopy (IR):** IR spectroscopy measures the absorption of infrared radiation by functional groups in molecules. It is useful for identifying the types of chemical bonds present in phytochemicals.
- **Mass Spectrometry (MS):** MS is a powerful technique used to identify and characterize the molecular weight and structure of phytochemicals. It ionizes molecules and separates them based on their mass-to-charge ratio, providing information about their composition and fragmentation patterns.

4. Bioassays:

- **Biological Assays:** These assays involve testing the biological activity of plant extracts or isolated compounds using in vitro or in vivo models(Altemimi et al., 2017). Bioassays can help determine the pharmacological effects and potential therapeutic applications of phytochemicals.

5. Quantitative Analysis:

- **Standardization Techniques:** Standardization involves quantifying specific phytochemicals or groups of compounds present in plant extracts to ensure consistency and efficacy in herbal preparations(Nafiu et al., 2017). Techniques such as spectrophotometry, titration, and gravimetric analysis are commonly used for quantitative analysis.

Table : 2 (see in last page)

Pharmacological activities and mechanisms of action

Bioactive chemicals found in medicinal plants have physiological effects on the human body, which are referred to as their pharmacological activities and mechanisms of action(Mickymary et al., 2019). Clarifying the therapeutic potential of medicinal plants and creating evidence-based herbal medications require an understanding of these processes and activities.

1. **Anti-inflammatory Activity:** Many medicinal plants exhibit anti-inflammatory properties, which can help alleviate inflammation-associated conditions such as arthritis, gastritis, and dermatitis. Compounds like flavonoids, terpenoids, and phenolic compounds found in plants inhibit pro-inflammatory mediators and pathways, including cyclooxygenase (COX) and lipoxygenase (LOX) enzymes(Mir et al., 2020).
2. **Antioxidant Activity:** Antioxidants are compounds that neutralize reactive oxygen species (ROS) and prevent oxidative damage to cells and tissues. Medicinal plants rich in flavonoids, phenolic compounds, and vitamins C and E exert potent antioxidant effects, protecting against oxidative stress-related diseases such as cardiovascular disorders, neurodegenerative diseases, and cancer.
3. **Antimicrobial Activity:** Many medicinal plants possess antimicrobial properties, inhibiting the growth and proliferation of pathogenic microorganisms such as bacteria, fungi, and viruses. Phytochemicals like alkaloids, terpenoids, and essential oils disrupt microbial cell membranes, inhibit enzymatic processes, and interfere with microbial DNA replication, making them effective against infectious diseases(Khare et al., 2021).
4. **Anticancer Activity:** Several phytochemicals derived from medicinal plants exhibit anticancer properties by inhibiting tumor cell proliferation, inducing apoptosis (programmed cell death), and suppressing angiogenesis (formation of new blood vessels). Compounds such as flavonoids, alkaloids, and terpenoids target various signaling pathways involved in cancer development and progression, offering potential therapeutic benefits in cancer treatment and prevention.
5. **Hepatoprotective Activity:**Hepatoprotective plants help maintain liver health and function by preventing liver damage and promoting liver regeneration(Wan et al., 2018). Phytochemicals like silymarin from milk thistle and curcumin from turmeric exhibit hepatoprotective effects by reducing oxidative stress, inflammation, and toxin-induced liver injury.
6. **Hypoglycemic Activity:** Medicinal plants with hypoglycemic activity help regulate blood glucose levels and improve insulin sensitivity, making them valuable in managing diabetes mellitus. Compounds such as flavonoids, alkaloids, and polysaccharides found in plants enhance glucose uptake, inhibit carbohydrate digestion and absorption, and protect pancreatic β-cells from damage.
7. **Neuroprotective Activity:** Certain phytochemicals possess neuroprotective properties, safeguarding neurons from oxidative stress, inflammation, and neurodegeneration(Welmurugan et al.,2018). Plant-derived compounds like flavonoids, terpenoids, and polyphenols exhibit neurotrophic effects, promoting neuronal survival,

synaptic plasticity, and cognitive function, which may have implications in the prevention and treatment of neurodegenerative diseases like Alzheimer's and Parkinson's disease.

8. **Cardioprotective Activity:** Medicinal plants with cardioprotective activity exert beneficial effects on cardiovascular health by reducing blood pressure, cholesterol levels, and oxidative stress, and improving endothelial function(Shah et al., 2019). Phytochemicals such as flavonoids, polyphenols, and omega-3 fatty acids found in plants support heart health by enhancing vasodilation, inhibiting platelet aggregation, and reducing inflammation, thereby reducing the risk of cardiovascular diseases like hypertension and atherosclerosis.

Therapeutic Applications in Disease Management

Cancer: As medicinal plants contain a wide variety of bioactive substances, their potential fortreating and preventing cancer has long been studied(Majolo et al., 2019). Numerous plant-derived phytochemicals have anti-cancer qualities because they target different pathways that are involved in the development, spread, and metastasis of tumors. Certain substances have the ability to, for example, restrict angiogenesis—the process of forming new blood arteries that support tumors—induce apoptosis, or programmed cell death, and prevent the growth of tumor cells. *Curcuma longa* (turmeric), which includes curcumin, which is known for its anti-inflammatory and anticancer benefits, and *Taxus brevifolia* (Pacific yew), which is a source of the anticancer medication paclitaxel, are two examples of medicinal plants with anti-cancer qualities. Additionally, because of its cytotoxic and immune-stimulating properties on cancer cells, *European mistletoe* (Viscum album) has been employed in complementary cancer therapy.

Cardiovascular Disorders: The management of cardiovascular conditions like hypertension, atherosclerosis, and coronary artery disease is greatly aided by medicinal herbs. Phytochemicals found in some plants can help lower blood pressure, cholesterol, enhance endothelial function, and prevent platelet aggregation, all of which lower the risk of cardiovascular events. Allicin, for instance, and other sulfur-containing compounds found in *Allium sativum* (garlic) have the ability to decrease cholesterol and dilate blood vessels(Dorrigiv et al., 2020). Another plant used medicinally that is well-known for its effects on the heart is hawthorn (Crataegus spp.). These advantages include enhanced circulation and heart function. Ginkgo biloba extract, which is made from the leaves of the ginkgo tree, is good for cardiovascular health since it has been demonstrated to enhance peripheral circulation and decrease platelet aggregation.

Diabetes: The hypoglycemic and anti-diabetic effects of medicinal plants have been well explored, providing alternate methods of treating diabetes mellitus. Plants contain a variety of phytochemicals that can help control blood sugar, enhance insulin sensitivity, and shield pancreatic β-cells from harm. Momordica charantia, or bitter melon, for example, has substances that function similarly to insulin and improve cells' absorption of glucose. An additional plant that is well-known for lowering sugar cravings and enhancing blood sugar regulation is *Gymnema sylvestre* (Gurmar) (Ali et al., 2021). Bioactive chemicals found in cinnamon *(Cinnamomum verum)* improve insulin signaling and reduce blood glucose levels in diabetics.

Neurological Ailments: Medicinal plants have shown promise in managing various neurological ailments, including cognitive decline, neurodegenerative diseases, and mood disorders. Certain phytochemicals possess neuroprotective properties, helping to preserve neuronal function and mitigate oxidative stress-induced damage in the brain. For example, *Bacopa monnieri* (Brahmi) has been traditionally used in Ayurvedic medicine to enhance memory and cognitive function. Ginkgo biloba extract has been studied for its potential in improving cognitive function and slowing the progression of neurodegenerative diseases like Alzheimer's and Parkinson's disease. Additionally, *Panax ginseng* (Ginseng) has adaptogenic properties that may help alleviate stress and improve mood and cognitive performance.

Challenges in Utilizing Medicinal Plants:

1. **Standardization and Quality Control:** One of the major challenges in utilizing medicinal plants is ensuring consistency and quality control in herbal products(Liu et al., 2024). The composition of bioactive compounds in plants can vary depending on factors such as plant species, geographical location, growing conditions, and harvesting methods. Standardization of herbal preparations is essential to guarantee their efficacy, safety, and reproducibility.
2. **Regulatory Issues:** Regulatory frameworks governing the use of medicinal plants vary widely across different countries, leading to inconsistencies in product quality and safety standards. Lack of harmonization and standardized guidelines for the registration, labeling, and marketing of herbal products pose challenges for manufacturers, healthcare practitioners, and consumers.
3. **Ethical and Sustainability Concerns:** Over-exploitation of medicinal plant species, habitat destruction, and unsustainable harvesting practices pose threats to biodiversity and ecosystem integrity. There is a need for sustainable harvesting practices, cultivation of medicinal plants in controlled environments, and ethical sourcing of plant materials to ensure their long-term availability and conservation.
4. **Limited Scientific Evidence:** Despite their historical use and anecdotal evidence, many medicinal plants lack robust scientific validation through well-designed clinical trials. The lack of rigorous scientific evidence hinders the acceptance of herbal medicines by mainstream healthcare providers and regulatory authorities, limiting their integration into conventional healthcare systems.

5. Drug-Plant Interactions: Medicinal plants contain complex mixtures of bioactive compounds that may interact with pharmaceutical drugs, leading to adverse effects or altered therapeutic efficacy. Understanding potential drug-plant interactions and conducting comprehensive safety assessments are essential to minimize risks associated with polypharmacy and herb-drug interactions.

Prospects for Future Research and Development:

1. Phytochemical Profiling and Mechanistic Studies: Advances in analytical techniques such as chromatography, spectroscopy, and mass spectrometry enable comprehensive phytochemical profiling of medicinal plants(Gopalaiah et al., 2024). Future research should focus on elucidating the mechanisms of action of bioactive compounds, identifying synergistic interactions among phytochemicals, and understanding their pharmacokinetics and pharmacodynamics.

2. Biotechnological Approaches: Biotechnological methods such as plant tissue culture, genetic engineering, and metabolomics offer opportunities for the sustainable production of bioactive compounds from medicinal plants. Biotechnological approaches can help optimize plant growth, enhance phytochemical yields, and develop genetically modified plants with improved therapeutic properties.

3. Evidence-Based Medicine: There is a growing demand for evidence-based herbal medicines supported by robust clinical evidence. Future research should prioritize well-designed clinical trials, systematic reviews, and meta-analyses to evaluate the efficacy, safety, and cost-effectiveness of medicinal plants in treating specific health conditions.

4. Integration of Traditional Knowledge: Indigenous and traditional knowledge systems provide valuable insights into the medicinal properties and therapeutic uses of plants. Collaborative research partnerships between traditional healers, scientists, and healthcare professionals can facilitate the documentation, validation, and preservation of traditional medicinal knowledge, ensuring its integration into modern healthcare practices.

5. Multidisciplinary Collaboration: Addressing the complex challenges associated with utilizing medicinal plants requires multidisciplinary collaboration across fields such as botany, pharmacology, chemistry, biotechnology, and ethnobotany. Collaborative research efforts can lead to innovative approaches for sustainable plant sourcing, standardization of herbal preparations, and development of evidence-based herbal medicines.

Conclusion: In summary, medicinal plants provide a rich source of bioactive substances with a variety of therapeutic uses, providing exciting new opportunities for the treatment and management of illness. Nevertheless, there are a number of obstacles to their use, including as problems with standardization and quality control, legal restrictions, moral dilemmas, and a paucity of scientific data. There are plenty of opportunities for more study and advancement in the field of medicinal plants, even in spite of these obstacles. By utilizing biotechnology, evidence-based medicine, and analytical tools, it is possible to surmount current obstacles and fully utilize medicinal plants. Through the prioritization of multidisciplinary collaboration, sustainable sourcing techniques, and rigorous scientific validation, scholars may effectively tackle the intricate issues surrounding the use of medicinal plants and facilitate their assimilation into conventional healthcare systems.

Additionally, preserving and using traditional knowledge systems can improve our comprehension of medicinal plants and aid in the creation of successful healthcare solutions that are sensitive to cultural differences. Ultimately, medicinal plants can remain important tools for enhancing human health and wellbeing for a long time to come if they embrace innovation, collaborate with others, and support evidence-based practice.

References:-

1. Upadhyay, T. K., Das, S., Mathur, M., Alam, M., Bhardwaj, R., Joshi, N., & Sharangi, A. B. (2024). Medicinal plants and their bioactive components with antidiabetic potentials. *Antidiabetic Medicinal Plants*, 327-364.
2. Fitzgerald, M., Heinrich, M., & Booker, A. (2020). Medicinal plant analysis: A historical and regional discussion of emergent complex techniques. *Frontiers in pharmacology*, *10*, 1480.
3. Jia, M., Chen, L., Xin, H. L., Zheng, C. J., Rahman, K., Han, T., & Qin, L. P. (2016). A friendly relationship between endophytic fungi and medicinal plants: a systematic review. *Frontiers in microbiology*, *7*, 906.
4. De Silva, G. O., Abeysundara, A. T., & Aponso, M. M. W. (2017). Extraction methods, qualitative and quantitative techniques for screening of phytochemicals from plants. *American Journal of Essential Oils and Natural Products*, *5*(2), 29-32.
5. Monteiro, M. L. G., Mársico, E. T., Lázaro, C. A., & Conte-Júnior, C. A. (2016). Thin-layer chromatography applied to foods of animal origin: a tutorial review. *Journal of Analytical Chemistry*, *71*, 459-470.
6. Lozano-Sánchez, J., Borrás-Linares, I., Sass-Kiss, A., & Segura-Carretero, A. (2018). Chromatographic technique: High-performance liquid chromatography (HPLC). In *Modern techniques for food authentication* (pp. 459-526). Academic Press.
7. Dhivya, S. M., & Kalaichelvi, K. (2017). UV-Vis spectroscopic and FTIR analysis of Sarcostemma brevistigma, wight. and arn. *International Journal of Herbal Medicine*, *9*(3), 46-49.
8. Altemimi, A., Lakhssassi, N., Baharlouei, A., Watson, D. G., & Lightfoot, D. A. (2017). Phytochemicals: Extraction, isolation, and identification of bioactive compounds from plant extracts. *Plants*, *6*(4), 42.
9. Nafiu, M. O., Hamid, A. A., Muritala, H. F., & Adeyemi,

S. B. (2017). Preparation, standardization, and quality control of medicinal plants in Africa. *Medicinal spices and vegetables from Africa*, 171-204.

10. Mickymaray, S. (2019). Efficacy and mechanism of traditional medicinal plants and bioactive compounds against clinically important pathogens. *Antibiotics*, *8*(4), 257.
11. Mir, R. H., & Masoodi, M. H. (2020). Anti-inflammatory plant polyphenolics and cellular action mechanisms. *Current Bioactive Compounds*, *16*(6), 809-817.
12. Khare, T., Anand, U., Dey, A., Assaraf, Y. G., Chen, Z. S., Liu, Z., & Kumar, V. (2021). Exploring phyto-chemicals for combating antibiotic resistance in microbial pathogens. *Frontiers in pharmacology*, *12*, 720726.
13. Wan, L., & Jiang, J. G. (2018). Protective effects of plant-derived flavonoids on hepatic injury. *Journal of Functional Foods*, *44*, 283-291.
14. Velmurugan, B. K., Rathinasamy, B., Lohanathan, B. P., Thiyagarajan, V., & Weng, C. F. (2018). Neuro-protective role of phytochemicals. *Molecules*, *23*(10), 2485.
15. Shah, S. M. A., Akram, M., Riaz, M., Munir, N., & Rasool, G. (2019). Cardioprotective potential of plant-derived molecules: a scientific and medicinal approach. *Dose-response*, *17*(2), 1559325819852243.
16. Majolo, F., Delwing, L. K. D. O. B., Marmitt, D. J., Bustamante-Filho, I. C., & Goettert, M. I. (2019). Medicinal plants and bioactive natural compounds for cancer treatment: Important advances for drug discovery. *Phytochemistry Letters*, *31*, 196-207.
17. Dorrigiv, M., Zareiyan, A., & Hosseinzadeh, H. (2020). Garlic (Allium sativum) as an antidote or a protective agent against natural or chemical toxicities: A comprehensive update review. *Phytotherapy Research*, *34*(8), 1770-1797.
18. Ali, H. (2021). *A Review on Gymnema sylvestre and its Major Pharmacological Activities* (Doctoral dissertation, Brac University).
19. Liu, C. L., Jiang, Y., & Li, H. J. (2024). Quality Consistency Evaluation of Traditional Chinese Medicines: Current Status and Future Perspectives. *Critical Reviews in Analytical Chemistry*, 1-18.
20. Gopalaiah, S. B., & Jayaseelan, K. (2024). Analytical Strategies to Investigate Molecular Signaling, Proteomics, Extraction and Quantification of Withanolides–A Comprehensive Review. *Critical Reviews in Analytical Chemistry*, 1-25.

Table 1 : Traditional Uses and Cultural Significance of Medicinal Plants

Medicinal Plant	Traditional Uses	Cultural Significance
Ginseng (Panax spp.)	Enhancing vitality and stamina, improving cognitive function	Highly esteemed in traditional Chinese medicine (TCM)
Neem (Azadirachta indica)	Treating skin conditions, dental care, insect repellent	Revered as a sacred tree in Indian culture
Echinacea (Echinacea purpurea)	Boosting immune system, treating colds and infections	Utilized by Native American tribes for centuries
Aloe Vera (Aloe barbadensis)	Healing burns, soothing skin irritation	Widely used in ancient Egyptian, Greek, and Roman medicine
Turmeric (Curcuma longa)	Anti-inflammatory, digestive aid, wound healing	Integral part of Ayurvedic medicine in India
Peppermint (Mentha piperita)	Relieving digestive discomfort, easing headaches	Found in folklore and culinary traditions worldwide
Yarrow (Achillea millefolium)	Treating wounds, reducing fever, menstrual support	Associated with divination and healing rituals in folklore

Table : 2 Classes of Phytochemicals in Medicinal Plants

Class of Phytochemical	Description	Examples
Alkaloids	Nitrogen-containing organic compounds with diverse pharmacological activities.	Morphine (from opium poppy), caffeine
Flavonoids	Polyphenolic compounds with antioxidant, anti-inflammatory, and anticancer properties.	Quercetin (found in onions), epigallocatechin gallate (EGCG) (found in green tea)
Terpenoids	Hydrocarbons derived from isoprene units, . exhibiting various biological activities	Taxol (from Pacific yew tree), artemisinin (from Artemisia annua)
Phenolic Compounds	Organic compounds with one or more phenol groups, known for their antioxidant properties.	Resveratrol (found in red wine), curcumin (from turmeric)
Essential Oils	Volatile aromatic compounds extracted from plants, possessing therapeutic and aromatic properties.	Lavender oil, tea tree oil

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Artificial Intelligence Effects on Accounting: A Review

Mangi Lal Jain*

***Assistant Professor (Accountancy and Business Statistics) M.B.C. Government Girls College, Barmer (Raj.) INDIA**

Abstract - Artificial intelligence is significantly influencing the whole economy, with impacts ranging from major to significant. The increased use of artificial intelligence in the accounting sector has sparked debates on the future of accounting firms. This article explores the core principles of artificial intelligence in accounting and examines many possible applications of these principles. This research aims to analyse the perspectives of several reviewers to assess the impact of artificial intelligence (AI) on the accounting industry. Significant data processing and analysis skills will be essential to fulfil the demands of the future corporate environment. Utilising artificial intelligence to improve the skills of professionals like accountants is advisable. This study aims to assess the pros and cons associated with the use of artificial intelligence (AI) in the accounting sector. Although artificial intelligence will not fully substitute accountants, the study's results indicate that it will affect the obligations accountants are tasked with. To ensure people have the greatest chances for success, they must have certain technical skills. This article explores the significant influence of artificial intelligence (AI) on the accounting industry and how it may enhance competitiveness in the job market due to heightened rivalry.

Keywords: Artificial Intelligence, Accounting, Auditing, Technology.

Introduction - One primary goal of artificial intelligence in accounting is to minimise repetitive processes and manage large amounts of data. Artificial intelligence is now being used across all areas and will continue in doing so. Artificial intelligence enables robots to acquire knowledge from past encounters, adapt to new information, and function in a manner like to humans. Artificial intelligence might enhance several roles within the business sector. Computers may be taught to do certain tasks by analysing extensive data and identifying patterns using advanced technology. This training may facilitate the completion of certain tasks.It improves speed, accuracy, and decision-making. Financial data and reports may be readily available and securely stored. Users may efficiently access and update information, automate tedious operations, save accountants' time, and access comprehensive records using cloud-based technologies, machine learning (ML), and blockchain. The fourth Industrial Revolution is now underway and will result in substantial changes in company operations, accounting, and reporting methods. It is crucial to modernise the accounting process by using the most up-to-date technologies. Artificial intelligence will transform the accounting process, resulting in an unparalleled shift. Zhao et al. (2004) said that expert systems in accounting improve the accessibility of accounting education and training. In the future, all organisations will need artificial intelligence-based accounting systems to be competitive in the market. Traditional accounting, reporting, financing, and auditing systems will be stopped. As a result, significant concerns exist over job displacement and the outdated nature of existing software and technology. The expense associated with deploying AI is also a significant consideration. There is also a need for professionals skilled in handling such technologies at the same time. Artificial intelligence significantly influences work environments in the long term. This will result in a significant restructuring of the accounting and finance system. The research has discussed the effects of artificial intelligence (AI) on accounting and its many subfields.

Review of Literature

Makridakis (2017) examined the state of current and future artificial intelligence (AI) research as well as the possibility of robots achieving true intelligence. Major theories and possibilities of how AI can transform human existence were highlighted in the research. The transformation of the field and profession of accounting and auditing is one of the many ways artificial intelligence (AI) may change the human environment.

According to Accenture Consulting (2017), the majority of customers would rather have both artificial intelligence and human experts to provide interpretations of the findings and identify areas in which the firm would be underperforming.

Makridakis (2017) is a research that is highly fascinating

since it provides an overview of the predictions that the same author made in 1995 for the year 2015 on the digital (information) revolution that was going to occur at the time. In spite of the fact that some of the forecasts were not accurate, a lot of them ended up being accurate. As a result of the digital revolution, we are currently seeing the broad deployment of technical tools and solutions in organisations across a wide range of sectors. A number of the information and communication technology (ICT) technologies that are used in contemporary businesses are of a non-cognitive character, while others have a cognitive component.

Chukwuani and Egiyi (2020) investigated the influence that artificial intelligence has had in the area of accounting. by doing so, they demonstrated the degree of progress that is being made in the accounting business with regard to the automation of the accounting process. In conclusion, they discussed the role that accountants play in the current automation and the ways in which accountants working in the 21st century may adjust to the rising prevalence of automation in the profession.

Chukwuani & Egiyi (2020) looked at how AI is affecting the accounting sector. They provided an illustration of the progress being made in the automation of the accounting process in the accounting business. They discussed how accountants fit into the current automation environment and how they may adjust as the sector becomes more automated.

Artificial intelligence (AI) and big data technologies' challenges and possible future directions in the domains of business, research, education, and policymaking were covered by **Luan et al. (2020).** They contend that effective collaboration between academics, policymakers, and professionals from various fields is necessary to fully realise the potential of artificial intelligence and data advancement. This cooperation will enable them to effectively address the challenges and innovations posed by the big data and artificial intelligence revolution. Their collective lack of experience, competence, and abilities is the biggest problem; yet, it is imperative that they adopt a collaborative approach.

Pradip Kumar Das's (2021) work Artificial intelligence offers the accounting profession and accountants a chance for advancement rather than a hindrance. Accountants will still be needed, but they will have to closely monitor artificial intelligence to enhance their skills and transition from traditional accountants to high-level accounting professionals with managerial capabilities. This might result in the termination of employment for certain accountants.

Helen N. Kem, Emetaram, Ezenwa, Uchitel, (2021) Accountants should see AI as a helpful tool to enhance customer services, rather than fearing it will replace their professions and livelihoods. Accountants may anticipate a prosperous and enduring career with the appropriate education and skills.

Objective of the Study : The research aims to examine the influence of artificial intelligence on accounting procedures.

Research Question : The research topic explores the influence of artificial intelligence on the accounting function and overall corporate success.

Methodology : The research is descriptive and based on an analysis of literature and public secondary sources. The research relies only on secondary data sources such as internet and academic databases, including literature reviews, empirical investigations, websites, books, journals, and reports.

Results and Discussion : Applications of artificial intelligence and its many applications the capacity of technology, particularly computer systems, to mimic human cognitive processes is known as artificial intelligence. Among the specific uses of AI are machine vision, voice recognition, natural language processing, expert systems, and others. Machine learning algorithms are created and taught using a mix of specialist hardware and software. Artificial intelligence requires this mix. The Workings of Artificial Intelligence Finding connections and patterns via extensive data analysis enables the utilization of these patterns to predict future circumstances. Cognitive abilities like creativity, self-correction, reasoning, and learning are given priority in artificial intelligence development.

Artificial intelligence technology is present practically everywhere in the society of today. In the business and corporate sectors, artificial intelligence technologies will be widely used. Artificial intelligence applications in marketing, media, e-commerce, and entertainment provide pattern-based analysis of customer decisions and behaviors. Numerous companies are attempting to strengthen their bonds with their clientele, including Netflix and Amazon. By examining data and looking for algorithmic trends, AI systems are being employed in the financial sector to make trading decisions. These decisions are made more quickly and on a larger scale than is feasible for people.

When used in the fields of accounting, auditing, and finance, artificial intelligence has a significant influence on the environment in which businesses operate. The loss of employment and the elimination of small businesses that are unable to buy technology based on artificial intelligence is a problem that is particularly prevalent in India.

Providing information to the relevant user in the most suitable and adaptable manner for the purpose of making economic choices both internally and externally is the primary objective of accounting. The development of artificial intelligence is a revolutionary advancement that has the potential to enable the accounting profession to execute and make strategic choices more effectively than in the past.

A tedious and time-consuming procedure, the acquisition of unstructured data is a method that must be used. With the help of artificial intelligence, the procurement procedure may be carried out without the usage of paper.

There will be no difficulty in collecting monthly cash flows by using an AI-powered system on a monthly or quarterly basis. Annual accounts should also be complied with using AI, with specific attention paid to the sort of company being discussed. Internal auditing and the financial management team will both benefit from the use of artificial intelligence. By using the AI software, massive amounts of data may be analysed in a methodical manner, which will result in a fifty percent reduction in their burden.

Focus Areas of Applications of Artificial Intelligence in Accounting and Auditing: According to a review of the literature, the following are the primary areas where AI is being used in the accounting and auditing fields:

1. **Expert Systems (ES):** The subset of a knowledge-based system that incorporates the knowledge and experience of an expert into the system's knowledge base is known as such. Expert systems are used in the field of financial accounting for the purpose of constructing financial statements and accounting information systems, as well as for the processing of invoices and entries, the evaluation of standards, the development of worksheets, and other related tasks. In addition, ES may be used in auditing and inventory control systems simultaneously.
2. **Continuous Auditing:** According to Zhao et al. (2004), there is a growing emphasis on the need of real-time financial information, a lack of norms and procedures, significant technological obstacles, paperless accounting information systems, and timely audit reports as factors that are associated with continuous auditing.
3. **Decision Support System (DSS):** It is a computer-based system that is interactive, flexible, and dynamic, and it is beneficial in the process of decision making. A wide variety of unstructured accounting, auditing, and management functions are examples of situations in which DSS is used.
4. **Deep Learning & Machine Learning:** The objective of this computer system is to mimic human intellect and learning to accomplish a job. Machine learning is a field that falls under artificial intelligence and computer science. It involves using data and algorithms to imitate human learning processes, with the goal of enhancing the model's precision over time, as stated by IBM.com.
5. **Natural Language Processing (NLP):** According to Deloitte (2018), it is a branch of research that focuses on training artificial models to comprehend and process human speech.According to Chukwudi et al. (2018), it is a technological tool that takes use of artificial intelligence and focuses on the reproduction of human natural language and communication techniques.
6. **Robotic Process Automation (RPA):** A rule-based and standardized set of duties is carried out by it. In order to do rule-based, repetitive, high-volume processes, robots may be taught or programmed to perform certain tasks. Artificial intelligence is driven by data, but robotic process automation (RPA) is driven by processes.
7. **Emergence of Block Chain Technology:** According to Zhang et al. 2020, Block Chain Technology enables the transfer of any value (including data, assets, currency, and information) in real time in a manner that is both safe and cost-effective. Accounting and auditing professionals will find it very helpful since it will provide them with usable data for corporate reporting, analysis of population data rather than sample data, data for audit design, and other similar purposes.

In addition to this, the technologies known as "Genetic Algorithm" and "Hybrid System" are examples of examples of technologies that are useful for the automation and progress of the accounting and auditing process itself.

Possible Benefits of AI Implementation:

1. AI will eliminate the time-consuming, repetitive processes carried out by the conventional accounting system.
2. There will be a lower chance of financial fraud. Accounting staff merely previews the extensive accounting and other tasks that computer software must do. Through data analysis, AI can handle accounting, manage registers, and generate financial statements with much more accuracy and relevance.
3. A corporation may raise the calibre of accounting data by using AI-based software. In conventional accounting, accounting staff need a lot of labour and money to verify different vouchers, accounting books, statements, etc. resulting from extended effort, weariness, and blunders that skew accounting data. However, AI will carry out such tasks accurately and efficiently.
4. Industry can improve customer services and increase productivity by using AI in a variety of sectors.
5. It may help save time and labour, which can then be put to better use on more complex and valuable tasks.

Risk aspects of AI implementation:

1. When an organization is subject to more artificial intelligence surveillance, there may be a conflict of interest and a risk to the external auditor's independence.
2. The development of artificial intelligence has created a danger that traditional occupations and functions would become extinct. Massive unemployment will therefore result. The need for accounting staff will decrease with widespread AI deployment. Current employees confront the dilemma of elimination.
3. Laws, standards, and accounting regulations may change from time to time. At the current level of AI application intelligence, an AI system cannot update itself to reflect changes in laws, rules, and policies. Frequent modifications might thus hinder the process.
4. Using AI-based technologies comes at a considerable expense. It is sometimes not acceptable to many organizations.
5. AI-based accounting systems need specialized

knowledge and training. In our nation, there is resistance among accountants and auditors to use technology effectively.

Effects of implementation of AI in accounting : Based on what has been discussed thus far, it is very evident that every organization ought to unquestionably adopt AI. The introduction of such disruptive technology invariably results in the appearance of some problems. In order to solve these issues, there are many different approaches. A number of ethical problems have been raised about the implementation of AI. There are certain professionals who are unable to agree with the elimination of the existing system. For regulations pertaining to cyber security, there are a great deal of questions. There is a possibility that new methods of perpetrating fraud will emerge. Consequently, the design of new regulations pertaining to cyber security, data protection, and artificial intelligence, as well as the application of these laws, are vital. In order to standardize the use of cognitive technologies, it would be necessary to formulate various policies at both the national and informational levels. The application of artificial intelligence is related with the fear of unemployment. There is a possibility that in the future there will be other types of professional hybrids; no one will be affiliated with a permanent position; instead, the opinions of freelancers will be employed. As a result, attention will be diverted away from compliance with the organization and obligations regarding human resources. The World Economic Forum (WEF) has published a number of publications that make predictions about the influence that artificial intelligence will have on occupations all around the world. Automation brought about by the use of artificial intelligence will lead to an increase of 58 million employment, of which two-thirds will be at the highly skilled level. The field of accounting has seen the introduction of a variety of different types of automation almost every day. The conventional paper-based accounting system was replaced by a computerized accounting system. A number of significant changes have been brought about in the work process as a result of the introduction of EDI technology and various accounting software. At the outset, there was apprehension regarding the loss of jobs; nevertheless, in the long run, it will create opportunities for new employment. During the early stages of bookkeeping, for instance, there was a significant shift in the nature of software accounting jobs. Although many people were concerned that the introduction of Intuit in 1983 and Microsoft Excel in 1985 would lead to the disappearance of human bookkeepers, this was not the case. However, over the course of a decade, the field experienced a growth of 75%. It is the goal of artificial intelligence to replace manual jobs and remove the strain of repetition. The person who keeps the books will no longer have a job. On the other hand, their job arrangement will be altered, and they will be required to make use of their other skills that were before underutilized. “Bookkeepers” or artificial intelligence software designed specifically for bookkeeping chores can do certain functions, such as entry creation, approval flow, store records, auditing, and tax services. Virtual accounting services, which include bookkeeping performed by artificial intelligence, are not only a threat but also an opportunity. The majority of contemporary accounting and finance firms already make use of some sort of artificial intelligence accounting software,such as Quickbook, Oracle, Freshbook, Zohobook, anda great deal of otheroptions.

The deployment of artificial intelligence technology has been utilised by a number of accounting companies, including Ernst & Young, Pricewaterhouse Coopers, and Deloitte Touché Tohmatsu Limited.

Conclusion : The emergence of artificial intelligence in accounting presents the accounting industry and accountants with an opportunity rather than a challenge. Accountants ought to be enthusiastic about artificial intelligence technology, they ought to enhance their knowledge of it, and they ought to get the most out of it. To ensure that pupils are able to acquire knowledge of the latest technologies, educationalists should enhance and update their curriculum. It is necessary for the organization to implement sufficient training and skill development techniques in order for these to be compatible with the workforce that is currently in place. For the purpose of providing cyber security, the government is going to work on developing new rules, regulations, and policies. Since this is the case, there ought to be a distinct path for development with the assistance of contemporary technology.

References:-

1. Alex ,H., Fogel, K., Wilbank,C., Benerd,G.and Serge,M.(2014).AI,Robotics and Future Jobs, Pew Research Centre.Association of Business Educatorsof Nigeria Book of Readings. http://www.pewinternet.org.
2. CMA Exam Academy
3. http://cmaexamacademy.com/artificialintelligence in accounting, April2014
4. Chukwudi,O.,Echefu, S., Boniface U.,& Victoria, C(2018). Effect of Artificial Intelligence on the performance of Accounting Operations among accounting firms in South East Nigeria. Asian Journal of economics , Business and Accounting .
5. Emetaram,Ezenwa,Uchime, Helen Nkem. Impact of Artificial Intelligence (AI) on Accounting Profession.(2021).
6. Greenman ,C.(2017), Exploring the Impact of Artificial Intelligence on the Accounting Profession. Journal of Research in Business, Economics and Management.(JRBEM).
7. Johnson,sterlen J,”Wiil AI and Automation Replace or Assist Accountants”2023
8. Northern Illinois University
9. Luan, H ., Geczy, P.,Lai, H., Gobert,j.,Yang, S.J.H.,

Ogata, H,Baltes, J.,Guerra,R.,Li,P.,&TsaiC. – C(2020)Chellenges of Future directions of Big Data and Artificial Intelligence in Education. Frontiers in Psychology,11,Article ID: 580820.

10. Pradip Kumar Das,2021, Impact of Artificial Intelligence on Accounting
11. Rizvan Hasan Ahmed, 2022;Artificial Intelligence (AI) in Accounting & Auditing: A Literature Review. http://scirp.org/journal/ojbm.
12. Research Gate 2023 http://www.researchgate.net/publication/352174841-artificial-intelligence-inthe-accounting-profession
13. Role of AI in Accounting And Finance October 2022 http://innovatureinc.com/roleof ai-in-accounting -and -finance
14. techtarget.com
15. Zhang ,Y., Xiong.f , Xiey., Fan,X.,& Gu.H.(2020). The Impact of Artificial Intelligence and Block chain on the Accounting Profession.
16. Zehong,L and Zheng,. L.,2018 "The Impact of Artificial Intelligence on Accounting ." In Proceedings of the 2018 4rt International Conference On Social Science and Higher Education. 15) https://www.scirp.org/journal/paperinformation

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Plant Diversity and Conservation

Dr. Ragini Sikarwar*

*HOD (Botany) Govt. Home Science PG Lead College, Narmadapuram (M.P.) INDIA

Abstract - Plant diversity conservation is essential to preserving the resilience and health of ecosystems. The numerous approaches and difficulties related to initiatives to conserve plant diversity are examined in this abstract. It tackles the requirement for comprehensive conservation policies at local, regional, and global stages, highlighting the significance of biodiversity hotspots, habitat preservation, and restoration projects. Significant risks to plant variety are noted, including invasive species, habitat loss, climate change, and human activity. The significance that botanical gardens, seed banks, and ex situ conservation techniques have in protecting endangered plant species is also covered in the abstract. Furthermore, the significance of community engagement, education, and awareness campaigns is emphasized as crucial elements for achieving favorable conservation results.Plant variety can be preserved for future generations by implementing effective conservation policies that include scientific research, policy formulation, and community engagement. The urgency of action and cooperation among stakeholders is highlighted in this abstract in order to protect plant diversity and guarantee the sustainability of ecosystems on a global scale.

Keywords: Plant Diversity, Conservation, Biodiversity Hotspots, Habitat Preservation, Climate Change, Botanical Gardens, Community Engagement.

Introduction: Importance of Plant Diversity Conservation : Global ecosystem health and function depend critically on plant diversity. It includes genetic diversity within species, the range of plant species, and the variety of environments in which plants are found. Plant diversity conservation initiatives are crucial for a number of reasons(et al., 2016).

First and foremost, plants are essential to ecological processes because they are primary producers and the base of food webs(Cirtwill et al., 2018). They support other creatures and preserve ecosystem services that humans depend on by helping with nutrient cycling, soil formation, and water regulation.

Second, people gain much from the diversity of plants, both directly and indirectly. Numerous plant species provide raw materials for numerous industries as well as food, medicine, and shelter. Additionally, a variety of plant communities provide resistance to climatic shifts including fluctuating climates and disease outbreaks, protecting ecosystems and maintaining human health.

Moreover, plant diversity is valuable in and of itself since it is the outcome of millions of years of evolutionary history. The distinctive characteristics and adaptations of every species add to the complexity and beauty of the natural world.

However, there are never-before-seen challenges to plant diversity, such as overexploitation, invasive species, pollution, climate change, and habitat destruction(Atkins et al., 2018). The global loss of plant species and their habitats has been accelerated by these dangers, which are made worse by human activity.

Thus, maintaining plant diversity is critical to maintaining ecosystems, ensuring the provision of vital ecosystem services, and ensuring biodiversity is preserved for future generations. To create and carry out successful conservation strategies, interdisciplinary approaches involving scientists, decision-makers, conservationists, local communities, and other stakeholders are needed. Understanding the value of preserving plant diversity will help us work toward a sustainable future in which ecosystems flourish and people live in harmony with the natural world.

Understanding Biodiversity Hotspots and their Significance: Biodiversity hotspots are areas with exceptionally high diversity levels of both plants and animals, frequently accompanied by notable endemism (species that are unique to Earth). These hotspots are regions of significant ecological and evolutionary significance that were discovered in the 1980s by experts such as Norman Myers(Sobti et al., 2022). Although they usually only occupy a small amount of the planet's area, they are home to a disproportionately high share of its biodiversity.

A region's level of species richness and the degree of threat to its environment are the two primary factors used to designate it as a biodiversity hotspot. An area must have

lost at least 70% of its natural habitat and have at least 1,500 endemic (species found nowhere else) vascular plant species in order to be classified as a hotspot. These standards aid in prioritizing areas that require conservation actions the most immediately.

Because they serve as repositories of biological diversity and evolutionary history, biodiversity hotspots are important(Hopper t al., 2016). These areas frequently include rare evolutionary lineages that have developed independently over millions of years, giving rise to unusual and occasionally extremely specialized plant and animal life. Maintaining the planet's overall genetic variety and evolutionary potential depends on protecting biodiversity hotspots.

Furthermore, hotspots for biodiversity offer crucial environmental services that promote human well-being. They pollinate crops, clean the air and water, control climate, and supply local and global populations with resources like food, medicine, and lumber.

Hotspots for biodiversity conservation offer opportunities as well as obstacles. Many hotspots face serious challenges from human activity despite their ecological significance, such as pollution, overuse of natural resources, deforestation, habitat destruction, and climate change. On the other hand, the designation of these regions as hotspots has prompted global conservation efforts and financing programs meant to preserve and replenish their biodiversity(Zhang et al., 2017).

Conservationists may make the most of their limited resources and address the pressing need to safeguard Earth's most ecologically rich and vulnerable places by concentrating their efforts on biodiversity hotspots. Protecting hotspots can also act as a springboard for more extensive conservation initiatives, supporting the preservation of interrelated ecosystems and the resilience and health of the planet as a whole.

Threats to Plant Diversity: Climate Change, Habitat Loss, and Invasive Species

There are several threats to plant diversity, which is crucial for the stability of ecosystems and the welfare of humans. The most important ones include invasive species, habitat loss, and climate change. The plant populations, ecosystems, and the services they provide are seriously threatened by these dangers.

1. **Climate Change:** Global warming, mostly caused by human activities like deforestation and the combustion of fossil fuels, is changing patterns of precipitation and temperature. These modifications have the potential to alter plant life cycles, reorganize plant distribution, and intensify and increase the frequency of extreme weather events including storms, floods, and droughts(Espeland et al., 2018). As a result, a lot of plant species could find it difficult to change with their surroundings or to travel quickly enough to live. Furthermore, disease outbreaks and habitat degradation are two further risks that climate change can intensify, further jeopardizing the diversity of plants.
2. **Habitat Loss:** Plant species decline and extinction are primarily caused by habitat loss, which is brought on by human activities including infrastructure development, logging, urbanization, and agriculture(Tan et al., 2022). Plant populations become fragmented and isolated when their native habitats are transformed into industrial zones, agricultural fields, or urban areas. Because fragmentation decreases genetic diversity and restricts gene flow among populations, it increases susceptibility to random occurrences and environmental changes. Furthermore, the disruption of biological processes like pollination and seed dissemination caused by habitat loss puts plant diversity and ecosystem functioning at much greater risk.
3. **Invasive Species:** Non-native species that have been purposefully or unintentionally brought into unfamiliar settings are known as invasive species(Padayachee et al., 2017). They have the power to displace native plants for resources, impede biological processes, and change entire ecosystems. Native species can be displaced and monocultures created by invasive plants, which can grow swiftly and take over an area. In addition, they could change the hydrological cycles, fire patterns, and soil chemistry, further altering ecosystems and decreasing the diversity of plant life. Furthermore, when invading plants hybridize with native species, local adaptations are lost and genetic contamination occurs.

Figure 1 : Threats to Plant Diversity

Conservation Strategies: Habitat Preservation and Restoration Initiatives: Two important conservation tactics for preserving and increasing plant diversity are habitat restoration and preservation. These strategies emphasize preserving natural habitats and stopping habitat degradation in order to promote thriving ecosystems and guarantee plant species' existence.

1. **Habitat Preservation:** Preserving natural regions from human interference and land-use conversion is known as habitat preservation. The objective of this approach is to preserve whole ecosystems and stop additional biodiversity loss(Strassburg et al., 2019). Native flora and animals

depend on protected areas like national parks, wildlife reserves, and conservation easements as vital havens. Conservationists can preserve natural processes, preserve plant diversity, and protect ecosystems by establishing and maintaining protected areas. Land-use planning, zoning laws, and environmental rules may also be used in habitat preservation initiatives to prevent habitat degradation and fragmentation in unprotected areas.

2. **Habitat Restoration:**Restoring damaged ecosystems and improving their ecological integrity and functionality are the main goals of habitat restoration(Alexander et al., 2016). A variety of tasks are included in this strategy, such as revegetation, reforestation, erosion management, and wetland restoration. Projects aimed at restoring or rebuilding natural habitats also seek to support the recovery of native plant groups and biological processes. Replanting native plants, eliminating invasive species, and returning important species to damaged areas are common steps in restoration projects. Conservationists can support vulnerable plant species, increase ecosystem resilience, and improve overall ecosystem health by restoring habitat diversity and structure.

Initiatives aimed at preserving and restoring habitat must involve cooperation from a range of stakeholders, including local communities, government bodies, nonprofits, and landowners. In order to evaluate conservation outcomes, determine restoration priorities, and improve conservation measures over time, these activities may also benefit from scientific research, monitoring, and adaptive management techniques(Reside et al., 2018).

Furthermore, the efficiency and durability of habitat preservation and restoration initiatives can be improved by integrating traditional ecological knowledge and involving local populations(Haq et al., 2023). Through the promotion of intact ecosystems' worth and management, conservationists can garner broader support for habitat conservation and restoration initiatives.

Table 1 (see in last page)

Education and Community Involvement: Crucial Elements for Success: Effective conservation initiatives must include community involvement and education, particularly when it comes to the preservation of plant diversity(Boiral et al., 2017). To address conservation issues and advance sustainable practices, these tactics entail building relationships between local people, conservation organizations, and policymakers. Building support and encouraging stewardship also requires educating the public about the significance of plant diversity and conservation challenges.

1. **Building Awareness and Understanding:**Initiatives involving the community and education are meant to increase knowledge of the importance of plant diversity and the dangers it confronts. Conservationists can educate the public on the importance of plants in ecosystems, their function in delivering ecosystem services, and the effects of human activity on plant populations through workshops, seminars, outreach programs, and educational materials (Chen et al., 2018). Through fostering a greater sense of compassion and awareness for plants, these initiatives motivate people to take action in defense of and preservation of plant diversity.

2. **Fostering Stewardship and Participation:**Local communities are encouraged to participate actively in conservation efforts through community involvement (Rasoolimanesh et al., 2017). Conservationists enable people to contribute to real conservation results by enlisting community members in conservation initiatives such invasive species removal, habitat restoration, and seed gathering. Community-based monitoring programs, citizen science initiatives, and volunteer opportunities all help to further encourage stewardship and give local residents a direct opportunity to get involved in conservation efforts.

3. **Promoting Sustainable Practices:**Promoting sustainable land management techniques that aid in the preservation of plant diversity requires a strong educational component. Conservationists enable people to make decisions that limit detrimental effects on plant ecosystems by disseminating information about sustainable agriculture, land-use planning, gardening techniques, and water conservation measures (Kremsa et al., 2021). Education campaigns can also emphasize the value of native plants in gardening and landscaping, promoting the use of native species to improve biodiversity and benefit nearby wildlife.

4. **Cultivating Partnerships and Collaboration:** Developing alliances and working together with a variety of stakeholders—including corporations, NGOs, government organizations, academic institutions, and local communities—is essential to effective community engagement. Through the promotion of communication, exchange of materials, and utilization of group knowledge, these collaborations improve the efficiency and durability of conservation initiatives(Ardoin et al., 2020). Multi-stakeholder collaborative programs can handle complicated conservation concerns more thoroughly and have a greater impact.

5. **Empowering Future Generations:**Education initiatives targeting youth are essential for cultivating a culture of conservation and ensuring the long-term sustainability of plant diversity conservation efforts(Yadav et al., 2022). Environmental education programs in schools, nature-based learning experiences, and youth-led conservation projects empower young people to become advocates for plant conservation and environmental stewardship. By inspiring future generations to appreciate and protect nature, these initiatives foster a legacy of conservation leadership and action.

Conclusion: In summary, maintaining the diversity of plants is critical to both human health and the health and resilience of ecosystems. Plant populations around the world are still under danger due to threats including climate change,

habitat loss, and invasive species, which emphasizes the urgent need for action. We can lessen these risks and preserve plant diversity by implementing habitat preservation and restoration programs, creating protected areas, and enacting conservation laws.

But effective conservation initiatives need more than just government funding and scientific know-how; local communities must actively participate in and support them. In order to promote sustainable behaviors, cultivate stewardship, and increase awareness, community engagement and education are essential. We can increase the impact of our combined efforts by enabling individuals to take charge of conservation activities and fostering collaborations among various stakeholders.

In addition, sustaining a culture of conservation and guaranteeing the long-term viability of plant diversity conservation initiatives depend on funding the education of upcoming generations. We may leave a legacy of environmental stewardship that spans generations by fostering a profound respect for nature and a sense of responsibility for its preservation.

In summary, we can collaborate to protect ecosystems, maintain plant diversity, and ensure a sustainable future for all species on Earth by fusing scientific knowledge, community involvement, and public awareness. By working together, being tenacious, and having a common goal of conservation, we can make sure that our planet's richness and beauty last for many more years.

References :-

1. Alexander, S., Aronson, J., Whaley, O., & Lamb, D. (2016). The relationship between ecological restoration and the ecosystem services concept. *Ecology and society*, *21*(1).
2. Ardoin, N. M., Bowers, A. W., & Gaillard, E. (2020). Environmental education outcomes for conservation: A systematic review. *Biological conservation*, *241*, 108224.
3. Atkins, J., & Atkins, B. (Eds.). (2018). *Around the world in 80 species: Exploring the business of extinction*. Routledge.
4. Boiral, O., & Heras-Saizarbitoria, I. (2017). Managing biodiversity through stakeholder involvement: why, who, and for what initiatives?. *Journal of Business Ethics*, *140*(3), 403-421.
5. Chen, G., & Sun, W. (2018). The role of botanical gardens in scientific research, conservation, and citizen science. *Plant diversity*, *40*(4), 181-188.
6. Cirtwill, A. R., Dalla Riva, G. V., Gaiarsa, M. P., Bimler, M. D., Cagua, E. F., Coux, C., & Dehling, D. M. (2018). A review of species role concepts in food webs. *Food Webs*, *16*, e00093.
7. Corlett, R. T. (2016). Plant diversity in a changing world: status, trends, and conservation needs. *Plant diversity*, *38*(1), 10-16.
8. Espeland, E. K., & Kettenring, K. M. (2018). Strategic plant choices can alleviate climate change impacts: A review. *Journal of environmental management*, *222*, 316-324.
9. Haq, S. M., Pieroni, A., Bussmann, R. W., Abd-ElGawad, A. M., & El-Ansary, H. O. (2023). Integrating traditional ecological knowledge into habitat restoration: implications for meeting forest restoration challenges. *Journal of Ethnobiology and Ethnomedicine*, *19*(1), 33.
10. Hopper, S. D., Silveira, F. A., & Fiedler, P. L. (2016). Biodiversity hotspots and Ocbil theory. *Plant and Soil*, *403*, 167-216.
11. Kremsa, V. Š. (2021). Sustainable management of agricultural resources (agricultural crops and animals). In *Sustainable resource management* (pp. 99-145).
12. Padayachee, A. L., Irlich, U. M., Faulkner, K. T., Gaertner, M., Procheº, ª., Wilson, J. R., & Rouget, M. (2017). How do invasive species travel to and through urban environments?. *Biological invasions*, *19*, 3557-3570.
13. Rasoolimanesh, S. M., Jaafar, M., Ahmad, A. G., & Barghi, R. (2017). Community participation in World Heritage Site conservation and tourism development. *Tourism Management*, *58*, 142-153.
14. Reside, A. E., Butt, N., & Adams, V. M. (2018). Adapting systematic conservation planning for climate change. *Biodiversity and Conservation*, *27*(1), 1-29.
15. Sobti, R. C., Thakur, M., Kaur, T., & Mishra, S. (2022). Biodiversity: Threats and conservation strategies. In *Biodiversity* (pp. 1-14). CRC Press.
16. Strassburg, B. B., Beyer, H. L., Crouzeilles, R., Iribarrem, A., Barros, F., de Siqueira, M. F., ... & Uriarte, M. (2019). Strategic approaches to restoring ecosystems can triple conservation gains and halve costs. *Nature Ecology & Evolution*, *3*(1), 62-70.
17. Tan, Y. L., Chen, J. E., Yiew, T. H., & Habibullah, M. S. (2022). Habitat change and biodiversity loss in South and Southeast Asian countries. *Environmental Science and Pollution Research*, *29*(42), 63260-63276.
18. Yadav, S. K., Banerjee, A., Jhariya, M. K., Meena, R. S., Raj, A., Khan, N. & Sheoran, S. (2022). Environmental education for sustainable development. In *Natural Resources Conservation and Advances for Sustainability* (pp. 415-431). Elsevier.
19. Zhang, L., Luo, Z., Mallon, D., Li, C., & Jiang, Z. (2017). Biodiversity conservation status in China's growing protected areas. *Biological conservation*, *210*, 89-100.

Table 1 : Roles of Botanical Gardens and Seed Banks in Ex Situ Conservation Top of Form

Role	Botanical Gardens	Seed Banks
Conservation of plant	Serve as living museums, housing diverse plant collections.	Store seeds of diverse plant species for long-term conservation.
diversity	Provide habitats for rare, endangered, and threatened species.	Preserve genetic diversity, including rare and endangered taxa.
Research and education	Conduct research on plant biology, ecology, and conservation.	Facilitate research on seed physiology, germination, and storage.
	Offer educational programs, workshops, and exhibits for visitors.	Provide training on seed collection, processing, and storage.
Ex situ conservation	Serve as repositories for ex situ conservation of plant species.	Serve as repositories for ex situ conservation of plant germplasm.
	Implement breeding programs for species recovery and reintroduction.	Contribute to global conservation efforts through seed exchange.
Restoration and	Contribute to habitat restoration through plant propagation.	Provide seeds for ecosystem restoration and reforestation projects.
reintroduction	Collaborate with restoration projects to supply native plant species.	Ensure availability of plant material for ecological restoration.
Public engagement	Offer public tours, events, and outreach programs on plant conservation.	Raise awareness about the importance of seed banking for conservation.
	Engage volunteers in gardening, plant care, and restoration activities.	Engage citizen scientists in seed collection and monitoring efforts.

****

Role of Emotional Branding in Shaping Consumer Behavior in Luxury Goods Market

Dr. Preeti Anand Udaipure*

***Assistant Professor, Govt. Narmada College, Narmadapuram(M.P.) INDIA**

Abstract - This study investigates how emotional branding influences consumer behavior in the market for luxury products. It looks into how luxury firms use emotional branding techniques and how it affects consumer attitudes and perceptions of luxury goods through a mixed-methods study approach. To acquire insights into emotional branding strategies and customer emotional connections with luxury brands, qualitative methodologies are used, such as in-depth interviews with marketing professionals and focus group talks with luxury consumers. Quantitative questionnaires given to a sample of high-end customers look at their opinions on brands, personalities, buy intentions, brand loyalty, and their readiness to pay premium pricing. Regression analysis is one statistical analysis technique used to examine the connections between consumer behavior metrics and emotional branding variables. The study's conclusions deepen our knowledge of how emotions play a part in premium branding and customer decision-making.
Keywords: Emotional branding, Consumer behaviour, Luxury goods, Luxury products, Market, Consumers.

Introduction - Usually, when we hear the word "brand," we conjure up images of well-known companies, their names, trademarks, or the goods they produce. But human emotions are also concealed beneath favored brands, in addition to goods and businesses. A brand's objective is to improve the credibility and reputation of a company or individual. It is the comprehensive totality (synergy) of all the information about a product or group of items [1].

A brand is an assortment of the intellectual, emotional, visual, and cultural traits that a customer identifies with a company and the product that the brand is associated with. It could be a moniker, brand name, emblem, or different symbol. It sets one manufacturer apart from every other one in the industry.

This way, the outcome of the purchase is known ahead of time. In essence, a brand acts as a user's pre-seller of the good or service.

Older definitions of a brand have an issue since they emphasize the tangible component, or the product, which is an independent entity, whereas a brand is an intangible idea. The product is developed first, and the brand does more than just identify the company that was responsible for its creation. As a result, the idea of emotional branding has become more well-known in sales and is becoming more widely acknowledged by professionals and theorists. For the same reason, psychological jargon is now more frequently utilized in branding and marketing than numerical data. Positive reaction, emotion, and sentiment are more frequently used terms in modern marketing literature than terms like product, pricing, etc. [2].

The tools and processes needed to create a strong emotional bond between customers and the product are provided by emotional branding. It focuses on the most endearing quality of a person's nature, which is their desire to feel overwhelmed by emotions rather than just satisfy their basic requirements. The impact of the brand on the degree of senses and emotions is a prerequisite for the emotional The fashion industry is more focused than ever on the modern human being and their wardrobe requirements, which have developed into the requirement to convey a personality through attire and dressing style. A completely separate system of brands and products, particularly typical of the world of design, stands in opposition to the widespread distribution of serial manufacture and reasonable pricing. This system is known as luxury.

For a very long time, only the wealthy and aristocratic were considered to be in a state of luxury since it is typically associated with wastefulness and conceit. The 20th century saw the relative and pluralization of luxury, making it accessible to a wide range of people and tailored to their own goals. But in the new millennium, the category of luxury has shifted from being mostly economic to being more emotional. A brand's products must meet specific requirements for material value (quality, price, etc.) and non-material worth (history, distinct difference from others), in addition to requirements regarding distance from the buyer (exclusivity, scarcity).

Quality is usually the main focus of luxury goods. But a top-notch product—like a computer—isn't always a luxury item. It's not always necessary for a product manufactured by a luxury brand to be of excellent quality. Aside from that, luxury goods and luxury brands are not the same thing. For example, caviar and truffles are not associated with any particular brand. Not every premium brand is created equal. The concept of the brand and a cultural anchor, which highlights the brand's legitimacy and authenticity, ostentatiousness and prestige, and resistance to the passage of time in contrast to its market acceptance, define the luxury identity [3].

Background of the Luxury Goods Market: However old as humanity seems to be, extravagance exists. Expositions on the definition and reasons for extravagance in the public arena were first written in old Greece. However, the thought of "extravagance brands" as an unmistakable sort of marking and a social power driving style and an existence of sumptuous utilization is still somewhat new. The extravagance market didn't turn into a united monetary area headed areas of strength for by driven extravagance partnerships until the last part of the 1990s, when it developed from a star grouping of little, craftsman family-claimed organizations that put an accentuation on premium quality and the stylish worth of their merchandise. To create and protect the lavish allure of their brands, these organizations made huge interests in essential administration, item configuration, showcasing, and retail capacities [4].

In the past, tiny family-run artisan firms that were prized for their fine craftsmanship and superior products made up the market for luxury offerings. However, the luxury sector saw some significant shifts in the late 1990s and early 2000s with the rise of massive global corporations like LVMH and Richemont and the Gucci Group. Specifically, certain companies appealed to the wealthiest customer circles by highlighting their lineage and better product offerings, while others attracted middle-class customers by offering a fair price tag together with a perceived high status. Others expanded into new foreign markets in an effort to grow their clientele. As a result, the market size, product offering, and—most importantly—customer variety of the luxury industry have all grown considerably [5].

Before the phrase "luxury goods" were widely used, these businesses were recognized more for their specialized fields of competence and their well-established international reputation. Chanel and Dior were haute fashion houses that were founded in 1910 and 1946, respectively. Established in 1853, Louis Vuitton gained recognition for its luggage, while Gucci, founded in 1906, became well-known for its shoes. The brands Rolex and Mont Blanc have been well-known for luxury timepieces since 1908, Cartier has been well-known for jewelry since 1847, and Mont Blanc was founded in 1906 and is best recognized for pens.

The renowned luxury brand Hermes was founded in 1837 and has long been associated with leather items. Since 1856, Burberry has been well-known for its trench coats; Baccarat, which was founded in 1764, has been well-known for its crystal, and Christofle, which was founded in 1830, has been well-known for its silver. Due to factors including globalization, the expansion of the retail industry, and brand extension into other sectors, luxury brands have experienced tremendous growth in the previous two to three decades. Louis Vuitton, Gucci, Burberry, and Prada are just a few brands that have branched out into clothing, watches, jewelry, shoes, and eyewear. Mont Blanc now offers office supplies, cufflinks, watches, jewelry, and fragrances in addition to writing equipment. Armani has branched out into luxury real estate, hotels, and cell phones [6].

Evolution of Consumer Behavior in Luxury Consumption: A portion of the worldwide consumer industry known as the luxury goods market is made up of items and services that are thought to be of the highest caliber, rarity, and prestige and that frequently fetch high prices. Owning luxury goods has historically been seen as a sign of money, position, and cultural capital, and has been linked to privileged social classes, royalty, and aristocracy. The market for luxury products has centuries-old roots, with the artisanal talents and exquisite craftsmanship of ancient civilizations like Egypt, Mesopotamia, and China. But luxury spending really took off in Europe during the Renaissance, thanks to the establishment of upscale trade channels, the support of nobles and monarchy, and the growth of upscale workshops and artists.

The luxury goods business has grown to be a multibillion-dollar sector in the modern age, covering a wide range of product categories such as fine dining, fashion, watches, jewelry, accessories, cars, and hospitality. Renowned companies that have made a name for themselves as emblems of sophistication and luxury include Louis Vuitton, Chanel, Gucci, Rolex, Ferrari, and The Ritz-Carlton. These companies are major players in the luxury market.

The market for luxury products functions within a distinct ecosystem that is defined by elements like emotional resonance, brand prestige, and aspirational consumption. Luxury goods buyers are driven by more than just practical features; they are also influenced by abstract concepts like prestige, individuality, and self-expression. In order to develop aspirational narratives that connect with wealthy consumers on an emotional level and encourage brand loyalty, luxury firms make use of their heritage, craftsmanship, and storytelling skills. Due to the demand for luxury goods from wealthy consumers in a variety of geographical areas, such as North America, Europe, Asia-Pacific, and the Middle East, the luxury goods market is intrinsically international. Rising disposable incomes, urbanization, and a growing middle class with a taste for luxury spending have made emerging nations like China,

India, and Brazil important growth drivers for the luxury sector.

Even with its endurance, the luxury goods sector nevertheless has to contend with issues like shifting socioeconomic conditions, shifting consumer preferences, and changing retail environments. Furthermore, social media and the development of digital technology have changed the landscape of luxury marketing, posing challenges as well as opportunities for luxury companies looking to interact with tech-savvy customers in a more cutthroat market.

Trends influencing luxury brand consumption: Globalization and social assembly are two instances of the macroenvironmental factors that have impacted the acquisition of extravagance items. the making of new market specialties, a consistent expansion in the quantity of well-off shoppers, media consideration given to extravagance items, the rising acknowledgment of web-based buying, and an expansion in worldwide travel. These patterns not just assist the extravagance with marking market grow rapidly, however they likewise achieve critical changes in the cosmetics of extravagance brand crowds and, specifically, the actual brands. These trends can be broadly categorized into three groups: external to the industry, social, and cultural. We go into more depth about each of these groups below in connection to the consumption of luxury brands [12].

Trends in culture - Depicted as a continuous cycle by which provincial economies, social orders, and societies are turning out to be more coordinated through financial, social, mechanical, political, social, and different trades, globalization is a subtle peculiarity that has gathered a lot of consideration over the most recent twenty years. Globalization and multicultural influences have had a significant impact on the luxury brand sector, with customers in Asia, BRIC, CIVETS, and other developing nations showing a growing admiration for global luxury brands.

Figure 1: Projected growth of luxury brands market over the years

(Source - https://www.marketresearchfuture.com/reports/luxury-fashion-market-1770)

The buyer base for extravagance merchandise is developing progressively socially different because of this pattern, which presents new open doors as well as troubles for extravagance brand chiefs. Global customer preferences for luxury brands appear to be becoming more similar as these brands gain appeal in developing economies. Buyers today often search for high apparent notoriety, stylish worth, and an association with design and a prosperous way of life in extravagance items. Companies that are able to effectively communicate these attributes of luxury to their target audience—such as Rolls Royce in the automotive sector and Louis Vuitton and Gucci in the fashion industry—tend to rise to the top of the global hierarchy of luxury brands. However, it has been observed that recently rising markets are showing distinct patterns of luxury expenditure from more developed ones. It has been noticed that the social customs of Asian countries assume a huge part in the purposes for buyer acquisition of extravagance merchandise. Subsequently, despite the fact that shoppers might purchase the indistinguishable brands all over the place, the implications they join to them might shift [13].

Emotional branding : Building brands that straightforwardly appeal to a shopper's inner self, profound state, wants, and objectives is known as close to home marking. The way that consumers react to marketing initiatives is emotional and has several meanings. A consumer's feelings may change after purchasing a product because they now own a brand or item. A wide range of emotions are portrayed by the many components connected to the purchasing. In an effort to win over customers' hearts, sales professionals these days are also attempting to analyze customer emotions through insights into the consumer black box. Technology breakthroughs have created new opportunities in this field, which is one of the most studied areas of consumer behavior.

Role of Emotional Intelligence in Emotional Branding : The capacity for intelligent emotion is known as emotional intelligence (EQ or EI). It does not imply feeling anything. Five components make up "Emotional Intelligence," according to Dr. Daniel Goleman:

1. Self-control,
2. Empathy,
3. Social skills,
4. Motivation,
5. Self-awareness,
6. Intelligence is all dependent on cognitive capacities.

Goleman cites studies that demonstrate how different brain regions control emotional intelligence and differentiate it from general intelligence, which includes linguistic, spatial, mathematical, and cognitive reasoning skills. Sales leaders may effectively negotiate the emotions of their customers, identify and regulate their own emotions, and inspire others by recognizing and acknowledging their emotional states when they possess emotional intelligence.

Furthermore, emotional intelligence is a talent that can be developed and improved over time, in contrast to fixed

personality traits or IQ. This is explained by the brain's extraordinary ability to undergo neurogenesis, a process in which newly formed stem cells bind to already-existing cells to modify neural circuitry in reaction to emotional events. As such, those who are looking to raise their emotional intelligence—for example, SaaS clients who want to become more proficient in analytics—can observe similar increases in neural circuitry [14].

The capacity to extract knowledge from the brain's emotional regions and incorporate it in a way that makes sense with reason is essential to having true emotional intelligence. According to Daniel Goleman, emotional intelligence is made up of four main elements: relationship management, self-management, social awareness, and self-awareness.

When choosing emotionally charged things, in particular, consumers can make better selections about what to buy if they embrace emotional intelligence. These items support their immediate needs while also fostering self-awareness, social competence, self-regulation, and productive relationship management, all of which contribute to personal growth.

On the other hand, a person with low emotional intelligence could come across as conceited, haughty, or unyielding, which would hinder their ability to make decisions. As a result, developing emotional intelligence is crucial for both personal and professional decision-making, as well as for meaningful relationships that are advantageous for personal growth.

Objectives of the study:

1. To investigate the extent to which emotional branding strategies are employed by luxury brands to create strong emotional connections with consumers.
2. To examine the impact of emotional branding on consumer perceptions of luxury brands, including brand image, brand personality, and brand associations.
3. To explore the influence of emotional branding on consumer attitudes towards luxury goods, including purchase intentions, brand loyalty, and willingness to pay premium prices.
4. To identify the key emotional drivers that drive consumer engagement and loyalty towards luxury brands, such as aspiration, exclusivity, authenticity, and self-expression.

Literature Review

Godey et al. (2016) Social media marketing's effects on brand equity and customer sentiment have been lightly studied. This study inspects these linkages utilizing five spearheading extravagance brands — Burberry, Dior, Gucci, Hermès, and Louis Vuitton. This study covers holes in virtual entertainment marking writing by building a primary condition model in light of an overview of 845 Chinese, French, Indian, and Italian extravagance brand clients who follow the five brands under request via online entertainment. The exploration shows that web-based entertainment promoting influences brand inclination, devotion, and cost premium. The study examines brand social media marketing across five dimensions: engagement, trendiness, entertainment, personalization, and word of mouth. The study also shows that SMMEs improve brand equity, awareness, and image.

Hudders et al. (2013) The ever-changing nature of luxury makes it hard to define luxury brands. This paper explores consumer interpretation of premium brands to add to the literature. This article examines how people associate different traits with premium brands. An extensive study in Flemish Belgium found three dimensions to luxury brands: expressive, which refers to their uniqueness; impressive-functional, which indicates high-quality products; and impressive-emotional, which indicates exceptional visual qualities. Based on their relative weight of these criteria, this study divides luxury brand meaning-seekers into three groups: impressive, expressive, and mixed. Luxury brands are related with practical and emotional impressiveness in the impressive sector, but expressiveness rather than impressiveness in the expressive category. Thirdly, the mixed group believes that a luxury brand must be expressive and outstanding. The new study expands on previous segmentations by providing a complete segment profile. The results show that opinions fluctuate in connection to individual differences and other well-being factors including negative affect and self-esteem.

Duma et al. (2016) Luxury has always fascinated humans, and it appears to continue. Luxury changes with people's tastes and priorities in both developed and emerging nations. The consumer base, which has historically been homogenous, is now very diverse, including both the long-standing, faithful, wealthy Western consumer and the younger, more aspiring consumer who is less concerned with owning things and more interested in using them occasionally for special occasions. The unique needs of luxury enterprises and the changing marketing landscape have not yet led to revised ideas, techniques, or analytics. This report critiques luxury goods behavioral branding components and proposes future research. Addressing the lack of applicable theory, the writers use current theory, worldwide market patterns, and industry official interviews. The authors apply the social psychology-based 'brand behaviour funnel' to luxury branding to manage and analyse brand-consistent employee conduct. The concept suggests meeting three interrelated requirements for brand consistency.

Pourazad et al. (2019)to examine if brand attribute associations and emotional consumer-brand relationship (E-CBR) predict brand extension intention better with perceived fit as a moderator. Luxury brands are expressive and hedonic, thus these factors are considered. This study uses survey data from Iranian customers and covariance-based structural equation modeling to show that E-CBR increases the urge to buy a luxury brand extension. The

study also shows that E-CBR mediates the relationship between brand qualities and the propensity to buy a luxury brand extension. This study seeks to understand how E-CBR and cognitive (brand attribute associations) factors affect premium brand expansions. Perceived fit moderates the connection of brand features and the inclination to acquire a luxury brand extension, the study found. These findings illuminate crucial mechanisms that link intellectual and emotional variables, which influence buyers' intents and how they perceive premium brand expansions.

Jhamb et al. (2020) Many use expensive products to show off their wealth and accomplishment. The West is stereotypically the exclusive buyer of luxury goods. There are many studies on pre- and post-purchase behavior, but few high-quality studies on luxury brand post-purchase behavior, especially among young customers in developing markets. After a purchase, consumers' activities may reveal their brand impressions. A terrible post-purchase experience can produce post-purchase dissonance, which can damage brand perception and marketing messages. This study examines young Indian luxury goods customers' perceptions and experiences.

Research Methodology

Research design: To decide what profound marking means for extravagance merchandise purchasers' activities, this study will utilize a blended strategies research methodology that consolidates subjective and quantitative procedures.

Data collection methods: Qualitative approaches will reveal luxury firms' emotional branding strategies and major emotional drivers of consumer engagement and loyalty. To assess the efficacy of emotional branding methods, marketing executives and brand managers from selected luxury brands will be interviewed in-depth. Luxury shoppers will also participate in focus groups to explore their emotional connections to luxury brands and reasons.Emotional branding's impact on luxury goods perceptions and attitudes will be measured quantitatively. A sample of luxury consumers will be surveyed on brand image, personality, associations, purchasing intentions, brand loyalty, and readiness to pay premium pricing. Regression analysis will be used to investigate emotional branding variables and consumer behavior indicators.

Data collection tools: Merging and triangulating qualitative and quantitative data will help understand the research phenomenon. Quantitative data statistically rigor and generalize qualitative insights, whereas qualitative discoveries contextualize and explain quantitative conclusions. Data triangulation improves study validity and reliability.

Sampling strategy Qualitative research will sample luxury branding experts and customers with different demographics and purchase habits. For quantitative research, convenience sampling will gather luxury customers from diverse places to guarantee a representative sample size.

Sample size: This study will recruit qualitative luxury branding specialists via purposive sampling. Luxury brand marketers, brand managers, and industry specialists will be interviewed in-depth. To guarantee a diverse sample, luxury goods sector role and expertise will be used to choose.

Data Analysis

Table 1: Demographic data of participants

Role	Brand	Gender	Age	Region
Marketing Executive	Luxury fashion brand	Male	35	India
Brand Manager	Luxury car brand	Female	42	India
Industry Expert	Luxury jewelry brand	Non-binary	58	India
Marketing Executive	Luxury cosmetics brand	Male	30	India
Brand Manager	Luxury watch brand	Female	38	India
Industry Expert	Luxury travel brand	Non-binary	55	India
Marketing Executive	Luxury homeware brand	Male	40	India
Brand Manager	Luxury food & beverage brand	Female	45	India
Industry Expert	Luxury technology brand	Non-binary	62	India
Marketing Executive	Luxury hospitality brand	Male	32	India

Table 2: Descriptive Statistics of Brand Experience of the Respondents

Brand Name	2019 Sample (%)	2023 Sample (%)	Total (%)	Total Frequency
Mercedes	15.9	17.8	16.8	65
BMW	11.2	13.4	12.3	49
Audi	5.8	4.4	4.10	20
Chanel	11.7	12.2	11.9	47
Christian Dior	9.11	11.3	10.7	42
Gucci	10.2	9.2	9.7	38
Burberry	11.5	9.4	10.3	40
Calvin Klein	6.10	8.5	7.7	31
Hugo Boss	7.11	5.3	6.7	27
Armani	4.7	5.4	4.10	20
Ray Ban	3.6	2.3	2.9	12
Moet et Chandon	1.3	2.3	1.8	8
Ralph Lauren	2.5	1.2	1.8	8
Total	100	100	100	381

Figure 2 (see in last page)

Results: Brand choices from the 2019 and 2023 samples reveal luxury goods customer behavior's changing nature. Mercedes and BMW's long-term appeal and brand equity

are shown by their popularity. These brands' minor gain in preference implies a favorable trend in brand recognition and consumer loyalty, maybe driven by successful marketing efforts, product developments, and a perceived connection with consumer preferences and goals.

The fluctuating preferences for Hugo Boss, Ray Ban, Moet et Chandon, and Ralph Lauren show the problems luxury companies have in staying relevant and competitive in a changing market. Consumer tastes, cultural changes, and new competitors offering innovative products or services may cause these variations. Hugo Boss's 2.8 percentage point drop in preference from 2019 to 2023 may imply that the company has to rethink its positioning and marketing to appeal to modern premium buyers.The stable percentages for Audi, Gucci, and Burberry demonstrate that customers still find them appealing and relevant despite market fluctuations. To maintain stability and even develop, these businesses must stay watchful and adapt to new trends to meet changing consumer expectations.

Conclusion : Customers associate distinct personal, cultural, and social connotations with luxury brands. "Implicitly convey their own culture and way of life: hence Saint Laurent is not Chanel," asserts Kapferer, referring to various interpretations. They are more than just items; they are a benchmark for aesthetic excellence. Brands that are associated with opulence in their respective industries tend to come up in conversations about the well-to-do. Rolex watches, Louis Vuitton handbags, and Tiffany & Co. jewellery are a few of the most famous examples of this phenomenon. Many external, societal, and cultural factors have influenced the meanings of luxury brands throughout the years, prompting scholars and industry professionals to reevaluate the luxury branding paradigm centered on the consumer. As a whole, this paradigm demands that we stop trying to comprehend what luxury brands mean in the context of postmodern consumer society by looking at the brands themselves and start focusing on phenomenological experiences and socio-cultural impacts.

The changing nature of customer behavior in the luxury goods sector can be better understood by comparing brand preferences across the 2019 and 2023 samples. The long-term success of well-known brands like Mercedes-Benz and BMW is a testament to their timeless allure and solid brand equity, which are most likely driven by innovative marketing campaigns. In contrast, the difficulties encountered by luxury companies in being competitive and relevant are demonstrated by the ups and downs in consumer choice for brands such as Hugo Boss, Ralph Lauren, Moet et Chandon, and Ray Ban. Emotions play a significant part in customers' decision-making processes, and the need of appealing to their emotions in order to build brand loyalty and engagement has been highlighted in discussions on emotional branding [15]. The ability to identify, comprehend, and control one's emotions—in interpersonal relationships as well as interactions with customers—is crucial for thriving in these emotional environments.

References:-

1. Aaker, J., Fournier, S., & Brasel, A. (2004). When good brands do bad. Journal of Consumer Research, 31(1), 1-16.
2. Achabou, M. K., & Dekhili, S. (2013). Luxury and sustainable development: Is there a match?. Journal of Business Research, 66(10), 1896-1903.
3. Aggarwal, P. (2004). The effects of brand relationship norms on consumer attitudes and behavior. Journal of Consumer Research, 31(1), 87-101.
4. Aggarwal, P., Jun, S. Y., & Huh, J. H. (2011). Scarcity messages: A consumer competition perspective. Journal of Advertising, 40(3), 19-30.
5. Han, Y. J., Nunes, J. C., &Dreze, X. (2010). Signaling status with luxury goods: The role of brand prominence. Journal of Marketing, 74(4), 15-30.
6. Hansen, J., & Wänke, M. (2011). The abstractness of luxury. Journal of Economic Psychology, 32(5), 789-796.
7. Godey, B., Manthiou, A., Pederzoli, D., Rokka, J., Aiello, G., Donvito, R., & Singh, R. (2016). Social media marketing efforts of luxury brands: Influence on brand equity and consumer behavior. Journal of business research, 69(12), 5833-5841.
8. Hudders, L., Pandelaere, M., &Vyncke, P. (2013). Consumer meaning making: The meaning of luxury brands in a democratised luxury world. International Journal of Market Research, 55(3), 391-412.
9. Duma, F., Willi, C. H., Nguyen, B., & Melewar, T. C. (2016). The management of luxury brand behaviour: Adapting luxury brand management to the changing market forces of the 21st Century. The Marketing Review, 16(1), 3-25.
10. Pourazad, N., Stocchi, L., & Pare, V. (2019). Brand attribute associations, emotional consumer-brand relationship and evaluation of brand extensions. Australasian marketing journal, 27(4), 249-260.
11. Jhamb, D., Aggarwal, A., Mittal, A., & Paul, J. (2020). Experience and attitude towards luxury brands consumption in an emerging market. European Business Review, 32(5), 909-936.
12. Mandel, N., Petrova, P.K. and Cialdini, R.B. (2006), "Images of success and the preference for luxury brands", Journal of Consumer Psychology, Vol. 16 No. 1, pp. 57-69.
13. Nueno, J.L. and Quelch, J.A. (1998), "The mass marketing of luxury", Business Horizons, Vol. 41 No. 6, pp. 61-68.
14. Koveshnikov, A., Wechtler, H. and Dejoux, C. Cross-cultural adjustment of expatriates: The role of emotional intelligence and gender. Journal of World Business 49 (2014) 362-371.
15. Kapferer, J.N. (2012), "Abundant rarity: the key to luxury growth", Business Horizons, Vol. 55 No. 5, pp. 453-462.

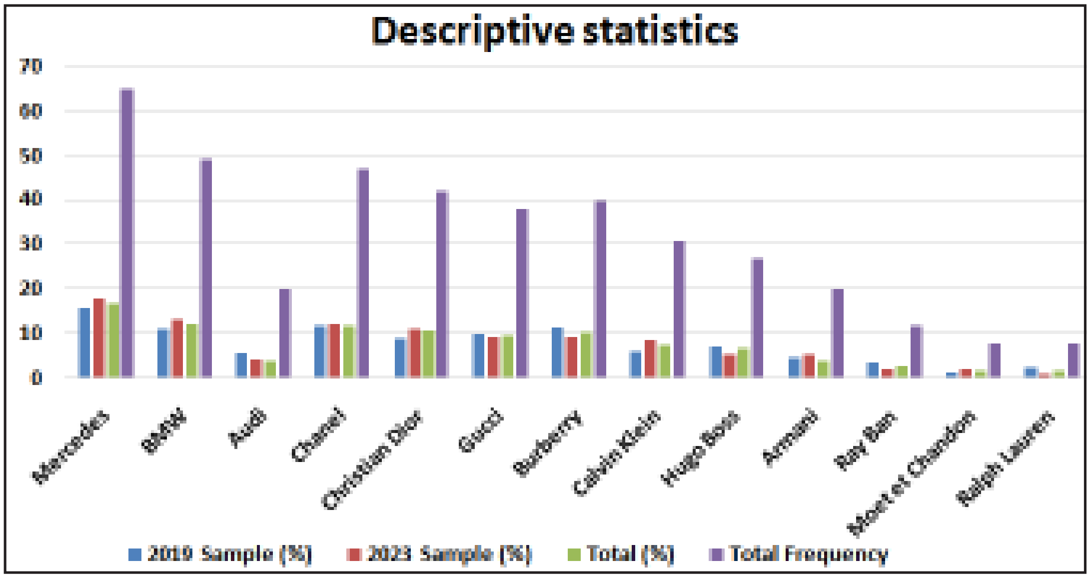

Figure 2: Graphical representation of descriptive statistics

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

सुविधायुक्त उत्सव आयोजन का पर्याय - इवेंट मेनेजमेंट

डॉ. कलिका डोलस*

* प्राध्यापक (गृहविज्ञान) शासकीय कन्या महाविद्यालय, सीहोर (म.प्र.) भारत

शब्द कुंजी – उत्सव, समारंभ, आयोजन, प्रबंधन।

प्रस्तावना – भारत एक उत्सवप्रिय देश है। भारतवर्ष में प्रतिवर्ष/प्रतिमाह कोई ना कोई बड़ा उत्सव होता है एवं माह में भी अनेक छोटे-मोटे उत्सव होते हैं। उत्सवों में भी प्राचीन भिन्नता देखने को मिलती है। भारतीय जनता धार्मभीरू है। इसलिए हर धर्म में अनेक उत्सव होते हैं जिनमें से हिंदू धर्म में तो प्रकृति के बदलते स्वरूप के साथ-साथ विभिन्न उत्सवों का आयोजन होता है। जिसे भारतीय जनमानस पूरी श्रद्धा एवं उत्साह के साथ मनाता है। साथ ही हिंदू धर्म में मानव के जन्म से मृत्यु तक 16 संस्कार बताएं गए हैं, जिनका आयोजन करना ही हर हिंदू परिवार का कर्तव्य है। यह सभी पर्व या उत्सव देश की संस्कृति एवं समृद्धि का भी प्रतीक है। त्यौहारों से जीवन की नीरसता दूर होकर उल्लास का संचार होता है। त्यौहार या उत्सव अपने आप में पवित्रता व सात्विकता की भावना को संजोए हुए रहते हैं, जिससे समाज में भी पवित्रता का वातावरण बनता है एवं असामाजिक कार्यों में कमी आती है। उत्सव के बहाने मिलने जुलने से आत्मीयता बढ़ती है एवं राग द्वेष मिटते हैं जिससे दुर्भावना में कमी आती है एवं सभी जन हमारे अपने हैं यह भावना विकसित होती है अत: उत्सव एवं अपराध दर का आपसी संबंध है जहां अपनापन है वहां अपराध नहीं होने एवं इस अपनेपन को बढ़ाने में उत्सवों का विशेष योगदान रहता है।

युग परिवर्तन भी इन उत्सवों के लिए कोई मायने नहीं रखते तभी तो आज भी सभी उत्सव उसी पुरानी परंपरा एवं आनंद तथा एकता के साथ मनाए जाते हैं, जैसे हमारे दादा-दादी, नाना नानी मानते थे। परिवर्तन आया है तो महज उत्सव मनाने के तरीकों में। प्राचीन समय में संयुक्त परिवार और बड़े-बड़े घर हुआ करते थे। मुख्य घर के आगे पीछे बरामदा एवं आंगन हर घर की शान हुआ करते थे। अक्सर उत्सवो का आयोजन यहीं हुआ करता था जिसमें 25-30 लोगो के समाया जाना आम बात थी। सारे तीज त्यौहार उत्सव घरों में ही आयोजित हो जाते थे केवल विवाह आदि जैसे बड़े उत्सवों के लिए ही अलग स्थान की व्यवस्था करनी होती थी। परंतु शहरीकरण एवं औद्योगिक विकास तथा बदलते सामाजिक परिवेश में परिवार छोटे होते गए। पहले घरों का आकार छोटा होता गया, फिर घरों से आंगन नदारद हुए, फिर गाज गिरी बरामदों पर। घर से बरामदे भी गायब हो गए। शहरों में बढ़ते औद्योगिकीकरण एवं शहरीकरण ने स्थिति को और बिगाड़ दिया। शहरों में बढ़ती जनसंख्या की आवासीय आवश्यकता को पूर्ण करने हेतु घरों के आकार में कटौती की गई एवं निरंतर कटौती के फल स्वरुप जन्म दिया बहुमंजिला इमारत का। जिसमें ना बरामदा था ना ही आंगन, यहां तक की प्रसाधान सुविधाएं भी घर के अंदर होने लगी। मनुष्य ने अपनी निवासीय आवश्यकता में तो परिवर्तन एवं समायोजन कर लिया परंतु उसका जो उत्सव प्रेम था वह कम नहीं हुआ।

इवेंट मैनेजमेंट की आवश्यकता:

1. घरों में स्थान का अभाव - समस्या उत्पन्न हुई उत्सवों के आयोजन हेतु स्थान उपलब्ध होने की एवं इसलिए इवेंट मैनेजमेंट अवधारणा का जन्म हुआ।
2. गृहणी के कामकाजी होने से एक और समस्या उत्पन्न हुई की इस प्रकार के आयोजन के लिए गृहणी के पास समय उपलब्ध नहीं था क्योंकि उसका अधिकांश में अपने कार्य स्थल पर व्यतीत हो जाता था।
3. शेष समय में दिनभर के कार्यों से वह शारीरिक एवं मानसिक रूप से इतनी थक जाती है कि इन सभी उत्सवों के आयोजन के लिए उसके पास ताकत नहीं बचती।
4. प्राचीन समय में लोगों की आर्थिक स्थिति कुछ अच्छी नहीं थी इसलिए भी उत्सवों का आयोजन घरों में ही हो जाता था।
5. प्राचीन समय में दिखावे के लिए उत्सव नहीं मनाए जाते थे परंतु वर्तमान में अपने दिखावे की प्रकृति के चलते भी उत्सव बड़े पैमाने पर आयोजित होते हैं।
6. जनता की क्रय शक्ति बढ़ गई है।
7. सामाजिकता में कमी के कारण केवल उत्सव का आयोजन ही एकमात्र ऐसा साधान बचता है जब थोड़ी सामाजिकता निभाई जा सकती है।

ऐसे ही अनेक कारणों से उत्सवों के आयोजन के विकल्प के रूप में हमारे सामने आया **(इवेंट मैनेजमेंट)** अर्थात उत्सवों का आयोजन संस्था के माध्यम से करवाना जिसमें पारिवारिक सदस्यों को कार्य में लगना नहीं पड़ता तथा वह भी अन्य मेहमानों या आगंतुकों की तरह ही उत्सव का पूर्ण आनंद ले सकते हैं।

इवेंट मैनेजमेंट- अर्थात अपने स्वयं के उत्सवों का आयोजन किसी संस्था या अन्य व्यक्ति के माध्यम से करवाना, जिसके लिए आपको एक निश्चित धनराशि का भुगतान करना होता है।

इवेंट मैनेजमेंट के प्रकार - इवेंट प्रबंध के अनेक प्रकार हैं। बाजार में वर्तमान में हर समारोह के जश्न के लिए सेवाएँ उपलब्धा हैं। जिनमें समारोह विशेष में विशेषज्ञ अपनी सेवाएँ देते हैं। उनके कौशल से वे उस समारोह को व्यक्ति विशेष अथवा परिवार के लिए यादगार बना देते हैं। कुछ समय पश्चात् इन्हें याद कर परिवार के सदस्य पुन: ऊर्जावान हो जाते हैं एवं अपनों को याद करते हैं। इवेंट प्रबंध के कुछ प्रमुख प्रकार निम्नानुसार हैं:-

1. व्यक्तिगत समारोह
2. अवकाश के समारोह
3. संस्थानिक समारोह
4. सांस्कृतिक समारोह
5. प्रदर्शन
6. उत्पाद
7. संगोष्ठी
8. सेमिनार अथवा अर्द्धदिवस आयोजन
9. कार्यशालाएँ
10. नेटवर्किंग सत्र
11. व्यापारिक मेले
12. गणमान्य आदर समारोह
13. क्रीडा गतिविधियाँ
14. सामुदायिक समारोह
15. मेले एवं त्यौहार
16. ऑफिस मीटिंग
17. कंपनी पार्टीज़

इन सभी को यदि संक्षेप में वर्गीकृत करना हो तो मोटे तौर पर निम्न भागों में विभाजित कर सकते हैं :-

1. **व्यक्तिगत समारोह** - इनमें शादी, विवाह, वर्षगाँठ, शादी की सालगिरह, किसी पार्टी अथवा परिवार में किसी व्यक्ति विषेष ने कोई उपलब्धि हासिल की हो तो उसके स्वागत एवं उसे शुभकामनाएँ देने हेतु जो समारोह आयोजित किए जाते हैं वे व्यक्तिगत समारोह (Personal Events) कहलाते हैं।

2. **अवकाश हेतु समारोह** - जैसा कि नाम से स्पष्ट होता है। इसके अन्तर्गत अवकाश के समय को आनंदपूर्वक उपयोग करने हेतु समारोह आयोजित किए जाते हैं। जैसे - पिकनिक, क्रिसमस, शीतकालीन अवकाश, ग्रीष्मकालीन अवकाश आदि हेतु पार्टी का आयोजन किया जाना है।

3. **संगठनात्मक समारोह** - इसके अन्तर्गत सभी ऑफिशियल समारोह का समावेश हो जाता है। जैसे सेमिनार, कार्यशालाएँ, ऑफिस मीटिंग्स, नेटवर्किंग सत्र, संगोष्ठी, प्रदर्शनी, उत्पादन का परिचय (Product Launch) आदि समारोह शामिल होते हैं।

4. **सांस्कृतिक समारोह** - इसके अन्तर्गत सभी सांस्कृतिक समारोह यथा, वार्षिकोत्सव, युवा उत्सव, 15 अगस्त, 26 जनवरी गणतंत्र दिवस समारोह, स्नेह सम्मेलन, पूर्वछात्र सम्मेलन आदि का समावेश किया जा सकता है।

5. **विशेष समारोह** -जैसे क्रीड़ा गतिविधियों का आयोजन, सामुदायिक समारोह, मेले, व्यापारिक मेले, सामुदायिक समारोह आदि समावेश किया जाता है।

इवेंट प्रबंध के चरण- वैसे तो इवेंट प्रबंध की सफलता व्यक्ति विशेष के कौशल एवं प्रबंधक की क्षमता पर निर्भर करता है, जैसे बिना किसी प्रशिक्षण के हमारे परिवार की बुजुर्ग महिलाएँ परिवार में होने वाले किसी भी छोटे अथवा बड़े समारोह, उत्सवों का बहुत ही अच्छा प्रबंधन कर लेती थीं, परंतु जिसमें इस प्रकार का कौशल न हो वे भी इवेंट प्रबंध के चरणों को अपनाकर एवं सीखकर आवश्यक कौशल विकसित कर सकती हैं जो निम्न प्रकार है:-

1. **समारोह के उद्देश्य को समझना** - समारोह किस उद्देश्य से किया जा रहा है, सर्वप्रथम यह समझना आवश्यक है जैसे विवाह समारोह हो तो वहाँ रोमांटिक थीम ली जा सकती है। छोटे बच्चो की बर्थडे पार्टी का आयोजन हो तो वहाँ कार्टून केरेक्टर्स एवं डार्क कलर में सजावट की जा सकती है। धार्मिक आयोजन हो तो आध्यात्मिक गुरु आदि की तस्वीर एवं प्रेरणास्पद वचनों की तख्तियाँ लगाकर सजावट की जा सकती है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण लिए जा सकते हैं। अतः सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि किस उद्देश्य से समारोह आयोजित किया जा रहा है।

2. **दर्शक/श्रोता को जानें** - किस वर्ग विशेष के श्रोता/दर्शकों के लिए समारोह का आयोजन किया जा रहा है, यह जानना सफल इवेंट प्रबंधन का दूसरा महत्वपूर्ण चरण है। आयु विशेष के दर्शकों के अनुसार उनकी रुचि को ध्यान में रखकर आयोजन किया जाना आवश्यक है। बच्चे, वयस्क अथवा वृद्ध, टारगेट ऑडियंस कौन हैं इसको सोचकर उस अनुसार शोरगुल का वातावरण अथवा प्राकृतिक शांत वातावरण क्रिएट किया जा सकता है। इसी प्रकार दर्शक वर्ग ग्रामीण है या शहरी, मध्यम वर्ग है, उच्च मध्यम वर्ग है अथवा उच्च वर्ग है इसका भी ध्यान रखना भी आवश्यक है। दर्शक अथवा श्रोता परम्परा से स्नेह रखने वाले हैं अथवा आधुनिकता को महत्व देते हैं यह जानना भी उपयोगी होता है।

3. **उचित स्थान का चयन** - उचित स्थान का चयन उचित इवेंट मैनेजमेंट के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उदाहरणार्थ बच्चों के लिए यदि किसी समारोह का आयोजन किया जाना हो तो वह सदैव भूतल पर करना चाहिए। बच्चे स्वभाव से ही चंचल होते हैं एवं जन्मदिवस आदि पर उनमें अतिरिक्त उत्साह का संचार हो जाता है। ऐसी स्थिति में प्रथम तल अथवा अन्य उच्च स्थानों पर किसी आयोजन को करना हादसे को निमंत्रण देना हो सकता है। बुजुर्गों के लिए किसी समारोह व आयोजन करना हो तो भीड़-भाड़ में दूर शांत एवं प्राकृतिक स्थल का चुनाव किया जा सकता है। जैसे किसी फॉर्म हाउस पर आयोजन। नवविवाहित जोड़े के लिए किसी रोमांटिक अथवा ऐतिहासिक स्थल का चयन किया जा सकता है। कारपोरेट मीटिंग के लिए, किसी ऐसे होटल का चुनाव किया जा सकता है, जहाँ उच्च तकनीकी सुविधाएँ भी हों एवं प्रायवेसी भी हो।

4. **सही एवं सटीक समय** - समय के दृष्टिकोण से इवेंट प्रबंधन करते समय इन सबकी दिनचर्या का ध्यान रखना अनवार्य है, कामकाजी महिलाएँ हैं, गृहिणी है, बच्चे हैं या वयस्क अथवा बुजुर्ग पुरुष निर्धारण करना अत्यावश्यक है। सभी की दिनचर्या अलग-अलग होती है। जैसे गृहिणी का सुबह एवं शाम का समय अत्यधिक व्यस्त समय होता है। दोपहर में उसे कुछ खाली वक्त मिल जाता है। ऐसी स्थिति में यदि गृहिणियों के लिए किसी पार्टी का आयोजन करना हो तो दोपहर का समय उपयुक्त रहेगा। इसी प्रकार बच्चों हेतु रात्रि के पूर्व आयोजन कर लेना चाहिए। सुविधानुसार अवकाश के दिन का भी उपयोग किया जा सकता है। जैसे इतवार को अधिकांश व्यक्तियों को अवकाश रहता है।

5. **योजना की रूपरेखा एवं समय सीमा का अनुपालन** - पूर्ण इवेंट किस प्रकार से सम्पन्न होगा, इसकी रूपरेखा बनानी आवश्यक है। प्रबंध के चरणों के अन्तर्गत हमने पढ़ा है कि प्रबंध की सफलता का प्रथम चरण नियोजन या योजना बनाना होता है। क्यों, कैसे, कब, कौन इन सभी प्रश्नों का उत्तर योजना में होना चाहिए। जिसमें कैसे यह पूर्ण कार्यक्रम क्रियान्वित होगा। इस पर बल देने की आवश्यकता है। कार्यक्रम कब क्रियान्वित करना

है तथा कौन–कौन इसमें शामिल होगा। कार्यक्रम की सफलता के लिए कार्य विभाजन उत्तम तकनीक है। कार्य विभाजन के अनेक लाभ हैं। एक अकेले व्यक्ति पर काम का बोझ नहीं पड़ता। अधिक लोगों की सहभागिता से वर्कलोड कम हो जाता है। सभी के सुझाव प्राप्त होते हैं। सदस्यों में काम के प्रति अपनत्व की भावना आती है। सदस्यों में जिम्मेदारियों का विकास होता है। अत: इवेंट मैनेजमेंट के अगले चरण के रूप में योजना की पूर्ण रूपरेखा तैयार कर लेनी चाहिए एवं यह रूपरेखा केवल मस्तिष्क में न तैयार कर लिखित रूप में कागज पर उतार लेनी चाहिए, जिससे उसके नियंत्रण में आसानी होती है।

योजना की रूपरेखा निर्धारित कर लेने के पश्चात् समय सीमा भी निश्चित की जानी चाहिए। समय पश्चात् होने वाला कोई भी काम चाहे कितना ही अच्छा क्यों न हो जाए कोई महत्व नहीं रखता। अत: योजना कब तक क्रियान्वित हो जाएगी इसकी समय–सीमा निर्धारित कर ली जानी चाहिए एवं समय–सीमा निर्धारण पश्चात् उसका अनुपालन भी उतना ही आवश्यक है। इच्छित परिणाम तभी प्राप्त हो सकते हैं जब दोनों ही स्तरों पर नियंत्रण किया जाए। नियंत्रण के अभाव में योजना निष्प्रभावी हो जाती है एवं वांछित लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो पाती। इसी प्रकार समय–सीमा से अधिक समय लगने पर भी योजना निष्प्रभावी हो जाती है एवं लक्ष्य प्राप्ति में बाधा उपस्थित होती है।

6. दर्शकों/श्रोता को आकर्षिक करने वाली विषय–सामग्री विकसित करना – किसी भी कार्यक्रम की सफलता बहुत कुछ उसके सूत्रधार (Anchor) पर निर्भर करती है। सूत्रधार की वाणी Body Language संवाद अदायगी आदि से श्रोता/दर्शक प्रभावित होने चाहिए। इसके साथ ही दर्शक श्रोता को आकर्षिक करने हेतु आवश्यक विषय–सामग्री को इवेंट मैनेजर को विकसित कर लेना चाहिए। इस हेतु आवश्यक पारिवारिक जानकारी अथवा कार्यस्थल से संबंधित जानकारी अथवा व्यक्ति विशेष की रुचि कार्यदक्षता, योग्यता, क्षमता आदि की जानकारी एकत्र कर उससे संबंधित विषय सामग्री विकसित की जा सकती है। श्रोता /दर्शक को प्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित (Involve) करके भी इस आकर्षण को बरकरार रखा जा सकता है।

7. संदेश पहुँचाना – हर इवेंट/समारोह, अंत में कुछ संदेश पहुँचाना चाहता है, जो समारोह आयोजित कर रहा है वह भी एवं जो समारोह आयोजित करवा रहा है वह भी अपने–अपने स्तर पर इस समारोह के माध्यम से कुछ संदेश पहुँचाना चाहते हैं। वैसे तो समारोह करवाने वाला भी अपने संदेश पहुँचाने की जिम्मेदारी इवेंट मैनेजर पर ही डाल देता है। उसके माध्यम से ही वह अपने अतिथियों तक और अधिक अच्छे तरीके से अपनी बात (अपना संदेश पहुँचा सकता है क्योंकि वह इस काम में आयोजक से ज्यादा निपुण होता है।) इवेंट मैनेजर को चाहिए कि वह ऐसे मैसेज अथवा संदेश का डिजाइन अच्छी से तैयार कर ले जिसे वह अपने समारोह के माध्यम से लोगों के बीच पहुँचाना चाहता है एवं प्रभावी तरीके से अपनी बात रखे जिससे लोगों में उसकी बात का असर पहुँचे एवं वह अपने संदेश पहुँचाने में सफल हो सके।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इन चरणों को अपनाकर एक सफल इवेंट प्रबंधक बना जा सकता है। उपरोक्त चरण अत्यन्त प्रभावी है, इन्हें अपनाकर किसी भी समारोह को सफल बनाया जा सकता है।

एक सफल इवेंट प्रबंधक को आकर्षक एवं सुरूचिपूर्ण दिखाना चाहिए। किसी थीम अथवा अवधारणा से प्रारंभ करना चाहिए। उस अनुसार सजावट करनी चाहिए। एक स्पष्ट ले–आउट बनाना चाहिए एवं अतिथियों की आवश्यकतानुसार, माँग अनुसार उसे प्रस्तुत करना चाहिए।

परिभाषा – इवेंट प्रबंधन किसी विशेष लक्षित श्रोता के लिए किसी व्यवसाय या केंद्रीभूत समारोह के संयोजन की प्रक्रिया है। इसमें संगीत समारोह, फैशन प्रदर्शनी, विवाह समारोह, थीम पार्टी, कारपोरेट, सेमिनार, उत्पाद प्रक्षेपण जैसे कार्यक्रमों की दृश्यांकन, संकल्पना, नियोजन, बजटीकरण, संयोजन तथा निष्पादन शामिल है। अन्य शब्दों में छोटे या बड़े पैमाने पर व्यक्तिगत या कारपोरेट घटनाओं जैसे त्यौहारों, सम्मेलनों, समारोहों, विवाहों, संगीत समारोह, जन्मदिन, विवाह वर्षगाँठ, रिटायरमेंट पार्टी, औपचारिक पार्टियों या सम्मेलनों के निर्माण और विकास के लिए परियोजना प्रबंधन का अनुप्रयोग है। इसमें ब्रांड का अध्ययन करना, उसके लक्षित दर्शकों की पहचान करना, घटना की अवधारणा एवं रूपरेखा तैयार करना एवं वास्तव में कार्यक्रम प्रारंभ करने से पहले तकनीकी पहलुओं का समन्वय करना सम्मिलित है। आयोजन की योजना बनाने और समन्वय करने की प्रक्रिया को आमतौर पर घटना नियोजन के रूप में जाना जाता है एवं इसमें बजट, शेड्यूलिंग, साइट चयन, आवश्यक परमिट प्राप्त करना, परिवहन एवं पार्किंग की योजना बनाना, वक्ताओं एवं मनोरंजनकर्ताओं की व्यवस्था करना, सजावट करना, दुर्घटना सुरक्षा, खान–पान, भोजन व्यवस्था आदि का समन्वय करना शामिल होता है। इवेंट इंडस्ट्री में अब ओलम्पिक से लेकर बिजनेस ब्रेकफास्ट मीटिंग्स तक सभी साइज़ के इवेंट सम्मिलित हैं।

कई उद्योगपति एवं मशहूर हस्तियाँ, धर्मार्थ संगठन एवं रुचि समूह अपने लेबल का विपणन करने, व्यवसायिक संबंध बनाने, धन जुटाने या उपलब्धि का जश्न मनाने के लिए भी कार्यक्रम आयोजित कराते हैं।

उपसंहार– आधुनिक युग में इवेंट मैनेजमेंट तेजी से उभरता करियर ऑपशन भी है। मैनेजमेंट के विद्यार्थियों में यह एक नई लाइन है जिससे युवाओं का आकर्षण देखा जा सकता है। हम आए दिन बड़े–बड़े आयोजनों की खबरे पढ़ते रहते है इस तरह के भव्य आयोजनों की सफलता के पीछे जिन लोगों की बड़ी मेहनत हाती है वे इवेंट मेनेजर कहलाते है। इस क्षेत्र में वर्तमान में रोजगार की अनेक संभावनाएं हे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. अहा जिंदगी – फरवरी 2017
2. इंडिया टूडे – मई – 2015
3. स्वयं का शोध

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

मीडिया एवं महिला सशक्तिकरण

डॉ. नसीम अख्तर*

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर (समाजशास्त्र) श्रीमती बी0डी0 जैन कन्या महाविद्यालय, आगरा (उ.प्र.) भारत

प्रस्तावना – आजकल महिलाओं के लिए 'कल्याण', 'उत्थान', 'विकास' और 'जागृति' जैसे शब्दों की अपेक्षा 'सशक्ता' शब्द का प्रयोग बडे पैमाने पर किया जा रहा है। 'सशक्तता' शब्द में 'शक्ति' शब्द समाहित है जिसका आशय ताकत से है तथा साथ ही शक्ति संतुलन को बदलने से हैं।

इस प्रकार सशक्तता का तात्पर्य उस शक्ति से है जिसके द्धारा समाज में व्याप्त शक्ति संतुलन को बदला जा सके। इस शक्ति संतुलन को बदलने से हमारा तात्पर्य है कि जो शक्ति, चाहे वो सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त हो, पहले पुरूषों के हाथों में भी अब उस पर महिलाओं का भी अधिकार हो। इस सशक्तता का उद्देश्य मर्दो को कमजोर करना नहीं बल्कि महिलाओं को इस प्रकार सशक्त करना है ताकि वे प्रत्येक क्षेत्र में समानता का अधिकार प्राप्त कर सकें।

संक्षेप में महिला सशक्तिकरण का अभिप्राय है महिला अपने आप को शक्तिशाली बनाए। बाह्य घटक जैसे सरकारी, गैर सरकारी संस्थायें तथा सवेंदनशील पुरूष भी इस प्रयत्न में उसका साथ दे सकते हैं महिला सशक्तिकरण के लिए यह भी आवश्यक है कि उन्हें कानूनी सहायता तथा सूचना और प्रचार माध्यम की सुविधाओं की भी उचित मात्रा में उपलब्धि हो। मीडिया का अर्थ है संचार का माध्यम, जिसे हम देश की आँखे एवं देश का पथ प्रदर्शक कहते हैं।

मीडिया के प्रकार

(i) प्रिन्ट मीडिया

(ii) इलेक्ट्रॉनिक मीडिया

संचार का प्रथम माध्यम समाचार पत्र, मैगज़ीन, साप्ताहिक पोस्टर, किताबें आदि हैं। तथा दूसरा माध्यम टी0वी0, सिनेमा, रेडियो, वी0सी0आर0, कम्प्यूटर, फोन आदि इनेक्ट्रॉनिक मीडियेटर हैं।

लोकतंत्रीय शासन प्रणाली में सरकार के तीन प्रमुख अंगों व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के अतिरिक्त चौथा प्रमुख आधार स्तंभ है मीडिया। जिसमें प्रिन्ट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया दोनों सम्मिलित हैं। जनसाधारण में विभिन्न सूचनाओं का सम्प्रेषण करना, जनमत का निर्माण करना, जनता में चेतना एवं जागरुकता का विकास करना प्रेस/मीडिया का प्राथमिक लक्ष्य है। [1]

मीडिया का महत्व – मीडिया अर्थात् मीडियम या माध्यम। मीडिया के महत्व का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ कहते हैं। समाज में मीडिया की भूमिका सूचना वहन की होती है। वह समाज के विभिन्न वर्गो, सत्ता केन्द्रों, व्यक्तियों और संस्थाओं के बीच पुल का कार्य करता है। आधुनिक युग में मीडिया का सामान्य अर्थ समाचार पत्र, पत्रिकाओं, टेलीविज़न, रेडियो, इंटरनेट आदि से लिया जाता है। किसी भी देश की उन्नति व प्रगति में मीडिया का बहुत बड़ा योगदान होता हैं यदि यह कहा जाये कि मीडिया समाज का निर्माण एवं पुनर्निर्माण करता है तो यह गलत नहीं होगा। इतिहास में ऐसे अनेक उदारहण मिलेंगे जिनसे सिद्ध होता है कि लोगों ने मीडिया की शक्ति एवं महत्व को पहचानकर उसे एक शक्तिशाली हथियार के रुप में प्रयोग किया है जिससे समाज में अनेक परिवर्तन हुए हैं। अंग्रेजों से देश को मुक्ति दिलाने एवं उनमें देश–भक्ति व उत्साह भरने में भी मीडिया की अहम भूमिका रही है। आज भी मीडिया की ताकत के सामने बड़े से बड़ा राजनेता, उद्योगपति सभी सिर झुकाते हैं। मीडिया का जन–जागरण में भी बहुत योगदान है। बच्चों को पोलियो की दवा पिलाने का अभियान हो या एड्स के प्रति जागरुकता का कार्य, मीडिया ने अपनी ज़िम्मेदारी पूरी तरह से निभाई है। लोगों को वोट डालने के लिए प्रेरित करना, बाल मजदूरी पर रोक लगाने के लिये प्रयास करना, धूम्रपान के खतरों से अवगत कराना जैसे अनेक कार्यो को करने में मीडिया का महत्व रहा है। मीडिया समय–समय पर नागरिकों को उनके अधिकारों के प्रति जागरुक करता रहता है। देश में भ्रष्टाचारियों पर कड़ी नजर रखता है। समय–समय पर स्टिंग ऑपरेशन कर इन सफेदपोशों का काला चेहरा दुनिया के सामने लाता है। इस प्रकार मीडिया का हमारे जीवन में बहुत महत्व है। [2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि किस प्रकार मीडिया हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग बन गया है। मीडिया ने महिलाओं के जीवन में भी महत्वपूर्ण बदलाव किये हैं। आज मीडिया के माध्यम से महिलाएं अपने अधिकारों को जानकर सशक्त हो रही हैं।

महिला सशक्तिकरण के लिए मीडिया की आवश्यकता – संविधान ने महिलाओं को पुरुषों के बराबर अधिकार दिये हैं अर्थात् महिलाएं संवैधानिक दृष्टि से अधिकार संपन्न हैं। परन्तु हम देखते हैं कि यथार्थ में वे भेदभाव, शोषण और उत्पीड़न का शिकार बनी हुई हैं। आज आवश्यकता है कि इन्हें उनके अधिकार दिलाये जायें, उन्हें शिक्षित किया जाये, स्वावलम्बी, मजबूत और जागरुक बनाया जाये। इस दिशा में सरकार ने कई योजनाएं एवं कार्यक्रम बनाये ताकि इनका कल्याण किया जाये। परन्तु ये सभी प्रयास कागजों में ही सिमट कर रह गए। जबकि इन प्रयासों को महिलाओं के बीच पहुँचाने की आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति मीडिया के माध्यम से हो सकती है। मीडिया जैसे दूरदर्शन, निजी चैनल व रेडियो के माध्यम से महिलाएं विवाह, दहेज, बलात्कार, संपत्ति अधिकार, समान वेतन, प्रसूति–सुविधा आदि के संबंध में जागरुक हो सकती हैं और हो भी रही हैं। मीडिया के माध्यम से महिलाओं को बाल विवाह अधिनियम, पत्नी के भरण पोषण या विधवा गुजारा भत्ते संबंधी कानून, महिला हिंसा कानून, गोद लेने संबंधी कानून, संपत्ति संबंधी अधिकार आदि की जानकारी प्राप्त होगी, जो उनके

जीवन को सही दिशा दे सकते हैं। मीडिया की ईमानदार प्रतिबद्धता निश्चित ही महिला सशक्तिकरण के इतिहास में एक स्वर्णिम अध्याय जोड़ सकती है।

महिला सशक्तिकरण में मीडिया की भूमिका –वर्तमान में प्रिंट, दृश्य और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में एक प्रभावी संदेशवाहक और परिवर्तनकारी एजेंट के तौर पर, अलग–थलग पड़ी वंचित महिलाओं के एक बड़े हिस्से को विकास की मुख्य धारा से जोड़ने की व्यापक क्षमता है। मीडिया ने समय, स्थान और सूचना के आदान–प्रदान की मात्रा की सीमा से बाधित हुए बगैर, परस्पर सम्प्रेषण और जुड़ाव का एक नया मार्ग खोल दिया है। मीडिया के अत्यधिक विस्तार ने अनेक लैंगिक मुद्दों को उजागर करने में मदद की है, जो कि अभी तक दुनिया के सामने नहीं आये थे। महिलाएं धीरे–धीरे ही सही पर आगे बढ़ रही हैं और अपनी आवाज उठा रही हैं। वे लैंगिक मुद्दो को नया दृष्टिकोण प्रदान कर रही हैं।

मीडिया ने महिला सशक्तिकरण के लिए बनाये जा रहे कार्यक्रमों को लोकप्रिय बनाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ऑल इंडिया रेडियो (ए0 आई0 आर0) और दूरदर्शन में महिला सशक्तिकरण शीर्ष एजेंडा रहा है। डी0डी0 नेशनल पर स्त्री शक्ति, सफल महिलाओं की सफलता की कहानियों पर प्रकाश डालती है। डी0डी0 न्यूज 'तेजस्विनी' का प्रसारण करता है, जो उदाहरणीय महिलाओं की कहानियों को प्रस्तुत करता है, जिन्होंने कभी हार नहीं मानी और अपने लक्ष्य पर पहुंची।[3]

भारत जैसे विकासशील देश में समय की सबसे महत्वपूर्ण मांग है महिलाओं के विकास और उनके सशक्तिकरण की। देश में अनेक समस्याएं हैं, इन समस्याओं का समाधान तब तक नहीं हो सकता जब तक महिलाएं सशक्त नहीं हो जातीं। संविधान ने महिलाओं को सभी तरह के अधिकार दिये हैं, इन अधिकारों को लागू करने के लिए कानून भी बना दिये लेकिन इनका लाभ वे तभी ले सकती हैं जब वे इनके संबंध में जागरुक होंगी और यह कार्य मीडिया द्वारा किया जाता है। मीडिया की भूमिका के बिना ये काम मुश्किल ही नहीं बल्कि असंभव भी है। मीडिया के माध्यम से महिलाएं जागरुक हो रही हैं। मीडिया उन्हें अपने अधिकारों एवं भूमिकाओं के बारे में सजग बनाकर उनका सशक्तिकरण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। जनसंचार के विभिन्न माध्यमों में लगातार महिलाओं से संबंधित कार्यक्रमों के प्रसारण हो रहे हैं। प्रिंट मीडिया से लेकर रेडियो और दूरदर्शन इस विषय पर काम करता रहा है, प्राइवेट चैनलों ने भी महिलाओं से संबंधित कार्यक्रमों का प्रसारण आंरभ किया और इस दिशा में काफी बदलाव हुए भी हैं। [4]

वर्तमान में संचार माध्यम महिलाओं के सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। बाल विवाह अधिनियम की बात करें या पत्नी के भरण पोषण या विधवा गुजारा भत्ते की, स्त्रियाँ जागरुक हो रही हैं। उन्हें महिला हिंसा कानून, समान वेतन कानून, गोद लेने संबंधी कानून और संपत्ति में स्त्री के अधिकार की जानकारी सहित ऐसे अनेक चीजों का ज्ञान है जो उनके जीवन का सही दिशा दे सकते हैं। अपने जीवन में विभिन्न समस्याओं को बेहतर ढंग से सुलझाने की क्षमता उनमें लगातार विकसित हो रही है। जागरुकता का अभाव उनकी उन्नति के मार्ग का रोड़ा बन रही है। वैसे देखा जाये तो मीडिया समाज के विकास में बहुत सहायक है। परंतु महिला सशक्तिकरण के संदर्भ में इसकी भूमिका सर्वोपरि है। आज समूचे विश्व में स्त्रियों का वर्चस्व बढ़ा है। प्रत्येक क्षेत्र में महिलाएं अपनी प्रतिभा दिखा रही हैं, उनकी पारिवारिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति में परिवर्तन स्पष्ट दिखाई दे रहा है। परन्तु दूसरी ओर महिलाओं के प्रति हिंसा, यौन उत्पीड़न, दहेज प्रताड़ना जैसी अनेक घटनाएं आये दिन घट रही हैं, जो पहले भी घटती आई हैं। परन्तु आज मीडिया के कारण आप और हम इन घटनाओं से रुबरु हो रहे हैं तथा मीडिया ने महिलाओं में यह चेतना जाग्रत की है कि वे इन अत्याचारों के विरुद्ध अपनी आवाज उठा रही हैं। जिसके परिणामस्वरुप सरकार को भी उनके हित के लिए कानून बनाने के लिए तत्पर होना पड़ रहा है।

महिलाएं अपने अस्तित्व के लिए सदैव से एक लंबी लड़ाई लड़ती आ रही हैं। परन्तु इस लड़ाई ने कभी आंदोलन का रुप नहीं लिया था। महिलाओं के पक्ष में आधार तैयार करने में रेडियो, दूरदर्शन, पत्र–पत्रिकाओं और सबसे अधिक समाचार पत्रों की भूमिका रही है क्योंकि यह आम आदमी तक पहुँचने का सबसे सस्ता साधन है। भारत का महिला एवं बाल विकास विभाग स्त्रियों के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर में सुधार लाने हेतु सतत् प्रयत्नशील है और योजनाएं बनाता आ रहा है। अन्य शासकीय एवं अशासकीय तथा स्वयंसेवी संस्थाएं भी इस दिशा में कार्य कर रही हैं। किन्तु जब से मीडिया इस दिशा में सक्रिय हुआ है, तभी से उल्लेखनीय परिणाम मिल रहे हैं आज सभी शासकीय योजनाओं की जानकारी दृष्य–श्रृव्य माध्यमों द्वारा प्रसारित की जाती है और उनका व्यापक प्रभाव भी स्त्री वर्ग पर पड़ रहा है। अन्त्योदय योजनाएं राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना और जननी सुरक्षा योजना सहित जाने कितनी हीं योजनओं की जानकारी आज महिलाओं को है।

सरकार महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए उनमें शिक्षा को बढ़ावा दे रही है। सरकार बालिका शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा और छात्रवृत्ति योजना के माध्यम से महिला साक्षरता बढ़ाने हेतु प्रयासरत् है। जिसमें मीडिया की अहम भूमिका है। बालिका शिक्षा संबंधी कई विज्ञापन एवं कार्यक्रम दिखाकर दूरदर्शन साक्षरता के प्रसार में सहयोग कर रहा है। कन्या भ्रूण हत्या को रोकने तथा कन्या जन्म को बढ़ावा देने में इसने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

निष्कर्ष – पिछले कुछ वर्षो से मीडिया द्वारा महिलाओं को सशक्त बनाने एवं उनके मुद्दे उठाने में मीडिया ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मीडिया ने एक ओर जहाँ महिलाओं को कई महत्वपूर्ण पद देकर उन्हें सशक्त किया है, वहीं दूसरी ओर महिलाओं से संबंधित प्रेरक कहानियों से उनमें आत्मविश्वास जाग्रत करने का कार्य भी किया है। महिलाओं पर होने वाले जुर्मों एवं अत्याचारों को मीडिया द्वारा प्रमुखता से दिखाया जाता है जिससे उन्हें देर सबेर ही सही, पर इंसाफ मिलता है। महिलाओं से संबंधित मुद्दे पहले इतने चर्चा में नहीं रहते थे जितने की आज हैं। मीडिया ने विश्व को जोड़कर किसी भी घटना को एक कोने से दूसरे कोने में पहुंचाया है। यही कारण है कि मलाला युसुफ को पहले कोई नहीं जानता था लेकिन ये मीडिया ही है, जिसने आज मलाला को विश्व प्रसिद्ध बना दिया है। मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है। जिसकी महिला सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका है। देश एवं राष्ट्र की तरक्की में मीडिया ने अहम भूमिका अदा की है क्योंकि देश की आधी आबादी को सशक्त किये बिना समाज, देश व राष्ट्र की तरक्की संभव नहीं है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. श्रीवास्तव, शमीनी, 2011, आधुनिक समाज एवं महिलाएँ, ब्लू स्टार, इंदौर, पृ0 सं0 160 – 61
2. श्रीवास्तव, मानव, 2019, योजना एवं कुरुक्षेत्र का GIST सरकारी योजनाएं, नीतियाँ एवं कार्यक्रम, दिल्ली, प्रभात प्रकाशन।
3. www.dpssharjan.com
4. सिन्हा, निभा, महिला विकास और सशक्तिकरण एवं जनमाध्यम, www.newswriters.in

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

भारतीय अर्थव्यवस्था 2024 की चुनौतियाँ

डॉ. प्रवीण ओझा *

* प्राचार्य, डॉ. बी.एल.पी. शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महू (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – सामाजिक विज्ञान की वह शाखा जिसमें धन सम्बन्धी क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है, उसे अर्थशास्त्र कहा जाता है। वस्तुओं अथवा सेवाओं का उत्पादन, वितरण, विनिमय, उपभोग आदि इसकी प्रमुखत: विषयवस्तु होती है। अर्थशास्त्र का व्यवहारिक पक्ष अर्थव्यवस्था कहलाता है। किसी विशेष क्षेत्र से संबंधित आर्थिक गतिविधियां यथा उत्पादन, उपभोग, विनिमय, वितरण, राजस्व आय, बजट, अर्थ नियोजन जैसे समस्त संबंधित आर्थिक तत्व इसमें सम्मिलित होते है। भारतीय अर्थव्यवस्था के जनक चाणक्य या कौटिल्य को माना जाता है जिनका मूल नाम विष्णुगुप्त था। चाणक्य रचित ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' में राज्य की अर्थव्यवस्था के विविध पक्षों की व्यापक मीमांसा द्वारा एक आदर्श एवं व्यवहारिक अर्थव्यवस्था का चित्र प्रस्तुत किया गया है। 2023 में जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में प्रथम स्थान पाने वाली भारत की अर्थव्यवस्था विश्व की पांचवी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। आर्थिक उदारीकरण एवं आर्थिक सुधार के खुले वातावरण में तथा गत वर्षो के ग्राम नियोजन एवं सटीक आर्थिक नीतियों के परिणामस्वरूप भारत विश्व की महान आर्थिक शक्ति के रूप में उभरकर आया है एवं विश्व अर्थव्यवस्था में भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रभाव का भी विस्तार हुआ है।

भारतीय अर्थव्यवस्था 2024 की कार्यविधि एवं व्यवहारिक स्वरूप पर देश के आर्थिक विकास एवं देशवासियों की समस्त आशाऐं टिकी हुयी हैं इसमें उन सभी का समावेश अपेक्षित है, जिन पर गत वर्ष की भारतीय अर्थव्यवस्था 2023 आधारित थी तथा जिसमें गत वर्ष विशिष्ट उपलब्धियां भी दर्ज की गयी हैं। देशवासियों की वर्तमान आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं अन्य समस्त अपेक्षाओं पर खरे उतरते हुये विकास के चक्र को सतत रूप से आबाध गति से आगे बढ़ाते रहना भी प्रासंगिक है। इस दिशा में सरकार को दृढ़ निश्चय पर आधारित प्रतिबद्धता समस्त अर्थवेत्ताओं से विमर्श, भारत एवं विश्व को गत वर्ष की अर्थव्यवस्थाओं का सूक्ष्म विश्लेषण, गहन शोध एवं लक्ष्यों की स्पष्टता जैसे सुदृढ़ आधार स्तंभों पर आधारित भारतीय अर्थव्यवस्था 2024 से राष्ट्र को अपार अपेक्षाऐं होने के कारण इसके समक्ष अनेक चुनौतियां भी हैं। वर्तमान में उपलब्ध परिस्थितियों एवं आर्थिक आवश्यकताओं के अनुरूप ऐसा सुदृढ़ नीतिगत बुनियादी ढांचा लागू किया है जो विकासशील देशों के लिए अनुकरणीय है। टिकाऊ विकास के लक्ष्य (SDG) को प्राप्त कर उसे सुरक्षित बनाये रखने की डगर भी अत्यंत कठिन है। इस क्षेत्र में विश्व के 166 देशों के मध्यम 112वे स्थान पर अवस्थित भारत ने गत वर्ष बड़ी सकारात्मक सक्रियता का प्रदर्शन भी किया है, तथापि मैन्यूफैक्चरिंग आधारित विकास की तीव्रता पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव डाल सकती है, गहन शोध एवं विभागीय सामंजस्य यहाँ उपयोगी हथियार बन सकते हैं। G-20 की अध्यक्षता में 2030 के ऐजेण्डे के विस्तार हेतु भारत के द्वारा उसके समझौतों में इन तत्वों को सम्मिलित कर पहल की है, तथापि 2024 की अर्थव्यवस्था में सहज, टिकाऊ एवं उत्तरदायी विकास हेतु ठोस नीतिगत ढांचा तैयार कर लागू किया जा रहा है।

भारतीय अर्थव्यवस्था 2023 उत्साहपूर्ण एवं उपलब्धिकारक रही है। इसमें भारत की जीडीपी का 3.73 ट्रिलियन डॉलर तक पहुँचना प्रति व्यक्ति जीडीपी 2610 डॉलर होना विश्व की औसत विकास दर मात्र 2.9 प्रतिशत रहने के बाद भी भारत की अनुमानित विकास दर 6.3 प्रतिशत रहने का अनुमान आदि तथ्य वर्ष 2024 में पूर्ण सावधानीपूर्वक संतुलित रूप से कदम आगे बढ़ाने की प्रेरणा दे रहे हैं। गत वर्ष के उपलब्धिदायक कारकों की खोज कर उनमें मजबूत प्रयास कर भारत 2027 तक पांच ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था बनने की तैयारी के चहुँमुखी प्रयत्न कर रहा है। अपनी कमियों एवं ताकतों का सही आकलन कर ही यह वर्ष नवीन आर्थिक उपलब्धियों की संभावना से पूर्ण प्रतीत हो रहा है। गत वर्ष के समान इस वर्ष भी महंगाई के प्रश्न पर अनिश्चय एवं अस्थिरता की संभावना बनी हुयी है। यद्यपि 2023 में उपभोक्ता मूल्य सूचकांक की महंगाई दर में दो प्रतिशत की गिरावट एवं कोर इंफ्लेशन या मुख्य महंगाई में स्थिरता दर्ज की गयी फिर भी खाद्य पदार्थो यथा अनाजों, दलहन, मसालों की महंगाई के कारण शासन ने निर्यात-प्रतिबंधित कर स्थिति पर नियंत्रण बनाने के प्रयास किये थे, ऐसी परिस्थितियों की उम्मीद की वर्ष 2024 में भी संभावना दृष्टिगोचर हो रही है, आगामी नीति निर्धारण में इस ओर विशेष ध्यान दिया जायेगा। खाद्यानों के निर्यात पर प्रतिबंध के 2023 में निर्यात में 5.43 प्रतिशत की गिरावट आयी किन्तु साथ ही आयात में भी 7.31 की कमी में व्यापार संतुलन को सुधारा एवं 2023 में भारत का व्यापार घाटा लगभग आधा रह गया। गत वर्ष इलैक्ट्रिक उपकरणों, दवाओं, दूरसंचार के उपकरणों के बढ़ते निर्यात ने नीति निर्माताओं का ध्यान इन सैक्टर पर केन्द्रित कर इस वर्ष को लाभान्वित किया है। इस वर्ष खाद्य पदार्थो के मूल्य को स्थिर करने, आपूर्ति श्रृंखला को व्यवस्थित बनाये रखने, सुरक्षात्मक मौद्रिक नीति बनाये रखने जैसे कार्यो पर अधिक ध्यान दिया जाना है। वर्ष 2023 में अनाजों एवं दालों में 13 प्रतिशत, मसालों में 21.6 प्रतिशत, दूध में 8.3 प्रतिशत एवं सब्जियों में 37.3 प्रतिशत की वृद्धि देखी गयी जिसे सरकारी हस्तक्षेप से नियन्त्रित भी किया गया। इस हेतु सतर्क बना रहना जरूरी है।

मुद्रा स्फीति संबंधी आकलन भी अर्थव्यवस्था का अहम पक्ष होता है। भारतीय रिजर्व बैंक का अनुमान है कि वर्ष 2024-25 की पहली तिमाही

तक मुद्रास्फीति 5 प्रतिशत से अधिक रहेगी जो रिजर्व बैंक के कम्फर्ट लेवल से 4 प्रतिशत है, से अधिक रहेगी। ऐसी स्थिति में स्टॉक के मूल्य कम एवं स्वर्ण का मूल्य बढ़ जाता है, क्रय शक्ति कम हो जाने के कारण वास्तविक आय कम हो जाती है, ब्याज दरें उच्च हो जाती है, इस दशा में इक्विटी की लागत प्रभावित होने, निर्यात प्रभावित होने, उच्च मजदूरी की मांग एवं उससे उत्पादन लागत में वृद्धि आदि संभावनाओं पर विचार कर ही आगामी रूपरेखा तैयार करनी होगी।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निरपेक्ष मौद्रिक नीति अपनाने की तारीफ की है, इस प्रशंसनीय स्थिति को वर्ष 2024 की अर्थव्यवस्था में भी बनाये रखने का दबाव भी सकारात्मक परिणाम दे सकता है क्योंकि इससे धीरे-धीरे कीमतें स्थिर हो सकती है एवं मुद्रा स्फीति एवं महंगाई के दुष्प्रभावों को कम किया जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का तो यह भी अनुमान है कि 2024 में भारत में विदेशी पोर्ट फोलियों निवेश या एफ.पी.आई. के 33.9 अरब डॉलर पहुँचने की संभावना है, जिससे देश ऐसी उभरती हुयी आर्थिक शक्ति का रूप लेता जा रहा है जहाँ निवेश की अच्छी संभावनाऐं है, इस क्षेत्र को गहन शोध से और समृद्ध बनाया जा सकता है। गत वर्ष मैन्यूफैक्चरिंग सेक्टर की 13.9 प्रतिशत तक बढ़ती विकास दर, मेक इन इण्डिया की सफलता ने इस सैक्टर को 2025-26 तक एक ट्रिलियन डॉलर तक पहुँचने की संभावना का अनुमान लगाया गया है। इस अनुमान को वास्तविक उपलब्धि में इस वर्ष में बदलना भी चुनौतीपूर्ण एवं प्रेरक तत्व है जो अर्थव्यवस्था के उन्नयन का कारक बन सकता है। इस दिशा में रोजगार के अवसर बढ़ाने, प्रशिक्षित कामगारों की उपलब्धता, प्रशिक्षण कार्यक्रमों का विस्तार एवं प्रचार-प्रसार, सेवा क्षेत्र की महत्ता को बनाये रखना, महिलाओं की श्रम भागीदारी का प्रतिशत बढ़ाना, विकास की संभावनाओं की खोज एवं उपलब्ध अवसरों का समुचित दोहन जैसी रणनीति निंसदेह 2024 में भारतीय अर्थव्यवस्था को उस मुकाम तक पहुँचायेगी जो एक आर्थिक शक्ति का दर्जा पाने के लिये अपेक्षित है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सिंह, विवेक - इण्डियन इकोनॉमी
2. शर्मा, चंदन - इन्टरनेशनल इकोनोमिक्स
3. सिंह, रमेश - भारतीय अर्थव्यवस्था
4. वर्मा, संजीव - भारतीय अर्थव्यवस्था
5. बैनर्जी, अभिजीत, वी, टुफ्लो एस्थर-गुड इकनोमिक्स फॉर हार्ड टाइम्स
6. लाल एल.एन., लाल एस.के.- भारतीय अर्थव्यवस्था

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

दक्षिण अरावली क्षेत्र में निवासरत कथौडी जनजाति का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक जीवन

डॉ. सुदर्शन सिंह राठौड*

* सह आचार्य, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय,उदयपुर (राज.) भारत

शोध सारांश – मानव आरम्भ से प्रकृति पर निर्भर रहा हैं। वन्य अत्पादों से अपना एवं अपने परिवार का पेट भरने का कार्य सरलता से करता आया हैं। प्रकृति ने उसे बहुत कुछ दिया हैं। वर्तमान में भी कुछ जातियाँ पूरी तरह प्रकृति पर निर्भर हैं जिनमें कथौडी जनजाति अग्रणी हैं। कथौडी लोग जंगली उत्पादों यथा गोद, महुए के फुल, डोलमा, मूसली लकडी एवं शहद एकत्रित करके बेचते हैं। उससे अपने परिवार का पालन करते हैं। महुआ के फूलों से शराब बनाकर बेचना एवं पीना इनकी दिनचर्या का मुख्य भाग हैं। इस जनजाति में शराब एवं मांस का मुख्य स्थान हैं। सुबह की शुरूआत ही शराब सेवन से होती हैं। स्त्री और पुरूष दोनो ही नशे के आदी हैं। शिक्षा का इस जाति में नितान्त अभाव हैं। बच्चे भी माता पिता की आदतों के शीघ्र ही शिकार हो जाते हैं। बाल विवाह के कारण शारीरिक एवं मानसिक विकास भी अवरूद्ध हो जाता हैं। फलस्वरूप युवा भी अपने पूर्वजों की राह पर चल पडते हैं। सरकारी सहायता के रूप में घर एवं अनाज मिल जाता हैं अत: नशे का ही जुगाड़ शेष रहता है। सात्विक जीवन या धार्मिक प्रवृत्ति का नितान्त अभाव देखने को मिलता है।

शब्द कुंजी – जनजाति,अंधविश्वास,रूढिवादिता,नशाखोरी,शराब।

प्रस्तावना – राजस्थान के उदयपुर जिले की झाडोल (फ.) एवं कोटडा तहसील क्षेत्र में निवास करने वाली कथौडी जनजाति मूलत: महाराष्ट्र की निवासी है। वहा बांधो के निर्माण के कारण बेघर हुए इन लोगों को वर्षो पूर्व यहा बसाया गया था। फुलवारी की नाल क्षेत्र में ये लोग खैर के वृक्ष से कत्था निकालने का कार्य करते थे। वन्य उत्पादों के सहारे जीवन यापन करना इनकी दिनचर्या बन गई थी परन्तु अब परिस्थितियाँ विपरित हैं। घटते वन्य उत्पाद एवं अशिक्षा के कारण ये लोग अत्यन्त पिछडे एवं बेरोजगार बने हुए हैं। अत्यधिक शराब सेवन के कारण इनके शारीरिक स्वास्थ्य पर विपरित प्रभाव पड रहे है।

शोध पत्र का उद्देश्य:

1. कथौडी जनजाति के सामाजिक विकास एवं अशिक्षा की समस्याओं को उजागर करना।
2. कथौडी समुदाय की संस्कृति, रहन-सहन, खान-पान, व्यवसाय एवं धार्मिक जीवन से शेष समुदाय को परिचित कराना।
3. कथौडी जनजाति के विकास में बाधक समस्याओं के समाधान हेतु भावी सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध परिकल्पनाएँ:

1. कथौडी जनजाति को शिक्षा एवं रोजगार से जोड़ कर मुख्य धारा में लाया जा सकता हैं।
2. परम्परागत के स्थान पर नवीन व्यवसाय अपनाने हेतु प्रेरित किया जा सकता हैं।
3. शराब सेवन, मासांहार जीवन एवं रूढिवादी सोच को बदला जा सकता हैं।

शोध प्रविधि:

1. **समंक संकलन–** दक्षिणी – पश्चिमी राजस्थान के उदयपुर जिले की झाडोल एवं कोटडा तहसील के गावों अम्बासा, डैया, अम्बावी, पानरवा, झाडा पीपला, झेर एवं बेडाधर में निवास करने वाले कथौडी परिवारों का चयन उद्देश्यानुसार प्रतिदर्श विधि के आधार पर किया गया।
2. **अध्याय विधि एवं आंकड़ों का संकलन–** सम्बंधित शोधकार्य में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आंकड़ों का समावेश किया गया हैं परन्तु यह शोध मुख्यत प्राथमिक आंकडो पर आधारित हैं। द्वितीयक आंकडे सरकारी एवं गैर सरकारी दस्तावजों, लेखों, शोध पत्रों एवं अनुसंधानों पर आधारित हैं।

साहित्यावलोकन– अमिताभ सरकार व समीरा दासगुप्ता ने अपनी पुस्तक Ethno Ecology of Indian Triber: Diversity in Cultural Adaptation (Rawat Publication, 2000) में इस जनजाति के बारे में विस्तृत विवरण दिया हैं। साथ ही जगन आकडों की पुस्तक Development of Schedule Castes And Scheduled tribes in India (Cambridge Scholars Publication, 2008) भी कथौडी जनजाति से जुडी विभिन्न धारणाओं – अवधारणाओं को प्रस्तुत करती हैं। भारत की अन्य जातियों – जनजातियों के साथ कथौडियों का भी विवरणात्मक अध्ययन प्राप्त होता हैं। के.एस. सिंह (2004) अपनी पुस्तक People of India: Maharastra में कथौडियों की गौत्र विभाजन, खान-पान, कार्य-व्यवहार एवं व्यावसायिक पहलुओं का वर्णन करते हैं।

अमिता बाविस्कर ने अपनी पुस्तक In The Belly of The River: Tribal Couflicts Over Development In The Narmada Velley (Oxford University Press, 2013) में भी महाराष्ट्र की अनेक जनजातियों के साथ कथौडियों की भी जनजाति सांझा की हैं। उन्हे नाशिक,

पूणे एवं धूले जिले में निवासरत बताया हैं। विशाल कुमार हरिप्रसाद जोशी ने अपने शोध उपाधि An Economic Study of Tribe Kathodi In Sabarkantha District Of Gujrat (Pacific Unversity, Udaipur 2017) में कथौडियों के महत्वपूर्ण एवं अनछुएँ पहलुओं को उजागर किया हैं। खेडब्रहमा एवं विजयनगर के क्षेत्र निकालकर बेचने वाले कथौडी लोग मेरे अध्ययन क्षेत्र हेतु निर्धारित गाँवों के सम्बन्धी, रिश्तेदार एवं प्रवासजन्य हैं।

दक्षिण अरावली क्षेत्र में कथौडी जनजाति का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक जीवन– दक्षिणी राजस्थान के उदयपुर जिले के दक्षिण – पश्चिम भाग में फुलवारी की नाल में स्थित है। यह वन्य क्षेत्र हरा – भरा एवं प्राकृतिक सम्पदा से परिपूर्ण हैं। इसमें वृक्षों की विविधता के साथ–साथ अनेक प्रकार के जंगली जीवन–जन्तु भी जाये जाते हैं। आस–पास के गावों के पशु एवं मानव इस वन क्षेत्र पर निर्भर हैं। खासकर कथौडी जनजाति के लोग यहा के जंगलों से महुआ के फूल, डोलमा, शहद, गोंद, सफेद मूसली, लकडी एवं कोयला एकत्रित कर बेचते हैं। इनका आर्थिक जीवन वन क्षेत्र पर निर्भर हैं। कथौडी लोग कुछ वर्षो पूर्व खैर नामक वृक्ष से कत्था निकालने का कार्य करते थे। वर्तमान में खैर के वृक्ष लुप्तप्राय हो गए हैं।

महाराष्ट्र में बडे–बडे बांधो का निर्माण होने के कारण वर्तमान में 40–50 वर्ष पूर्व ये लोग बेघर हो गये थे। फुलवारी की नाल के निकटवर्ती गाँवों में उस समय परती भूमि देख उन्हे यहा बसाया गया। इन्होने वन्य क्षेत्रों को अपने आर्थिक क्रियाकलापों हेतु अनुकुल समझा। महुआ एवं तेंदू के वृक्ष ने इन्हे सम्बल प्रदान किया, परन्तु शीघ्र ही ये लोग इनके नशे की गिरफ्त मे आ गये। महुए के फूल कि शराब एवं तेन्दू व सेतरी वृक्ष की पत्तियों बीडियाँ आज भी इनका पिछा नही छोड रही हैं। शराब से कही घर बर्बाद हो गये हैं। इस जनजाति पर शराब का जबरदस्त प्रभाव हैं। सुबह उठते ही चाय के स्थान पर शराब का सेवन करते हैं। स्त्री एवं पुरूष दोनो ही समान रूप से एक साथ बैठकर सेवन करते हैं। परिवार के छोटे बच्चो पर इसका विपरित प्रभाव पडता हैं वे भी शीघ्र ही इसके शिकार हो जाते हैं। झाडोल (फ.) तहसील के अम्बासा, डैया, अम्बाली एवं पानरवा तथा कोटडा के झेर व बेडाधर गावों में महुआ के वृक्षों की अधिकता हैं। अप्रैल – मई मे आने वाले महुए के फूलों को एकत्रित करके वर्षभर तक अपने शराब पीने का इंतजाम कर लेते हैं। शराब की लत इस कदर है कि इस हेतु ये लोग किसी किसान या शराब व्यवसायी के यहा बेगार को तैयार हो जाते हैं। इन गाँवों में महूए की शराब बनाने वाले के घर पर कथौडियों का समुह देखने को आसानी से मिल जाता हैं। बड़े – बुजुर्ग लोग तो हर वक्त नशे में डूबते रहते हैं मानो यही अमृत पेय हैं। शराब के अलावा बिडी पीना एवं तम्बाकू खाना भी इनमें प्रचलित हैं। टिम्बरू (तेन्दू वृक्ष) या सेतरी (कचनार वृक्ष) की पत्तियों से स्वयं बीड़ी बना लेते हैं। जर्दा अपने पास रखते हैं। नशे की प्रवत्ति इस जनजाति में स्त्री एवं पुरूष में समान हैं।

कथौडी एक अनपढ जनजाति हैं। शिक्षा के प्रति जागरूकता शुन्य स्तर पर हैं। बच्चे अपने माता–पिता के साथ मजदूरी करने, महुए के फूल बिनने या गोंद – शहद एकत्रित करने चले जाते हैं अभिभावक अपने बच्चों को शिक्षा दिलाना अपनी जिम्मेदारी नही मानते हैं ना ही उसकी उचित देखभाल कर पाते हैं नशे की प्रवृत्ति के कारण माता–पिता बच्चों की शिक्षा एवं शादी को बोझ समझते हैं। बहुत ही कम बच्चे प्राथमिक या उच्च प्राथमिक की शिक्षा सरकारी छात्रावास में रहकर पूरी कर पाते हैं। घर पर रहने वाले बालकों के लिए तो यह भी मुश्किल हैं। कम आयु में ही बाल विवाह के शिकार हो जाते हैं फलस्वरूप शारीरिक एवं मानसिक विकास अवरूद्ध हो जाता हैं। अपने बच्चे होने के बाद कथौडी दमपति खोलरा बना अलग रहने लग जाते हैं। शादी के बाद भी लडकी लम्बे समय तक अपने पिहर में ही रहती हैं उसका पति यहा आकर रहने लगता हैं। पति पत्नी का यह जोडा हर समय साथ रहता हैं। जंगल में गोंद बिनने, लकडी लाने या मजदूरी करने जाना हो अथवा शराब पीकर नृत्य करना हो। अधिकतर कार्यो में पत्नी सहभागिनी बनती हैं। समाज में नशे की अधिक प्रवृति के कारण अधिकतर पुरूष अकाल मृत्यु के शिकार हो जाते हैं विधवा विवाह का प्रचलन हैं। तलाक आसान हैं परन्तु दापा की राशि पुरूष को चुकानी होती हैं। सामान्यत: एकल विवाह प्रचलित हैं। भोजन में मांसाहार का महत्वपूर्ण स्थान हैं। पहले कथौडी लोग जंगली जानवरों का शिकार करना, मरे हुए पशुओं का मांस, कछुआ या मछलियों को पकडकर लाना इत्यादि शामिल था। वर्तमान में कुछ परिवर्तन आया हैं परन्तु इस दिशा में और अधिक सुधार की जरूरत हैं। कथौडी पुरूष गुलेल चलाने में पारंगत होते हैं। जिसके सहारे वह छोटे पक्षियों एवं खरगोश का शिकार आसानी से कर लेते हैं। दैनिक खान पान में गैहूँ एवं मक्का की रोटी का महत्वपूर्ण स्थान हैं परन्तु सब्जी नित्य मिले यह कोई जरूरी नही हैं। सीलबट्टे पर मिर्ची एवं मसाले घिसकर उपयोग कर लेते हैं। प्याज एवं चटनी के साथ खाना खा लेते हैं। चावल को अकेले मसाले के साथ उबालकर खाते हैं। मांसाहार की लगातार पूर्ति होती रहे इस हेतु मुर्गी पालन भी करते हैं। इस जनजाति में दूध का उपयोग नही के बराबर हैं। चाय का प्रचलन भी नही हैं। कुछ लोग बिना दूध की चाय पीते हैं।

कथौडी लोग होली, दीपावली एवं नवरात्र को प्रमुख त्योहार के रूप में मनाते हैं। होली पर नृत्य गायन एवं दीपावली पर पटाखे छोडने का इन्हे बहुत शोक होता हैं। कई परिवारों में औसतन 4000 से 5000 रूपये का इन पर खर्च आ जाता हैं। पिछले कुछ वर्षो से इन गावों के कुछ युवा कथौडी गुजरात में काम धंधे पर जाने लगे हैं ये लोग तीन–चार माह तक मजदूरी करके होली–दिपावली पर अपने घर आते हैं। मजदूरी के सारे पैसे त्योहारों पर खरीददारी करके खत्म कर पुन: मजदूरी करने चले जाते हैं। 10–15 दिन घर पर शराब पीकर पागल सी अवस्था में रहते हैं। होली के अवसर पर पुरूष ढोलक बजाते हैं तो स्त्रियां एक दुसरे की कमर में हाथ से पकडकर पिरामिड बनाते हुए मनमोहक नृत्य करती हैं। ऊंचे स्वर में लयबद्ध गाना गाती हैं। नवरात्र में कुछ कथौडी पुरूष नौ दिन तक सात्विक जीवन जीते हैं। यह वह अवसर है जिस दौरान कथौडी पुरूष मांस – मदिरा से दूर रहता हैं। नवरात्र में ढोलक, थालीसर, बांसली एवं टापरा नामक वाद्ययंत्र बजाते हुए 15–20 कथौडी पुरूष एक साथ सामुहिक नृत्य करते हैं। ढोलक, धोरिया, खोखरा, तारणी, पावरी, थालीसर, टापरा, बांसली एवं गोरोडिया कथौडियों के प्रमुख वाद्ययंत्र हैं। घोरिया व खोखरा बांस का बना हुआ होता हैं। तारणी महाराष्ट्र के तारपा वाद्ययंत्र के समान होता हैं। जिसे लोकी के एक सिरे पर छेद करके बजाते हैं। पावरी दिखने में बांसुरी जैसा होता हैं। पावरी का वादन मृत्यु के समय किया जाता हैं। थालीसर को दाह संस्कार के बाद बजाते है। थालीसर का उपयोग देव स्तुतियों के समय भी किया जाता हैं।

वाद्यदेव, गामदेव, डूँगरदेव, कन्सारी देवी तथा भारी माता कथौडियों के प्रमुख देवी–देवता हैं। देवी में अधिक आस्था रखते हैं। इनका जीवन प्रकृति पर निर्भर हैं। आत्मा एवं पुनर्जन्म में विश्वास रखते हैं। मृतक को दफनाते हैं। मृत्युभोज के नाम पर दाल चावल एवं नुक्ति बनाई जाती हैं। मृतक से जुडी

उसकी उपयोग सामग्री को उसकी समाधि पर रख दी जाती हैं। इस समुदाय के कुछ लोग तांत्रिक विधि के जानकार हैं परन्तु संत प्रवृत्ति नही पाई जाती हैं। शोध के दौरान पाया गया कि ईश्वराधना में बहुत कम विश्वास रखते हैं। इस समाज में कोई महान भक्त या ईश्वर परायण व्यक्ति का उदाहरण नही मिला।

कथौडी लोगो का आर्थिक जीवन अत्यंत कष्टपूर्ण हैं। घुमन्तु एवं अस्थाई प्रवृत्ति के कारण बहुत कम लोगो के पास कृषि योग्य भूमि उपलब्ध हैं। कुछ लोगो ने तो नशे की प्रवृत्ति के कारण अपनी भूमि भी बेच दी हैं। सरकार की विभिन्ना योजनाओं के सहारे जी रहे हैं। दाल, चावल, नमक, तेल एवं गेहूँ हर माह प्रत्येक कथौडी परिवार प्राप्त कर रहा हैं। परन्तु नशे की प्रवृत्ति के कारण घर में बरकत नही टीक पाती हैं। शोध क्षेत्र के गाँवों के कुछ परिवार तो अत्यंत दयनीय जीवनयापन कर रहे हैं। मुलभूत आवश्यकता पूर्ति को छोड़कर उनके पास कुछ भी नही हैं। परन्तु इस जाति की खास विशेषता हैं कि वे कभी चोरी नही करते हैं। कथौडियों के उत्थान हेतु सरकारी प्रयास अनवरत जारी हैं परन्तु कौशल विकास या रोजगार परक प्रशिक्षण की जरूरत हैं। आर्थिक सहायता से इनमें बदलाव संभव नही हैं। आर्थिक सहायता से कुछ लोगों में आलस्यता का संचार हुआ हैं। कथौडी लोग भागयवादिता, रूढिवाद, अंधविश्वास, नशाखोरी, अशिक्षा एवं नकारापन के अधिक शिकार हैं। इन बुराईयों ने इन्हे जकडे रखा हैं।

शिक्षा एवं कौशल विकास के सहारे ही कथौडियों का सामाजिक जीवन उन्नात हो सकता हैं। इस दिशा में सतत सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयास किये जाये तो इन्हे मुख्य धारा में लाया जा सकता हैं। वर्ष 2011 के आंकडों के अनुसार राजस्थान में कुल कथौडी जनसंख्या 4833 हैं जिनमें भी 50 फिसदी तो उदयपरु जिले में ही हैं। शेष डूँगरपुर, झालावाड एवं बारा जिले में रहते हैं।

कथौडियों के उत्थान सुझाव:

1. नशे की प्रवृति पर रोक लगाई जाये। नशा उन्मूलन कार्यक्रम चलाया जाये। महुआ निर्मित देशी हथकड शराब को पूर्णत प्रतिबंधित किया जाये।
2. शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाए। कथौडी बच्चों को सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थानों द्वारा गोद लेकर स्कूली शिक्षा पूर्ण करवाई जाये। स्कूली शिक्षा पूर्ण नही करने वाले बच्चों के परिवारों को विभिन्ना वरकारी योजनाओं के लाभ से वंचित किया जाये।
3. इन्हे कौशल विकास से जोडा जाये। रोजगार से साधन उपलब्ध हो। हर हाथ को काम मिले।
4. बाल विवाह पर पूर्णत: प्रतिबंध लगे। प्रत्येक बालक – बालिका का ऑनलाईन डाटा तैयार किया जाएं विवाह के अवसर पर सहयोग राशि तय की जानी चाहिये।
5. वर्तमान में चल रही सरकारी योजनाए अनवरत रूप से चलती रहे।
6. मृत्युभोज को प्रतिबंधित किया जाये। सामाजिक जागरूकता पैदा की जायें।
7. बचत की प्रवृत्ति विकसित की जाये।
8. वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं मानववाद की भावना का विकास किया जाये।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. Suman Rana, A Review on Educational Status of Scheduled Tribes of Rajasthan, 2017
2. S.S. Katewa, Perspectives of an ethnobotanical Study From Rajasthan (India), 2009
3. B.L. Nagda, Tribal Population And Health In Rajasthan, 2004
4. Vandana Singh Kushvaha, Rashmi Sisodiya And Chhaya Bhatnagar Magico-religious and Social belief of tribals of District Udaipur, Rajasthan, 2017
5. Folk herbal medicines from tribal area of Rajasthan, India, 2004
6. M. Unnithan, Caste, tribe and Gender in South Rajastha, 1991
7. V. Sharma, Family planning practices among tribals of south rajasthan, India, 1991
8. J. Joshi, Food Intake of tribes in Rajasthan: A Review, 2019
9. Vimla Dunkwal And Dhanvanti Bishnoi, major tribes of Rajasthan and their Costumes, 2014
10. S. Bairathi, tribal Caulture, economy and health Rawat publication, Jaipiur, 1991
11. Rajani Meena And Jyoti Yadav, A Study of educational Status of tribal in India
12. Nitya Sharma And V.V. Kulkarni, Situation Analysis of living condition of tribes in Rajasthan, 2013
13. Chauduri Sarit Kumar, Constraints of Tribal Deverlopment, 2000, A Mittal Publications
14. L.P. Vidyarthi, Tribal culture in india, 1985, Concept Publishing company

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

वित्तीय समावेशन - लक्ष्य एवं चुनौतियाँ

डॉ. शैलप्रभा कोष्टा*

* प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) शासकीय महाकोशल कला एवं वाणिज्य स्वशासी महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना - वित्तीय समावेशन वित्तीय सेवाओं तक पहुँचने के अवसरों की उपलब्धता और समानता है यह ऐसी प्रक्रिया को संदर्भित करता है जिसके द्वारा व्यक्ति और व्यवसाय उचित, किफायती और समय पर वित्तीय उत्पादों और सेवाओं तक पहुंच सकते है जिनमें बैंकिंग, ऋण, इक्विटी और बीमा उत्पाद शामिल है, कहने का तात्पर्य है कि यह घरेलू आय में सुधार और आय असमानता को कम करने की दिशा में बैंक रहित आबादी की बचत, निवेश और बीमा के साधनों तक पहुंचने में सक्षम बनाकर आर्थिक विकास में समावेशिता को बढ़ाने का एक मार्ग है।

वित्तीय समावेशन शब्द को 2000 के दशक की शुरूआत में ही महत्व मिल गया है यह वित्तीय बहिष्करण की पहचान का परिणाम है और विश्व बैंक के अनुसार इसका गरीबी से सीधा संबंध है।

वित्तीय समावेशन के लक्ष्य :

1. बचत या जमा सेवाओं भुगतान और हस्तान्तरण सेवाओं, क्रेडिट और बीमा सहित वित्तीय सेवाओं की पूरी श्रृंखला तक सभी परिवारों के लिए उचित लागत पर पहुंच है।
2. निवेश की निरंतरता और निश्चितता सुनिश्चित करने के लिए वित्तीय और संस्थागत स्थिरता बनाये रखना।
3. स्पष्ट विनियमन और उद्योग प्रदर्शन मानकों द्वारा शामिल मजबूत और सुरक्षित संस्थान बनाना।

वित्तीय समावेशन का उद्देश्य :

1. लोगों को संस्थागत ऋण की प्राप्ति सुनिश्चित कराना जिसमें साहूकारों पर निर्भरता को कम कर ऋणी को शोषण से बचाया जा सके।
2. वित्तीय समावेशन समाज और अर्थव्यवस्था को आगे ले जाने में मदद करता है। इससे बचत, निवेश में वृद्धि होती है जिससे हमारे देश के आर्थिक विकास को गति मिलती है।
3. इससे लोगों को पैसा बचत करने की आदत लगती है मुख्य रूप से कमजोर वर्ग वालों के लिए, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति धीरे-धीरे ठीक होती है।
4. बैंकिंग सेवाओं और उत्पादों की उपस्थिति का उद्देश्य बचत की आदत को विकसित करके बैंकों को लाभ प्रदान करना है। ऐसे स्थान जहाँ बैंक नहीं पहुँच पाते उनके लिए यह औपचारिक ऋण के रास्ते भी बनाता है जो परिवार, दोस्तों और साहूकारों पर निर्भर हैं।
5. इसकी सहायता से ग्रामीण इलाकों में रह रहे लोगों को एक जगह से दूसरी जगह तक पैसा भेजने में काफी लाभ मिलेगा।
6. इसके माध्यम से सरकार द्वारा उत्पादों पर डीलीळवू देने और नगद भुगतान करने के बजाय खाता धारकों (Account Holder) के बैंक खातों में सीधे प्रत्यक्ष लाभ (Direct Benefit Transfer (DBT)) के माध्यम से सरकारी लाभ हो और अनुदान (Subsidy) का पैसा उनके खातों में पहुँचाना।

वित्तीय समावेशित विकास हेतु राष्ट्रीय कार्यनीति 2019-24 - रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया ने 2019-2024 की अवधि के लिए वित्तीय समावेशन, लक्ष्य राष्ट्रीय कार्यनीति तैयार करने की प्रक्रिया शुरू की जिसका गठन वित्तीय स्थिरता और विकास परिषद द्वारा किया गया। जिसके बिन्दु इस प्रकार है :

1. वर्तमान में पूरी दुनिया में वित्तीय विकास की ताकत और गरीबी के रूप में तेजी से वित्तीय समावेशन को बढ़ावा दिया जा रहा है।
2. वित्तीय समावेशन को बढ़ावा देने के लिए सतत् विकास लक्ष्यों में इसकी चर्चा की गई है।
3. भारत में समन्वयपूर्ण और समयवृद्ध तरीके से कार्य करने की प्रक्रिया आर.बी.आई ने शुरू की।

राष्ट्रीय कार्यनीति के उद्देश्य :

1. इस कार्यनीति के उद्देश्यों में से एक प्रमुख उद्देश्य मार्च 2020 तक हर गांव के 5 कि.मी. के दायरे में तथा पहाड़ी क्षेत्रों के 500 परिवारों के समूह तक बैंकिंग पहुंच को बढ़ाना रहा है।
2. आर.बी.आई के अनुसार राष्ट्रीय कार्यनीति में प्रत्येक वयस्क की मार्च 2024 तक मोबाइल के माध्यम से वित्तीय सेवाओं तक पहुंच हो।
3. हर वयस्क व्यक्ति तक वित्तीय सेवाओं की पहुंच प्रदान करने के उद्देश्य से एक लक्ष्य निर्धारित किया गया है कि प्रत्येक इच्छुक और पात्र वयस्क जिसे प्रधानमंत्री जन-धन योजना के तहत नामांकित किया गया है, मार्च 2020 तक बीमा योजना और पेंशन योजना के तहत नामांकित किया जाना चाहिए।

मार्च 2020 तक पब्लिक क्रेडिट रजिस्ट्री (PCR) को पूरी तरह से प्रारम्भ करने की योजना बनाई गई ताकि नागरिकों के साख प्रस्तावों का मूल्यांकन करने के मामले में भी अधिकृत वित्तीय संस्थाएँ लाभ प्राप्त कर सकें।

वित्तीय समावेशन से समावेशी विकास का रास्ता - वित्तीय समावेशन की अपनी पहलों के जरिए वित्त मंत्रालय सामाजिक, आर्थिक रूप से उपेक्षित वर्गो का वित्तीय समावेशन करने के लिए उन्हें सहायता प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है। वित्तीय समावेशन के माध्यम से हम देश में एक समान और समावेशी विकास को हासिल कर सकते है।

वित्तीय समावेश का मतलब है कमजोर समूहों जैसे निम्न आय वर्ग, गरीब वर्ग जिनकी सबसे बुनियादी बैंकिंग सेवाओं तक पहुंच नहीं है उन्हें समय पर किफायती दर पर उचित वित्तीय सेवाएँ उपलब्ध कराना क्योंकि यह एक गरीबी की बचत को औपचारिक वित्तीय प्रणाली में लाने का अवसर प्रदान करता है गांवों में अपने परिवारों को पैसा भेजने के अलावा उन्हें सूदखोर, साहूकारों के चंगुल से बाहर निकलने का मौका देता हूँ, प्रधानमंत्री जन-धन योजना इस प्रतिबद्धता की दिशा में एक अहम पहलू है जो वित्तीय समावेशन से जुड़ी दुनिया की सबसे बड़ी पहलों में से एक है।

प्रधानमंत्री जन धन योजना वित्तीय सेवाओं यानी बैंकिंग, बचत और जमा खाते, भेजी गई रकम, बीमा पेंशन तक किफायती तरीके से पहुंच सुनिश्चित करने की दिशा में वित्तीय समावेशन का एक राष्ट्रीय मिशन है।

वित्तीय समावेशन में जन धन योजना - इस योजना का उद्देश्य इस प्रकार है

1. सस्ती कीमत पर वित्तीय उत्पादों और सेवाओं तक पहुंच सुनिश्चित करना।
2. लागत कम करने और पहुंच बढ़ाने के लिए प्रौद्योगिकी का उपयोग करना।

योजना के सिद्धांत - गैर वित्त पोषित लागों को वित्त पोषण, सूक्ष्म बीमा, ओवरड्राफ्ट की सुविधा, माइक्रो पेंशन, माइक्रो क्रेडिट की सुविधा से जोड़ना।

1. स्वदेशी डेबिट कार्ड जारी करना ताकि दो लाख रूपये के मुफ्त दुर्घटना बीमा कवरेज के साथ नकद निकासी और मर्चेंट लोकेशन पर भुगतान।
2. बैंकिंग सेवा से वंचित लागों को बुनियादी बैंकिंग सेवा से जोड़ना।

वित्तीय समावेशन के लाभ :

1. सामाजिक वित्तीय खाते-बैंकिंग सेवाएं, बीमा और पेंशन खाते आदि में भाग लेकर देश के आर्थिक क्रियाकलापों से लाभ कमाने के लिए प्रोत्साहन शिलालेख होता है।
2. पूंजी निर्माण की दर में वृद्धि करने में सहायता मिलती है।
3. धन प्रवाह से देश के आर्थिक सिद्धान्त और विचारधारा को गति मिलने के साथ-साथ आर्थिक क्रियाकलापों को सराहना मिलती है।
4. निजी वित्तीय निवेशकों (पेटीएम) जैसो की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित होना।

वित्तीय समावेशन से संबंधित चुनौतियाँ - भारत जैसे विशाल देशों में वित्तीय समावेशन के समक्ष निम्न चुनौतियाँ देखने को मिलती है।

1. भारतीय अर्थव्यवस्था में डिजिटल भुगतान प्रणाली एक चुनौती है क्योंकि अर्थव्यवस्था का बहुत बड़ा क्षेत्र अव्यवस्थित एवं कैशलेश है।
2. कम आय वाले उपभोक्ता जो डिजिटल सेवाओं के लिए तकनीक चयन का खर्च उठाने में सक्षम नहीं है अर्थात तकनीकी कौशल की कमी भी बड़ी बाधा है।
3. विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में लगभग 190 मिलियन विकेंड के पास बैंक खाते नहीं है जिससे वित्तीय सेवाओं में परेशानियाँ बढ़ रही है।
4. जन-धन योजना के परिणाम स्वरूप कई हजार खाते खोले गये परन्तु निष्क्रिय रूप से पड़े है कहने का तात्पर्य है कि केवल किसी योजना को सफलता हेतु लागू किया जाये न कि दिखावे के लिये।

वित्तीय समायोजन पर समितियों के सुझाव - वित्तीय समावेशन के इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आजादी के समय से ही भारत सरकार और रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया प्रयत्नशील रहे है अब तक इस लक्ष्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से निम्न कदम उठाये जा चुके है।

1. 1955 से लेकर 1980 तक लगातार बैंको के राष्ट्रीयकरण की प्रक्रिया जारी है, बैंकिंग प्रणाली को सुरक्षित बनाने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में शाखा विस्तार का कार्य हमेशा जारी रहा।
2. 1969 में अग्रणी बैंक की अवधारणा रखी गई जिसमें जिस किसी बैंक की जिले में सर्वाधिक शाखाएँ होगी उसे यह कार्य का दायित्व सौपा गया।
3. 1975 में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको की स्थापना ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि एवं कुटीर उद्योंगो के प्रोत्साहन हेतु ऋण प्रदान करने का कार्य दिया गया।
4. 1982 में नाबार्ड की स्थापना ऐसे वित्तीय संस्था के रूप में हुई जो बैंक एवं वित्तीय संस्थाओं को ऋण प्रदान करने का काम करेगा।
5. 1998 में किसान क्रेडिट कार्ड की अवधारणा लागू की गई जिसके माध्यम से किसानों को कम ब्याज दर पर कृषि के उद्देश्य से ऋण प्रदान किया जाता है।
6. बैंक मित्र/साथी योजना के अन्तर्गत घर-घर बैंकिंग सेवाएं पहुँचाई गई।

निष्कर्ष - वित्तीय समावेशन व्यक्तियों और संगठनों के लिए समान रूप से अवसर प्रदान करता है उदाहरण के लिए बचत खाते या सूक्ष्म ऋण जैसी आवश्यक बैंकिंग सेवाएँ प्रदान करके व्यक्ति समय के साथ अपना क्रेडिट स्कोर बना सकते है और बेहतर दरों पर बड़े ऋण के लिए पात्र बन सकते है। जब सैकड़ों और लाखों लोगों के लिए बचत खाते, क्रेडिट कार्ड, माइक्रो क्रेडिट और ऋण जैसी आवश्यक वित्तीय सेवाओं तक पहुंच आसान हो जाती है तो कही भी किसी को भी पैसे प्राप्त करने की क्षमता उन्हे अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में मदद् कर सकती है।

वित्तीय समावेशन से उपभोक्ता खर्च, निवेश के अवसर, रोजगार सृजन, सरकारों के लिए कर राजस्व में वृद्धि, द्वारा अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त हो सकता है इसके अतिरिक्त वित्तीय समावेशन को बढ़ावा देने वाले संगठन सामाजिक जिम्मेदारी पर ध्यान केन्द्रित कर ग्राहको के बीच विश्वास का लाभ मिल सकता है यह देश में गरीबी और असमानता को कम कर व्यावसायिक अवसरों के माध्यम से स्वयं का जीवन सुरक्षित रख सकते है कहने का तात्पर्य यह है कि वित्तीय समावेशन में जोखिम और अवसर दोनों परन्तु सही ढ़ग से किया गया कार्य लोगों को वैश्विक अर्थव्यवस्था में भाग लेने की अनुमति देकर अत्याधिक आर्थिक और सामाजिक लाभ प्रदान कर सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. शिशिर सिन्हा, 'जन धन से जन सुरक्षा, बीमा पेंशन' कुरूक्षेत्र जून 2015
2. भारत में वित्तीय प्रशासन - डॉ. मंजूषा शर्मा, ओ.पी.बोहरा, किताब महल पब्लिकेशन।
3. वित्तीय प्रबन्ध - डॉ. एम. पी. गुप्ता एवं डॉ. के एल गुप्ता, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
4. https://pwonlyias.com.upsc.notes
5. उच्च वित्तीय प्रबन्ध - डॉ. एस. पी. गुप्ता, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
6. वित्त प्रशासन - डॉ. पी. एन. गौतम, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकुला।

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

मूल्य आधारित शिक्षा का उद्देश्य और मानव विकास के बहुआयाम में समालोचना

डॉ. नरेन्द्र कुमार हनोते* डॉ. रीमा नागवंशी **

* सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र)शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मुलताई, जिला बैतूल (म.प्र.) भारत
** सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) शासकीय कन्या महाविद्यालय, सिवनी मालवा, जिला नर्मदापुरम (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – शिक्षा विकास की प्रथम सीढ़ी है। विकास एक निरंन्तर प्रक्रिया है, जो प्रत्येक चरण पर समाज के विभिन्न पहलूओं में अपना योगदान देती है। यही योगदान आने वाले भविष्य को अभिव्यक्त करता है कि मौजूदा समाज, राज्य, देश, के उन्नती का मार्ग किस ओर प्रशस्त हैं। भारत 21वी शताब्दी में मूल्य परख शिक्षा, नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राष्ट्र भक्ति एवं विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का विकास करने के लिए मूल्य आधारित शिक्षा को अपनाना आवश्यक है। पिढ़ीदर पिढ़ी शिक्षा प्रदान करना और जीवन मूल्यों को सिखाना एक बहूत ही कठिन कार्य है। आज समाज में जो परिदृष्य देखने को मिलते है जिनके लिए मानव की आत्मा पीढ़ित होती है जिन्हे हम विभिन्न प्रकार के गैर–संवैधानिक रूप से किये गये कृत्यों को एकीकृत करके देखते है इनका एक ही सफल कारण है, कि समाज, और सभ्यता में विभिन्न दशकों से वर्तमान तक विकास में तो परिलच्छित होता है। किन्तु समाजिक मूल्यों का ह्रास उससे ज्यादा दिखाई पढ़ रहा है। जिसका कारण अन्ततोगत्वा यह कहना कि समाज में मूल्य आधारित शिक्षा का अंगीकरण कम हो रहा है कहना उचित होगा। उपरोक्त शोध पत्र में अध्ययनकर्ता के द्वारा मूल्य आधारित शिक्षा का उद्देश्य एवं उनका विभिन्न आयामों में कौनसे समालोचनात्मक कार्यो का उक्त शोध पत्र में विवेचन किया गया है।

शब्द कुंजी–मूल्य आधारित शिक्षा, नैतिक शिक्षा, सांस्कृतिक शिक्षा, सभ्यता, संस्कृति, व्यक्तित्व विकास।

प्रस्तावना – शिक्षा मानवीय व्यवहारों को सिखाने में अहम भूमिका अदा करती है। किन्तु मूल्य अधारित शिक्षा एक नई अवधारणा के रूप में विकसीत हो रहा है। किन्तु आज समाज में मूल्यों का पतन होने पर हम इस विषय को यदि गंभिरता से अध्ययनकरने हेतू विवश हो रहे। इसका अर्थ यह नही है कि मूल्य अधारित शिक्षा केवल शिक्षित व्यक्ति को ही प्राप्त हो सकती है। कयोकि प्रत्येक समाज आज जो कम पढ़ लिखे व्यक्ति है उनमें मानवता अधिक झलकता है अपेक्षाकृत पढ़लिखों के। आदिकाल से हि समाज मे व्यक्ति मूल्य परक शिक्षा को ग्रहण करता रहा है। जहॉं व्यक्ति शास्त्रीय मूल्य में निष्पक्षता निष्ठा अनुसंधान वही, नैतिक मूल्यों में सच्चाई उत्तारदायित्व की भावना, सामाजिक व राजनीतिक मूल्यों में राष्ट्रीय एकता विवेकशीलता सामाजिक उत्तारदायित्व लोकतांत्रिक व्यवस्था, वैज्ञानिक मूल्य में नई खोज नए का उपागम सृजनात्मक चिंतन, पर्यावरणीय मूल्य में पेड़ पौधों के प्रति जागरूकता सजकता उनकी सुरक्षा पेड़ पौधों की पूजा, सांस्कृतिक मूल्यों में सभ्यता संस्कृति का विकास न्याय प्रियता शिष्टाचार अनुशासन सत्य अहिंसा मित्र इत्यादि अनेक गुणों का विकास अनादि काल से ही मानव में सभ्यता समाज के साथ–साथ विकसितहोताचलाआ रहा। सी.वी वुड के अनुसार–'मूल्य वह चारित्रिक विशेषता है जो मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और सौन्दर्यबोध की दृष्टि से महत्तवपूर्ण मानी जाती है। लगभग सभी विचार मूल्यों के अभीष्ट चरित्र को स्वीकार करते हो।'

जब से हमारे विश्व धरोहर के स्तंभ रूपी संस्थानों का पतन हुआ है तब से मूल्य आधारित शिक्षा का महत्व और अधिक आवश्यक हो गया है। क्योकि लार्ड मैकाले की शिक्षण पद्धति ने तो देश में व्यक्तियों के मन मे यह धारणा विकसीत कर दी है कि व्यक्ति चाहे भारतीय हो किन्तु सोच उसकी ब्रिटिश की होनी चाहिए। परिणामस्वरूप यह देखते है कि आज जो पश्चिमी सभ्यता का अनुशरण करे वह विकसीत श्रेणी की ओर बढ़ रहा। यह धारणा हमारी विगत एक शताब्दी से ओर अधिक प्रबल हो रही है। अर्थात हम आज भी अंग्रेजी मानसीकताओं में फसे है। इन्ही बाघाम्बडरों में आज की हमारी पिढ़ी फसती चली जा रही है। जहॉं से आज हमारा समाज दिखावटी परंपरा में उलझा चला गया है। भारतीय सभ्यता विश्व प्रसिद्ध सभ्यता में सर्वोत्तम एक है किन्तु आज यह पश्चिमी अनुकरणीता का परिणाम है कि समाज में अनेक प्रकार की बुराई ओर प्रबल होती जा रही है।

कला, संस्कृति एवं सभ्यता व दर्शन आदि की गौरवशाली परम्पराओं पर गर्व करने वाला हमारा भारत देश आज अनास्था एवं पारम्परिक अविश्वास के वातावरण में हमारी प्राचीन परम्परा तथा मूल्य धूमिल से हो गये हैं। विकासशीलता की यह भ्रामक अवधारणा, ने मानव मस्तिक में अस्तित्वादी जीवन, अनात्मपरक नास्तिकता, पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण एवं कुतर्क प्रधान चिन्तन आदि के कारण अतीत में अविश्वास तथा में अनास्था आदि कारणों से हमारे पुराने मूल्य अब बहूत कम हि रह गये हैं। स्वयं पर अनास्था का परिणाम है, आत्मनाश अर्थात् अपने आदर्शों तथा मूल्यों, अपनी सांस्कृतिक विरासत, अपनी चिन्तन प्रणाली का परित्याग कर उसके स्थान पर बाहरी अथवा विदेशी चिन्तन प्रणाली को शामिल करना। रामायण एक महान ग्रन्थ है जिसमें सीता हरण के पश्चात जब लक्ष्मण से यह पूछा गया कि यह परिधान किसका हो सकता है ता लक्ष्मण ने कहा मेने तो भाभी मॉं को केवल चरणों तक ही देखा है मे यह कैसे बता सकता हूँ कि यह परिधान किसका है। यह पर यह कथन कहने का अर्थ है कि आज समाज में न हि आधार भाव शेष रह रहा ओर न हि शिष्टाचार जो आरूणी के नाम।

इसके कारण हमारे मूल्य दब से गये हैं। हैं।

मानव नारी का सम्मान करना चाहता है लेकिन कर नही पाता है। आज समाज में वह झूठ, चोरी, डकैती आदि को गलत मानता है पर छोड़ नही है। वह परपीड़न को पाप तथा परोपकर को पुण्य स्वीकारता तो है लेकिन मन में उतार नही पाता। वह समाज के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार के प्रति आक्रोश प्रकट करता है लेकिन भ्रष्टाचार का उन्मूलन नही कर पाता। इस तरह आज का प्रत्येक भारतीय सभ्यता संस्कृति की स्थिति इसी काल से होकर गुजर रहा है। भारत वसुदेव कुटुम्भकं ओर वहुजन हिताय, बहुजन सुखाय तथा सर्वे भवन्तु सुखिन के विभिन्न लोकोत्तियों के मूल्यों से पहचाना जाता रहा है। आज देश में शिक्षा के विकास को हम साक्षरता के प्रतिशत के अंको में माप रहें। विगत कुछ दशकों में यह लगातार बढ़ रहा है। किन्तु देश में नैतिक मूल्यों का बड़ा ह्रास हो रहा है।

साहित्य समीक्षा

बोबिन्द्र आपके द्वारा मानव जीवन में मल्यूों का महत्व के परिप्रेक्ष में मल्यू की उत्पत्ति तथा मल्यू का वर्गीकरण को मानव विकास में परिवार की भूमिका के साथ समाज की भूमिका, मीडिया की भूमिका तथा मल्यू विकास में स्कूल की भूमिका क्या होती है इस पर आपने प्रकाश डालें।

अरोरा नीलम विद्यार्थियों में शिक्षा और मूल्यों के बीच संबन्धों को जाग्रत करने के लिए आपने विशिष्ट कविता, पाठ, कहानी के माध्यम से स्पष्ट किया है। मानव मूल्यों को विकसीत करने के लिए महान विचारक, वैज्ञानिक, समाज सुधारक, के चरितार्थ को शिक्षा के माध्यम से विभिन्न स्त्रोतों से जिनमें सभ्यता, संस्कृति, बौद्धिक, व्यवहारिक, नैतिक, सामाजिक मूल्यों को अपना सके उन पर विभिन्न लेख दिये है।

सिंह शिवराज आपके लेख में मानव मूल्यों के विकास में विद्यालय, यूनेस्कों की परियोजना, नैतिक मूल्यों एवं व्यवसायिक मूल्यों को विकसीत कैसे किया जाए इन विषयों पर अपना आलेख प्रस्तुत किया है। जोकि सत्य, न्याय, ईमानदारी, लोगो की सेवा, आत्मभाव, टीम भावना, समय का मूल्य, देश प्रेम, एकीकृत विकास, गर्व, सादगी, तपस्या जैसे अनेक आयामो का उल्लेख किया है।

पवार किरण 2016 आपके द्वारा पर्यावरण मूल्य के सरोकारों को प्रकृति के प्रति जागरूकता पर्यावरण संरक्षण, पर्यावरण चेतना, वृक्षारोपण, प्रदूषण निवारण वैश्विक मूल्य, सामाजिक एवं राजनीतिक मूल्य, नैतिक मूल्य जो पर्यावरण के प्रति जागरूकता को अभिव्यक्त करते हैं पर विशिष्ट चर्चा की गई उपरोक्त शोध में अपने राष्ट्रीय चरित्र के विकास में पर्यावरण को पर्याय बताते है।

मिश्रा श्रृद्धा 2022 ने प्रतिभाशाली छात्र एवं छात्रों के मूल्यों का समायोजन का अध्ययनकिया। जिसमें उनकी पॉच विशेषताएं एवं पॉच समस्याओं का अवलोकन किया गया उक्त अध्ययन में व्यक्तिगत समायोजन शारीरिक एवं स्वास्थ्य संबंधी समायोजन मानसिक विकास और समायोजन संवेगात्मक समायोजन पर जानकारी अभिव्यक्त की गई और बताया गया कि प्रतिभाशाली छात्र ऐसे बालक जो जन्म से ही अपनी प्रखर बुद्धि कारण से अलग पहचाने रखते हैं।

अमिला ढाका 2019 के लेख द्वारा मूल्य परख शिक्षा में योग का विस्तार पूर्वक अभिव्यक्त किया गया जिसमें योग से यह नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि इत्यादि सभी युवकों के आधार पर उनके मूल्य पर शिक्षा को प्रभावित करने वाले कारकों पर गंभीरता पूर्वक चर्चा की गई हैं।

असवाल भरत सिंह 2017 के सैद्धांतिक मूल्य आर्थिक मूल्य सौंदर्यात्मक मूल्य सामाजिक मूल्य राजनीतिक मूल्य धार्मिक मूल्य इत्यादि पर मानव जीवन में क्या प्रभाव पड़ता है। आज विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करने के लिए भाषण नोटिस उत्तरों को दोहराने की कौशल ही विद्यार्थी को परीक्षा का मापदंड तय कर रही है शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे बालक सत्य के आधार पर अहिंसा प्रेम जीवन यापन करने में सभ्यता संस्कृति पुरातन मूल्यों को पालन करने में राष्ट्र समाज के विकास के निर्माण में अपनी सर्वागीण भूमिका दे सके क्योकि समाज विहिन व्यक्ति एक कोरी कल्पना है।

पाटिल पंकज एवं सक्सेना सुबोध 2018 अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के छात्रों के नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के छात्रों के नैतिक मूल्यों में ईमानदारी लगनशीलता मानवता विनम्रता तथा छात्रों के समग्र नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। जिसमें 150 छात्रों का एससी एवं एसटी के छात्रों का नया आदर्श के रूप में चयन किया गया और निष्कर्ष का या बताया गया कि अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के छात्रों के समग्र नैतिक मूल्यों में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

रमेश पोखरियाल निशंक 2021 ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक मूल्य आधारित शिक्षा में उन्होंने मूल्यों को विभिन्न प्रकारों में तथा विद्यालय शिक्षक की भूमिका, राष्ट्रीय मूल्यों, भारतीय ज्ञान परंपरा में मूल्य तथा वैश्विक चुनौतियों में मूल्य परक शिक्षा पर अपनी पुस्तक मेंविवेचनकियाहै।

श्राफ राजेश भारत में उच्च शिक्षा का वर्तमान परिदृश्य एवं जीवन मूल्य, शोध पत्र में आपके द्वारा उच्च शिक्षा के परिदृश्य में जीवन मूल्यों के महत्व तथा उनका सुदन करने के लिए आवश्यक प्रयासों के बारे में व्यक्तकियागया।

उद्देश्य:

1. मूल्य आधारित शिक्षा और मानवीय मूल्यों के बीच समालोचना।
2. मूल्य आधारित शिक्षा और नैतिक मूल्यों के परिमाणों में विवेचन।

सैद्धांतिक अध्ययन

शिक्षा और मानवीय मूल्य – आज के वैश्विक एवं आधुनिक तकनीकी युग में शिक्षा मानव के विकास के लिए ही नहीं अभी तो प्रत्येक समस्या के समाधान केलिएआवश्यक, प्रारंभिक शिक्षा चाहे वह माता–पिता से प्राप्त हो, समाज से प्राप्त हो, स्कूल से, सभ्यता संस्कृति से विकसित हुई हो। यह शिक्षा मनुष्य में विभिन्न प्रकार के जीवन कौशल को उसकी आत्मविश्वास की स्थिति को जागृत करने के लिए कार्य करती है। शिक्षा मनुष्य को शोषण के विरुद्ध खड़ा कर सकती है। शिक्षा मानवीय मूल्यों में नैतिक परंपराओं आदर्श, मानवीय, हिंसक, क्रूरर, जैसे विभिन्न प्रकार की स्थितियां से निकलने में हमारी मदद करती है। शिक्षणार्थी के विकास में मानवीय मूल्य को विकसित करने के लिए या सीखाने की परंपरा में शिक्षक माता–पिता गुरु समाज या सभ्यता या एक परिवेश जो बालक के मानवीय गुना का विकास करना चाहते हैं वह बालक को प्रेरक कहानियां महापुरुषों की जीवनी विभिन्न प्रकार के बड़े–बड़े धरोहर इत्यादि के माध्यम से बालक में मानवीय गुणों का विकास करते हैं।

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

जैसा कि आरेख में प्रस्तुत है जीवन मूल्य या मानवीय मूल्य के अंदर मनुष्य की भावनाएं उसकी समझ एवं प्रत्येक मनुष्य की एक आत्मनिष्ठा धरणा विद्यमान होती है। मानवीय मूल्य में भावना एवं समझ विभिन्न प्रकार से दृष्टिगत होते हैं। जैसे किसी दूसरे के प्रति मानव के साचने का तरीका उसकी भावना एवं उसकी स्वयं की विचारधारा जो की आत्मनिष्ठा विचारधारा होती है वह उससे अलग नहीं होती है जो जीवन मूल्यों से निर्मित होती है ।

यह उसके विकसित परिपक्वता शिक्षा सभ्यता संस्कृति नैतिक अनैतिक पर्यावरण के प्रति जागरूकता राष्ट्र के प्रति प्रेम सद्भावना सहिष्णुता सत्याग्रह सत्य निष्ठा अनेक प्रकार के गुण सुशोभित होते है इसी कारण मानवीय मूल्यों की आवश्यकता अति आवश्यक होती है बगैर मूल्य की शिक्षा या बगैर मुल्य का धन किसी कार्य का नहीं होता और ऐसे धन का कोई अर्थ नहीं होता है जो बगैर समझ से प्राप्त किया गया हो व्यर्थ होताहै। यही कारण है कि आाज मानवीय मूल्यों की आवष्कयता और महती होती जा रही है।

शिक्षा और नैतिक मूल्य – शिक्षा का नैतिक मूल्यों में एक सम्बन्ध होता है। वर्तमान जीवन मेंभविष्य के लिए एवं वर्तमान नीति आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न प्रकार के निर्णय कोनैतिक मूल्यों के आधार परही तय करते हैं यह प्रत्येक मनुष्य कि उसके मानवीय गुना की विकास की अभिव्यक्ति के आधार पर ही विकसित होते हैं समाज केवह जिस परिवेश में होता है उसकी परिपक्वता के आधार परही वह अपने नैतिक मूल्यों को विकसित कर पता है तत्पश्चात उन नैतिक मूल्यों के आधार पर योग्यता सामाजिक मानसिकता दृष्टि को विचारधारा एवं परस्पर अभिलक्षित होने वाले विभिन्न प्रकार के गुण अभिव्यक्ति जैसे प्रदर्शित होते हैं यदि हम सत्य बोलना, ईमानदारी का पालन करना, प्रेम करना, दया दिखाना (करुणा), मित्रता निभाना, आत्मरक्षा आदि तथ्यों को नैतिक मूल्यों की कसौटी में देखे तो यह गुण प्रत्येक मनुष्य के अलग–अलग हो सकतें है। जैसे मानव में यदि कोई व्यक्ति ईमानदार है तो वह व्यक्ति अपनी ईमानदारी के लिए सत्यता के मार्ग पर चलता है और यह सत्यता से उसके नैतिक मूल्य को अभिव्यक्त करता है सत्य बोलता है सत्य बोलने के लिए उसे विभिन्न प्रकार के उसके द्वारा ग्रहण किए गए मानवीय गुना के आधार तय करता है जैसे पुराने ग्रन्थ के आधार पर उसके नैतिक मूल्यों को प्रदर्शित करता है।

जैसा कि हम जानतें है यह सभी भाव व्यक्ति अपने परिवेश से ग्रहण करता है। समाज में वह जैसे इन गुणों को विकसित होते देखता है। वैसे हि वह अपने नैतिक मूल्यों को भी अपनाता है। क्योकि नैकित मूल्यों का प्रादुर्भाव हमारे समाजिक व्यवस्था से ही होता हैं। यहि कारण है कि स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि 'नैतिक मूल्यों और एक संस्कृति और एक धर्म इन मूल्यों को बनाए रखना कानूनों और नियमों बनाए रखने से बेहतर है।'

वही मानव में उसके नैतिक मूल्य में प्रेम, दया या करुणा की भावनाओं उपस्थित है तो अवश्य ही वहां अपने द्वारा वीकसीत उसमें यह प्रेम या दया की भावना विकसित होगी वह अपने परिवार समुदाय के समावेश के आधार पर विकसित करता है और वह अपने नैतिक मूल्यों को प्रेरित करता है नैतिक मूल्यों के आधार पर हम किसी के द्वारा अभिव्यक्त की गई धरणा किसी जीव के प्रति सोच किसी को बचाने के प्रति विचारधारा को भी समझ सकते हैं।

मानव में मित्रता, आत्मरक्षा के गुणों की परिपक्वता उसके नैतिक मूल्यों से परिलक्षित होती है कि वह अपने मित्रता से संबंधित मित्र के मित्रत्व को कितना प्राथमिकता देता है।

निर्ष्कष व सुझाव – मानवीय मूल्यों को प्रभावित करने वाले कारकों में सभ्यता, संस्कृति, भाषा, धर्म, पर्यावरण एवं भूमि से संबंध, लिंग, मीडिया, सामाजिक परिवेश, नैतिक निर्णय, नैतिक भावनाएं, सहानुभूति, आत्मविश्वास, ज्ञान, इत्यादि। नैतिक एवं मानवीय मूल्य दोनों व्यक्ति को अपने सामाज समुदाय एवं अपने–अपने क्षेत्र विशेष के आधार पर उसके पौराणिक ग्रंथ एवं विभिन्न पहलुओं से प्राप्त होते हैं और यह दोनों ही मानवीय एवं नैतिक मूल्य प्रारंभिक अवस्था से ग्रहण किए जाते हैं।

सामाजिक मूल्य, नैतिक मूल्य, आध्यात्मिक, सकारात्मक, दृष्टिकोण या नकारात्मक दृष्टिकोण प्रत्येक स्तर पर मानव के उद्देश्य के आधार पर कार्य करते हैं यह दृष्टिकोण अपने कार्यक्षेत्र के आधार पर मूल्य प्रदर्शित होते हैं और यह मूल्य की विशेषता होती है कि इसमें आंतरिक भाग को व्यक्ति के व्यक्तित्व से प्रदर्शित किया जाता है और उसके मूल्य में विकसित होते हैं।

अर्थात यदि हमें एक अच्छे राष्ट्र का निर्माण करना हो तो उसके लिए मानवीय एवं सामाजिक नैतिक सांस्कृतिक सभ्यता संस्कृति एवं मूल्यों को उत्ताम श्रेणी के विकसित करना होगा आने वाली पीढ़ी एक अच्छे राष्ट्र के निर्माता के तौर पर विकसित हो सके एवं समाज के सर्वागिण विकास में अपना योगदान दे सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. सिंह बोबिन्द्र, 'मानव जीवन में मूल्यों का महत्व' International Educational Scientific Research Journal, Volume -3 Issue 11 Nov. 2017 peg No. 72-74.
2. अरोरा नीलम, 'मूल्य शिक्षा एवं जीवन कला' कक्षा 6 से 8 राज्य शैक्षणिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद छत्तीसगढ़, रायपुर।
3. कुमार शिवराज, 'शिक्षा में मानव मूल्य और व्यवसायिक, नैतिकता आवश्यकता और महत्व'Online Research Journal JSRSET-1849119 Themed section 28 august 2018 Peg No. 643-648.
4. पवार किरण 2016, 'नैतिक मूल्यों का पर्याय है पर्यावरण शिक्षा यरिसर्च स्कॉलर मेवाड़ विश्वविद्यालय चित्तौड़ राजस्थान' Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education, Vol. XII, Issue No.23.
5. मिश्रा श्रृद्धा, 'प्रतिभाशाली छात्र एवं छात्राओं के मूल्यों तथा समायोजन का अध्ययन' Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language, Online ISSN 2348-3083 August 2022 Peg No.934-940.

6. अमिता ढाका, 2019 'मूल्यपरक शिक्षा एवं योग' शोध मंथन http:/ shodhmanthan.anubooks.com/, https://doi.org/ 10. 31995/shodhmanthan. [{O. 438-441
7. असवाल भरत सिंह, 'मूल्य शिक्षा का जीवन में महत्व एवं आवश्यकता' श्रृंखला ऐक शोधपरक वैचारिक पत्रिका vol-4 Issue-10* June-2017, E: ISSN no.: 2349-980X peg. No. 117-121
8. पाटिल पंकज डॉक्टर सक्सेना सुबोध 2018, 'अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के छात्रों के नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन' International Journal of Research in Social Sciences Vol- 8 Issue ISSN: 2249&2496 Peg no.- 1178 -1185.
9. रमेश पोखरियाल निशंक 2021, 'मूल्य आधारित शिक्षा' प्रभात प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड आशफ अ ली रोड नई दिल्ली प्रथम संस्करण।
10. https://www.jvbi.ac.in/dde/pdf/menu/distance/SLM/BA-II-SOL-I.pdf
11. श्राफ राजेश 'भारत में उच्च शिक्षा का वर्तमान परिदृश्य एवं जीवन मूल्यः राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी शिक्षा व्यवसाय प्रबंधन एवं भारतीय जीवन मूल्य एक चिंतनण' DGAM VIGYATI volume 2 2015 pege No 1 to 4ISSN 2455-2488

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

निमाड की भावपूर्ण विरासत : भितिचित्र

डॉ. रश्मि दीक्षित*

* सहायक प्राध्यापक, पुनमचंद गुप्ता वोकेशनल महाविद्यालय, खंडवा (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – लोक कला जनसाधारण की सहज अभिव्यक्ति है। यह मानव सभ्यता के साथ प्रारंभ हुई और उसके साथ ही निरंतर बढ़ती जा रही है। मानव सभ्यता के धार्मिक विश्वासों और आस्थाओं के साथ बलवती होती जा रही है। लोक कला का विकास आदिम कला से ही माना जाता है। आदिम काल मनुष्य की वह अवस्था है जब वह घने जंगलों में रहता था और संघर्ष में जीवन जीता था। विपरीत परिस्थितियों में स्वयं को सुरक्षित रखने का प्रयत्न करता था। इन विपरीत परिस्थितियों से जूझते हुए भी उसने सौंदर्य भावनाओं को व्यक्त करने का प्रयत्न किया। उसने जीवन संघर्ष को विभिन्न अवसरों पर महसूस किया और इसी सौंदर्य बोध का विकास अपने परिश्रम से निरंतर करता गया। कला के रूपों की यह विकास यात्रा किसी एक स्थान से संबंधित नहीं है वरन् यह समस्त मानव जाति से संबंधित है। यह कला मानस की प्रेरणा से ही बढती है और मानस को ही दिखाती है। लोक कला आत्मिक शांति, मर्यादा एवं मंगल की भावना से ओतप्रोत रहती है ।लोक कला अपने परंपरागत विश्वास, धारणाओं, आस्थाओं और रचनात्मक संकेतों से प्रेरणा लेकर बढ़ती जाती है। इसका उदय समाज के रीति–रिवाजों पर आधारित हैं जो परंपरागत रीति रिवाजों में परिवर्तन के साथ बदलता जाता है।

लोक को जानने से पहले लोक का अर्थ समझना होगा।'लोक' शब्द का प्राचीन भारतीय शास्त्रों में बहुतायत से प्रयोग मिलता है। लोक का अर्थ है देखना या अवलोकन करना। हम पहली बार जब इस लोक में आंखें खोलते हैं या आंखें बंद करते हैं तो मानव इस दौर में कई अनुभवों से गुजरता है और उन्ही अनुभव का ताना–बाना बुनता है, यही लोक हैं। लोक सामान्य जीवन है लोक का अर्थ गूढ भी है, तथा व्यवहारिक ज्ञान भी है। लोक में भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों मिले हुए हैं। सभी व्यक्ति किसी ना किसी परंपरा से पूर्ण या आंशिक रूप से जुड़े हुए हैं। लोक में जन्म से लेकर मृत्यु तक सभी गतिविधियां आ जाती है। लोक के लिए अंग्रेजी में 'फोक' शब्द का प्रयोग किया गया है जो मनुष्य हजारों विश्वास और रीति–रिवाजों, व्यवहारों, परंपरा और संकल्प से बनाता है। जहां तक मनुष्य की कल्पना पहुंचती है वहां तक लोक की सीमा मानी गई है।

लोक कला– मनुष्य के पुस्तकीय ज्ञान से भिन्न व्यवहारिक ज्ञान पर आधारित विचारों की अनुभूति की अभिव्यक्ति लोक कला है। जिसकी उत्पत्ति धार्मिक भावनाओं, अंधविश्वासों के निराकरण और अलंकरण प्रवृत्ति के जातिगत भावनाओं की रक्षा से हुई है। जैसे–जैसे मानव सभ्यता का विकास होता गया लोक कलाएं विकसित होते गई है। इसे कुछ विद्वानों ने कृषकों की कला कहा है। लोक कला मंगल का भाव अपने में समाहित किए हुए सौंदर्य भाव उत्पन्न करती है जिसमें मंगल की भावना निहींत होती है। भारत की सांस्कृतिक का लोक कलाओं से गहरा रिश्ता है। इसी रिश्ते के कारण लोक कलाएं आज इस परंपरागत रूप में विकसित होती आई है, जो लोक कथाओं, लोक गाथाओं, लोकनाट्य, लोक गीत और लोक नृत्य, लोक वाद्य संगीत, लोक चित्र और मिथकों के रूप में युगों से चली आ रही है। इसका मूल कभी बदलता नहीं लेकिन समय एवं परिस्थितियों के अनुसार इसमें आंशिक परिवर्तन होते रहते हैं। लोग चित्रों की परंपरा प्रचलित बहुत प्रचलित है तथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को धरोहर के रूप में उपहार में दी जाती है ताकि इन चित्रों के माध्यम से नई पीढ़ी कलात्मकता को समझ सके। लोक चित्रों के माध्यम से कितनी लोक कथाओं का प्रस्तुतीकरण किया जाता है जिसमें लोक नायकों की शक्ति सदैव विद्यमान रहती है।

लोक कला परंपरागत होती है, जनसाधारण के लिए शुभ और मंगल दायक होती है। लोक कला समग्र रूप से ज्यामिति एवं अलंकारिक होती है। लोक कला में जो अभिप्राय एक बार में प्रचलित हो जाता है वह शताब्दी तक चलता रहता है। यह किसी आकृति के लिए निश्चित नहीं है।यह सर्वभोमिक होती है सबके लिए होती है। इसके स्वरूप संपूर्ण प्राप्त होते हैं। यह रीति–रिवाजों परंपराओं एवं विभिन्न सामाजिक संस्कारों के लिए प्रचलित होती है। यह नैसर्गिक एवं प्राकृतिक होती है जो सरल हृदय से प्रस्फुटित होती है । मनुष्य के प्रति भावना एवं रंगों की अभिव्यक्ति होती है जो प्रत्येक व्यक्ति में समाई होती है यह संसार के सभी प्राणी एवं आत्मा से संबंधित है एवं जनता के बीच की एक कड़ी है।

मध्यप्रदेश के निमाड में भी ऐसी बहुरंगी कलाओं के दर्शन होते हैं। खासकर यहां की लोक चित्रकला, जो अपनी अलंकारिता एवं पारंपरिक वैभव से संपूर्ण निमाड़ का जनजीवन सराबोर करती है। शायद ऐसा कोई पल नहीं जिस में चित्रकला से मनुष्य का विकास नहीं हुआ हो। सदियों से लोक कला चित्रांकन की विधियों में पौराणिक धार्मिक मान्यताओं, लोक कथाओं, आचार विचारों एवं आस्था का झलक विद्यमान रहती है।

निमाड़ भौगोलिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत संपन्न अंचल रहा है। भारत के नक्शे में विंध्य एवं सतपुड़ा के बीच जो भाग है वह निमाड़ के नाम से प्रसिद्ध है। शासन व्यवस्था की दृष्टि से निर्माण को दो भागों में बांटा है पश्चिमी निमाड़ एवं पूर्व निमाड। नर्मदा घाटी के इतिहास से पता चलता है कि मानुष यहां ढाई लाख वर्ष से भी पहले आबाद हो चुका था। ऐतिहासिक दृष्टि से भी निमाड अपने आप में बहुत समृद्ध है। यहां राजा मांधाता वंश से लगाकर होल्कर वंश अहिल्या तक का इतिहास जुड़ा हुआ हैं। संपूर्ण निर्माण

महिष्मति इतिहास के इर्द-गिर्द घूमता है। निमाड़ का इतिहास रामायण काल से महाभारत काल तक जुड़ा हुआ है। यह मुगल शासन काल में भी प्रसिद्ध हुआ। जिस क्षेत्र का इतिहास कितना प्राचीन है वहां की लोक कलाएं भी अवश्य पुरातन होगी जो परंपरा के अनुसार आत्मसात हो गई है। निमाड़ के लोक चित्र रीति-रिवाजों, मंगल भावना, पूजा, श्रद्धा एवं आस्था के परिचायक हैं। यहां कोई भी मांगलिक कार्य बिना लोक चित्रों की पूर्ण नहीं होता। वर्षभर कोई ना कोई अंकन चलते रहता है। भिन्न-भिन्न विसंगतियों के बावजूद निमाड़ की चित्र परंपरा अपने आंतरिक सौंदर्य के बल पर समूचे विश्व की संवेदनाओं को स्पर्श करने की ताकत रखती है।

निमाड़ की लोक चित्र परंपरा- निमाड़ की धरती पुरातन समय से अपनी संस्कृति की कथा कहती आई है। यहां की धरती का इतिहास प्राचीन अनूप जनपद और पौराणिक नगरी महिष्मति के इर्द-गिर्द घूमता है। अंचल की कला, एवं परंपरा का मुलाधार यहां के जीवन में रस की प्रकृति और धरती की संस्कृति है। निमाड़ी लोक चित्र निमाड की जातिय समृद्धि और संस्कृति के अनुभव का संसार है। निमाड में लोक चित्रों की लंबी परंपरा है, हर बार कोई ना कोई त्यौहार आता है और उससे संबंधी चित्र बनाए जाते हैं। हरियाली अमावस्या पर जिरोती, नाग पंचमी पर नाग भित्ति चित्र, क्वार मास में संझा, नवरात्रि में नवरात्रि, दशहरे के दिन भूमि चित्रण, दिवाली पर हाथे या मांडने, दिवाली की पड़वा पर गोबर से गोवर्धन, भाई दूज बनाए जाते हैं।

विवाह में कुल देवी का भित्ति चित्र दरवाजों पर बनाना दूल्हा दुल्हन के मस्तक पर कवेली भरना, पुत्र जन्म पर पगल्या का शुभ संदेश अंकन, गणगौर की मूर्ति, साथिया, चौक, कलश, मांडना आदि, शरीर पर गुदना लोक चित्र परंपरा है। निमाड के चित्रों में कहीं ना कहीं ऐतिहासिक चित्रकला की रेखाएं भी आकृतियों के रूप में उपस्थित होती है जो सहज अभिव्यक्ति है जिसमें मंगल भावना समाहित है।

निमाड़ की लोक संस्कृति नगर एवं गांव में फैली हुई जनता के संस्कार हैं इसमें मंगल की भावना निहींत है। मंगल शाश्वत सत्य है, आध्यात्मिक विकास है, संसार के समस्त प्राणियों को आत्मसात कर प्रेम, करुणा उपहार, क्षमा, अहिंसा का भाव है। अंत:करण की पवित्रता की ओर बढ़ने का माध्यम है मनुष्य की पशुता को समाप्त कर उसे ईश्वर बनाने की राह है। संस्कार परंपरागत होते हैं, उसमें आनंद की प्राप्ति होती है, और आनंद मंगल भावना है।

मांगलिक कार्य, पूजा-पाठ, पर्व त्यौहार लोक चित्र में विशिष्ट स्थान रखते हैं। संझा निमाड़ी कन्याओं का अनोखा त्यौहार है। अंतिम दिन संझा की लोक कला का भव्य रुप भित्ति पर उतर आता है। इसी प्रकार की महिलाओं में मांढने की प्रथा है। निमाड जिरोती, नाग, दशहरा, गोवर्धन पूजा, भाई दूज, मांडने आदि को सहेज के रखे है। लोक कथाओं के माध्यम से देवी-देवताओं को निमाड़ी लोक कलाओं में रेखांकन के द्वारा स्थापित किया है चित्रों में पार्वती का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है लोक कथाओं पर भी उनका प्रभाव है।

चित्रों को प्रभावशाली बनाने के लिए धरा पर शाश्वत आराध्य सूर्य एवं चंद्रमा, निमाड में पाए जाने वाले सांप बिच्छू आदि स्वास्थ्य एवं जन जीवन में प्रेम के प्रतीक से जुड़कर फुगरी खेलती बालाएं चित्रित की जाती है। सर्व सिद्धि के दाता गणेश की मूर्ति आटे द्वारा बनाई जाती है। जिरोती निमाड़ के सर्वाधिक व्यापक शैली है।जिसका मूल्यांकन करते हुए श्री रामनारायण उपाध्याय लिखते हैं 'यदि निमाड में जिरोती नही होती तो दीवारें त्यौहारों में चित्रों से सुनी ही रहती।' नाग पंचमी और जिरोती भित्ति चित्र गेरू एवं लाल चटक रंग से दीवार पर उकेरी जाती है तथा गोबर से नाग देवता को अलंकारिक रूप में सूचित किया जाता है। चित्र पूजा के माध्यम से जन मन में लोक कला के सांस्कृतिक स्वरूप को जीवित रखता है। गोबर मिट्टी में कला के रूप में दीपावली के भाईदूज एवं गोवर्धन पड़वा के दिन दृष्टिगोचर होता है। लोकजीवन जितना प्रगतिशील होता है कला के रूप का उपयोग करने में हिचकिचाता नही। निमाड की लोक कला लोगो की सहभागिता को अभिव्यक्त करती है। इस प्रकार समारोह पूर्वक सहभागिता से कला के प्रति प्रेम बना रहता है।

निष्कर्ष-मध्यप्रदेश के निमाड़ अंचल लोक कलाओं से समृद्ध है। लोक कला लोक जीवन की अमूल्य निधि है। रंग एवं रेखाओं के द्वारा विभिन्न आकृतियों की अभिव्यक्ति की लोक कला है और लोक कला से ही लोग चित्र का सृजन होता है। निमाड़ लोक कलाओं का घर है लोक कला आज के लोग की धरोहर है निमाड़ अंचल का वास्तविक स्वरूप निमाड की परंपराएं, निमाड की संस्कृति एवं सभ्यता निमाड के लोकगीत, लोक संगीत ,लोक कथा, लोक नाट्य एवं चित्रों में देखा जा सकता है।लोक चित्र में बनाने की आस्था और विश्वास तो है ही, प्रतीकों का समावेश उनकी सामाजिक उपस्थिति को दर्शाता है। लोक चित्रों के विषय प्राय: पारंपरिक, पौराणिक एवं सामाजिक होते हैं। देवी देवता लोक चित्रों के मुख्य विषय होते हैं। प्रत्येक अंचल के स्थानीय देवी-देवताओं के चित्र अंकन में लोक चित्रों में होता है। पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि, वायु पांच तत्वों से मिलकर चित्र बनता है। चित्र में सारी प्रकृति मौजूद रहती है। गीत,सत्य कथा, वार्ता, मिथक सब चित्र में दर्शाए जाते हैं। जीवन की सारी गतिविधियां लोग चित्रों में दृष्टिगोचर होती है। लौकिक एवं अलौकिक दोनों ही संसार को हम लोक चित्रों में देख सकते हैं। प्रकृति चित्र की प्रेरणा मात्र नहीं होती है बल्कि चित्र में प्रकृति अपना विस्तार करती है। मनुष्य एवं प्रकृति में द्वैत की प्रेरणा पाई जाती है। जब मनुष्य प्रकृति एवं दिव्यता को अपना अभिन्न अंग बना लेता है तब वह दिव्यता से विहीन जड़ प्राकृतिक नियम से संचालित होने लगता है तथा मनुष्य अपने को भी प्रकृति समझने लगता है और फिर लोक कला का सृजन होता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. रेखा श्रीवास्तव का आलेख : लोक कला।
2. अंजली पांडेय: निमाड की सांस्कृतिक लोक कलाएं।
3. वसंत निरगुणे -निमाडी संस्कृति और साहित्य।
4. रामनारायण उपाध्याय - लोक साहित्य समग्र।

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

नागार्जुन के उपन्यासों में स्त्री पात्रों की भूमिका

श्रीमती गंगा *

* शोधार्थी (हिन्दी) बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना - नागार्जुन को हम आज बाबा, वैद्यनाथ मिश्र या आधुनिक युग का कवि कहते है, उनके साहित्य में अंगारों सा ताप, जाति, ऊँच-नीच तथा आत्मीयता से भरा व्यक्तित्व उभर कर आता है। नागार्जुन का जन्म, उनके ननिहाल सतलखा ग्राम पोस्ट मधुबनी जिला दरभंगा में 30 जून 1911 को हुआ था। उनके पिता का नाम श्री गोकुल मिश्र तथा माता का नाम उमादेवी था। सामाजिक चेतना, वैचारिक प्रतिबद्धता और अभिव्यक्ति कौशल की दृष्टि से इनकी रचनाएं अद्‌भुत है। हिन्दी कविता को छायावादी संस्कारों से मुक्त कर उसके सहज विकास की एक दिशषा निश्चित करने में इनका बहुत बड़ा योगदान रहा है, अपनी अभावग्रस्त पारिवारिक स्थिति होने के बावजूद वे सदैव संघर्ष करते हुए भी मस्त यायावर, जिजीविषा से भरपूर जीवन जीने वाले बाबा नागार्जुन को सभी हिन्दी के प्रगतिशील कवि के रूप में ज्यादा जानते पहचानते है, बाबा नागार्जुन ने कई उपन्यास, कहानियाँ, अनेक निबंध, संस्मरण, डायरी, नाटकों की रचना की है। बाबा नागार्जुन का अनुभव - संसार इतना गहरा कहने की अभिलाषा इतनी सघन और संवेदशीलता इतनी तीव्र थी कि उन्हें अपने कथन पर अधिक जोर देकर कह देने की जितनी तीव्र धुन थी, उतनी कैसे और कितना कह दें इसकी नहीं। फलस्वरूप कुछ आलोचक उनकी रचनाओं में शैलीगत कसावट की कमी को रेखांकित करते हैं। संस्कृत, हिन्दी, मैथिली, बंगला, पालि, प्रजाबी, गुजराती आदि भाषाओं के जानकार बाबा को भाषा के प्रति गहरा लगाव था। बाबा नागार्जुन की रचना में भी भाषा की सहजता, सरलता, सजगता व पात्रतानुकूलता दिखाई देती है। उच्च वर्ग से लेकर निम्न वर्ग, ग्रामीण नागरिक, स्त्री-पुरूष के भावगत मानसिक पार्थक्य को वे बखूगी व्यक्त करते हैं, उनकी भाषा यथार्थ जीवन संदर्भो की भाषा है, उनके उपन्यासों की भाषा संरचना में तत्सम, तद्‌भव, अरबी, फारसी, अंग्रेजी, लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग भी बखूबी हुआ है। घुट-घुट कर मरना नहीं, मर-मर कर भी जीने का संकल्प, अदम्य जिजीविषा, संगठित होकर लड़ने, रूढ़ियों को तोड़कर आगे बढ़ने, चेतन होने का भाव उनकी रचनाओं के कथ्य में **गुम्फित** है, उनका कथन यथार्थ का वर्णन करके मात्र रूक नहीं जाता अपितु विकल्प खोजता दिखाई देता है। ऐसे बाबा शारीरिक रूप से आज इस संसार में चाहे न हों, पर उनके विचार, उनकी संघर्ष-भावना व आस्था उनकी रचनाओं के माध्यम से आगामी पीढ़ियों तक कायम रहेगी।

शोध पत्र का उद्देश्य :

1. नागार्जुन जी का जीवन परिचय।
2. व्यक्तित्व एवं कृतित्वों को जानना।
3. बाबा नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में स्त्री के कौन-कौन से आयामों को अंकित किया है? यह जानना।
4. बाबा नागार्जुन के उपन्यासों में महिलाओं के विकास हेतु सामाजिक चेतना को समझना।
5. नागार्जुन के उपन्यासों में स्त्री चेतना एवं उसके विकास के बारे में जानना।
6. सामाजिक क्रांति में स्त्री का योगदान।
7. संगठित समाज की परिकल्पना में स्त्री का योगदान।

नागार्जुन के उपन्यासों की समीक्षा

उनका पहला उपन्यास सन् 1948 में प्रकाशित हुआ जिसका नाम **'रतिनाथ की चाची'** था। रतिनाथ की चाची उपन्यास मिथिलांचल की विधवा नारियों की दयनीय दषा को अभिचित्रित करता है, साथ ही यह उपन्यास प्रेम, वात्सल्य और राग-द्वेष की अनुभूतियों से सम्मुक्त मानव की कमजोरियों और उन कमजोरियों के बीच से उपजी ताकत को रेखांकित करता है, इस उपन्यास में बाबा नागार्जुन ने विधवा जीवन की त्रासदी को अभिव्यक्त किया है। इस उपन्यास में मुख्य पात्र के रूप में रतिनाथ की विधवा चाची गौरी की शारीरिक, मानसिक यंत्रणा को चित्रित किया गया है उपन्यास में विधवाओं की दयनीय अवस्था एवं उनके शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक शोषण को रूपांतरित किया गया है। गौरी के संघर्षो की समाप्ति उसकी मृत्यु के साथ ही होती है। इसमें बाबा नागार्जुन ने मिथिला के रहन सहन, सामाजिक जीवन व वहाँ की संस्कृति को उकेरते हुए अनमेल विवाह, विधवा-समस्या, जाति प्रथा, पिछड़ापन आदि समस्याओं को अपने व्यक्तिगत जीवन अनुभवों के आधार पर अत्यंत संवेदनशील वर्णन किया है। गौरी का कहना था- 'हे भगवान, अगले जन्म में मैं भले चुहिया होऊँ, भले ही नेवला, मगर चेतनामय इस मानव समाज में फिर कभी न पैदा होऊँ।' गौरी का यह कथन समाज पर करारा व्यंग्य है। रतिनाथ की चाची उपन्यास की अनेक घटनाएँ नागार्जुन के अपने जीवन से सम्बद्ध घटनाएँ है। यह भी माना जाता है कि यह एक तरह से बाबा की अपनी चाची को श्रद्धांजलि है।

रतिनाथ की चाची नामक उनके उपन्यास से भी ऐसा ही आभास होता है, इसमें आठ-दस साल की मासूम रतिनाथ की चाची की करूण कथा कही गई है, पर सिर्फ चाची का जीवन ही इस उपन्यास में अभिव्यक्त नहीं हुआ है, इसमें पूरे मिथिलांचल का ग्रामीण जीवन भी प्रतिबिंबित हुआ है, एक और बात जो उपन्यास को कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण बनाती है, इस उपन्यास की कथा रतिनाथ के माध्यम से व्यक्त हुई है। रतिनाथ ने अपने ग्रामीण परिवेशष को जैसा अनुभूत किया, वहीं यथार्थ बनकर पाठक के सामने आया है। वह व्यक्ति के नजरिये से ही सोचता है, पर अपने परिवेश से

उसे गहरा मोह है, उसकी समझ, नासमझी, अपरिपक्वता और संस्कार पाठकों के समक्ष हैं, उनका व्यर्थ उदात्तीकरण नहीं किया गया है।

बाबा का दूसरा उपन्यास **'बलचनमा'** सन् 1952 में प्रकाशित हुआ, इस उपन्यास में स्वातंत्र्योत्तर भारत के शासक-शोषक वर्ग की काली करतूतों से उत्पन्न विडम्बनाजनक कटु यथार्थ को उसके शोषण का शिकार होते ईमानदार, साधनहीन आम जनता, मजदूर, किसान की पीड़ा को चित्रित किया गया है। हम आये दिन होटलों में काम करते, बोझा उठाते, रिक्षा खींचते, पटाखे बनाते, घरेलू नौकर एवं बाल मजदूरों के बारे में पढ़ते या सुनते है। इस उपन्यास का नायक **बलचनमा** भी बचपन से ही बाल मजदूर बन गया है। बाल मजदूरों की इन दिनों बड़ी चर्चा है लेकिन अभाव, गरीबी किस तरह बच्चों को मजदूरी करने को विवशष कर रही है इसका चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। **बलचनमा किसान जीवन के अभावों, दर्द व विषमताओं का भी मूर्तिमान रूप है।** यह आम होते हुए भी तब खास बन जाता है जब वह संघर्ष की राह पर चलने का निर्णय करता है। प्रेमचंद का होरी ग्राम संस्कृति के मात्र ध्वंसावशेष को बताता है, वहां बलचनमा भावी निर्माण का स्वप्न जगाता है गांव से नगर की ओर बड़ी आशा, आकांक्षा, उम्मीद से देख रहे व्यक्ति का अंत में नवीन अनुभूति लेकर नगर से गांव लौटना प्रभावकारी है। इसके द्वारा लेखक ने पाठक और समाज में बड़ा ही सुन्दर स्वप्न संजोया है, अपनी जड़ और जमीन की ओर पुन: वापस लौटने का।

सन् 1953 में **'नई पौध'** के नाम से प्रकाशित नागार्जुन का उपन्यास पहले मैथिली में **'नवतुरिया'** नाम से लिखा गया था। इसमें मिथिला के पांचवे-छठवें दशक का परिवेश लिखा हुआ है। गरीबी से परेशान होकर कन्याओं को किसी को बेच देने की या उम्र दराज व्यक्तियों के हाथ बांध देने की सामाजिक आर्थिक समस्या ने लेखक को विचलित किया है, यह स्थिति इस उपन्यास की पृष्ठभूमि बन गयी। इसमें दहेज-प्रथा, अनमेल-विवाह और नारी विक्रय का यथार्थ अंकन हुआ है। जब 60 वर्षीय चतुरानन चौधरी 14 वर्षीय बिससेरी से विवाह करना चाहता है, तो गांव के नवयुवक एकजुट होकर उसका विरोध ही नहीं करते बल्कि चौधरी को बारात सहित भगा भी देते हैं और बिसेसरी का विवाह युवा वाचस्पति से करवाते हैं, यह नयी पौध रुढ़ियों के विरूद्ध विद्रोह को दिखाता है।

'दुखमोचन' उपन्यास का प्रकाशन 1956 के जुलाई अगस्त और सितम्बर माह में आकाशवाणी के लखनऊ प्रयाग केन्द्र ने तेरह किश्तों में समग्र रूप से प्रसारित किया था। उपन्यास का नायक दुखमोचन एक आदर्श पात्र है। इस उपन्यास को कथावस्तु अनेको घटनाओं, प्रसंगों के माध्यम से आगे बढ़ती है। दुखमोचन व्यवसाय के लिए कलकत्ता जाते हैं और पांच वर्ष के बाद वापस अपने गांव लौट आने पर अपने गांव टमका कोईली का नवनिर्माण करना चाहते हैं। दुखमोचन के दो भाई थे सुखदेव और नारायण। तीनों का विवाह हो चुका था। दुखमोचन की दो बेटियां थी। पांच वर्ष पूर्व ही उनकी पत्नी का अवसान हो चुका था। सुखदेव की पत्नी सम्पन्न परिवार की होने से अपने मायके में ही रहा करती थी। नारायण की पत्नी और बच्चे गांव में रहते थे, वह स्वयं घर से दूर सरकारी विभाग में था, परिवार के लिए तन, मन, धन समर्पित कर देने वाले दुखमोचन की विधवा मामी गांव में रहती थी, टमका कोईली में मलेरिया और कालाजार ने तबाही मचायी तब चर्मरोग फैलने पर दुखमोचन ने नेताओं अफसरों, मेडिकल कॉलेज के अध्यापकों व छात्रों की सहायता से गंधक, नारियल के तेल और नीम के साबुन की व्यवस्था करवाई। गांव में आग लगने पर बेघर लोगों के पुर्नवसन पर भी बहुत परिश्रम करते हैं, इस प्रकार उपन्यास में दुखमोचन के प्रयासों से गांव के नवनिर्माण की कथा वर्णित की गई है।

1957 में प्रकाशित हुआ उपन्यास **'वरूण के बेटे'** आजादी के बाद भी गांवों की गांव के निम्न वर्ग एवं निम्न जाति के लोगों की बदहाली में कुछ खास परिवर्तन नहीं हुआ। इस बात को बिहार के **'मलाही गोढियारी'** गांव के **मछुआरों की इस संघर्ष कथा को नागार्जुन ने चित्रित किया है**, जिन्हें आजादी नहीं मिली, ऐसे संकटों और अभावों से ग्रस्त मछुआरों की इस स्थिति के कारण है वे जमींदार जो जलाशयों पर कब्जा कर बैठे थे। बाबा बटेसरनाथ के टुनाई पाठक की तरह यहां भी पोखर व चरागाह हड़पते है - बेचते जमींदार है, मछुआरों की व्यथा कथा कहते कहते लेखक जमींदारों के विरूद्ध भोला, मंगल, माधुरी, मांझी जैसे चरित्र जमींदारों से मुकाबला करने के लिए खड़ा करता जाता है। ये चरित्र बाबा बटेसरनाथ और बलचनमा के चरित्रों के परम्परा में एक और कड़ी बन जाते हैं, जो व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष और क्रांति के लिए प्रयत्नरत हैं।

लेखक मानते है कि इस संसार में कई नरक हैं, उनमें से एक **'कुम्भीपाक'** है, पर 1960 में प्रकाशित बाबा के उपन्यास 'कुम्भीपाक' में वर्णित वह कुम्भीपाक नहीं है, अपितु इसमें नगरों- महानगरों एवं निम्न मध्यवर्गीय समाज में अनेक प्रकार के शोषण के शिकार होती स्त्रियों की नारकीय त्रासदी आदि 'कुम्भीपाक' उपन्यास में चम्पा के इस कथन से स्त्री के दु:ख का अनुमान लगाया जा सकता है, **'नहीं, मैं खुश नहीं हूँ। कोई भी और खुश नहीं है किन्तु।** अच्छे घर की अच्छी बहुओं से जाकर पूछो, वे भी खुश नहीं हैं, जब स्त्री के लिए यूँ भी समाज की विचारधारा संकीर्ण हो, तब हमारे समाज में घर की दहलीज लांघनेवाली नारी के लिए, कुम्भीपाक रुपी नरक में पहुँची नारी के लिए, न कोई सम्मान है, न ही कोई समाधान। बाबा की प्रगतिशील दृष्टि इसी नारी समस्या की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है, और ऐसी नारियों को कुम्भीपाक के उस दलदल से निकाल कर नए जीवन की ओर प्रयत्नशील दिखाती है।

इस तरह प्रगतिशील नारी चरित्रों के माध्यम से लेखक ने यह सन्देष दिया है कि नारी को अपनी अस्मिता स्थापित करने के लिए अपनी शक्तियों को पहचानकर उनका विकास करना पड़ेगा।

नागार्जुन द्वारा रचित उपन्यास '**हीरक जयंती**' सन् 1961 में प्रकाशित हुआ, इसमें सामाजिक विडम्बनाओं के साथ-साथ राजनीतिक भ्रष्टाचार को बेनकाब करने के लिए लिखा गया है, स्थान-स्थान पर चलने वाले हीरक जयंतियों के समारोह, मात्र स्वहित के लिए कैसे मनाया जाता है, इसका यथार्थांकन इस कृति का वैशिष्ट्य है। इस उपन्यास का मुख्य पात्र **नरपत बाबू एक ऐसा नेता है, जो अपने आप को आम जनता का सेवक बताता है, पर उन्ही का शोषण करता रहता है,** उसी के काले कारनामों का परिचय लेखक ने आत्मकथा के रूप में करवाया है।

1963 में प्रकाशित **'उग्रतारा'** में विधवा उगनी की कथा के माध्यम से लेखक ने एक विवश स्त्री की करूण कथा को नये सिरे से अंकन किया है। वह उस रूढ़िवादी समाज को कटघरे में ला खड़ा करता है, जो स्त्रियों के द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में अपनी योग्यता व कार्यक्षमता को प्रमाणित करने के बावजूद कॉलेजों से पढ़-लिखकर निकली लड़कियों को उनकी प्रतिभा और आजादी को अपनी पुरानी रूढ़िगत मान्यताओं के कारण लील लेता है। लेखक ने यहाँ भी दहेज, अनमेल विवाह के साथ-साथ प्रेम संबंधों की वैधता- अवैधता

जैसी समस्याओं के साथ स्त्री- शिक्षा को महत्व दिया है। इस उपन्यास में नागार्जुन की प्रेम दृष्टि भी अद्भुत समय से बहुत आगे की और क्रांतिकारी थी, उगनी और कामेश्वर के माध्यम से एक क्रांतिकारी विचार उपस्थित करते हुए लेखक ने अपनी प्रगतिशील दृष्टि का परिचय दिया है।

सन् 1968 में राज्यपाल एंड संस, दिल्ली से **'इमरतिया'** और किताब महल इलाहाबाद से 'जमनिया का बाबा' नाम से प्रकाशित उपन्यास नागार्जुन का एक और महत्वपूर्ण उपन्यास है। मैथिली भाषा में 1946 में प्रकाशित यह उनका प्रथम उपन्यास है, इस उपन्यास में **साधु-संतो के कुचक्रों के बीच फंसी भावुक स्त्री इमरतिया की कथा के माध्यम से मठों की दुराचारपूर्ण जिंदगी, धार्मिक अंधविश्वास, साधु-संतो के पाखण्ड का बाबा ने बड़े साहसपूर्ण तरीके से पर्दाफाश किया है।** भारत के लोगों की धर्मांधता और अंधविश्वास का लाभ उठाकर, रामनामी ओढ़े न जाने कितने प्रडितों, सिद्ध-संत, मठाधीशों की काली करतूतें आये दिन चौंकाती रहती हैं, इस उपन्यास में जमींदारी उन्मूलन के साथ जमनिया और लखनौती के दो तीन जमींदारों द्वारा जमीन हथियाने के उद्देश्य से बहुत बड़े भू-भाग पर जमनिया मठ की स्थापना की जाती है। पापी दुराचारी, हत्या के अभियोग से भागते-फिरते मुसलमान जुलाहे की महंत के रूप में नियुक्ति के बावजूद इसका वास्तविक संचालन जमींदारों, तस्करों, व्यापारियों के हाथ में है। मठ के तस्करी- व्यापार का केन्द्र हो जाने की इस कथा में बाबा ने कुकृत्यों में लिप्त ऐसे मठों व पाखंडी संतों पर व्यंग्य किया है। धार्मिक भ्रमजाल का ऐसा विष्लेषण हिन्दी के बहुत कम उपन्यासों में हुआ है।

पहले मैथिली में 1946 में रचित पारो का हिन्दी अनुवाद 1975 मुं. कुलानन्द मिश्र ने किया। **'नई पौध'** की तरह इस उपन्यास के मूल में पुन: बेमेल विवाह, दहेज, बाल-विवाह की समस्याओं को दर्शाया गया है। साथ ही इस उपन्यास में मिथिला के रीति-रिवाजों व घटनाओं का सुन्दर अंकन भी किया है। नारी हृदय की सम्पूर्ण वेदना को इस उपन्यास में बड़ी ही मनोवैज्ञानिकता से चित्रित किया गया है। नायिका पारो परम्परावादी पत्नी की तरह समझौता करने को तैयार नहीं है, उसकी ईश्वर से यह प्रार्थना उसका वेदना की मार्मिकता की द्योतक है, 'हे भगवान! लाख दण्ड दे, मगर फिर औरत बनाकर इस देश में जन्म नहीं दे।' **पारो, वरूण के बेटे, उग्रतारा** आदि उपन्यासों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि **वे हमारे समाज के उन कोढ़ों, कलंकों को पकड़ते हैं, जो बरसों से हमारी चिंता का कारण बने हुए हैं।**

सन् 1979 में प्रकाशित बाबा नागार्जुन के अंतिम उपन्यास **'गरीबदास'** में बाबा नागार्जुन ने वर्ग-संघर्ष के स्थान पर शोषित जनता की मुक्ति हेतु समन्वयवाद का मार्ग दिखाया है, नायक गरीबदास अपने आदर्श बाबासाहेब अम्बेडकर के मार्ग का अनुसरण कर दलित उत्थान के अनेक प्रयास करता है। लेखक ने इसमें भी सामाजिक समरसता व विकास के अपने स्वर को वाणी दी है। स्वाधीनता के पश्चात् देशवासियों को जिस मुक्ति, समता और शांति की कामना थी, वह खण्डित हुई तथा राजनीतिक पतन, चरित्र-विघटन, आर्थिक विषमता, महंगाई, **मानव संबंधों एवं मूल्यों में हुए ह्रास और नैतिक पतन ने मोहभंग की स्थितियाँ उत्पन्न कर दी थीं।** हत्या-लूटपाट, विद्वेष, घृणा, अविश्वास, शोषण भ्रष्टाचार जैसे विभिन्न विकराल समस्या हमारे विकास, हमारी उन्नति को ग्रस रहे थे। इस यथार्थ का स्वाभाविक अंकन स्वातन्त्रयोत्तर उपन्यासों में हुआ। नागार्जुन जैसे प्रगतिशील रचनाकारों ने इसके साथ-साथ तानाशाही, शोषण कारी शक्तियों के खिलाफ जनमत तैयार करने का कार्य, विरोध-विद्रोह और संघर्ष की प्रेरणा देने का कार्य भी अपने उपन्यासों के माध्यम से किया। नागार्जुन के लगभग सभी उपन्यासों में इन मुद्दों को देखा जा सकता है, जहाँ तक विचार का सम्बन्ध है, उन्होंने वर्ग-संघर्ष के **प्रेरक मार्क्सवाद को महत्वपूर्ण माना, परन्तु देशहित व जनहित से बढ़कर उससे सर्वोपरि उनके लिए कुछ नहीं था।** एक लेखक होने के नाते उनकी रचनाओं में सामान्यजन के **प्रति, शोषितों के प्रति पक्षधरता साफ़-साफ़ दिखाई देती है।**

शोध प्रविधि – कोई भी शोध कार्य बिना क्रिया विधि एवं शोध प्रविधि के बिना सम्भव नहीं हो सकता इसलिए शोधकर्ता को कोई एक विधि के द्वारा शोध कार्य करना आवश्यक है। अनुसंधान की शोध प्रविधि में क्रियात्मक शोध के साथ विश्लेषणात्मक शोध प्रविधि का प्रयोग करके शोध समीक्षा प्रस्तुत करना होता है। शोध प्रविधि में हमें शोध कार्य को प्रस्तुत करने में नागार्जुन के उपन्यासों का गहन अध्ययन करना है, साथ ही उनके उपन्यासों में स्त्री पात्रों का विश्लेषण करना है। नागार्जुन के उपन्यासों में स्त्रियां हर परिस्थिति का सामना करके समाज के सामने उठ खड़ी हुई है तथा नागार्जुन ने स्त्रियों को कभी बेबस कमजोर नही होने दिया है। इन सभी समस्याओं का विस्तृत विश्लेषण करना शोध कार्य की मुख्य प्रविधि है।

बाबा नागार्जुन को ग्रामीण - जीवन, वहाँ के वातावरण, वहाँ की समस्याओं की गहरी जानकारी थी। स्वयं उस परिवेश में रहने के कारण वह सब उनका देखा-भोगा हुआ था। इसी का असर उनकी रचनाओं में ग्रामीण-जीवन के चित्रण के रूप में दिखाई पड़ता है। इसके कारण आँचलिकता भी उनके उपन्यासों में दिखाई देती है, **परन्तु यह आँचलिकता 'मैला आँचल' की तरह परम्परागत रूप में नहीं है क्योंकि उनका लक्ष्य अंचल का चित्रण नहीं अपितु उस शोषित- पीड़ित समाज व उनके संघर्षों का अंकन है,** जिसे उन्होंने अपने अंचल से उठाकर अपने उपन्यासों में प्रतिष्ठित कर दिया। बलचनमा हो, इमरतिया हो या दु:खमोचन हो सभी पात्र अपने - अपने परिवेश में संघर्षरत हैं । नागार्जुन की इन रचनाओं में विशेषकर मिथिलांचल, वहाँ की प्रकृति, लोकजीवन, वहाँ के लोकविश्वास और परम्पराएँ मूर्तिमान हो उठे है। शोभाकांत जी के शब्दों में **'नागार्जुन के उपन्यास अंचल विशेष पर केन्द्रित होते हुए भी किसी संकीर्ण अर्थ में आंचलिक नहीं हैं, वे सम्पूर्ण देश या जमाने की सच्चाई को ठोस रूप में सामने लाते हैं।'**

निष्कर्ष- संसार को इतना गहरा कहने की उनकी अभिलाषा इतनी सघन और संवेदनशीलता इतनी तीव्र थी कि उन्हें अपने कथन पर अधिक जोर देकर कह देने की जितनी तीव्र धुन थी, उतनी कैसे और कितना कह दें इसकी नहीं। फलस्वरूप कुछ आलोचक उनकी रचनाओं में शैलीगत कसावट की कमी को रेखांकित करते हैं। संस्कृत, हिन्दी, मैथिली, बंगला, पालि, प्रजाबी, गुजराती आदि भाषाओं के जानकार बाबा को भाषा के प्रति गहरा लगाव था, यूँ भी आधुनिक कथा साहित्य में भाषागत उदारता देखी जाती है और आलोचक कृत्रिम भाषा की अपेक्षा सहज भाषा के प्राकृत रूप का प्रयोग ही श्रेयस्कर मानते हैं। बाबा नागार्जुन की रचना में भी भाषा की सहजता, सरलता, सजगता व पात्रतानुकूलता दिखाई देती है। उच्च वर्ग से लेकर निम्न वर्ग, ग्रामीण, नगरीय, स्त्री-पुरूष के भावगत मानसिक पार्थक्य को वे बखूबी व्यक्त करते हैं, उनकी भाषा यथार्थ जीवन संदर्भो की भाषा है। उनके उपन्यासों की भाषा संरचना में तत्सम, तद्भव, अरबी, फारसी, अंग्रेजी एवं लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग भी बखूबी हुआ है। घुट-घुट कर मरना नहीं,

मर–मर कर भी जीने का संकल्प, अदम्य **जिजीविषा, संगठित होकर लड़ने, रूढ़ियों को तोड़कर आगे बढ़ने, चेतन होने का भाव उनकी रचनाओं के कथ्य में शामिल है,** उनका कथन **यथार्थ का वर्णन करके मात्र रूक नहीं जाता** बल्कि विकल्प खोजता प्रतीत होता है। ऐसे बाबा इस संसार में चाहे शारीरिक रूप से न हों, पर उनके विचार, उनकी संघर्ष–भावना व आस्था उनकी रचनाओं के माध्यम से आगामी पीढ़ियों तक कायम रहेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन सन् 1998 ।
2. बाबा बटेसरनाथ, नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन सन् 1954, ।
3. कथाकार नागार्जुन, डॉ. जगन्नाथ प्रडित राधा पब्लिकेशन, 2005।
4. कुम्भीपाक, नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन सन् 1987।
5. नागार्जुन, सुरेशचन्द्र त्यागी, आशिर प्रकाशन।
6. उग्रतारा, नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन , सन् 1987।
7. पारो, नागार्जुन।
8. नागार्जुन: सम्पूर्ण उपन्यास– भाग–2, प्र.सं. 1994 यात्री प्रकाशन, दिल्ली।
9. नागार्जुन के उपन्यास, डॉ. संतोष कौल काक, शोधगंगा।
10. हिन्दी का गद्य साहित्य, नवम् संस्करण, जनवरी 2014, डॉ. रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन विशालाक्षी भवन, वाराणसी।
11. नागार्जुन रचनावली, शोभाकांत, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

भारतीय समाज में साधु-सन्यासियों की परम्पराओं के प्रकार व प्रकृति

डॉ. प्रमिला वाधवा*

* प्रभारी प्राचार्य व सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शासकीय महाविद्यालय, सारनी, जिला बैतूल (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना - भारत में साधुओं का इतिहास हजारो साल पुराना है। वेद पुराणों में भी साधु परम्पराओं के होने के प्रमाण मिलते है। इन्होंने हिन्दु धर्म को काफी हद तक प्रभावित किया है। साधु और सन्यासी भी कई प्रकार के होते है। सभी के अपने अपने मत विचारधाराऐं व नियम है, वैसे तो **साधु शब्द का अर्थ होता है 'सज्जन व्यक्ति'** इसका मतलब है प्रत्येक व्यक्ति जो दयालु है, परोपकारी और सबकी सहायता करने वाला है वह साधु है। साधु का कोई भेष व नियम नहीं होता है, लेकिन वर्तमान समय में साधु उन्हें कहा जाता है जो सन्यास धारण करते हैं यज्ञ और तपस्या करते है, **गेरूऐं, सफेद एवं भगवाधारी वस्त्र धारण** करते है ऐसे सन्यासी साधु परम्पराओं के किसी एक सम्प्रदायों को मानते है और उसका ही अनुसरण करते है।

भारतीय साधुओं का इतिहास कुछ सालों का नहीं अपितु हजारों वर्ष पुराना है। भारतीय इतिहास में हिन्दु धर्म को साधु परम्परा ने सबसे ज्यादा प्रभावित किया है। भारतीय संस्कृति के अनुसार जो भी व्यक्ति साधुत्व अपनाता है उसे अपने सांसारिक जीवन व भौतिकता से मुक्त होना होता है तभी वह साधु परम्पराओं को निभा सकते है, एक साधु को समाज से पूर्ण रूप से मुक्त होना होता है।

भारतीय समाज में साधुओं का एक सम्प्रदाय जिसे शैव सम्प्रदाय कहते है, उसमें सन्यास ग्रहण करने से पूर्व ही व्यक्ति का प्रतीकात्मक रूप से अंतिम संस्कार कर दिया जाता है, जिसका अर्थ है कि वह व्यक्ति समाज के लिए मृत हो जाता है और सन्यासी के रूप में उनका नया जन्म होता है, जबकि वैष्णव सम्प्रदाय के नियम शैव सम्प्रदाय से थोड़ा कम कठोर होता है।

शोध का उद्देश्य:

1 साधु सन्यासियों की परम्पराओं का भारतीय समाज एवं सांस्कृतिक जीवन में महत्व का विश्लेषण सकारात्मक पक्ष को प्रस्तुत करना।
2 संन्यासी परम्परा का प्राचीन काल से आधुनिक काल में सांस्कृतिक व सामाजिक जीवन में हुए परिवर्तन का तुलना करना।
3 धर्म ग्रंथों का अध्ययन तथा अपने सम्प्रदाय के साहित्य का ज्ञान प्राप्त करना।
4 विशेष पर्व के समय उपवास द्वारा स्वयं को पवित्र करना तथा भोजन आदि के विषय में नियम आदि का पालन करना।

सन्यासी सगठन व उनके प्रकार- सन्यासियों ने हमारी संस्कृति को बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, साधु परम्पराओं में साधु अकेले ही मोक्ष के पथ पर चलता था लेकिन सन्यासियों ने मठों और आश्रमों के द्वारा अपने आप को संगठित करने का प्रयास किया, सबसे पहले बौद्ध, फिर ईसाई धर्म, में उनकें धर्मगुरूओं की परम्परा को अपनाया। इसके द्वारा अपने आप को संगठित करने का प्रयास किया गया। हिन्दू धर्म में सबसे पहले 9वीं शताब्दी के अंत में शंकराचार्य ने सन्यासियों के मठों की स्थापना की शुरुआत की। हिन्दू धर्म में धार्मिक संप्रदायों को मुख्यत: दो भागों में विभाजित किया गया है।

1 शैव सम्प्रदाय
2 वैष्णव सम्प्रदाय

शैव सम्प्रदाय के सन्यासी शंकराचार्य को अपना गुरू मानते है, जबकि वैष्णव सम्प्रदाय के लोग रामानुज को अपना गुरू मानते है।

जी.एस. धुरमें ने शैव सम्प्रदाय के सन्यासियों को उनकी प्रकृति के अनुसार निम्न रूप से विभाजित किया है-

शैव सन्यासी

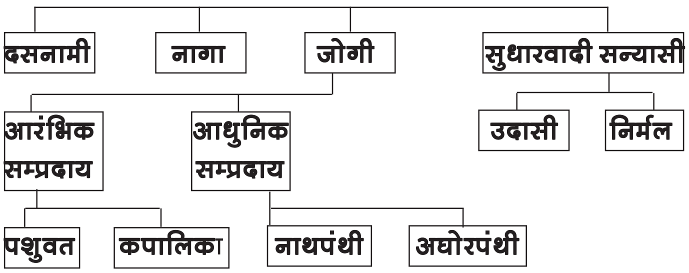

वैष्णव सन्यासी

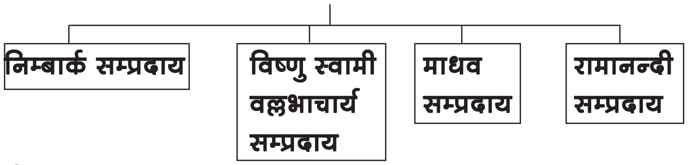

शैव सम्प्रदाय -शैव सन्यासियों के प्रकार को मुख्य चार भागों में बांटा गया है।

अ) दसनामी सन्यासी -शैव सन्यासियों में दसनामी सबसे महत्वपूर्ण सम्प्रदाय है इस सम्प्रदाय की शुरूआत शंकराचार्य ने की। शंकराचार्य ने दसनामी शैवों का संगठन मजबूत करने के लिए भारत में चार प्रमुख मठों में **जगन्नाथपुरी द्वारका श्रृंगेरी** और **बद्रीनाथ** की स्थापना की दसनामी सम्प्रदाय का उद्देश्य धर्म का प्रचार करना और धर्म की रक्षा करना है।

ब) नागा-नागा साधुओं की प्रकृति थोड़ा अलग है यह स्वभाव से उग्र

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

और शस्त्र धारण करने वाले होते है, यह संन्यासी आजीवन निर्वस्त्र रहते है क्योंकि वह मानते है कि जिस रूप ईश्वर ने उन्हें जन्म दिया है, वह आजीवन उसी स्थिति में रहेंगे। नागा सन्यासी भौतिक जीवन का पूर्ण रूप से परित्याग कर देते है। इस सम्प्रदाय को सोलहवीं शताब्दी में **मधुसूदन सरस्वती** ने नागा सन्यासी को संगठित किया।

स) जोगी सम्प्रदाय –जोगी सन्यासियों को शैव सम्प्रदाय का तीसरा सबसे मुख्य सम्प्रदाय माना जाता है यह सन्यासी का मुख्य सम्प्रदाय होने के कारण है तांत्रिक विद्या और जादू टोने जैसी विधाओं में निपुर्ण होते है। यज्ञ, बलि, सम्मोहन और वशीकरण जैसी विधाओं का यह अभ्यास करते है और उसमें पारंगत होते है इस सम्प्रदाय को दो भागों में बांटा जाता है:–

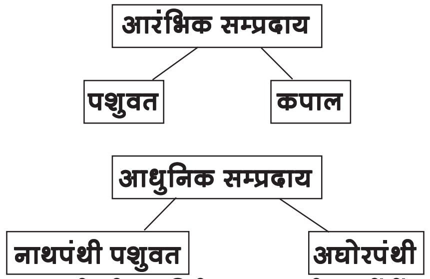

आरम्भिक सम्प्रदाय को भी प्रकृति के अनुसार दो भागों में बांटा गया है– पशुवत और कपालिका ठीक इसी प्रकार आधुनिक सम्प्रदाय को भी नाथपंथी और अघोरपंथी सम्प्रदास में बांटा गया।

द) सुधारवादी सम्प्रदाय – शैव सन्यासियों में एक और सम्प्रदाय है जिसे हम सुधारवादी सम्प्रदाय के नाम से जानते है प्रकृति के आधार पर इस सम्प्रदाय को दो भागों में बांटा गया है: **निर्मल** और **उदासी** इनकी विचारधारा अन्य सम्प्रदाय से काफी अलग है। इस सम्प्रदाय में इस्लामिक और गैर हिन्दू प्रभाव भी देखने को मिलता है। निर्मल सम्प्रदाय मानता है कि राम रहीम एक है, ईश्वर अल्लाह एक है, पुराण तथा कुरान एक है।

वैष्णव सम्प्रदाय– वैष्णव सम्प्रदाय भगवान विष्णु और उनके अन्य रूपों की आराधना करते है और उन्हें ही अपना ईष्ट देव मानते है। यह सम्प्रदाय प्रकृति से सरल और दयालु होता है। इस सम्प्रदाय को भी चार भागों में बांटा गया है और इन सम्प्रदायों का नाम उनके प्रमुख आचार्यो के नाम पर रखा गया है:–

1 निम्बार्क सम्प्रदाय (कुमार सम्प्रदाय)
2 विष्णु स्वामी वल्लभाचार्य सम्प्रदाय (रूद्र सम्प्रदाय)
3 माधव सम्प्रदाय (ब्रम्ह सम्प्रदाय)
4 रामानन्दी सम्प्रदाय

सन्यासी अखाड़ों का सम्पूर्ण इतिहास– मूलत: अखाड़े संतो की उस सेना या संगठन को कहा जाता है जो धर्म की रक्षा के लिए विशेष पारंपरिक रूप में गठित किये गये है, अपनी धर्म ध्वजा ऊँची रखने और विधर्मियों से अपने धर्म, धर्म स्थल, धर्म ग्रंथ, धर्म संस्कृति और धार्मिक परम्पराओं की रक्षा के लिए किसी जमाने में संतो ने मिलकर एक सेना का गठन किया था। वही सेना आज अखाडो के रूप में विद्यमान है।

कुम्भ में संघर्ष का इतिहास– चारो आश्रमों से एक अंतिम सन्यास आश्रम के अनुयायी शैवों और वैष्णवों में शुरू से ही संघर्ष रहा। शाही स्नान के समय अखाड़ों की आपसी तनातनी और साधु–संप्रदाओं के टकराव खुनी संघर्षों में बदलते रहे है। वर्ष 1310 के महा कुम्भ में महानिर्वाणी अखाड़े और रामानन्द वैष्णवों के बीच हुए झगड़े ने खूनी संघर्ष का रूप ले लिया था। वर्ष 1398 के अर्द्धकुम्भ में तैमूर लंग के आक्रमण से कई जाने गई थी। वर्ष 1760 में शैव सन्यासियों व वैष्णव बैरागियों के बीच संघर्ष हुआ था। 1796 के कुम्भ में भी शैव संन्यासी और निर्मल संप्रदाय आपस में भिड़ गये थे।

विभिन्न धार्मिक समागमों और खासकर कुम्भ मेलों के अवसर पर साधु संगतों के झगड़ों और खून खराबों की बढ़ती घटनाओं से बचने के लिए **अखाड़ा परिषद् की स्थापना की गई** जो सरकार से मान्यता प्राप्त है। इसमें कुल मिलाकर **तेरह अखाड़ों** को शामिल किया गया है। प्रत्येक कुम्भ में शाही स्नान के दौरान इनका क्रम तय रहता है। कालांतर में शंकराचार्य के अविर्भाव काल सन् 788 से 820 के उत्तरार्द्ध में देश के चारों कोनों में चार शंकर मठों और दसनामी सन्यासियों के अनेक अखाड़े प्रसिद्ध हुए जिनमें **सात पंचायती अखाडे** आज भी अपनी लोकतांत्रिक व्यवस्था के अंतर्गत समाज में कार्यरत् है।

राष्ट्र के निर्माण में साधु–संतो का योगदान – अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् ने शायद आजादी के बाद पहली बार यह कठोर निर्णय लिया है कि किसी व्यक्ति को साधु या संत घोषित करने से पूर्व उसके अध्यात्मिक ज्ञान की जांच होगी साथ ही उसके सन्यासी के रूप में किये गये त्याग का भी परीक्षण होगा। वास्तव में साधु समाज से जुड़े चमत्कारी एवं दुराचारी साधु दूर हो जाए, तो साधु समाज की शक्ति राष्ट्र के निर्माण में अहम् योगदान दे सकती है।

भारत के हर परिवर्तनकारी युग में मठ, मंदिरों और साधुओं ने सांस्कृतिक चेतना का नवजागरण कर राष्ट्र निर्माण को नया मोड़ देते हुए, समय समय पर उदारता का प्रतिपादन किया है जिसे धर्म दीर्घकालिक सत्ताधारियों के राजनैतिक लाभ का हित पोषक न बना रहे। यही कारण है कि विश्वामित्र, चाणक्य, महावीर, बुद्ध, जगत् गुरू शंकराचार्य, गुरूनानक देव, चैतन्यमहाप्रभु, स्वामी दयानन्द सरस्वती, महार्षि अरविंद स्वामी और ज्योतिबा फुले जैसे राजमोह तथा गृहत्यागी स्वप्न दृष्टाओं ने इस देश को विदेशी आक्रमणकारियों से लड़ने की शक्ति देने के साथ–साथ अज्ञान, भुख, अराजकता और असमान सामाजिक ढ़ांचे से जुझने की भी चुनौती व प्रेरणा, आम जनमानस को कबीर, तुलसी, सूरदास, रैदास, दाढ़ू, मलूकदास और नानकदेव जैसे संत कवियों ने ही उबारकर नवयुग के निर्माण की आधारशिला रखी। स्वतंत्रता आंदोलन में साधु–संतों का बड़ा योगदान रहा है।

स्वतंत्रता से पूर्व भारत में करीब 60 लाख साधु–संत थे, लेकिन वर्तमान में इनकी संख्या बढ़कर **एक करोड** के ऊपर पहुंच गई है। हालांकि साधु–संतो के जीवन पर अब **'रमता जोगी बहता पानी'** की कहावत पूरी चरितार्थ नहीं हो रही है मोक्ष के प्रचारक यह साधु भौतिकवाद के शिकार होकर राम–रहीम, की तरह वैभव व प्रदर्शन की प्रकृतियों के आदि हो गये है, कारों का काफिला इनके इर्द–गिर्द मंडरा रहा है तथा विलासता पूर्ण जीवन शैली अपना रहे है। सूचना तकनीक के चलते तमाम साधुओं का भू–मण्डलीकरण तो हुआ ही साथ ही बाजारवाद की गिरफ्त में आ गये है, लिहाजा धर्म अरबों –खरबों के उद्योगों में परिवर्तित हो गये। देखते–देखते बीते दो दशकों के भीतर हरिद्वार, ऋषिकेश, अयोध्या, उज्जैन, शिरडी, त्रयम्बकेश्वर, जैसी धार्मिक नगरी में साधु–संतों की घास फूस की झोपड़ियां आलीशान अट्टालिकाओं में तब्दील हो गई है। इसी कारण साधु समाज सवाल दागे जाने लगे कि मोह माया और भौतिक सुखों से ऊपर उठने का दावा करने वाले जो सिद्ध पुरूष, स्वयं भोग विलास में संलिप्त हो जायेंगे तो अध्यात्म का उपदेश देकर क्या

समाज को भौतिकवादी बुराईयों से ऊबार पायेगा ?

साधु का प्रमुख गुण समष्टिगत होता है, इसलिए वह धर्म का प्रतिनिधि है। साधु के सदाचरण, संयमी, असचयी और सात्विक होने का प्रभाव जितना समाज पर पड़ता है। दिव्य पुरूषों के एक इशारे पर लोग करोड़ों लूटा देते है, यही कारण है कि अपेक्षाकृत कम प्रसिद्धि प्राप्त साधु अथवा मठ– मंदिरों के पास भी करोड़ों की नगद और चल–अचल संपत्तियां है, उनका डाकघरों व बैंकों में लाखों करोड़ों रूपये जमा है ऐसे में इन साधुओं के आत्मलीन होने के बाद यह धन–सम्पदा लावारिस घोषित कर दी जाती है, आखिर इस धन को साधु समाज के सुपुर्द कर स्थानीय विकास कार्यों में क्यों नहीं लगाया जा रहा है, इस तरह की मांग अयोध्या के राजनीतिक समाजिक कार्यकर्ता और बुद्धिजीवी कई मर्तबा उठा भी चुके है। इनका दावा है कि साधु–संतो का बैंक और डाकघरों में लावारिस धन जमा होता है, यदि इसे निकाल कर विकास कार्यों में ईमानदारी से लगा दिया जाये तो निश्चित ही राष्ट्र विकास की ओर अग्रसर हो जायेगा।

सन्यासियों के सामाजिक कर्त्तव्य:

1 बृहद समाज में धार्मिक सिद्धांतो का प्रचार करना या सन्यासी वेश में घूम–घूम कर धार्मिक माहौल का निर्माण करना।
2 दु:खी व निराश व्यक्ति जो उनकी सहायता चाहते है को सांत्वना देना।
3 विद्यालय, अस्पताल आदि की स्थापना करना तथा गरीब एवं दीन दुखियों की सहायता के द्वारा समाज सेवा करना।
4 धार्मिक प्रवचनों से समाज का विकास करना।

निष्कर्ष– स्पष्ट है कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में साधु–सन्यासियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है वे वर्तमान वैज्ञानिक युग में भी लोगों को धर्म तथा अध्यात्म से विश्वास आज भी बढ़ता जा रहा है लोगों के आकर्षण का केन्द्र बने हुए है।

आध्यात्मिक ज्ञान के बिना मानव का जीवन अधूरा है अत: हम सब विश्वास एवं भक्ति भाव से ओत प्रोत होकर आध्यात्म की, ओर अग्रसर हो, यह तभी संभव है जब तक कि धर्म के गुरूओं में आडम्बर व निरन्तर स्वार्थ की भावना समाप्त न हो जाये।

साधु–सन्यासियों का मूल उद्देश्य समाज का पथ प्रदर्शन करते हुए धर्म के मार्ग पर चलकर मोक्ष प्राप्त करना है, साधु सन्यासी गण साधना, तपस्या करते हुए वेदांत ज्ञान को जगत को देते है।

नि:संदेह मुक्ति की कामना हिन्दू जीवन का चरम लक्ष्य है और मुक्ति लाभ हेतु ही अपना जीवन व्यतीत कर रहा हो वह सर्वाधिक आदर का पात्र समझा जाता है साधु–संत गृहस्थों को विभिन्न–विभिन्न प्रकार का धार्मिक व व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करते हैं जैसे निर्देश मंत्रणा, उपदेश, शिक्षा एवं दीक्षा आदि।

धार्मिक प्रकृति के नाना प्रकार की समस्याओं जैसे धन व यश प्राप्त करने की इच्छा से भाग्यफल जानने की इच्छा से संतानोत्पत्ति की कामना से आपसी एवं पारिवारिक झगड़ों को निपटाने की कामना से शादी–विवाह के विषय में सलाह लेने तथा आध्यात्मिक ज्ञान आदि प्राप्त करने की कामना से लोग दसनामी, नागा गुरूओं के पास आते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची:–

1. भारत की संत परम्परा और सामाजिक समरसता – डॉ. कृष्ण गोपाल, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
2. कुमाऊँ रामायण– कुन्द्रन सिंह पहाड़ि, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
3. विश्व के प्रमुख शिक्षा शास्त्री – आर. के. चौबे, पोइन्टर पब्लिकेशन, जयपुर।
4. नागा सन्यासियों की इतिहास – अशोक त्रिपाठी, इलाहाबाद प्रकाशन।
5. श्री राम चरित मानस में अध्यात्म एवं विज्ञान – प्रो. एस.पी. गौतम, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
6. भारतीय रामकथा साहित्य का स्वरूप – विकास ,– प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी।

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

काव्य शास्त्रीय परम्परा में अलंकार की धारणाओं का संक्षिप्त विश्लेषण

डॉ. पी. एस. बघेल*

* ऐसोसिएट प्राध्यापक (संस्कृत) शहीद भीमा नायक, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – कवि प्रतिभा से समदृभूत उक्तियो के अलोक सिद्ध सौंदर्य को कुछ आचार्यों ने व्यापक अर्थ में अलंकार कहा है। अर्थात् वामन ने अलंकार को सौंदर्य का पर्याय कहकर अलंकारयुक्त काव्य को ग्राह्य तथा अलंकारहीन या असुन्दर काव्य अग्राह्य कहा था।

'अलश्क्रियते/नेन इति अलंकार:'

भामह तथा उद्भट ने काव्य–शोभा के साधक धर्म को अलंकार माना है। गुण, रस को भी अलंकार की सीमा में रखा है। आचार्य दण्डी ने भी काव्य के शोभाकर धर्म को अलंकार कहा है।

'काव्यशोभाया: कर्तारो धर्मा गुणा: तदतिशहेतवास्त्वालंकार:।'

कुन्तक ने वक्रोक्ति के बारे में कहा है कि काव्य का अर्थात् शब्द और अर्थ का अलंकार कहा है।

'वक्रोक्तिरेव वैदग्धीभ भंगीभणति रूच्यते।'

भामह ने भी वक्रोक्ति या अतिशयोक्ति को अलंकार का प्राण तत्व माना था। रूय्यक के अनुसार'कवि–प्रतिभा से समुद्भूत कथन का प्रकार–विशेष ही अलंकार है।' आनन्दवर्धन का मानना है कि वाग्विकल्प अर्थात् कथन के अनूठे ढंग अनंत है और उनके प्रकार ही अलंकार कहलाते हैं।

काव्य में अलंकार का स्थान – भामह और उद्भट ने काव्य के शब्दार्थ को अलंकार्य मानकर उनमें सौंदर्य का आधान करने वाले सभी तत्वों को अलंकार कहा है। इससे स्पष्ट है कि भामह, उद्भट आदि अलंकार को काव्य सौंदर्य के लिए काव्य का अनिवार्य धर्म मानते थे। भामह ने काव्य के अलंकार को नारी के आभूषण की तरह मानकर कहा था। कि जैसे रमणिका सुन्दर मुख भी भूषण के अभाव में सुशोभित नहीं होता, उसी प्रकार अलंकारहीन काव्य सुशोभित नहीं होता।

इससे स्पष्ट है कि काव्य सौंदर्य के आवश्क उपादान मानने के कारण भामह अलंकार सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक माने गये हैं। दण्डी ने भी अलंकार को काव्य सौन्दर्य का हेतु कहा है। दण्डि ने समाधि गुण को 'काव्य सर्ववस्व कहकर काव्य में गुण अपेक्षाकृत विशेष महत्व स्वीकार किया है।' पर गुण आदि की तुलना में उसका कम मूल्य मानते है मानते है। वामन ने 'रीति को काव्य की आत्मा माना है।' 'रीतिरात्मा काव्यस्य।'

आचार्य उद्भट अलंकार को गुण के समान ही महत्व देने के पक्षपाती है। उनकी मान्यता है कि गुण और अलंकार दोनों ही काव्य के समवाय–वृत्ति से सम्बद्ध काव्य का अंतरंग और अलंकार को संयोग–वृत्ति से सम्बद्ध काव्य का बहिरंग धर्म मानना गतानुगतिकता है।

भामह के सही काव्य का बाह्य तथा आभ्यन्तर धर्म मानने वाले दो मत प्रचलित थे। जिनका निर्देश भामह के काव्यालंकार में किया गया है। उद्भट का मत है कि अलंकार भी काव्य के सौन्दर्य के हेतु है। निष्कर्ष के रूप में उद्भट के अनुसार अलंकार काव्य के शब्द तथा अर्थ को सौन्दर्य प्रदान करने वाले नित्य और अन्तरंग धर्म है। अलंकार के अभाव में शब्द तथा अर्थ में सौन्दर्य नहीं आता।

जयदेव ने काव्य–लक्षण में अलंकार की अनिवार्य सत्ता मानी है।

'निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभभूषिता।
सालंकाररसानेक वृत्तिर्वाक् काव्य नाम भाक्।।'(जयदेव, चंद्रालोक, 1.7)

जयदेव आगे कहते हैं कि– अलंकारहीन शब्दार्थ को काव्य मानना–उष्णतारहित अग्नि की कल्पना करने के समान है।

'अंशीकरोति य: काव्यं शब्दार्थावनलकृति
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृति।।'(जयदेव, चन्द्रालोक, 1.8)

कवि केशव ने अनलंकृति काव्य को अलंकारहीन रमणी की तरह असुन्दर माना है।

भामह ने वक्रोक्ति को अलंकार का प्राण कहा है।

'सैषा सर्वेव वक्रोक्तिरनायाऽनयाऽर्थो विभाव्यते।
यत्नोऽस्यां कविना कार्य: कोऽलंकारोऽना विना।।'

औचित्य चर्चा में क्षेमेन्द्र ने कहा है कि– उचित स्थान में अलंकार की योजना को काव्य सौन्दर्य में सहायक मानकर उसकी उपादेता स्वीकार की है।

आनंदवर्धन ने अलंकार की सार्थकता रस के प्रकाशन में ही है। रस की व्यंजना वाचर्थ से ही होती है।

आचार्य मम्मट ने अपने काव्य–लक्षण में शब्दार्थ का निर्दोष तथा गुणयुक्त होना तो आवश्यक माना है, पर अलंकार की काव्य में अनिवार्य स्थिति नहीं मानकर यह कहा कि कहीं कहीं स्थिति अनलङ्कृत शब्दार्थ भी काव्य होते हैं।

तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलकृति पुन: क्वापि।। (यमम्मट, काव्य प्र.1,कारिका पृ.4)

अलंकार के संबंध में मम्मट का दृष्टिकोण स्पष्ट है कि– शब्द और अर्थ काव्य–पुरूष के शरीर है, रस उसकी आत्मा है। और माधुर्य आदि रस के धर्म–काव्य–गुण–मानव के शौर्य आदि गुण की तरह उसके गुण हैं। अलंकार काव्य–पुरूष शरीर को शब्द और अर्थ को विभूषितभूषित करते हैं।

अत: वे मानव–शरीर के हार आदि आभूषण की तरह उसके अलंकार

है। इस प्रकार अलंकृत व्यक्ति की आत्मा का उपकार होता है, उसी प्रकार काव्य के अलंकार से काव्य का शब्दार्थ-रूप शरीर अलंकृत होकर उसकी आत्मा रस को उपकृत करता है।

'उपकुर्वन्ति तं सन्तंयेऽश्द्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोपमायाद:।। (मम्मट,काव्य प्रकाश,8,67, पृ.189)

सौन्दर्य से पृथक् काव्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इस तरह वह काव्य-सौन्दर्य अलंकार भी है और अलंकार्य भी है। काव्य के सभी सौन्दार्याधायक तत्व इस अर्थ में अलंकार है। पर विशिष्ट अर्थ में वामन ने अलंकारों को काव्य की स्वाभाविक शोभा की वृद्धि हेतु कहा है। उनके अनुसार रीति या विशेष प्रकार की पद-संघटना काव्य सर्वस्व है।

'रीतिरात्माकाव्यस्य।' (काव्यालकारसूत्रवृत्ति, 1,2,6)

भारतीय अलंकार शास्त्र के आचार्य ने अलंकार और अलङ्कार्य के इस अविच्छेद्यय संबंधों को पूर्व में ही समझा था। अलंकार्य (शब्द, अर्थ, रस, या ध्वनि) से उसके अविभाज्यसंबंध की धारणा निहित थी।

भामह, दण्डी, वामन आदि आचार्यो ने भी उपमा आदि विशेष अलंकारों का गुण आदि से भेद निरूपण कर पुन: सभी काव्यतत्वो को सामाान्य रूप से काव्य का अलंकार या सौन्दर्य कहकर सबकी तात्विक अभिन्नता स्वीकार करली है।

आठवीं शताब्दी ई. में अपभ्रंश के कवि स्वंयभू ने हरिवंशपुराण और पउमचरिउ में दण्डी का आचार्य के रूप में ससमादर उल्लेख किया है।

आचार्य दण्डी विरचित काव्यादर्श – काव्यादर्श में तीन परिच्छेद हैं जिनमें कुल 660 श्लोक हैं। तृतीय परिच्छेद 'वराह-वर्णन' है। वराह प्रतिमा लगभग 400 ई. से साम्य रखता है।

वामन के रीतिसिद्धान्त पर दण्डी का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

दण्डी के प्रथम परिच्छेद में काव्य के लक्षण तथा गद्य, पद्य और मिश्रित तीन रूपों का विभाजन किया है। साथ ही सर्गबंध के लक्षण दिये गये है। साहित्य में वैदर्भी तथा गौड़ी शैली की चर्चा की गई है। कवि के तीन आवश्यक गुण-प्रतिभा-श्रुति और अभियोग की चर्चा की गई है।

द्वितीय परिच्छेद में अलंकार शब्द की व्याख्या दी है। जिनमें 35 अलंकार गिनाये है। तृतीय परिच्छेद में यमक का विशद वर्णन है।

दण्डी का काव्यादर्श अंशत: रीति सम्प्रदाय के समर्थक है और अंशत: अलंकार सम्प्रदाय का। अनुमान किया जाता है कि दण्डी की रचना किसी सुखार्थीराजकुमार के लिए की थी। किन्तु इसे अनुमान तक मानना उचित समझा है।

काव्यादर्श की शैली सरल और सारगर्भित हैं। जहाँ तक कवित्व का प्रश्न है भामह की तुलना में दण्डी का स्थान ऊँचा है। किन्तु विशद एवं तर्क संगत विवेचन में भामह दण्डी से आगे है। दण्डी के उदाहरण मौलिक हैं।

दण्डी को प्राकृतों का ज्ञान नहीं था। उन्होंने महाराष्ट्री, शौरसेनी, गौड़ी तथा लाटी का विभिन्न प्राकृतों रूपों का उल्लेख मात्र किया है।

काव्यादर्श में दण्डी ने पद्यबद्ध रचना में लम्बे समासों का निषेध किया है। किसी समय दण्डी परिवार ने गुजरात के आनंदपुर के प्रस्थान कर के आचलपुर (वर्तमान में एलिचपुर) (बरार प्रान्त में) निवास किया। उनके पूर्वज दामोदर स्वामी भारवि के कहने पर विष्णुवर्धन के साथ मित्रता स्थापित की है।

दण्डी तथा भामह दोनों के साथ कुछ पाठ अक्षरश: मिलते हैं। यथा-

1. सर्गबन्धो महाकाव्य में काव्यादर्श (114), काव्यालंकार के 1,19 में

(ख) मन्त्रदूत प्राणजिनै- काव्यादर्श- (1,17)

भामह और दण्डी ने लिखा है।

भामह और दण्डी दोनों ही प्राचीन आलंकारिक हैं।

भामह ने सर्वप्रथम व्याकरण के आधार पर उपमा का प्रतिपादन किया है। अत: कुछ तथ्यों के आधार पर दण्डी से पहले भामह हुए। संभवत: भामह और दण्डी भिन्न-भिन्न परम्पराओं के समर्थक रहे होंगे। दण्डी ने भरत की परम्पराओं का अनुसरण किया है और भामह ने अर्थालंकारों का प्रमुखता देने की परम्परा का परिवहन किया है।

भामह ने अनेकत्र पूर्ववर्ती आचार्यो के सिद्धान्तों का नाम निर्देशन किया है। ऐसे कतिपय ऐसे सिद्धान्तों की स्थापना काव्यादर्श (दंडी) में प्राप्त होती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सौन्र्दमलंकार वामन, काव्यालंकारसूत्रवृत्ति 1,1,2
2. काव्यालंकार सूत्रवृत्ति, 1,1,1
3. वामन-काव्यालंकार सूत्र वृत्ति,3,1,1
4. कुन्तक वक्रोक्ति जीवित्- 1,10
5. अभिधाप्रकार-विशेषांक एवानलंकार रूय्यक-अलंकार सर्वस्व, पृष्ठ.8
6. चाललंकार आनंदवर्धन, ध्वयालोक लोचन 3.37 की वृत्ति, पृ.511
7. न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुख-भामह- काव्यालंकार 1,13
8. काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकार-दण्डी-काव्यादर्श, 2.1
9. तदेतत्काव्यसर्वस्व समाधिर्ना गुण: काव्यदर्श 1,100
10. जदेव, चंद्रालोक, 1.7
11. जदेव, चंद्रालोका 1.8
12. केशव, कविप्रिया, पृ.47
13. भामह, काव्यालंकार, 285
14. मम्मट, काव्यप्र.1, कारिका 1, पृ.4
15. मम्मट, काव्य प्रकाश, 8,6,7, पृ.189
16. काव्यालंकार-सूत्र वृत्ति, 1,2,6
17. राहुल सांकृतन (संपादन), हिन्दी काव्यधारा पृ.22

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

भारत में कृषि एवं खाद्य सुरक्षा पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

सुभाष कुमार भारती* डॉ. शशि बाला सिंह**

* शोध छात्र (भूगोल) दयानंद गर्ल्स पी. जी. कॉलेज , कानपुर सम्वद्ध- छात्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.) भारत
** असिस्टेंट प्रोफेसर (भूगोल) दयानंद गर्ल्स पी. जी. कॉलेज, कानपुर सम्वद्ध- छात्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.) भारत

शोध सारांश – जलवायु परिवर्तन भारत में कृषि और खाद्य सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण चुनौतियाँ पैदा करता है, भारत एक ऐसा देश जो आजीविका और भरण-पोषण के लिए अपने कृषि क्षेत्र पर बहुत अधिक निर्भर है। कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है।प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से देश की 55 प्रतिशत आबादी जलवायु संवेदनशील कृषि क्षेत्र पर निर्भर करती है। इस सारांश का उद्देश्य मौजूदा शोध और टिप्पणियों के आधार पर भारत में कृषि और खाद्य सुरक्षा पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को रेखांकित करना है।बढ़ते तापमान, परिवर्तित वर्षा प्रतिरूर्प,चरम मौसम की घटनाओं की बढ़ती आवृत्ति और बदलती जलवायु परिस्थितियाँ देश भर में कृषि उत्पादकता और खाद्य उत्पादन प्रणालियों को प्रभावित कर रही हैं। वर्षा प्रतिरूर्प में बदलाव जिसमें अनियमित मानसूनी बारिश और लंबे समय तक सूखा शामिल है फसल की खेती पानी की उपलब्धता और सिंचाई प्रथाओं के लिए चुनौतियां पैदा करता है। कृषि क्षेत्र गैस उत्सर्जन और भूमि उपयोग प्रभावों में एक प्रेरक शक्ति है जो जलवायु परिवर्तन का कारण बनता है। कृषि भूमि का एक महत्वपूर्ण उपयोगकर्ता और जीवाश्म ईंधन का उपभोक्ता होने के अलावा कृषि चावल उत्पादन और पशुधन पालन (कृषि एवं खाध संगठन, 2007) जैसी प्रथाओं के माध्यम से ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में सीधे योगदान देती है। इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज (आई.पी.सी.सी., 2001)के अनुसार पिछले 250 वर्षों में ग्रीनहाउस गैसों में वृद्धि के तीन मुख्य कारण जीवाश्म ईंधन भूमि उपयोग और कृषि (आई.पी.सी.सी.,2001) रहे हैं। छोटे किसान जो भारत के कृषि कार्यबल का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं की असुरक्षा जलवायु परिवर्तन से प्रेरित जोखिमों जैसे कि फसल की विफलता कम पैदावार,कीटों और बीमारियों की बढ़ती घटनाओं के कारण बढ़ गई है। बाढ़, सूखा और चक्रवात सहित चरम मौसम की घटनाएं खाद्य उत्पादन को और खतरे में डालती हैं, आपूर्ति श्रृंखलाओं को बाधित करती हैं और विशेष रूप से ग्रामीण और हाशिए पर रहने वाले समुदायों में खाद्य वितरण नेटवर्क को प्रभावित करती हैं। एक अनुमान है कि, 1975-76 से 2008-09 की अवधि के दौरान खाद्यान्न का क्षेत्रफल 126.18 मिलियन हेक्टेयर से गिरकर 122.83 मिलियन हेक्टेयर हो गया तथा 2020-21 में बढ़कर 129.34 हों गया। उस अवधि के दौरान उत्पादन में क्रमश: 121.03 मिलियन टन, 234.47 मिलियन टन तथा 308.65 मिलियन टन की वृद्धि दर्ज की गई। अध्ययन से यह भी पता चलता है कि खरीफ सीजन में खेती के रकबे में बड़े पैमाने पर उतार-चढ़ाव होता है। कुछ मामूली उतार-चढ़ाव के साथ, खरीफ सीजन में खेती का क्षेत्रफल 1966-67 में 78.21 मिलियन हेक्टेयर, 1983-84 में 84.14 मिलियन हेक्टेयर से बढ़कर 2020-21 में बढ़कर 88.21 हो गया है। जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को अपनाने के लिए व्यापक रणनीतियों की आवश्यकता होती है जो जलवायु-लचीली कृषि प्रथाओं, जल प्रबंधन तकनीकों, फसल विविधीकरण और सिंचाई और भंडारण के लिए बेहतर बुनियादी ढांचे को एकीकृत करती हैं। संरक्षण कृषि, कृषि वानिकी और सटीक खेती जैसी जलवायु-स्मार्ट कृषि प्रथाओं को अपनाने के माध्यम से कृषि प्रणालियों की लचीलापन बढ़ाने से जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभावों को कम करने और किसानों के बीच अनुकूली क्षमता का निर्माण करने में मदद मिल सकती है।यह पेपर जलवायु परिवर्तन चुनौती पर साक्ष्यों की समीक्षा करता है, और भारत में कृषि और खाद्य सुरक्षा पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव का आकलन करता है। तथा भारतीय कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव का अनुमान भी लगाता है।

शब्द कुंजी – भारतीय कृषि, जलवायु परिवर्तन, खाद्य सुरक्षा।

प्रस्तावना – भारत एक बड़ा विकासशील देश है, जिसकी लगभग 55 प्रतिशत आबादी सीधे कृषि, मत्स्य पालन और वन (भारत सरकार) जैसे जलवायु संवेदनशील क्षेत्रों पर निर्भर करती है। विभिन्न परिदृश्यों के तहत अनुमानित जलवायु परिवर्तन का खाद्य उत्पादन, जल आपूर्ति, जैव विविधता और आजीविका पर प्रभाव पड़ने की संभावना है। भारतीय कृषि का एक बड़ा हिस्सा मानसून पर निर्भर करता है, इसलिए मानसून के जल्दी/देर से आने के कारण कृषि, आवश्यक वस्तुओं के बाजार में उतार-चढ़ाव देखने को मिलता है। देशों की वर्षा के पैटर्न में कोई भी बदलाव कृषि को प्रभावित करता है और इसलिए देश की अर्थव्यवस्था और खाद्य सुरक्षा को प्रभावित करता है। फिर भी ग्लोबल वार्मिंग मौसम प्रणाली के लिए गंभीर खतरा पैदा करती है, जो संभावित रूप से लाखों छोटे, सीमांत और गरीब किसानों और उन सभी लोगों को प्रभावित कर सकती है जो अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर हैं (मित्रा अमित, 2009)।

विकास की प्रक्रिया में अनिवार्य रूप से आर्थिक गतिविधियों में प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग शामिल होता है। हाल के वर्षों में यह स्पष्ट हो गया है कि गरीबी कम करने वाली किसी भी विकास रणनीति को टिकाऊ बनाने के लिए, उसे पर्यावरणीय चिंताओं और आम तौर पर सीमित प्राकृतिक संसाधनों के टिकाऊ उपयोग पर ध्यान देना चाहिए (चार्ल्स लेयेका लुफुम्पा,

2005)। यह विशेष रूप से भारत का मामला है जहां अधिकांश गरीब ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं और उनकी आजीविका प्राकृतिक संसाधनों के दोहन पर निर्भर है। जनसंख्या की आर्थिक भलाई में सुधार लंबे समय तक तभी कायम रह सकता है जब प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग संधारणीय तरीके से किया जाए।कृषि आमतौर पर विकसित दुनिया की तुलना में विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में बड़ी भूमिका निभाती है।

उदाहरण के लिए, भारत में कृषि सकल घरेलू उत्पाद (भारत सरकार) का लगभग 15 प्रतिशत (वित्तीय वर्ष 2023, भारत सरकार) हिस्सा बनाती है और लगभग 45.5 प्रतिशत (एन.एस.एस.ओ. 2021-22) रोजगार प्रदान करती है। इसके अलावा कृषि उत्पादकता गरीबों की भलाई के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।जनसंख्या और आर्थिक विकास में तेजी से वृद्धि के कारण गंभीर पर्यावरणीय गिरावट हुई है जो पर्यावरणीय संसाधन आधार को कमजोर करती है जिस पर सतत विकास निर्भर करता है। विकास और विस्तार के मुद्दों की तुलना में पर्यावरण प्रदूषण, संसाधनों की कमी और गिरावट के अर्थशास्त्र को वास्तव में नजरअंदाज कर दिया गया है। भारत भी इस विश्वव्यापी परिघटना से अछूता नहीं रहा है। भारत में पर्यावरणीय गिरावट की प्रवृत्ति, इसकी जनसंख्या में पर्याप्त वृद्धि के कारण अन्य विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में कहीं अधिक प्रमुख रही है। यह पेपर जलवायु परिवर्तन चुनौती पर साक्ष्यों की समीक्षा करता है, और भारत में कृषि और खाद्य सुरक्षा पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव का आकलन करता है। तथा भारतीय कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव का अनुमान भी लगाता है।

भारत में कृषि- इसमें कोई संदेह नहीं कि कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। निर्यात में कृषि उत्पादों की हिस्सेदारी भी पर्याप्त है, निर्यात आय में कृषि का हिस्सा 15 प्रतिशत है। कृषि विकास का गरीबी उन्मूलन पर भी सीधा प्रभाव पड़ता है, और यह रोजगार सृजन में एक महत्वपूर्ण कारक है। कृषि क्षेत्र गैस उत्सर्जन और भूमि उपयोग प्रभावों में एक प्रेरक शक्ति है। जो जलवायु परिवर्तन का कारण बनता है। भूमि का एक महत्वपूर्ण उपयोगकर्ता और जीवाश्म ईंधन का उपभोक्ता होने के अलावा, कृषि चावल उत्पादन और पशुधन पालन (कृषि एवं खाद्य संगठन, 2007) जैसी प्रथाओं के माध्यम से ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में सीधे योगदान देती है। इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज (आई.पी.सी.सी.)के अनुसार पिछले 250 वर्षों में ग्रीनहाउस गैसों में वृद्धि के तीन मुख्य कारण जीवाश्म ईंधन, भूमि उपयोग और कृषि (आई.पी.सी.सी., 2001) रहे हैं।

विश्व की बढ़ती जनसंख्या और जलवायु परिवर्तन के निरंतर प्रभावों के कारण अगले 10 वर्षों में वैश्विक भोजन की कमी पैदा होने का अनुमान है। भारत अपवाद नहीं है, उनकी 58 प्रतिशत कामकाजी आबादी कृषि पर निर्भर है और लगभग 70 प्रतिशत आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है जहां कृषि आजीविका का सबसे बड़ा सहारा है। (आर्थिक आउटलुक, 2020-21)। जैसा कि जलवायु परिवर्तन, 21वीं सदी में कृषि के लिए एक प्रमुख चालक है, भारत में भोजन की मांग 2030 तक345 मिलियन टन तक बढ़ जाएगी, जबकि वर्तमान उत्पादन 315.72 मिलियन टन है, जिससे भूमिजल, पूंजी, श्रम और अन्य बहुमूल्य प्राकृतिके संसाधनों के उपयोग के लिए प्रतिस्पर्धा बढ़ सकती है।

औद्योगिक क्रांति की शुरुआत के बाद से, जब लोगों ने ऊर्जा के लिए जीवाश्म ईंधन जलाना शुरू किया, तब से पृथ्वी का औसत तापमान लगातार बढ़ रहा है। भारत में, जहाँ गेहूँ की फसल अधिकतम तापमान में वृद्धि के प्रति संवेदनशील है, वहीं चावल की फसल न्यूनतम तापमान में वृद्धि के प्रति संवेदनशील है। पानी की तीव्र कमी, तापमान तनाव के साथ मिलकर, उत्तर-पश्चिम भारत में गेहूं और चावल दोनों की उत्पादकता को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है।

भारत के कुल 329 मिलियन हेक्टेयर भौगोलिक क्षेत्र में से 174 मिलियन हेक्टेयर या कुल भूमि क्षेत्र का 53 प्रतिशत गंभीर निम्नीकरण से पीड़ित है। इसमें से, पानी और हवा के कटाव के अधीन क्षेत्र की मात्रा 144 मिलियन हेक्टेयर है और खर्वे, लवणता, जल जमाव आदि जैसी विशेष समस्याओं के कारण नष्ट होने वाला क्षेत्र अन्य 30 मिलियन हेक्टेयर (कोटी रेड्डी टी., 2010) के लिए जिम्मेदार है। हमारी एक-तिहाई भूमि वनों के अधीन है, लगभग दो-तिहाई भूमि कृषि के अधीन है और लगभग सभी खेती योग्य बंजर भूमि, स्थायी चरागाह और चारागाह भूमि को संरक्षण उपायों की तत्काल आवश्यकता है (के.जी.तेजवानी, 1982)। पर्यावरण पर बेतरतीब चराई के प्रभाव चिंताजनक हैं। अत्यधिक चराई के कारण भूमि क्षरण के कारण देश के कई हिस्सों में रेगिस्तान जैसी स्थिति पैदा हो गई है।

इस विषय पर कुछ भारतीय अध्ययन हैं और वे आम तौर पर जलवायु परिवर्तन के साथ कृषि में गिरावट की समान प्रवृत्ति की पुष्टि करते हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान में किए गए हाल के अध्ययनों से संकेत मिलता है कि बढ़ती अवधि के दौरान 1 डिग्री सेल्सियस तापमान में प्रत्येक वृद्धि के साथ भविष्य में गेहूं उत्पादन में 4-5 मिलियन टन की हानि होने की संभावना है (लेकिन कोई अनुकूलन लाभ नहीं)। इसमें यह भी माना गया है कि भविष्य में सिंचाई आज के स्तर पर ही उपलब्ध रहेगी। अन्य फसलों के लिए नुकसान अभी भी अनिश्चित है, लेकिन उनके अपेक्षाकृत कम होने की उम्मीद है, खासकर खरीफ फसलों के लिए। सिन्हा और स्वामीनाथन (1991) के अनुसार, तापमान में 2 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि से उच्च उपज वाले क्षेत्रों में चावल की उपज लगभग 0.75 टन प्रति हेक्टेयर कम हो सकती और सर्दियों के तापमान में 0.5 डिग्री सेल्सियस कीवृद्धि से गेहूं की उपज 0.45 टन प्रति हेक्टेयर कम हो जाएगी। राव और शिना (1994) ने दिखाया कि कार्बन डाईऑक्साइड निषेचन प्रभावों पर विचार किए बिना गेहूं की पैदावार 28-68 प्रतिशत के बीच घट सकती है। अग्रवाल और सिन्हा (1993) ने दिखाया कि 20 डिग्री सेल्सियस तापमान बढ़ने से अधिकांश स्थानों पर गेहूं की पैदावार कम हो जाएगी। ससीन्द्रन एट अल. (2000) से पता चला कि तापमान में प्रत्येक एक डिग्री सेल्सियस वृद्धि से के चावल की उपज में लगभग 6 प्रतिशत की गिरावट होगी। हाल की आईपीसीसी रिपोर्ट और कुछ अन्य वैश्विक अध्ययनों से संकेत मिलता है कि 2080-2100 तक तापमान में वृद्धि के साथ भारत में फसल उत्पादन में 10 से 40 प्रतिशत नुकसान होने की संभावना है।भारतीय कृषि क्षेत्र पिछले छह वर्षों के दौरान4.6 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि दर से बढ़ रहा है। यह 2020-21में 3.3 प्रतिशत की तुलना में 2021-22 में 3.0प्रतिशत बढ़ा। हाल के वर्षों में, भारत तेजी से कृषि उत्पादों के शुद्ध निर्यातक के रूप में भी उभरा है। 2020-21में, भारत से कृषि और संबद्ध उत्पादों के निर्यात में पिछले वर्ष की तुलना में 18 प्रतिशत की वृद्धि हुई। 2021-22के दौरान, कृषि निर्यात 50.2बिलियन अमेरिकी डॉलर के सर्वकालिक उच्च स्तर पर पहुंच गयाहै।

खाद्य सुरक्षा और जलवायु परिवर्तन- खाद्य सुरक्षा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जलवायु परिवर्तन से संबंधित है। फसलों की वृद्धि को नियंत्रित करने वाले तापमान और आर्द्रता जैसे जलवायु मापदंडों में किसी भी बदलाव का उत्पादित भोजन की गुणवत्ता पर सीधा प्रभाव पड़ेगा। अप्रत्यक्ष संबंध बाढ़ और सूखे जैसी विनाशकारी घटनाओं से संबंधित हैं, जिनके जलवायु

परिवर्तन के परिणाम स्वरूप बढ़ने का अनुमान है, जिससे भारी फसल का नुकसान होता है और कृषि योग्य भूमि के बड़े हिस्से खेती के लिए अनुपयुक्त हो जाते हैं, और इसलिए खाद्य सुरक्षा के लिए खतरा पैदा हो जाता है (चौधरी अनीता, अग्रवाल पी.के, 2007)। इसके अलावा, जलवायु परिवर्तन और खाद्य सुरक्षा भी संबंधित हैं क्योंकि जलवायु परिवर्तन किसी देश की अपने लोगों को खिलाने की क्षमता को सीधे प्रभावित कर सकता है। हालाँकि, शोध से पता चलता है कि जलवायु परिवर्तन सभी देशों को समान रूप से प्रभावित नहीं करेगा, और उप-सहारा अफ्रीका जैसे भूमध्यरेखीय क्षेत्रों में इसका सबसे बड़ा प्रभाव होने की संभावना है। इसका मतलब यह है कि पहले से ही खाद्य सुरक्षा से जूझ रहे देशों को भविष्य में और भी अधिक संघर्ष करना पड़ सकता है। खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ) ने चेतावनी दी है कि औसत वैश्विक तापमान में पूर्व-औद्योगिक स्तर से केवल 2 से 4 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि से अफ्रीका और पश्चिमी एशिया में फसल की पैदावार में 15-35 प्रतिशत और 25-35 प्रतिशत की कमी हो सकती है।तेज आर्थिक विकास और सरकारी गोदामों में खाद्य भंडार के ढेर के बावजूद, भारत दुनिया में सबसे बड़ी संख्या में भूखे और वंचित लोगों का घर है- यानी 360 मिलियन कुपोषित और 300 मिलियन गरीब लोग। भोजन की आपूर्ति बनाए रखना अपने आप में एक गंभीर मुद्दा बनकर उभर रहा है। पिछले कुछ दशकों में खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि धीमी है।

वर्ष 2022 में गेहूं की कटाई के मौसम के दौरान शुरुआती गर्मी की लहर देखी गई जिसने इसके उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डाला। अग्रिम अनुमानों के अनुसार, 2022-23 (केवल खरीफ) के लिए देश में खाद्यान्न उत्पादन अनुमानित 149.9 मिलियन तन है जो पिछले 5 वर्षों 2016-17 से 2020-21 के औसत खाद्यान्न उत्पादन से अधिक है धान के बोए गए क्षेत्र में गिरावट के बावजूद 2022-23 के दौरान खरीफ चावल का कुल उत्पादन 104.2 मिलियन टन अनुमानित है, जो पिछले 5 वर्षों 2016-17 से 2020-21 के औसत चावल उत्पादन 100.5 मिलियन तन से अधिक है। मानसून में देरी और कम बारिश के कारण खरीफ सीजन में धान की खेती के लिए बुवाई क्षेत्र में भी गिरावट दर्ज की गई। प्रथम अग्रिम अनुमान 2022-23 (केवल खरीफ) के अनुसार, धान का रकबा 2021-22 (खरीफ मौसम) के दौरान 411.2 लाख हेक्टेयर के बोए गए क्षेत्र से लगभग 3.8 लाख हेक्टेयर कम था। इसके अलावा, चालू रबी सीजन में रबी धान के तहत क्षेत्र में पिछले साल की तुलना में 6.6 लाख हेक्टेयर का विस्तार हुआ है (क्रॉप वेदर वॉच ग्रुप 12 जनवरी, 2023)

इसके अलावा, गरीबों के पास क्रय शक्ति का अभाव है। इससे खाद्यान्न भंडार में कृत्रिम अधिशेष पैदा हुआ और सरकार 2002-08 के दौरान सालाना औसतन लगभग सात मिलियन टन खाद्यान्न निर्यात करने में सक्षम हुई। शुद्ध खाद्यान्न उपलब्धता 1991 में प्रति व्यक्ति 510 ग्राम से घटकर 2007 में प्रति व्यक्ति 443 ग्राम प्रति दिन हो गई है (यू.एन.डी.पी., 2009)तथा 2021-22बढ़कर 5141.6ग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिदिन हों गई हैं। इसका सबसे अधिक असर गरीबों पर पड़ता है क्योंकि महंगे फलों, सब्जियों, पोल्ट्री और मांस उत्पादों तक उनकी पहुंच बहुत कम होती है। उन्हें भोजन की जरूरत है लेकिन उनके पास क्रय शक्ति नहीं है। यह स्थिति मध्य और पूर्वी भारत में अधिक स्पष्ट है,भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान ने जलवायु परिवर्तन के प्रभावों में अंतर निर्धारित करने के उद्देश्य से जलवायु परिवर्तन के प्रति क्षेत्र और फसलों के अनुसार कृषि उत्पादन की संवेदनशीलता की जांच की। चित्र-1 भारत में खाद्यान्न उत्पादन का विवरण देता है।

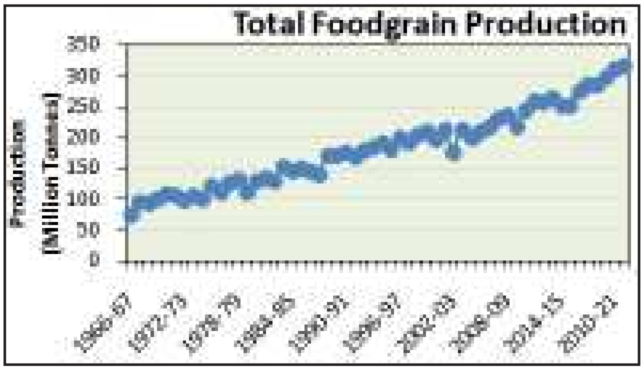

Fig.1. India's Food grains Production in Million Tonnes

भारत में 65 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि वर्षा आधारित है और भोजन और चारे की बढ़ती मांग को वर्षा आधारित क्षेत्रों में बढ़े हुए उत्पादन से पूरा करना होगा, क्योंकि खेती योग्य क्षेत्र या सिंचाई सुविधाओं के विस्तार की बहुत कम गुंजाइश है। वर्तमान में लगभग 68.35 मिलियन हेक्टेयर भूमि बंजर भूमि के रूप में पड़ी हुई है, इसमें से लगभग 50 प्रतिशत गैर-वन भूमि है जिसे यदि उचित उपचार किया जाए तो इसे फिर से उपजाऊ बनाया जा सकता है। निम्नीकृत भूमि का घटक राजस्थान में सबसे अधिक है, इसके बाद मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, गुजरात, आंध्र प्रदेश और कर्नाटक का स्थान है। जहां भूमि क्षरण हल्का या मध्यम है, जो लागत की अपेक्षा कम उत्पादन देगा।

विश्व कृषि में भारत की स्थिति- भारत विश्व की घनी आबादी वाले देशों में से एक है जो तालिका-1 से स्पष्ट है।भारत ने 11.20 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि के साथ दुनिया की केवल 2.43 प्रतिशत भूमि का अधिग्रहण किया है, लेकिन दुनिया की 17.81 प्रतिशत आबादी को खिलाने के लिए बाध्य है। यह हमारे देश के लिए एक बड़ी चुनौती है जो जलवायु परिवर्तन के खतरे के साथ और भी गंभीर होने वाली है। शायद यही कारण है कि हम विश्व कृषि में 22.3 प्रतिशत हिस्सेदारी रखते हैं। यद्यपि विश्व जनसंख्या में हमारी हिस्सेदारी 17.81 प्रतिशत है लेकिन कुल सक्रिय जनसंख्या में हमारी हिस्सेदारी केवल 14.8 प्रतिशत है। यह दर्शाता है कि हम न केवल घनी आबादी वाले हैं बल्कि हमारी निर्भरता दर भी ऊंची है। तालिका-1 से एक दिलचस्प तथ्य यह समझा जा सकता है कि विश्व की आर्थिक रूप से सक्रिय जनसंख्या में भारत की हिस्सेदारी 20.2 प्रतिशत और विश्व कृषि उत्पादन में 22.3 प्रतिशत है, जो दर्शाता है कि भारतीय श्रम शक्ति किसी भी अन्य देशों की तुलना में अधिक कुशल है। यह मानते हुए कि अन्य कारक समान रहेंगे।

भारत में 536 मिलियन (दुनिया का 31प्रतिशत) की सबसे बड़ी पशुधन आबादी है, जिसमें वर्ष के आधार पर 10 प्रतिशत की वृद्धि दर से 198 मीट्रिक टन दूध उत्पादन होता है (आईबीईएफ, 2020)। पशुधन और मत्स्य पालन के साथ 852 मिलियन (डी.ए.एच.डी., 2020) में पोल्ट्री का योगदान हैचावल और दालों के उत्पादन को छोड़कर दुनिया में अनाज, तिलहन, फल और सब्जियों का हिस्सा भी जनसंख्या की तुलना में कम है। यह हरित क्रांति तथा अन्य तकनीकी एवं संस्थागत परिवर्तनों के बाद भी विश्व में भारत की कृषि की दयनीय स्थिति को दर्शाता है। व्यावसायिक फसलों के मामले में हम बेहतरस्थिति में हैं। विश्व गन्ना उत्पादन में हमारी हिस्सेदारी 19.87प्रतिशत, जूट उत्पादन में 48.42प्रतिशत और चाय और

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

कपास उत्पादन में क्रमश: 20.16प्रतिशत और 16.5 प्रतिशत हिस्सेदारी है। लेकिन विश्व उत्पादन में ग्रीन कॉफी और तम्बाकू की हिस्सेदारी क्रमश: 2.96 प्रतिशत और 13.18 प्रतिशत के बराबर बेहद कम है।तालिका-1 से पता चलता है कि विश्व पशुधन में भारत का हिस्सा और भैंसों को छोड़कर जहां हमारा हिस्सा असाधारण रूप से बहुत अधिक है अर्थात् 54.6 प्रतिशत है, पशु उत्पाद विर्श्व की जनसंख्या में इसके हिस्से से भी कम है। कृषि में ट्रैक्टरों के उपयोग के संदर्भ में भी हमारी हिस्सेदारी 10.7 प्रतिशत है।

तालिका 1 - (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

मामलों में विश्व कृषि में भारत की हिस्सेदारी जनसंख्या से कम है, सिवाय कुछ को छोड़कर जो खाद्य सुरक्षा का बोझ बढ़ाते हैं। कृषि योग्य भूमि पर भविष्य में जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभाव के परिणामस्वरूप अनाज की फसल के उत्पादन और इन फसलों के शुद्ध राजस्व पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। अनाज (गेहूं, चावल, जौ, मक्का, बाजरा, ज्वार, मूंगफली, कसावा, राई और जई) लोगों के आहार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं (श्लेनकर और लोबेल 2010, वार्ड एट अल., 2010)।

भारत में जलवायु परिवर्तनशीलता और खाद्यान्न उत्पादन- ध्यातव्य है कि जलवायु-संवेदनशील क्षेत्र (वन, कृषि, तटीय क्षेत्र) और प्राकृतिक संसाधन (भूजल, मिट्टी, जैव विविधता, आदि) पहले से ही सामाजिक-आर्थिक दबावों के कारण तनाव में हैं। जलवायु परिवर्तन से संसाधन क्षरण और सामाजिक-आर्थिक दबाव के बढ़ने की संभावना है। इस प्रकार, भारत जैसे देशों में बड़ी आबादी जलवायु-संवेदनशील क्षेत्रों और कम अनुकूली क्षमता पर निर्भर है, उन्हेंअनुकूलन रणनीतियों को विकसित और कार्यान्वित करना है (सथाये, शुक्ल और रवींद्रनाथ,2006)।

तालिका 2 - (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

खाद्य, पोषण और पर्यावरणीय सुरक्षा के संदर्भ में देश की सामाजिक और आर्थिक स्थिति का निर्धारण करने में कृषि और संबद्ध क्षेत्र आगे रहते हैं।विरोधाभासी रूप से, 80प्रतिशत भूमि द्रव्यमान सूखे, बाढ़ और चक्रवातों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील है, जलवायु परिवर्तन के प्रभाव में वर्ष दर वर्ष उत्तरार्द्ध की आवृत्ति और गंभीरता बढ़ रही है।पांच वर्ष से कम आयु के बच्चों में कुपोषण (बेनामी, 2020ए) और भारतीय आबादी के बीच 6-7 प्रतिशत (बेनामी, 2020 बी) की गरीबी, फसल की खेती हेतू सिकुड़ती भूमि, बढ़ती आबादी, जलवायु परिवर्तन, वैश्विक प्रतिस्पर्धा, पर्यावरण चेतना और खाद्य सुरक्षा अपेक्षाओं के साथ बदलती जीवन शैली समानांतर चल रही है।भारत के खाद्यान्न उत्पादन का प्रदर्शन निम्नलिखित तालिका 2और चित्र 2 में दिया गया है। कृषि क्षेत्र को जलवायु परिवर्तन के प्रति सबसे संवेदनशील क्षेत्र कहा जाता है क्योंकि किसी क्षेत्र/देश की जलवायु वनस्पति और फसलों की प्रकृति और विशेषताओं को निर्धारित करती है। भारतीय जलवायु में भिन्नता के कारण हमारे देश के अधिकांश हिस्से बड़े पैमाने पर फसलों की खेती के लिए बहुत उपयुक्त है। लेकिन भारतीय मिट्टी खाद्यान्न, विशेष रूप से गेहूं और चावल की खेती के लिए सबसे उपयुक्त है। गेहूं का उत्पादन रबी मौसम में किया जाता है जब बारिश सीमित होती है। इस कारण गेहूं का उत्पादन मुख्य रूप से उन क्षेत्रों में पाया जाता है जहां सिंचाई की उपलब्धता सुनिश्चित है (मुख्य रूप से पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश) जो उचित में मदद करता है हरित क्रांति का कार्यान्वयन में उचित मदद करता है और ज्यादातर देशों के उत्तरी भाग तक सीमित हो गया। चूंकि गेहूं का उत्पादन बहुत हद तक सुनिश्चित सिंचाई पर निर्भर है, इसलिए तापमान परिवर्तन से गेहूं उत्पादन को प्रभावित होने की आशंका है।

चावल खरीफ मौसम कीएक प्रमुख फसल है जिसमें बड़ी मात्रा में सिंचाई की आवश्यकता होती है जो मानसून के माध्यम से इस मौसम के दौरान भारत में उपलब्ध होती है। पूरे मौसम में लगातार बारिश से तापमान में उतार-चढ़ाव भी बना रहता है।इसलिए माना जाता है कि जलवायु परिवर्तन का प्रभाव न केवल मौसम के दौरान फसलों पर अधिक पड़ता है बल्कि वर्षा की मात्रा एवं प्रारूप में परिवर्तन के माध्यम से तापमान परिवर्तन पर भी पड़ता हैं। इसका विश्लेषण निम्न तालिका से आसानी से किया जा सकता है।जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को इस तथ्य से आसानी से देखा जा सकता है कि खरीफ सीजन में कृषि क्षेत्र में बड़े पैमाने पर उतार-चढ़ाव होता है।खरीफ मौसम में कृषि क्षेत्र कुछ मामूली उतार-चढ़ाव केसाथ 1966-67 में 78.21 मिलियन हैक्टेयर से बढ़कर1983-84 में अधिकतम 84.14 मिलियन हैक्टेयर तथा 2021-2022 मेंघटकर72.99मिलियन हैक्टेयर हो गया है। लेकिन उसके बाद बारिश में उतार-चढ़ाव और तापमान प्रारूप में परिवर्तन में के साथ कृषि क्षेत्र में लगातार गिरावट आई है। यह आसानी से देखा जा सकता है कि जब कृषि क्षेत्र में गिरावट आई तो इसने कुल उत्पादन के साथ-साथ उत्पादकता को भी कम कर दिया और जलवायु परिवर्तन का स्पष्ट संकेत दिया है। फसलों के मौसम के दौरान फसलों की खेती में जलवायु परिवर्तन ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

खरीफ मौसम की तुलना में रबी मौसम में कृषि क्षेत्र में उतार-चढ़ाव कम है जो सुनिश्चित सिंचाई सुविधाओं की उपलब्धता के कारण हो सकता है। कृषि क्षेत्र में उतार-चढ़ाव के साथ-साथ उत्पादन में उतार-चढ़ाव भी महसूस किया गया है। यह सच बात है कि सुनिश्चित सिंचाई सुविधाओं की उपलब्धता के साथ, जलवायु परिवर्तन के लिए रबी फसलों की भेद्यता कम हो गई है, लेकिन फिर भी जलवायु परिवर्तन का प्रभाव रबी की फसलों पर भी पड़ा है।कुल खाद्यान्न उत्पादन के मामले में भी यही परिणाम पता लगाया जा सकता है। खाद्यान्नों के उत्पादन और उपज में परिवर्तन हमेशा कृषि क्षेत्र में परिवर्तन के साथ होता है। अत: यह कहा जा सकता है कि जो कारक कृषि क्षेत्र में परिवर्तन के लिये उत्तरदायी हैं, वे उन फसलों के उत्पादन एवं उपज के लिये भी उत्तरदायी हैं जिनमें जलवायु परिवर्तन सर्वाधिक महत्तवपूर्ण एवं हावी है।

निष्कर्ष- इसमें कोई संदेह नहीं है कि कृषि भारत में समग्र आर्थिक और सामाजिक कल्याण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है क्योंकि अभी भी पचास प्रतिशत से अधिक आबादी कृषि क्षेत्र में लगी हुई है। अत ग्लोबल वार्मिंग, वातावरण में कार्बन डाईऑक्साइड और अन्य ग्रीन हाउस गैसों के तेजी से बढ़ते स्तर जैसे अनेक कारकों का कृषि प्रणालियों एवं खाद्यान्न उत्पादन के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। अनुमानों से पता चलता है कि1975-76से 2008-09 की अवधि के दौरान खाद्यान्न उत्पादन का क्षेत्र 126.18 मिलियन हेक्टेयर से घटकर 122.23 मिलियन हेक्टेयर हो गया, जबकि उस अवधि के दौरान उत्पादन में 121.03 मिलियन टन से 234.47 मिलियन टन की वृद्धि दर्ज की गई। वर्ष2008-09 में खाद्यान्न उत्पादन काफी प्रभावशाली रहा जो वर्ष 1966-67 के 74.23 मिलियन टन उत्पादन के मुकाबले तीन गुने से भी अधिक रहा।जबकि 2021-22 में खाद्यान्न उत्पादन क्षेत्र बढ़कर 130.53 मिलियन हेक्टेयर एवं उत्पादन बढ़कर 315.72 मिलियन टन हों गया है। हालांकि देश की अपनी लगातार बढ़ती आबादी जिसके 2030 तक1.5 बिलियन (संयुक्त राष्ट्र) तक पहुंचने की संभावना है का भरण पोषण करने हेतू 2030 तक खाद्यान्न की मांग 345मिलियन टन हैं। इस बढ़ी हुई आबादी से भोजन की मांग को पूरा करने के लिए, देश के किसानों को 2030 तक अधिक खाद्यान्न उत्पादन करने की

आवश्यकता है।भारत को 2030 तक पांच लोगों को खिलाने के लिए एक हेक्टेयर भूमि की आवश्यकता होगी जबकि वर्तमान में दो हेक्टेयर भूमि की आवश्यकता है। इसी प्रकार, प्रति व्यक्ति पोषण आवश्यकता वर्तमान 2,495 किलो कैलोरी/व्यक्ति से बढ़कर 3000किलो कैलोरी/व्यक्ति हो जाएगी जिसके लिए प्रति वर्ष 5.5मिलियन टन खाद्यान्न उत्पादन की आवश्यकता होगी। शहरी क्षेत्रों में निरंतर ग्रामीण प्रवास, धन में वृद्धि और मांस और डेयरी से भरपूर आहार की ओर बढ़ने से जनसांख्यिकी और भोजन की आदतों में बदलाव आएगा।

अध्ययन से यह भी पता चलता है कि खरीफ मौसम मे कृषि क्षेत्र में बड़े पैमाने पर उतार-चढ़ाव होता है। खरीफ मौसम में कृषि क्षेत्र के अंतर्गत कुछ मामूली उतार-चढ़ाव के साथ1966-67 में 78.28 मिलियन हैक्टेयर से बढ़कर 1983-84 में अधिकतम 84.14 मिलियन हैक्टेयर हो गया है। लेकिन उसके बाद बारिश में उतार-चढ़ाव और तापमान पैटर्न में बदलाव के साथ2009-10तक कृषि क्षेत्र में लगातार गिरावट आई। किंतु देश में विभिन्न भूमि सुधार कार्यक्रमों के मध्यम से वर्ष 2010-11 (126.67मि.हे)से कृषि क्षेत्र में लगातार वृद्धि दर्ज की गई जो वर्ष 2021-22 में 130.53 मिलियन हेक्टेयर तक हों गई हैं।यह आसानी से देखा जा सकता है कि जब कृषि क्षेत्र गिरावट हुआ हों तो है तो इसने कुल उत्पादन के साथ-साथ उत्पादकता को भी कम कर दिया है और स्पष्ट संकेत दिया है कि फसलों के मौसम के दौरान फसलों की खेती में जलवायु परिवर्तन ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। खरीफ मौसम की तुलना में रबी के मौसम में कृषि क्षेत्र में मौसमी उतार-चढ़ाव कम है जो सुनिश्चित सिंचाई सुविधाओं की उपलब्धता के कारण हो सका है। कृषि क्षेत्र में उतार-चढ़ाव के साथ-साथ उत्पादन में भी उतार-चढ़ाव महसूस किया जाता है। हालांकि यह सच बात है कि सुनिश्चित सिंचाई सुविधाओं की उपलब्धता के साथ जलवायु परिवर्तन की भेद्यता रबी फसलों पर कम हुआ है लेकिन अभी भी जलवायु परिवर्तन का प्रभाव रबी की फसलों पर पड़ रहा है।भारत लगातार उच्च आर्थिक और तकनीकी विकास के साथ एक बढ़ती हुई वैश्विक शक्ति है, फिर भी सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का हिस्सा घट रहा है।कृषि भारत की 1.38 बिलियन आबादी में से लगभग 58 प्रतिशत को आजीविका प्रदान करती है। खाद्यान्न और बागवानी फसलों का उत्पादन 142 मिलियन हेक्टेयर से क्रमश: 296 और 320 मिलियन मीट्रिक टनहै, जोस्पष्टआत्मनिर्भरता के लिए अग्रणी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Agarwal, B., “Social Security and the Family in Rural India: Coping with Seasonality and Calamity” Journal of Peasant Studies, 1990, 17, 341-412.
2. Aggarwal, P.K., and Sinha, S.K., 1993, “Effect of Probable Increase in Carbon Dioxide and Temperature on Productivity of Wheat in India” Journal of Agricultural Metrology.
3. Bhattacharya, Sumana; Sharma, C., Dhiman, R.C., and Mitra, A.P., “Climate Change and Malaria in India” Current Science, February 2006, 90, 369-375.
4. Chaudhry, Anita and Aggarwal, P.K., 2007, “Climate Changes and Food Security in India”, Indian Agriculture Research Institute, New Delh
5. Dasgupta, Susmita, Laplante, Benoit, Meisner, Craig, Wheeler, David; and Yan, Jinping, “The Impacts of Sea Level Rise on Developing Countries: A Comparative Analysis” Policy Research Working Paper 4136, 2007, World Bank, Washington, D.C.
6. Dasgupta, Susmita; Laplante, Benoit; Meisner, Craig; Wheeler, David; and Yan, Jinping, “The Impacts of Sea Level Rise on Developing Countries: A Comparative Analysis” Policy Research Working Paper 4136, 2007, World Bank, Washington, D.C.
7. Dash, Biswanath, “Lessons from Orissa Super Cyclone: Need for Integrated Warning System” Economic and Political Weekly, October 2002, 37(42), pp. 4270-4271.
8. FAO, 2007, “Food and Agriculture Organization of the UN” Retrieved June 25.
9. FAO, 2008, “Climate Change and Food Security: A Framework Document.” Food and Agriculture Organization Interdepartmental working group on climate change.www.fao.org/clim/docs/climatechange_foodsecurity.pdf.
10. IPCC, 2001, Intergovernmental Panel on Climate Change (IPCC)
11. Kavi Kumar, K.S. and Parikh, Jyoti, “Indian Agriculture and Climate Sensitivity” Global Environmental Change, 2001, 11, pp: 147–154
12. Koty Reddy T., 2010, “Impact of Environment on Poverty in India” The Indian Economy Review, Vol. vii, March Issue, p. 28.
13. Malli, Singh, Gupta, A., Srinivasan, G. and Rathore, S., 2006, Impact of Climate Change on Indian Agriculture: A Review. Springer Publication, pp. 445–478.
14. Mitra Amit, 2009, “Climate changes: Adaptation Activities in India”, Gorakhpur Environmental Action Group, Gorakh pur U.P.
15. Sathaye Jayant, Shukla P. R., and Ravindranath N. H., 2006, “Climate change, sustainable development and India: Global and national concerns” Current Science, vol. 90, No. 3. Februray, p. 319.
16. Sinha, S.K. and Swaminathan, M.S., 1991, “Deforestation Climate Change and Sustainable Nutrients Security”, Climate Change 16, pp. 33–45.
17. Sinha, S.K. Singh, M. Rai, 1994, “In Decline in Crop Productivity in Haryana and Punjab: Myth or Reality?’ Indian Council of Agricultural Research, New Delhi, p. 89
18. Praduman Kumar, P.K. Joshi and Pratap S. Birthal, “Demand Projections for Foodgrains in India”, Agricultural Economics Research Review, 22(2009): 237
19. “Rome Declaration on World Food Security”, Rome, November 13-7, 1996. http://www.fao.org/ docrep/003/w3613e/w3613e00.HTM.
20. Parry et al., “Climate Change and Hunger: Responding to the Challenge”, Rome: World Food Programme, 2009,http://www.preventionweb.net/files/12007_wfp212536.pdf
21. “Climate change and food security: risks and responses”, Food and Agriculture Organisation, 2016. http://www.fao.org/3/a-i5188e.pdf

Table 1. India's Position in World Agriculture in 2020

1. Area (Million Hectares), **2. Population*** (Million), 3. **Economically Active Population*** (Million**)**, **4. Crop Production** (Million Tonnes, **5. Fruits & Vegetables** (Million Tonnes), **6. Livestock** (Million Heads), **7. Dairy Products, 8. Implements** (Thousand s numbers) **

Item	India	World	% Share	India's Rank
1. Area (Million Hectares)				
Total Area	328.73	13500.32	2.43	Seventh
Land Area	297.32	13031.20	2.28	Seventh
Arable Land	155.37	1387.17	11.20	Second
2. Total Population* (Million)	1396.39	7840.95	17.81	Second
Agriculture	583	2617	22.3	Second
3. Economically Active Population* (Million)				
Total	472	3178	14.8	Second
Agriculture	262	1295	20.2	Second
4. Crop Production (Million Tonnes)				
(A) : Total Cereals	342.11	3006.63	11.38	Third
Wheat	107.86	756.95	14.25	Second
Rice (Paddy)	186.50	769.23	24.25	Second
(B): Pulses	23.32	90.10	25.88	First
(C): Oilseeds				
Groundnut (excluding shelled)	9.95	53.79	18.50	Second
Rapeseed	2.52	25.18	10.01	Fourth
(D): Commercial Crops				
Sugarcane	371	1865	19.87	Second
Tea	5.48	27.20	20.16	Second
Coffee (green)	0.32	10.80	2.96	Ninth
Jute	1.70	3.51	48.42	Second
Tobacco Unmanufactured	0.77	5.81	13.18	Second
Cotton	5.84	24.50	23	Second
5. Fruits & Vegetables (Million Tonnes)				
(A): Vegetables Primary	135.29	1138.74	11.88	Second
(B): Fruits Primary	106.97	899.56	11.89	Second
(C): Potatoes	48.56	371.14	13.08	Second
(D): Onion (Dry)	26.09	104.56	24.95	First
6. Livestock (Million Heads)				
(A): Cattle	194.93	1523.29	12.80	Second
(B): Buffaloes	109.74	201.18	54.55	First
(C): Camels	0.22	38.66	0.58	Twenty first
(D): Sheep	75.60	1264.09	5.98	Second
(E): Goats	150.63	1115.29	13.51	First
(F): Chickens	824.33	25562.87	3.22	Seventh
7. Dairy Products (Million Tonnes)				
(A): Milk Total	210.19	914.48	22.99	First
(B): Eggs (Primary) Total	6.71	93.34	7.19	Second
(C): Meat, Total	4.52	137.03	3.30	Fifth
8. Implements (Thousands numbers)**				
Agricultural Tractors-in-use	3149	29320	10.7	Second

Source: FAOSTAT (as on 29.03.2023)

Table 2.मौसम के अनुसार खाद्यान्न का क्षेत्रफल, उत्पादनऔरउपज

A - Area in Million Hectares **P** - Production in Million Tonnes **Y** - Yield in Kg./Hectare

Year	Kharif			Rabi			Total		
	A	P	Y	A	P	Y	A	P	Y
1966-67	78.21	48.89	625	37.09	25.34	683	115.30	74.23	644
1967-68	81.49	60.67	746	39.93	34.29	859	121.42	95.05	783
1968-69	80.40	59.57	741	40.03	34.44	860	120.43	94.01	781
1969-70	82.30	62.35	758	41.27	37.15	900	123.57	99.50	805
1970-71	82.36	68.92	837	41.96	39.50	941	124.32	108.42	872
1971-72	79.22	62.99	795	43.40	42.18	972	122.62	105.17	858
1972-73	78.34	58.64	749	40.94	38.39	938	119.28	99.83	813
1973-74	84.12	67.84	806	42.42	36.83	868	126.54	121.03	827
1974-75	79.74	59.10	741	41.34	40.73	985	121.08	99.83	824
1975-76	83.15	73.89	889	45.03	47.14	1047	128.18	121.03	944
1976-77	81.18	66.53	820	43.18	44.64	1034	124.36	111.17	894
1977-78	82.88	77.72	938	44.64	48.69	1091	127.52	126.41	991
1978-79	82.85	78.08	942	46.16	53.82	1166	129.01	131.90	1022
1979-80	80.79	63.25	783	44.42	46.45	1046	125.21	109.70	876
1980-81	83.21	77.65	933	43.46	51.94	1195	126.67	129.59	1023
1981-82	83.93	79.38	946	45.21	53.92	1193	129.14	133.30	1032
1982-83	79.08	69.90	884	46.02	59.62	1296	125.10	129.52	1035
1983-84	84.14	89.23	1066	47.02	63.14	1343	131.16	152.37	1162
1984-85	81.18	84.52	1041	45.49	61.-2	1341	126.67	145.54	1149
1985-86	81.80	85.25	1042	46.22	65.19	1410	128.02	150.44	1175
1986-87	81.46	80.20	985	45.74	63.22	1382	127.20	143.42	1128
1987-88	74.89	74.56	996	44.80	65.79	1469	119.69	140.35	1173
1988-89	82.03	95.64	1166	45.64	74.28	1628	127.67	169.92	1331
1989-90	81.40	100.99	1241	45.37	70.05	1544	126.77	171.04	1349
1990-91	80.87	99.44	1231	47.06	76.95	1635	127.84	176.39	1380
1991-92	78.02	91.59	1174	43.85	76.79	1751	121.87	168.38	1382
1992-93	77.92	101.47	1302	45.23	78.01	1725	123.15	179.48	1457
1993-94	75.81	100.40	1324	46.94	83.86	1787	122.75	184.26	1501
1994-95	75.19	101.09	1344	48.67	90.41	1858	123.86	191.50	1546
1995-96	73.60	95.12	1292	47.42	85.30	1799	121.02	180.42	1491
1996-97	75.34	103.82	1379	48.24	95.52	1980	123.58	199.34	1613
1997-98	74.37	101.58	1370	49.70	90.68	1825	124.07	192.26	1550
1998-99	73.99	102.91	1391	51.18	100.69	1967	125.17	203.60	1627
1999-00	73.24	105.51	1441	49.87	104.29	2091	123.11	209.80	1704
2000-01	75.22	102.09	1357	45.83	94.73	2067	121.05	196.81	1626
2001-02	74.23	112.07	1510	48.55	100.78	2076	122.78	212.85	1734
2002-03	68.56	87.22	1272	45.30	87.55	1933	113.86	174.77	1535
2003-04	75.44	117.00	1551	48.01	96.19	2004	123.45	213.19	1727
2004-05	72.26	103.31	1430	47.82	95.05	2004	120.08	198.36	1652
2005-06	72.72	109.87	1511	48.88	98.73	2020	121.60	208.60	1715
2006-07	72.67	110.58	1522	51.04	106.71	2091	123.71	217.28	1756
2007-08	73.58	121.00	1644	50.49	109.77	2174	124.07	230.78	1860
2008-09	71.45	118.18	1654	51.39	116.28	2263	122.85	234.47	1909
2009-10	69.51	104.00	1496	51.83	114.11	2202	121.34	218.11	1798
2010-11	72.42	120.90	1669	54.25	123.60	2278	126.67	244.50	1930
2011-12	72.08	131.27	1821	52.67	128.01	2430	124.75	259.29	2078
2012-13	67.69	128.07	1892	53.09	129.06	2431	120.78	257.13	2129
2013-14	69.05	128.69	1864	55.99	136.35	2435	125.04	265.04	2120
2014-15	68.77	128.06	1862	55.53	123.96	2232	124.30	252.02	2028
2015-16	69.20	125.09	1808	54.01	126.45	2341	123.22	251.54	2041
2016-17	73.20	138.33	1890	56.03	136.78	2441	129.23	275.11	2129
2017-18	72.00	140.47	1951	55.53	144.55	2603	127.52	285.01	2235
2018-19	72.33	141.52	1957	52.45	143.69	2740	124.78	285.21	2286
2019-20	70.86	143.81	2029	56.13	153.69	2738	126.99	297.50	2343
2020-21	72.44	150.58	2079	57.35	160.17	2793	129.80	310.74	2394
2021-22*	72.99	156.04	2138	57.54	159.68	2775	130.53	315.72	2419

Source : E&S Division, DA&FW, * Fourth Advance Estimates.

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Area under Kharif Crops

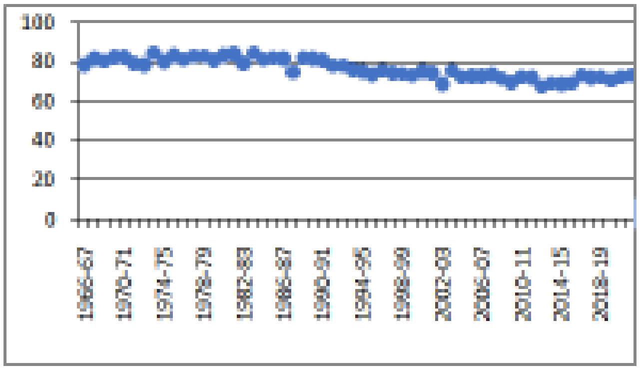

Production of Kharif Crops

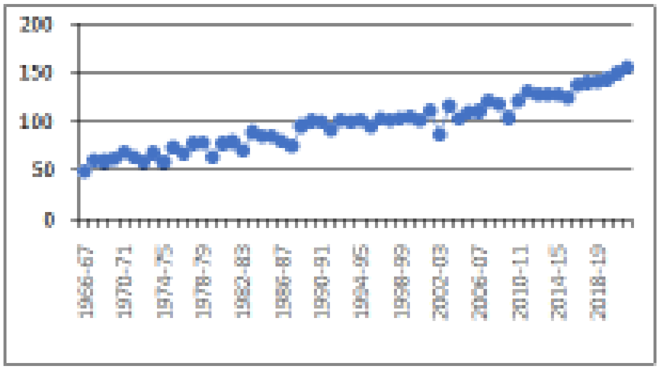

Yield of Kharif Crops

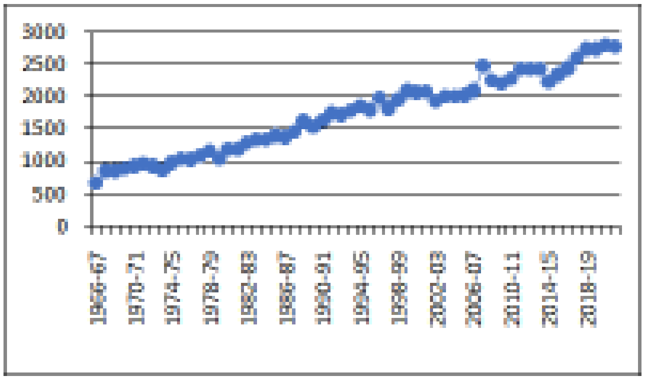

Area under Rabi Crops

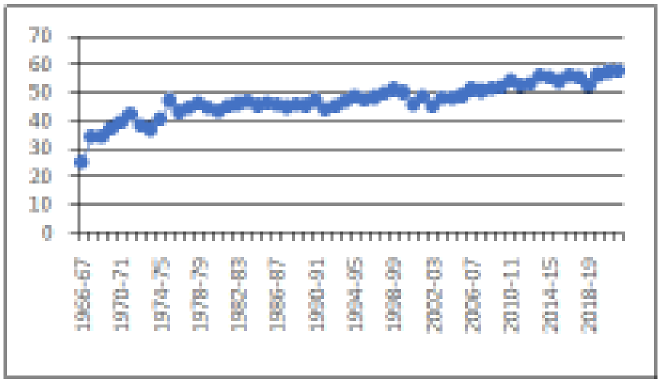

Production of Rabi Crops

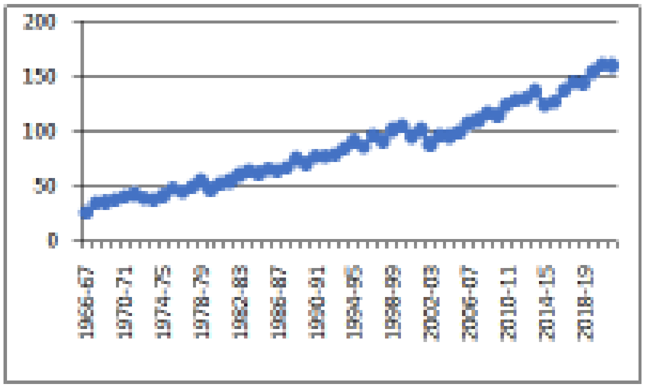

Yield of Rabi Crops

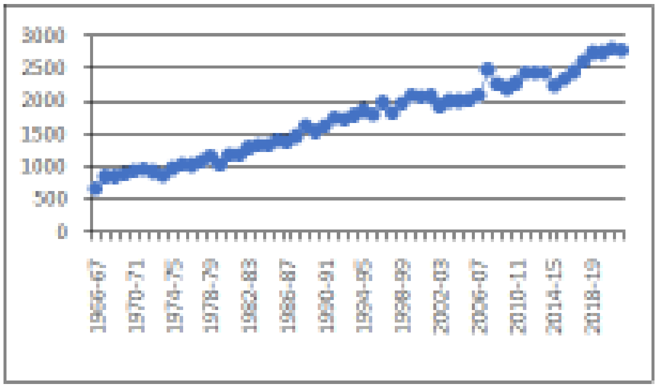

Area Under of Total Crops

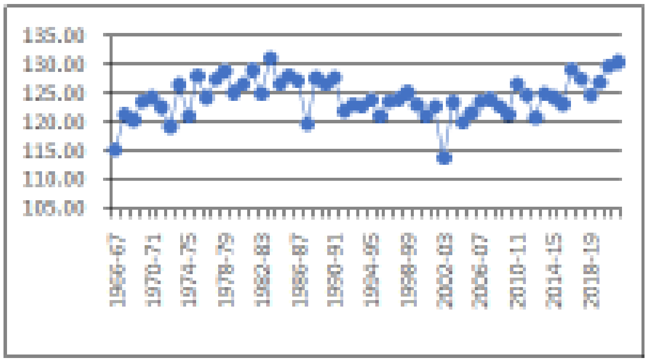

Production of Total Crops

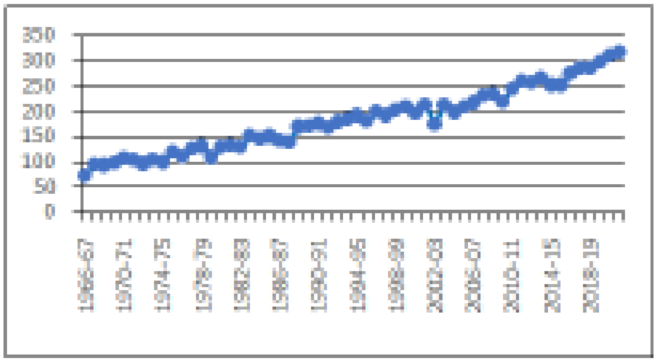

Yield of Total Crops

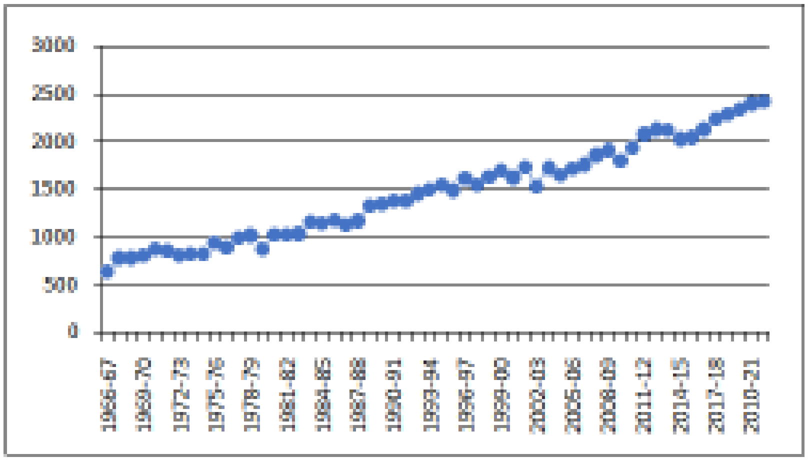

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

भारतीय संस्कृति, साहित्य एवं पर्यावरण

डॉ. जी. एल. मालवीय* डॉ. खुमेश सिंह ठाकुर**

* सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) सुभद्रा शर्मा शासकीय कन्या महाविद्यालय, गंजबासौदा, जिला विदिशा (म.प्र.) भारत
** सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) सुभद्रा शर्मा शासकीय कन्या महाविद्यालय, गंजबासौदा, जिला विदिशा (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – संस्कृति शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से कृत प्रत्यय लगाकर निष्पन्न होता है। इसका शाब्दिक अर्थ है– उत्तम बनाना, संशोधन करना अथवा परिष्कार करना। इसमें पैतृक निपुणता, श्रेष्ठाताये, कला–प्रियता, विचार, आदते और विशेषतायें सम्मिलित रहती है। इस प्रकार संस्कृति का संबंध धर्म एवं दर्शन से लेकर सामाजिक परम्पराओं रीति–रिवाजों तथा मानव जीवन की सभी महत्वपूर्ण वैचारिक क्रियाओं से रहता है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने यजीवन के नानाविधा रूपों के समुदाय को तथा डॉ. हजारी प्रसाद त्रिवेदी ने सभ्यता के आंतरिक प्रभाव को संस्कृति माना है। इस प्रकार संस्कृति का न केवल मानवीय संस्कारों से अपितु मानव जीवन के भौतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं साहित्यिक सभी प्रकार के विकास क्रमों से सतत संबंध रहा है।

निष्कर्षत: संस्कृति के माध्यम से ही मनुष्य अपने श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों की प्राप्ति में अग्रसर एवं प्रयासरत होता है। इसी सतत् प्रवहणशील सांस्कृतिक प्रक्रिया के माध्यम से व्यक्ति समाज अथवा राष्ट्र अपनी सर्वविध कलात्मक अभिवृत्तियों को क्रियान्वित करता है। भारतीय संस्कृति की कतिपय ऐसी मौलिक विशिष्टतायें है जिनके कारण यह आज भी संसार की अन्य संस्कृतियों के लिये अनुकरणीय एवं प्रेरणास्पद बनी हुई है।

प्रकृति का आवरण ही पर्यावरण कहलाता है। सामान्य रूप से हरी–भरी प्रकृति ही पर्यावरण की समृद्धि है। यहाँ हरी से तात्पर्य सुजला सुफला, मलयज शीतला, शस्य श्यामला धरती से है तथा **'भरी'** से तात्पर्य पशु–पक्षी, जीव–जन्तुओं की समानुपातिक अभिवृद्धि से है। यह पर्यावरण की अदभुत महिमा है जिसने पृथ्वी को जीवित जगत् का महनीय स्वरूप प्रदान किया। सौर मंडल में केवल पृथ्वी पर ही प्राणियों के लिये अनुकूल पर्यावरण उपलब्ध है। मानव सहित सभी पशु–पक्षी, जीव–जन्तु, वृक्ष, वनस्पतियां पर्यावरण की दुर्लभ देन है। यह पृथ्वीतल पर परिव्याप्त प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ वरदान है। प्रकृति का सृष्टिकाल से चला आ रहा अनुशासन है। पर्यावरण का संतुलन न केवल हमारी संस्कृति एवं सभ्यता के लिये अपितु शारीरिक एवं मानसिक विकास तथा सुख–शांति के लिये भी आवश्यक है। यदि भौतिक उपभोग वाद की प्रवृत्ति इसी तरह अनियंत्रित रूप से बढ़ती रही तो वह दिन दूर नहीं होगा जब हम खुली हवा में श्वांस नही ले सकेंगे, वृक्ष–वनस्पतियों से प्राप्त होने वाले कन्दमूल फल–फूल खा नहीं सकेगे, तथा प्रकृति प्रदत्त नदी, कूप, तालाबादि का जल पी नहीं सकेंगे। ऐसी स्थिति में आधुनिक विकासशील संस्कृति की सारी अवधारणायें व्यर्थ हो जायेगी। इसी प्रकार चाहे साहित्य सर्जना की बात हो अथवा सांस्कृतिक पुनरुत्थान की बात हो या मानवीय मूल्यों या संस्कारों के निर्माण की बात हो क्षेत्रीय परिवेश (पर्यावरण) की इसमें महत्वपूर्ण भूमिका रहती हैं एक ओर जहां साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है वहीं समाज अपनी परिस्थितियों की उपज होता है तथा ये दोनों मिलकर संस्कृति के निर्माण में सहायक होते है। किसी भी व्यक्ति अथवा समाज की चेतना उसकी क्षेत्रीय संस्कृति की जातीय सम्पत्ति होती है। इसलिये पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन के मूल में संस्कृति का अवदान स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। प्राचीनकाल में जब संसार के अन्य देशों में संस्कृति का सूर्योदय नहीं हुआ था उस समय भारतीय अरण्य संस्कृति की सुषमा अपने ज्ञान–विज्ञान के आलोक से सम्पूर्ण भूमंडल को आलोकित कर रही थी। इस संदर्भ में निम्न पौराणिक कथन द्रष्टव्य है–

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मन:।
स्वं स्वं चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवा:।।

संस्कृति एवं पर्यावरण का मानव जीवन से अटूट संबंध होता है। इनमें से एक के भी अभाव में जीवन के सद्‌भाव की कल्पना नहीं की जा सकती। भारत के भौगोलिक पर्यावरण में जहां देश की एकता एवं संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखा वहीं भारतीय संस्कृति अपनी सूक्ष्म एवं व्यापक विचारधारणाओं से पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाया। भारतीय सांस्कृतिक अवधारणा सदैव पर्यावरण पोषण की पक्षधर रही है। इस अवधारणा के अनुसार मनुष्य प्रकृति की सर्वश्रेष्ठ कृति है, उसका एक महत्वपूर्ण संवेदनशील अंग है अतएव यदि प्रकृति का भली–भांति पोषण होता रहा तो उसके माध्यम से अपने व्यक्तित्व का विकास करता हुआ मनुष्य धर्म पूर्वक अर्थ एवं काम का संचय करके जीवन के परम पुरुषार्थ मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

'भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा।।'

विश्व की समस्त संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति ही मूल एवं सर्वोत्कृष्ट है। भारतीय संस्कृति का उद्गम है वैदिक वाङ्मय के आदि साहित्य ऋग्वेद से हुआ है। यहीं से भारतीय संस्कृति की अजब धारा आज तक इस देश में प्रवाहित होती चली आ रही है। इस पवित्र धारा में समुचित विधि से अवगाहन करने की सुविधा के लिये हमारे ऋषियों, मनीषियों तथा आचार्यों ने वेद, वेदांग, स्मृति, दर्शन, पुराण, इतिहास और काव्य–ग्रंथ आदि रूपों में अनेक पवित्र घाट बनाये हैं। इन पवित्र घाटों पर उतरकर इन्द्रिय निग्रह पूर्वक, बाह्य आवरणों को हटाकर हम गहराई में प्रवेश कर अवगाहन पूर्वक स्वयं को पुनीत करते हैं या कर सकते हैं। तत्पश्चात अपना सन्मार्ग तय करते हैं।

भूलोक अन्य लोकों में अत्यंत महनीय लोक है। यही चराचर जगत

नाम से विख्यात है। इसे ही कर्मभूमि कहा गया है। **'मन: शिवसंकल्पमस्तु' शुक्लयजुर्वेद** (Practical part of the ved) की इस ऋचा पर प्रथमत: विचार करें– जैसे ही मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा होना सीख लेता है तो कुछ करने के लिये आतुर हो जाता है। ठीक उसी क्षण यह वैदिक ऋचा पहले मन को शिवसंकल्प (परम लक्ष्य) से युक्त करने की प्रेरणा देती है। जिससे मन संचालित सिद्ध हो सकें। वस्तुत: इस संसार में मनुष्य किसान है, धर्म उसका खेत है। कर्म उसका बीज है, संस्कृति ही सिंचाई है और 18 भोग उसका फल है। मनुष्य को इस ओर सचेत करता हुआ कवि कहता है– **'धर्मेण हीन: पशुभि: समान:।'** गीता कहती है–**'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'**। हिन्दी साहित्यकार कहता है– बोये पेड़ बबूल का आम कहां से खाय। इसे और स्पष्ट करता हुआ संस्कृत कवि कहता है– **'अवश्य मेव भोक्तव्यं कृतं कर्म, शुभाशुभम'**। महाभारत में धर्म को क्षेत्र (खेत) कहा गया है।**'माता भूमि:'** वाक्य के अनुसार भूमि को माता कहा गया है। वैदिक साहित्य में **'यज्ञाद् भवति पर्जन्य: पर्जन्याद, अन्न सम्भव**:अ **अन्नाद् भवन्ति भूतानि......**'कहा गया है। मूर्धान्य ग्रन्थ बृहत्संहिता में तो– **'अन्नं वे जगत: प्राणा:'** कहा गया है।

उपर्युक्त वाक्यों पर विचार करें तो हम पायेंगे कि जिस प्रकार 'आदिमध्यान्त हीनाय निर्गुणाय गुणात्मने' के अनुसार परमात्मा के दो रूप है– अमूर्तरूप और मूर्तरूप, उसी प्रकार 'धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम' के अनुसार धर्म स्वयं में अमूर्तरूप है और धरती उसका मूर्त रूप। वस्तुत: धर्म ही मूर्तरूप में होकर धरती नाम से सर्वत्र विख्यात है। जैसे धर्म में धारण करने का अमूर्त गुण विद्यमान होता है, वैसे ही धरती में भी धारण करने का मूर्त गुण प्रत्यक्ष है। परिणामत: वह धारयित्री पालयित्री रूप में सहजरूपेण परिचिता है। यही कारण है कि हमारे धर्म–ग्रंथ भगवद गीता का प्रारंभ **'धर्मक्षेत्र'** शब्द से होता है। यहां धर्मक्षेत्र शब्द धरती का ही बोधक है।

'धमो रक्षति' महाभारत का यह वाक्य बड़ा प्रसिद्ध है। यहां धर्म में रक्षा करने का अमूर्त गुण स्पष्ट है। अत: धर्म, में रक्षा करने का अमूर्त गुण स्पष्ट है। अत: धर्म के मूर्तरूप धरती (मातृस्वरूपा) में भी यह गुण होना स्वाभाविक ही है। **'मातैव रक्षति'** वाक्य साहित्य में उपलब्ध है। इसी गुण के कारण **'माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:' और 'बन्दे भारतमातरम्'** जैसे असंख्य वाक्य हमारे विशाल साहित्य में भरे पड़े है।

वस्तुत: निष्कर्ष रूपेण देखा जाये तो इस धरती माता के कोरव से उत्पन्न होने वाले समस्त चराचर तत्तव परस्पर जीवन में आत्मीयता एवं सहभागिता का ही निर्वाह करते है। यहां भी उनका परस्पर अटूट संबंध प्रकट होना– एक ही आंगन में माता की ममता की छांव में आँचल तले स्वयं को अनुभव करना है। इसी भाव का बोध कराता हुआ हमारा साहित्य बोल पड़ता है– **'वसुधैव कुटुम्बकम'**

एक और रहस्य की बात जो समझने लायक है– एक शिशु जब अपनी जननी की गोद में होता है, तो भूख लगने पर वह माता का दूध पीने के लिए अपने हाथों से यत्र–तत्र स्पर्श करने और जो हाथ लग उसे मुख में डालने की क्रियाकृतरणायें व्यर्थ हो जायेंगी। आरंभ कर देता है। ठीक उसी प्रकार जब वह शिश धरती पर होता है तो वहां भी माता की गोद में रहने की क्रिया करने लगता है और माटी खाकर अपना पेट भरने लगता है। पूर्व में वह शिशु जब माता के गर्भ में होता है, तो माता माटी खाकर अपनी ममता को द्विगुणित करती देखी जाती है। इस भाव का भी संकेत हमारे साहित्य में उपलब्ध होता है। बालरूप कृष्ण का माटी खाना तो विदित ही है। हिन्दी साहित्य में उपलब्ध कविता मेरा नया बचपन की पंक्ति–

'कुछ खायी कुछ लिये हाथ में,
मुझे खिलाने आयी थी।'

हमें आज भी याद है। ऐसी ही तो कुछ है हमारी लौकिक संस्कृति। हमारे साहित्य में दिव्यादि तीनों लोकों की परिकल्पना स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। यथा– **'अदिते: अपत्यं पुमान् आदित्य:'** रूप में आदित् आदि देवों का दिव्य लोक। **'दिते: अपत्यं पुमान् दैत्य:'** रूप में मनुष्यों का मानवलोक। इनमें सर्वोपरि दिव्य लोक है, सबसे नीचे दैत्यों का पाताल लोक है और दोनों के मध्य में मनुष्यों का मानव लोक या मृत्यु लोक है।

'तमसो मा ज्योतिर्गमय' उपनिषद् का यह महावाक्य हमें दैत्यलोक के तम से बचने और दिव्य लोक के प्रकाश में जाने की प्रेरणा देता है। वस्तुत: हमारा लोक एक दीपक के समान अव्यवस्थित है, जिसका ऊर्ध्वभाग तो प्रकाशित रहता है किन्तु अध: भाग तमो मय। इसी अभिप्राय से सर्वत्र प्रचलित लोकोक्ति है– **'दीया तले अंधेरा'**। इन्हीं प्रकाश और अंधकार रूप दोनों पाटों के बीच हम ऐसे फंसे है कि ऊर्ध्वगति अत्यंत दुष्कर है तो अधोगति में कल्याण नहीं है। इस ओर दोनों हाथ उठाकर कवि कहता है– **'दोउ पाटन के बीच में साबुत बचा न कोया'** इन्हीं दोनों पाटों को ऋषियों ने विद्या और अविद्या कहकर हमारा मार्गदर्शन किया है। यहां विद्या के माध्यम से प्रकाश की ओर जाने के लिए ऋषियों मनीषियों तथा संतों ने हमें साहित्य प्रदान किया है। जब विद्यार्थी प्राथमिक कक्षा उत्तीर्ण कर लेता है तो उसे पाठयक्रम के माध्यम से (अगली कक्षा में प्रवेश लेते ही) यह बोध करा दिया जाता है कि–

विद्या ददाति विनयं, विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति, धनाद् धर्मं तत: सुखम्श

यहाँ विद्या को मूल आधार बताकर विनय शीलता, पात्रता, धन प्राप्ति धर्माचरण और सुख आदि की बात कहीं गयी है। विद्या अध्ययन पर जोर देते हुए कवि कहता है–

प्रथमे नार्जिता विद्या, द्वितीये नार्जितं धनम्।
इसेतृतीये नार्जितं पुण्यं, चतुर्थे किं करिष्यतिश

यहाँ वर्तमान सम्पूर्ण जीवन काल को बराबर चार भागों में बांट कर विद्या आदि अर्जित करने के लिए कहा गया है। इसी प्रकार **'विद्या धनं सर्वधान प्रधनम'** वाक्य भी हमें विद्या अध्ययन की ओर उन्मुख करता है। विद्या की महिमा निरूपित करते हुए **'सा विद्या या विमुक्तये'** महावाक्य वैदिक साहित्य में कहा गया है। इस लोक से परलोक तक जाने का संवैधानिक मार्ग वस्तुत: विद्या के माध्यम से ही सुनिश्चित हो पाता है। इस दिशा में मुण्डकोपनिषद में विधान बताया गया है–

यदे विद्ये वेदितव्ये परा चैवापरा चश

यहाँ विद्या के दो रूप बताये गये है– परा विद्या और अपरा विधा। वस्तुत: परा विद्या परलोक में प्रचलित है और अपरा विद्या का प्रचार प्रसार इस लोक में किया गया है। यहां अपरा विद्या के भी मुख्यत: वश विंग निरूपित करते हुए मुंडकोपनिषद में कहा गया है–

ऋग्वेदो यजुर्वेद: सामवेदोऽथर्वण:।
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दों ज्योतिषम्श

विद्या विषयक उपर्युक्त तथ्यों पर विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि विद्या अध्ययन के प्रति अतिशय निष्ठा की पराकाष्ठा होने से ही विद्या की अधिाष्ठात वाग्देवी या सरस्वती देवी का सगुण रूप हमारे साहित्य में प्रकट

हुआ। इसी प्रकार अपरा विद्या के दस विभागों के प्रति अध्ययन निष्ठावश ही दस महाविद्याओं के नाम साहित्य में विख्यात हुए।

साहित्य समाज का दर्पण या आदर्श होता है। विश्व के प्राचीनतम साहित्यों में सम्वेद सर्वोपरि है। अन्वेद साहित्य से लेकर आज तक के साहित्यों में जो प्राणदायिनी संस्कृति उपलब्ध है वह हमारे जीवन–दर्शन के लिए पर्याप्त है। **'धारणाद धर्म इत्याहु:'** के अनुसार धर्म के समस्त भाव हमारी संस्कृति में व्याप्त हैं। **ते. आरण्यक में 'धर्मो विश्वस्य जगत:'** प्रतिष्ठा अर्थात धर्म को सम्पूर्ण जगत का आधार कहा गया है। **'धर्मो धरयते प्रजा:'** के अनुसार स्पष्ट है कि धर्म समस्त प्रजा को मातृवत धारण करता है। वस्तुत: इन तथ्यात्मक रहस्यों को समझना आज नितांत आवश्यक है।

गीता जो महाभारत का हिस्सा और महामुनि वेदव्यास की अमर विश्ववाणी है, न्याय और अन्याय के प्रश्न को उठाती हुई अपरा विद्याओं को स्वीकारती हुई मनुष्य को पराविद्याओं के मोक्ष मार्ग की ओर ले जाती है। यही अज्ञान से ज्ञान और अंधकार से प्रकाश की यात्रा है। पर इसे समझ लेना होगा कि अज्ञान की सत्ता माया की सत्ता की तरह एक सनातन सत्ता है। इसलिए सनातन केवल ज्ञान नहीं है, अज्ञान भी है। महात्मा तुलसीदास का विशिष्टा द्वैत इस मायने में विचारणीय है कि राम (परम तत्व) लक्ष्मण (अंश या जीव तत्व) किन्तु इन दोनों के बीच माया का तत्व सीता हमेशा यात्रारत है। हमारे चारों पुरुषार्थों में धर्म, अर्थ और काम के पुरुषार्थ तो इसी माया तत्व के विकास संवर्धन और परिष्कार के तत्व है। मोक्ष का चौथा शिखर वह शीर्ष कलश है, जो बगैर नीव दीवार और कंगूरे के संभव ही नहीं है। भारत के स्थानीय चिंतन से जो भी दर्शन पैदा हुआ है, उसमें यह चौथा हर जगह विद्यमान है। कभी मोक्ष तो कभी निर्वाण के रूप में उपनिषद तक ठीक ही कहता है कि मनुष्य को जल में कमल की तरह रहना चाहिए। लगभग पूरी की पूरी कमल नाल जल में निमग्न किन्तु कमल का पुष्प हमेशा भवसागर की मायावी सतह से ऊपर कीचड़ और गंदगी से अपराभूत। अविजेय। गीता में इसी को तो निष्काम कर्मयोग कहा गया।

मिथिला नरेश जनक को तभी तो विदेह कहा गया। माया के बीच रहकर भी माया से अपराजेय बने रहना। पर यह विज्ञान के कहने में जितना आसान है अनुभव और कर्म के धरातल पर उतना ही कठिन और लगभग असंभव है। इसे कबीर आदि भी मानते है और हमारे जमाने के महान दृष्टा रवीन्द्रनाथ और कामायनी के अनोखे रचनाकार महाकवि जयशंकर प्रसाद भी।

गीतांजलि के कई गीत ऐसे हैं जहां इन दुविधापूर्ण जटिलताओं का बयान है। एक गीत में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ कहते है कि 'अरे मैं तो बहुत गहरी नींद में चली गई थी। वो आया बगल में बैठ अपनी सुमधुर वीणा बजा कर चल गया। मैं ऐसी अभागी कि मेरी नींद ही नहीं खुली। हम सब अपने बारे में सोचे तो ऐसे ही अभागे है। हम नींद को ही जागरण माने बैठे है। जबकि महाभारत बार–बार कहती है कि सच्चा योगी उस रात को दिन समझकर जागता रहता है जिसे यह संसार रात माने सोया पड़ा रहता है। कबीर ने इसे बहुत आसान ढंग से हिन्दुस्तानी जुबान में कह डाला–

सुखिया सब संसार है, खावै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है जागै अरु रोवैश

फिर भी हम कबीर को याद कर रहे है, पूज रहे है, उनकी जयंतियां मना रहे है पर उस बोध तत्व से काफी दूर है जो इस साखी में है।

कामायनी हमारे युग की एक अनुपम दार्शनिक काव्य कृति है। बुद्धि के चरम विकास, भोगवाद और चौथे इंसानी दम्भ के अनेक प्रसंग इसमें चर्चित और चित्रित हैं। इच्छा क्रिया और ज्ञान की असंगतिपूर्ण संगति पर काफी गंभीर विचार यहाँ है। यह भी कहा गया कि समरसता में ही आनंद है। पर इस समरसता को समझे और समझाए कौन? क्या है यह समरसताफ कहीं यह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की समरसता तो नहीं है? या फिर माया जीव और ब्रह्म की समरसता है। या फिर भाग इच्छा क्रिया और ज्ञान कीफया इनसे की कुछ और जड़ और चेतन, अज्ञान और ज्ञान, पर और अपर, परा और अपरा की समरसता। जयशंकर प्रसाद लिखते हैं–

'समरस थे जड़ या चेतन,
सुंदर साकार बना था।
चेतनता एक बिलसती,
आनंद अखंड घना थाश'

जीवन में जो सुख है, वह इन्हीं जड़ वस्तुओं की सामूहिक गंगोत्री से पैदा होते है पर आनंद तो हमेशा आदमी के भीतर से अज्ञान के ज्ञान में बदल जाने पर फूटता है।

भारतीय सांस्कृतिक संरचना का प्रमुख आधार है– **'अनेकता में एकता की अनुभूति'**। यह अनुभूति केवल चेतन के प्रति ही नहीं अपितु अचेतन जगत् के प्रति भी दिखती है। वेदों में बहुदेववाद के मूल में एकदेववाद की ही प्राण प्रतिष्ठा की गई है। **'एकं सद्विप्रा बहुधवदन्ति'**। ऋग्वेद में एक ही विराट् पुरुष के मुख, बाहु, उरू तथा पैर से चारों वर्णों की उत्पत्ति तथा उसके मन, नेत्र, श्रोत्र तथा मुख से क्रमश: चन्द्र, सूर्य, वायु तथा अग्नि की उत्पत्ति बतलाते हुये सृष्टि की पर्यावरण मूलकता का स्पष्ट संकेत कर दिया गया है। वैदिक सृष्टि प्रक्रिया से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि न केवल देव, मनुष्य, पशु–पक्षी, जीव–जन्तु, वृक्ष–वनस्पतियां अपितु पर्यावरण के सभी घटक एक ही स्रोत विराट पुरुष से जायमान है। पर्यावरण की इस देवी सृष्टि ने पर्यावरण तत्वों के प्रति देवात्मकता (ईशावास्य मिदं सर्व) तथा पारिवारिक संबंधों (वसुधैव कुटुम्बकम) की भावना का सूत्रपात किया। इसी प्रकार भारतीय संस्कृति में सत्य, अहिंसा, त्याग, तपस्या अपरिग्रह, उदारता, सहिष्णुता, समन्वय, आस्तिकता, धार्मिकता, दया, दान एवं पुनर्जन्म में विश्वास जैसी अनेक सद्भावनायें विद्यमान हैं जिनके मूल में न केवल पर्यावरण अपितु चरास्चर जगत् के कल्याण की भावना सन्निहित है।

पर्यावरण एवं मनुष्य के बीच भावनात्मक संबंधों की अभिव्यक्ति ही पर्यावरण के प्रति मानवीय चेतना का अभिव्यक्त रूप है। भूमंडल के जिस पर्यावरण में हम जन्म लेते है, जिसके अन्न, जल, वायु, भूमि से हमारा भरण–पोषण होता है उसके कण–कण से चाहे वह वहां की मिट्टी हो, पर्वत हो, नदियां हो, जीव–जन्तु, वृक्ष–वनस्पतियां हो उन सबको अपना समझना, उनसे प्रेम करना तथा उनके विकास में सतत प्रयत्नशील रहना पर्यावरण के प्रति सांस्कृतिक चेतना की पहचान रही है। प्राकृतिक तत्वों के प्रति प्यार एवं अनुराग की प्रवृत्ति, श्रद्धा एवं कृतज्ञता की अभिव्यक्ति तथा विशेष परिस्थिति में उनके संरक्षण एवं सवर्द्धन हेतु अपना सर्वस्व समर्पित करने की भावना ही भारतीय संस्कृति का आदर्श रही है। भारत की संस्कृति में **'असतो मा सदगमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय'** के सूत्र वाक्य यही तो है। खेद है कि इस देश ने शब्दों को तो पकड़ रखा है पर अर्थो से बेखबर है। वह जड़ की पूजा और साधना को ही सब कुछ माने बैठा है। उपभोक्तावाद यही तो है जहां शरीर की नाप–जोख से सुंदरताएं तय की जा रही है। जड़ की सत्ता को चेतना की छाती पर बिठाया जा रहा है। संस्कृति और साहित्य, काव्य और दर्शन यहीं आकर एक हो जाते है। एक ही सच को जब हजार हजार मुंह कहना शुरू

करते है तब ही कहा जाता है–

एक सद् विप्रा बहुधा वदन्ति

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. राकेश पाण्डेय : भारत का सांस्कृतिक इतिहास।
2. आचार्य बलदेव उपाध्याय : वैदिक साहित्य एवं संस्कृति।
3. जनार्दन भट्ट : भारतीय संस्कृति।
4. डॉ. एस. एल. नागौरी : भारतीय संस्कृति।
5. प्रो. सुरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव : भारतीय समाज एवं संस्कृति।
6. अरविन्द : भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व।
7. जी. सी. पाण्डेय : भारतीय परम्परा के मूल स्वर।
8. गोपीनाथ कविराज : भारतीय संस्कृति एवं साधना।

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

भारतीय परिदृष्य में हिन्दी भाषीय राष्ट्रीय विज्ञान पत्रिकाओं का अध्ययन

डॉ. सावित्री परिहार* मनीष श्रीवास्तव**

* सह-आचार्य, रबीन्द्रनाथ टैगोर यूनिवर्सिटी, रायसेन (म.प्र.) भारत
** शोधार्थी, रबीन्द्रनाथ टैगोर यूनिवर्सिटी, रायसेन (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – वैश्विक रूप से ज्ञान-विज्ञान परंपरा का इतिहास अति-प्राचीन है। लेखन परंपरा का इतिहास भी अतिप्राचीन है लेकिन आधुनिक युग में प्रकाशन क्षेत्र के अंतर्गत प्रिंटिंग प्रेस की आधुनिक प्रणाली का आविष्कार होने के बाद लेखन परंपरा का विकास भी तीव्रता से हुआ। इस कारण मुख्यत: पुस्तक, पत्र, पत्रिकाओं का प्रकाशन तेजी से हुआ। इस माध्यम से भारत में अन्य प्रकाशनों के साथ ही हिन्दी भाषीय विज्ञान पत्रिकाओं के प्रकाशनों की भी शुरुआत हुई। भारत में विज्ञान आधारित हिन्दी पत्रिकाओं के प्रकाशन के इतिहास की शुरुआत 20वीं सदी से ही हुई है। किन्तु एक सदी में ही हिन्दी पत्रिकाओं द्वारा भारत में विज्ञान जागरण का सर्वोत्तम कार्य किया गया। पत्रिकाओं का प्रकाशन निजी और सरकारी दोनों स्तर पर किया गया है। विद्यार्थियों तथा जन-सामान्य को इससे महत्वपूर्ण लाभ हुआ है।

शब्द कुंजी – भारत में ज्ञान-विज्ञान, विज्ञान पत्रिकाएं, सामाजिक प्रभाव।

प्रस्तावना – भारतीय इतिहास में ज्ञान-विज्ञान की श्रेष्ठ परंपरा रही है। पुरातत्वविदों, इतिहास के जानकारों तथा अन्य विशेषज्ञों द्वारा समय-समय पर की गई खोज तथा प्राप्त संदर्भों से यह ज्ञात किया जाता रहा है कि भारतीय ज्ञान-विज्ञान की परंपरा के साक्ष्य ईसा से लगभग 3000 साल या उससे भी पहले के प्राप्त होते हैं। ज्ञान के स्तर पर अध्यात्म, योग, दर्शन, विज्ञान तथा अन्य सभी क्षेत्रों में भारतीय ऋषियों ने अद्‌भुत ज्ञान का प्रवाह किया है। आज ईसा के 2000 साल बाद भी हम उसी पुरातन ज्ञान-विज्ञान पर गर्व महसूस करते हैं और आवश्यक होने पर मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं। मूल रूप से विज्ञान के क्षेत्र में भारतीय ज्ञानियों द्वारा दिये गये अवदान को वैष्विक स्तर पर नकारा नहीं जा सकता है। हमारी प्राचीन परंपरा के अंतर्गत विज्ञान के विविध क्षेत्रों में जैसे भूगोल, स्वास्थ्य, गणित, रसायन तथा अन्य के अंतर्गत चरक, सुश्रुत, आर्यभट्ट, बौधायन, याज्ञवल्क्य, पाणिनी, पिंगल, कात्यायन सरीखे श्रेष्ठ ऋषियों का नाम अग्रज पंक्ति में आता है।

आधुनिक काल में प्रिंटिंग क्षेत्र में हुई अत्याधुनिक प्रगति के बाद जैसे ही लेखन परंपरा का क्षेत्र वैश्विक हो गया वैसे ही भारतीय ज्ञानियों द्वारा लिखे गये पुरातन ग्रंथों, संदर्भों का उल्लेख भी बड़े पैमाने पर होने लगा और भारतीय मनीषियों की महत्वपूर्ण विषयों जैसे – रसायन, भौतिकी, गणित, ज्योर्तिविज्ञान, वनस्पति विज्ञान, प्राणि विज्ञान, आयुर्विज्ञान, कृषि, वानिकी, कम्प्यूटर, अंतरिक्ष, पर्यावरण, प्रदूषण, पारिस्थितिकी आदि में की गई उपलब्धि महत्वपूर्ण किताबों तथा पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से वैश्विक स्तर पर उजागर होने लगी। विगत दो सदी में भारत में विज्ञान संबंधी विषयों पर लेखन का कार्य इतने वृहद स्तर पर किया गया है कि विज्ञान लेखन के अंतर्गत कई विशिष्ट शैलियों का विकास विज्ञान लेखकों द्वारा किया जा चुका है और पुस्तकों तथा पत्रिकाओं के जरिये पाठकों तक पहुंचाया जा चुका है। विज्ञान लेखन के विविध प्रकार निम्न हैं –

1. विज्ञान लेख
2. विज्ञान कथा
3. विज्ञान नाटक
4. विज्ञान कविता
5. वैज्ञानिक जीवनी
6. वैज्ञानिक साक्षात्कार
7. बाल विज्ञान लेखन
8. विज्ञान शोध पत्र
9. विज्ञान अनुवाद
10. विज्ञान कोष
11. वैज्ञानिक परिभाषिक शब्दावली कोष
12. विज्ञान पुस्तक लेखन
13. विज्ञान पुस्तक समीक्षा

पत्रिकाओं में वैज्ञानिक जागृति का आरंभ –भारतीय इतिहास में पत्रिकाओं के प्रकाशन के आरंभिक काल में 19वीं सदी का समय मूल रूप से साहित्य, सूचना और शिक्षा पर अत्यधिक आधारित रहा। विज्ञान को भी प्राथमिक स्तर पर साहित्यिक मनीषियों, पत्रिकाओं ने बल या आधार देने का कार्य किया। भारतीय संदर्भ में विज्ञान जागृति की अलख जगाने की शुरुआत सर्वप्रथम साहित्यिक पत्रिकाओं से हुई। साहित्यिक पत्रिकाओं ने जनमानस में विज्ञान जागरण के प्रति महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। बांग्ला भाषा विज्ञान जागरण की पहली आधार स्तंभ बनी। सन् 1818, अप्रैल में श्रीरामपुर जिला हुगली (पश्चिम बंगाल) के बेपटिस्ट मिशनरियों ने बांग्ला और अंग्रेजी में मासिक दिग्दर्शन पत्रिका प्रकाशन का कार्य आरंभ किया। इस मासिक पत्रिका के संपादक थे क्लार्क मार्शमैन (1793-1877)। कालांतर में दिग्दर्शन पत्रिका ने ही अनूदित हिन्दी भाषा में विज्ञान लेखों का प्रकाशन कर नये भविष्य की नींव रखने का कार्य किया। तत्कालीन समय में दिग्दर्शन पत्रिका का हिन्दी भाषा में अनुवाद प्रकाशित किया गया। पत्रिका

के हिन्दी में अनूदित अंक में दो वैज्ञानिक लेख प्रकाशित किये गये। जिनके शीर्षक थे – 1. अमेरिका की खोज 2. बैलून द्वारा आकाश यात्रा के बारे में आदि। इस तरह भारतीय समाज में विज्ञान को स्थायित्व प्रदान करने की दृष्टि से पहला कदम उठाया गया।[1]

भारतीय परिदृष्य में पत्रिका प्रकाशन के अंतर्गत हिन्दी भाषा में विज्ञान संचार यात्रा की शुरुआत 15 जनवरी सन् 1878, बनारस से द्विभाषी पत्रिका काशी के नाम से हुई। हिन्दी और उर्दू में यह पत्रिका 32 पृष्ठों में प्रकाशित हुई। इसका वार्षिक मूल्य 6 रुपये 12 आने था। बालेश्वर प्रसाद के संपादन और रामानंद के प्रबंधन में पत्रिका ने अपने प्रकाशन की शुरुआत की।चन्द्रप्रभा प्रेस से हर शुक्रवार को यह पत्रिका प्रकाशित होती थी जिसके मुख्य पृष्ठ पर लिखा होता था – 'ए वीकली एजुकेषनल जर्नल आफ साइंस, लिटरेचर एण्ड न्यूज इन हिन्दुस्तानी'। [2]

भारतीय पृष्ठभूमि में विज्ञान पत्रिकाओं का आरंभ एवं विकास –विज्ञान विषयों पर पत्रिकाओं के प्रकाशन की शुरुआत संबंधी तथ्यों की खोज करने पर यह ज्ञात होता है कि विज्ञान पत्रिकाओं में सर्वप्रथम विज्ञान के किसी एक विषय को ही आधार बनाते हुए पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ। इसके बाद 20वीं सदी के दूसरे दशक से 'विज्ञान' पत्रिका के आरंभ से संपूर्ण विज्ञान विषयों को समाहित कर एक श्रेष्ठ पत्रिका का प्रकाशन हुआ। भारतीय विज्ञान इतिहास के ज्ञात संदर्भों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि चिकित्सा पहला मुख्य विषय रहा जिस पर किसी विज्ञान पत्रिका का प्रकाशन हुआ। डॉ. सूर्य प्रसाद दीक्षित के अनुसार चिकित्सा विषय की पहली पत्रिका 1842 में 'चिकित्सा सोपान' नाम से श्रीराम शास्त्री के संपादन में प्रकाशित हुई। इसके बाद सन् 1881 में प्रयाग से 'आरोग्य दर्पण' नाम से चिकित्सा संबंधी विषयों को लेकर एक और पत्रिका प्रकाशित हुई। चिकित्सा के बाद कृषि मुख्य विषय रहा जिस पर पत्रिका प्रकाशन हुआ। डॉ. सूर्य प्रसाद दीक्षित के अनुसार कृषि की पहली पत्रिका 1911 में 'किसान मित्र' नाम से पटना से रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा हिन्दी भाषा में प्रकाशित की गई। [3]

विज्ञान के विविध विषयों में से चिकित्सा और कृषि को लेकर विज्ञान पत्रिकाओं की शुरुआत पहले हुई। लेकिन विज्ञान के और भी विविध विषय थे जो अभी तक अछूते रह रहे थे। विज्ञान के सभी विषयों को समावेशित कर उन पर लेख, समाचार और जानकारी प्रकाशित करने का कार्य विशुद्ध रूप से विज्ञान पत्रिका होने का श्रेय 'विज्ञान' नामक पत्रिका को प्राप्त है। 1913 में भारत में प्रयागराज में विज्ञान परिषद की स्थापना की गई। विज्ञान परिषद द्वारा सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह किया गया कि सन् 1915 से विज्ञान के सभी विषयों की जानकारी प्रकट करने के लिये 'विज्ञान' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया गया। यह देश की पहली पत्रिका बनी जिसने हिन्दी में विशुद्ध वैज्ञानिक विषयों को समाविष्ट किया। [4]

विज्ञान पत्रिका के बाद सबसे महत्वपूर्ण पत्रिका के रूप में 'प्राणिशास्त्र' नामक पत्रिका का नाम आता है, जिसका प्रकाशन प्रसिद्ध विद्वान देवी शंकर मिश्र द्वारा किया गया। 1948 में देवीशंकर द्वारा भारतीय प्राणिशास्त्र परिषद की स्थापना की गई और इसी परिषद के अंतर्गत 1948 में प्राणिशास्त्र नाम से पत्रिका प्रकाशन आरंभ किया। प्राणिविज्ञान पर प्रकाशित होने वाली देश की यह प्रथम पत्रिका है।[5]

भारत सरकार द्वारा भी आजादी के बाद विज्ञान प्रसार को बढ़ावा देने का कार्य आरंभ किया गया। इसके लिये सन् 1952 से विज्ञान प्रगति पत्रिका का प्रकाशन भारत सरकार की वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद द्वारा आरंभ किया गया।पत्रिका अपने उत्कृष्ट प्रकाशन तथा पाठयसामग्री के लिये सन् 2022 में राष्ट्रीय राजभाषा कीर्ति सम्मान से भी सम्मानित हो चुकी है। पत्रिका को इसकी वेबसाइट https://nopr.niscpr.res.in/handle/123456789/10290 पर पढ़ा जा सकता है। [6]

विज्ञान संसार की एक और महत्वपूर्ण पत्रिका का प्रकाशन 1961 में इंडियन प्रेस, प्रयाग द्वारा 'विज्ञान जगत' नामक से हुआ। यह एक सचित्र मासिक पत्रिका थी, जिसके संपादक आर. डी. विद्यार्थी थे।[7]

सन् 1969 से भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र मुंबई द्वारा वैज्ञानिक विषयों पर 'वैज्ञानिक' नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है।पत्रिका के शुरुआती अंकों का संपादन ब्रजमोहन पांडे, डॉ. प्रताप कुमार माथुर, उमेश चंद्र मिश्र तथा माधव सक्सेना द्वारा किया गया। इस पत्रिका के अंकों को इसकी वेबसाइट https://barc.gov.in/hindi/publication/index_sc.html पर पढ़ा जा सकता है। [8]

भारत सरकार के सरकारी उपक्रम द्वारा एक और राष्ट्रीय पत्रिका आविष्कार का प्रकाशन सन् 1971 से नेशनल रिसर्च डेवलेपमेंट कॉर्पोरेशन, नई दिल्ली द्वारा किया जा रहा है। इस पत्रिका को वेबसाइट http://nrdcindia.com/Pages/About%20Awishkarपर पढ़ा जा सकता है।[9]

हिन्दी भाषीय इन विज्ञान पत्रिकाओं के प्रकाशन इतिहास के क्रम में उपरोक्त पत्रिकाओं के अतिरिक्त सन् 2018 तक जो अतिमहत्वपूर्ण पत्रिकायें प्रकाशित की गईं। उनकी जानकारी इस प्रकार है –

भारत में प्रकाशित हिन्दी भाषीय विज्ञान पत्रिकाओं की सूची 10

क्र.	पत्रिका	प्रकाशन	प्रकाशन वर्ष
1	विज्ञान	मासिक	1915
2	धनवन्तरी	मासिक	1924
3	बालक	मासिक	1926
4	मैसूर	मासिक	1942
5	कृषक जगत	मासिक	1945
6	सचित्रा आयुर्वेद	मासिक	1948
7	होम्योपैथी संदेश	मासिक	1948
8	किसानी समाचार	मासिक	1948
9	प्राकृतिक जीवन	मासिक	1948
10	बाल भारती	मासिक	1948
11	खेती	मासिक	1949
12	प्राणिशास्त्र	मासिक	1950
13	स्वास्थ्य और जीवन	मासिक	1950
14	कृषि और पशुपालन	मासिक	1952
15	उन्नत कृषि	मासिक	1952
16	गौ संवर्धन	मासिक	1952
17	विज्ञान प्रगति	मासिक	1958
18	विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका	त्रैमासिक	1960
19	आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका	मासिक	1960
20	साइंस टुडे	मासिक	1960
21	लोक विज्ञान	मासिक	1960
22	विज्ञान जगत	मासिक	1961
23	विज्ञान लोक	मासिक	1961
24	नंदन	मासिक	1964

25	वैज्ञानिक बालक	मासिक	1964
26	वैज्ञानिक	त्रैमासिक	1968
27	कृषि चयनिका	त्रैमासिक	1969
28	आविष्कार	मासिक	1971
29	भारतीय चिकित्सा संपदा	मासिक	1975
30	विज्ञान डाइजेस्ट	मासिक	1975
31	विज्ञान भारती	द्वैमासिक	1978
32	निरोगधाम	मासिक	1979
33	फल-फूल	द्वैमासिक	1979
34	विज्ञान परिचय	मासिक	1979
35	ज्ञान-विज्ञान	मासिक	1979
36	होशंगाबाद विज्ञान	मासिक	1980
37	आयुर्वेदिक विज्ञान औषधि अनुसंधान	मासिक	1980
38	ग्राम शिल्प	त्रैमासिक	1981
39	विज्ञानपुरी	त्रैमासिक	1981
40	विज्ञानदूत	मासिक	1982
41	पर्यावरण	अर्धवार्षिक	1983
42	विज्ञान प्रवाह	मासिक	1983
43	चकमक	मासिक	1985
44	ब्रिटिश वैज्ञानिक एवं आर्थिक समीक्षा	त्रैमासिक	1985
45	विज्ञान गरिमा सिंधु	त्रैमासिक	1986
46	आई.सी.एम.आर.	मासिक	1986
47	साइफन	मासिक	1986
48	विज्ञान विथिका	मासिक	1986
49	विज्ञान बन्धु	साप्ताहिक	1987
50	जिज्ञासा	अर्धवार्षिक	1987
51	पर्यावरण डाइजेस्ट	मासिक	1987
52	स्पेस इंडिया	त्रैमासिक	1987
53	इलेक्ट्रानिकी आपके लिए	मासिक	1988
54	विज्ञान गंगा	त्रैमासिक	1988
55	स्रोत	मासिक	1989
56	पर्यावरण	मासिक	1990
57	भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान	अर्धवार्षिक	1993
58	बालवाटिका	मासिक	1995
59	प्रसार दूत	अर्धवार्षिक	1996
60	ड्रीम 2047	मासिक	1998
61	पर्यावरण ऊर्जा टाइम्स	मासिक	1998
62	विज्ञान आपके लिए	मासिक	1998
63	विज्ञान आलोक	त्रैमासिक	1998
64	नवसंचेतना (राजभाषा पत्रिका)	अर्धवार्षिक	1998
65	ज्ञान गारिमा सिंधु	त्रैमासिक	2000
66	तरंग	वार्षिक	2000
67	विज्ञान कथा	त्रैमासिक	2001

68	ऊर्जायन	वार्षिक	2001
69	विपनेट	मासिक	2002
70	विज्ञान प्रकाश	त्रैमासिक	2002
71	स्पैन	मासिक	2003
72	बच्चों का इंद्रधनुष	मासिक	2004
73	ज्ञान विज्ञान बुलेटिन	मासिक	2004
74	बच्चों का इंद्रधनुष	मासिक	2004
75	बाल प्रहरी	मासिक	2004
76	साइंस टाइम्स न्यूज एवं व्यूज	मासिक	2005
77	मुक्त शिक्षा	अर्धवार्षिक	2005
78	साइंस इंडिया	मासिक	2005
79	गर्भनाल	वार्षिक	2006
80	कृषि प्रसंस्करण दर्पण	अर्धवार्षिक	2006
81	अक्षय ऊर्जा	द्वैमासिक	2006
82	पैदावार मासिक कृषि	मासिक	2007
83	विज्ञान गंगा	वार्षिक	2007
84	साइंटिफिक वर्ल्ड	मासिक	2007
85	हरबोला	मासिक	2007
86	विज्ञान परिचर्चा	त्रैमासिक	2009
87	दुधवा लाइव	मासिक	2010
88	सर्प संसार	मासिक	2010
89	हरियाणा साइंस बुलेटिन	मासिक	2010
90	हमारा भूमंडल	मासिक	2010
91	जल चेतना	त्रैमासिक	2011
92	भूगोल और आप	द्वैमासिक	2011
93	भारतीय मसाला फसल अनुसंधान संस्थान	वार्षिक	2012
94	कृषि का शोध	वार्षिक	2012
95	जिज्ञासा	वार्षिक	2012
96	अनुसंधान शोध	वार्षिक	2013
97	किसान खेती	त्रैमासिक	2014
98	विपनेट क्यूरीसिटी	मासिक	2016
99	डाउन टू अर्थ	मासिक	2016
100	टेक्निकल टुडे	त्रैमासिक	2016
101	बालवाणी	द्वैमासिक	2016
102	आई वंडर	अर्धवार्षिक	2017
103	प्रौद्योगिकी विशेष	द्वैमासिक	2018
104	कृषि मंजूषा	अर्धवार्षिक	2018

विज्ञान पत्रिकाओं का सामाजिक प्रभाव – भारतीय समाज में साक्षरता के स्तर को बढ़ाने तथा जन-जागृति उत्पन्न करने में पत्र-पत्रिकाओं की विशेष भूमिका रही है। इस दृष्टिकोण से भारतीय परिदृष्य में प्रकाशित हुई हिन्दी की विज्ञान पत्रिकाओं ने भी महत्वपूर्ण कार्य किया है। सन् 1915 में वैज्ञानिक विषयों की प्रथम पत्रिका विज्ञान के प्रकाशन के साथ ही स्वास्थ्य, कृषि, पर्यावरण, अभियांत्रिकी, प्राणीशास्त्र सहित विज्ञान के विविध विषयों पर पत्रिकाओं के प्रकाशन की शुरुआत हुई साथ ही सन् 1915 से लेकर विगत 100 वर्षों के इतिहास में कई हिन्दी भाषीय विज्ञान लेखकों का सृजन

भी हुआ। पत्रिकाओं ने जनमानस और विद्यार्थियों में तार्किक वैज्ञानिक सोच विकसित करने का कार्य किया।

निष्कर्ष – इस शोधपत्र में दर्शाए गये तथ्यों से यह ज्ञात होता है भारत में हिन्दी भाषा में विज्ञान लेखन ने पत्रिकाओं के माध्यम से 100 से भी ज्यादा वर्षों की यात्रा तय कर ली है। प्राथमिक रूप से स्वास्थ्य विज्ञान का वह विषय था जिसके अंतर्गत हिन्दी भाषा में प्रथम विज्ञान पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ लेकिन विविध वैज्ञानिक विषयों को समाविष्ट कर प्रकाशित की गई प्रथम पत्रिका 'विज्ञान' नामक हुई जिसका प्रकाशन इलाहाबाद (वर्तमान नाम प्रयागराज) से हुआ। हिन्दी भाषीय विज्ञान पत्रिकाओं के प्रकाशन के साथ ही भारतीय सामाजिक परिदृष्य में जो परिवर्तन आया वह इस प्रकार है–

1. नवागत विज्ञान लेखकों का सृजन हुआ।
2. हिन्दी विज्ञान लेखन हिन्दी साहित्य की नई विधा के रूप में स्थापित हुआ।
3. महिलाओं को भी विज्ञान लेखन के प्रति आकृष्ट करने का कार्य विज्ञान पत्रिकाओं ने किया।
4. विज्ञान विषयों पर प्रकाशित महत्वपूर्ण विषेषांकों ने विषय विशेष पर सामाजिक जागरूकता उत्पन्न की।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. डॉ. मनोज पटैरिया, विज्ञान पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन 2007, पृ. 29–34
2. डॉ. शिव गोपाल मिश्र, हिन्दी में विज्ञान लेखन (भूत वर्तमान एवं भविष्य), आईसेक्ट विश्व विद्यालय भोपाल, 2015, पृ. 90
3. डॉ. शिव गोपाल मिश्र, हिन्दी में विज्ञान लेखन (भूत वर्तमान एवं भविष्य), आईसेक्ट विश्वविद्यालय भोपाल, 2015, पृ. 90–100
4. डॉ. शिव गोपाल मिश्र, हिन्दी में विज्ञान लेखन (भूत वर्तमान एवं भविष्य), आईसेक्ट विश्वविद्यालय भोपाल, 2015, पृ. 90–100
5. डॉ. शिव गोपाल मिश्र, हिन्दी में विज्ञान लेखन (भूत वर्तमान एवं भविष्य), आईसेक्ट विश्वविद्यालय भोपाल, 2015, पृ. 90–100
6. https://nopr.niscpr.res.in/handle/123456789/10290
7. डॉ. शिव गोपाल मिश्र, हिन्दी में विज्ञान लेखन (भूत वर्तमान एवं भविष्य), आईसेक्ट विश्वविद्यालय भोपाल, 2015, पृ. 90–100
8. https://barc.gov.in/hindi/publication/index_sc.html
9. http://nrdcindia.com/Pages/About%20Awishkar
10. नवनीत कुमार गुप्ता/महेश (गाजियाबाद, उप्र), शोध पत्र : हिन्दी भाषा में लोकप्रिय विज्ञान पत्रिकाएं : एक मूल्यांकन

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

भारत में पर्यटन उद्योग से आर्थिक विकास : एक अध्ययन

डॉ. राम सिंह धुर्वे*

* सहायक प्राध्यापक (भूगोल) शासकीय स्नातक महाविद्यालय, नैनपुर, जिला मण्डला (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – अनेक महत्वपूर्ण स्थल देखने तथा मन बहलाव के लिए अधिक विस्तृत भू-भाग में किया जाने वाला भ्रमण पर्यटन कहलाता है। पर्यटन ही एक ऐसा उद्योग है जिससे प्रत्येक राष्ट्र की धार्मिक, ऐतिहासिक, साँस्कृतिक और सामाजिक विकास की क्रियाएँ आबद्ध हैं। पर्यटन का निरंतर विकास करके आधारभूत संरचना का विकास संभव हो सकता है। पर्यटन के माध्यम से राष्ट्रीय कोष में दुर्लभ विदेशी मुद्रा की प्राप्ति होती है, साथ ही रोजगार के नये अवसर भी सृजित होते हैं। पर्यटन गरीबी दूर करने और मानव विकास के एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में उभरा है। रोजगार के साधन जुटाने में इसका योगदान बहुत ज्यादा है। पर्यटन से राष्ट्रीय एकता और अंतर्राष्ट्रीय सद्भाव को बढ़ावा मिलता है तथा हस्तशिल्प और साँस्कृतिक गतिविधियों को भी प्रोत्साहन मिलता है।

देश के पर्यटन एवं सेवा क्षेत्र को बढ़ावा देकर अर्थव्यवस्था का समावेशी विकास किया जा सकता है। पर्यटन और सेवा क्षेत्र में रोजगार और अर्थव्यवस्था की प्रगति की प्रचुर संभावनाएँ हैं, इस समय पर्यटन क्षेत्र में विनिर्माण क्षेत्र की तुलना में तीन गुणा अधिक रोजगार उपलब्ध है। पर्यटन उद्योग में पिछले वर्षों में लगभग पाँच प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है जबकि विनिर्माण क्षेत्र में तीन फीसदी से भी कम की वृद्धि हुई है। प्रत्येक मनुष्य की प्राकृतिक इच्छा, एक दूसरे की संस्कृति और मूल्यों को समझने के लिए तथा अन्य सामाजिक, धार्मिक और व्यवसायिक हितों की पूर्ति के लिए पर्यटन के मूल संरचना विकास हुआ है। यह देश के विभिन्न प्रदेशों और देशों के बीच व्यापार और वाणिज्य को सुगम बनाया है इसी कारण यह सेवा उद्योग का उभरा है।

अध्ययन के उद्देश्य – भूगोलवेत्ताओं का कार्य प्रकृति एवं मानव के बीच सम्बन्धों का अध्ययन करना तथा मानवीय उन्नति हेतु स्थानिक संगठन को समझना है। समकालीन भूगोल का लक्ष्य और उद्देश्य नैसर्गिक संसाधनों एवं साँस्कृतिक स्त्रोतों को मानव के कल्याणार्थ इस्तेमाल करना एवं इसके माध्यम से मानव मात्र की प्रगति और सुख-समृद्धि व मनोरंजन सम्बन्धी योजनाओं में हरसंभव अंशदान करना है। इस अध्ययन के मुख्य उद्देश्य निम्नानुसार हैं-

1. पर्यटन से देश के आर्थिक विकास पर कितना वृद्धि हुई, इसका आकलन करना।
2. देश के आर्थिक विकास पर पर्यटन की भूमिका का अध्ययन करना।
3. पर्यटन के माध्यम से सामाजिक, साँस्कृतिक एवं आर्थिक परिवर्तनों का अध्ययन करना।

संकल्पनाएँ:

1. पर्यटन का आर्थिक विकास में बहुत बड़ा योगदान है।
2. पर्यटन उद्योग से वैचारिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं लैंगिक मतभेद दूर होते हैं, तथा राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को बल मिलता है।
3. पर्यटन, रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने में सहायक है।
4. पर्यटन से किसी देश की संस्कृति को दूसरे देश के पर्यटकों द्वारा आत्मसात करने की भावना प्रबल होती है।

शोध प्रविधि – अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक आँकड़ों का समावेश किया गया है। द्वितीयक आँकड़ों का संकलन मध्यप्रदेश एवं भारत सरकार की विभिन्न प्रतिवेदन में प्रकाशित आँकड़े एवं संबंधित वेबसाइट्स से किये गये हैं।

भारत में पर्यटन विकास– माना जाता है कि यूरोपीय पर्यटन ने मध्ययुगीन तीर्थयात्रा को आरम्भ किया है। तीर्थयात्री प्रारंभिक रूप से धार्मिक कारणों से यात्रा पर जाते थे। 17 वीं सदी के दौरान इंग्लैंड में एक बड़ी यात्रा पर जाना फैशन बन गया। 18 वीं शताब्दी, बड़ी यात्रा के लिए स्वर्ण युग माना जाता है। प्राचीन एवं मध्यकाल में कई प्रसिद्ध भूगोलवेत्ताओं जैसे-यूनानी विद्वान अनेग्जीमेण्डर ने अनेक यात्राएँ करके सर्वप्रथम संसार का मानचित्र बनाया। इरेटॉस्थनीज ने पृथ्वी की परिधि नापने के लिए मिस्र के आस्वान क्षेत्र में साइने नामक स्थान को अपना प्रयोग स्थल बनाया जो आज भी पर्यटकों के लिए आकर्षण का केन्द्र है। क्लॉडियस टॉलमी ने अनेक ग्रंथों एवं मानचित्रों की रचना की। अरबी विद्वान अल-इदरीसी ने केवल पर्यटन के उद्देश्य से ही एक ग्रंथ लिखा। अलबरूनी, अलमसूदी, इब्नबतूता आदि ने भी अनेक यात्राएँ करके क्षेत्रीय भूगोल के अंतर्गत पर्यटन को बढ़ावा दिया। भारत में ज्ञान के विस्तार के लिए अनेक यात्राएँ की जाती थीं। सन्यासी को किसी स्थान विशेष से मोह न हो इसलिए स्वामी विवेकानंद की प्रसिद्ध भारत यात्राएँ की थी। बौद्ध धर्म के आगमन पर गौतम बुद्ध के संदेश को अन्य देशों में पहुँचाने के लिए सम्राट अशोक ने अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को श्रीलंका भेजा था। ज्ञान के विस्तार और सामूहिक विकास के लिए तीर्थ यात्राओं की व्यवस्था भी प्राचीन भूपर्यटन का ही एक रूप था।

इस प्रकार मानव की नित नए और ज्ञात-अज्ञात स्थानों का भ्रमण करने, देखने और उसकी सराहना करने की तीव्र इच्छा ने ही आधुनिक पर्यटन उद्योग को जन्म दिया। भारत में विभिन्न प्रकार की स्थलाकृतियाँ, जलवायु और प्राकृतिक सौन्दर्य से सम्पन्न पर्यटन स्थल हैं। सांस्कृतिक

पर्यटन स्थलों में महल, मन्दिर, मस्जिद, गुफाएँ आदि प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त समुद्री पुलिन, रेतीले टीले, दक्षिण भारत के सदाबहार वर्षा वन आदि अनेक आकर्षक पर्यटन स्थल हैं। हमारे देश में पर्यटन मंत्रालय के विकास और संवर्द्धन हेतु राष्ट्रीय नीतियों और कार्यक्रमों के प्रतिपादन के लिए नोडल ऐजेंसी का कार्य करता है। भारत पर्यटन विकास निगम, पर्यटन मंत्रालय के नियंत्रणाधीन एक मात्र सार्वजनिक क्षेत्र का उपक्रम है। इसकी स्थापना 1 अक्टूबर 1966 को हुई थी। इसने देश में पर्यटन की आधारिक संरचना के विकास में अह्म भूमिका निभाई है।

पर्यटन का महत्व– पर्यटन का महत्व उस समय सामने आया जब यूनाइटेड नेशन ने आम सभा में 1967 को अंतर्राष्ट्रीय पर्यटन वर्ष घोषित किया। बहुउद्देशीय मनीला घोषणा से इस विचार को बढ़ावा मिला है कि पर्यटन एक ऐसी ऐच्छिक मानवीय गतिविधि है जो देश के विकास के लिए जरूरी है क्योंकि इसका प्रत्यक्ष प्रभाव समाज के भौतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक तथा आर्थिक व्यवस्था पर पड़ता है। यह एक महत्वपूर्ण सेवा उन्मुखी क्षेत्र है जो सकल राजस्व और विदेशी मुद्रा की अर्जन की दृष्टि से वैश्विक रूप से त्वरित विकास किया है। पर्यटन उद्योग अधिक रोजगार का सृजन करने के लिए प्रोत्साहन करने के साथ मूल संरचना सुविधाएँ जैसे सड़क, दूरसंचार और चिकित्सा सेवाओं का अर्थव्यवस्था में विकास करता है। पर्यटन का महत्व और पर्यटन की लोकप्रियता को देखते हुए ही संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1980 से 27 सितम्बर को विश्व पर्यटन दिवस के तौर पर मनाने का निर्णय लिया। विश्व पर्यटन दिवस के लिए 27 सितम्बर का दिन चुना गया क्योंकि इसी दिन 1970 में विश्व पर्यटन संगठन का संविधान स्वीकार किया गया था।

भारतीय प्राच्य ग्रंथों में स्पस्ट रूप से मानव विकास, सुख और शांति की संतुष्टि व ज्ञान के लिए पर्यटन को अति आवश्यक माना गया है। हमारे देश में ऋषि मुनियों ने भी पर्यटन को प्रथम महत्व दिया है। प्राचीन गुरूओं ने भी यह कहा कि 'बिना पर्यटन मानव अन्धकार प्रेमी होकर रह जायेगा।' पाश्चात्य विद्वान संत आगस्टिन ने तो यहाँ तक कह दिया कि 'बिना विश्व दर्शन ज्ञान ही अधूरा है।' जब भारत के संदर्भ में पर्यटन की बात करते हैं तो जर्मन विद्वान मैक्समूलर की एक उक्ति है कि 'अगर मुझसे पूछा जाए कि इस आसमान के नीचे मानव ने कहाँ पर अपने खूबसूरत उपहार को सँवारा है तो मैं भारत की ओर इशारा करूँगा।' यही है भारत की वैभवपूर्ण विरासत। पुराणों में भी कहा गया है कि 'यदि हास्ति तदन्यत्र! यन्नेहास्ति न कुत्रहास्ति न कुत्रचित्।' अर्थात जो यहाँ भारत में नहीं है, वह कहीं भी नहीं है।

मनुष्य को सुखद जीवन व्यतीय करने के लिए संसार में जड़ व चेतन की संगति करना अपरिहार्य है। मनुष्य का जन्म ही संगति का परिणाम है। इन सबसे व्यक्तित्व के निर्माण में लाभ होता है। यात्रा या पर्यटन का आरम्भ सृष्टि के आरम्भ से ही हो गया था। देश की एकता व अखण्डता के लिये भी धार्मिक पर्यटन सहायक रहा है। देश के सभी स्थानों में लोग एक–दूसरे के संपर्क में आते हैं। जिससे प्रेम व सहयोग की भावना उत्पन्न होती है जिससे राष्ट्रीय एकता हो बल मिलता है। अत: यात्रा बहु–प्रयोजनीय सिद्ध होती है। आजकल इन यात्राओं का एक पहलू और सामने आया है और वह है पर्यटन स्थल का आर्थिक व सामाजिक विकास। देश में पर्यटन से होटल, वाहन व यात्रा के साधनों व इनसे जुड़ अनेक छोटे–बड़े उद्योगों को बढ़ावा मिलता है और वहाँ का आर्थिक विकास होता है। सरकारें भी तीर्थ स्थलों व पर्यटन स्थलों के विकास के लिए सावधान हैं जिससे देश व समाज को अनेक लाभ हो रहे हैं।

पर्यटन के आयाम– भारत में पर्यटन के विविध आयाम हैं जिसमें प्रमुख रूप से प्राकृतिक, साहसिक, रोमांचकारी, धार्मिक और चिकित्सीय पर्यटन। इनके अतिरिक्त साँस्कृतिक, ऐतिहासिक तथा धरोहर, ग्रामीण, शैक्षिक, मनोरंजन, स्वास्थ्य एवं उपचार, समुद्री, पर्वतीय, पारिस्थिकीय, निर्माणात्मक, अंतरिक्ष एवं काला पर्यटन हैं। देश में काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक अनेक ऐसे पर्यटन स्थल हैं जिनकी सौन्दर्यता का वर्णन शब्दों में बयाँ नहीं किया जा सकता है, इसीलिए पर्यटक इन स्थलों की ओर बरबस आकर्षित होते रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1994 में पर्यटन के आँकड़ों के अनुसार इसे तीन रूपों में वर्गीकृत किया–घरेलू पर्यटन, जिसमें किसी देश के निवासियों की केवल उनके देश के अन्दर यात्रा शामिल है। इनबाउंड पर्यटन, जिसमें गैर निवासियों की किसी देश की यात्रा शामिल है और आउटबाउंड पर्यटन जिसमें निवासियों की दूसरे देश की यात्रा शामिल है। वर्तमान में पर्यटन उद्योग इनबाउंड पर्यटन से इंट्राबाउंड पर्यटन की ओर स्थानांतरित हो गया है क्योंकि कई देश इनबाउंड पर्यटन के लिए कठिन प्रतियोगिता का अनुभव कर रहे हैं। कुछ राष्ट्रीय नीति निर्माताओं ने स्थानीय अर्थव्यवस्था में योगदान करने के लिए इंट्राबाउंड पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए संयुक्त राज्य में ''See America'' ''मलेशिया में ''Malaysia Truly Asia'' कनाडा में ''Get Going Canada'' फिलीपींस में ''Wow Pholippines'' सिंगापुर में ''Unoquely Singapuore'' न्यूजीलैण्ड में ''100% Pure New Zeeland'' और भारत में ''Incredible India'' आदि को प्राथमिकता दिया जाता है।

पर्यटन की एक नई दिशा– जैसे–जैसे बदलाव की प्रकिया तेज हो रही है आबादी बढ़ रही है संसाधनो पर भी दबाव बढ़ रहा है। वर्ष 2025 तक 1.8 अरब लोग पानी की किल्लत वाले इलाकों में रह रहे होंगे। इसके अलावा भारत और चीन के मध्यम वर्ग के विकास से वैश्विक पर्यटन के प्रवाह में नाटकीय बदलाव आयेंगे। जलवायु परिवर्तन इनमें महती भूमिका निभायेगा और इससे कहाँ और कैसे देशाटन के लिये जायेंगे। जैसे अनेक सवाल भी उठेंगे लेकिन यही वह प्रकिया है जो पर्यटन उद्योग को नई दिशा देगी।

केपीएमजी ने पिछले दिनों प्रकाशित एक रिपोर्ट में कहा कि जलवायु परिवर्तन का सबसे अधिक असर पर्यटन और परिवहन क्षेत्र पर पडेग़ा लेकिन इन क्षेत्रों की इससे लड़ने की तैयारी आधी अधूरी ही है। टूरिज्म 2023 रिपोर्ट में ऐसे मूल मुद्दों को रेखांकित किया गया है जो निम्नांकित हैं–

1. **सस्टेनेबल डेस्टीनेशन–** पर्यटन उद्योग को पर्यटक स्थलों में निवास करने वाले लोगों को इसके लाभों के बारे में तो जानकारी देनी ही होगी। साथ ही इससे होने वाली आर्थिक विकास पर निगाह भी रखनी होगी। इससे पर्यटन स्थल लम्बे समय तक अपने स्वरूप को ना सिर्फ बरकरार रख पायेंगे बल्कि ग्राहकों में इनकी पहचान भी बनी रहेगी। इसके लिये पर्यटन कारोबारियों को सरकार और समुदाय के साथ इन क्षेत्रों में काम करना होगा।
2. **लो कार्बन इनोवेशन–** पर्यटन उद्योग को ईको–फ्रेंडली और समुदाय की सांस्कृतिक व पारिस्थिक विरासत पर कम असर डालने वाले व्यवसाय के रूप में स्थापित करने के लिये हल तलाशने होंगे। इसके लिये इस उद्योग को नई–नई तकनीकों का ना सिर्फ परीक्षण करना होगा बल्कि उन्हें बडे पैमाने पर लागू भी करना होगा। कचरे में कमी और कुदरती संसाधनों पर कम से कम दबाव पड़े, इसके लिये ऊर्जा कुशलता के साथ गैर परम्परागत ऊर्जा स्त्रोतों का भी दोहन करने की आवश्यकता है।

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

3. **ग्राहक माँग-** इस प्रकार के पर्यटन के बाजार का विस्तार करने के विशाल अवसर मौजूद हैं लेकिन इसके लिये पर्यटकों में टिकाऊ पर्यटन की महत्ता के बारे में जाग्रति पैदा करनी होगी।

4. **बूम एवं ब्रस्ट-** इंग्लैंड की अर्थव्यवस्था में तेजी और खर्च करने लायक आय में इजाफा होने से पूरी दुनिया के पर्यटन उद्योग को काफी लाभ हुआ। इससे भ्रमण पर जाने का अंतराल कम तो हुआ ही है। नये-नये इलाके भी पर्यटन स्थल के रूप में विकसित हुये। राजनीतिक स्थिरता और विश्व अर्थव्यवस्था में सुधार होने से एक ओर जहां कारोबार को लाभ हुआ, वहीं पर्यटकों की संख्या भी बढी। शैवाल से बायोफ्यूल बनाने जैसी तकनीकों में तेजी से हो रहे विकास पर्यटन क्षेत्र के काफी अहम् हैं। इससे पर्यावरण पर होने वाला असर भी कम हो गया है।

5. **डिवाइडेड डिस्काइट-** जलवायु परिवर्तन, दुर्लभ संसाधनों के लिये संघर्ष और सामाजिक विवादों के कारण अस्थिरता और डर का माहौल पैदा हुआ है। दुनिया भर के देशों में चल रहे सीमा विवाद और विश्वस्तर पर सामंजस्य की कमी के चलते पर्यटकों की आवागमन पर असर पड़ा है। इसके अलावा सुरक्षा जाँच व वीजा सम्बंधी परेशानियों के कारण पर्यटन रोमांच के बजाय दुरूह अहसास बन चुका है। इसके अलावा तेजी से विलुप्त हो रहे कुदरती नजारों जैसे पैटागोनिया के ग्लेशियर पार्क और आस्ट्रेलिया की विशालकाय मूँगे की चट्टानों को देखने वालों के लिये नया वर्ग तैयार हो रहा है।

6. **प्राइस एंड प्रीविलेज-** तेल के दामों में हुये इजाफे ने पर्यटन को महँगा सौदा बना दिया है। इससे पर्यटन पर तो असर पड़ा ही है, उड्डयन क्षेत्र का दायरा भी सिमट गया है। ऐसे में यूरोप के चारों ओर फैला हुआ रेल, बस ओर समुद्री जहाज का नेटवर्क पर्यटकों के लिये सस्ते और सुरक्षित विकल्प के रूप में सामने आया है। यूक्रेन ने अपने- आप को गेटवे टू द ईस्ट के रूप में पेश किया है।

7. **कार्बन पर लगाम-** इंग्लैंड की सरकार ने सभी घरों के कार्बन की एक मात्रा तय की है। यदि कोई परिवार इसमें कटौती करने में सक्षम होता है तो उसे कार्बन क्रेडिट की तरह कुछ अंक मिलते हैं जिन्हें बेचा जा सकता है। सरकार का मत है कि इससे जलवायु परिवर्तन को लेकर व्यक्तिगत सोच में बदलाव आयेंगे। लोग पर्यावरण संरक्षण की मुहिम में अब आगे आने लगे हैं और इसका उन्हें अहसास भी हो रहा है। सांस्कृतिक मान्यताओं में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं हुआ है लेकिन उन्हें सरकारी नियमों और पहलों से मदद मिल रही है।

पर्यटन से विदेशी मुद्रा आय (एफईई)- आर्थिक विकास के एक साधन के तौर पर पर्यटन उद्योग को बढ़ावा देने हेतु वर्ष 1982 में भारत सरकार द्वारा एक विस्तृत पर्यटन नीति घोषित की गयी। 1986 में पर्यटन को एक उद्योग की मान्यता दी गयी। वर्ष 1991 को पर्यटन वर्ष एवं 1999-2000 को 'भारत यात्रा वर्ष' घोषित किया गया। सन् 2002 में 'अतुल्य भारत (इंक्रेडेबल इंडिया) अभियान' की शुरूआत की थी। भारत सरकार ने 2002 में नई राष्ट्रीय पर्यटन नीति घोषित की है, जिसमें देश को इस क्षेत्र में एक यग्लोबल ब्राण्ड बनाने की बात कही गयी थी। वर्तमान में पर्यटन एक रोजगार का साधन बन चुका है। भारत की अर्थव्यवस्था में 17.3 फीसदी हिस्सेदारी पर्यटन उद्योग की है। भारत में यह सेवा उद्योग का रूप ले चुका है, इसका योगदान देश के सकल घरेलू उत्पाद में 6.23 प्रतिशत है एवं कुल रोजगार में 8.78 प्रतिशत है। भारत में हर वर्ष 50 लाख से अधिक विदेशी पर्यटक आते हैं तथा 50 लाख से अधिक घरेलू पर्यटक भी पर्यटन करते हैं। पर्यटन भारतीय अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है और यह देश की विदेशी आय में पर्याप्त योगदान देता हैं।

भारत में पर्यटन से विदेशी मुद्रा आय: 2011 से 2022 तक

वर्ष	करोड़ रूपये में	अमेरिकी डॉलर में	पिछले वर्ष की तुलना में प्रतिशत बदलाव	
			करोड़ रूपये में	मिलियन अमेरिकी डॉलर में
2011	83037	17707	25.49	22.2
2012	95606	17972	15.14	1.5
2013	107563	18396	12.51	2.36
2014	120366	19699	11.90	7.08
2015	134843	21012	12.03	6.67
2016	150750	22428	11.80	6.74
2017	178189	27365	18.20	22.01
2018	195312	28565	9.61	1.4
2019	216467	30721	10.83	7.54
2020	50136	6958	-76.84	-77.35
2021	65070	8797	29.79	26.43
2022	134543	16926	106.77	92.41

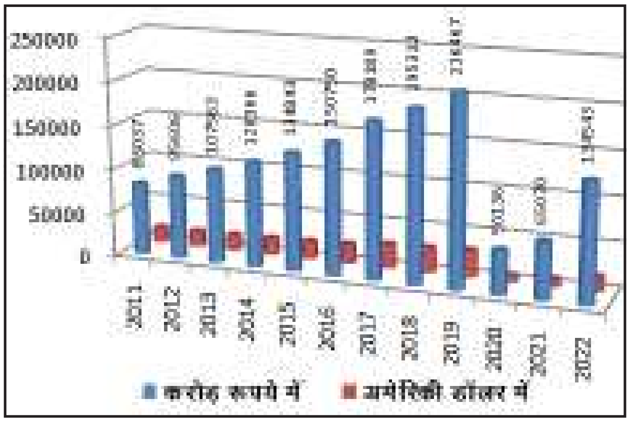

स्रोत: भारत पर्यटन आँकड़े, भारत सरकार, पर्यटन मंत्रालय

चुनौतियाँ एवं सुझाव- पर्यटन की बढ़ रही माँग हमारे प्राकृतिक एवं अन्य संसाधनों पर दबाव डाल रही है। देश में अवांछित घटनाओं के कारण पर्यटन विकास प्रभावित हो रहा है। सरकार द्वारा पर्यटन उद्योग के विकास के लिए मंत्रालयों तथा निगमों का गठन किया गया है। बजट राशि का बड़ा हिस्सा अधिकारियों के वेतन भत्तों और सुख सुविधाओं में खर्च हो जाता है। पर्यटन के नाम पर सेमीनारों में देश विदेश भ्रमण पर भारी भरकम खर्च हमेशा विवादों में रहता है। भारत में पर्यटकों पर होने वाले हमले तथा यौन उत्पीड़न की घटनाएँ प्रमुख चुनौतियाँ हैं। इसके अलावा आतंकी तथा नक्सली हमले के कारण देश में पर्यटकों की संख्या में कमी आई है। 2008 में मुंबई में हुए आतंकी हमले तथा धार्मिक एवं अन्य शहरों में हुए बम ब्लास्ट के कारण भारतीय पर्यटन उद्योग को लगभग दो अरब रूपयों का नुकसान उठाना पड़ा था। इसके अलावा कुछ भौगोलिक विनाशकारी घटनाओं जैसे ज्वालामुखी, भूकंप, सुनामी, भू-स्खलन एवं भूमण्डलीय तापन के कारण

पर्यटन उद्योग प्रभावित होता है।

देश में पर्यटन विकास के लिए बेहतर माहौल बनाने से यहाँ आने वाले विदेशी पर्यटकों की संख्या में वृद्धि होगी। जितनी बड़ी संख्या में विदेशी पर्यटक भारत आयेंगे उतना अधिक खर्च करेंगे जिससे देश की अर्थव्यवस्था में विदेशी निवेश को बढ़ावा मिलेगा। इससे पर्यटन, यात्रा और सेवा क्षेत्र में रोजगार के अवसर भी बढ़ेंगे जिससे समाज के हर वर्ग को बेहतर अवसर मिलेंगे और अर्थव्यवस्था का समावेशी विकास होगा। यदि पर्यटन के पारिस्थितकीय स्वरूप से सतत् विकसित करने और समग्र पर्यावरण के अनुरक्षण पर ध्यान नहीं दिया जाता है तो अपूरणीय क्षति हो सकती है।

निष्कर्ष–पर्यटन को बढ़ाने की दिशा में किये जा रहे सुनियोजित प्रयासों के चलते देश के आर्थिक विकास में पर्यटन उद्योग का सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही प्रभाव पड़ रहे हैं। पर्यटन देश की अर्थव्यवस्था का महत्वूर्ण घटक के रूप में उभरा है जिससे विदेशी मुद्रा अर्जन और युवाओं को अनेक रूपों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष नये रोजगार प्राप्त हो रहे हैं। पर्यटन उद्योग से जुड़े अन्य उद्योगों के विकास के साथ लोगों को रोजगार मिला और उनकी क्रय शक्ति में वृद्धि हुई है। यह देश के आर्थिक विकास में सक्रिय भूमिका निभा रहा है, जिससे देश को एक नई पहचान मिल रही है। समग्र रूप से एक तीव्रगामी, उन्नतिशील आर्थिक क्षेत्र के रूप में पर्यटन आज देश की वर्तमान तथा भावी समग्र उन्नति का एक सुदृढ़ आधार तथा अविभाज्य अंग बन चुका है। यह उद्योग मात्र व्यवसायिक उद्देश्य की पूर्ति नहीं किया है साथ ही परस्पर सद्भावना, शांति, एकता व अखण्डता को बनाये रखने में सहायता प्रदान कर रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. जगन्नाथ, एस., (फरवरी 1976) पर्यटन के सामाजिक एवं आर्थिक महत्व, जर्नल फॉर इण्डस्ट्रीज एण्ड ट्रेड 26(2)।
2. शर्मा, संजय कुमार (2005), पर्यटन में भूगोल, तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली।
3. दीक्षित, के.के.(2002) पर्यटन के विविध आयाम, तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली।
4. कपूर, बिमल कुमार (2008), पर्यटन भूगोल, विश्वभारती पब्लिकेशन्स, 4378/4, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली।
5. कुरूक्षेत्र, मासिक पत्रिका, जून 2002, पर्यटन उद्योग: विकास की आवश्यकता।
6. http://hindi.webdunia.com/tourism-news/पर्यटन–उद्योग–घ–मिलेगा–बढ़ावा–112092600041_1.htm
7. http://tourism.gov.in/CMSPagepicture/file/market researsh/statisticalsurveys/_AR2007.
8. http://jamosnews.com/politisc/increase-in-tourism/
9. http://business.gov.in/hindi/Industry_services/tourism.php
10. http://mpinfo.org/MPinfoStatic/hindi/factfile/tdevpg.asp
11. http://www.wttc.org//media/files/reports/economic% 20 impact%20research/country%20reports/india2014.pdf
12. http://www.cci.in/pdfs/surveys-reports/Tourism-in-India.pdf
13. http://tourism.gov.in/sites/default/files/वार्षिक%20रिपोर्ट.pdf

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

भारत में तलाक की समस्या

डॉ. पूजा तिवारी *

* सहा. प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (समाज शास्त्र) शासकीय महाविद्यालय, बिछुआ, जिला छिन्दवाडा (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – विवाह प्रत्येक समाज की अनिवार्य संस्था है ,भले ही इसका स्वरूप देशकाल तथा परिस्थितियों में अलग –अलग पाया जाता हो। 'यौन प्रवृत्तियों को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने के लिए ही विवाह नामक संस्था का जन्म हुआ। अनेक स्त्री – पुरूषों को विवाह असीम सुख,शांति तथा संतोष प्रदान करता है एवं उनके जीवन को व्यवस्थित बनाता है किंतु कई बार दुर्भाग्यवश विवाह का बुरा प्रतिसाद 'तलाक' के रूप में भी मिलता है।

इलियट एवं मेरिज के अनुसार 'तलाक हमेशा दुखांत एवं रिश्तों का अंतिम विसर्जन के रूप में होता है।' तलाक पारिवारिक तनाव का प्रमुख लक्षण होता है ,जिससे पारिवारिक विघटन एवं सामाजिक विघटन होता है। हिन्दू या सिक्ख धर्म में 'तलाक' की कोई अवधारणा नहीं है ,ऐसा कहा जाता है कि मृत्यु के सिवा कोई ओर किसी भी दंपति को अलग नहीं कर सकता है। तलाक की अवधारणा भारत में मुस्लिम शासनकाल के बाद समाज में आयी। आज तलाक की दर तेजी से बढ़ रही है ,फिर भी भारत में लगभग 10 प्रतिशत जबकि विदेशों में 50 प्रतिशत की दर तलाक के संबंध में देखी गई है। मुस्लिम समाज में तलाक आसान प्रक्रिया है जबकि हिंदु समाज में जटिल प्रक्रिया है। तलाक किसी भी परिवार के लिए दुखद घटना है। जिससे मानसिक अशांति एवं खासतौर पर बच्चों पर इसका कुप्रभाव पड़ता है। ऐसा माना जाता है कि पश्चिमी संस्कृति के सम्पर्क में आने से भारत में तलाक की संख्या बढ़ रही है।

तलाक या विवाह विच्छेदन – 'तलाक' शब्द अरबी भाषा के मूल शब्द 'तल्लाका' से बना है ,जिसका अर्थ किसी जानवर को बांधने के रस्से से मुक्त करना होता है। 'तलाक' का अर्थ 'त्यागना' है , अरबी समाज में पति को निकाह संबंध समाप्त करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त था, मुस्लिम समाज में तलाक पति की ओर से ही लिया जा सकता है ,यदि पत्नि तलाक लेती है तो उसे 'खुला य कहते है ,एवं इसमें 'मेहर' की राशि नहीं दी जाती है।

भारतीय समाज में सभी जाति, धर्म के लोग एक साथ निवास करते है किंतु तलाक की समस्या वर्तमान में सभी जाति एवं धर्मो में देखी जा रही है।

तलाक की समस्या बढ़ने के कारण – भारतीय समाज में यदि हम तलाक की बढ़ती संख्या पर नजर डाले तो सर्वप्रथम कारण हमारे समक्ष आता है 'महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता' पुराने जमाने में महिलाऐं शिक्षित एवं जागरूक नहीं थी, साथ ही वो प्रत्येक आवश्यकताओं हेतू पति पर निर्भर रहती थी एवं आर्थिक निर्बलता के कारण पति के अत्याचार सहन करने पर मजबूर रहती थी, वह तलाक का साहस जुटा नहीं पाती थी ,क्योंकि शादी के बाद वापिस अपने पिता के घर आकर रहना सामाजिक दृष्टिकोण से हेय था एवं बूढे पिता पर वह बोझ नहीं बनना चाहती थी,किन्तु वर्तमान में स्थितियाँ बदल गयी है ,अब स्त्रियॉ पढ़ी लिखी आर्थिक रूप से मजबूत होती जा रही है आज एक नारी के लिए 'पति' से पहले शिक्षा एवं रोजगार हैं ,आज वह पति पर आर्थिक रूप से निर्भर नहीं है।

तलाक से बढ़ती समस्या का दूसरा कारण युवक –युवतियों की मर्जी के बगैर विवाह कर देना है। कई प्रकरण में शादी घर वालों के दबाव में आकर कर ली जाती है ,जो बाद में तलाक के रूप में बदल जाती है।

बढ़ते तलाक हेतु लड़की के माता –पिता का अवांछनीय हस्तक्षेप भी है कई बार माँ–बाप अपनी बेटी को गलत सलाहे देकर उसका वैवाहिक जीवन बर्बाद कर देते है।

तलाक के अन्य कारणों में 'सास –बहु मनमुटाव',षडयंत्रपूर्वक विवाह, यौन संबंधों में नीरसता ,बहुविवाह में रूचि तथा तलाक को समाज एवं परिवार द्वारा उचित मानना, आधुनिक जीवन शैली से उत्पन्न तनाव, दोहरी आय एवं भूमिका बदलना तथा मुख्य रूप से कानून आई.पी.सी. –498 का दुरूपयोग करना आदि है। इसके अलावा विवाह पूर्व संबंध एवं विवाहेत्तर संबंध भी तलाक को बढ़ाते है।

भारत में तलाक की वर्तमान स्थिति – आज विवाह विच्छेद की प्रक्रिया आसान हो गई है, इसलिए तलाक की संख्या पुराने समय की तुलना में दुगुनी एवं तिगुनी हो गई है ,वर्तमान में महानगरों के साथ ही छोटे शहरों,कस्बों में भी तलाक के प्रकरण तेजी से बढ़ रहे है। अकेले दिल्ली में ही प्रतिवर्ष लगभग 9000 केस फाइल होते है जबकि मुंबई में 7000 केस फैमिली कोर्ट में प्रतिवर्ष दाखिल होते है, जिनमें लगभग 70 प्रतिशत दंपत्ति की आयु 25 से 30 वर्ष के बीच होती है, जबकि लगभग 85 प्रतिशत केस शादी के प्रथम तीन वर्षो में ही दर्ज करवाए जाते है। कलकत्ता एवं चेन्नई में तलाक का प्रतिशत सर्वाधिक है।

वर्तमान में प्रेम विवाह एवं अन्र्तजातीय विवाहों की संख्या तेजी से बढ़ रही है ,उसी के अनुरूप 'तलाक' की संख्या भी बढ़ रही है क्योंकि कम आयु में गलत निर्णय लेकर जल्दबाजी में युवा वर्ग शादी तो कर लेता है किंतु शादी के पश्चात् जीवन की वास्तविकता का पता चलता है एवं प्रेम कहीं दूर छूट जाता है तथा दूसरे के धर्म एवं संस्कृति को अपनाना एवं निभाना बेहद कठिन लगने लगता है इसलिए अधिकांशत: अन्र्तजातीय विवाह भी असफल होकर 'तलाक' में बदल जाते है।

हिन्दु एवं मुस्लिमों में तलाक का प्रावधान – हिन्दू विवाह तथा विवाह विच्छेद अधिनियम 1955 से पूरे भारत में लागू किया गया (केवल जम्मू कश्मीर को छोड़कर) हिन्दुओं में बौद्ध ,जैन, मुस्लिमों में इस्लामी कानून के अनुसार (1) तलाके अहसन (2) तलाके हसन (3) तलाके –उल –विद्त

(4) इला (5) खुला (6) मुबारत (7) जिहर (8) लियान आदि द्वारा तलाक लिया जा सकता है।

सन् 1939 में मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम लागू होने के बाद मुस्लिम स्त्री को भी तलाक का अधिकार प्राप्त हो गया है। सन् 1986 में मुस्लिम महिला (तलाक के अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम लागू हुआ।

तलाक के पक्ष में एवं विरोध में तर्क – तलाक को कई दृष्टिकोण से अच्छा माना जा रहा है जिसमें प्रमुख रूप से स्त्रियों की दशा उन्नत करने में सहायक, समानता का सिद्धांत, कलह पूर्ण जीवन से छुटकारा एवं गतिशीलता हेतू आवश्यक आदि तर्क दिए जाते है। जबकि विवाह विच्छेद के विरोध में पारिवारिक –विघटन, बच्चों पर बुरा असर, आर्थिक निर्बलता, सामाजिक, विघटन आदि तर्क दिए जाते है।

निष्कर्ष – भारत में बढ़ती हुई तलाक की समस्या से स्पष्ट है कि वर्तमान भारतीय सामाजिक जीवन और परिस्थितियों में 'तलाक' की दर को कम करना जरूरी है अत: तलाक केवल गंभीर कारणों से ही देना चाहिए ,स्वस्थ जनमत, समर्पण आदि की भावना को प्रोत्साहित करना आवश्यक है। अभिभावकों को चाहिए कि वे पूर्णत: खोजबीन करके विवाह तय करें ,एवं बच्चों के हितों के लिए सामंजस्य करना, त्याग करना चाहिए एवं स्त्रियों को भी कानूनी अधिकारों का दुरूपयोग नहीं करना चाहिए। अंत में कहा जा सकता है कि आधुनिकता के इस युग में भी 'विवाह' एवं 'परिवार' नामक संस्था का अपना महत्व है ,बच्चों के व्यक्तित्व विकास के लिए मॉ –बाप का एक साथ रहना अति आवश्यक होता है अत: विवाह को पवित्र संस्कार मानकर तलाक का विवाह विच्छेद को कम किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. मुखर्जी /अग्रवाल – समाजशास्त्र – अग्रवाल प्रकाशन, इंदौर।
2. बघेल डॉ.डी.एस./समाज शास्त्र – कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल।
3. महाजन डॉ. धर्मवीर /कमलेश नातेदारी ,विवाह ,परिवार का समाज शास्त्र – विवेक प्रकाशन, दिल्ली।
4. डॉ.कालरा /भारत में तलाक की समस्या (इंटरनेट)
5. आजाद इंडिया फाउडेंशन की रिपोर्ट (इंटरनेट)

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

पर्यटन - पर्यावरण और रोजगार

डॉ. जयकुमार सोनी*

* प्रध्यापक(वाणिज्य) शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, सागर (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना - आज विश्व अर्थव्यवस्था को नई मंजिलें प्रदान करने में पर्यटन उद्योग की महत्वपूर्ण महत्वपूर्ण भूमिका है। इसलिए दुनिया भर में पर्यटन को बड़े उद्योग के रूप में उभर जा सकता है। इससे न केवल अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में सहायता मिल रही है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण की पहल भी जोरदार तरीके से हो रही है। पर्यटन से रोजगार स्वरोजगार को बढ़ावा मिल रहा है और एक दूसरे की भाषा, संस्कृति , सभ्यता और रीति रिवाजों को जानने समझाने का अवसर भी इसके माध्यम से मिल रहा है। यानी पर्यटन विश्व बंधुत्व अथवा वासुदेव कुटुंबकम की अवधारणा को भी सार्थक करता नजर आ रहा है।

पर्यटन से इंसान को अतिरिक्त खुशी मिलती है, इसलिए शायद प्राकृतिक सुरम्यता तथा सौंदर्य को निहार कर स्वास्थ्य लाभ के लिए इंसान कभी पर्वतीय, दर्शनीय स्थलों पर जाने को उत्सुक नजर आता है तो कभी धार्मिक व ऐतिहासिक स्थलों पर जाकर राहत,संतोष व सुख की अनुभूति महसूस करता है। विभिन्न भाषा, साहित्य, लोक जीवन एवं सांस्कृतिक गतिविधियों की जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से भी यात्राएं की जाती हैं। इस सब यात्राओं को पर्यटन में शामिल किया जाता है। यह अब उद्योग का रूप ले चुका है और विदेशी मुद्रा प्राप्ति का प्रमुख स्रोत बन गया है।

पर्यटन के जरिए प्राकृतिक विरासत को बचाने का जो अभियान प्रारंभ किया गया है इससे सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक विकास की तेजी को कायम रखा जा सकेगा। पर्यावरण पर्यटन को उद्योग के रूप में उभरने के लिए पर्यटन का प्रबंधन और प्रकृति का संरक्षण इस प्रकार से किया जाता है ताकि परिस्थितिकी आवश्यकताओं का संतुलन बना रहे और लोगों की रोजगार की जरूरतें पूरी होती रहे।किसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए केंद्र सरकार ने वर्ष 1998 में परिस्थितिकी पर्यटन पर नीति और दिशा निर्देश तैयार कर दिए थे। इस नीति में प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, सुरक्षा और समृद्ध बनाने के अलावा परिस्थितिकी पर्यटन की वृद्धि के प्रयासों में तेजी लाने की बात कही गई है। इसके अंतर्गत देशभर में देशभर में पर्यटन केंद्रों,होटलों, लॉज एवं रिसोर्ट स्थापित करने की योजना भी शामिल है।

भारत में पिछले कुछ वर्षों में पर्यटन एक बड़े उद्योग के रूप में उभर कर सामने आया है। पर्यटन गतिविधियों का क्रम बढ़ाने के लिए साथ ही इससे उत्पन्न हुई चुनौतियों की ओर भी ध्यान जाना स्वाभाविक है। कोशिश की जा रही है कि पर्यटन का विकास तो निरंतर हो, लेकिन प्राकृतिक संतुलन न गड़बड़ाए, इसके लिए प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर पर्यटन स्थलों पर विशेष व्यवस्था किए जाने की समय रहते जरूरत है ताकि पर्यटकों का आकर्षक बड़े और सैलानियों के पसंदीदा स्थानों को किसी प्रकार की छाती ना पहुंचे।ऐसा होने पर ही स्वरोजगार को बल मिलेगा।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा वर्ष 2002 को अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण पर्व घोषित किया गया। अपने घोषणा पत्र में संघ ने कहा कि परिस्थितिकी पर्यटन ऐसा क्षेत्र है जिसमें आर्थिक विकास की प्रबल संभावनाएं तो हैं ही, यदि ऐसे उचित तरीके से नियोजित, विकसित एवं प्रबंधित किया जाए तो यह प्राकृतिक पर्यावरण की संरक्षण का शक्तिशाली उपकरण सिद्ध हो सकता है।

सांस्कृतिक विरासत से अत्यधिक समृद्ध देशों में भारत का स्थान सातवां है इसलिए यहां पर्यावरण पर्यटन की व्यापक संभावनाएं हैं। इसके समुचित उपयोग के लिए निम्नलिखित उपाय किया जाना चाहिए-

पर्यावरण पर्यटन की खामियों एवं नकारात्मक प्रभाव को दूर करते हुए स्थाई विकास को प्रोत्साहित करना होगा, ताकि उपयुक्त साधनों और संस्थागत ढांचे को मजबूत किया जा सके।

मेले, प्रदर्शनियों को आयोजन पर्यटन की दृष्टि से आवश्यकता है।पर्यटन उद्योग के विकास के लिए प्राकृतिक पर्यटन को सभी स्तरों पर अपनाना जरूरी है, ताकि समुचित विकास हो सके तथा प्राकृतिक सौंदर्य को बचा रखा जा सके। व्यवस्था ऐसी हो कि यात्रा और पर्यटन लोगों की आई का स्रोत बने, पर्यटकों को भी प्रेरणात्मक व भावनात्मक संतुष्टि मिले तथा वन्य जीवों व पर्यटन को भी लाभ पहुंचे।पर्यटन न केवल विकास, रोजगार बल्कि अस्तित्व बचाव का साधन है इसलिए इसे गंभीरता से लेते हुए कारगर तरीके से अपनाने की आवश्यकता है।

प्रकृति के निरंतर होते दोहन को तो रोका ही जाना चाहिए। पर्यटन संरक्षण तथा स्थानीय लोगों के लिए रोजगार और आय के अवसर बढ़ाने के मध्य अच्छा संतुलन स्थापित किया जाए।

लोगों को प्रशिक्षण के जरिए पर्यावरण पर्यटन के प्रति जागरूक करना, सुदूर क्षेत्र में सामाजिक, आर्थिक लाभ पहुंचाते हुए भारतीय संस्कृति व पुरातात्विक दर्शनीय स्थलों को संरक्षित, समृद्ध और प्रोत्साहित करना।

परिस्थितिकी पर्यटन के विकास में जनभागीदारी को बढ़ावा दिया जाना जरूरी है ताकि समन्वित रूप विभिन्न परिस्थितिकी पर्यटन गतिविधियों को कारगर बनाया जा सके और योग यानी पर्यटक, ट्रैकिंग, हाइकिंग,वन उपवन वन, जीव अभ्यारणों, पर्वतारोहण, नदी नौकायन, झीलों, घाटियों की यात्रा का आनंद उठा सके। साथ ही पुरातन सुखद वातावरण में प्रवास की यादों को हमेशा ताज बनाए रख सके।

पर्यटन गतिविधियों को पर्यावरण के अनुकूल बनाने के साथ ही ऐसे

पैकेज टूर बनाए जाएं ताकि पर्यटकों को छोटे समूहों में शहर के लिए लाने ले जाने व्यवस्था हो और परिस्थितिकी पर्यटन का भरपूर आनंद प्राप्त कर सके। इसके लिए पहले से लक्ष्य तय किए जाएं ।जरूर इस बात की है कि जंगलों को पुनर्जीवित किया जाए और पेड़ों की कटाई को मजबूत इच्छा शक्ति से रोके जाने के नियम बनाए जाएं ।पर्यटन में विदेशी ही नहीं स्थानीय लोगों की भागीदारी को बढ़ाने के लिए लोक कला तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों को प्रोत्साहित किया जाना होगा ।

यात्रा सुखद एवं पर्यटकों के स्थलों को मनोरम बनाने के अलावा इस प्रकार की प्रबंध किए जाएं ताकि पर्यटकों को खास विशेषताओं को उजागर करते हुए उसे और आकृष्ट किया जा सके ।

पर्यटकों के उपयोग के जरूरी उत्पादों का सृजन कर उन्हें लोकप्रिय बनाना, पर्यटकों की रुचियों को समझना भी पर्यटन का ही हिस्सा है, क्योंकि इससे पर्यटन व्यापार बढ़ता है।

इसके लिए जरूरत है कि नए-नए पर्यटन स्थलों का विकास किया जाए। इसमें भौगोलिक परिदृश्य, खेलकूद, फिल्म, प्रसन्नता और मनोरंजन को भी पर्यटन से जोड़ा जा सकता है।

पर्यटन स्थलों के स्थानीय एवं जनजातीय लोगों को पर्यावरण पर्यटन गतिविधियों के लाभ में भागीदार बनना भी इसका महत्वपूर्ण हिस्सा है।

पृथ्वी के जल भंडारो केंद्रों, सांस्कृतिक, साहसिक गतिविधियों, समृद्ध जैव विविधता,खनिज, वन भंडार,मनोरंजन स्थलों, विरासत केंद्रों का प्रचार भी इसमें शामिल है।पर्यटन प्रोत्साहन और पर्यटन संबंधी फैसला करने से पहले वैज्ञानिक पद्धतियां अपनाते हुए व्यवस्थित मूल्यांकन किया जाना जरूरी है ताकि पर्यटन विकास का सामाजिक, आर्थिक और भौतिक वातावरण पर रचनात्मक प्रभावों को समझा जा सके और नकारात्मक प्रभावों को काम किया जा सके।

पर्यावरण पर्यटन उधम को विकसित करने के लिए व्यापक नीति बनाना और सभी की संयुक्त भागीदारी सुनिश्चित करना आदर्श पर्यावरण पर्यटन कार्यक्रम बनाना ।कुल मिलाकर पर्यावरण पर्यटन का अर्थ है कि पर्यटन और प्रकृति संरक्षण का प्रबंध इस प्रकार करना कि एक और पर्यटन व परिस्थितिकी जरूरत पूरी हो और दूसरी ओर स्थानीय लोगों के लिए रोजगार आए एवं नए कौशल के स्तर को ऊपर उठाए जा सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. एंडेरेक, केएल, वैलेंटाइन, केएम, वोग्ट, सीए, और नोपफ, आरसी (2007)। पर्यटन और जीवन की गुणवत्ता संबंधी धारणाओं का एक अंतर-सांस्कृतिक विश्लेषण। जर्नल ऑफ सस्टेनेबल टूरिज्म, 15 (5), 483-502।
2. अलोंसो-अल्मीडा, एमडीएम, बागुर-फेमेनियास, एल., लाच, जे., और पेर्रमोन, जे. (2018)। छोटे पर्यटक व्यवसायों में स्थिरता: पहल और प्रदर्शन के बीच की कड़ी। पर्यटन में वर्तमान मुद्दे, 21 (1), 1-20।
3. एंडेरेक, केएल, वैलेंटाइन, केएम, वोग्ट, सीए, और नोपफ, आरसी (2007)। पर्यटन और जीवन की गुणवत्ता संबंधी धारणाओं का एक अंतर-सांस्कृतिक विश्लेषण। जर्नल ऑफ सस्टेनेबल टूरिज्म, 15 (5), 483-502।
4. आयुसो, एस. (2006). स्थायी पर्यटन के लिए स्वैच्छिक पर्यावरण उपकरणों को अपनाना: स्पेनिश होटलों के अनुभव का विश्लेषण। कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व और पर्यावरण प्रबंधन, 13 (4), 207-220।

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

पिलखुवा में हथकरघा उद्योग के विकास पर समस्याओं और संभावनाओं के बारे में विशेष अध्ययन

मानवी शर्मा * डॉ. ईशा भट्ट**

* शोधार्थी (डिजाइन) वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली (राज.) भारत
** असिस्टेंट प्रोफेसर (डिजाइन) वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली (राज.) भारत

शोध सारांश – हथकरघा एक विशेष तकनीकी है जो पूरे भारत में गाँव और अर्द्धशहरी क्षेत्रों में साधारण कपड़ों के साथ–साथ विशेष कपड़ों का भी उत्पादन करता है। वर्तमान में हथकरघा उद्योग के क्षेत्रों में पावर लूम के कारण भारी गिरावट आई है। जिसका एक कारण यह भी है कि वर्तमान में हथकरघा उद्योग विकेन्द्रीकृत हो गये हैं। पश्चिम बंगाल पारंपरिक रूप से कपास, हथकरघा और जूट यार्न के लिए समृद्ध है। हथकरघा में जूट और जूट मिश्रित यार्न की बुनाई के दौरान बुनकरों को जूट फाइबर के खुरदरेपन के कारण कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है।उत्तर प्रदेश में पूर्व समय से ही हथकरघा उद्योग को अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। ऐसा माना जाता है कि हथकरघा उद्योग मुगल और बादशाओं के समय से शुरू हो गया था। 18वीं शताब्दी से ही प्रारभ इस कार्य में भिन्न–भिन्न प्रकार के सुन्दर रूप से अभिकल्पन करके उनको विशेष तरीको से हाथों द्वारा बनाये जाने के लिए ये उद्योग विख्यात है। ये क्षेत्र वस्त्रों पर सौंदर्य से भरपूर डिजाइन बनाने के लिए प्रसिद्ध माना जाता है। इस उद्योग क्षेत्र में विदेशी मुद्रा हासिल करने का प्रमुख स्थान सूती वस्त्र उद्योग है। व्यवसाय रूप से अगर तुलनात्मक वर्णन किया जाये तो कपड़ा आय का प्रमुख स्त्रोत माना गया है। इसी के साथ–साथ रेशमी और ऊनी वस्त्र व्यवसाय की तुलना में सूती वस्त्र उद्योग को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

शब्द कुंजी – उत्तर प्रदेश, हथकरघा उद्योग, पिलखुवा में समस्याऐ, संभावनाऐ।

प्रस्तावना – भारतीय संस्कृति की अर्थव्यवस्था में हथकरघा उद्योग ने वैदिक काल से लेकर वर्तमान समय तक अपनी महत्तवपूर्ण भूमिका निभाई है। कृषि के बाद भारत में यह दूसरे स्थान पर आता है। कुशल और अकुशल दोनों प्रकार के कारीगरों के लिए यह उद्योग, पूर्ण रूप से रोजगार प्रदान करता है। इस उद्योग का इतिहास लम्बे समय से चलता आ रहा है। हाथों के बुने हुए कपड़ों को बहुत पसन्द किया जाता था इसलिए इन वस्त्रों को आम जनता से लेकर राजा महाराजा तक पहनना पसन्द करते थे। अगर देखा जाये तो मध्य कालीन युग में इस उद्योग में थोड़ी परेशानियों का सामना करना पड़ गया था। लेकिन आधुनिककाल में अंग्रेजों ने इस उद्योग को नष्ट कर दिया था। सरकार द्वारा इस उद्योग को नई समृद्ध स्थिति पर पहुंचने के लिए स्वतंत्रता के बाद कई कार्य किये गये। आज के युग में इस व्यवसाय को नई उपलब्धि पर पहुँचने के लिए विशेष ध्यान देने के साथ–साथ लोगों को इसके प्रति जागरूक किया जा रहा है। ताकि लोग हाथों के बुने कपड़ों को महत्व दे जो कि शरीर के लिए लाभकारी है और इस वजह से हाथों से बने उत्पादों की ओर दिलचस्पी बढ रही हैं। भारत देश में वस्त्रों के प्रयोगों का प्रचार अतियात बुराना माना जाता है। प्राचीनकाल में वस्त्रों का ज्ञान, मूर्तियों और साहित्य द्वारा प्राप्त होता है। वस्त्रों को पहनने से बाह्य शिष्टाचार और सभ्यता का पता चलता था तथा सिन्धु घाटी सभ्यता में वस्त्रों का प्रयोग प्रचलित हुआ था। ऐसा कहा जाता है कि उस युग के मोहनजोदड़ो से प्राप्त स्त्रियों और पुरूषों की मूर्तियों को देखने से वस्त्रों की कताई और बुनाई का पता चलता है। जिसके द्वारा सूत कातने के तकुये मिले हैं। सूती कपड़े का टुकड़ा जो कि चांदी के पात्र में मिला था। इसके वैदिक युग में भी वस्त्रों का प्रचुर प्रयोग बताया है तथा उत्तम उस्त्र को धारण करने वाले को सुवासस् कहते थे।

पिलखुवा – कृषि के बाद भारत में एक मात्र ऐसा उद्योग है, वह है परम्परागत वस्त्र उद्योग। भारत में यह दूसरे स्थान पर आता है। कुशल और अकुशल दोनों प्रकार के कारीगरों के लिए यह उद्योग पूर्ण रूप से रोजगार उत्पन्न करता है। भारत देश में लाखो लोग इससे प्रत्यक्ष रूप से लाभान्वित हो रहे है। भारत के नक्षे में पिलखुवा का नाम वस्त्र उद्योग के लिए प्रसिद्ध हैं। पिलखुवा हापुड़ का एक कस्बा है। यह कस्बा सन् 2011 से पहले गाजियाबाद जिले का हिस्सा था। अब इसे हापुड़ में शामिल कर दिया गया है। यह जी0टी0 रोड पर दिल्ली से 45 किलोमीटर पूर्व में स्थित है। इसके पूर्व में हापुड़, पश्चिम में गाजियाबाद, उत्तर में मोदीनगर व दक्षिण में बुलन्दशहर है। यह नगर दिल्ली मुरादाबाद रेलवे लाइन पर स्थित है। जिला मुख्यालय से 10 किलोमीटर की दूरी पर है। पिलखुवा अपने कपड़ा उत्पादन, में विशेष रूप से बेडशीट के लिए प्रसिद्ध है। ऐसा माना जाता है कि ब्रिटिश युग में इस शहर को पिलखुवा नाम मिला था। इसके पीछे एक दिलचस्प कहानी भी प्रचलित है। उस समय वहाँ एक हाथी था, जिसका नाम 'पीआईएल' हुआ करता था। जब वह खो गया था तब रानी के सैनिक उस हाथी अर्थात् 'पीआईएल' नामक हाथी की तलाश में इधर से उधर भटक रहे थे। तब गाँव के लोग सैनिकों से पूछते कि 'क्या हुआ'? तो सैनिक जवाब देते थे कि 'पीआईएल' खो गया। इस वाक्य का अपभ्रंश होते होते वह 'पिलखुवा' हो गया और इस शहर का नाम हमेशा के लिए भारत के नक्षे में पिलखुवा हो गया। पिलखुवा का विस्तार और औद्योगीकरण सन् 1977 में लाला नामक व्यक्ति के द्वारा पेट्रोल पम्प की

स्थापना के साथ शुरु हुआ था। स्वर्गीय जनाब मोहम्मद इब्राहिम साहब, जिन्होंने कानपुर से प्रिंटिंग में डिप्लोमा किया था, उन्होंने ब्लॉक प्रिंटिंग और स्क्रीन प्रिंटिंग सहित नई प्रिंटिंग प्रौद्योगिकियों की शुरुआत की थी। उन्होंने शहर में रोजगार प्रदान किया और शहर को सुविधाजनक बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। एक अन्य कहानी के अनुसार ऐसा माना जाता है कि पिलखुवा में वस्त्र उद्योग की शुरूआत सन् 1970 में कलानौर से आकर बसे नत्थू राणा के दो पुत्र कल्याण सिंह व निहाल सिंह ने की। यहाँ आने के बाद इन दोनों भाईयों ने इस्लाम-धर्म अपना लिया था। कन्खली झील के किनारे आबाद हुआ पिलखुवा करीमुल्ला व रहीमुल्ला राणा के नाम से मशहूर हुआ। इन दो भाईयों की संताने छपाई का कार्य करने की वजह से छीपी कहलाती हैं। पिलखुवा गांधी के सपने 'खादी' के लिए भी प्रसिद्ध है। पिलखुवा प्राय: छोटे उद्योगों के लिए जाना जाता है। कैनवास वस्त्र निर्माण उद्योग की शुरूआत पहली बार यहीं पर हैण्डलूम जैकार्ड से सन् 1969 में स्वर्गीय श्री नरेन्द्र प्रताप गुप्ता द्वारा शुरु की गई। स्थानीय लोगों से यह पता चला है कि अब इनके बेटे कार्यरत हैं। यहाँ छोटे उद्योगों के साथ कुछ बड़े निर्माता विदेशों में अपने उत्पाद बेचने हेतु भी विविध उत्पादों का निर्माण करते हैं। इस शहर को उसी कारण से कपड़ों के शहर के रूप में भी जाना जाता है। चूंकि यह शहर दिल्ली से लगभग 35 किमी0 दूर है, यह एन0सी0आर0 में स्थित हैं, इसलिए अब उच्च शिक्षा संस्थानों के लिए एक उभरती जगह है। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार पिलखुवा की जनसंख्या 83,737 है।

पिलखुवा के वस्त्र निर्माण उद्योग की विशेषताएँ-पिलखुवा भारत की हथकरघा और छपे हुए कपड़े की सबसे बड़ी मंडियों में से एक है। पिलखुवा में खासतौर पर कपड़े की बुनाई, छपाई, रंगाई, धुलाई, सिलाई आदि का ही कारोबार होता है। पिलखुवा के बने हुए कपड़े भारत के कोने-कोने में भेजे जाते हैं। यहाँ की हैण्ड ब्लॉक प्रिंट की चादरें भारत के बाहर भी एक्सपोर्ट होती हैं। यहाँ चादरें, तकियों की खोलियाँ, रजाई, तौलिये और अस्तर के कपड़ों का व्यापार भी होता है। आमतौर पर शादियों के सीजन में अच्छा व्यापार होता है और नवम्बर इसका सर्वश्रेष्ठ समय है। यहाँ कुछ लोग दूसरे राज्यों से भी आर्डर लेकर कार्य करते हैं। स्थानीय लोगों के अनुसार करीब 15 हज़ार लोग व्यापार के सिलसिले में पिलखुवा से दूसरे राज्यों में भी जाते हैं। पिलखुवा बहुत सारे हैंण्डलूम बुनकरों के लिए भी बड़ा बाजार है। आस-पास के कई कस्बों जैसे सरघना, मुरादनगर और मेरठ से यहाँ काफी माल आता है। कुछ बुनकर गंगा पार 100 किलोमीटर दूर बिजनौर के नेहरटौर गाँव से भी पिलखुवा में अपने उत्पाद बेचने आते हैं, हर बुधवार को यहाँ हाट में ये बुनकर कच्चा (ग्रे क्लॉथ) कपड़ा लेकर आते हैं। जो बाद में चादर और तकिये की खोलियाँ और अन्य कपड़े बनाने के काम आता है। कुछ व्यापारी पावरलूम पर कैनवास कपड़ा बनाते हैं। यह बैग तथा ट्रकों की अस्थाई लचीली छत बनाने के काम आता है। एक समाचार-पत्र के अनुसार श्री अग्रवाल के मुताबिक यहाँ 2500 पावरलूम इकाईयाँ हैं और 250 कारखाने हैं। जहाँ कच्चे (ग्रे क्लॉथ) कपड़े पर छपाई कर चादरें, तकिये के कवर आदि बनाए जाते हैं। यहाँ पावरलूम पर काम करने वाले परिवार के सभी सदस्य मिलकर हर महीने 9-10 हजार रुपये महीना कमाते हैं।

पिलखुवा की विशेष बेडशीट

ब्लॉक प्रिंटिंग और स्क्रीन प्रिंटिंग

हैंण्डलूम बुनकर

कैनवास वस्त्र निर्माण

अभिकल्पन

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

अभिकल्पन

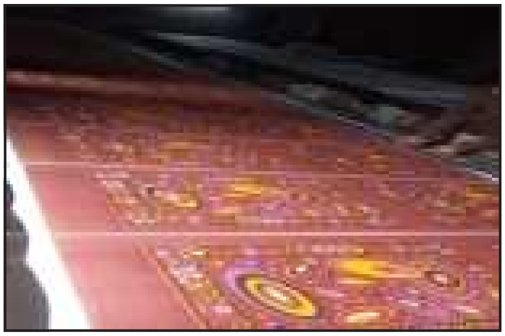

शोध अभिकल्पन (वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक) अध्ययन क्षेत्र

पिलखुवा, जिला गाजियाबाद

प्राथमिक समंक संकलन — द्वितीय समंक संकलन

प्रतिदर्श

उद्देश्यपूर्ण पद्धति (20 व्यापारी) — सुविधाजनक यद्दच्छ संख्या विधि पद्धति (20 हस्तशिल्पी)

समस्याऐ/संभावनाऐ- मणिपुर हथकरघा बुनाई उद्योग सांस्कृतिक और पारंपरिक व्यवसाय के रुप में चल रहा है। हालांकि बुनाई, आय और रोजगार का एक पारंपरिक स्त्रोत है, लेकिन युवा पीढ़ी बुनाई करने में कम रुचि दिखा रही है। यह आधुनिकीकरण का प्रभाव है तथा स्थानीय लघु कपड़ा उद्योग के सामने आने वाली चुनौतियों का विश्लेषण किया है। यह उपयोग किए जाने वाले समाधान और समस्या समाधान विधियों की भी पड़ताल करता है। लेखक ने इस उद्योग के व्यवस्थित और श्रेणीबद्ध प्रणाली को दर्शाया है। सबसे बड़ी समस्या वित्त की बताई गयी है। इसके अलावा ज्ञान की कमी, व्यापार के लिए आवश्यक संचार, संभाषण कला, श्रमिकों की कमी, मार्केटिंग आदि की समस्याओं को उजागर किया है। बुनकरों द्वारा स्वतंत्र रुप से कार्य करने पर कच्चे माल, वित्त की कमी , उचित रंगाई सुविधाओं की कमी और बिजली की असमान आपूर्ति के अभाव के कारण कम उत्पादकता की समस्याओं का सामना करना पड़ा। विनिर्माण इकाईयों के लिए काम करने वाले बुनकरों को काम करने की जगह, आधुनिक उपकरणों की अनुपलब्धता और माँग की कमी, का सामना करना पड़ा और हथकरघा बुनाई इकाइयों की स्थिति का अध्ययन करके पता चला की अध्ययन का मुख्य उद्देश्य हथकरघा बुनाई इकाइयों की स्थिति उनके सेटअप, कामकाज और उनके सामने आने वाली समस्याओं की पहचान करना था। परिणाम द्वारा पता लगाया गया है कि बुनकरों की स्थिति दयनीय थी। वे अशिक्षा, अपर्याप्त वित्त, विपणन बाधाओं और अपर्याप्त सुविधाओं के कारण विकलांग थे भारतीय कपड़ा उद्योग अत्यधिक असंगठित और श्रम प्रधान है। कपड़ा उद्योग में असंगठित क्षेत्र, लघु और मध्यम उद्योगों का वर्चस्व है। विदेशी निवेशक कपड़ा उद्योग में कोई भी निवेश नहीं कर रहा है, जो कि एक चिन्ता का विषय है। सरकार की नीतियाँ इस उद्योग के पक्ष में नहीं है। वर्तमान स्थिति में कंपनियाँ अपने उत्पादों को सर्वश्रेष्ठ होने के साथ, बेंचमार्क करने, गुणवत्ता और उत्पादन प्रक्रियाओं को अपग्रेड करने की माँग कर रही है। भारतीय कपड़ा उद्योग को अंतर्दष्टि प्रदान करने की कोशिश कराता है और उभरते रूझान के असवरों, चुनौतियों को समझाने का प्रयास कराता है। पता चला है कि केरल में पद्मा सलियास समुदाय ने कपड़ा उत्पादन करने के लिए कताई और बुनाई प्रक्रिया का इस्तेमाल किया। इस जाति के दो समुदाय, इदकई और वेलकई क्रमश: स्पिनरों और बुनकरों का प्रतिनिधित्व करते थे। केरल के बुनकरों द्वारा हथकरघा के माध्यम से मुंडू (साउथ केरल धोती) थीरथु, (सफेद सूती स्नान तौलिया) वेशी (सूती धोती) और पुडवा (साड़ी) जैसी वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है। केरल में अब भी हाथ से बुने हुए कपड़े उनके स्थायित्व, आकर्षक, रंगों और परिशिष्ट के लिए जाने जाते हैं। पारम्परिक पिट करघे को तकनीकी परिवर्तन के कारण फ्रेम वाले करघे के आगे बदल दिया गया है। इससे कुटीर उद्योग और कारखानों के पैटर्न में भी बदलाव हुआ है।

परिणाम एवं विश्लेषण-प्रस्तुत शोध पत्र पिलखुवा के व्यापारी और कामकाजी स्त्री-पुरूषों के लिए है। यह प्रश्नपत्र लोगों द्वारा पिलखुवा व्यापार के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करने के लिए तैयार किया गया है। प्रश्नपत्र को दो प्रकार से तैयार किया गया है जिसमें पहले प्रश्नपत्र की 20 प्रतिदा व्यापारी व दूसरे प्रश्नपत्र की 20 प्रतिदा कारीगरों द्वारा भराया गया है। प्रतिवादियों की आयु 25 वर्ष से 50 वर्ष से अधिक है। इस व्यवसाय से जुड़े लोग (अमूमन) अधिकतर हिन्दू धर्म से है तथा इसमें पुरूष व्यापारियों व कारीगरों की संख्या अधिक पायी गयी है, पुरूष कारीगर 100 प्रतिशत व पुरूष व्यापारी 95 प्रतिशत है तथा महिलायें व्यापारियों की भागीदारी 5 प्रतिशत है। व्यापारी वर्ग का शैक्षिक स्तर भिन्न-भिन्न है जिसमें 22 प्रतिशत अनपढ, 28 प्रतिशत प्राथमिक व 33 प्रतिशत स्नातक उत्तीर्ण है। कारीगर वर्ग में 38 प्रतिशत लोग अनपढ, 29 प्रतिशत प्राथमिक शैक्षिकता वाले व 33 प्रतिशत उच्च माध्यमिक उत्तीण है। पिलखुवा व्यवसाय में 40 प्रतिशत व्यापारी एकल परिवार के तथा 60 प्रतिशत संयुक्त है तथा कारीगर वर्ग 85 प्रतिशत कारीगर विवाहित व 15 प्रतिशत अविवाहित है। व्यापारी वर्ग की परिवार संरचना 49 प्रतिशत 5 सदस्यों तक है तथा 43 प्रतिशत 5 से 10 सदस्यों की है। 80 प्रतिशत कारीगर वर्ग के परिवार के सदस्यों की संख्या 5 से कम है तथा 20 प्रतिशत कारीगरों के परिवार के सदस्यों की 5-10 संख्या में है। 64 प्रतिशत कारीगरों की मासिक आय 10,000 रूपये, 21 प्रतिशत कारीगरों की मासिक आय 5000-10000 रूपये व केवल 15 प्रतिशत कारीगरों की आय 10000-20000 रूपये तक है। 70 प्रतिशत व्यापारी वर्ग बुनाई व छपाई दोनों प्रकार का व्यवसाय करते हैं वही 25 प्रतिशत बुनाई तथा 5 प्रतिशत छपाई के व्यवसाय में संलग्न है। कारीगर वर्ग के बच्चों का शैक्षिक स्तर कुछ विचित्र है जहाँ 40 प्रतिशत कारीगर वर्ग के बच्चे अपनढ, 40 प्रतिशत प्राथमिक शिक्षा प्राप्तकर्ता है तथा 20 प्रतिशत स्नातक शिक्षा को प्राप्त कर उत्तीर्ण है। कारीगर वर्ग के अन्य सदस्य भी कार्य में संलग्न है जिसमें से 42 प्रतिशत नौकरीपेश व 24 प्रतिशत अन्य काम में संलग्न है तथा 28 प्रतिशत पढ़ाई में संलिप्त है। कारीगर वर्ग में 37 प्रतिशत कारीगर बुनाई, 37 प्रतिशत छपाई, 16 प्रतिशत रंगाई व 10 प्रतिशत डिजाइन करने का कार्य करते हैं। व्यापारी वर्ग में 82 प्रतिशत केवल रंगाई से भी उत्पाद बनाये जाते हैं। पिलखुवा व्यवसाय के 81 प्रतिशत लोग पैतृक व्यवसाय कर रहे हैं। वहीं 19 प्रतिशत व्यापारी इस व्यवसाय में नये हैं। इनमें से 41 प्रतिशत व्यापारी 5-10 वर्षो से यह कार्य कर रहे हैं, 28 प्रतिशत व्यापारी 1-5 वर्ष से तथा 17 प्रतिशत 20 वर्षो से अधिक

समय से कार्यरत है वहीं 10-20 वर्षो से 14 प्रतिशत व्यापारी यह व्यवसाय आगे बढ़ा रहे हैं, 63 प्रतिशत व्यापारियों ने इस व्यवसाय का प्रशिक्षण नहीं लिया है वहीं 37 प्रतिशत व्यापारियों ने इस व्यवसाय के लिए प्रशिक्षण लिया है। 70 प्रतिशत व्यापारी वर्ग में व्यवसाय के लिए प्रेरणा स्त्रोत पूर्वज व पैतृक सदस्य रहे हैं वही 15 प्रतिशत स्वच्छा से यह व्यवसाय कर रहे हैं। 5 प्रतिशत व्यापारी घर चलाने के लिए इस व्यवसाय से लाभावित है वहीं 10 प्रतिशत व्यापारी इस कला को आगे बढ़ाने के लिए संलग्न है। 48 प्रतिशत व्यापारी वर्ग के परिवार में पिता, 26 प्रतिशत भाई, 21 प्रतिशत व 5 प्रतिशत रिश्तेदार सम्मिलित है। व्यापारी वर्ग के परिवार में 47 प्रतिशत परिवार के सदस्य यही कार्य व 47 प्रतिशत परिवार के सदस्य यही कार्य व 47 प्रतिशत परिवार के सदस्य अन्य कार्य करते हैं वही 6 प्रतिशत पढ़ाई करते हैं। 100 प्रतिशत कारीगर यह कार्य फैक्ट्री में ही करते हैं। सभी 100 प्रतिशत व्यवसाय इस कार्य को समाधानी से समझते हैं, 81 प्रतिशत व्यापारियों का मानना है कि इस कार्य को अन्य लोग भी पसन्द करते हैं, वहीं 19 प्रतिशत व्यवसायी इस व्यवसाय से अहसमत है। 65 प्रतिशत व्यापारी इस व्यवसाय को समाज के उच्च स्तर पद, 28 प्रतिशत मध्यम स्तर व 7 प्रतिशत व्यापारी इसे निम्न स्तर पर स्थान पर देखते हैं। 71 प्रतिशत कारीगरों ने व्यवसाय के लिए प्रशिक्षण लिया है तथा 29 प्रतिशत कारीगरों को पहले से यह कार्य आता था, 45 प्रतिशत कारीगर इस कार्य को घर चलाने के लिए 45 प्रतिशत आय बढ़ाने के लिए तथा 10 प्रतिशत इसे समय व्यतीत करने के लिए करते हैं। इस व्यवसाय के लिए 70 प्रतिशत व्यापारी धागा काशीपुर से व 30 प्रतिशत अन्य स्थान से खरीदते हैं। धागे की खरीद 82 प्रतिशत व्यापारियों द्वारा प्रत्यक्ष रूप ये की जाती है वहीं, 18 प्रतिशत व्यापारियों द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से धागे पूर्ण रूप से सभी व्यापारियों द्वारा लच्छी रूप में खरीदा जाता है तथा सभी व्यापारी इसे ग्रे में ही खरीदते हैं। पिलखुवा प्रिंटिंग और बुनाई से 43 प्रतिशत बेडशीट, 31 प्रतिशत लोई, 19 प्रतिशत पिल्लोकवर व 7 प्रतिशत दरी के रूप में उत्पाद बनते हैं। 71 प्रतिशत कारीगर वर्ग को मजदूरी प्रतिमाह तथा 29 प्रतिशत कारीगरों को प्रतिघंटा प्राप्त होती है। इस कार्य से 42 प्रतिशत कारीगरों की कमाई 10-20 हजार रू. तक, 35 प्रतिशत कारीगरों की कमाई 5-10 हजार रूपये तक, 14 प्रतिशत कारीगरों की कमाई 1-5 हजार रूपये तक तथा 9 प्रतिशत कारीगरों की कमाई 20,000 रूपये से अधिक है। 100 प्रतिशत कारीगरों का मानना है कि उनकी इस व्यवसाय में कुशलता है। इस कार्य के संदर्भ में 50 प्रतिशत कारीगर अपना कार्य सुझाव देते हैं वहीं, 40 प्रतिशत सुझाव नहीं देते हैं, 10 प्रतिशत कारीगर कभी-कभी कार्य सुझाव दिये जाते हैं। पिलखुवा व्यवसाय से जुड़े 80 प्रतिशत कारीगर इस व्यवसाय के साथ अन्य कार्य नहीं करते हैं वहीं 20 इस व्यवसाय के साथ-साथ अन्य कार्य को करना पसन्द करते हैं। 86 प्रतिशत कारीगर इस कार्य से संतुष्ट है वहीं 14 प्रतिशत कारीगर असंतुष्ट है। पिलखुवा व्यापार के कारीगर आय से बचत करने में असमर्थ है तथा 25 प्रतिशत कारीगर करीब 10-20 प्रतिशत ही बचत कर पाते हैं। 75 प्रतिशत कारीगरों ने माना है कि इस काय से कमाई मे अंतर (बढ़ोत्तरी) हुई है, 25 प्रतिशत कारीगरों ने बताया है कि इससे आय में कोई अंतर नहीं हुआ है। 90 प्रतिशत करीगरों ने आय में कटौती का अनुभव किया वहीं 10 प्रतिशत कारीरागें ने कटौती का अनुभव नहीं किया। 93 प्रतिशत कारीगरों के कार्य व आमदनी का मूल्यांकन निश्चित है वहीं 7 प्रतिशत कारीगरों के कार्य व आमदनी का मूल्यांकन कार्य कुशलता पर आधारित है।

विचार विमर्श - पिलखुवा में काम करने वाले कारीगर इस व्यवसाय को कुशलता पूर्वक करते हैं तथा कारीगरों को सुझाव भी दिये जाते हैं।इस व्यवसाय से जुड़े लोग कोई भी अन्य कार्य नहीं करते हैं क्योंकि कारीगर अपने कार्य से पूरी तरह संतुष्ट है। इस कार्य में कारीगरों की आय में भी बढ़ोत्तारी हुई है तथा कारीगरों की आमदनी का मूल्यांकन निश्चित रूप से तय है।पिलखुवा में प्रिंटिंग और बुनाई से बेडशीट, लोई, पिल्लोकवर, दरी उत्पाद बनते हैं कारीगरों को मजदूरी प्रतिमाह मिलती है जिसमें कारीगरों की 20,000 रूपये से अधिक है। बुनाई करने के लिए व्यापारी धागा काशीपुर से खरीदते हैं धागों को प्रत्यक्ष रूप से खरीदा जाता है। धागों को लच्छी रूप में खरीदा जाता है तथा सभी व्यापरी इसे ग्रे अवस्था में खरीदते हैं कारीगर इस व्यवसाय को शुरू करने से पहले प्रशिक्षण लेते हैं सभी ही कारीगर इस कार्य को फैक्ट्री में ही करते हैं इस कार्य को समाधानी पूर्वक समझते हैं, समाज में इस कार्य को पसन्द किया जाता है और समाज में इस व्यवसाय को उच्च स्तर पद मिला हुआ है। व्यापारी वर्ग के रिश्तेदार भी इस व्यवसाय से जुड़े हुए हैं। व्यापारी वर्ग में अधिकतर का व्यवसाय पैतृक है। जो कि 20 वर्षो से अधिक पुराना है। जो इस व्यवसाय में पुराने है इन्होंने प्रशक्षिण नहीं लिया है। जिन्होंने ये व्यवसाय कुछ वर्षो पहले शुरू किया है उन लोगों को प्रशिक्षण लेने की आवश्यकता है, ज्यादातर लोगों का मानना है कि इस व्यवसाय के प्रेरणा स्त्रोत उनके पूर्वक है और यह लोग इस व्यवसाय से लाभान्वित होकर इस कला को आगे बढ़ा रहे हैं। इस व्यवसाय में व्यापारी और कारीगरों की आयु 25 वर्ष से 50 वर्ष से अधिक है, ज्यादरतर हिन्दू लोग ही इस व्यवसाय से जुड़े हैं महिलाओं की भागीदारी व्यवसाय के प्रति कम है कारीगर वर्ग में अधिकतर लोगों का शैक्षिक स्तर अनपढ़ है। जो विवाहित है और अपने परिवार के साथ एकल रहते हैं। कारीगर लोग इस व्यवसाय से प्रति माह 10,000 से 20,000 हजार रूपये तक कमा लेते हैं। इन लोगों के परिवार के अन्य सदस्य भी इस कार्य को करना पसन्द करते हैं। कारीगर बुनाई, छपाई, रंगाई व डिजाइन बनाने का कार्य करते हैं। व्यापारी वर्ग में ज्यादातर व्यापारियों के परिवार की रचना संयुक्त है। व्यापारी वर्ग में बुनाई छपाई दोनों प्रकार का व्यवसाय होता है। कुछ व्यापारी रंगाई द्वारा भी उत्पाद बनाते हैं।

निष्कर्ष - इस शोध पत्र द्वारा पिलखुवा क्षेत्र में फल-फूल रहे वस्त्र उद्योग की एक सम्पूर्ण विस्तृत जानकारी सामने आयेगी। इस से आने वाली पीढ़ी को नये अध्ययन के अवसर प्रदान होंगे। पिलखुवा के वस्त्र उद्योग पर निर्भर व्यापारी वर्ग तथा इस उद्योग से सम्बन्धित अन्य लोग भी लाभान्वित होंगे। पिलखुवा में वस्त्रों से सम्बन्धित कई विधियों से जैसे - बुनाई, रंगाई, छपाई एवं ब्लॉक प्रिंटिंग कार्य होते हैं। यहाँ की आर्थिक और सामाजिक स्थिति में वर्तमान में सुधार आ रहा है तथा आधुनिकीकरण की तरह पहल हो रही है। व्यवसाय में व्यापारी और कारीगरों के सम्बन्धों में उल्लेखित समस्याओं की भविष्य में विस्तृत जानकारी इस शोध पत्र द्वारा सामने आयेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Aboutalebian ,S., & Gauri, F.N.(2018).Emerging Trends, Opportunities And Challenges In Textile Industries In India. *International Journal Of Academic Research And Development*,3(3) ,292-295
2. Chavan,R.B.(2001).Indian Textile Industry-Environmental Issues. *Indian Journal Of Fiber & Textile Research*, 26, 11-12

3. Choudhury , A.(2006).Textile Preparation And Dyeing. New Delhi. Mohan Primlani.
4. Corbman, B.P.(1983). Textile Fiber To Fabric (6th ed.).
5. Dedhia, E.,& Hundekar, M.(2008). Ajrakh Impressions And Expressions : A Jaurney Of Antique Traditional Indian Textile “ Printing With Natural Dyes º. (1ST ed.). Mumbai.
6. Deo,H.T.(2001).Ecofriendly Textile Production. *Indian Journal Of Fiber & Textile Research*, 26, 61-73
7. Foundation,A.(2009). Sanganer Traditional Textile – Contemporary Cloth : Anokhi Museum Of Hand Printing . Jaipur, India.
8. Ganguly ,D. & Amrita. (2013). A Brief Studies On Block Printing Process In India. *National Institute Of Fashion Technology*. Retrieved From https://www.researchgate.net/publication/292876526
9. Gill, P. (2014) Revival Of Durries Through Product Development (unpublished).Department Of Clothing & Textile
10. Hada , J.S.(2015). Dyeing With Natural Dyes: A Case Study Of Pipad Village, District Jodhpur , Rajasthan , DOL:10.13140/RG.2.1.5049.3204
11. Kamble,P.A., & Suryavanshi,A.G. A Study On Growth Of Decentralizad Powerl Loom Sector In India. Accessed on September 17,2019, Retrieved From https://www.researchgate.net/publication/310240321_A_STUDY_ON_GRO WTH_OF_DECENTRALIZED_POWERLOOM_SECTOR_IN_INDIA
12. Karolia, A. & Amrita. (2008). Ajarkh, The Resist Printed Fabric Of Gujarat. *Indian Journal Of Traditional Knowledge*, 7(1), 93-97
13. Kaur,R., & Brar,P.(2015). A Brief Review Of Block Printing In India, With A Comparative Analysis Of Ajrak And Sanganer Styles of Printing , *Asian Resonance*, 4(2), 96-100
14. Khatoon, R., Das,A.K., Dutta, B.K., & Singh, P.K.(2014). Study Of Traditional Handloom Weaving By The Kom Tribe Of Manipur. *Indian Journal Of Traditional Knowledge*, 13(3) , 596-599
15. Kurup, KKN.(2008). Traditional Handloom Industry Of Kerala. *Indian Journal Of Traditional Knowledge*, 7(1), 50-52
16. Maity, S., Singha, K., Singha, M. (2012). Recent Developments in Rapier Weaving Machines In Textile. *American Journal Of Systems Science*, 1(1), 7-16, DOI: 10.5923/j.ajss.20101.02
17. Mohanty,B.C., Mohanty,J.P.(1983).Block Printing And Dyeing Of Bagru, Rajasthan : Study Of Contemporary Textile Crafts Of India. Ahmedabad, India. H.N.Patel.
18. Naik, S.D.(2012). Folk Embroidery And Traditional Handloom Weaving .New Delhi .S.B Nangia.
19. Navi,S.(2018,Decembera 9).50 Day Of Note Ban Handloom City Pilkhuwa. Retrieved From http: //hindi.catchnews.com/India/50 day_of_note_ban_handloom_city_pilkhuwa_lies_deserted_traders_angry_1483042780.htmi
20. Needles, H.L.(2001). Textile Fibers Dyes, Finishes And Processes (1st ed.).Delhi, India. A.K. Jain.
21. Plikhuwa.(2018).Retrieved December 8, 2018, From Wikipedia : http://hi.wiki/plikhuwa
22. Sengupta, S., Debnath, S., $ Bhattacharyya, G. (2008).Development Of Handloom For Jute Based Diversified Fabrics Modifying Traditional Cotton Handloom. *Indian Journal of Traditional Knowledge*, 7(1), 204- 207
23. Slater, K.(2003).Environmental Impact f Textile : Production, Processes And Protection (1st ed.). Wood head Publishing, North America.
24. Tambi, S. (2013). The Challenges Faced By SMEs In The Textile Industry: Special Reference To Hand Printing Enterprises In Jaipur. *Global Journal Of Management And Business Studies*, 3(7), 741-750
25. Teri,(2016).Energy Profile : Panipat Textile Cluster (Rep.).Accessed on December 20,2018, Retrieved From http://sameeeksha.org/pdf/clusterprofile/PanipatTextileCluster.pdf
26. Textile Industry In India.(2019). Retrieved March 14, 19,From Wikipedia: http://en .wikipedia.org/wiki/Textile_Industry_In_India
27. Thames & Hudsan. (2008). Indian Textiles (1st ed.).High Holborn , London.
28. बेला,डॉ. भार्गव,(2012),वस्त्र विज्ञान एवं धुलाई कला (चतर्थ संस्करण),जयपुर।
29. माथुर, कमलेश,(1997),हस्त्रशिल्प कला के विविध आयाम (प्रथम संस्करण), जयपुर।
30. माथुर,कमलेश,(2010),पारम्परिक कला एवं लोक संस्कृति,जयपुर।
31. पोटर,डेविड,एम,(2004),वस्त्र उघेग: तन्तु से वस्त्र, दिल्ली।
32. वर्मा,डॉ. प्रमिला,(2006),वस्त्र–विज्ञान एवं परिधान (उन्नीसवाँ संस्करण,),भोपाल,मध्यप्रदेश।
33. भगत,आशा,(1995),राजस्थान: गुजरात एवं मध्यप्रदेश की छपाई कला का सर्वेक्षण, राधा पब्लिकेशंस, नईदिल्ली।
34. गुर्जर,शर्मिला,(2003),वस्त्र रंगाई तकनीक(प्रथम संस्करण), जयपुर।

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Sustainable Developmental Goals and Women Empowerment

Mrs. Seema Naik*

***Assistant professor (Botany) Govt. Girls college, Barwani (M.P.) INDIA**

Abstract - This article is related with the integration of sustainable developmental goals and women empowerment. Sustainable developmental goals provide the equal opportunity of education and other facility to women for economically and socially development. it is also helpful in the development of the leadership skill in women. in this way, with the empowering of women we can achieve the target of sustainable goals, because women is a centre of home and society so she can play significant role in management of nutrition, clean environment, economy, and peace through her eco friendly activity.

Keywords: Sustainable development, SDGs, Women Empowerment, Opportunity.

Introduction - Sustainable Development goals (SDGs) are adopted by United Nations members in 2015, with the purpose of save earth planet and create a peaceful environment for the overall development of human being. these are 17 Goals which are, SDG 1- No poverty, SDG 2- Zero hunger, SDG 3- Good health and well-being, SDG 4- Quality education, SDG 5- Gender equality, SDG 6- Clean water and sanitation, SDG 7- Affordable and clean energy, SDG 8- Decent work and economic growth, SDG 9- Industry, innovation and infrastructure, SDG 10- Reduced inequalities, SDG 11- Sustainable cities and communities, SDG 12- Responsible consumption and production, SDG 13- Climate action, SDG 14- Life below water, SDG 15- Life on land, SDG 16- Peace, justice, and strong institutions, and SDG 17- Partnerships for the goals. United nation member decide to achieve these goals up to 2030. That's why it is also known as agenda 2030, and the objective is to create the peace and prosperity on the earth with the gender equality.

Success of these agenda is depending on the development of women, because women represent the half population of the world and play the significant role as a workforce in the various field like education, agriculture, industry, cottage industry etc. but they are having less opportunity to make policy or manage the things according to their wisdom and skill. so through the empowering of women we can change the scenario and able to achieve the target of SDGs.

Women empowerment through Sustainable Goals: The core objective of the SDGs is the Social development of the human being along with their economic growth and quality environment. But the main challenge in achieving the target is the half workforce (women) of the population. Because Women are suffering from malnutrition, home violence, gender indiscrimination, and getting less opportunity of quality education. so they are unable to give their contribution in the sustainable development. Michelle Obama once said, "No country can ever truly flourish if it stifles the potential of its women and deprives itself of the contributions of half of its citizen". So it is necessary to emphasis on the development of the women because women are not only the centre of their family but Society also. That's why SDGs 5 is most important to get gender equality. if women get equal opportunities then she can play significant role to achieve other SDGs. because the gender inequality hinders and obstructs global sustainable development and achievement of SDGs.(Begum Sertyesikisk, 2023). An increasing number of studies indicate that gender inequalities are extracting high economic costs and leading to social inequities and environmental degradation around the world (Candice Stevens, 2010) that's why it is very important to uplift the women and give them quality education without any discrimination. according to SDGs 4. Women should have the equal opportunities to get technical and management and other education as per her choice. Some workshop and educational programme should be organized for the upliftment of women confidence and leadership skill. Investing in girls education give the fruitful social impact. SDGs 3 ensure the medical facility and nutrition availability for good health and well being. Healthy and strong women can contribute in the upliftment of society. having an equal representation of Women will not only be a catalyst for economic growth, but also increase the quality of

innovations in India with inclusion of a diverse perspective in STEM (science, technology, engineering, Math) (Anand. p., 2022).

Role of Women in Achieving the sustainable Goals: Educated girls will become a stronger part of the workforce and play significant role in economical growth; they are good financial manager so that they can help society from overcome the poverty. In this way they will help to achieve the first SDGs (No poverty). Women are mainly responsible for meal and nutrition in their family, if she is having the proper knowledge of nutrition then she can contribute to end hunger (nutrient deficiency). Rural women give her contribution in agriculture so that they can promote sustainable agriculture and ensure the food security and improved nutrition, and helps to attain the target of SDGs 2. Clean environment and sanitation, affordable and clean energy, and climate change is the most important SDGs 6,7,13. and these targets cannot be achieve without the help of women, because the women are directly involve in the consumption of the energy, sanitation and environment through their household work. training and education motivate them to use affordable, and sustainable modern energy resources as well as environmental awareness initiate them to sustainable use of natural resources, which may be helpful to achieve the said targets. Women are naturally cooperative, innovative, productive and stable work force that's why then can work for achieving the target of SDGs 8, 9, 11, 12 and 17. main cause of the changing environment and degradation are modern developmental processes, to overcome this problem Green economy is the new concept, in which all the developmental programme should be eco friendly, for an example use of renewable energy source etc. women can enhance these concept through their eco friendly nature and saving the biodiversity with her aesthetic value.

Conclusion: We concluded that the sustainable goals empowering the women and provide the equal opportunity to work for the society and wellness of environment. Through the Women empowerment we can use her confidence and leadership skill, and problem solving approach to achieve the various sustainable goals. That's why for the sustainable development we should emphasis on the Equity and Equality. And provide the equal opportunity to women for the maintenance of peace and prosperous on the earth.

References:-

1. Sertyesilisik B.,(2023), "Women Empowerment as a Key to Support Achievement of the Sustainable Development Goals and Global Sustainable Development", Chakraborty C. and Pal D.(Ed) Gender Inequality and its Implication on Education and Health, Emerald Publishing Limited, leeds, pp 153-163.
2. Stevens C.,(2010), "Are women the key to Sustainable development?", Sustainable Development insights, pp. 1-8.
3. Anand P., (2022), "Role of women in integral to a sustainable future", Blog at Voices, India, TOI.
4. Women and sustainable development goals, United Nations entity for gender equality and the empowerment of women.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

A Study on Blue Bull (*Boselaphustragocamelus*) Conflict in Jhalawar (Rajasthan)

Dr. Sapna Bhargava* Somlata**

*Deptt. of Wildlife Science, University of Kota, Kota (Raj.) INDIA
** Deptt. of Wildlife Science, University of Kota, Kota (Raj.) INDIA

Abstract - This research paper explores the dynamics of human-blue bull conflict in the Jhalawar district of Rajasthan, India. The study aims to investigate the patterns of blue bull menace and the types of conflicts arising between humans and blue bulls in the region. Data was collected through surveys, interviews, and field observations. A sample size of 150 respondents was selected using systematic random sampling techniques. Findings reveal that habitat destruction, agricultural expansion, illegal grass collection, and overgrazing by livestock are significant contributors to the conflict. The paper suggests various mitigation strategies to reduce human-blue bull conflict, emphasizing the importance of stakeholder cooperation, government intervention, and community awareness programs.

Introduction - India boasts a diverse biological legacy, encompassing approximately 89,451 species, among which are 390 species of mammals (Kumar and Khanna, 2006). Among these, India shelters 31 species of ungulates, with 25 of them protected under the Wildlife Protection Act of 1972. Of these ungulates, six belong to the antelope family, including the Nilgai, Four Horned Antelope, Indian Gazelle, Blackbuck, Tibetan Antelope, and Tibetan Gazelle, with three species being exclusive to the Indian subcontinent (Prater, 1971).

Standing tall as the largest Asian antelope, the Blue Bull (Boselaphustragocamelus) is a frequent sight in the agricultural landscapes of Central and Northern India. However, the burgeoning population of Nilgai presents a significant challenge to farmers, often resulting in crop raids and damages across agricultural fields near protected areas (Nasim Ahmad Ansari, 2017).

Nilgai, found across India, Nepal, and Pakistan, predominantly thrives in the Terai lowlands along the foothills of the Himalayas, with substantial populations scattered across northern India. In states like Gujarat, Uttar Pradesh, Delhi, and Rajasthan, the Nilgai population has surged significantly, leading to appeals from farmers in Bihar, Chhattisgarh, Haryana, Punjab, Andhra Pradesh, and Madhya Pradesh to the government for population control measures due to crop raids and resultant food shortages. Though the estimated Nilgai population in India stands around 100,000, Rajasthan alone reported 77,737 individuals in the 2019 census. With their adaptability, Nilgai have made their presence felt in 114 protected areas across 16 states, primarily Bihar, Uttar Pradesh, Rajasthan, Gujarat, Haryana, Punjab, Madhya Pradesh, and Uttarakhand, where their populations range from 5,500 to 254,449. Nilgai's habitat extends beyond protected areas, infiltrating human-dominated landscapes and crop fields.

Scientific Classification

1. Zoological Name: Boselaphustragocamelus
2. Kingdom: Animalia
3. Phylum: Chordata
4. Class: Mammalia
5. Order: Artiodactyla
6. Family: Bovidae
7. Subfamily: Bovinae
8. Genus: Boselaphus
9. Species: B. tragocamelus

The Nilgai's scientific name, Boselaphustragocamelus, originates from Latin and Greek roots, signifying its resemblance to both cows and deer. Endowed with a robust physique and slender legs, the Nilgai flaunts distinct features like a sloping back, a white throat patch, and short manes, with males exhibiting darker coats and formidable horns. Standing tall at 1–1.5 meters at the shoulder, these antelopes weigh between 109–288 kg (240–635 lb) for males and 100–213 kg for females, making them the largest antelope species in Asia.

Distribution and Habitat: Boselaphustragocamelus is indigenous to peninsular India and the Indus division of the Indian sub-region, predominantly inhabiting arid or semi-arid ecosystems with sparse rainfall. Their habitats vary from grasslands to woodlands and brushy areas, extending from the northeast border of Pakistan to southern India, with their populations most concentrated in northern and central regions.

Behaviour: Nilgai are diurnal and gregarious animals,

typically forming small groups of up to 10 individuals, though larger gatherings may occur. Males exhibit territorial behavior, marking their domains with dung piles, while females and juveniles maintain separate interactions. Despite possessing keen senses of sight and hearing, Nilgai lack a robust sense of smell. When alarmed, they emit short guttural grunts or clicking sounds, with individuals up to 500 meters away able to hear their distinctive coughing roar.

Research into the activity patterns of Blue Bulls reveals insights into their daily routines, including resting, walking, and social behaviours. Females tend to be more active than males, with distinct peaks in activity observed throughout the day.

In essence, the Nilgai's robust presence and adaptability underscore its significance in India's diverse ecological tapestry, albeit posing challenges in managing its burgeoning populations amidst human settlements and agricultural lands.

Materials and Methods: Data collection involved surveys, interviews, and field observations. Primary data were gathered through household questionnaires to assess the causes, nature, and management strategies of human-blue bull conflict. Field observations were conducted to corroborate respondent's responses. Systematic random sampling techniques were employed to select sample villages and households. Secondary data were collected from books, research articles, and online sources to support and enrich the study's findings.

Data Collection Methods: The methodology employed for data collection centered on survey methods, integrating both primary and secondary data sources. Primary data were acquired through household questionnaires, interviews, and field observations. Household questionnaires were utilized to assess the causes, nature, and management strategies related to Human-Blue Bull Conflict in the area. Field observation served to corroborate respondents' answers, ensuring the collection of accurate and reliable information. Secondary data sources, including books, internet searches, libraries, journals, and articles, were consulted to supplement and validate the primary data.

Sampling Size and Sampling Technique: It is obvious that Jhalawar is surrounded by five Districts such as: KOTA (NW), BARAN (NE), GUNA (EAST), RAJGARH and AGAR (South). However, the extent of exposure of local people and their agricultural area to wildlife is not the same throughout the five districts rather it greatly differs from one to another. Therefore, only area with highest population of blue bull was selected using systematic random sampling technique. In addition, random sampling technique was employed to identify sample households. In this head of households were randomly selected from sample kebeles/ villages of district which were selected using systematic random sampling after the completion of preliminary survey which is helpful to identify specific villages which are highly affected as a result of the conflict with wildlife. 5% of the total households from each sample village were selected randomly. The sampling size of the study was determined based on formula adapted from Israel (1962) as follows.

n=N/1+N (e)2n=N/1+N (e)2

where; N = the total population;

n = the required sample size;

e = the precision level which is=(± 10%),

where confidence interval is 90% at p=+ 10 (maximum variability) which is=(±10%) n=1850/1+1850(0.1)^2 = 95.

A total of 150 respondents were selected and the questionnaire was transferred purposefully. The respondents were selected purposively based on their ability, awareness, adjacent to an area and knowledge contributes to the overall research objectives.

Data Analysis: Data analysis encompassed both qualitative and quantitative methods. Descriptive statistics such as mean percentage were used to interpret the survey questionnaire, interviews, and field observations. The findings were presented through tables, charts, pictures, and percentages, further enhanced with graphs and diagrams to provide deeper insights into the study. The methodologven components, incorporating both primary and secondary data sources to comprehensively address the research objectives.

Study Area: Jhalawar district, located in southeast Rajasthan, encompasses diverse landscapes ranging from rocky terrain to verdant forests. The district's climate is characterized by hot summers and moderate winters, with the highest rainfall in Rajasthan. Rich in flora and fauna, Jhalawar hosts various wildlife species, including blue bulls. Major economic activities in the area include agriculture, with crops such as wheat, soybean, and vegetables dominating the agricultural landscape.

Map showing the geographical location of Jhalawar (study area)

Exploring the Richness of Jhalawar: A Geographic Perspective

Nestled in the south-eastern region of Rajasthan, Jhalawar unfolds its geographical diversity and cultural richness. This plate presents an overview of the study area, encompassing

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

its subdivisions, terrain, climate, and vegetation.

Subdivisions: Jhalawar district is segmented into eight distinct sub-divisions, each contributing to the region's unique charm and character:

Jhalawar, Aklera, Gangdhar, BhawaniMandi, Pirawa, Khanpur,Manohar Thana, Asnawar.

Geographic Landscape: Jhalawar's landscape stands in stark contrast to much of Rajasthan, boasting rocky yet verdant terrain. Pre-historic cave paintings, imposing forts, and dense forests adorn the region. The abundance of wildlife and diverse flora lends an exotic flavour to Jhalawar.

Climate: The climate mirrors that of the Indo-Gangetic plain, with scorching summers reaching up to 47°C and chilly winters touching 1°C. Jhalawar experiences the highest rainfall in Rajasthan, averaging 35 inches annually. Monsoons bring relief with cool breezes, making September to March the ideal time to explore the region. Vegetation: The generous annual precipitation of 890mm sustains a rich variety of flora and fauna in Jhalawar. Major crops include soybean, sorghum, maize, and groundnut in kharif season, while wheat, chickpea, coriander, and mustard dominate the rabi season. Renowned for its orange, garlic, and coriander production, Jhalawar is also a hub for hybrid vegetable cultivation.

Results: During the survey, it was found that 80% of the total respondents considered Blue bulls to be a significant problem due to their destructive behavior towards farmland, exhibiting a ferocious nature.

The herd size varied widely, ranging from 15 to 93 individuals, indicating both small and large group sizes were observed. Among the respondents, 52% regarded blue bulls as dangerous. The damage caused by blue bulls to crops was extensive, with 58% of crops damaged while being consumed, 28% destroyed while the animals were sitting on the farms, and 14% disrupted while the animals passed through the fields.

Indirect evidence from the study revealed that blue bull attacks were frequent, particularly when the animals were disturbed by human activities or accidents. Otherwise, they remained calm and non-aggressive.

Furthermore, results highlighted the absence of compensation for crop damage caused by blue bulls, despite 100% of farmers acknowledging them as a threat. Government intervention in providing compensation was notably absent.

The study emphasized that blue bulls pose a significant threat to agricultural crops, particularly during the monsoon season, with habitat destruction, agricultural expansion, and overgrazing identified as primary causes of conflict. Mitigation strategies proposed include stakeholder cooperation, legislative interventions by the government, enforcement of regulations, and community awareness programs. Long-term solutions such as crop diversification and the promotion of alternative livelihoods were also recommended to mitigate conflict and conserve wildlife.

Conclusion: Human-blue bull conflict presents a complex challenge requiring multifaceted solutions. The study underscores the importance of understanding the underlying causes of conflict and implementing targeted mitigation strategies to promote coexistence between humans and wildlife. By addressing habitat degradation, promoting sustainable agriculture practices, and fostering community engagement, it is possible to mitigate human-blue bull conflict and safeguard both human livelihoods and wildlife populations in Jhalawar district.

Recommendations: Based on the study findings, several recommendations are proposed:

1. Cooperative farming practices to protect crops from raiders.
2. Provision of compensation for wildlife-induced damage.
3. Increased awareness campaigns targeting local communities.
4. Government subsidies for crop protection measures.
5. Restriction of human settlements near wildlife habitats.
6. Crop pattern diversification to minimize conflict.
7. Implementation of boundary walls around agricultural fields.
8. Establishment of rapid response teams for wildlife conflicts.
9. Support for young conservationists and local community initiatives.
10. Expansion of protected areas and buffer zones.
11. Promotion of alternative livelihoods to reduce dependence on agriculture.
12. Exploration of non-lethal methods for blue bull population control.

References:-

1. Ansari, N.A. Seasonal Variations in Physicochemical Characteristics of Water Samples of Surajpur Wetland, National Capital Region, India. International Journal of Current Microbiology and Applied Sciences. 2017; 6(2):971-987.
2. Bajwa,P., Chauhan.N.P.S. 2019. Impact of agrarian land use and land cover practices on survival and Conservation of Nilgai antelope (*boselaphustra-gocamelus)* in and around the Abohar Wildlife Sanctuary,North Western India. Eco science 26 (3): 276-289.
3. Blanford, W.T.1888, The fauna of British India,Including Ceylon and Burma: Mammalia. Taylor and Francis London, United Kingdom.
4. Chauhan, N.P.S. and V.B. Sawarkar 1989. Problem of overabundant Population of Nilgai and blackbuck in Haryana and Madhya Pradesh and their management, Indian forester.115:488-493.
5. Chhangani, A.K., Robbins, P., Mohnot, S. M. (2008) Crop raiding and livestock predation at Kumbhalgarh Wildlife Sanctuary, Rajasthan India. Human Dimensions of Wildlife.
6. Corbet, G.B. and J. E. Hill 1992. The mammals of the

Indomalayan region: a systematic review. Oxford University Press, Oxford, United Kingdom.

7. Dinersten ,E.1980. An ecological survey of the Royal Karnali -Bardia – Wildlife Reserve, Nepal .part-3. Ungulate Populations.Biological Conservation.18;5-38.
8. DharmaKumarsinhji K.S. 1959.A field guide to big game census in India. Indian Board for Wildlife, New Delhi, India.
9. Ellerman,J.R. and Morrison -Scott,T. C.S. 1966. Checklist of palaearctic and Indian mammals 1758 to 1956. 2nd ed. Trustes of the British Museum (Natural History), London, United Kingdom.
10. Fall, B.A.1972. On social Organisation and behaviour of Nilgai antelope *Boselaphustragocamelus*(Pallas), in south Texas. M.S. thesis,Texas. A M University, College Station.
11. Howthorne, D.W. (1971) WildWildlife damage and control techniques, In: Giles RH (ed.). WildWildlife management techniques.
12. Hussain, W. (2014). Special lecture in Wildlife Department, Former Head Department of Botony, Aligarh Muslim University, Aligarh, India. International Union for Consevation of Nature (2014).
13. www.iucnredlist.org/initiatives/mammals
14. IUCN SSC Antelope Specialist Group (2017) [errata version of 2016 assessment]. "*Boselaphustra-gocamelus*". IUCN Red List of Threatened Species. 2016:e.T2893A115064758.doi:10.2305/IUCN.UK. 2016-3.RLTS.T2893A50182076.en. Retrieved 18 February 2022.
15. Khan,K.A.andKhan,J.A. (2013) Status abundance and population ecology of Nilgai (*Boselaphustragocamelus* Pallas*)* in Aligarh District, Uttar Pradesh, India. Department of Wildlife Sciences Aligarh Muslim University, (Uttar Pradesh). Journal of Applied and Natural Science 8(2) :1080 -1086(2016).
16. Kumar A.Khan V.2006. Globally threatened Indian fauna -status, issue and prospects. Kolkata, West Bengal Zoological Survey of India. Journal of Wildlife and Biodiversity 3(4):27-35 (2019)
17. (http://jwb.araku.ac.ir/).
18. Kusum. (2018) Studies on the Ranging Pattern and Dung Piles habit of Nilgai (*Boselaphustragocamelus)* around Jodhpur,Rajasthan, India.IJRAR(International Journal of Research and Analytical Review. Department of Zoology.
19. Lekolool, I. (2012). Mega -trans location: the Kenya wildlife service at its best. The George Wright Forum, 29 (1), 93-99.
20. Mallon, D.P. 2008, "Blue bull is also one of the threatened animals living in close proximity to human settlements. "*Boselaphustragocamelus* "IUCN Red list of threatened species version 2008. International union for the conservation of Nature 2008.
21. Messmer Ta (2009) Human – Wildlife Conflicts emerging challenges and opportunities, Society.
22. Mirza, Z.B. and M.A. Khan. 1975 "Study of distribution, habbitat and food of Nilgai (*boselaphustragocamelus*) in Punjab".Pakistan Journal of Zoology.7:209-214.
23. Oguya B.R.O. and Eltringra, S.K. 1991. Behavior of Nilgai (*Boselaphustragocamelus*) antelope in captivity. Journal of Zoology (London) 223:91-102.
24. Owen – Smith, N. 1977. On territoriallity in Ungulates and an evolutionary model. Quarterly Review of Biology.52;1-38.
25. Pallas, P.S. (1766). Miscellanea zologicalquibus novae imprimisatqueobscuraeanimalium species describ unturet observation ibusiconibusqueillustrantur .Hague comitum .Perum van Cleef, The Hague, Netherlands.
26. Prater, S.H. (1971). The Book of Indian Animals. Bombay Natural History Society, Bombay, India. Mammalian Species 813:1-16.
27. Prater, S.H. 1980. The book of Indian animals, Bombay Natural History Society, Bombay India. Mammalian Species 813:1-16.
28. Prakash, I .and Singh,H. 2001. Composition and species diversity of small mammals in the hilly tract of south-eastern Rajasthan. Tropical Ecology 42(1): 25-33.
29. Schaller, G.B.1967. The deer and the tiger: a study of wildlife in India University of Chicago Press, Chicago, Illinois.
30. Sheffield, W.J. 1983. Food habits of Nilgai antelope in Texas. *Journalof range Management*. 36:316-322.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

The Role of Government and Policy in Encouraging Digital Payment Adoption Among MSMEs in India

Dr. Vibha Vasudeo* Utkarsh Khanna**

***Professor & HOD, School of Studies in Economics, Maharaja Chhatarsal Bundelkhand University, Chhatarpur (M.P.) INDIA**
**** Ph.D.Scholar, School of Studies in Economics, Maharaja Chhatarsal Bundelkhand University, Chhatarpur (M.P.) INDIA**

Abstract - The significant role of government policies and initiatives in accelerating digital payment adoption among Micro, Small, and Medium Enterprises (MSMEs) in India transformative journey of India's MSME sector towards digital payment integration, driven by government initiatives under the Digital India program, such as the DIGIDHAN Mission and the Unified Payments Interface (UPI) is the key areas which this paper examines. The surge in digital payment transactions and the pivotal role of platforms like UPI in this growth are underscored. Additionally, the study discusses the Reserve Bank of India's Digital Payment Index, indicating a deepening reliance on digital transactions across India, supported by increased internet and mobile phone penetration and government initiatives.

The research also explores challenges, including digital literacy and access, security concerns, and the barriers to digital financial inclusion. Government policies and initiatives aimed at enhancing market access, technological empowerment, and financial inclusion for MSMEs, such as the Procurement and Marketing Support Scheme and the MSME Champions Scheme, are critically analyzed.
Keywords: Digital Payment Adoption, MSMEs, Government Policy, Digital India, Financial Inclusion.

Introduction - The transformative journey of digital payment adoption in India's Micro, Small, and Medium Enterprises (MSMEs) sector is a compelling narrative of technological integration and policy- driven empowerment. As a critical pillar of the Indian economy, MSMEs have witnessed a significant digital leap, particularly in the domain of digital payments, catalyzed by robust government initiatives and evolving financial technologies.

The Government of India, recognizing the critical role of digital payments in economic transformation, has launched several initiatives under the Digital India programme to promote the digital payment ecosystem. The DIGIDHAN Mission, established by the Ministry of Electronics & IT (MeitY) and later transferred to the Department of Financial Services (DFS), has been a cornerstone in this endeavor. Since its inception, there has been a remarkable increase in digital payment transactions, growing from 2,071 crore in FY2017-18 to 13,462 crore in FY 2022-23. This surge underscores the growing acceptance and integration of digital payments across the country, bolstered by the availability of diverse payment modes like BHIM-UPI, debit/credit cards, and IMPS, among others. (PIB, 2023)

This surge in UPI transactions illustrates the platform's pivotal role in the digital payment landscape, driven by continuous innovation and user-centric features such as AutoPay and P2M Global transactions. (PIB, 2023)

The Reserve Bank of India's Digital Payment Index (DPI) provides a quantitative measure of the adoption and penetration of digital payments, showing a significant increase to 304.06 in September 2021 from 217.74 in the same period the previous year. This growth indicates a deepening reliance on digital transactions across the Indian populace, supported by factors such as increased internet and mobile phone penetration, and government initiatives like the Jan Dhan-Aadhaar-Mobile (JAM) trinity. (SIRU, 2022)

The government's focus extends beyond just transactional support, The Procurement and Marketing Support (PMS) Scheme, for example, aims at enhancing the marketability of MSME products and services through adoption of e-commerce platforms and participation in trade fairs. (MSME, 2022)

Hypothesis and Objectives:

H1: Digital financial inclusion initiatives reduce the transaction costs and barriers associated with accessing credit for rural MSMEs.

H2: The utilization of digital financial services leads to an improvement in the financial literacy and management capabilities of MSMEs.

H3: Infrastructure and regulatory frameworks significantly influence the effectiveness of digital financial inclusion

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

initiatives in rural areas.

Objectives:

Primary Objective: To evaluate the impact of digital financial inclusion initiatives on enhancing sustainable credit access for rural MSMEs in India.

Secondary Objectives:

1. To analyze the influence of infrastructure and regulatory policies on the success of digital financial inclusion initiatives in rural India.
2. To identify best practices and provide recommendations for enhancing the effectiveness of digital financial inclusion initiatives in promoting sustainable credit access for rural MSMEs.

Literature Review:

The integration of digital payments within the Micro, Small, and Medium Enterprises (MSME) sector is pivotal for economic progress, particularly in emerging economies like India. The transition from traditional financial transactions to digital platforms is influenced significantly by government initiatives, policy interventions, and the inherent characteristics of MSMEs. This literature review systematically explores these facets, drawing from various sources, including research papers, government reports, and empirical studies.

Challenges and Barriers to Adoption-

Digital Literacy and Access: A significant challenge remains in the form of digital literacy and access to digital infrastructure, especially in rural and semi-urban areas. Addressing these challenges is critical for the widespread adoption of digital payments among MSMEs (Widayani, 2022)

Security Concerns: Security concerns associated with digital transactions can also deter MSMEs from adopting digital payment methods. Policies aimed at enhancing cybersecurity measures and educating MSME owners about secure digital practices are essential in mitigating these concerns (Widayani, 2022)

(Widayani, 2022) highlight functional barriers such as the perceived complexity and risk associated with digital payment systems. Additionally, psychological barriers stemming from traditional business practices and resistance to change also play a significant role.

Barriers and Transaction Costs: Despite the progress, challenges remain in fully realising the potential of DFI. A study highlighted the barriers to financial inclusion, such as financial literacy, high service costs, and regional inequalities, which hinder the widespread adoption of digital financial services among rural populations (Gaurav Agrawal, 2019). Addressing these barriers is essential for ensuring that DFI initiatives reach and effectively serve rural MSMEs.

Barriers and Challenges for MSMEs: Despite these advancements, MSMEs face obstacles, including digital literacy, access to technology, and regulatory complexities. For instance, the literature suggests that only 6% of enterprises have adopted digitization, primarily due to low digital awareness and high adoption costs (Kakkar, 2021)

Governmental Initiatives and Digital Infrastructure:

Impact of Digital Financial Inclusion on Rural MSMEs: The advent of the India Stack, including Aadhaar and the Unified Payments Interface (UPI), has revolutionised access to financial services, significantly impacting rural MSMEs. The Aadhaar system provided a digital enabling the government's direct benefit transfer schemes. Similarly, UPI has democratised payment services, allowing small traders and vendors to participate in the digital economy (BY YAN CARRIÈRE-SWALLOW IMF, 2021).

Government Initiatives and Policy Framework: The Indian government has launched several programs aimed at digital financial inclusion and literacy. One prominent initiative is the Digital India campaign, which seeks to transform India into a digitally empowered society and knowledge economy, (Digital Report MeitY, 2020). Within this framework, specific schemes like the Pradhan Mantri Jan-Dhan Yojana (PMJDY) have been instrumental in increasing access to financial services through digital means.

Digital Saksham, a partnership between CII, Mastercard, and the government, aims to train around 3 lakh MSMEs in digital tools, underscoring the concerted efforts towards digitization. (Kakkar, 2021)

T he government's efforts to simplify and secure digital transactions have not only enhanced operational efficiency but also instilled trust among MSMEs towards digital adoption. (Asian Development Bank, 2022) (Sur, 2023)

Digital payments and MSME Financing: Digital payment platforms offer revolutionary opportunities for MSME financing, enabling the use of cash flows as collateral for loans and creating new markets through e-commerce (ADB, 2020). These platforms, coupled with government-backed initiatives like Bakong in Cambodia, demonstrate the potential of digital payments to enhance financial inclusion and support MSME growth in developing economies. (Asian Development Bank, 2022)

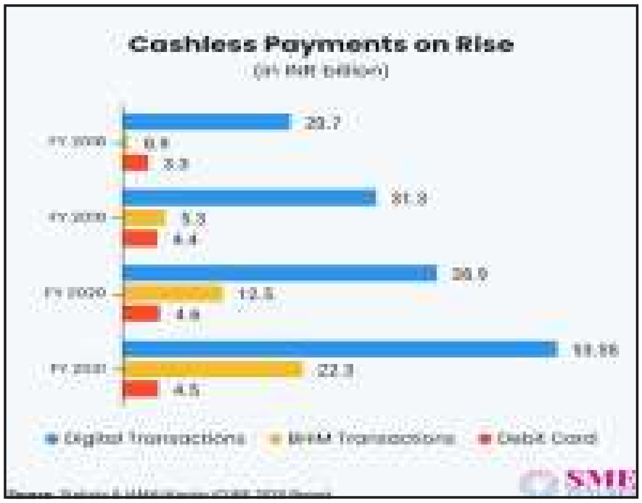

Whereas an RBI analysis states that the share of digital

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

transactions in the total volume of non- cash retail payments increased to 98.5 per cent during 2020- 21, up from 97 per cent in the previous year.

Among the cashless payment options, the mobile payment app BHIM (Bharat Interface for Money) overtook debit card payments from 2018. The value of BHIM transactions increased significantly between 2018 and 2021. Also, the number of Points of Sale (PoS) terminals increased by 6.5 per cent to 47.20 lakhs and the number of Bharat Quick Response (BQR) codes deployed increased by 76 per cent to 35.70 lakhs by the end of March 2021. Further, the number of ATMs marginally increased by 2 per cent from 2.34 lakh at the end of March 2020 to 2.38 lakh at the end of March 2021.

Talking about the rise of the cashless economy and digital payments, SMEs can be seen as a case of an acute dichotomy. While on one hand they have been the most badly impacted segment, but at the other end of the spectrum, they have been the fast movers on the digital adoption front, more than the others. (SME Futures) (Singh, 2021)

Economic Implications and Benefit:

Economic Growth and Competitiveness: Digital payment adoption is not merely about transitioning from cash to digital transactions; it encompasses a broader economic agenda. By facilitating seamless and efficient transactions, digital payments can significantly contribute to the economic growth and competitiveness of MSMEs, enabling them to tap into new markets and customer segments (Sur, 2023)

Today, a significant portion of rural India has become digitally connected, giving people more freedom to communicate and conduct business online. This resulted in the creation of millions of new customers for e-commerce and digital marketing. (Palak Agarwal, 2023)

Role of Technology and Innovation: Innovation in technology plays a pivotal role in driving merchant acceptance of digital payments. Companies like Hitachi Payment Services Pvt. Ltd. have been instrumental in developing and deploying secure and reliable digital payment solutions across India, facilitating ease of transactions for customers and merchants alike. The deployment of technologies such as Bharat QR and UPI, alongside traditional card payments, exemplifies the strides made in providing versatile payment options. (Dilip Sawhney , 2020)

Future options and Technological Advancements: The advent of 5G technology presents new opportunities for enhancing the digital infrastructure for MSMEs. This could facilitate real-time connections with suppliers and customers, modernising legacy processes and further promoting the digital economy. (Dilip Sawhney , 2020)

Recommendations and Approaches:

Regulatory Approaches and Future Directions: To address the challenges and leverage the opportunities presented by digital payments, governments and regulators must adopt innovative and inclusive regulatory approaches. This includes enhancing digital literacy among MSME owners, strengthening digital infrastructure, and fostering collaborations between public and private sectors to support the sustainable growth of MSME. (UNCDF, 2021)

The Reserve Bank of India (RBI) highlights the importance of developing a robust infrastructure, including credit and payment systems, to support DFI. Innovations such as the establishment of a national identification system and a credit registry database have been pivotal in advancing financial inclusion. Moreover, the focus on last-mile delivery and consumer protection is crucial for ensuring that financial services are accessible and beneficial to rural MSMEs and their communities. (RBI, 2023)

Enhanced Support and Training: To overcome barriers to adoption, the government, in collaboration with private sector partners, should intensify efforts in providing targeted support and training programs for MSMEs. These programs should aim at enhancing digital literacy, familiarizing MSME owners with digital payment systems, and highlighting the benefits of digital adoption. (Widayani, 2022)

Innovative Solutions and Partnerships: The government should encourage innovation in digital payment solutions tailored for the unique needs of MSMEs. Establishing partnerships between financial institutions, technology companies, and MSMEs can lead to the development of user-friendly and secure digital payment platforms. (Kakkar, 2021)

Conclusion: It's evident that the role of government and policy in encouraging digital payment adoption among MSMEs in India is both pivotal and multifaceted. Government initiatives, such as the Digital India campaign, and the introduction of the Unified Payments Interface (UPI) have significantly reduced barriers to digital payment adoption, enabling MSMEs to participate more fully in the digital economy. (Digital Report MeitY, 2020) (Kakkar, 2021)

The literature review underscores the critical role of government and policy in facilitating digital payment adoption among MSMEs in India. Through a combination

of strategic initiatives, supportive policies, and addressing existing challenges, there is a significant opportunity to enhance the digital payment ecosystem for MSMEs.

However, challenges persist, including digital literacy, trust in digital systems, and the digital divide between urban and rural enterprises. Government policies must continue to evolve to address these challenges, ensuring that digital payment systems are accessible, reliable, and user-friendly for MSMEs across all regions. (Douglas W. Arner, June 2022)

In conclusion, the concerted efforts of the Indian government and policy makers have been instrumental in catalyzing the adoption of digital payments among MSMEs, thereby enhancing their operational efficiency, market reach, and financial inclusivity. Ongoing and future initiatives should aim to further reduce the digital divide, promote digital literacy, and foster an environment of trust and security in digital transactions.

References:-

1. PIB. (2023, 12 27). *Ministry of Finance Year Ender 2023: Department of Financial Services*. Retrieved from PIB: https://pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=1990752
2. (SIRU), S. I. (2022, 01 27). *Mapping India's Digital Payment Infrastructure: Digital Payment Index*. Retrieved from Invest India
3. MSME, P. (2022, 12 26). *Year End Review-2022 Ministry of MSME*. Retrieved from Press Information Bureau:https://www.pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=1886709
4. Widayani, A. F. (2022). Barriers to Digital Payment Adoption: Micro, Small and Medium Enterprises". *Management & Marketing. Challenges for the Knowledge Society*, 528-542.
5. Kakkar, M. &. (2021). Role of digital payment in the growth of MSMEs Sector. *Indian Journal of Economics and Business*
6. Gaurav Agrawal, P. J. (2019). Digital Financial Inclusion in India: A Review. *Behavioral Finance and Decision-Making Models*, 9.
7. BY YAN CARRIÈRE-SWALLOW IMF, V. H. (2021, JULY). *STACKING UP FINANCIAL INCLUSION GAINS IN INDIA*. Retrieved from INTERNATIONAL MONETARY FUND
8. Digital Report MeitY. (2020). *Digital India, ANNUAL REPORT 2020-21.* Ministry of Electronics & Information Technology (MeitY) Government of India.
9. Sur, S. A. (2023). Change in the uses pattern of digital banking services by Indian rural MSMEs during demonetization and Covid-19 pandemic-related restrictions. *XIMB Journal of Management*, 166-192.
10. Asian Development Bank. (2022). *FINANCING SMALL AND MEDIUM-SIZED ENTERPRISES IN ASIA AND THE PACIFIC CREDIT GUARANTEE SCHEMES.* Aisan Development Bank.
11. Singh, A. (2021, August 07). *The digital quotient of SMEs is soaring, bringing in more opportunities for this sector.* Retrieved from SME FUTURES
12. Palak Agarwal. (2023, january 17). *Explained: Why Digital Marketing Is Booming in India.* Retrieved from Ukti: https://ukti.co.in/blog/2023/01/17/why-digital-marketing-is-booming-in-india/
13. Dilip Sawhney . (2020, May 17). *Accelerating digital adoption among Indian MSMEs.* Retrieved from Economics Times:
14. UNCDF.(2021).*IMPACT CAPITAL FOR DEVLOPMENT.* UNCDF.
15. RBI. (2023). *National Strategy for Financial Inclusion 2019-2024.* Reserve Bank Of India.
16. Douglas W. Arner, S. A. (June 2022). MSME Access to Finance: The Role of Digital Payments. *United Nations, Economic and Social Commission for Asia and the Pacific, MSME Financing Series No.7*

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Study of Ecological Status of Abheda Pond, Kota (Rajasthan)

Sushma Agrawal* Veena Chourasia**

*Assistant Professor (Zoology) Maa Bharti P.G. College, Kota (Raj.) INDIA
** Associate Professor (Zoology) Govt. College, Kota (Raj.) INDIA

Abstract - In the present study ecological status of Abheda pond Kota was accessed. The ecological status was considered using the three parameter – Physico-chemical parameters of water, its sediment and diversity of macrozoobenthic community. Four sampling stations were selected for the collection of samples. The parameters studied under physico-chemical studies were- Temperature, pH, Electrical Conductivity, Total alkalinity, Total hardness, Calcium hardness, Chloride, Sodium, Potassium,Nitrate, Phosphate and Dissolved Oxygen. The result indicated that Abheda pond is eutrophic in nature. The Biological study showed total 21 taxa of macrozoobenthos, belonging three phyla namely Arthropoda, Mollusca, and Annelida. Themacrozoobenthic fauna are mostimportant as they the indicators of overall ecological health of a water body.
Keywords: Eutrophic, Macrozoobenthos, Physico-chemical parameters, Sediment, Waterbody.

Introduction - The term ecological status of water body is used exclusively for health of surface water such as river, lakes, transitional and costal water.Healthy water bodies are important for the economy and human well-being. Ecological status of a water body is determinedbythree paramters(elements)-physico-chemical properties of water,sediments and diversity of macrozoobenthic fauna among them macrozoobenthic fauna are the most important element to decide the ecological status of particular water body whereas physico-chemical properties of water and sediments are the supportive. It shows the influence of pollution and habitat degradation taking into consideration the three quality elements. The principal physical and chemical condition operative in natural water make up the basic platform through various combinations and intensities, upon which the occurrence, distribution and the success of aquatic organism depend. The physico-chemical properties of water and sediment in a water body affect the distribution, density and diversity of macrozoobenthic community too; they are best indicators of its biological status.

Many investigators such as Khanna D.R. and Bhutani R. (2003), Saxena et al (2008), Narasimo K.et al(2011),Parkh and Mankodi (2012),Nupur et al (2013),Lonkar et al(2015),Sasikala et al(2016)were studied physico-chemical parameters of water ,sediments and their influence on macrozoobenthic community.

Study Area: Abheda Pond is an artificial pond, it was dug during the 'Riyasat Kal' to quench the thirst of wild animals, like any other pond it has no wave action, has shallow depth, and negligible temperature variation along its depth.It is about 8KM from Kota district and lies between 25º12'-11" North latitude and 75º-53'-15" East longitude. It sustains enormous floral and faunal diversity which are related to its geographical location, hydro biological regimes, substrate conditions and anthropogenic influences.

Methodology: Water,sediment and macrozoobenthic sample were collected from all the four sites of Abheda pond at monthly intervals approximately at a fixed time of the day. Collected sample were brought to the laboratory for further analysis. Water and sediment samples were analyzed by standard methods mention by APHA (1998) and Trivedi and Goel (1986) whereas collected and preserved sample of macrozoobenthos was identified using standard keys of Needham and Needham (1962), Edmonson (1959), Penark (1978), Tonapi (1980) and Adoni (1985).

Observations

The results of the study of Abheda pond are given in the tables below.

Table 1-physico-chemical analysis of water at different study sites of Abheda pond

S.	Parameters	Minimum	Maximum	Mean
1	Air temperature (ºC)	22 ºC	42 ºC	32.125 ºC
2	Water temperature (ºC)	20ºC	32 ºC	28.15 º C
3	pH	7.9	9	8.26
4	Electrical Conductivity (µmhos/cm)	90	210	168.43
5	Total alkalinity (mg/l)	44	138	86.57

6	Total hardness (mg/l)	29	98	69.08
7	Calcium hardness (mg/l)	26	64	47.95
8	Chloride (mg/l)	10	42	22.39
9	Nitrate (mg/l)	3.5	10.5	7.41
10	Phosphate (mg/l)	0.1	0.2	0.12
11	Dissolved Oxygen (mg/l)	3.07	6.5	4.33

Table 2- Physico-chemical analysis of sediment at different study sites of Abheda pond

S.	Parameters	Minimum	Maximum	Mean
1	pH	6.5	8.15	7.5
2	Electrical Conductivity (µmohs/cm)	225	500	358
3	Total Alkalinity (mg/l)	42	88	68
4	Calcium (mg/l)	23.3	40	28.84
5	Chloride (mg/l)	8	38	20.9
6	Sodium (mg/l)	1.85	2.9	2.16
7	Potassium (mg/l)	1.2	1.75	1.5
8	Nitrate (mg/l)	0.8	1.8	1.22
9	Phosphate (mg/l)	0.35	1.08	0.73

Table 3 (see in next page)

Result and Discussion: The result ofphysico-chemical investigation showed that the air and water temperature of the pond ranged between 22^{o}Cto 42^{o}C maximum in summer and while lowest in winter The pH values of water and sediment were stable and alkaline whereas Electrical Conductivity, Total Alkalinity and Total hardness values were indesirable limit. Abheda pond was found to be rich in calcium andNitratewhich favours growth and survival of macrozoobenthos though the value of DOwhereas phosphate was found in the desirable limit in the present study. The Nitrate and Phosphate concentration in sediment had been affected by the anthropogenic activity in and around Abheda pond, Sodium and Potassium were found under considerable range.

A total 21 species of macrozoobenthos were recorded during the study which belong to three major phyla Arthropoda, Mollusca, and Annelida. Arthropoda was the most dominant group, comprising of 12 species, followed by Mollusca with 8 species and Annelida with one species.In this study the presence of pollution indicator species such as *Tubifex tubifex* of Annelida, *Chironomus sp*. and *Eristalis tenax* of Arthropoda and *Lymnaea sp.* of Mollusca directly points to the shifting of status of the pond from non-polluted to polluted.

Conclusion: The study of physico-chemical elements of water,sediments and macrozoobenthic community ofAbheda Pond shows that the ecological status of the pond is good though the anthropogenic activities are on increase day by day which may lead to the poor quality of water in future so that proper management of this water body is needed.

References:-

1. Adoni, A.D. (1985) Workbook of Limnology Pratibha Publications, Sagar.
2. A.P.H.A. (1998) Standard methods for examination of water and Waste Water.20th Edition, American Public Health Association, Washington D.C.
3. Edmondson, W. T. (1959) Freshwater Biology. John Wiley, N.Y.
4. Khanna, D. R., and Bhutani, R. (2003) Ecological status of Sitapur pond at Haridwar (U. P.) Indian j. Environ. &Ecophon, 7(1):175-178.
5. Khanna D. R., and Bhutani, R. (2003) Limnological status of Satikund pond at Haridwar (U. P.) Indian j. Environ. &Ecophon, 7(2):131-138.
6. Lonkar, S. S., Kedar, G. T. and Tijare, R. V. (2015). Assessment of trophic status of Ambazari Lake, Nagpur, India with emphasis to Macrozoobenthos as Bioindicator. Int. J. of Life Sciences, 3(1): 49- 54.
7. Mahajan, S., and Billore, D. (2014) Assessment of Physico-chemical characteristics of the Soil of Nagchoon Pond Khandwa, MP, India.Research Journal of Chemical Sciences. 4(1): 26-30.
8. Needham, James G. and Needham, Paul R. (1962) A guide to the study of fresh water Biology, 5th Edition. San. Fransico, Holden-Day, 108
9. Nupur, N., Shahjahan, M., Rahman, M. S. and Fatima, M. K. (2013) Abundance of macrozoobenthos in relation to bottom soil texture types and water depth in Aquaculture Ponds. Int. J. Agril. Res. Innov. & Tech., 3(2): 1-6.
10. Narasimha, K., Srikanth, K., Ravindar, B. and Benarjee, G. (2011) Occurrence of macro-zoobenthos in relation to physico-chemical characteristics in Nagaram tank of Warangal, Andhara Pradesh. The Bioscan, 6(1): 89-92
11. Parikh, A. N. and Mankodi, P. C. (2012) Limnology of Sama pond. Vadodara city, Gujarat. Research Journal of Recent Sciences, 1(1): 16-21.
12. Pennak, R. W. (1978). Fresh water invertebrates of United States. 2nd ed. John Wiley & sons, New York.
13. Sasikala, T., Manjulatha, C. and Raju D. V. S. N. (2016) Hydrological studies in Varaha reservoir, Kalyanapulova Visakhapatnam District. International Journal of Fauna and Biological Studies, 3(3): 188-191.
14. Saxena, D. N., Garg, R. K., and Rao, R. J. (2008) Water quality and pollution status of Chambal river in National Chambal sanctuary, Madhya Pradesh. Journal of Environment Biology, 29 (5).
15. Thorp, and Covich A. (1991) Ecology and classification of North American fresh water invertebrates, Sandiego, Harcourt Brace Jovanovich.
16. Tonapi, G. T. (1980) Freshwater animals of India, An ecological approach.Oxford and IBH Publishing Company, New Delhi

Table 3- Identified Macrozoobenthos at different study sites of Abheda pond

Phylum	Class	Order	Family	Organism
Annelida	Oligocheta		Naididae	*Tubifex tubifex*
Arthropoda	Insecta	Diptera	Chironomidae	*Chironomus larva*
			Syrphidae	*Eristalis tenax*
		Ephemeroptera	Ephemeridae	*Baetistri caudata*
		Coleoptera	Stayphylinidae	*Paederus melampus*
				Atheta (Dalotia) coriaria
			Hydrophillidae	*Hydrophilus triangularis*
				Enochrus sp.
				Hydrobius fusiceps
				Helochareslividus
				Berosus sp.
				Tropisternus lateralis
			Curculinoidae	*Weevil sp.*
Mollusca	Gastropoda	Architaenioglossa	Viviparidae	*Bellamya bengalensis*
		Planorboidea	Planorbidae	*Gyraulus convexiusculus*
				Indoplanor bisexustus
		Basommatophora	Lymnaeidae	*Lymnaea acuminata (Typica)*
				Lymnaea acuminata (patula)
		Littiornimorpha	Bithyniidae	*Bithyniya tenticulata*
		Architaenioglossa	Ampullariidae	*Pila globose*
	Bivalvia	Unionoida	Unionoidae	*Lamellidens marginalis*
TOTAL				21

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Chromotherapy- Nature Based Therapy System for Mankind

Kumud Dubey* Avinash Dube**

* MLC Govt. Girls P. G. College, Khandwa (M.P.) INDIA
** S. N. Govt. P. G. College, Khandwa (M.P.) INDIA

Abstract - Chromotherapy is a century old concept used successfully over the years to cure various diseases. It is a method of treatment that uses visible spectrum of electromagnetic radiation to cure diseases. It isa complete science which involves biophysics, medicine and psychology. Chromotherapy is an attractive, non-invasive, cost effective, complementary and alternative treatment option with negligible negative effects.
Keywords: Chromotherapy, Colour Chakra, Electromagnetic Radiation.

Introduction - The concept of chromotherapy has successfully used through the centuries to cure many diseases. Chromotherapy deals with human body not as a collection of chemical parts, but as a complete system operating in harmony with the electromagnetic and energy system of the universe. According to the principle of chromotherapy, the human is basically composed of colours, and light has an impact on energy creatures health condition. Colours stimulate various part of the body, and they are responsible for the correct functioning of different systems in the body. Our organs, cells and atoms are existed as energy and each of them has an energetic level at which the organ vibrates or functions best.Colour has been one of the multifaceted means of human development interwoven in the social structure. Which practically, psychologically and physiologically reveal the beauty and benefits of nature.

Nature has undisputable effect on body physiology. Colours have potential to cause a dominant effect on our sensations and senses. Chromotherapy is a method of treatment that uses the visible spectrum of electromagnetic radiations (wavelength 7700-3900AU) and invisible spectra (Infrared and UV) to cure diseases. There are specific sites in the body which absorbs colour of varying wavelength and produce effect. When the ratio of the required colours in the body imbalances, it gives rise to the various ailments and when the colours are balanced diseases are easily cured. Each colour generates electrical impulses and field of energy that serves as activators of biochemical and harmonal processes, so the dysfunction of body organ can be treated by chromotherapy. There is specific colours for each organ that affects the human body by producing physiological and psychological effects. Chromotherapy is the best used as supportive therapy along with other natural method of prevention as correct diet, relaxation, yoga, exercise etc.

The present study deals with the use of chromotherapy a very old traditional concept of curing the diseases. Scientific proven it is the best therapy, which is cost effective without any negative effects and beneficial for our society and mankind.

Mechanism of colour action: According to the theory of chromalux an electric charge is produced due to the influence of the vibrations of cosmic and colourful rays upon the brain cells. The electric charge takes the form of a current emitted where various cells collide with another. This collision results in formation of incalculable colourful vibrations, which can be termed as thoughts. He elaborated the techniques of choosing the right colour for specific diseases and explained the theory of the basic colours used for therapy and the combinations of different shades.

Colour chakra: There is an ancient faith in the healing power of colours. Colour is used as a treatment tool. Within human body there are energy centers, these work as chakras for healing purpose. These energy centers are formed by seven chakras . Each chakra gets along with one of the spectral colours. Proper balance of energy is restored through colour therapy.

The seven chakras are as:

1. Vertex chakra (violet) stand for wisdom and spiritual energy. It influences the pituitary gland.
2. Forehead chakra (indigo) stand for intuition and influences the pineal gland.
3. Laryx chakra (blue) stand for religious inspiration, creativity, language and communication. It influences the thyroid gland.
4. Heart chakra (green-pink) stands for love harmony and sympathy. It influences the heart and the thymus gland.

5. Solar plexus chakra (yellow) stands for knowledge, intellect. It influences the adrenal body.
6. Spleen chakra (orange) stands for energy. It influences the spleen and pancrease.
7. Basis chakra (red) stands for life. It influences the reproductive system.

In other literature the seven chakra also named as root chakra, spleen chakra, solar plexus, heart chakra, throat chakra, brow chakra and crown chakra.These energy chakra must be balanced if any chakra of a person thought to be out of balance or weak, the patient is believed to be unhealthy. Many types of toxins, negative thoughts, dietary chemicals, environmental factor may aggravate the chakra imbalance. Chromotheraphy is a technique that restores the synchronization of these energy centers by application of healing colours to the body.

Application of various colours: The ways to administer colour therapy are practitioner assisted colour therapy which involve colour reflection reading and illumination therapy. Self helpcolour therapy involves coloured body wraps, eating coloured wraps, eating coloured foods, drinking coloured water, colourmeditation ,colour visualization, colour breathing, coloured oils and coloured clothing.

Experts recommended two techniques of colour therapy.

1. Through sight – looking at a particular colour can elicit the desire response in the body.

2. By reflection- Experts reflect specific colours on a body parts to benefit the recipient.

Colour therapists use warm colours for stimulating effects and cool colours for calming effects. The types of colour therapy include:-

1. Red- Powerful colour that increases energy by stimulating lymphatic system.

2. Orange- This colour is associated with one's mind body concentration.

3. Yellow- Associated with happiness, because of the warmth that it brings. When a person is exposed to yellow, they feel safe, when they are safe , they are happy.

4. Green- Natural colour and associated with vegetation. Thoughts of nature can help a person feel calmer and more relaxed.

5. Blue- Blue light with shorter wavelength increases sense of alertness. This colour light is used to help a person feel more focused.

Chromotherapy is considered as a type of alternative medicine treatment. It helps in- Stress, Depression, aggression, High blood pressure, Sleep disorders, Anxiety and skin infections. Certain colours like blue and green are thought to have soothing effects on stressed people. Warm and stimulating colourscan boost apetite. Colours like red and yellow are believed to boost energy and make more motivated. Bright light therapy is shown to be beneficial for mood disorder, which is common during colour weather due to lack of sunlight.

Table:Colours and effects:

Colour	Effects	Used for
Red	Builds bone and blood. Energizes five senses. Excretion of toxin from body.	Dariu and Dinshah, Paralysis, Anemia, Constipation, Breathing problem, Brain activity.
Orange	Nerves support, lungs, builds bone	Rickets, Cramps, Digestive problems, Osteoporosis.
Yellow	Improves immune system, Muscles, energies, Lymphatic system stimulation.	Allergies, osteoporosis, Joint pain, diabetes, Liver problem, Depression, Memory
Green	Circulation, Rebuilding of tissue and muscles, Antimicrobes	Ulcer, Maleria, Typhoid, Anxiety, Nervousness.
Blue	Anti-itching, reduces fever	Fever, Sore throats, Gums, Hair fall.
Indigo	Toner, Stops bleeding	Lungs, Chest problems, Skin problem, Immunity problems.
Violet	Support spleen, Immune system	Eye, Ear problems headache.

Chromotherapy as a system of treatment can benefit people because of its harmony with nature.The green leaves and grass can positively relax us and keep us happy and motivated, so go natural.

References:-

1. Azeemi STY etal. (2005), A critical analysis of chromotherapy and its scientific evolution (Review), Article from evidence based complementory and alternate medicine (e CAM), Vol.2(4), pp 481-488.
2. Dinshah D. SCN (2009), Let there be light, practical manual for spectro chrome therapy.
3. Gulsomiaetal. (2015),Chromotherapy an effective treatment option or just a myth ?Critical analysis of the effectiveness of chromotherapy, American Research journal of pharmacy, vol. I, issue 2, pp 62-70.
4. Gupta R. (2021),Colour therapy in mental health and well Being. Int.J. of All Research Education and Scientific Methods. Vol. 9(2), pp 1068.
5. Santosh Kumar J. (2014),Colour Therapy, Pondicherry Journal of Nursing, Vol 7(2), pp27-31.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Limnological Studies on Datuni Dam of district Dewas (M.P.)

Dr. D.S. Waskel* Dr. B.S. Patel**

*Department of Zoology, Govt. P.G. College, Dhar (M.P.) INDIA
** Govt. P.G. College, Dhar (M.P.) INDIA

Abstract - The limnological studies of Datuni dam kannoddistrict Dewas (M.P.) has been studies. The study of Physico-Chemical parameters was seasonally carried out of two years 2022-2023. Four sampling stations were selected at Datuni dam.The water samples werecollected analyzed as per standard methods of APHA(2005). Obtained results were compared with standard values laid down by various agencies BIS(1991) and WHO (1992). The study was conducted based on their water resources,using phytoplankton and Zooplanktons communities and origin of population such as utilization by human and animals. The present study was PH, Total hardness, TDS, BOD, COD, phosphate, Nitrogen ad Sulphate etc.

Keywords - Limnological, Physico-chemical, Parameters.

Introduction - Water is on important coustient of all living organisms and basic needs of human beings. Water is one of the most precious natural resources and is essential for everything on our planet to grow and prosper (Buragohain et al. 2007). Lake and dam always have been the most important fresh water resources and most development activities are still development upon them. The physico-chemical factors are very important role of environment. The principles physical and chemical condition operative in natural waters make up the basic plate from through various combination. WHO and BIS has been given a setup guideline values for drinking water quality WHO (2004). A systematicinvestigation has been carried out to study the Datuni dam waterquality and Physico-chemical characteristics. The Parameter namely TDS, Total hardness, BOD, COD, pH, Nitrogen and Sulphate were compared with the WHO and BIS standard of drinking water quality of India. The quality of water samples under study, were above the desirable limit but within the tolerance level. The study alsoincludesPhysico-chemical parameters and significant values of the observed than discussedin this paper and various suggestions to improve the water quality in this dam.

Study Area: The dam of Datuni constructed on riverdatuni. With a catchment area about 181.61 sq.km. The key features of the project are 1290 m length of dam at top 660 long earthen dam on left flank and 630 m long on right flank. The dam envisages irrigation over on area of 7235 ha. The water samples were collected from 4-different sampling stations. Water samples were collected in plastic bottles seasonally during 2022-2023. The Physico-chemical parameters were analyzed as per the standard method APHA (2005) and Trivedi and Goel (1986).

Results and discussion: The Physico-chemical parameters of selected four stations in the Datunidam Reve bean given in the table no one and two.

pH: The pH indicates the intensities of acidity and alkalinity. The pH values were found minimum in rainy season and maximum in the summer seasonbecause of the due to utilization of bi-carbonates and carbonates buffer system due to evaporation of water. The pH value of all water samples were found to be higher than that of the standard permissible limit BIS (1991) &WHO (1992).

TDS: Total dissolved solids in on indication of the degree of dissolved substance in the water bodies.The TDS in water are composed mainly of carbonates, bi-carbonates,chlorides,phosphates,Nitrates of calcium, magnesium,sodium, potassium organic matter, salts and other particles. The BIS standard for TDS is proposed are 500 mg/li. The TDS valueswere found minimumin rainy season and maximum in the summer season. The TDS values of all water samples were found to be lower than the desirable limit of 500 mg/lit.

Total hardness: It is a major of variable complex mixture of onion cations in dam, reservoir the principal cations which important hardness are calcium and magnesium. The Total hardness values were found minimum in rainyseason and maximum in the summer season. It is in agreement with the study of (Jain et. al. 1997).

BOD: The Biological oxygen demand of water indicator of organic pollution. The BOD values were found minimum in the winter season and maximum in the summer season.

The reason of BOD in water body may by that in summer season several microbes present in the water bodies accelerated their metabolic activities with concentrated amount of organic matter in the form of domestic wastes discharge in to water bodies. BOD values of all water samples under the desirable permissible limit of BIS and WHO.

COD: The chemical oxygen demand is a measure of the oxygen equivalent of the organic matter in water. The COD values of water found minimum in the summer season and maximum in the winter seasons. COD values of all water samples under the permissible limits. It means does not receive any pollution bearing substances.

Nitrates : Nitrates are the highest organized from of nitrogen and in water its important source in "Biological oxidation in nitrogenous organic matter. Nitrate content in all the water samples were found to be less than the standard permissible limit of BIS and WHO.

Phosphate : Phosphate is one of the most important nutrients in aquatic ecosystem. The amount of phosphate was found minimum in the winter season and maximum in the summer season. The phosphate values were found to be less than the standard permissible limit of BIS and WHO.

Sulphate: The sulphate vales were recorded minimum in summer season and maximum in the winter season. Sulphate in all the water samples found below BIS limit of 200 mg/lit. The sulphate values of dam water samples were also within the permissible limit of BIS.

Acknowledgement: The others are grateful to Dr. S.S. Baghel, Principal and Prof R.C. Ghawari, Head of Zoology department Govt. P.G. College, Dhar for providing research facilities. We are also thankful to PHE officer Dewas for help during study of Datuni dam. Special thanks are due to all acknowledgeable for the important information giving regarding the study area.

Table: 1 (see in next page)
Table: 2 (see in next page)

References:-

1. APHA (1992). Standard method for examination of water and waste water. Washington D.C.
2. APHA (2005). Standard method for examination of water and waste water American public health association. 21th Edt. Washington D.C.
3. Basavaraj Simpi, S.M. Hiremath, K.N.S. Murthy, K.S. Chandarash, APPA, Anil N. Patil, E.T. Puttiah (2011). Analysis of water quality using Physico-Chemical parameters Hoshalotank in S. Himega district, Karnataka, India 11(3).
4. BIS (1991). Specification for drinking water quality Indian standard institution New Delhi, India.
5. Dhakad N.K. and Choudhary P. (2005). Hydrobiological study on Natnagra pond in Dhar town (M.P.) with special references to water quality impact on potability, irrigation and Aquaculture, Net, Env. Poll. Tech, 4, 269-272.
6. Gupta, S.M. (2003). Physico-Chemical characteristics and analysis of water quality of Bikaner city, Asian Jou. chemical, 15:727.
7. Jain M.K. Dadhich L.K. Kalpana S. (2011). Water quality assessment of Krishanpura dam, Baran, Rajasthan, India Nature env. and poll. Tech 10(3), 405-408.
8. Johengen T.H. (2014). Changing ecosystem dynamics in the LaurentionGreat Lake. Bottom up and top-down regulation, Bio Science, 64: 26-39
9. Kumar P. and Sharma H.B. (2005). Physico-chemical Characteristics of Lentic water of Radha Kund, District Mathura, India, Ind.J. of Ent. Sci. 9,21-22.
10. Mishra S. and Joshi B.D. (2003).Assessment of water quality with few selected parameters of river Ganga at Haridwar. Him. J. Env. Zool. 17(2): 113-122.
11. Smitha, P.G., K. Byrappa and S.N. Ramaswamy (2007). Physico-chemical characteristics of water samples of Bantwal Taluk, South-eastern Karnataka, India J. Environ Biol, 28.591-595.
12. Trivedi R.K. & Goel P.K. (1986). Chemical and biological method for water pollution studied, Envi. Pub. Karad, 215.
13. Waskel D.S. and Baghel L. (2014). Physico-chemical analysis of sitapat pond and itscomparison with tap water quality of Dhar Town for portability status, Res. Jou. of Animal vet. and fishery sci., vol. 2(12), 8-13.
14. Waskel D.S. and Alawa K.S. (2017). Acase study of krishnpura Lake Indore M.P. Jour. of Divya shodh samiksha vol (1): 20-22.
15. Waskel D.S. and Alawa K.S. (2022). Study of phytoplankton density and Physico-chemical parameters in Man-dam Dhar (M.P.) India. Jour. of NSS vol (1): 16-18.

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Table: 1 Seasonal Variation in Physico-chemical Parameters of Datuni Dam During-2022

S.	Parameters	Station-I			Station-II			Station-III			Station-IV		
		R	W	S	R	W	S	R	W	S	R	W	S
1	pH	7.00	7.05	7.06	7.01	7.06	7.07	7.02	7.04	7.07	7.01	7.03	7.08
2	Total hardness	105	120	132	103	12	130	106	126	133	104	130	135
3	TDS	312	339	331	310	340	333	318	338	330	320	337	332
4	BOD	2.09	2.08	4.04	2.12	2.10	4.08	3.00	2.09	4.06	3.02	2.11	4.05
5	COD	10.02	9.02	11.07	10.06	9.07	11.08	10.07	9.06	11.02	10.05	9.05	11.01
6	Phosphate	2.12	2.06	3.06	2.15	2.08	3.02	2.10	2.09	3.05	2.09	2.07	3.03
7	Nitrate	1.92	2.02	1.90	1.94	2.00	1.98	1.93	2.01	1.92	1.93	2.03	1.93
8	Sulphate	46	58	48	45	58	49	47	56	52	48	54	54

Note - All parameters mg/lit.

Table:2 Seasonal Variation in Physico-chemical Parameters of Datuni Dam During-2023

S.	Parameters	Station-I			Station-II			Station-III			Station-IV		
		R	W	S	R	W	S	R	W	S	R	W	S
1	pH	7.01	7.06	7.07	7.01	7.05	7.08	7.04	7.05	7.07	7.02	7.03	7.07
2	Total hardness	106	121	133	103	124	130	105	125	132	104	129	134
3	TDS	311	338	332	311	339	332	317	337	331	319	336	332
4	BOD	2.08	2.07	4.00	2.13	2.09	4.04	3.01	2.09	4.05	3.01	2.12	4.04
5	COD	10.01	9.01	11.08	10.05	9.06	11.08	10.06	9.08	11.03	10.06	9.06	10.08
6	Phosphate	2.13	2.07	3.08	2.14	2.09	3.01	2.12	2.08	3.06	2.08	2.07	3.04
7	Nitrate	1.93	2.21	1.91	1.93	2.02	1.98	1.93	2.02	1.92	1.94	2.02	1.96
8	Sulphate	45	56	48	44	57	47	46	55	53	48	55	53

Note - All parameters mg/lit.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Ethnomedicinal Trends of Fabaceae Family Plants Used by Tribal's of Dhar District, Madhya Pradesh, India

Dr. Kamal Singh Alawa*

***Assistant Professor (Botany) Govt. P.G. College, Dhar (M.P.) INDIA**

Abstract - The present paper deals with an ethnomedicinal trends was carried out during 2022-2024 in the Fabaceae families plants used by tribal's of Dhar district, Madhya Pradesh, India. A total of 23 plant species belonging to 19 genera of Fabaceae family from the study area. Such knowledge is transferred from one generation to another by word of mouth only and restricted to few families of the area recognized as 'Vaidyas' 'Badwa' and 'Ojhas'. Tribal do not approach doctors (physicians) due to lack of awareness and shyness or hesitation. Herbal healers and their patients who receive the treatment for any enquired the local names, parts used and method of administration. The binomial names are enumerated with utilization and dosages of these plants are like Viz. *Abrus precatorius*, *Butea superba*, *Crotalaria juncea*, *Dalbergia sissoo*, *Mucuna pruriens*, *Tephrosia purpurea* etc. The family Fabaceae is the second largest among the dicotyledonous plants of the study area.

Key words: Ethnomedicinal trends, Fabaceae family, Dhar district, tribal's, Madhya Pradesh.

Introduction - Dhar district is situated in the south-western part of Madhya Pradesh, India. The study area lies between 22º oo' to 23º 10' Northern latitude and 74º 28' to 75º 42' Eastern longitude. Covering 8153 Sq. Km study area and geographical area of 1214.8 Sq.km. Its population is 2184672 (Census 2011). Dhar The tribal people constitute over 83.93 percent of the population. The study area is mostly inhabited of tribal groups are *Bheel*, *Bhilala, Barela* and *Pateliya*. Majority of the population live in remote villages and depend on shifting cultivation and forest for their food, shelter and other requirements. These Tribal's live close to the forest and are largely dependent on the wild biological resources for their livelihood. Although the tribal people traditionally use many ethno-medicinal Fabaceae family plants used by tribal's of Dhar district, Madhya Pradesh. Such documentation has been done earlier. Keeping this in view, the present study was initiated with an aim to identify medicinal plants resources and traditional knowledge of tribal people of the study area. Literature survey of ethnobotanical work was done (Srivastava 1984, Samvatser *et al*. 2004, Jain 2004, Jadhav 2007, Alawa *et al*. 2012, Shaikh *et al*. 2012, Alawa 2015, Alawa *et al*. 2016, Alawa 2018). The present paper first time documented of the study area.

Materials and Methods: The present paper is outcome of extensive field survey of different tribal villages of Dhar district during 2022- 2024 to collect information on medicinal uses of different plant species. Herbarium of the collected plants specimen was prepared following customary method (Jain and Rao, 1977). During field work, interviews were conducted with local knowledgeable villagers; local elders and experienced tribal peoples (both men and women) were interviewed and cross -interviewed again and again. Local 'Vaidyas,' 'Badwa' and 'Ojhas'.The collected plant species are arranged alphabetically along with their botanical name and family, local names, method of preparation of drug and mode of administration are given below in observation. The plant specimens were collected and identified with local flora available literature (Varma *et al*. 1993, Mudgal *et al*. 1997 & Khanna *et al*. 2001). Herbarium preserved in Department of Botany, PMB Gujarati Science College, Indore, Madhya Pradesh.

Enumeration of species: During ethnobotanical survey of Dhar district it was found that some wild medicinal plants are used by tribal of Dhar district Madhya Pradesh. The enumerations of field observation are given below:

1. ***Abrus precatorius*** L. (Fabaceae) **V.Ns.**-Ghumchi, Lal chirmi, Lal jurang, Ratti.

Uses: 1.Leaf paste with jaggery mixed is given twice a day for 2-3 days to control typhoid.

2. The leaves are chewed in mouth ulcer.

3.Seed powder is mixed with cow's ghee is used 1-2 drops to during conjunctivitis.

2. ***Alysicarpus vaginalis*** (L.) DC. (Fabaceae) V.Ns.- Gailia

Uses: 1. The pest of root is mixed with the leaf of Tulsi (Ocimum sanctum) is given to cure cough.

3. ***Atylosia scarabaeoides*** (L.) DC (Fabaceae) **V.Ns.**- Van

phalli
Uses: 1.The extract of leaves is given orally to cure diarrhea and gastric problem.
2. ***Butea monosperma*** (Lam.) Taub. (Fabaceae) **V.Ns.-** Palas, Dhak, Khankro.
Uses: 1.Paste of seed with water is taken twice a day for 3 day to remove intestinal worms.
2. Powder bark is taken during bodyache and abdominal pain.
5***. Butea superba*** Roxb.ex Willd. (Fabaceae)**V.Ns.-** Palasvel, Bodla.
Uses: 1.Dried root powder with cow's milk is given during debility.
2. Eczema is controlled by applying extract of fresh leaf.
6***. Cajanus cajan*** **(L.) Huth. (**Fabaceae**) V.Ns.**- Arhar
Uses: 1.Paste of leaves is applied on mouth ulcer.
7***. Clitoria ternate*** **L. (**Fabaceae**)V.Ns.** Aparajita
Uses: 1.The extract of leaves is given orally to cure vermicide.
8. ***Crotalaria medicaginea*** Lamk. (Fabaceae) **V.Ns.-** Piliabuti
Uses: 1.Powder of roots is mixed in water and taken orally to cure jaundice.
9***. Crotalaria Juncea*** L.(Fabaceae) **V.Ns.–**Sann, Sanai
Uses: 1.Seed powder with milk is given orally twice day to cure paralysis.
2.Root powder with leaf of (*piper betle*) beetle is given twice a day for a week to cure jaundice.
10***. Dalbergia sissoo*** Roxb. ex DC. (Fabaceae) **V.Ns.–** Sissoo, Sisham.
Uses: 1. Leaf Juice with sugar candy is given twice a day for 3 days to cure diarrhoea.
2. Paste of leaves is given orally cure for diabetes.
3. Oil of wood is also massage to cure for paralysis.
11***. Desmodium gangeticum*** (L.) DC. (Fabaceae) **V.Ns.-** Chipti
Uses: 1.Root powder with honey is given orally twice a day to cure cough and fever.
12.***Desmodium triflorum*** (L.) DC. (Fabaceae) **V.Ns.–** Kodawla
Uses: 1.Paste of fresh leaf is applied wounds twice a day to relive fast healing.
2. Root powder with Kukad kand (*Geodorum densiflorm*) to made into "Laddu" given to one week in early morning in the empty stomach to cure spermatorrhoea.
13. ***Indigofera tintoria*** L. (Fabaceae) **V.Ns.–**Neel, Nili.
Uses: 1. Powder of root with water is given orally to cure for cardiac, hepatic and dropsy.
14***. Malilotus indica (***L.) Ali.(Fabaceae) **V.Ns.-** Van methi
Uses: 1. Leaves with salt to eaten in case of constipation.
15. ***Mucuna pruriens*** (L.) DC. (Fabaceae) **V.Ns**.-Kevach, Konch
Uses: 1.Root paste is given twice a day for 3 days to cure dysentery.
2. Burn seeds are eaten to cure for cough and cold.
16. ***Ougeinia oogeinsis*** (Roxb.) Hocker. (Fabaceae)**V.Ns**.-Tinsa
Uses: 1.Bark paste is given twice a day for 3 days to cure diarrhea and dysentery.
17. ***Pongamia pinnata*** (L.) Pierre.(Fabaceae) **V.Ns**.-Karanj, Karanji, Kanji.
Uses: 1. Seed oil is applied on skin for itching, ringworm and eczema.
2. Seed powder with cow's milk is given twice a day for bodyache.
3. Leaf juice is applied as ointment in the cure of urinary.
18***. Pterocarpus marsupium*** Roxb. (Fabaceae) **V.Ns**.-Karanj, Bija-sal, Bilawa.
Uses: 1. Decoction of stem bark is given twice a day for a week to cure anemia.
2.Decoction of stem bark is given twice a day for only women after delivery.
19. ***Pueraria tuberosa*** (Roxb.) DC. (Fabaceae) **V.Ns**.-Patal tumbadi,Bhui kumbra
Uses: 1.Tuber powder is given twice a day for 3 days to cure urinary disorder.
2.Decoction of leaves and tuber is given twice a day for a week to treat increase male potency.
20***. Sesbenia bispinosa*** (Jacq.) Steud. (Fabaceae) **V.Ns.-** Dadon, Daden
Uses: 1. Seed powder is given with water twice a day for arthritis.
2.Seed paste is applied as an ointment on cuts, burns and wounds.
21***. Tephrosia candida*** L. (Fabaceae) **V.Ns.-**Safed serpunkha
Uses: 1. Root powder is given orally to cure diarrhea.
22***. Tephrosia Purpurea*** (L.) Pers. (Fabaceae) **V.Ns.-** Sarpankha, Bayonia
Uses: 1. Decoction of root is given twice a day for 3 days to cure diarrhoea and urinary disorder.
2. Decoction of plant is used for children to cure blood purification.
23. ***Uraria picta*** (Jacq.) Desv.ex.DC. (Fabaceae) **V.Ns.** Prastparni
Uses: 1. Root powder is given to cure fever.

Results and Discussion: The present study includes information on the total 23 plant species belonging to 19 genera of Fabaceae family. Generally local medicine men are known as 'Badwa' or Vaidyas. The rich treasure of indigenous knowledge of local medicinal plant is also under serious threat in rural areas due to the availability of allopathic medicines and treatment of ailments and disease. The indigenous knowledge of the tribal communities must be properly documented and preserved so that their knowledge could be passed on the future generation. Such studies and documents provide important for understanding the complex heritage of tribal communities and their association with environment and nature. the important medicinal plants were used again cough and cold, diarrhea

and urinary disorder of 3 species; abdominal pain, intestinal worms, typhoid, jaundice, mouth ulcer, eczyma, paralysis, fever of 2 species each and arthritis, male impotency, diabetes, anemia, dysentery, spermatorrhoea and blood purification of 1 species. The collection of remote areas of Fabaceae family plants of photo graphs (Fig. 1 to 4).

Fig.1 Abrus precatorius L. **Fig.2 Butea monosperma (Lam.) Taub.**

Fig.3 Crotalaria juncea L. **Fig.4 Mucuna pruriens (L.) DC.**

Some Fabaceae plants of Dhar district (M.P.) India

Acknowledgement: The author is thankful to Dr. S.S.Baghel, Principal and Prof. Subhash Soni, Head of Botany Department, Govt. P.G. College, Dhar for their help and support. We are also thankful to Divisional forest officer, Dhar for help during the ethno botanical survey in tribal villages and forest areas of the district. We are thankfully acknowledging the informants for the important information giving regarding ethno botanical plants.

References:-

1. Alawa KS, Ray S. (2012). Ethnomedicinal plants used by tribal's of Dhar district, Madhya Pradesh, India. *CIBTech. Jour. Of Pharmaceutical Science,* 1 (2-3): 7-15.
2. Alawa KS, Ray S, Dubey A (2016). Folklore claims of ethnomedicinal plants used by Bhil tribes of Dhar district Madhya Pradesh. Bioscience discovery, 7(1): 60-62.
3. Alawa KS (2021). Ethnomedicinal plants used for antifertility by tribals of Dhar district, Madhya Pradesh, India. *European Jour. Of Biome. and pharma.Science*, 8 (8): 495-497.
4. Jain SP (2004). Ethno-Medico-Botanical Survey of Dhar district Madhya Pradesh. *Journal of Non-Timber Forest products*, 11(2): 152-157.
5. Jain SK and Rao RR (1977). A handbook of field and Herberium methods.*Today and Tomorrow Publishers*, New Delhi.
6. Jain SK (1991). Dictionary of Indian folk medicine and Ethnobotany.*Deep Publication,* New Delhi,India.
7. Jadhav D (2007). Ethnomedicinal plants used by *Bhil* tribes of Matrunda, District,Ratlam, Madhya Pradesh, *India. Bull. Bot. Surv. India,* 49 (1-4): 203-206.
8. Madgal V, Khanna KK, Hajra PK (1997). *Flora of Madhy Pradesh*, Vol. II.BSI. Calcutta.
9. Samvatsar, S and Diwanji, VB (2004). Plant used for the treatment of different types of fever by *Bheels* and its sub tribes in India. *Indian J. Traditional Knowledge*: 3(1): 96-100.
10. Shaikh MJ, Ray S and Mehara SS (2012). Ethnomedicinal trends of Fabaceae in East Nimar (M.P.) India, Journal of tropical forestry,; Vol, 28 (III): 68-71. .
11. Verma DM, Balakrishan NP, Dixit RD (1993). *Flora of Madhya Pradesh*,Vol. I, BSI, Calcatta.
12. Wagh VV, Jain AK (2010). Ethnomedicinal observations among the *Bheel*and *Bhilala* tribe of Jhabua District, Madhya Pradesh, India. *Ethnobotanical Leaflets,* 14: 715-720.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

हिन्दी लोक नाट्य की परम्परा

डॉ. बिन्दू परस्ते*

* सहायक प्राध्यापक (हिन्दी) श्री अटल बिहारी वाजपेयी शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – लोक जीवन में लोक नाट्यों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। लोक नाट्यों का जन्म कब हुआ यह तो निश्चित रूप से नही कहा जा सकता, लेकिन लगता है कि आदिकाल से आदिमानव का मन जब वलों मे रहते – रहते ऊब जाता होगा, तो वह बन्दर और भालूओं को नचाकर अपना मनोरंजन करता आया होगा। चूँकि 'नट' धातु से ही 'नाट्य' शब्द बना है। इससे नाटकों के विकास में 'नृत्य' के महत्वपूर्ण स्थान का पता चलता है।

नाट्य कला अपने विकास के प्रारंभिक काल में आदमी के सामान्य सामाजिक जीवन के साथ जुड़ने के अतिरिक्त उसकी धार्मिक गतिविधियों के साथ भी जुड़ी। कितने ही नाटक विभिन्न मानव समुदायों की विभिन्न धार्मिक संस्थाओं के आधार पर रचे और प्रदर्शित किए जाते है। रामलीला, इंद्रसभा, कृष्णलीला, राजा हरिशचन्द्र, कितने ही प्राचीन नाटक ऐसे है जो शताब्दियों तक भारत के जनमानस की अभिरूचि तथा उसकी धार्मिक आस्थाओं के साथ जुडे रहे और करोड़ों लोगो के आकर्षण का केन्द्र बन रहे। आज भी गॉव-गॉव और शहर-शहर में अन नाटकों का प्रदर्शन होता है और आज भी असंख्य लोग इनसे भावनात्मक स्तर पर जुडे हुए है। यह कहना अनुचित न होगा कि समय के साथ विककित होती गई नाट्यकला को नियमित मंच तो बहुत बाद में मिला। भारत में तो ये खुले मैदानों अथवा छायादार वृक्षों के नीचे पलती रही। नोटंकी हो या कठपुतली का तमाशा, रामलीला हो या रासलीला बिना मुसजित्त एवं सुव्यवस्थित मंच के ही भारी जनसमूह के बिना इतना प्रदर्शन किया जाता रहा इन्हें हम नाट्य कलाओं के प्रारंभिक रूप भी वह सकते है।

अन्य ललित कलाओं की तुलना में नाटक में अपने दर्शको को प्रभावित करने की क्षमता अधिक है। क्योंकि जब आप कविता पढ़ रहे होते हैं या उसे सुन रहे होते है तो आपके साथ बुद्धि कान या आँखें ही संगत कर रही होती है इसी तरह जब आप नृत्य देख रहे होते हैं तो वृद्धि और आँख ही आपकी सहयोगी होती है। किंतु जब आप एक दर्शन के रूप में किसी नाटक में सम्मिलित होते हैं तो आपकी आँखें कान अथवा यो कहिए कि आपकी समस्त इन्द्रियाँ सक्रिय होकर आनंदित होती है। यही नाट्यकला की श्रेष्ठता और विशेषता है।

रामलीला में रामायण का स्वरूप पूरी तरह रामचरित मानस पर आधारित है। जो कि उत्तर भारत में कथा कहने का एक बहुत ही प्रचलित माध्यम है। दशहरा पर्व के दौरान हर एक गाँव-शहर में भगवान राम के वनवास से लेकर अयोध्या वापस आने पर आधारित नाटक मंचन का आयोजन किया जाता है। रामलीला में प्राय: भगवान राम के बचपन से लेकर वनवास जाने और राम रावण के बीच युद्ध का मंचन होता है। रामलीला का आदि प्रवर्तक कौन है यह विवादस्पद प्रश्न है। भावुक भक्तों की दृष्टि में यह अनादि है। एक कितंदती का संकेत है कि त्रेतायुग में श्री रामचन्द्र के वनगमलोपरांत अयोध्यावासियों ने चौदह वर्ष की वियोगावधि रामचन्द्र जी भी बाल लीलाओं का अभिनव कर बिताई थी। तभी से इसकी परंपरा का प्रचलन हुआ। एक अन्य जनश्रुति से यह प्रमाणित होता है कि इसके आदि प्रवर्तन मेघा भगत थे जो काशी के कतुआपुर मुहल्ले में स्थित फरहे हनुमन जी के निकट के निवासी माने जाते है। एक बार पुरूषेत्तम रामचंन्द्र जी के इन्हें स्वप्न में दर्शन हो सके। इससे सतपेरणा पाकर इन्होने रामलीला संपन्न कराई। तत्यपरिणाम स्वरूप ठीक भरत मिलाप के मंगल अवसर पर आराध्य देव ने अपनी झलक देकर इनकी मनोकामना पूर्ण की। रामलीला की अभिनव परंपरा के प्रतिष्ठापन गोस्वामी तुलसीदास जी है। इनकी प्रेरणा से अयोध्या और काशी के तुलसीघाट पर प्रथम बार रामलीला हुई।

जिस तरह श्रीकृष्ण भगवान की रासलीला का प्रधान केन्द्र उनकी लीलाभूमि वृंदावन है उसी तरह रामलीला का स्थल है काशी और अयोध्या। रामलीला के पात्र, किशोर, युवा, पौढ़ सभी होते है। सीता या सखियों का अभिनव आज तक किशोर बाकों द्वारा ही संपन्न होता है। पात्रों का चुनाव करते समय रावण की कार्मिक विराष्ता, सीता की प्रकृतिगत कोमलता और वाणीगत मृदुता, शूर्पणखा की शारीरिक लंबाई आदि पर विशेष ध्यान रखा जाता है। अभिनेता चौपाईयों, दोहो, कंठस्य किये रहते है और यथावसर कथोपकनों में उपयोग कर देते है।

रामलीला की सफलता उसकी संचालन करने वाले व्यास सुत्रधार पर निर्भर करती है क्योकि तह संवादों की गत्यात्मकता तथा अभिलेताओं को निर्देश देता है। साथ ही रंगमंचीय व्यवस्था पर भी पूरा ध्यान रखता है। रामलीला के प्रारंभ में एक निश्चित विधि स्वीकृत है। स्थान काल भेद के कारण विधियों में अंतर लक्षित होता है। कहीं भगवान के मुकुटों के पूजन से तो कहीं अन्य विधान से होता है दूसरी ओर समवेत स्वर में मानस का परायण नारद वानी-शैली में होता चलता है। लीला के अंत में आरती होती है।

काशी में शूर्पणखा की नाक काटे जाने के बाद खरधूषण की सेना का जो जुलूस निकलता है उसमें जगमग करते हुए विमान तथा तरह-तरह की लागें निकलती है जिनमें धार्मिक सामाजिक दृश्यों धटनाओं की मनोहम झाँकिया रहती है। साथ में मां काली का वेश धारण किए हुए पुरूषों का तलवार संचालन, पैंतरेबाजी, शस्त्र कौशल आदि देखने लायक होता है।

रामलीला में नृत्य, संगीत की प्रधानता नही होती, क्योकि चरितनायक

गंभीर, वीर, धीर, शालीन एवं मर्यादाप्रिय पुरूषोत्तम है। तत्परिणाम वातावरण में विशेष प्रकार की गंभीरता विराजती रही है। इस लीला की मंडली पहले नहीं होती थी। अब कुछ पेशेवर लोग मंडलियाँ बनाकर लीलाभिनय से आर्थोपार्जन करते है। रामलीला देखने से भारतेंदु हरिशचन्द्र के हृदय से रामलीला गान की उत्कंठा जगी। परिणामत: हिन्दी साहित्य को 'रामलीला' नायक चंपू की रचना मिली।

आयेध्या शोध संरचना द्धारा अयोध्या में तुलसी स्मारक भवन में राम लीला के चार वर्षो में 15 सौ प्रदर्शन हो चुके है।

समूचे देश में लोकनाट्य विधा मानी जाने वाली रामलीला की कई शैलियाँ लगभग समाप्ति पर है। विज्ञान के इस युग में फिल्मों और टेलीविजन की व्यावसायिक स्पर्धा ने इस क्षेत्र मे नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न किया है। सन् 16 सौ में मेघा भगत ने चित्रकूट में जीवंत झांकियों के माध्यम से लीला की शुरूवात की थी। उसके बाद गोस्वामी तुलसीदास मानस आधारित रामलीला काशी में बीच में दर्शकों को रखकर चारों ओर मंच बनाकर शुरू करायी। राधेश्याम रामायण पर भी लीला की शुरूवात यहीं इसी क्षेत्र में हुई पर अब यह दल मुश्किल से मिलते है। अयोध्या मे अनवरत रामलीला के दौरान ही दो वर्ष पहले हुई रिकार्डिग आदि के बाद युनेस्को ने रामलरला को वैदिक मत्रोचार व केरल के कोडियापम के साथ सांस्कृतिक विरासत धोषित किया। अनवरत रामलीला की इस योजना के नायाब होती इस लोकविद्या के कलाकारों में नयी उर्जा डालने का काम किया है। अंकिया नाट, यक्षगाान, कलकतिया व राजस्थानी कठपुतली रामलीला दलों के साथ ही योजना में देश और प्रदेश के करीब 35 लीला दल यहाँ प्रदर्शन कर चुके है। कलाकारों को इस योजना से अप्रत्यक्ष रोजगार मिला है।

रामनगर की विश्वप्रशिद्ध रामलीला पर जानप्रवाह वाराणसी पिछले करीब 20 वर्षो से शोध व संकलन कर रही है।

भारतीय संस्कृति में रामकथा का अद्भुत प्रभाव देखने को मिलता है। उपनिषद्धों, पुराणो और स्मृति ग्रंथों से लकर नृत्य गायन और कथावाचन तक के विभिन्न कालसपों में यह हमारे लोकजीवन में पूरी तरह संजीवनी है। विविधताओं से भरे इस देश में यह हर क्षेत्र की स्थानीय परंवराओं का लीस्सा है।

पिछले दिनों इंदिरा गांधी नेशनल सेंटर फॉर द आर्ट्स ने देश के विभिन्न लीस्सों से ऐसे संगठनों और सामुदायिक प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया, जो अलग-अलग शैलियों में रामकथा का वाचन, मंचन या प्रदर्शन करते है। छह महीने तक चले इस प्रोजेक्ट में उन लोगों ने अपनी - अपनी शैलियों का प्रदर्शन किया और उनकी विशेषताए बताई।

इस पहल का मुख्य उद्देश्य यह था कि रामकथा की समृद्धलोक परंपरा को संजाया जाए। लेकिन इस दौरान रामकथा से जुडे जितने प्रसंग देखन को मिले थे, वे भारतीय जीवन में राम के चरित्र के व्यापक प्रभाव को उजागर करते है। जैसे असम की राम विजय की नाट्य परंपरा । इसे संत कवि शंकरदेव ने रचा था।

यह झंकिया नट और भावन शैली में मंचित की जाती है। यही रामकथा पर आधारित 'कुशन गान' नायक एक परंपरागत लोक नाट्य भी है। जिसमें भगवान राम सीता माता के बेटे कुश पर रखा गया है। उत्तर पूर्व के ही मणिपुर में इसे जात्रा शैली में मंचित करने की परंपरा है।

रामकथा की इन सभी शैलियों में उस क्षेत्र विशेष के परिवेश को खूबसूरती से उतारा गया है। वहाँ की तो प्रकृति, खान-पान पहनावा और सामाजिक संस्था इन कथाओं में धड़कती है। राम भगवान नायक है ही दूसरे पात्र भी महत्वपूर्ण हो जाते है। मध्यभारत का एक समुदाय है बैगा। उसकी रामकथा में लक्ष्मण को अग्निपरीक्षा देनी होती है जिसे लक्ष्मण जाती कहा जाता है। सीता जी कई कथाओं में काली का रूप धारण करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. लोक साहित्य - डॉ. राजेश श्रीवस्तव 'गब्बर'
2. लोक गाथा - श्री बाबूराम मरकाम
3. लोक नाट्य - श्रीमती गीता मरकाम
4. लोक कथाएँ - श्री प्रेमचंद परस्ते
5. छत्तीसगढ़ी और उसका साहित्य - डॉ. श्रीमती बिन्दू परस्ते

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

शमशेर बहादुर सिंह के काव्य में भाषा,बिम्ब और प्रतीक

डॉ. ज्योति सिंह*   शिव औतार**

* प्राध्यापक (हिंदी) शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.) भारत
** शोधार्थी (हिंदी) अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – शमशेर बहादुर सिंह के काव्य में भाषा, बिम्ब और प्रतीक इस शोधा पत्र का वर्ण्य विषय है। इसकी शोध परक विवेचना करने के पूर्व इसके सार रूप पर संक्षिप्त प्रकाश डालना उचित प्रतीत होता है। शमशेर बहादुर सिंह के काव्य में भाषा, बिम्ब और प्रतीक की यथार्थ परक झांकी देखी जा सकती है। इस शोध लेख में शमशेर बहादुर सिंह के काव्य में भाषा बिम्ब और प्रतीक की शोधात्मक विवेचना की गई है।

'कवि जब अपनी अनुभूति को संप्रेषित करता है तो उसकी पहली आवश्यकता भाषा होती है। भाषा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा एक व्यक्ति का अनुभव दूसरे तक पहुँचता है। इसी से यह संप्रेषण का सार्थक सेतु सिद्ध होती हैं और उसका सेतुत्व तभी सफल होता है जब अनुभूतियों के वजन को वह ठीक–ठाक ढंग से संभाल लेता है। कवि की अनुभूतियाँ जब तक इस सेतु से आसानी से किन्तु प्रभावी ढंग से पाठक तक पहुंचती हैं तभी तक उसकी सार्थकता है किसी अनुभव को कह देना एक बात है, उसे प्रभावी ढंग से कहना बिल्कुल दूसरी बात है और उसे पाठकीय संवेदना में उतार देना तीसरी और महत्वपूर्ण बात है। कहना तो हर आदमी को आ सकता है, प्रभावी ढंग से कहना वक्ता का कौशल है और ऐसे कौशल से कहना कि वह मन में गहरे उतर कर अर्थ की गाँठों को स्वयं खोल दे या वे खुद खुल जायें कलाकार की सार्थक अभिव्यंजना का प्रमाणीकरण है। इसी बिन्दु पर आकर कविता–कविता है।'[1]

शमशेर भाषा के मामले में बेहद कंजूस कवि हैं। वे शब्द को काव्य मे बचा–बचाकर खर्च करते हैं। उन्होंने शुरू से अपनी काव्यभाषा में हिन्दी के अलावा उर्दू, फारसी, अरबी, अंग्रेजी, के शब्दो का बेशुमार प्रयोग किया है। उनकी भाषा का ग्राफ विविध और प्रयोगधर्मी है। उनकी भाषा में चित्रमयता, बिम्ब धर्मिता के अलावा जो सबसे बडी ताकत है वह है स्पर्श करने की क्षमता। स्पर्श करने की क्षमता वे शब्दों की ध्वन्यात्मकता से विकसित करते है। उनकी भषा में रूप, रस, गन्ध की इतनी सराबोर दुनियाँ व्याप्त है कि वह पाठक पर जादू जैसा असर करती है। शमशेर की काव्य भाषा मुक्तिबोध की भाषा की तरह ध्वनि विहीन नहीं है बल्कि सबसे ज्यादा ध्वनि युक्त है।

शमशेर ने अपने लम्बे कवि–कर्म में भाषा के कई प्रयोग किए। हिन्दी की आधुनिक कविता की भाषा में पहली बार उर्दू, अंग्रेजी, अरबी, फारसी के शब्दो की झडियाँ लगा दी जिससे खड़ी बोली की कविता में एक नई रंगत पैदा हुई।

शमशेर अपनी भाषा के सम्बन्ध में कहते है– प्रत्येक कवि के अनुभव का अपना एक रेंज होता है। भाषा के सम्बन्ध में हरेक का अपना एक आदर्श होता है। मेरा भी है। प्रारम्भ में मेरी भाषा के तत्सम शब्द पूर्ण, समास युक्त और जटिल अर्थगुंफित, असहज रही है। पर बाद की कविताओं की भाषा ज्यादा सहज, सादी और प्रवाहपूर्ण होती गई। अपने लिए जीवन्त भाषा को उसकी स्वाभाविकता में पकड़ने का मेरा आदर्श रास्ता रहा है कि मैं खड़ी बोली वाले इलाकों के जनजीवन के बीच रहकर उनकी बोलचाल के लहजों तौर तरीकों, मुहावरों और अभिव्यक्ति के ढंग को अपने भीतर जज्ब करूँ। हर बात को कहने के अपने खास अन्दाज होते हैं। स्वभावत: हर गम्भीर कवि उस खास अन्दाज को पकड़ने की कोशिश करता है। हर बड़ा कवि यथासम्भव उन सभी लोगों से अपने काम की भाषा सीखता है जो भाषा के प्रभावकारी प्रयोग में दक्ष होते हैं।'[2]

शमशेर की कविता में भाषिक–संरचना और प्रयोग की बात करते हुए यह तथ्य बहुत महत्वपूर्ण है कि छायावादोत्तर काव्य में शमशेर ही एक ऐसे कवि हैं जिनकी काव्य–भाषा सर्वाधिक सांकेतिक है।

शमशेर के काव्य में भाषा से भाषा और बोली से बोली के बीच एक सम्बन्ध स्थापित हुआ लगता है वे देशी–विदेशी शब्दों को ग्रहण कर अपनी कविता में प्रयोग करते हैं–अपने में पचाते हैं, अपना बनाते हैं। शमशेर ने जीवन को काव्यात्मक रूप दिया है। वे सुने सुनाए पर विश्वास नहीं करते थे। जो देखा और यथार्थ में जिया, उसी पर विश्वास किया, उसे ही व्यक्त किया है। यही कारण है कि काव्य में उनकी अपेक्षा बराबर बढ़ती गई। यह प्रत्येक आस्वादनशील रचनाकार की मनोवृत्ति होती है। वे आत्मप्रशंसा नहीं चाहते थे, और न किसी का पिछलग्गू बनना ही। यही उनके जीवन और भाषा–शिल्प का निरालापन है।

काव्य–शिल्पी होने के नाते शमशेर ने काव्य–जगत की तमाम शिल्पगत विधियों को अपने काव्यों में स्थापित करके नवीनता देने की चेष्ठा की है। शमशेर ने छन्द प्रयोग के क्षेत्र में जैसे विविध प्रयोग कर नवीनता का परिचय दिया है वैसे ही अलंकारों के क्षेत्र में भी, जिससे उनके काव्य की अलग पहचान होती है। भावों की भाषा के रूप में ढालकर उन्होनें आलंकारिक प्रयोग किया है।

शमशेर की काव्य भाषा–भाव–शिल्प–कला की दृष्टि से नये से नये प्रयोगों की सुचिन्तित श्रृंखला है। उसमें उनके कवि–साधक की गहरी अनुभूति है। वे कहीं–कहीं दुरूह–दुष्कर भाषा से अलग बोलचाल की भाषा और देशज शब्दों का प्रयोग कर अपने भावों को नयी भंगिमा प्रदान करते हैं।

शमशेर की कविता सत्य का साक्षात्कार करती है सामान्यत: वे बौद्धिकता के विरोधी और सहज संवेद्य भाषा के समर्थक थे। देश–काल और

जन–जीवन, कला–प्रकृति परिवेश के विभिन्न पहलुओं को उन्होंने अपनी कविता में इतनी सहजता और सफलता से प्रचलित उपमानों–उपादानों के साथ व्यक्त किया है। उनको हिन्दी के आधुनिक कविता के प्रथम कोटि के कवि कह सकते हे।

शमशेर निजी गहरी अनुभूतियों के कवि हैं। इसी कारण उनकी काव्यभाषा जटिल और अजनबियत की वक्रता से पूर्ण है। उनके मतानुसार यहर भावना की अपनी एक भाषा होती है। तात्पर्य यह है कि उनकी भावना अपनी अभिव्यक्ति की भाषा खोज लेती है। शमशेर के यहाँ भाषा के विविध स्तर एवं विभिन्न स्वाद हैं। रचना और संरचना दोनों ही दृष्टि से भाषा के प्रति उनकी सजगता देखी जा सकती है।

वस्तुत: शमशेर की भाषा साधना की भाषा है। उन्होंने भाषा को तराश–तराश कर उसकी खराश नष्ट कर दी है। वे उसे स्वर्णकार की भाँति ढालकर हमारे सामने लाते हैं। उनके गीतों की गुलाबी भाषा वास्तव में उनके प्राणों की भाषा है। उनकी भाषा में एक रसता है। नदी जैसे तट चाहे कितना ही बदले, उफने, मचले, फैले लेकिन वो अपना तल कभी नहीं बदलती है। शमशेर की भाषा में जड़ाव–कढ़ाव कम है, ढलाव अधिक है। शमशेर की भाषा एक ऐसी कविता है जो संस्कृतियों के उद्गम तक पहुँचाने का उपक्रम है।

शमशेर के काव्य–संसार में गहरे डूबने पर यह अनुभव होता है कि शमशेर ने एकान्त में जैसे अपनापन ही सौंप दिया है। यह अपनापन नया प्रतीत होता है, क्योंकि यह एक ऐसे कवि के द्वारा हम तक पहुँचता है, जो अपनी विलक्षण कविताओं से हमारी संवेदनाओं को गहराई से छूता ही नहीं, बल्कि नई संवेदना भी जगाता है।

शमशेर की काव्य भाषा का स्वरूप, उसकी कविता के समान यनिजी और विशिष्ट है। उनकी भाषा के अनेक स्तर होते हुए भी, उनमें चित्रात्मकता एवं ध्वन्यात्कता का एक समान गुण है जो उनकी रचना–प्रक्रिया की विशेषता प्रदान करता है।

शमशेर की रचना प्रक्रिया में भावोद्वेग शांत और गंभीर होता है जो भाषा के स्तर पर रूपाकार के द्वारा अभिव्यक्त होता है।

शमशेर के यहाँ भाषा के विविध स्तर एवं विभिन्न स्वाद हैं। सबसे मुख्य बात है कि उनकी रचना और संरचना दोनों ही दृष्टि से भाषा के प्रति उनकी सजगता आँकी जा सकती है। शमशेर की रचनात्मकता में उनकी 'भाषा' केन्द्रीय महत्व और आकर्षण का बिन्दु रही है।

भाषा के इन विभिन्न रूपों ओर स्तरों के बाद भी भाषा व्याकरण की छोटी से छोटी इकाई भी शमशेर के यहाँ महत्वपूर्ण है। अव्यय का सार्थक प्रयोग भाषा क्षमता को प्रस्तुत करता है।

असामान्य शब्द–संयोजना द्वारा उनकी कविताएँ नये अनुभव–विश्व को प्रकट करती हैं। बात कहने का ढंग उनके यहाँ नया है, अप्रचलित है, असामान्य है, अत: उनकी कविताएं विशिष्ट है। उनकी कविताओं में शब्द की अर्थक्ता महत्वपूर्ण है।

शमशेर ने भाषा का जो रूप अपनी कविताओं में प्रस्तुत किया है। वह उर्दू और हिन्दी दोनों का मिला–जुला समन्वित रूप है। वह सर्वथा उनका अपना निजी है। उर्दू और हिन्दी शब्द इतनी सहजता से उनकी कविता में एक साथ आते हैं। कि कविता में अजनबी नहीं लगते।

शमशेर की कविता में दोनों भाषाओं का स्तुत्य समन्वय है, संश्लेषण है। इसी सन्दर्भ में रामस्वरूप चतुर्वेदी का मत है– 'शमशेर ने दोनो काव्यभाषाओं में अलग–अलग रचना की है। और दोनों के वैशिष्ट्य को–यद्यपि बिना समझे मिलाया भी है। कवि के सन्दर्भ में स्पष्ट ही महत्व विश्लेषण का नहीं, संश्लेषण का है।'[3]

यथासम्भव कम शब्द प्रयोग से भावाभिव्यक्ति शमशेर के काव्य का विशिष्ट गुण है। इसमें व्यंजना की बात प्रमुख है। इसी प्रक्रिया में शब्दों का यदेहली दीपय प्रयोग उनकी रचनाओं में कई बार मिलता है। देहली दीप अर्थात वह शब्द जो दोनों पंक्तियों में समान रूप से अर्थ दीप्ति देता हो।

शमशेर की भाषा में छन्दात्मकता भी उल्लेखनीय है। शमशेर की कविता में छन्दोलय साम्राज्य इतना अधिक महत्व रखता है कि वह कविता का नाद सौन्दर्य बढ़ाती है। जैसे–

'तब छन्दों के तार खिंचे–खिंचे थे
राग बँधा–बँधा था
प्यास उँगलियों में विकल थी–
कि मेघ गरजे,
और मोर दूर और कई दिशाओं से
बोलने लगे–पीयूअ!पीयूअ! उनकी
हीरे–नीलम की गर्दनें बिजलियों की तरह
हरियाली के आगे चमक रही थीं।'[4]

शमशेर की कविता में गुम्फित छन्द, लय और प्रास को खोलते हुए अनुभव से, सुनते हुए ऐसी प्रतीत होती है कि वे कुशल काव्य–शिल्पी हैं। शमशेर की कवितायें सफल और यथोचित प्रभाव डालती हैं। वे खड़ी बोली को उर्दू के अधिक निकट मानते हैं। शमशेर ने अधिकतर मुक्त छन्द में लिखा है। उनकी मुक्त छन्दों की रचनाओं में लय कवच का काम करती हैं। शमशेर लयबद्ध कवि हैं। यह लयसिद्धि शमशेर के कवि कर्म की विशिष्टता है। शमशेर की कविता स्वर के आवर्तन से लयात्मक हो जाती है। शमशेर की कविता में यह उदाहरण देखने को मिलता है–

'लुटी–मीठी बाँसुरी की धुन
भूल सपनों के लिए बैठी
कौन चिलमन में
मौन रिमझिम की
आँसुओं लिपटी
–फिर कहाँ वह मन–कली–
ठुनकी खिली, ठहरी, झुकी मद–भार अलसाई गिरी
खोई कहीं सोई.......।'[5]

शमशेर की इस कविता में 'ई' के इतने आवर्तन कविता को लयात्मक बना देते हैं।

शमशेर बहादुर सिंह ऐसे प्रयोगवादी कवि हैं जिन्होंने शैली के क्षेत्र में नवीन प्रयोग किये हैं। इनमे प्रतीक, बिम्ब आदि के प्रयोग आते हैं।

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार 'प्रतीक जहाँ किसी भाव को जाग्रत करता है वहाँ बिम्ब अनेक भावों के संश्लेष और उसके विविध स्तरों को अनुभव में एक बारगी संक्रमित कर देता है।.........'[6] शमशेर अपनी कविता में साशय बिम्बों का निर्माण नहीं करते, फिर भी प्राय: सभी प्रकार के बिम्ब उनकी कविताओं में देखे जा सकते हैं। उनकी कविता एक ऐसा आईना है जिसमें न केवल इन्सानी शक्ले उभरती हैं, बल्कि उसके आस पास के बिम्ब प्रतिबिम्बित हुये हैं। शमशेर ने मानवीय–चेतना, मानवीय–पीडा, सुख–दुख, सौन्दर्य के सुन्दर और प्रासंगिक बिम्ब प्रस्तुत किये हैं। शमशेर के काव्य बिम्बों को कुछ विशेष बिन्दुओ के माध्यम से देखा जा सकता है।

शमशेर की भाषा प्रधानत: बिम्बात्मक है। शमशेर की कुछ कविताएँ व कुछ और कविताएँ, यकाल तुझसे होड़ हैं मेरी; 'बात बोलेगी', में बिम्ब प्रतीकों के सूक्ष्म संवेदन और चिन्तन-मनन की गहराई में डूबकर समझा जा सकता है। उनकी काव्यात्मक संवेदना और रचनात्मक चेतना जिन वर्ण्य-विषयों को छूती है वे बिम्ब बनते है

त्वचा द्वारा अनुभूति स्पर्श कहलाती है। यह चाहे बाह्य पदार्थ द्वारा हो या वायु एवं प्राणियों द्वारा अर्थात स्पर्श का सीधा सम्बन्ध त्वचा से है। डॉ0 नगेन्द्र के शब्दो में, स्पृश्य-बिम्ब में स्पर्शजन्य संवेदना के समन्वय से बिम्ब का निर्माण होता है। पेशल या कोमल, ककर्श, कठोर, आदि विशेषण इस प्रकार के स्पर्श-बिम्बों के वाचक शब्द हैं।'[7] शमशेर-कविता में ऐसी वृत्तियों और मानवीय स्पर्श की मॉसल अभिव्यक्ति हुई है। शमशेर द्वारा प्रयुक्त स्पृश्य बिम्बों के कुछ उदाहरण इस प्रकार है-

'मै उस स्थान को चूमना
चाहता हूँ
जहाँ उसने अपना सर रखा था
तुम्हारे वक्ष पर
वह स्थान बहुत ही मुकद्दस है
X X X
वह स्थान तुम्हारे वक्ष का
बहुत ही पवित्र है
तुम्हारे होंटों पर
जहाँ उसने अपने होंट
रखे थे।'[8]

-'गिली मुलायम लटें
आकाश
सॉवलापन रात का गहरा सलोना
स्तनों के बिंबित उभार लिए।'[9]

-'साडियों के-से नमूने चमन में उड़ते छबीले; वहाँ
गुनगुनाता भी सजीला जिस्म वह
जागता भी
मौन सोता भी, न जाने
एक दुनियाँ की
उमीद-सा
किस तरह!'[10]

-'खसर-खसर एक चिकनाहट
हवा में मक्खन-सा घोलती है
नींद-भरी आलस की भोर का
कुंज गदराया है
यौवन के सपनों में
कभी अनजान मानो।'[11]

'मुलायम बाँहों-सा अपनाव
पलकों पर हौले-हौले
तुम्हारे फूल-से पाँव
मानों भूल कर पड़ते
हृदय के सपनों पर।'[12]

'क्यारी
भरी गेंदा की
स्वर्णारक्त
क्यारी भरी गेंदा की:
तन पर
खिली सारी-
अति सुन्दर! उठाओ।
निज वक्ष।'[13]

इस बिम्ब का सम्बन्ध कर्णेन्द्रिय से होता है। डॉ0 नगेन्द्र इसके सम्बन्ध में कहते हैं, 'वर्ण-ध्वनि, छान्दसल', तुकांत आदि के बिम्ब श्रव्य हैं अनुप्रास, वृत्ति आदि से भी श्रव्य बिम्बों का उत्पादन होता है'[14] साहित्य सृजन में ध्वनि बिम्बों का विशेष महत्व है। नाद-बिम्ब की दृष्टि से प्राकृतिक ध्वनियाँ, वस्तु-ध्वनियों, संगीत-ध्वनियों को शामिल कर सकते हैं। शमशेर-कविता में नाद (ध्वनि-बिम्बों) का प्रयोग प्रभावशाली है।

प्रतीक का शाब्दिक अर्थ है। - संकेत-चिन्ह, प्रतिरूप आदि। प्रतीक वह शब्द चिन्ह है जो किसी वस्तु का बोध कराते हैं। यह उस वस्तु के लिए प्रयुक्त होता है जो अगोचर हो या कहा जा सकता है कि किसी अदृश्य वस्तु या भाव को स्पष्ट करने के लिए जो शब्द प्रयोग किया जाता है, उसे ही प्रतीक कहते हैं। इस सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि अनेक भाव, दृश्य अमूर्त होते हैं, उन्हें प्रस्तुत करने के लिए एक मूर्त भाव या दृश्य खड़ा किया जाता है। यह मूर्त भाव या दृश्य जिस शब्द चिन्ह के माध्यम से खड़ा होता है, उसे ही प्रतीक कहा जा सकता है। प्रतीकों का जन्म ही कम से कम शब्दो के माध्यम से अधिक से अधिक अर्थ व्यक्त करने की प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप हुआ है। यथार्थ जीवन के साहचर्य से ही प्रतीकों में अर्थ भरता और बदलता रहता है। मनुष्य के व्यक्तिगत अनुभव से असंपृक्त रहकर न तो उसमें अर्थ आता है न व्यक्तित्व। काव्यात्मक प्रतीकों में जहाँ भावोद्बोधन की क्षमता विद्यमान होती है, वहीं वे अर्थ की विपुलता के निमित्त भी अपना विशेष सहयोग प्रदान करते हैं।

शमशेर कविता में मनोविज्ञान, विज्ञान, समाज, राजनीति, गणित, प्रकृति कला, यात्रा बोध और ध्वनि में प्रतीक अनुभूति को विस्तार देते हैं। उनके प्रतीकों का रूप उनके शिल्प-योजनानुरूप बड़ा है। शमशेर की इससे संवेदना जुडी है। शमशेर की कविता में प्रतीक सूक्ष्म हैं। वे भावों को सीधे अविधा में न बाँधकर व्यंजना के द्वारा व्यक्त करते हैं। उनकी कविता में प्रतीक रोमानी-पौराणिक, यथार्थपरक वैज्ञानिक-दार्शनिक-आध्यात्मिक परम्परा से सम्बन्धित होकर अपनी अलग पहचान रखते है। शमशेर ने प्रतीकों के माध्यम से अपनी प्रयोगधर्मिता को उदात्त्ता प्रदान की है। उनके काव्य में प्रस्तुत प्रतीकों को इस प्रकार रख सकते है-

समाजिक प्रतीक -मार्क्सवादी विचारों से प्रभावित शमशेर की कविताओं में यथार्थपरक जन-जीवन समाज के विविध प्रतीक गहरे हैं। उनकी कविता का समाज बड़ा होते हुए भी शिविरों-शामियानों में बाँट कर देखने के कारण छोटा दिखाई देता है शमशेर की कविता में जन-जीवन के बहुरंगी रूप-रंग हैं, जिनको विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से सजाया है-

'हम नंगे बदन रहते हैं
झुलसे घोसलों में
X X X
हमारे अपने नेता भूल जाते हैं हमे जब
भूल जाता है जमाना भी उन्हें, हम भूल पाते हैं उन्हें खुद।'[15]

शमशेर के काव्य में उपेक्षित–पीडित–दलित मानव के प्रति सहानुभूति का भाव विद्यमान है। दीन के जीवन और दयनीय और करूण स्थिति से शमशेर ने निजता स्थापित की है। उनकी करूण–कथा और दारूण–दशा को अपना स्वर दिया है–

'होंट में सो गए शब्द
भाव में खो गए स्वर
एक पल हो गए कितने शब्द
मौन है घरा।'[16]

शमशेर के प्रतीक उनके अनुभवों के शाब्दिक प्रतिरूप हैं। उन्हें कवि ने अपने आसपास के परिवेश से उठाया है। शमशेर ने समाज में व्याप्त दुर्व्यवस्था पर क्षोम–आक्रोश प्रकट किया है।

निष्कर्ष – इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि शमशेर के काव्य में– भाव– शिल्प– कला की दृष्टि से नए–नए प्रयोगों की सुचिंतित श्रृंखला है। उसमें उनके शायर की गहरी अनुभूति है। वे कहीं–कहीं दुरूह –दुष्कर भाषा से अलग बोलचाल की भाषा और देशज शब्दों का प्रयोग कर अपने भावों की नई भंगिमा प्रदान करते हैं। शमशेर की भाषा साधना की भाषा है। उन्होंने भाषा को तराश– तराश कर उसकी खराश नष्ट कर दी है। शमशेर की भाषा प्रधानत: बिंबात्मक है। शमशेर की कविता में बिंबो, प्रतीकों, रूपकों, उपमानों के सूक्ष्म संवेदन और चिंतन– मनन की गहराई में डूब कर समझा जा सकता है। शमशेर के काव्य में नांद बिम्ब ,स्पर्श बिम्ब ,रुप बिम्ब ,अस्वाद्य बिम्ब, गंधा बिम्ब, प्रकृति बिम्ब आदि की अभिव्यक्ति हुई है। इस प्रकार उक्त शोधपत्र की शोधात्मक विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि शमशेर बहादुर सिंह के काव्य में में भाषा, बिम्ब और प्रतीक की चेतनाएं विद्यमान हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. सर्वेश्वर का काव्य–संवेदना और संप्रेषण ,डॉ. हरिचरण शर्मा, पृष्ठ संख्या 156,पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
2. कविता के सौ वरस, लीलाधर मंडलोई, पृष्ठ संख्या 358, प्रेरणा प्रकाशन, भोपाल।
3. नई कविताएं–एकसाक्ष्य, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ संख्या 87 ,लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
4. टूटी हुई बिखरी हुई ,शमशेर बहादुर सिंह, पृष्ठ संख्या 129, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. कुछ कविताएं व कुछ और कविताएं, शमशेर बहादुर सिंह, पृष्ठ संख्या 153, राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. कवियों के कवि शमशेर, रंजना अरगड़े, पृष्ठ संख्या 134, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. नई कविताएं– एक साक्ष्य , रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ संख्या 24, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
8. काव्य बिंब, डॉ. नगेंद्र, पृष्ठ संख्या 09, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
9. काल तुझसे होड़ है मेरी, शमशेर बहादुर सिंह, पृष्ठ संख्या 64, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
10. कुछ कविताएं व कुछ और कविताएं, शमशेर बहादुर सिंह, पृष्ठ संख्या 48, राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली।
11. कुछ कविताएं व कुछ और कविताएं, शमशेर बहादुर सिंह, पृष्ठ संख्या 65, राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली।
12. कुछ कविताएं व कुछ और कविताएं, शमशेर बहादुर सिंह, पृष्ठ संख्या 62, राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली।
13. कुछ कविताएं व कुछ और कविताएं, शमशेर बहादुर सिंह, पृष्ठ संख्या 36, राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली।
14. कुछ कविताएं व कुछ और कविताएं, शमशेर बहादुर सिंह, पृष्ठ संख्या 138, राधाकृष्णन प्रकाशन नई दिल्ली।
15. काव्य बिंब, डॉ नगेंद्र, पृष्ठ संख्या 09, राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली।
16. इतने पास अपने, शमशेर बहादुर सिंह, पृष्ठ संख्या 33 ,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

लघु एवं संक्रमणशील नगरीय क्षेत्रों में स्थित कृषि उपज मण्डीयों की आय एवं व्यय का तुलनात्मक अध्ययन (राजगढ़ एवं विदिशा जिले के विशेष संदर्भ में)

मुकेश शाक्यवार* डॉ.सुनील आडवानी**

* सहायक प्राध्यापक, ने.सु.बोस शासकीय महाविद्यालय, ब्यावरा एवं शोधार्थी,विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत
** सहायक प्राध्यापक, बाल कृष्ण शर्मा नवीन शासकीय महाविद्यालय, शाजापुर (म.प्र.) भारत

शब्द कुंजी –लघु नगरीय क्षेत्र – नगर पालिका क्षेत्र, संक्रमण नगरीय क्षेत्र – नगर पंचायत क्षेत्र कृषि उपज मण्डी– वह संस्था जहॉ शासन की निगरानी में कृषि उपजों का क्रय विक्रय किया जाता है।

प्रस्तावना– वर्तमान में 60 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भरता रखती है। अल्पकालीन निवेश पर आधारित होने के कारण जोखिम अधिक होती है। कृषकों को कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए विविध प्रकार से मार्गदर्शन किया जाता है। कृषि के अंतर्गत खेती के अतिरिक्त पशुपालन, उद्यानिकी, वानिकी तथा कृषि प्रसंस्करण शामिल किया जाता है, यह निजी क्षेत्र का बड़ा भाग होता है। इसी परिपेक्ष में कृषि के विकास के लिए एक कुशल वितरण प्रणाली आवश्यक है इस कार्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका संगठित कृषि उपज मण्डियां निभा सकती हैं। कृषि उपज मण्डी विभिन्न प्रकार की कृषि उपज के लिए व्यावसायिक एवं वाणिज्यिक गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए प्रमुख भूमिका तय करती है। जहां कृषक वर्गों द्वारा अपनी उपज को विपणन हेतु लाया जाता हैं, जिसके लिए व्यापारियों को उपज खरीदने का अवसर प्रदान किया जाता है। कृषि उपज मण्डी में कृषि उपज के विपणन के साथ–साथ अन्य विभिन्न प्रकार की गतिविधियां तथा सुविधा उपलब्ध कराई जाती है। इस प्रकार कृषि उपज के लिए पर्याप्त बाजार संभावनाएं तय करने के साथ–साथ उपज के तौलने, नीलामी उपज का श्रेणीकरण तथा वर्गीकरण इत्यादि के साथ–साथ कृषक वर्गो को उपज का उचित मूल्य प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका रखती है। इस प्रकार कृषि उपज मण्डी परिसर में विभिन्न प्रकार के संसाधनों की एवं संसाधनों के साथ–साथ सुविधाओं के बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रकार के व्ययों का प्रावधान किया जाता है।

अध्ययन का उद्देश्य–ब्यावरा एवं लटेरी मण्डी समितियों के पूंजीगत–आगत आय – व्यय योग एवं बचत का अध्ययन करना।

अध्ययन की शोध प्रविधि– इस अध्ययन के लिएक्षेत्र निधारण हेतु हमारे द्वारा सविचार, उद्देश्य पूर्ण निदर्शन विधि का प्रयोग किया गया है। विश्लेषण हेतु द्वितीयक समंको का संकलन साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से किया गया है। ऑकडों का सारणीयकरण करके औसत, प्रतिशत, प्रमाप विचलन आदि सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन का क्षेत्र एवं सीमा– इस अध्ययन हेतु हमारे द्वारा लघु नगरीय क्षेत्र मण्डी के रूप में राजगढ़ जिले के ब्यावरा नगर की कृषि उपज मण्डी को तथा सक्रमणशील नगरीय क्षेत्र की मण्डी के रूप में विदिशा जिले के लटेरी नगर स्थित कृषि उपज मण्डी का चयन उद्देश्य पूर्ण सविचार निदर्शन विधि द्धारा किया गया है। साथ ही समयसीमा के रूप मे विगत पॉच वित्तीय वर्षो (2018–19 से 2022–23) को लिया गया है।

अध्ययन के लिये चयनित कृषि उपज मण्डी समितियों के आय–व्यय का व्यौरा,विश्लेषण एवं निष्कर्ष–

कृषि उपज मण्डी समिति आय– कृषि उपज मण्डी समिति की प्रमुख आय मण्डी शुल्क के रूप में होती है। साथ ही व्यापारियों को लाइसेंस प्रदान करने के लिए निर्धारित शुल्क के साथ वसूली जाती है। जो आय का प्रमुख साधन माना जाता है। साथ ही कृषि उपज मण्डी परिसर में गोदाम के किराए से प्राप्त होने वाली आय विभिन्न प्रकार के निविदा एवं प्रपत्रों के विक्रय से आय इत्यादि के रूप में प्राप्त होती है। इस प्रकार कृषि उपज मण्डी समिति के द्धारा बैंक खाता उपलब्ध होता है। जिसमें निर्धारित राशि जमा रहती है जो ब्याज के रूप में प्राप्त होती है इसी परिपेक्ष में कृषि उपज मण्डी समिति की विभिन्न प्रकार की आय की विवेचना बिंदुवार की गई है। जिसके लिए कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी तथा कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा के मध्य आय संबंधी गतिविधियों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

मण्डी शुल्क–

तालिका क्रमांक 01 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

तालिका 1 से स्पष्ट है कि यदि तुलनात्मक रूप से प्रमाप विचलन गुणांक में तुलना किया जाए तो परिवर्तन देखा गया है जिसमें कृषि उपज मंडी समिति लटेरी का विचरण गुणांक 33.35 प्रतिशत प्राप्त हुआ है तथा कृषि उपज मंडी समिति ब्यावरा का विचरण गुणांक 32.29 प्रतिशत पाया गया है।

निष्कर्ष– दोनों की स्थिरता में अंतर देखा जाए तो कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी की अपेक्षा कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा की प्रतिवर्ष आय में स्थिरता अधिक है। अर्थात कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा की विचरण गुणांक कम होने के कारण मण्डी शुल्क की प्राप्ति में अनियमितता अधिक है।

अनुज्ञप्ति शुल्क–

तालिका क्रमांक 02 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

तालिका 2 से स्पष्ट है कि कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी एवं कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा में अनुज्ञापन शुल्क की प्राप्ति में अंतर पाया

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

गया है। क्योंकि लटेरी कृषि उपज मण्डी समिति का कार्य क्षेत्र कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा की अपेक्षा कम है। इस कारण अनुपातिक वसूली की दृष्टि से सर्वाधिक वसूली कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा की होनी चाहिए थी परंतु अध्ययन में अनुज्ञापन राशि की वसूली कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी की पाई गई है। यदि विचरण गुणांक की दृष्टि से अध्ययन किया जाए तो कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी का विचरण गुणांक 65.70 प्रतिशत की दर से पाया गया है तथा कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा का विचरण गुणांक 75.58 प्रतिशत की दर से पाया गया है।

निष्कर्ष– स्थिरता एवं नियमितता की दृष्टि से कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा का विचरण गुणांक अधिक पाया गया है तथा कृषि उपज मंडी समिति लटेरी का विचरण गुणांक कम पाया गया है। इस दृष्टि से अनुज्ञापन शुल्क की प्राप्ति में स्थिरता कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी में स्थिरता अधिक दर्शा रहा है जबकि कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा में प्राप्ति में स्थिरता कम दर्शा रहा है।

भूखंड एवं गोदाम किराया–

तालिका क्रमांक 03 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

तालिका 3 से स्पष्ट है कि कृषि उपज मण्डी परिसर में छोटे–छोटे व्यापारियों को दुकान एवं खरीदी बिक्री के लिए भूमि एवं भवन उपलब्ध कराया जाता है। जो कृषि उपज मण्डी में उपज को बेचने के लिए आने वाले कृषकों को चाय नाश्ते एवं खरीदी के लिए सुविधा उपलब्ध कराई जाती हैं इस प्रकार कृषि उपज मण्डी समिति के लिए आय का हिस्सा होता है। साथ ही व्यापारियों द्वारा विपणन के दौरान खरीदी गई उपज के भंडारण के लिए गोदाम किराए पर उपलब्ध कराया जाता है। जिससे नियत दर से कृषि उपज मण्डी समिति को आय प्राप्त होती है। यदि प्रमाप विचलन गुणांक में तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी का विचरण गुणांक 0.22 प्रतिशत की दर से दर्शा रहा है तथा कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा का विचरण गुणांक 0.21 प्रतिशत की दर से दर्शा रहा है।

निष्कर्ष– कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी एवं कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा के विचरण गुणांक में सामान्यत: कोई अंतर नहीं दर्शा रहा है। इस प्रकार दोनों में भूखंड एवं गोदाम किराए की प्राप्ति दर की स्थिरता एवं नियमितता समान रूप से पाई गई है।

जुर्माना एवं प्रपत्र विक्रय से प्राप्ति –

तालिका क्रमांक 04 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

तालिका 4 से स्पष्ट है कि जुर्माने की राशि की प्राप्ति सामान्यत: नियमों के उल्लंघन की दशा में, बिना अनुमति के नीलामी प्रक्रिया में भाग लेना तथा बगैर किसी अनुमति के उपज को कृषि उपज मण्डी परिषद से निकास किया जाना इत्यादि के आधार पर जुर्माने का प्रावधान किया गया है। इस प्रकार कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी एवं कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा के मध्य विचरण गुणांक के आधार पर तुलना की जाए तो दोनों की आए परिवर्तन में स्थिरता की दृष्टि से परिवर्तन देखा गया है। जिसमें कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी का विचरण गुणांक 15 प्रतिशत की दर से पाया गया है तथा कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा का विचरण गुणांक 19.66 प्रतिशत की दर से पाया गया है।

निष्कर्ष– कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा की अपेक्षा कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी की जुर्माना एवं प्रपत्र के विक्रय से होने वाली आय में स्थिरता एवं नियमितता अधिक पाई गई है।

कृषि उपज मंडी को ब्याज से प्राप्तियां

तालिका क्रमांक 05 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

तालिका 5 से स्पष्ट है कि कृषि उपज मण्डी समितियों को विभिन्न प्रकार की जमाओ एवं कर्मचारियों को दिए गए ऋणों पर प्राप्त ब्याज से होती है। साथ ही विभिन्न प्रकार के वसूले जाने वाली शुल्क के भुगतान करने में कोई भी व्यापारी देरी करता है तो दंड स्वरूप ब्याज के साथ शुल्क जमा करवाया जाता है। जो आय का विशेष साधन माना जाता है। इस प्रकार कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी एवं कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा के विचरण गुणांक की दृष्टि से तुलना किया जाए, तो दोनों कृषि उपज मण्डी समिति की आय की स्थिरता में अंतर प्राप्त होता है। जिसमें कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी का विचरण गुणांक 45.49 प्रतिशत रहा है तथा कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा का विचरण गुणांक 52.02 प्रतिशत रहा है।

निष्कर्ष– दोनों उपज मण्डी की तुलना में कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी का विचरण गुणांक कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा के विचरण गुणांक की अपेक्षा कम है। ऐसी स्थिति में कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी को प्राप्त होने वाले ब्याज में स्थिरता एवं नियमितता अधिक है।

अनुदान एवं विविध आय–

तालिका क्रमांक 06 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

तालिका 6 से स्पष्ट है कि विविध आई की प्राप्ति की दृष्टि से कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी की सर्वाधिक आय वर्ष 2019–20 में 4.82 लाख रुपए की प्राप्ति हुई है तथा सबसे कम आए वर्ष 2022–23 में 0.48 लाख रुपए की प्राप्ति हुई है। इस प्रकार औसतन आय कि प्रतिवर्ष प्राप्ति 2.55 लाख रुपए की रही है।

कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा की सर्वाधिक प्राप्ति वर्ष 2018–19 में 8.94 लाख रुपए की प्राप्ति हुई है, जबकि सबसे कम प्रति वर्ष वर्ष 2022–23 में 0.87 लाख रुपए की विविध आय के रूप में प्राप्ति हुई है जो औसतन 4.55 लाख रुपए प्रति वर्ष मानी गई है।

निष्कर्ष– दोनों कृषि उपज मंडियों का तुलनात्मक अध्ययन किए जाने से स्थिरता में अंतर देखा गया है। अर्थात कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा की अपेक्षा कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी की विविध आय में स्थायित्व एवं नियमितता अधिक पाई गई है।

कृषि उपज मण्डी के संचालन व्यय– किसी भी संस्थाओं के संचालन के लिए आवश्यकता अनुरूप व्ययों की आवश्यकता होती है। जिसके लिए बजट का प्रावधान किया जाना होता है। सामान्यत: विभिन्न प्रकार की गतिविधियों के संचालन के लिए विविध प्रकार के व्ययों की आवश्यकता होती है। इसके प्रबंधन के लिए स्वयं के स्रोतों का निर्धारण करना होता है। कृषि उपज मण्डी संचालन से विविध प्रकार की आय प्राप्ति की संभावना बनी रहती है। जिसके आधार पर आवश्यकता अनुसार व्यय करने का प्रावधान किया जाता है। सामान्य दृष्टि से संस्थानों नियमित कर्मचारी के वेतन व भत्तो के लिए शासन द्वारा बजट का प्रावधान किया जाता है। इसके अतिरिक्त संस्थान के आंतरिक गतिविधियों के संचालन हेतु कोष निर्धारित किया जाता है। जो विभिन्न प्रकार की गतिविधियां संचालित करने में सहायक होती है। जिसका विश्लेषण विभिन्न मदों को केंद्रित करते हुए किया गया है।

कार्यालयीन एवं गोदाम व्यय–

तालिका क्रमांक 07 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

तालिका 7 से स्पष्ट है कि कार्यालयीन एवं गोदाम व्यय कृषि उपज

मण्डी समितियां के महत्वपूर्ण व्यय माने गए हैं। जो कार्यालय एवं गोदाम के संचालन पर नियमित रूप से किया जाता है। जिसके आधार पर विभिन्न प्रकार की गतिविधियां संचालित होते रहती है। जो परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तनशील मानी गई है। यदि विचरण गुणांक की दृष्टि से कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी एवं कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा में तुलना किया जाए तो उनके व्ययों में स्थिरता एवं अनियमितता में अंतर देखा गया है। इस प्रकार विचरण गुणांक 19.2 प्रतिशत पाया गया तथा कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा का विचरण गुणांक 21.55 प्रतिशत की दर से पाया गया है।

निष्कर्ष– दोनों का तुलनात्मक रूप से कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा की अपेक्षा कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी में कार्यालय में किए जाने वाले व्ययों की दृष्टि से अनियमितता एवं स्थिरता अधिक है।

प्रत्यक्ष व्यय–

तालिका क्रमांक 08 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

तालिका 8 से स्पष्ट है कि प्रत्यक्ष व्यय के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के ऐसे व्ययों को शामिल किया जाता है, जिनकी अनिवार्यता निश्चित है। जिसमें विशेष रूप से मण्डी बोर्ड शुल्क शामिल है। साथ ही स्थाई निधि के रूप में अनिवार्य व्यय को शामिल किया गया है। इस प्रकार कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी एवं कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा के मध्य प्रत्यक्ष व्यय के संदर्भ में विचरण गुणांक के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो अंतर पाया गया है। कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी का विचरण गुणांक 11.93 प्रतिशत पाया गया तथा कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा का विचरण गुणांक 12.63 प्रतिशत पाया गया है।

निष्कर्ष– स्थिरता एवं नियमितता की दृष्टि से कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावर की अपेक्षा कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी के प्रत्यक्ष व्यय में नियमितता एवं स्थायित्व अधिक पाया गया है।

स्थाई संपत्ति एवं निर्माण से संबंधित व्यय–

तालिका क्रमांक 09 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

तालिका 9 से स्पष्ट है कि प्रमाप विचलन गुणांक के आधार पर कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी एवं कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा के मध्य तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी का विचरण गुणांक 28.22 प्रतिशत प्राप्त हुआ है तथा कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा का विचरण गुणांक 47.65 प्रतिशत पाया गया है। इस प्रकार कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा की अपेक्षा कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी का विचरण गुणांक तुलनात्मक दृष्टि से कम पाया गया है।

निष्कर्ष– व्ययों के नियमितता एवं स्थायित्व की दृष्टि से कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी की स्थिति में नियमितता एवं स्थायित्व अधिक बेहतर है।

कृषि उपज मण्डी समिति की बचत– किसी भी संस्था की आय और व्यय की स्थिति समय अनुरूप निर्धारित होती है जो अंतर के आधार पर बचत तय करती है। यही बचत संस्था की आर्थिक स्थिति को दर्शाता है तथा निवेश क्षमता को बढ़ावा देता है कृषि उपज मण्डी समिति की विविध स्रोतों से आय का अनुमान लगाया जाता है तथा आवश्यकता अनुसार व्ययों का प्रावधान किया जाता है। इस प्रकार बचत विभिन्न प्रकार के व्ययों पर अतिरेक माना जाता हैं। यह अतिरेक संस्था का भविष्य तथा स्थायित्व को सही दिशा प्रदान करता है। जो उसकी संपन्नता एवं विकास का मार्गदर्शन के रूप में कार्य करता है। कृषि उपज मण्डी समितियां की बचत की विवेचना तालिका क्रमांक 10 में स्पष्ट किया गया है–

तालिका क्रमांक 10 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

कृषि उपज मंडियों की प्रतिवर्ष होने वाली आय–व्यय के अंतर से होने वाली बचत की दृष्टि से कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी की सर्वाधिक बचत वर्ष 2022–23 में 16.29 लाख रुपए की रही है तथा सबसे कम बचत वर्ष 2018–19 में 2.70 लाख रुपए की रही है। इस प्रकार प्रतिवर्ष औसतन बचत 7.83 लाख रुपए की होती है। इस प्रकार कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा की सर्वाधिक बचत वर्ष 2020–21 में 76.78 लाख रुपए की रही है। जबकि सबसे कम बचत वर्ष 2018–19 में 11.22 लाख रुपए की रही है। औसतन 45.72 लाख रुपए प्रतिवर्ष बचत को दर्शाया गया है।

निष्कर्ष– अध्ययन से स्पष्ट है कि किसी भी संस्था की आय–व्यय में सदैव परिवर्तन होता रहता है जो लाभ हानि तथा बचत का निर्धारण भी करती है। यदि आय में वृद्धि होती है तथा व्यय में कमी होती है तो बचत की संभावना अधिक बढ़ जाती है। जब खर्चो में नियंत्रण एवं कटौती अधिक की जाती है तो बचत की स्थिति बेहतर होती हैं। यदि खर्चो में वृद्धि होती है तो बचत की संभावना कम होने लगती है इस प्रकार बचत में होने वाले परिवर्तन के स्थायित्व एवं नियमितता को जानने के लिए विचरण गुणांक को आधार मानकर कृषि उपज मंडी समिति लटेरी तथा कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा में तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी का विचरण गुणांक 64.88 प्रतिशत रहा है तथा कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा का विचरण गुणांक 56.52 प्रतिशत रहा है। तुलनात्मक दृष्टि से कृषि उपज मण्डी समिति लटेरी की अपेक्षा कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा का विचरण गुणांक कम पाया गया है। कृषि उपज मण्डी समिति ब्यावरा की बचत में नियमितता एवं स्थायित्व अधिक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:–

1. भारत सरकार 'कृषि सांख्यिकी' कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, नई दिल्ली, 2021
2. भारती एवं पांडे 'भारतीय अर्थव्यवस्था' मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2019
3. एस.के. मिश्रा एवं वी.के. पुरी 'भारतीय अर्थव्यवस्था' हिमालय पब्लिशिंग हाउस, मुंबई, 2022
4. एन एल अग्रवाल 'भारतीय कृषि का अर्थ तंत्र' राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2018
5. कृष्ण कुमार दमाहिया 'कृषि विकास की समस्या' मित्तल पब्लिकेशंस से नई दिल्ली, 2001
6. रुद्र दत्ता एवं सुंदरम 'भारतीय अर्थव्यवस्था' एस चंद्र एंड कंपनी लिमिटेड नई दिल्ली, 2019
7. संजीव कुमार 'समेकित कृषि प्रणाली' न्यू इंडिया पब्लिशिंग एजेंसी नई दिल्ली, 2008
8. विष्णु दत्ता नगर 'भारतीय अर्थव्यवस्था' मध्य राज्यपाल एंड सन्स, दिल्ली, 2002
9. सी. रंगराजन 'भारत के अर्थ नीति' राजपाल एंड सन्स, दिल्ली, 2002
10. जिला सांख्यिकी पुस्तिका राजगढ़ जिला, जिला योजना विभाग, राजगढ़, 2021
11. जिला सांख्यिकी पुस्तिका विदिशा जिला, जिला योजना विभाग, विदिशा 2020

12. हरीश कुमार खत्री 'शोध प्रविधि' कैलाश पुस्तक सदन भोपाल 2023 एमडी अग्रवाल शोध प्रणाली एवं सांख्यिकी प्रविधियां रमेश बुक डिपो 2018
13. आर.पी. गुप्ता रीवा जिले में कृषि उपज की विपणन व्यवस्था-एक अध्ययन स्वदेशी रिसर्च फाउंडेशन 2020
14. राजेश जैन मध्य प्रदेश की कृषि उपज मंडी का कृषकों की आर्थिक उन्नति में योगदान (इंदौर संभाग के विशेष संदर्भ में), देवी अहिल्या विश्वविद्यालय 2016
15. शिल्पा गुप्ता कृषि विपणन का समीक्षात्मक अध्ययन (रीवा जिले के विशेष संदर्भ में) इंटरनेशनल जनरल आफ एडवांस्ड रिसर्च एंड डेवलपमेंट 2018
16. निशी शुक्ला उत्तार प्रदेश में कृषि उपज की विपणन प्रणाली में मंडी परिषद के योगदान का विश्लेषणात्मक अध्ययन छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, 2011
17. केदार श्रीवास कृषि उपज मंडी समिति की कार्यप्रणाली का तुलनात्मक अध्ययन (ग्वालियर, धौलपुर एवं आगरा मंडी के विशेष संदर्भ में) 2020
18. वर्षा मोदी कृषि उपज मंडी नागदा : एक आर्थिक विश्लेषण विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन 2012
19. राजेंद्र कुमार सिंह ठाकुर कृषि उपज मंडी समिति की कार्यप्रणाली एवं उपलब्धियों का आलोचनात्मक मूल्यांकन पंडित रवि शंकर शुक्ल विश्वविद्यालय ग्वालियर 2004
20. एस.के. चौधरी मध्यप्रदेश में कृषि विकास के आयाम 2021
21. मध्य प्रदेश कृषि उपज मंडी अधिनियम 1972, मध्य प्रदेश राज्य कृषि विपणन बोर्ड भोपाल 2005
22. वेबसाइट- मध्य प्रदेश राज्य कृषि वितरण बोर्ड भोपाल 2023
23. वार्षिक रिपोर्ट कृषि उपज मंडी समिति लटेरी 2018-19, 2019-20, 2020-21, 2021-22, 2022-23
24. वार्षिक रिपोर्ट कृषि उपज मंडी समिति ब्यावरा 2018-19, 2019-20, 2020-21, 2021-22, 2022-23

शोध पत्रिकाओं की सूची:-

1. शोध समीक्षा एवं मूल्यांकन, जयपुर
2. रिसर्च लिंक, इंदौर मध्य प्रदेश
3. नवीन शोध संसार, नीमच
4. रिसर्च एनालिसिस एंड इवेलुएशन जयपुर
5. कुरुक्षेत्र मासिक सूचना प्रसारण मंत्रालय नई दिल्ली 6. योजना मासिक सूचना प्रसारण मंत्रालय नई दिल्ली

दैनिक समाचार पत्र पत्रिकाओं की सूची:-

1. दैनिक भास्कर, इंदौर
2. दैनिक भास्कर, भोपाल
3. दैनिक पत्रिका, इंदौर
4. दैनिक नई दुनिया, इंदौर
5. दैनिक जागरण चौथा संसार, इंदौर

तालिका क्रमांक 01 मण्डी शुल्क की स्थिति (राशि लाख रुपए में)

वर्ष	कृषि उपज मण्डी लटेरी		कृषि उपज मण्डी ब्यावरा	
	राशि	प्रतिशत परिवर्तन	राशि	प्रतिशत परिवर्तन
2018-19	241.35	-	665.75	-
2019-20	245.41	1.68	698.39	4.90
2020-21	281.92	14.88	679.82	(-) 2.66
2021-22	175.13	(-) 37.88	625.87	(-) 7.94
2022-23	104.45	(-) 40.36	250.28	(-) 60.01
औसत	209.65	(-) 15.42	584.02	(-) 16.43
प्रमाप विचलन	59.91	-	188.58	-
विचरण गुणांक	33.35	-	32.29	-

स्रोत- वार्षिक रिपोर्ट कृषि उपज मंडी समिति

तालिका क्रमांक 02 अनुज्ञप्ति शुल्क की प्राप्ति की स्थिति (हजार रुपए में)

वर्ष	कृषि उपज मण्डी लटेरी		कृषि उपज मण्डी ब्यावरा	
	राशि	प्रतिशत परिवर्तन	राशि	प्रतिशत परिवर्तन
2018-19	8.63	120.16	11.40	-
2019-20	19.00	276.84	5.20	(-) 54.39
2020-21	71.60	(-) 38.90	34.28	55.92
2021-22	43.57	(-) 9.69	43.70	27.48
2022-23	39.51		64.51	47.62
औसत	36.50	87.10	31.82	19.16
प्रमाप विचलन	23.98	-	24.05	-
विचरण गुणांक	65.70	-	75.58	-

स्रोत- वार्षिक रिपोर्ट कृषि उपज मण्डी समिति

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

तालिका क्रमांक 03 भूखंड एवं गोदाम किराए से प्राप्ति की स्थिति (लाख रुपए में)

वर्ष	कृषि उपज मण्डी लटेरी		कृषि उपज मण्डी ब्यावरा	
	राशि	प्रतिशत परिवर्तन	राशि	प्रतिशत परिवर्तन
2018-19	1.95	-	6.83	-
2019-20	2.82	44.62	10.64	55.78
2020-21	1.54	(-) 45.39	8.61	(-) 19.08
2021-22	1.73	12.34	11.17	29.73
2022-23	2.29	32.37	5.87	(-) 47.45
औसत	2.07	10.99	8.62	4.75
प्रमाप विचलन	0.45	-	1.80	-
विचरण गुणांक	0.22	-	0.21	-

स्रोत- वार्षिक रिपोर्ट कृषि उपज मण्डी समिति

तालिका क्रमांक 04 जुर्माना एवं प्रपत्र विक्रय से प्राप्त आय की स्थिति

वर्ष	कृषि उपज मण्डी लटेरी		कृषि उपज मण्डी ब्यावरा	
	राशि	प्रतिशत परिवर्तन	राशि	प्रतिशत परिवर्तन
2018-19	0.51	-	1.46	-
2019-20	0.42	(-) 17.65	1.36	(-) 6.85
2020-21	0.39	(-) 7.14	1.02	(-) 25.00
2021-22	0.31	(-) 20.51	0.93	(-) 8.82
2022-23	0.48	54.84	1.07	15.05
औसत	0.42		1.17	(-) 25.62
प्रमाप विचलन	0.063	-	0.23	-
विचरण गुणांक	15.00	-	19.66	-

स्रोत- वार्षिक रिपोर्ट कृषि उपज मण्डी समिति

तालिका क्रमांक 05 कृषि उपज मण्डी समिति को ब्याज से आय की स्थिति (लाख रुपए में)

वर्ष	कृषि उपज मण्डी लटेरी		कृषि उपज मण्डी ब्यावरा	
	राशि	प्रतिशत परिवर्तन	राशि	प्रतिशत परिवर्तन
2018-19	6.49	-	18.88	-
2019-20	6.89	6.16	19.33	2.38
2020-21	15.28	131.23	50.60	161.77
2021-22	7.31	(-) 54.26	24.05	(-) 52.47
2022-23	5.44	(-) 25.58	13.32	(-) 44.62
औसत	8.42	14.56	25.24	16.77
प्रमाप विचलन	3.83	-	13.13	-
विचरण गुणांक	45.49	-	52.02	-

स्रोत- वार्षिक रिपोर्ट कृषि उपज मण्डी समिति

तालिका क्रमांक 06 अनुदान एवं विविध आय प्राप्ति की स्थिति (लाख रुपए में)

वर्ष	कृषि उपज मण्डी लटेरी		कृषि उपज मण्डी ब्यावरा	
	राशि	प्रतिशत परिवर्तन	राशि	प्रतिशत परिवर्तन
2018-19	4.21	-	7.19	-
2019-20	4.82	14.49	8.94	24.34
2020-21	1.96	(-) 59.34	3.19	(-) 64.32
2021-22	1.29	(-) 34.18	2.57	(-) 19.44
2022-23	0.48	(-) 62.79	0.87	(-) 64.15
औसत	2.55	(-) 35.46	4.55	(-) 30.89
प्रमाप विचलन	1.68	-	3.02	-
विचरण गुणांक	65.88	-	66.37	-

स्रोत- वार्षिक रिपोर्ट कृषि उपज मण्डी समिति

तालिका क्रमांक 07 कार्यालय एवं गोदाम व्यय की स्थिति (लाख रुपए में)

वर्ष	कृषि उपज मण्डी लटेरी		कृषि उपज मण्डी ब्यावरा	
	राशि	प्रतिशत परिवर्तन	राशि	प्रतिशत परिवर्तन
2018-19	106.51	-	342.57	-
2019-20	142.61	33.89	328.70	(-) 4.05
2020-21	123.46	(-) 13.43	285.85	(-) 13.04
2021-22	95.83	(-) 22.38	253.58	(-) 11.29
2022-23	79.58	(-) 16.96	175.71	(-) 30.71
औसत	109.60	(-) 4.72	277.28	(-) 14.77
प्रमाप विचलन	21.83	-	59.76	-
विचरण गुणांक	19.92	-	21.55	-

स्रोत- वार्षिक रिपोर्ट कृषि उपज मण्डी समिति

तालिका क्रमांक 08 प्रत्यक्ष व्यय की स्थिति (लाख रुपए में)

वर्ष	कृषि उपज मण्डी लटेरी		कृषि उपज मण्डी ब्यावरा	
	राशि	प्रतिशत परिवर्तन	राशि	प्रतिशत परिवर्तन
2018-19	151.44	-	493.31	-
2019-20	134.81	(-) 10.98	436.82	(-) 11.45
2020-21	122.63	(-) 9.03	395.31	(-) 9.50
2021-22	109.88	(-) 10.40	364.00	(-) 7.92
2022-23	113.95	3.70	352.44	(-) 3.18
औसत	126.54	(-) 6.68	408.38	(-) 8.01
प्रमाप विचलन	15.10	-	51.56	-
विचरण गुणांक	11.93	-	12.63	-

स्रोत- वार्षिक रिपोर्ट कृषि उपज मण्डी समिति

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

तालिका क्रमांक 09 स्थाई संपत्ति एवं निर्माण व्यय की स्थिति(लाख रुपए में)

वर्ष	कृषि उपज मण्डी लटेरी		कृषि उपज मण्डी ब्यावरा	
	राशि	प्रतिशत परिवर्तन	राशि	प्रतिशत परिवर्तन
2018-19	5.67	-	43.34	-
2019-20	113.97	(-) 10.85	35.56	(-) 17.95
2020-21	18.83	34.79	64.08	44.51
2021-22	10.74	(-) 42.96	20.12	(-) 68.60
2022-23	10.31	(-) 4.00	22.95	14.07
औसत	12.58	(-) 23.02	37.21	27.97
प्रमाप विचलन	3.55	-	17.73	-
विचरण गुणांक	28.22	-	47.65	-

स्रोत- वार्षिक रिपोर्ट कृषि उपज मण्डी समिति

तालिका क्रमांक 10 कृषि उपज मण्डी समिति की बचत की स्थिति (लाख रुपए में)

वर्ष	कृषि उपज मण्डी लटेरी		कृषि उपज मण्डी ब्यावरा	
	राशि	प्रतिशत परिवर्तन	राशि	प्रतिशत परिवर्तन
2018-19	2.70	-	11.22	-
2019-20	3.48	28.89	19.38	72.73
2020-21	5.97	71.55	76.78	296.18
2021-22	10.75	80.07	65.40	(-) 14.82
2022-23	16.29	51.53	55.81	(-) 14.66
औसत	7.83	58.01	45.72	84.86
प्रमाप विचलन	5.08	-	25.84	-
विचरण गुणांक	64.88	-	56.52	-

स्रोत- वार्षिक रिपोर्ट कृषि उपज मण्डी समिति

****

प्राकृतिक एवं मानव निर्मित आपदाओं के रोकथाम एवं प्रबंध

डॉ. विनिता भालसे* प्रो. ममता कनेश**

* सहायक प्राध्यापक (राजनिति विज्ञान) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अलीराजपुर (म.प्र.) भारत
** सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शासकीय महाविद्यालय, अलीराजपुर (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – प्रकृति मनुष्य की पालनकर्ता है, प्राकृतिक संसाधनो का उपयोग करते हूए मानव ने अपने जीवन को अत्यधिक सुखमय बनाया है, और इस क्रम में प्रकृति की सोम्यता देखते हुए उस पर विजय प्राप्त करने की चेष्ठा की है, परन्तु यह स्पष्ट है कि जब प्रकृति कुपित होती है तो फिर उसके आगे मनुष्य की नही चलती है, और विनाशकारी परिस्थितियां उत्पन्न होती जिससे जनधन की हानि होती है,व जिस पर मानव का नियन्त्रण नही होता है। वह आपदा कहलाती है। आपदा ऐसी असामान्य घटना है जो सीमित अवधि के लिए आती है, किन्तु किसी भुभाग या देश का अर्थव्यवस्था को छिन्न – भिन्न कर देती, कोई भी आपदा मनुष्य को झकझोर देने वाली घटना होती है, प्राय: एसी भयंकर घटना जिससे मनुष्य किंकर्तव्यविमुढ हो जाता है, प्राय: जान गॅवा बैठता है।

चुॅकि कोई भी आपदा बताकर नही आती इसलिए पहले से सावधान या सतर्क रहने की अवश्यकता होती है, कहा जाता है कि जो राष्ट्र या देश जितना ही विकसित होगा। वह आपदाओ के प्रति उतना जागरूक होगा। प्राय: विकासशील देश जिसमें निर्धन देशो की संख्या अधिक है, बार –बार आपदाओं के शिकार बनते आए है। जो आपदा से ग्रस्त हो जाते है, पीडित होते है, उनको सहायता पहुॅचाना, उनकी रक्षा करना समाज या राष्ट्र का कर्त्तव्य है।

इस दिशा मे विभिन्न स्तरो पर कई प्रकार के कदम उठाये गए है।जिसमें भारतीय राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन संस्थान की स्थापना 1993 मे रियो डि जनेरो ब्राजील में भु–शिखर सम्मेलन और मई 1994 में यॉकोहांग, जापान में आपदा प्रबंध पर विश्व संगोष्ठी तथा भारत मे 2005 अधिनियम बना कर आपदा से बचने के लिए ठोस कदम उठाये गये।

1. प्राकृतिक आपदा – प्राकृतिक आपदाऍ विनाशकारी आपदाऍ है ,जो ग्रह पर प्राकृतिक प्रक्रियाओं के परिणाम स्वरूप घटित होती है। बाढ, तुफान, सुनामी और भूकंप आना, भूस्खलन होना आंधी आना,ज्वालामुखी फटना,ग्लेशियर पिघलना, सुनामी आदि घटनाऍ ये सभी प्राकृतिक रूप से घटित होती है ।

2. मानव–निर्मित आपदा – मानव निर्मित आपदा वे अपदाऍ जिनका कारण मानवीय गतिविधियां होती है। तकनीकी और मानव जनित आपदाऍ मनुष्यों के द्वारा मानव के नजदीकी संस्थापनों के कारण उत्पन्न होती है। इसमें पर्यावरणीय अवनति प्रदुषण और दुर्घटनाऍ शामिल होती है। कुछ आपदाऍ विभिन्न प्रकार के अन्य खतरों के कारण उत्पन्न होती है, जो कि अधिकतर मानव जनित और प्राकृतिक आपदाओं का जटिल संयोग होता है। जैसे– औद्योगिक बहि:स्त्राव, घरेलू बहि:स्त्राव, वाहित मल, कृषि बहि:स्त्राव ,तेलीय स्त्रौत,अणुशस्त्र, तापीय स्त्रौत, रेडियो धर्मी अपशिष्ट, वहन क्रिया, नगरपालिका अपशिष्ट, परिवहन के साधन, मनोरंजन के साधन। जिसका परिणामस्वरूप ऐसी आपदाएं जन्म लेती है, जिस पर मानव का नियंत्रण नही रहता है।

3. भारत में आपदा प्रबंधन एवं राष्ट्रीय नीति – भारत एक विशाल देश है। 28 राज्य और 8 केन्द्र शासित प्रदेश है, जिसमे से 25 राज्य आपदा उन्मुख है । देश आधे से अधिक 65 प्रतिशत क्षैत्रफल भूकंपी क्षैत्र के अंतर्गत आता है। 70 प्रतिशत भुमि–सुखा उन्मुख है। 12 प्रतिशत बाढ उन्मुख है और 8 प्रतिशत चक्रवात उन्मुख है। स्पष्ट है, कि हमारे देश मे पुष्ट आपदा प्रबंधन की महती आवश्यकता है। सरकार बारंबार प्रबंध की कमियों को स्वीकार तो करती रहती है, पिछले चार दशकों से (1980–2020) मे प्राकृतिक आपदाओ(कोविड–19)के कारण लाखों व्यक्ति मारे गये ।भारत में आपदा जोखिम की बढती सुभेदता को देश मे तेजी से बढती जनसंख्या ,नगरीयकरण तथा औद्योगिकरण से जोडा जा सकता है । देश के उच्च आपदा जोखिम क्षेत्रों मे किया जाने वाला विकास तथा पर्यावरण अवनयन इन आपदाओ की सुभेद्यता ओर अधिक बढ रहा है।

4. आपदा प्रबन्धन अधिनियम 2005 – उक्त समस्याओं को दृष्टिगत रखते हुए भारत सरकार द्वारा 23 दिसम्बर 2005 को देश में आपदा प्रबन्धन अधिनियम 2005 लागु किया गया । आपदा को परिभाषित करते हुए लिख गया है, कि 'आपदा से आशय है, प्राकृतिक तथा मानव जनित कारणों से उत्पन्न ऐसी प्रलय, दुर्घटना, विपदा या घातक घटना जो प्रभावित समुदाय की निपटने की क्षमता से परें है।'

आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 में चेप्टर तथा 79 सेक्शन है। यह अधिनियम भारत मे आपदाओं के तथा इससे संबंधित मामलो का प्रभावी प्रबंधन है।

5. आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 के उद्देश्य – आपदा प्रबंन्धन अधिनियम के सेक्शन 2(d)व (c) के अनुसार आपदा प्रबंन्धन का प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित क्रियाकलापों के नियोजन संगठन, समन्वय तथा क्रियान्वयन के सतत समन्वित प्रक्रिया से होता है।

1. किसी आपदा की सम्भावना या खतरे का विरोध।
2. किसी आपदा के जाखिम, प्रचण्डता तथा परिणामों का निवारण या निराकरण ।
3. शोध व ज्ञान प्रबंधन सहित क्षमता सृजन ।

4. किसी आपदा की खतरे की स्थिति उत्पन्न होने पर त्वरित प्रतिक्रिया।
5. किसी आपदा से निपटने की तैयारी।
6. किसी आपदा के प्रभावों की प्रचण्डता या तीव्रता का आकलन।
7. निर्वासन, बचाव तथा राहत कार्य।
8. पूनर्वास तथा पूनर्निर्माण।

6. भारत में आपदा प्रबन्धन की संस्थागत एवं संगठनात्मक संरचना:

1. राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण।
2. प्रान्तीय आपदा प्रबंधन प्रधिकरण।
3. जिला आपदा प्रबंधन प्राधिकरण।
4. राष्ट्रीय कार्यकारी समिति।
5. राष्ट्रीय आपदा प्रतिक्रिया बल।
6. राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन संस्थान।

भारत मे आपदा नियोजन की उपलब्धियां – कुछ समय पहले आया चक्रवात पिछले दो दशको से भारत भुमि से टकराने वाला सर्वाधिक तीव्र चक्रवात था। ओडिसा की तैयारी, प्रभावी पुर्ण चेतावनी प्रणाली, समयानुकुल कार्यवाही और सुनियोजित वृहद स्तर की अस्थाई विस्थापन प्रक्रिया नें 1.2 मिलियन लोगों की लगभग चार 4000 चक्रवात आश्रय स्थलों में सुरक्षित पहुँचाने मे सहायता की और इस तरह संवेदनशील समुद्री क्षैत्र में खतरे में पढे, लोगो की रक्षा की युनाइटेड नेशन ऑफिस फॉर डिजास्टर रिस्क डिडक्शन (UNISDR) और अन्य संगठनो उन सरकारी और स्वैच्छिक प्रयासो की सराहना की जिनसे विनाश के स्तर को न्युनतम रखा जा सकता है। इसी तरह 2014 में हुदहुद चक्रवात के दोरान आंध्रप्रदेश में भी लाखो लोगों के लिए समान रूप से इसी प्रकार की अस्थाई विस्थापन रणनीति पर अमल किया गया था। इसी प्रकार की रणनीतियां अपनाने से चक्रवात के दौरान होने वाली मोतो में भी कमी आयी। वर्ष 1999 में ओडिसा सुपर साइक्लोन के दौरान 10000 लोगों की मोत की तुलना में वर्ष 2019में फणी चक्रवात के दोरान मोतों का आकडा दहाई आकडे में सिमट गया।वैश्विक स्तर पर इसके अतिरिक्त कोविड-19 जैसे महामारी को नियंत्रित किया गाया।

सुझाव :

1. विभिन्न सरकारी और गेर सरकारी संस्थाओ में आपदा प्रबंध हेतु समन्वय बनाना।
2. विकास योजनाओ का पर्यावरण प्रभाव के दृष्टिकोण सें विश्लेषण करना।
3. आपदा संबधी राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय नीति निर्धारण मे सहयोग प्रदान करना।
4. पर्यावरण संरक्षण एवं प्रबंधन हेतु पर्याप्त मानवीय एवं संगठित साधनों को जुटाना।
5. पर्यावरण चेतना जाग्रत करना तथा पर्यावरण शिक्षा का प्रसार करना।
6. प्रबंधन हेतु किये गये उपायों के परिणामों को सतत जांच एवं सुधार।
7. पर्यावरण के विभिन्न पक्षों पर शोध कार्य को बढावा देना।

निकर्ष – आपदा प्राक्रतिक या मानवकृत दोनो प्रकार की हो सकती है,परन्तु हर संकट आपदा भी नही होती। आपदाओं और विशेषकर प्राकृतिक आपदाओं का नियंत्रण मुश्किल हैं ।। इसका बेहतर उपाय इनके निवारण की तैयारीयां करना है आपदा निवारण और प्रबंधन की तीन अवस्थाए है –

1. आपदा से पहले –आपदा के बार में ऑकडें और सुचना एकत्र करना – आपदा संभावी क्षैत्रो का मानचित्र तैयार करना और लोगों को इसके बारें में जानकारी देना।
2. आपदा के समय युद्ध स्तर पर बचाव व राहत कार्य जैसे –आपदाग्रस्त क्षेत्रों से लोगों को निकालना, आश्रय स्थल निर्माण, राहत केंप, जल, भोजन व दवाई अपुर्ति।
3. आपदा के पश्चात प्रभावित लोगों का बचाव व पुनर्वास। भविष्य मे आपदाओं से निपटने के लिए क्षमता निर्माण पर ध्यान केन्द्रित करना।

भारत जैसे देश में जहॉ दो तिहाई क्षेत्र और जनसंख्या आपदा सुभेद्य है इन उपायों का विशेष महत्व है। आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 और राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन संस्थान की स्थापना इस दिशा में भारत सरकार द्वारा उठाए गए सकारात्मक कदम का उदाहरण है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. श्रीवास्तव, ज्योति पर्यावरणीय अध्ययन (म.प्र.) हिन्दी ग्रन्थ अकादमी सन् 2019 प्रष्ठ-86
2. कश्यप चेतना, प्राकृतिक संकट तथा आपदाऍ साहित्य भवन, आगरा सन् 2020 प्रष्ठ-163,164
3. नारायण, राम, वैश्विक संकट की चुनौतियां तथा निदान अग्रवाल पब्लिकेशन, जयपुर सन् 2021प्रष्ठ-209

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Study of Phytochemicals Profile of Using Different Solvent of Fruit Extract of Gardenia latifolia Ait.

Nirvani Bharti* Renu Sharma** Manisha Singh***

*Research Scholar, Om Sterling Global University, Hissar (Haryana) INDIA
** Dean, School of Spplied Science, Om Sterling Global University, Hissar (Haryana) INDIA
*** Assistant Professors, Govt. Motilal Vigyan Mahavidyalaya, Bhopal (M.P.) INDIA

Abstract - This research paper investigates the organic constituents of Gardenia latifolia, a plant known for its medicinal properties. The study focuses on the isolation, characterization, and activities of these constituents. Plant material was extracted with suitable solvents, and the organic compounds were isolated and purified. Characterization was conducted using spectroscopic methods, including FTIR. The results provide valuable insights into the potential in effects of Gardenia latifolia organic constituents.
Keywords : Gardenia latifolia, antioxidant, suitable solvents.

Introduction - Gardenia latifolia (*G. latifolia*) is a plant that belongs to the family Rubiaceae. It is commonly known as "Cape jasmine" or "Gardenia." The plant is native to Asia, Africa, and the Pacific Islands. Gardenia latifolia is known for its fragrant flowers and has been traditionally used in various medicinal preparations.Because of the presence of secondary metabolites, this species has been utilized for medical purposes in addition to being used to make toys. According to reports, G. latifolia fruits are employed in folk medicine to cure a variety of conditions, including snake bites, transitory fever in live animals, skin conditions, dental caries, stomach ache, and hemorrhage in humans [1-2]. Furthermore, because fruit extract has a high concentration of yellow pigments, it is also employed as food additives and dye [4].

The fruit of G. latifolia is nutrient-rich and has therapeutic qualities, although little is known about the precise phytochemical analysis that gives these benefits.Isolation and characterization of the organic constituents of Gardenia latifolia involve extracting the plant material with suitable solvents, followed by purification and analysis using techniques such as chromatography and spectroscopy [3].

The biological activities of these constituents can be studied using in vitro assays to assess their potential pharmacological effects, such as antioxidant, anti-inflammatory, or antimicrobial properties.Medicinal plants are useful for curing human diseases and play an important role in healing due to presence of phytochemical constituents. Based on potent biological actions, natural product chemists have been trying hard to isolate and identify bioactive leads from plant sources [4]. Gardenia latifolia Ait. is a small deciduous tree or large shrub growing up to 3 m tall. It is an excellent painkiller and acts as an antiseptic for healing wounds. It is also used in the treatment of diseases like skin problems, indigestion, worm infestation, and diarrhea. It is an excellent pain killer and acts as an antiseptic for healing wounds. It is also used in the treatment of diseases like skin problems, indigestion, worm infestation, and diarrhea. In addition to that, it is known to relieve cough, asthma, and hiccup, constipation, and flatulence [5].

After that, we have study in details of phytochemical profile of organic chemical compounds or molecules present in bark of Gardenia latifolia plant was available in literature.Due to its broad spectrum healing potential, this medicinal tree can serve as a promising research target for various scientific studies. Bark of this plant contains saponins which may find use in asthma due to their inhibitory effect on histamine production. Phytochemical analysis led to isolation of hederagenin, D-mannitol, sitosterol and siaresinolic, episiaresinolic, oleanolic and spinosic acid from the stem bark of G. latifolia [6].

The biological activities of the organic constituents of Gardenia latifolia can be of significant importance due to their potential pharmacological effects. Some of the key biological activities that these constituents may exhibit include:

1. Antioxidant Activity: Organic compounds such as flavonoids and phenolic compounds found in Gardenia latifolia may possess antioxidant properties, which can help protect cells from oxidative stress and damage.

2. **Anti-inflammatory Activity:** Compounds like iridoids and triterpenoids present in Gardenia latifolia may exhibit anti-inflammatory effects, which could be beneficial for reducing inflammation-related diseases.

3. **Antimicrobial Activity:** Certain organic constituents of Gardenia latifolia may have antimicrobial properties, which could help in combating various bacterial, fungal, and viral infections.

4. **Anticancer Activity:** Some studies suggest that organic compounds from Gardenia latifolia may have potential anticancer properties, although further research is needed to validate these claims.

5. **Hepatoprotective Activity:** Compounds in Gardenia latifolia may exhibit hepatoprotective effects, which could be beneficial for liver health and function.

6. **Neuroprotective Activity:** There is some evidence to suggest that organic constituents of Gardenia latifolia may have neuroprotective properties, which could be valuable for conditions affecting the nervous system.

7. **Anti-diabetic Activity:** Certain compounds in Gardenia latifolia may exhibit anti-diabetic effects, which could be useful in managing diabetes and related complications.

8. **Anti-obesity Activity:** Some studies suggest that organic constituents of Gardenia latifolia may have anti-obesity properties, although more research is needed to confirm these findings.

Overall, the organic constituents of Gardenia latifolia hold promise for various medicinal applications, but further research is needed to fully understand their biological activities and potential therapeutic benefits.

Gardenia latifolia contains a variety of phytochemicals, which are natural compounds produced by plants that often have biological activity. Some of the main phytochemicals found in Gardenia latifolia include:

1. **Iridoids:** These are a class of compounds known for their diverse pharmacological activities, including anti-inflammatory, antioxidant, and hepatoprotective effects. Examples of iridoids found in Gardenia latifolia include geniposide and gardenoside.

2. **Flavonoids:** Flavonoids are antioxidant compounds that are known for their potential health benefits, including anti-inflammatory, anti-cancer, and neuroprotective effects. Examples of flavonoids in Gardenia latifolia include quercetin and kaempferol derivatives.

3. **Triterpenoids:** Triterpenoids are another class of compounds found in Gardenia latifolia that have been studied for their potential pharmacological activities, including anti-inflammatory and anti-cancer effects. Examples include ursolic acid and oleanolic acid.

4. **Phenolic Compounds:** Phenolic compounds are antioxidants that can help protect cells from damage caused by free radicals. Gardenia latifolia contains various phenolic compounds, such as gallic acid and ellagic acid derivatives.

5. **Carotenoids:** Carotenoids are pigments responsible for the yellow, orange, and red colors in many fruits and vegetables. They also have antioxidant properties. Gardenia latifolia may contain carotenoids such as â-carotene.

6. **Essential Oils:** Gardenia latifolia may contain essential oils that contribute to its aroma and flavor. These oils may also have various biological activities, including antimicrobial and antioxidant effects.

7. **Alkaloids:** While less common in Gardenia latifolia, alkaloids are nitrogen-containing compounds with diverse pharmacological activities. Examples of alkaloids found in some Gardenia species include gardenine and genipin.

These phytochemicals contribute to the medicinal properties of Gardenia latifolia and make it a valuable plant in traditional medicine and potentially in modern pharmacology.

To better understand phytochemical substances and their potential as anti-inflammatory, antibacterial, anti-diabetic, and antioxidant chemicals, some research has been done [5, 6]. Certain phyto-constituents, including hederagenin, D-mannitol, sitosterol, and siaresinolic, episiaresinolic, oleanolic, and spinosic acids, were found in stem bark by Reddy et al. [7]. Nevertheless, there hasn't been any thorough investigation of the phytochemical components in G. latifolia extract. Therefore, it is crucial to identify the compounds in the extract of G. latifolia due to the enhanced efficiency and solubility of the different chemicals in methanol, ethyl acetate, chloroform and hexane [7-8].

In this paper, study extract the solvent systems for phytochemicals extraction from *G. latifolia* has been done using hexane, chloroform, ethyl acetate and methanoland also was confirmed the phytochemicals bymeasurement of FTIR spectra.

Materials and methods

1. **Collection of plant material:**

i. Bark of Gardenia latifolia Ait. was collected from plant. After collection of bark of G. latifolia were rinsed with running tap water followed by sterile distilled water to remove the dirt on the surface and cut into small pieces.

ii. After that dried at temperature not exceeding 35 to 50°C and followed by the grinding using Herbs Grinding Machine. It was stored in desiccator till the further study.

2. **Preparation of Extracts:** For the selection of solvent systems for phytochemicals extraction from *G. latifolia* has been done using hexane, chloroform, ethyl acetate and methanol. The process has been same except solvents has to be change for evaluation of more phytochemicals present in different solvent.

i. The powdered material was subjected to hot extraction with hexane/chloroform/ethyl acetate and methanol by the Soxhlet apparatus for 10h.

ii. The extraction was carried out for about 10 h and the extract was filtered through a cotton plug followed by what-man filter paper no. 1.

iii. The extract was then concentrated by evaporating the

solvent bellow 45°C temperature. The concentrated extract was stored at 4 °C until further analysis.

iv. After evaporation of the solvent, a gummy concentrate was obtained which was designated as methanol crude extract of G. latifolia (MGL).

Results and Discussion

1. Phytochemical Screening of G. latifolia Extract: Preliminary phytochemical screening tests are important for the identification of bioactive principles and may subsequently guide drug discovery and improvement. In the present study, several phytochemical constituents of *G. latifolia* were identified. Among various solvents evaluated in the study, methanolic extract showed presence of alkaloids, saponins, glycosides, flavonoids and particularly phenols and terpenoids. In hexane, no compounds were present, while chloroform manifested the presence of phenols and flavonoids. Ethyl acetate showed presence of phenols, flavonoids, glycosides and terpenoids. The results of the phytochemical analyses are presented in Table 1. Such phytochemicals may provide new avenues for the development of new classes of pharmaceutical, biopesticidal, insecticidal, and antimicrobial agents. Previously, various organic extracts of *G. latifolia* leaves were reported to contain flavonoids, tannins, and fixed oil. [10] These phytochemical compounds are the top candidates conferring medicinal value to this plant. Indeed, the most abundant compounds found in all solvent extracts in the present study, including several flavonoids, glycosides, terpenoids, and alkaloids isolated from this plant, have been reported to exert diverse biological activities

Table 1 (see in next page)

Presence of majority compounds in methanolic extract implies that the solvent is having potential owing to its higher efficiency and solubility of phytochemical compounds. Hence, characterization of phytochemical compounds from *G. latifolia* has been done using methanol. Phenolic compounds are important class of secondary metabolites in plants that predominantly help in defense against pathogens, parasites, and predators.Researchers reportedin several papers that the phenolic compounds possess antioxidants, anti-bacterial, anti-atherosclerotic, anti-cancer, anti-viral and anti-inflammatory activities [9]. Flavonoids showed anti-allergic, anti-inflammatory, anticancer, antithrombotic, antimicrobial, antiviral, and hepato-protective properties owing to their ability in scavenging the free radicals effectively. Terpenoids have been reported with antibiotic, antiseptic, anti-helminthic and insecticidal activities.

2. FTIR analysis: FTIR spectroscopy revealed the Numerous functional groups, including phenols, amines, alcohols, alkenes, carboxylic acids, aliphatic compounds, carbonyl compounds, and esters, were detected by FTIR spectroscopy. Figure 1 displays representative FT-IR spectra of the extracts of methanol, ethanol, and ethyl acetate. Bands relating to the stretching hydroxy (-OH) group vibration were seen at 3465, 3458, and 3460 cm^{1}. The stretching vibration of the C=C groups, which include cyclic structures with a ring resonance bond that affords enhanced stability, and the vibration of the C=O groups of the flavonoids and lipids may have resulted in the bands detected at 1629 cm^{1} and 1630 cm^{1}. The CH_3 and CH_2 groups of flavonoids and aromatics may be connected to the band at 1345 cm^{1}.The stretching vibration of the aromatics and the bending vibration of C-H would be the vibrations in this case. The stretching vibration of the carboxyl group (O-H and C-O stretch), or the stretching of the COOH groups in flavonoids and lipids, was linked to the bands at 1250 cm1 and 1247 cm^{1}. C-O stretching in the ester groups was linked to bands at 1126 and 1130 cm^{1}. The C-C stretching vibration was the cause of the band at 778 cm^{1}. The band at 2295 cm^{1} may have been associated with the stretching vibration of the O-H groups in carboxylic acid as well as the C-H stretching vibration of the methyl and methoxy groups.

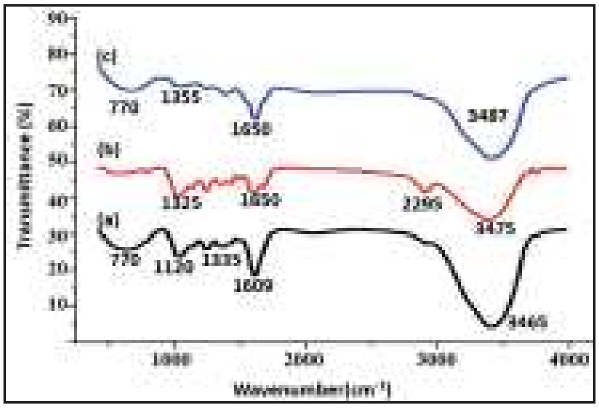

Figure 1. Fourier transform–infrared spectra of (a) methanol, (b) ethyl acetate, and (c) chloroform in *G. latifolia* leaf extracts.

Conclusions: Phytochemical compounds of G. latifolia fruits showed several secondary metabolites such as saponins, alkaloids, glycosides, phenols, terpenoids and flavonoids having various putative functions. FTIR spectra reflects the antioxidant activity of methanolic fruit extract showed that it has huge potential to be used in medicinal purpose as well as food industry.

References :-

1. Reddy, K.; Subbaraju, G.; Reddy, C.; Raju, V. Ethnoveterinary medicine for treating livestock in eastern ghats of Andhra Pradesh. Indian J. Tradit. Knowl. 2006, 5, 368–372.
2. Rahman, M.A.; Uddin, S.B.; Wilcock, C.C. Medicinal plants used by chakma tribe in hill tracts districts of Bangladesh. Indian J. Tradit. Knowl. 2007, 6, 508–517.
3. Madhava Chetty, K.; Sivaji, K.; Tulasi Rao, K. Flowering plants of Chittoor District, Andhra Pradesh, India. Publ. Stud. Offset Print. Tirupati 2008, 34–35.

4. Liu, S.J.; Zhang, X.T.; Wang, W.M.; Qin, M.J.; Zhang, L.H. Studies on chemical constituents of Gardenia jasminoides var. radicans. Chin. Tradit. Herb. Drugs 2015, 43, 238–241.
5. Bhat, R.; Ameran, S.B.; Voon, H.C.; Karim, A.A.; Tze, L.M. Quality attributes of starfruit (Averrhoa carambola L.) juice treated with ultraviolet radiation. Food Chem. 2011, 127, 641–644.
6. Kumar, A.; Ramesh, K.V.; Chandusingh; Sripathy, K.V.; Agarwal, D.K.; Pal, G.; Kuchlan, M.K.; Singh, R.K.; Ratnaprabha; Kumar, S.P.J. Bio-prospecting nutraceuticals from selected soybean skins and cotyledons. Indian J. Agric. Sci. 2019, 89, 2064–2068.
7. Kumar, S.P.J.; Banerjee, R. Enhanced lipid extraction from oleaginous yeast biomass using ultrasound assisted extraction: A greener and scalable process. Ultrason. Sonochem. 2018, 52, 25–32.
8. Xiao, W.; Li, S.; Wang, S.; Ho, C.T. Chemistry and bioactivity of Gardenia jasminoides. J. Food Drug Anal. 2017, 25, 43–61.
9. Kumar, S.; Pandey, A.K. Chemistry and biological activities of flavonoids: An overview. Sci. World J. 2013, 162750.
10. Kumar, N.S.S.; Kumar, I.S.; Kumar, S.P.J.; Sarbon, N.M.H.D.; Chintagunta, A.D.; Anvesh, B.S.; Dirisala, V.R. Extraction of bioactive compounds from Psidium guajava leaves and its utilization in preparation of jellies. AMB Express. 2021, 11, 36.

Table 1- Preliminary phytochemical analysis of G. latifolia fruit extracts.

Solvent Extract	Phytochemicals					
	Alkonides	Phenols	Flavonoids	Saponins	Glycosides	Terpenoids
Hexane	-	-	-	-	-	-
Chloroform	-	+	+	-	-	-
Ethyl acetate	-	+	+	-	+	+
Methanol	+	++	+	+	+	+++

“+++” high; “++” moderate; “+” weak; -absent

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

पर्यावरण संकट और आपदा प्रबंधन

डॉ. रितु उमाहिया*

* सहायक प्राध्यापक, विधि महाविद्यालय, गुना (म.प्र.) भारत

शब्द कुंजी – पर्यावरण, आपदा, आपदा प्रबंधन, भूकंप, बाढ़, बादलों का फटना।

पर्यावरण की संकल्पना भारतीय संस्कृति में सदैव प्रकृति से की गई है, जहाँ समस्त जीवधारी, प्राणियों और निर्जीव पदार्थों में सदा एक दूसरे पर निर्भरता व समन्वय की स्थिति रही है। पर्यावरण में अनेक जैविक व अजैविक कारक पाये जाते हैं जिनका परस्पर गहरा संबंध होता है। प्रत्येक जीव को जीवन के लिए वायु, जल, ऊर्जा की एक उचित मात्रा की आवश्यकता होती है। जब तक जैविक एवं अजैविक घटकों की उचित मात्रा प्रकृति में विद्यमान रहती है, तब तक प्रकृति में संतुलन बना रहता है, किन्तु वर्तमान में मनुष्य ने विकास के लिये इन अजीब कारकों का अंधाधुंध प्रयोग कर पर्यावरण का संतुलन बिगाड़ कर उसे प्रदूषित कर दिया है।

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा-2(क) में पर्यावरण को परिभाषित किया गया है जिसके अनुसार 'पर्यावरण में जल, वायु तथा भूमि तथा जल और वायु तथा मानवीय प्राणी, अन्य जीवजंतु, पौधो, सूक्ष्म जीवाणु तथा संपत्ति में और उनके मध्य विद्यमान अन्र्तसम्बंध सम्मिलित हैं।' चैम्बर डिक्शनरी के अनुसार पर्यावरण से तात्पर्य विकास या वृद्धि को प्रभावित करने वाली परिस्थितियाँ हैं। ऑक्सफॉर्ड स्टैन्डर्ड डिक्शनरी के अनुसार, पर्यावरण का अर्थ आसपास की वस्तु स्थिति परिस्थितियाँ या प्रभाव है।

इस तरह हम देखते हैं, कि जहाँ एक तरफ वर्तमान समय में सामाजिक, आर्थिक, वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय विकास हुए हैं, तो दूसरी तरफ विकट पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकीय समस्याऐं भी उत्पन्न हुई हैं और पर्यावरण संकट आज विश्वस्तरीय चिंता का विषय बन गया है। इसी प्रकार आपदायें दो प्रकार की होती हैं, जो हमारे पर्यावरण को प्रभावित करती हैं।

प्रथम :- प्राकृतिक आपदा – इसमें भूकम्प, ज्वालामुखी, भूस्खलन, बाढ़, सूखा, वनों में आग लगना, सुनामी, आकाशीय बिजली का गिरना, बादलों का फटना आदि शामिल हैं।

द्वितीय :-मानव जनित आपदाओं में बम का विस्फोट, नाभिकीय रिएक्टर, संयंत्रों से रेडियो एक्टिव रिसाव, जनसंख्या विस्फोट, भीषण रेल वायुयान दुर्घटनायें, महामारी आदि आते हैं। इनकी तीव्रता का आंकलन उनके द्वारा की गई जनधन की क्षति के आधार पर किया जाता है। पर्यावरण प्रदूषण में मात्र मानव के कार्यों द्वारा स्थानीय स्तर पर पर्यावरण की गुणवत्ता में ह्रास होता है जबकि पर्यावरण अवनयन, मानव कार्यों तथा प्राकृतिक प्रकर्मों द्वारा स्थानीय, प्रादेशिक एवं विश्व स्तर पर पर्यावरण की गुणवत्ता में ह्रास। इसके उदाहरण बाढ़, भूकम्प, सूखा, भूस्खलन, प्रकृतिक कारणों से वन में आग लगना आदि प्राकृतिक कारक हैं। जिनके द्वारा स्थानीय एवं प्रादेशिक स्तरों पर पारिस्थितिक तंत्रों में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाने से पर्यावरण अवनयन उत्पन्न होता है। पर्यावरण में होने वाले वे सभी परिवर्तन जो अवांछनीय हैं और किसी क्षेत्र विशेष में या पूरी पृथ्वी पर जीवन को खतरा उत्पन्न करते हैं और जब पर्यावरण की गुणवत्ता में ह्रास होने लगता है, तो उसे हम पर्यावरण अवनयन कहते हैं।

प्राकृतिक आपदाओं से निपटने के परिप्रेक्ष्य में आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005, 23 दिसंबर 2005 को अधिनियमित किया गया था। इस अधिनियम के अंतर्गत क्रमश:

1. राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण
2. राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरण
3. जिला आपदा प्रबंधन प्राधिकरण का गठन किया गया है।

इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार मुआवजा और राहत प्रदान करने के लिए लिंग जाति समुदाय वंश या धर्म के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होगा। यह अधिनियम बाधा, झूठे दावों और दुरुपयोग आदि के लिए दंड प्रदान करता है।

आपदा प्रबंधन का उद्देश्य – आपदा से तात्पर्य है किसी भी क्षेत्र में प्रकृतिक या मानव निर्मित कारणों से उत्पन्न होने वाली 'दुर्घटना' जिसके परिणामस्वरूप जीवन की पर्याप्त हानि, मानव पीड़ा, क्षति और संपत्ति का विनाश होता है। आपदा एक घटना के कारण होती है लेकिन जब तक घटना आबादी को प्रभावित नहीं करती तब तक यह आपदा नहीं है। उदाहरण के लिए 'भूकम्प'। 'भूकम्प' प्राकृतिक घटना है किन्तु यदि यह कमजोर इमारतों वाले, घनी आवादी वाले क्षेत्रों को प्रभावित नहीं करता है, तो यह आपदा का कारण नहीं बनेगा।

आपदाओं के प्रकार

1. जल और जलवायु संबंधी आपदायें :- बाढ़, बादल फटना, सूखा, सुनामी।
2. भू-वैज्ञानिक रूप से संबंधित आपदायें :- भूकम्प, भूस्खलन, बाँध फटना।
3. दुर्घटना से संबंधी आपदायें :- हवाई, सड़क और रेल दुर्घटनायें, विद्युत आपदायें, तेल रिसाव, बम विस्फोट।
4. रासायनिक, औद्योगिक और परमाणु संबंधी आपदायें।
5. जैविक रूप से संबंधित आपदायें।

आपदा की तैयारी क्यों महत्वपूर्ण है?

जब आपदायें एक तैयार समुदाय पर हमला करती है तो नुकसान अविश्वसनीय हो सकता है। विडम्बना यह है कि बड़े समुदाय अकसर तैयार नहीं होते हैं, क्योंकि आपदायें अकसर नहीं होती हैं इसीलिए वर्तमान में निजी क्षेत्र, स्कूलों, स्वयंसेवी समूहों और सामुदायिक संगठनों द्वारा व्यापक योजनाओं और समन्वय की आवश्यकता होती है। इस तरह प्रशिक्षण और जागरुकता आपदा से निपटने के लिए व्यक्ति और समूहों को सक्षम बनाते हैं।

इस शोधपत्र के माधयम से कुछ प्राकृतिक आपदाओं और उन आपदाओं के पूर्व, दौरान एवं पश्चात् बरती जाने वाली सावधानियों पर दृष्टि रखेंगे, जो निम्नानुसार हैं :-

भूकंप, मूसलाधार बारिश(बादलों का फटना), बाढ़ एवं जंगल की आग इत्यादि।

भूकंप – भूकंप सबसे घातक प्राकृतिक खतरों में से है। भूकंप, पृथ्वी की सतह का हिलना है जो भूकंपीय तरंगे पैदा करता है। सिस्मोग्राफ भूकंप से उत्पन्न भूकंपनीय तरंगों को रिकॉर्ड करता है जिससे यह निर्धारित किया जा सकता है कि कोई विशेष भूकंप कहां और कितना गहरा है।

भूकंप आने की दशा में आपदा प्रबंधन :

अ) भूकंप आने के पूर्व में :

1. यह तय करें कि अलग होने के बाद परिवार के सदस्य एक दूसरे से कैसे मिलेंगे।
2. प्रत्येक कमरे में सुरक्षित स्थान जानें, जैसे :- मजबूत टेबिल, डेस्क के नीचे।
3. खतरनाक स्थान को जानें, जैसे :- खिड़कियाँ, शीशे, लटकी हुई वस्तुएँ।
4. आपातकालीन फोन नं. की सूची रखें।
5. खतरनाक और ज्वलनशील तरल पदार्थों को निचली अलमारियों में रखें।
6. आपातकालीन भोजन पानी की आपूर्ति बनाएं रखें, प्राथमिक चिकित्सा किट, बैटरी चालित रेडियो आदि रखें।

ब) भूकंप दौरान :

1. जहाँ हैं वहीं रहें जब तक हिलना बंद न हो जाए।
2. स्वयं को खिड़कियों और काँच के दरवाजों से दूर रखें।
3. दीवार के कोनों के पास लेटे, घुटने टेके या बैठें।
4. अगर घर से बाहर हैं तो पेड़ों, इमारतों, दीवारों और बिजली की लाइनों से दूर खुले क्षेत्र में उतरे।
5. यदि गाड़ी चला रहे हैं तो जितनी जल्दी हो सके सुरक्षित रूप से रूके। अपने वाहन के अंदर तब तक रहे जब तक कंपन बंद न हो जाए। वाहन में खिड़की के स्तर से नीचे रहें। यदि वाहन के आसपास बिजली की तारें गिर गई हो तो वाहन में ही रहें।
6. धातु को न छुएं।

स) भूकंप के बाद :

1. संबंधित पीडि़त व्यक्ति को प्राथमिक चिकित्सा प्रदान करें।
2. जब तक गंभीर चोट, आग या आपात स्थिति न हो टेलीफोन का उपयोग न करें।
3. छत, नींव, चिमनी और क्षति के लिए इमारतों की जाँच करें।
4. अंदर कभी भी माचिस लाइटर और मोमबत्ती का प्रयोग न करें।
5. बैटरी चलित रेडियो चालू रखें, आपातकालीन घोषणा, समाचार एवं निर्देश सुने।
6. जब तक आपात स्थिति न हो वाहनों का प्रयोग न करें।

मूसलाधार बारिश (बादलों का फटना) – बादल फटना हिमालय में एक प्राकृतिक और सामान्य घटना है। बादल फटना और इससे जुड़ी आपदायें हर साल हजारों लोगों को प्रभावित करती हैं और जीवन संपत्ति, आजीविका और पर्यावरण को नुकसान पहुँचाती हैं। हमारे देश में 16 जून 2013 अर्थात् लगभग 10-11 वर्ष पूर्व उत्तराखंड में बादल फटने से आई विनाशकारी बाढ़ ने कई शहरों और गांवों को तवाह कर दिया था। सामान्यत: इस आपदा को रोकने का कोई तरीका नहीं है, किंतु निम्न लिखित सावधानी बरती जा सकती है।

1. सभी निवासियों और पालतू जानवरों को सुरक्षित स्थान पर ले जाए।
2. समाचार अपडेट के लिए स्थानीय मीडिया और रेडियो का प्रयोग करें।
3. मजबूत रस्सियाँ और प्राथमिक उपचार किट बचाव प्रयासों को काफी बढ़ा सकती है।
4. उच्च क्षेत्रों में जाते समय हमेशा पर्याप्त खाद्य सामग्री साथ रखे।
5. घाटी की ओर से सीधे नीचे की ओर न बढ़ें।

बाढ़ – बाढ़ को अकेले देखें तो यह बड़े क्षेत्र में पानी का अतिप्रवाह है, जो अस्थायी रूप से भू-भाग को जलमग्न कर देता है। भारत में साल भर आपदायें आती हैं लेकिन हर साल मानसून के दौरान बाढ़ से बड़ी क्षति होती है। बाढ़ के प्राथमिक प्रभावों में जीवन की हानि, इमारतों को नुकसान, बिजली उत्पादन में व्यवधान शामिल हैं। बाढ़ कृषि भूमि को जलमग्न कर देती है जिससे भूमि अनुपयोगी हो जाती है। सड़क और परिवहन को नुकसान पहुँचने पर आपातकालीन स्वास्थ्य उपचार, पानी, खाद्य आपूर्ति जुटाना मुश्किल हो जाता है।

बाढ़ से पूर्व की तैयारी :

1. पूर्व से भोजन एवं पानी की पर्याप्त आपूर्ति के साथ आपातकालीन किट तैयार रखें।
2. विकलांगों, बुजुर्गों और बच्चों की तुरंत सहायता करें।
3. सुरक्षात्मक उपाय जैसे गाँवों के चारों ओर आवश्यक उपायों को विकसित करें।
4. बाढ़ की चेतावनी मिलने पर तुरंत सामुदायिक आश्रयों जैसे ऊँचे और सुरक्षित क्षेत्रों में चले जाएं।
5. बिजली के खंबों एवं तारों से दूर रहें।
6. बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों को पैदल या वाहनों से पार न करें।
7. बाढ़ आने के बाद घायलों की मदद करें।
8. बाढ़ के पश्चात् पीने के पहले पानी शुद्ध करने वाली गोलियाँ डाल दें या पानी उबालकर इस्तेमाल करें।
9. जब पानी का स्तर फर्श से ऊपर हो तो रबर के जूते पहनें।
10. आवास, कपड़े और भोजन के लिए सहायता कहाँ से प्राप्त करें इसकी जानकारी के लिए समाचार रिपोर्ट सुनें।

जंगल की आग – प्राचीन काल से ही वनों ने सामाजिक आर्थिक और धार्मिक गतिविधियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और विभिन्न तरीकों से मानव जीवन को समृद्ध किया है। जंगली आग जिसे जंगल या वनस्पति की आग भी कहा जाता है यह मानवीय कार्यों जैसे भूमि की सफाई, अत्यधिाक सूखा या दुर्लभ मामलों में बिजली गिरने से शुरू हो सकती है। प्रतिवर्ष जंगल

की आग लाखों हेक्टेयर वन और अन्य वनस्पतियों को नष्ट कर देती है जिससे मानव और पशु जीवन का नुकसान होता है और भारी आर्थिक क्षति होती है। 95 प्रतिशत से अधिक जंगल की आग या तो लापरवाही से या अनजाने में इंसान द्धारा होती है बाकी आग प्राकृतिक कारणों से होती है। जैसे :- बिजली, तापमान में अत्यधिक वृद्धि आदि।

जंगल की आग को रोकने के संबंध में आपदा प्रबंधन :-

1. असाध्य या नियंत्रण से बाहर की आग होने पर स्थानीय अग्निशमन विभाग से संपर्क करें।
2. चलते वाहनों से या पार्क मैदानों में सिगरेट, माचिस और धूम्रपान सामग्री को न फेंके।
3. जंगल की आग फैलने की स्थिति में आग पर काबू पाने की कोशिश न करें। नमी वाले स्थान, तालाब या नदी के निकटवर्ती क्षेत्र का पता लगायें एवं वहीं बैठे।
4. यदि आसपास पानी नहीं है तो शरीर को गीले कपड़े, कंबल या मिट्टी से ढक लें।
5. धुएँ से बचने के लिए यदि संभव हो तो एक गीले कपड़े के माध्यम से जमीन के सबसे करीब हवा में सांस लेकर अपने फेंफड़ों की रक्षा करें।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मानव जीवन के लिए पर्यावरण का प्रदूषण से मुक्त रहना अत्यंत आवश्यक है इसके लिए संसद ने अनेक अधिनियम पारित किए हैं जिनमें से वायुप्रदूषण अधिनियम, जल प्रदूषण अधिनियम, ध्वनि प्रदूषण अधिनियम प्रमुख हैं। वर्तमान परिपेक्ष्य में पर्यावरण प्रदूषण समाज के लिए एक विकट समस्या बनता जा रहा है और विशेष कर देश के महानगरों में रहने वाले लोगों के जीवन के अस्तित्व के लिए संकट उत्पन्न हो गया है। इस कार्य को संपादित करने का उत्तरदायित्व हमारे उच्चतम तथा उच्च न्यायालयों ने अपने हाथ में लिया है और विभिन्न विनिश्चयों में उक्त अधिनियमों के प्रावधानों को लागू करने के लिए समुचित सरकारों एवं अधिकारियों को निर्देश दिए हैं।

रूरल लिटिगेशन एण्ड एंटाइटेलमेंट केंद्र देहरादून बनाम उत्तरप्रदेश राज्य (1985) 2 एस.सी.सी. 431 के मामले में एक लोकहितवाद फाइल करके न्यायालय को यह बताया गया कि देहरादून में कुल पत्थर की खुदाई के कारण आसपास का पर्यावरण दूषित हो रहा है और आसपास के निवासियों को हानि पहुँच रही है। न्यायालय ने इस बात की जाँच के लिए एक समिति नियुक्त की और समिति की रिपोर्ट मिलने पर इन पत्थर की खानों की खुदाई का काम रोकने का आदेश दिया।

एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ (1986) 2 एस.सी.सी. 176 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने दिल्ली के आवासीय क्षेत्र में स्थित श्रीराम फूड एण्ड फर्टीलाइजर कंपनी की एक इकाई को ओलियम नामक खतरनाक गैस का उत्पादन करने से रोक दिया। जब तक कि कंपनी उन सभी सुरक्षा उपायों को नहीं अपनाती है जो गैस को निकलने से रोकने के लिए उपयुक्त एवं आवश्यक है। इस मामले में कंपनी के कारखाने से ओलियम गैस के रिसाव के कारण आसपास के निवासियों एवं कंपनी के कर्मकारों को काफी क्षति पहुँची थी।

पर्यावरण का संरक्षण तथा वन्य जीवों की रक्षा - संविधान के अनुच्छेद-48(क) यह अपेक्षा करता है कि राज्य देश के पर्यावरण की सुरक्षा तथा उनमें सुधार करने का और वन तथा वन्यक जीवों की रक्षा का प्रयास करेगा।

एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अनुच्छेद-48(क) के निदेशक तत्व के अधीन केन्द्र एवं राज्य सरकार का यह कर्त्तव्य है कि वे पर्यावरण के संरक्षण के लिए उचित कदम उठाये। ऐसे कर्त्तव्य के पालन के लिए न्यायालय को समुचित आदेश देने की शक्ति है।

पर्यावरण संकट और आपदा प्रबंधन से संबंधित महत्वपूर्ण सुझाव :-

1. पर्यावरण समस्याओं का मूल कारण जनसंख्या में तीव्र वृद्धि है अत: इसके लिए यह आवश्यक है कि जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित किया जाए।
2. आप जनता को पर्यावरण संकट और आपदा प्रबंधन के प्रति शिक्षित और जागरुक किया जाए जिससे वे इन विषम परिस्थितियों से निपटने में सक्षम हो।
3. नाभिकीय शस्त्रों के उत्पादन पर पूर्ण रोक लगवायी जानी चाहिए।
4. विद्यालय और महाविद्यालय, विश्वविद्यालय स्तर पर पर्यावरण संकट और आपदा प्रबंधन से संबंधित कार्यशाला, सेमीनार आदि का आयोजन समय-समय पर होना चाहिए।

निष्कर्ष - समाज की प्रारंभिक अवस्थाओं में मानव तथा प्रकृति के मध्य एकात्मकता थी। मानव पूर्ण रूप से प्रकृति पर निर्भर था। मानव अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति प्रकृति से कर लेता था। खानपान, परिधान तथा आवास से संबंधित समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानव प्रकृति पर निर्भर था। धीरे-धीरे मनुष्य की आवश्यकताएँ बढ़ी तथा आवश्यकताओं ने ही नवीन अन्वेषणों के मार्ग को प्रशस्त किया। क्रमश: जनसंख्या में वृद्धि हुई तथा प्राकृतिक संसाधनों को हथियाने की होड़ शुरू हुई। इस प्रकार से तय है कि यदि वातावरण के घटकों का संतुलन प्रकृति के पक्ष में है तो मानव जीवन स्वस्थ, सुविधाजनक तथा सुखकर होता है परंतु यदि वातावरण का संतुलन प्रकृति के पक्ष में नहीं है तो वह मानव जीवन में कई प्रकार की कठिनाईयों को जन्म देता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. अरविंद कुमार दुबे, पर्यावरण विधि सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
2. डॉ. जय जय राम उपाध्याय, पर्यावरण विधि तृतीय संस्करण सेन्ट्रल लॉ एजेंसी इलाहाबाद।
3. डॉ. अनिरुद्ध प्रसाद, पर्यावरण एवं पर्यावरणीय संरक्षण विधि की रूपरेखा, पंचम संस्करण सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
4. मुरलीधर चतुर्वेदी, भारत का संविधान इलाहाबाद लॉ एजेंसी पब्लिकेशन।
5. डॉ. जयनारायण पाण्डेय, भारत का संविधान चौतीसवाँ संस्करण, सेन्ट्रल लॉ एजेंसी।
6. आपदा मित्र प्रशिक्षण पुस्तिका, राष्ट्रीय आपदा मोचन अकादमी, नागपुर।

समाचार पत्र :

7. दैनिक भास्कर
8. नवभारत
9. नईदुनिया

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

बनारस घराने में टप्पा गायन

डॉ. निलांभ राव नलवडे *

* संगीत शिक्षक, केन्द्रीय विद्यालय, दापोरिजो (अरूणाचल प्रदेश) भारत

प्रस्तावना – टप्पा मूलत: पंजाब में ऊँट चराने वालों के द्वारा गायी जाने वाली लोक शैली थी, जिसने बाद में आकर्षक शैली हो जाने के कारण संगीत में अपना स्थान बना लिया है। 'टप्पा से मतलब मैदानी जमीन से है, ऊँटहार जब अपने गाँवों से ऊँटों पर सामान लादकर शहर में आते व वापसी में एक बोल बनाकर वापस अपने घरों में जाते, उसी समय रास्ता यानि टप्पा, दो टप्पा, चार टप्पा, सुनसानी मैदानी रास्ते को काटने के लिए अपनी पंजाबी जुबान में गाते चले जाते थे। इसी गाने का नाम टप्पा पड़ गया।

पजांब में 'गुलाम नबी उर्फ शोरी मियाँ' को 'टप्पा' का आविष्कारक माना गया है। शोरी मिया में कविता की रचना करने की अद्भुत शक्ति थी, उन्होंने टप्पा की रचना ऊँटहारों की गायन शैली पर की। इस नवीन शैली ने लोगों को इतना प्रभावित किया कि गायक वर्ग इसकी अवहेलना न कर, इसको सीखने लगा। 'टप्पा प्राय: पंजाबी अथवा हिन्दी मिश्रित पंजाबी भाषा का गीत है।'

टप्पा गायन शैली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें खटके, मुर्की, द्रुत लय में छोटी–छोटी वक्र तानों का प्रयोग तुरन्त व सहज रूप से होता है। इस शैली ने शास्त्रीय संगीत को काफी प्रभावित किया है, जिसके फलस्वरूप इसे उप–शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत रखा गया है। प्राय: सभी टप्पे अद्धाताल में गाये जाते हैं। कुछ लोग इसे पंजाबी ताल भी कहते हैं। प्राय: टप्पा मध्य लय में ही गाया जाता है, जिन गायकों का गला तैयार होता है, वे तेज मध्य लय में भी टप्पा गाते हैं। टप्पे की प्रकृति चंचल होती है।

'लखनऊ के आसफुद्दोला के बाद संगीत की कुछ समय तक विशेष पूछ–परख न रही। जिसके कारण टप्पे के द्वितीय आचार्य मियाँ गम्मू खां को महाराज उदित नारायण सिंह काशी ले आये। मियाँ गामू उस समय टप्पे के अद्वितीय आचार्य थे। उन्होनें टप्पे का विशेष प्रचार भी किया, अन्त तक वे काशी में ही रहे और यहीं उनका शरीरान्त हुआ। इनके पुत्र भी इनके अनुरूप ही कलाकार हुए। उनकी शिष्यायें चित्रा और इमामबांदी उस समय की अद्वितीय टप्पा गायिका समझी जाती थी। इस प्रकार भविष्य में काशी टप्पा गायन का एक बहुत बड़ा केन्द्र बना। काशी में लक्ष्मी सवेक मिश्र तथा रामसेवक मिश्र जी के पास टप्पे की बंदिशों का अपार भण्डार था। 'बड़े रामदास जी' भी टप्पा गाते थे। आप शिष्यों का गला तैयार करने के लिए टप्पा का अभ्यास कराते थे। प्रसिद्ध गायिकाओं में रसलून बाई तथा सिद्धेश्वरी देवी का नाम भी टप्पा गायन में दूर–दूर तक प्रसिद्ध था। वैसे तो ठाकुर दयाल मिश्र ने शोरी मियाँ से टप्पा गायन की शिक्षा प्राप्त की थी, उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में टप्पे का विशेष प्रचलन हुआ। इमामबांदी के पुत्र रमजान खाँ तथा शिष्य नागेन्द्र नाथ महाचार्य के कारण टप्पा गायकी बनारस से कलकत्ता जा पहुँची, जिसे अन्य गायिकाओं ने लोकप्रिय बनाया।

टप्पा गायन की परम्परा में बनारस के पंडित रामू मिश्र जी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यद्यपि वे गया में रहते थे, फिर भी काशी में उनकी रिश्तेदारी होने के कारण रामूजी जब तक जीवित रहे, तब तक काशी से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। उनके पास विभिन्न रागों में टप्पा गायन की बंदिशों का अपार भण्डार था। सन् 1974 ई0 में 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' स्थित संगीत एवं मंच कला संकाय ने आपको टप्पा गायन सिखाने के लिए तीन महीने के लिए रखा गया था।

नवाब सआदत अली खाँ भी टप्पे की रचना करते थे। इस प्रकार टप्पे में मियाँ शोरी व नवाब साहब अपनी रचनाओं में केवल मियाँ की छाँप रखते थे। कहा जाता है कि –'गुलाम नवी के मकान के पास एक खूबसूरत लडक़ी थी, जिसका नाम शोरी था। उस लडक़ी पर मुग्ध होकर आपने तमाम टप्पा की चीजों में शोरी का ही नाम रख दिया व आप भी शोरी मियाँ के नाम से पुकारे जाने लगे। टप्पा की जिन रचनाओं में 'मिया' शब्द का प्रयोग हुआ है वह नवाब साहब की रचना है। कुछ रचनायें ऐसी हैं जिनमें न 'मियाँ' का नाम आता है, न शोरी का। इससे ऐसा ज्ञात होता है कि गुलाम कुछ चीजें वहीं से सीखकर आये व उन्ही के आधार पर अपनी रचनायें की।'

टप्पा गायन के अंतर्गत यदि हम बनारस घराने के प्रतिपादकों पर ध्यान केंद्रित करते हैं तो ज्ञात होता है कि बनारस गायकी या गायन शैली में टप्पा का विस्तार ग्वालियर शैली से काफी अलग है, हालाँकि पजं ाबी में शोरी मियाँ द्वारा बनाई गई रचनाएँ दोनों घरानों में समान हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि बनारस घराने के गायक 16–गिनती या मात्रा ताल को पसंद करते हैं जिसे सितारखानी या अद्धा कहा जाता है। इसके अलावा बनारस घराने के टप्पा गायक टप ख्याल का गायन करना भी पसंद करते थे। टपख्याल टप्पा और ख्याल का मिश्रित रूप है जिसमें दोनों गायन शैलियों का समावेश है। बनारस घराने की महान गायिका गिरिजादेवी सितारखानी ताल पर टपख्याल गायन में सिद्धहस्त थी। जैसा कि हम जानते है कि टप्पा काफी, खमाज और भैरवी रागों में गाये जाते है किंतु बनारस घराने की महान गायकी रसलू न बाई सितारखानी ताल पर काफी राग में स्वरबद्ध टप्पा प्रस्तुत कर श्रोताओं को मंत्र–मुग्ध कर देती थी। टप्पा गायन के सबसे प्रमुख माना जाने वाला ग्वालियर घराना और बनारस घराने में टप्पा गायन

में एक विशेष अंतर यह भी है कि ग्वालियर घराने में बनारस की तरह महान टप्पा गायिकाओं का अभाव सा है, जबकि टप्पा गायन के लिए महिला संगीतकारों की आवाज उचित मानी जाती है।

इस समय बनारस में टप्पा गायकों की स्थिति अच्छी नहीं है। नवीन पीढ़ी में टप्पा गायन को सीखने की रूचि कम दिखाई पड़ती है। यही कारण है कि बनारस में टप्पा गायन शैली आज लुप्त सी है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह गायकी बुजुर्ग कलाकारों तक ही सीमित रह गयी है। वर्तमान समय में बनारस घराने के टप्पा गायकों में बडे रामदास, रसूलन बाई, सिद्धेश्वरी देवी, बडी मोती बाई, गिरिजा देवी, राजन–साजन मिश्र, रामकृष्ण मिश्र तथा पशुपति मिश्र का नाम अग्रणी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. शर्मा डॉ. मनोरमा, 'शास्त्रीय संगीत की परम्परा में बनारस घराना' वर्ष 2010 (प्रथम) मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर मार्ग, बाणगंगा, भोपाल 462003 (म.प्र.)
2. डॉ. चौबे, सुशील कुमार,'संगीत के घरानों की चर्चा', वर्ष 1977 (द्वितीय संस्करण) उ.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ, उत्तर प्रदेश।
3. पाण्डे आशा, 'मध्यकालीन संगीत शैलियों का उद्भम और विकास' वर्ष 2002 निर्मल पब्लिकेशंस, दिल्ली 1100944.
4. तैंलग कृष्णनारायण 'टप्पा सग्रंह' (टप्पा गीत) वर्ष 1994, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली।

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

छात्रावासी और गैर छात्रावासी छात्राओं के समायोजन पर सांवेगिक बुद्धि के प्रभाव का अध्ययन-स्वयं सिद्धा छात्रावास जबलपुर की छात्राओं और होम साइंस कॉलेज जबलपुर की गैर छात्रावासी छात्राओं के संदर्भ में

श्रीमती माधुरी खांडेलकर*

* सहायक प्राध्यापक, शासकीय एम.एच.कॉलेज ऑफ होम साइंस एंड साइंस फॉर वूमेन, जबलपुर (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – प्रस्तुत शोध पत्र में छात्रावासी और गैर छात्रावासी छात्राओं के समायोजन पर सांवेगिक बुद्धि के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन के सन्दर्भ में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि को प्रयुक्त किया गया है। स्वयं सिद्धा छात्रावास जबलपुर की छात्राओं और होम साइंस कॉलेज जबलपुर की गैर छात्रावासी छात्राओं के संदर्भ में परिसर से उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्शन विधि द्धारा किया गया। प्रदत्तों को एकत्रित करने के लिए स्वनिर्मित सामाजिक व्यवहार मापनी का प्रयोग किया गया है। सामाजिक व्यवहार का मापन पाँच आयामों यथा सामाजिक समायोजन, जीवन प्रबन्धन, सामूहिकता , नेतृत्वशीलता तथा प्रतिस्पर्धात्मकता पर किया गया है। संकलित प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु मध्यमान , मानक विचलन एवं टी – परीक्षण का प्रयोग किया गया। प्रदत्तों के विश्लेषण के फलस्वरूप पाया गया कि छात्रावासीय तथा गैर छात्रावासीय विद्यार्थियों के सामाजिक व्यवहार में सार्थक अन्तर होता है। समग्र सामाजिक व्यवहार पर ग्रामीण व शहरी विद्यार्थियों तथा छात्र तथा छात्राओं के मध्य कोई सार्थक अन्तर दृष्टिगोचर नहीं हुआ।

प्रस्तावना – मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य समाज में रहता है तथा दूसरों के साथ अन्त:क्रिया करता है। समाज में रहकर व्यक्ति जो भी व्यवहार करता है वह सभी सामाजिक व्यवहार के क्षेत्र में शामिल है। परन्तु आधुनिक युग में जब से विशिष्टता का दौर शुरू हुआ है, व्यक्ति के व्यवहार को भी श्रेणीकृत किया जाने लगा है। धर्म से सम्बन्धित व्यवहार को धार्मिक व्यवहार,[1] शिक्षा से सम्बन्धित व्यवहार को शैक्षिक व्यवहार तथा संवेगों से सम्बन्धित व्यवहार को सांवेगिक व्यवहार का नाम दिया जाने लगा है। इसी प्रकार किसी समाज में रहते हुए समाज सम्मत व्यवहार को सामाजिक व्यवहार कहा गया है। व्यक्ति के सम्पूर्ण सामाजिक व्यवहार पर एक साथ शोध कर पाना असम्भव नहीं तो थोड़ा कठिन अवश्य है। सामाजिक व्यवहार से सम्बन्धित शोध की प्रक्रिया में स्वयं सिद्धा छात्रावास जबलपुर की सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका पायी। सोशल मीड़िया को सामाजिक विकास में अवरोधक पाया। स्वयं सिद्धा छात्रावास जबलपुर की छात्राओं का सामाजिक अन्त:क्रिया से सकारात्मक सम्बन्ध पाया।[2] स्वयं सिद्धा छात्रावास जबलपुर की छात्राओं में निवास करने से छात्रों में सामाजिकता, यर्थाथता तथा जबावदेही जैसे सामाजिक गुणों का विकास में सकारात्मक सम्बन्ध पाया। स्वयं सिद्धा छात्रावास जबलपुर की छात्राओं और होम साइंस कॉलेज जबलपुर की गैर छात्रावासी छात्राओं के सामाजिक समायोजन में सार्थक अन्तर पाया। विद्यार्थियों की सामाजिक बुद्धि तथा समायोजन पर लिंग भेद तथा स्थानीयता के प्रभाव [3] का अध्ययन किया। विद्यालयी वातावरण का सामाजिक समायोजन पर सार्थक प्रभाव पाया। विद्यालयी तथा छात्रावासीय छात्रों के सामाजिक समायोजन में अन्तर पाया। दिवा तथा छात्रावासीय छात्रों की सामाजिक क्षमता में कोई अन्तर नहीं पाया। छात्रावासीय वातावरण का प्रबंधन कौशल पर सकारात्मक प्रभाव पाया। अभिभावकों के सकारात्मक व्यवहार में छात्रों के सामाजिक परिवर्तन दृष्टिकोण में सार्थक सहसम्बन्ध पाया। छात्रों के गैर – सामाजिक व्यवहार व सामाजिक आर्थिक स्तर में सहसम्बन्ध पाया।[4] स्वयं सिद्धा छात्रावास जबलपुर की छात्राओं और होम साइंस कॉलेज जबलपुर की गैर छात्रावासी छात्राओं के संदर्भ में छात्रावासी और गैर छात्रावासी छात्राओं के समायोजन पर सांवेगिक बुद्धि के प्रभाव का अध्ययन किया गया।[5]

शोध प्रक्रिया

1. **अध्ययन विधि –** शोध अध्ययन में वर्णनात्मक शोध की सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

2. स्वयं सिद्धा छात्रावास जबलपुर की छात्राओं और होम साइंस कॉलेज जबलपुर की गैर छात्रावासी छात्राओं के संदर्भ में छात्रावासी और गैर छात्रावासी छात्राओं के समायोजन पर सांवेगिक बुद्धि के प्रभाव का अध्ययन चयनित किया गया है।[6]

3. **अध्ययन उपकरण –** आँकड़ों को एकत्रित करने के लिए स्वनिर्मित सामाजिक व्यवहार मापनी का प्रयोग किया गया है। जिसमें कुल 50 प्रश्न है। सामाजिक व्यवहार का मापन पाँच स्तर पर किया गया है। इन स्तरों को अध्ययन में सामाजिक व्यवहार की आयाम के रूप में वर्णित किया गया है। ये आयाम क्रमश: सामाजिक समायोजन, जीवन प्रबंधन, नेतृत्वशीलता, सामूहिकता, प्रतिर्स्पद्धात्मकता है। प्रत्येक विद्यार्थी को प्रश्नावली में पाँच अनुक्रिया विकल्प यथा पूर्णत: सहमत, सहमत, अनिश्चित, असहमत तथा पूर्णत: असहमत के लिये क्रमश: 5, 4, 3, 2 तथा 1 अंक प्रदान किया गया है। नकारात्मक प्रश्नों का अंकन इसके विपरीत यथा 1, 2, 3, 4 तथा 5 अंक प्रदान करके किया गया है।

4. **अध्ययन के चर –** वर्तमान अध्ययन में सामाजिक व्यवहार आश्रित

चर तथा आवासीय वातावरण, लिंगभेद तथा स्थानीयता को स्वतन्त्र चर के रूप में प्रयुक्त किया गया है।

5. प्रयुक्त सांख्यिकी – आँकड़ों के विश्लेषण के शोध अध्ययन में मध्यमान, मानक विचलन तथा टी – मान की गणना की गयी है।[7]

परिणाम एवं विवेचना

1. छात्रावासीय तथा गैर – छात्रावासीय विद्यार्थियों के सामाजिक व्यवहार की तुलना।

छात्रावासीय तथा गैर छात्रावासीय विद्यार्थियों के सामाजिक व्यवहार की तुलना करने के लिए परीक्षण प्राप्तांकों का मध्यमान, मानक विचलन तथा दोनों समूह के मध्य अन्तर की सार्थकता के लिए टी – मान की गणना की गयी है जिसे तालिका संख्या – 1 में दर्शाया गया है।[8]

सारिणी संख्या – 1 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

सारिणी संख्या – 1 से स्पष्ट है कि सामाजिक समायोजन आयाम पर छात्रावासीय विद्यार्थियों का मध्यमान (M1=31.33), गैर छात्रावासीय के मध्यमान (M2=28.36) से अधिक है। जीवन प्रबन्धन आयाम पर छात्रावासीय विद्यार्थियों का मध्यमान (M1=45.75), गैर छात्रावासीय के मध्यमान (M2=46.38) से कम है। सामूहिकता आयाम पर छात्रावासीय विद्यार्थियों का मध्यमान (M1=32.46) गैर छात्रावासीय के मध्यमान (M2=27.26) से अधिक है। नेतृत्वशीलता आयाम पर छात्रावासीय विद्यार्थियों का मध्यमान (M1=40.56), गैर छात्रावासीय के मध्यमान (M2=38.06) से अधिक है। प्रतिस्पर्धात्मक आयाम पर छात्रावासीय विद्यार्थियों का मध्यमान (M1=22.45), गैर छात्रावासीय के मध्यमान (M2=21.89) से अधिक है। समग्र सामाजिक व्यवहार पर छात्रावासीय विद्यार्थियों का मध्यमान (M1=172.56), गैर छात्रावासीय के मध्यमान (M2=161.97) से अधिक है। छात्रावासीय तथा गैर छात्रावासीय विद्यार्थियों के सामाजिक व्यवहार के आयामों सामाजिक समायोजन, जीवन प्रबन्धन, सामूहिकता, नेतृत्वशीलता तथा प्रतिस्पर्धात्मकता के मध्यमानों में अन्तर की सार्थकता की जाँच के लिए प्राप्त टी – मूल्य क्रमश: 7.10, 1.10, 12.76, 4.14 तथा 2.44 है।[9] जबकि समग्र सामाजिक व्यवहार के लिए टी – मूल्य 8.82 है। स्वतंत्राश (Degree of Freedom) 598 के लिए .01 सार्थकता स्तर पर सामाजिक समायोजन आयाम, सामूहिकता आयाम, नेतृत्वशीलता आयाम और समग्र सामाजिक व्यवहार के लिए टी – मूल्य सार्थक है। स्वतंत्राश (Degree of Freedom) 598 के लिए . 05 सार्थकता स्तर पर प्रतिस्पर्धात्मक आयाम पर टी – मूल्य सार्थक है। इससे स्पष्ट है कि सामाजिक समायोजन, सामूहिकता, नेतृत्वशीलता, प्रतिस्पर्धात्मकता आयाम और समग्र सामाजिक व्यवहार में छात्रावासीय विद्यार्थी, गैर छात्रावासीय विद्यार्थियों से श्रेष्ठ पाये गये है। अत: शून्य परिकल्पना 'छात्रावासीय तथा गैर छात्रावासीय विद्यार्थियों के सामाजिक व्यवहार में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है'अस्वीकृत होती है। कहा जा सकता है कि छात्रावासीय तथा गैर छात्रावासीय विद्यार्थियों के सामाजिक व्यवहार में सार्थक अन्तर होता है। जिसका कारण छात्रावासीय समूह का परिवेश, वृहद समूह के साथ सामाजिक अन्त:क्रिया के अवसरों की उपलब्धता तथा सामूहिक कार्यों में प्रतिनिधित्व के अवसर हो सकता है। [10]

छात्रावासीय तथा दिवा छात्रों के सामाजिक व्यवहार में सार्थक अन्तर पाया जो कि उपरोक्त परिणाम का समर्थन करता है। छात्रावासीय तथा गैर छात्रावासीय विद्यार्थियों के सामाजिक व्यवहार की तुलना को आरेख संख्या – 1 से भी दर्शाया गया है।

ग्रामीण व शहरी विद्यार्थियों के सामाजिक व्यवहार की तुलना करने के लिए परीक्षण प्राप्तांकों का मध्यमान, मानक विचलन तथा दोनों समूह के मध्य अन्तर की सार्थकता के लिए टी – मान की गणना की गयी है जिसे तालिका संख्या – 2 में दर्शाया गया है।

सारिणी संख्या – 2 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

सारिणी संख्या – 2 से स्पष्ट है कि सामाजिक समायोजन आयाम पर ग्रामीण विद्यार्थियों का मध्यमान (M1=30.81), शहरी विद्यार्थियों के मध्यमान (M2=29.02) से अधिक है। जीवन प्रबंधन आयाम पर शहरी विद्यार्थियों का मध्यमान (M1=46.98), ग्रामीण विद्यार्थियों के मध्यमान (M2=44.99) से अधिक है। सामूहिकता आयाम पर ग्रामीण विद्यार्थियों का मध्यमान (M1=30.83), शहरी विद्यार्थियों के मध्यमान (M2=29.02) से अधिक है। नेतृत्वशीलता आयाम पर शहरी विद्यार्थियों का मध्यमान (M1=39.40), ग्रामीण विद्यार्थियों के मध्यमान (M2=39.20) से अधिक है। प्रतिस्पर्धात्मक आयाम पर शहरी विद्यार्थियों का मध्यमान (M1=22.41), ग्रामीण विद्यार्थियों के मध्यमान (M2=21.88) से अधिक है। समग्र सामाजिक व्यवहार पर ग्रामीण विद्यार्थियों का मध्यमान (M1=167.73) शहरी विद्यार्थियों के मध्यमान (M2=164.84) से अधिक है। ग्रामीण व शहरी विद्यार्थियों के मध्य सामाजिक व्यवहार के आयामों सामाजिक समायोजन, जीवन प्रबन्धन, सामूहिकता, नेतृत्वशीलता तथा प्रतिस्पर्धात्मकता के मध्यमानों में अन्तर की सार्थकता की जाँच के लिए प्राप्त टी – मूल्य क्रमश: 4.38, 3.48, 3.96, 0.31 तथा 2.34 है।[11] जबकि समग्र सामाजिक व्यवहार के लिए टी – मूल्य 0.69 है। स्वतंत्राश (Degree of Freedom) 598 के लिए . 01 सार्थकता स्तर पर सामाजिक समायोजन आयाम, जीवन प्रबन्धन आयाम तथा सामूहिकता आयाम के लिए टी – मूल्य सार्थक है। स्वतंत्राश (Degree of Freedom) 598 के लिए . 05 सार्थकता स्तर पर प्रतिस्पर्धात्मक आयाम पर टी – मूल्य सार्थक है। जबकि नेतृत्वशीलता आयाम तथा समग्र सामाजिक व्यवहार के लिए टी – मूल्य असार्थक है। इससे स्पष्ट है कि सामाजिक समायोजन आयाम, सामूहिकता आयाम तथा प्रतिस्पर्धात्मकता आयाम पर ग्रामीण विद्यार्थी शहरी विद्यार्थियों से श्रेष्ठ पाये गये है।[12] जीवन प्रबन्ध आयाम पर शहरी विद्यार्थी ग्रामीण विद्यार्थियों से श्रेष्ठ पाये गये है। अत: शून्य परिकल्पना 'ग्रामीण व शहरी विद्यार्थियों के सामाजिक व्यवहार में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।' को स्वीकृत किया जाता है। कहा जा सकता है कि ग्रामीण तथा शहरी विद्यार्थियों के सामाजिक व्यवहार में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है। दोनों समूहों में सामाजिक व्यवहार में अन्तर नहीं होने का कारण समान आयु, समान सामाजिक स्तर तथा सामाजिक अन्त:क्रिया के अवसरों की समान उपलब्धता हो सकता है। [13]

ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों के विद्यार्थियों के सामाजिक समायोजन व सामाजिक बुद्धि में कोई अन्तर नहीं पाया गया। ग्रामीण तथा शहरी विद्यार्थियों के सामाजिक व्यवहार की तुलना को आरेख संख्या – 2 से भी दर्शाया गया है।

शैक्षिक निहितार्थ – प्रस्तुत शोध द्वारा विद्यार्थियों के छात्रावासीय वातावरण को उनके अनुरूप बनाये जाने में सफलता प्राप्त हो सकेगी। शिक्षा स्तर की संस्थाओं में विभिन्न कार्यक्रमों यथा राष्ट्रीय सेवा योजना, राष्ट्रीय कैडेट

कोर, रोवर्स रेंजर्स आदि का संचालन कर विद्यार्थियों में दायित्वों का निर्धारण कर उनमें नेतृत्व गुणों का विकास किया जा सकेगा। विद्यार्थियों को भविष्य में रोजगार व शिक्षा के अवसरों से अवगत कराते हुये उनमें प्रतियोगिता की भावना को बढ़ाया जा सकेगा। विद्यार्थियों को समाज में समायोजित होने तथा अपने जीवन को कुश्लतापूर्वक प्रबंधित करने में समर्थ बनाया जा सकेगा। विद्यार्थियों के लिए सामूहिक कार्यक्रमों का संचालन करने से उनमें समूह के रूप में कार्य करने व सहकारिता की समझ विकसित की जा सकेगी।[13]

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. **Abimbade, Oluwadara; Adedoja, Gloria; Fakayode, Bukala; Bello Lukuman (2019).** "Impact of Mobile Based Mentoring Socio-Economic Background and Religion on Girls Attitude and Belief towards Antisocial Behaviour", British Journal of Educational Technology, Vol.-50, Issue-02, March-2019, pp-638-654, ISSN-0007-1013.
2. इफ्तकार, अमीना (2015) 'ए क्वालीटेटिव स्टडी इनवेस्टिगेटिंग द इम्पैक्ट ऑफ हॉस्टल लाईफ य, इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ इमरजेन्सी मेन्टेल हेल्थ एण्ड ह्यूमन रेजीलेन्स, टवसण् 17 छवण् 1, pp 511 – 515.
3. **Ireoma, Akubugwo and Burke; Maria (2013).** "Influence of Social Media on Social behavior of Postgraduate Students: A Case study of Sulfored University, United Kingdom", *IOSR Journal of Research Method in Education* , Vol. 03, Issue 06(Nov.-Dec. 2013) ISSN-2320-737X
4. **Mowat, Joan Gaynor (2019).** "Supporting the Socio-Emotional Aspects of the Primary-Secondary Transition for Pupils with Social, Emotional and Behavioural Needs Affordances and Constraints", Emproving Schools, Vol.-22, Issue-01, March 2019 pp.-4-28, ISSN-1635-4002 .
5. **Priya, J. Johnsi (2019).** "The impact of parenting behavior on developing positive attitude towards social transformation among adolescents." Journal on Educational Psychology, Vol-12, Issue-03, pp. 34-41.
6. राठौर, योगिता तथा संस्मृति मिश्रा (2015)' ग्रामीण विद्यार्थियों के मध्य सामाजिक बुद्धि एवं समायोजन के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन'इन्टरनेशनल जर्नल आफ मल्टीडिस्प्लेनररी रिसर्च एण्ड डेवलमेंट, Vol.– 02, Issue– 02, 2015pp. 434 – 436 .
7. **Raziah, Jasmine Zea and Radha Rashid Radha (2015).** "The Influence of Hostel Services capes on Social Interaction and Service Experience", Unpublished Ph.D. Thesis, School of Hospitality and Tourism Management, University of Surrey.
8. सिंह, बलवान (2018)'माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के विद्यालय वातावरण का समायोजन पर प्रभाव का अध्ययन' इन्टरनेशनल एजूकेशन एण्ड रिसर्च जर्नल, ISSN2424–9916, Vol.– 04 pp.–09, Sept. 2018.
9. सिंह, नीलू (2016)'विद्यार्थियों के सामाजिक समायोजन पर विद्यालयी वातावरण द्वारा पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन' इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसीप्लेनटरी एजुकेशन एण्ड रिसर्च, ISSN-2255-4588, Vol-01, Isse-02, April-2016, pp. 31-34..
10. स्वामी, शिल्पा (2015)' उच्च प्राथमिक स्तर पर डे – बोर्डिंग व सामान्य विद्यालयों के छात्रों के सामाजिक, सांवेगिक तथा सामाजिक समायोजन का अध्ययन', अप्रकाशित पी – एच 0 डी 0 थीसिस, शिक्षा संस्थान, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान http://hdl.handle.net/10603/139849
11. **Shahahudin, Sharitah Hapsah Syed Hasan; Razak, Mohamad Abdul and Khoon Koh, Ailc (2011).** "Thriving in a faculty and college setting", College student Journal, Vol. 45, Issue 01, pp. 102-104. March 2011 ISSN- 0146-3934
12. **Singh, Mangal (2016).** 'A Comparative study of Hosteler and Non-Hosteler students on self concept' International Journal of Novel Research in Education and Learning, Vol.-3, Issue-2, March&2016 PP. 22-24
13. **Talaee, Ebrahim (2019).** "Longitudinal Impacts of Home Computer use in Early Years on Children's Social and Behavioral Development", International Electronic Journal of Elementary Education, Vol.-11, Issue-03, Jan. 2019, pp.-233-295ISSN-1367-9298.

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

सारिणी संख्या – 1

सामाजिक व्यवहार एवं सम्बन्धित आयाम	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी–मान	स्वतंत्राश	सार्थकता
सामाजिक समायोजन	छात्रावासीय	300	31.33	5.53	7.10	598	.01 स्तर पर सार्थक
	गैर छात्रावासीय	300	28.36	4.67			
जीवन प्रबन्धन	छात्रावासीय	300	45.75	8.32	1.10	598	.05 स्तर पर असार्थक
	गैर छात्रावासीय	300	46.38	5.45			
सामूहिकता	छात्रावासीय	300	32.46	5.69	12.76	598	.01 स्तर पर सार्थक
	गैर छात्रावासीय	300	27.26	4.16			
नेतृत्वशीलता	छात्रावासीय	300	40.56	8.29	4.14	598	.01 स्तर पर सार्थक
	गैर छात्रावासीय	300	38.06	6.41			
प्रतिस्पर्द्धात्मकता	छात्रावासीय	300	22.45	3.23	2.44	598	.05 स्तर पर सार्थक
	गैर छात्रावासीय	300	21.89	2.23			
समग्र सामाजिक व्यवहार	छात्रावासीय	300	172.56	16.63	8.82	598	.01 स्तर पर सार्थक
	गैर छात्रावासीय	300	161.97	12.50			

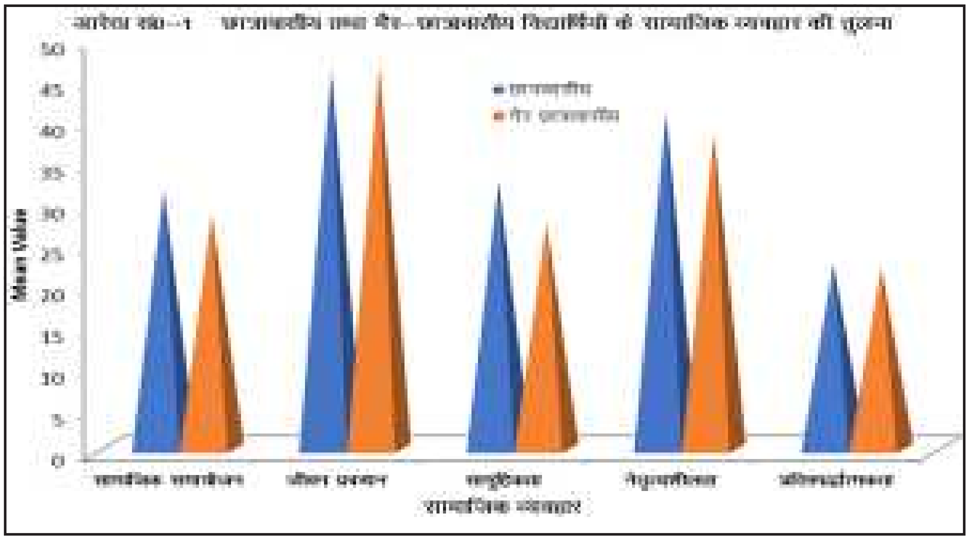

सारिणी संख्या – 2 : ग्रामीण व शहरी विद्यार्थियों के सामाजिक व्यवहार की तुलना

सामाजिक व्यवहार एवं सम्बन्धित आयाम	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी–मान	स्वतंत्राश	सार्थकता
सामाजिक समायोजन	ग्रामीण	275	30.81	5.51	4.38	598	.01 स्तर पर सार्थक
	शहरी	325	29.02	5.02			
जीवन प्रबन्धन	ग्रामीण	275	44.99	7.84	3.48	598	.01 स्तर पर सार्थक
	शहरी	325	46.98	6.13			
सामूहिकता	ग्रामीण	275	30.83	5.87	3.96	598	.01 स्तर पर सार्थक
	शहरी	325	29.02	5.25			
नेतृत्वशीलता	ग्रामीण	275	39.20	7.68	0.31	598	.05 स्तर पर असार्थक
	शहरी	325	39.40	7.37			
प्रतिस्पर्द्धात्मकता	ग्रामीण	275	21.88	2.77	2.34	598	.05 स्तर पर सार्थक
	शहरी	325	22.41	2.78			
समग्र सामाजिक व्यवहार	ग्रामीण	275	167.73	14.99	0.69	598	.05 स्तर पर असार्थक
	शहरी	325	166.84	16.14			

RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

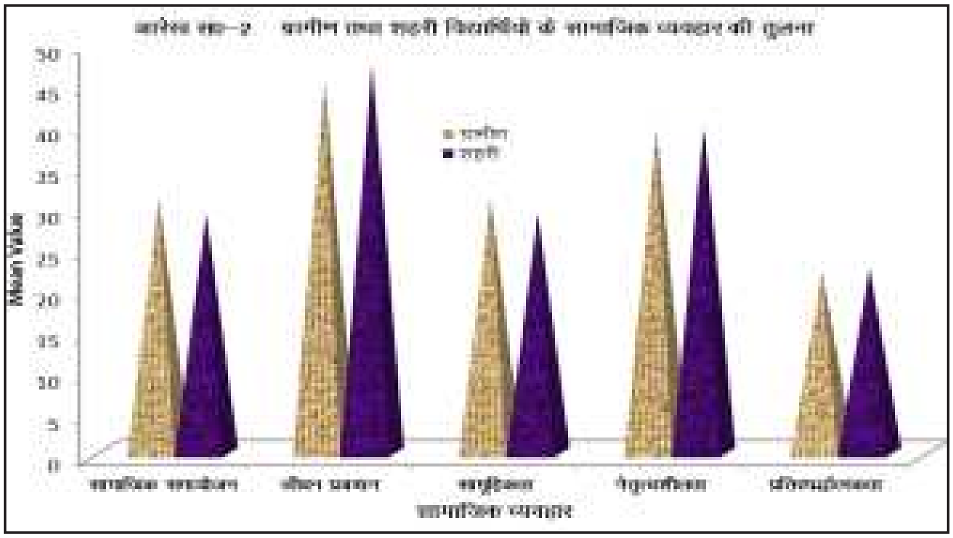

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

आपदा प्रबंधन में संचार माध्यम की अहम् भूमिका

लखनलाल कलेशरिया*

* सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय कन्या महाविद्यालय, सीहोर (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना - जैसा कि हम लोग जानते है की विश्व में आर्थिक, सामाजिक एवं अनेक परिवर्तन हुए है जिससे लोग पहले से सुखी महसूस कर रहे है। लेकिन पर्यावरण आपदा का डर हमेशा उसके दिमाग में बना रहता है। क्योंकि यह मानव जीवन को पल भर में अस्त व्यस्त कर देता है। यहां तक की जान और माल दोनों को खतरा रहता है। इस तरह कई प्रकारकी आपदाएं जेसे प्राकृतिक या मानव निर्मित होती है इन अपदाओ से निपटने के लिए आपदा प्रबंधन की रणनीति बहुत जरुरी होती है और इनके प्रबंधन में संचार माध्यम की बहुत बड़ी भूमिका होती है और एक अच्छे आपदा प्रबंधन के पास संचार के सभी आधुनिक माध्यम होना बहुत जरुरी है।

आपदा की परिभाषा-आपदाएं, प्राकृतिक या मानव निर्मित खतरों के परिणाम हैं.चूंकि हम आपदाओं को आने से नहीं रोक सकते हैं लेकिन हम हमेशा तैयार रह सकते हैं। जीवन और संपत्ति के नुकसान को कम करने के लिए उचित प्रबंधन द्वारा प्रभावों को कम कर सकते हैं।

आपदा यानी 'Disaster' शब्द मध्य फ्रांसीसी शब्द 'Desatre' से लिया गया है। इस फ्रांसीसी शब्द की उत्पत्ति प्राचीन ग्रीक शब्द 'DUS' से हुई है जिसका अर्थ है द बुरा और 'Aster' जिसका अर्थ है - तारा, आपदा शब्द की जड़ ग्रहों की स्थिति पर दोष लगाने वाली आपदा के ज्योतिषीय अर्थ से आती है।

आपदा के प्रकार -आपदा जो सामान्यत: पृथ्वी पर समस्त जीवों को हानि पहुंचाती है। ये निम्नलिखित प्रकार की होती है 1) प्राकृतिक आपदाएँ 2) मानवजनित आपदाएँ 3)आकस्मिक आपदा 4) अनाकस्मिक आपदा

प्राकृतिक आपदाएँ - प्राकृतिक आपदा जो प्रकृति द्वारा, पृथ्वी पर रहने वाले समस्त जीवों को क्षति पहुंचती है। जैसे बाढ़ आने से लोगों की फसल का नुकसान, वहां के जीव जन्तुओं की जान का खतरा रहता है। जिस तरह विकास हो रहा है। हर जगह नया-नया कंस्ट्रक्शन हो रहा है, जिससे कई प्रकार की प्रदूषित गैस (कार्बन, हीलियम, मीथेन इत्यादि) निकलती है और यह हमारे वायुमंडल में जाकर एक दीवार सा बना देती है, जिससे पृथ्वी का तापमान दिनों दिन बढ़ता जा रहा है।

पृथ्वी के उत्तरी एवं दक्षिणी छोर पर बर्फ तेजी से पिघल रही है।इसी के कारण है पानी का स्तर ऊपर उठ रहा है, जिससे बाढ़ आ रही है और समस्त जीवों को हानि हो रही है। प्राकृतिक आपदा के कुछ और भी उदाहरण है भूसंखलन होना, जंगलो में भयानक आग लगना, सड़कों का बुरी तरह से टूट जाना।

मानवजनित आपदाएँ- मानवजनित आपदा, ऐसी आपदा जिसका जिम्मेदार मानव खुद होता है। आज के समय में आदमी अपने लाभ के लिए यह नहीं देखता कि इससे प्रकृति को कितना नुकसान पहुंचा रहा है। वह स्वयं का लाभ देखता है, जिसके कारण सारी जीव जन्तुओं और वस्तुओं को नुकसान पहुँचता है।

आदमी अपने लाभ के लिए पेड़ काटना, अवैधानिक तरीके से खुदाई करना, नदियों और समुद्रों में प्रदूषण फैलाना (जिससे उसमें रहने वाले जंतु मछली, कछुआ आदि को नुकसान पहुंचाता है) इत्यादि कार्य करता है। देश की अलग-अलग सरकार को इसके बारे में सोचना होगा, जो कुछ मानव के हाथ में है, उसे तो वह रोक ही सकता है। बाकी प्रकृति के आगे तो कोई कुछ नहीं कर सकता।

आकस्मिक आपदा - यह ऐसी आपदा होती है, जिसमें मानव कुछ कर नहीं सकता, यह अकस्मात् हो जाती है। जिसके बारे में कोई नहीं जानता और न अभी तक इसे जानने के लिए किसी प्रकार का यंत्र है तथा वैज्ञानिकों के लिए इस प्रकार का बना पाना असंभव सा है। ऐसी कुछ घटनाएँ जैसे ज्वालामुखी बिस्फोट, बदल फटना, हिम आना, भूकंप आना है।

अनाकस्मिक आपदा - ऐसी घटनाएँ जिसके बारे में मानव कुछ अनुमान पहले से लगा ले और उससे होने वाले नुकसान से बच सके। परन्तु यह भी कुछ निम्न स्तर तक सीमित है। ऐसी कुछ घटनाएं जैसे मौसम एवं जलवायु के विषय में पहले से ज्ञात होना, अकाल, मरुस्थलीकरण और कृषि में कुछ कीड़ों से हानि जैसे समस्याओं का समाधान वैज्ञानिक कर सकते है। यह सब अनाकस्मिक आपदा से सम्बंधित है।

आपदा से होने वाली हानि - आपदा से होनी वाली हानि जैसे आर्थिक हानि, जन हानि होती है। आर्थिक हानि में लोगो घर, फसल तथा उनकी उपयोग की जाने वाली चीजे बर्बाद हो जाती है। लोगों को उन्हें फिर से इकट्ठा करने में उतना समय लगता है, जिससे उनके दैनिक जीवन में काफी बार उतर चढ़ाव आता है तथा दूसरी तरफ जन हानि में लोगों एवं उनके द्वारा पाले गए पालतू जानवरों के जान जाने का खतरा बना रहता है। इन आपदाओ से बचने के लिए कुशल आपदा प्रबंधन की बहुत जरूरत होती है

आपदा प्रबंधन क्या है?

पृथ्वी के किसी भी कोने में प्राय: सूनामी, चक्रवात की घटना, भूकंप आदि घटनाएँ घटित होती रहती है। इन्हीं से बचने के उपाय को ही आपदा प्रबंधन कहते है। इसके लिए भारत सरकार ने 2005 में एक अधिनियम लेकर आयी जो प्राकृतिक आपदा से हुए छति से बचाव करना।

भारत सरकार ने इसके लिए कुछ स्पेशल फोर्सेज का गठन भी किया

जैसे ICMR (नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ डिजास्टर मैनेजमेंट), NCC (नेशनल कैडेट कोर) एवं NDRF (नेशनल डिजास्टर मैनेजमेंट रिस्पांस फोर्स) है और ये फोर्सेज जब कभी प्राकृतिक आपदा आती है तो अपना पूरा सहयोग प्रदान करती है। आपदा प्रबंधन के निम्लिखित चरण हैलोगों को ज्यादा से ज्यादा इसके बारे में जागरूक व शिक्षित किया जाये।

दूर संचार के माध्यम से अवगत कराया जायें, जितना ज्यादा हो सके सरकार इसके बारे में लोगों को बताएं।राज्य स्तर पर, राज्य सरकार को इसके बारे में समझकर तत्पश्चात नियम बनाना चाहिए तथा केंद्र सरकार को इसके बारे में पुष्टि करनी चाहिए। आपदा प्रबंधन को मोटे तौर पर तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है या यूं कहें इसके तीन प्रकार है जोकि है !1)आपदासेपहले, 2)आपदा के दौरान 3)आपदा के बाद

आपदा पूर्व प्रबंधन –यह आपदा आने से पहले ही बचाव से संबंधित हैइसका मुख्य उद्देश्य प्रभाव को कम करना और मानव जीवन और अन्य प्रजातियों के नुकसान को रोकना है।

आपदा पूर्व प्रबंधन में सूचना प्रौद्योगिकी का विकास, आपदा का आकलन और आपदा की स्थिति में लोगों को रेडियो और मीडिया आदि के माध्यम से चेतावनी जारी करना, लोगों को सुरक्षित स्थान पर पहुंचाना, आवश्यक कार्रवाई के लिए संसाधन जुटाना शामिल है।

आपदाओं के दौरान प्रबंधन – इस चरण की उपलब्धि पूर्व आपदा प्रबंधन चरण की तैयारी के स्तर पर निर्भर है। यह त्वरित कार्रवाई और आपदा के समय पीड़ितों के समन्वय और उन्हें सुरक्षित आश्रय स्थलों तक पहुंचाने पर निर्भर करता हैइस चरण में पीड़ित लोगों को भोजन, वस्त्र, आश्रय और स्वास्थ्य सुविधाएं प्रदान की जाती हैं।

आपदा के बाद प्रबंधन – इस चरण में प्रभावित क्षेत्रों का पुनर्निर्माण, पुनर्विकास किया जाता है। प्रभावित लोगों को उनके पैरों पर वापस लाने में मदद करने के लिए पुनर्वास, रोजगार और मुआवजा दिया जाता है।

भारत में आपदा प्रबंधन–अब आपदा प्रबंधन के लिए विभिन्न स्तरों पर बनाई गई एजेंसियों के बारे में जानते हैं।

1. राष्ट्रीय स्तर पर नोडल एजेंसी गृह मंत्रालय है।
2. राज्य स्तर पर आपदा प्रबंधन विभाग काम करता है।
3. जिला स्तर पर जिला मजिस्ट्रेट कार्यालय।
4. विकासखंड स्तर पर पंचायत समिति का कार्यालय।
5. एवं गांव स्तर पर ग्रामीण आपदा प्रबंधन समिति काम करती है।

भारत सरकार द्वारा आपदा के प्रबंधन के लिए अपनाई गई रणनीतिया कुछ इस तरह हैं। राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 या आपदा प्रबंधन के लिए कानूनी आधार प्रदान करता है। राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण यह प्राधिकरण भारत में आपदा को नियंत्रित करने के लिए मुख्य एवं शीर्ष निकाय है। भारतीय प्रधानमंत्री इसके अध्यक्ष होते हैं।

राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 के अंतर्गत इसका निर्माण किया गया है। आपदा प्रबंधन पर राष्ट्रीय नीति 2009 आपदा प्रबंधन पर राष्ट्रीय नीति का निर्माण राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 के अंतर्गत किया गया है। राष्ट्रीय नीति सभी तरह की आपदाओं को संभालने के लिए रोडमैप तैयार करेगी।जिसका उद्देश्य समुदाय पंचायती राज संस्थानों को स्थानीय निकायों और नागरिक समाज की भागीदारी के माध्यम से आपदा का प्रबंधन करना है।

2016 में पहली बार केंद्र सरकार राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्लान लेकर आई है, जिसे 'सेंडाई फ्रेमवर्क' के साथ एकीकृत किया गया है। गौरतलब है कि भारत राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन योजना बनाने वाला पहला देश है। राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन योजना के प्रमुख पहलुओं पर चर्चा करें राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन योजना का उद्देश्य भारत को आपदा के लिए तैयार रहें और जीवन व संपत्ति के नुकसान को कम करना है। सेंडाई फ्रेमवर्क के अंतर्गत इस योजना में चार प्रमुख बिंदुओं को शामिल किया गया है। आपदा जोखिम को समझना, आपदा जोखिम प्रशासन में सुधार, आपदा जोखिम में कमी प्रारंभिक चेतावनी एवं आपदा के निर्माण योजना।

भारत सरकार ने आपदा प्रबंधन सिखाने के लिए कई इंस्टिट्यूट खोलें जहां आपदा से निपटने के लिए योजना बनाना सिखाया जाता है। राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण को भारत सरकार के द्वारा 30 मई 2005 को स्थापित किया गया था, जो सरकार के लिए प्राकृतिक और मानव जनित आपदाओं के प्रबंधन के लिए विभिन्न योजनाएं तैयार करता है और उन योजनाओं पर कार्यवाही करता है।

आपदा प्रबंधन के चार बिंदुओं पर कार्य करती है यह चार बिंदु हैं।

1. रोकथाम
2. शमन
3. प्रतिक्रिया
4. पुनर्स्थापना

यह सरकार सभी स्तरों पंचायतों और शहरी निकयों की भूमिका को बताती है।यह समुदायों को आपदा का सामना करने के लिए सुचना एवम शिक्षा का प्रावधान करती हैं।

रोकथाम के उपाय और नियंत्रण –प्राकृतिक आपदाएँ अजेय हैं. हम उन्हें होने से नहीं रोक सकतेभले ही हमारे पास आपदाओं की भविष्यवाणी करने की सारी तकनीक हो। आने वाली आपदाओं से बचने के लिए हम जो सबसे अच्छी चीज कर सकते हैं वह उन प्रथाओं से बचना है जो पर्यावरणीय गिरावट की ओर ले जा सकती हैंआपदा प्रबंधन और संचार माध्यम से हम आने वाली प्राकर्तिक आपदा के नुकशान से बछा जा सकता है आधुनिक संचार माध्यम जेसे टीवी इन्टरनेट मोबाइल न्यूज पेपर से हम आने वाली अपदाओ के बारे में सुचना देकर लोगो को नुकशान से बछा सकते है आपदाओं से बड़े पैमाने पर विनाश होता है, जीवन की हानि होती है, लोगों का विस्थापन होता है। आपदाओं के दौरान प्रभावित लोगों को प्राथमिक उपचार की सुविधा प्रदान करके तैयार रखना एक अच्छी बात के रूप में सामने आता है। हम लोगों को बचाव और राहत प्रदान करके बढ़ती स्थिति को नियंत्रित कर सकते हैं

संचार माध्यम–व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह द्वारा दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह को सूचना या संदेश भेजने के लिए माध्यम की आवश्यकता पड़ती है, जिसे संचार माध्यम कहते हैं। संचार माध्यमों के बिना संचार संभव नहीं है। संचार माध्यम शब्द अंग्रेजी भाषा के 'कम्युनिकेशन मीडिया' शब्द के समानान्तर प्रयोग में लाया जा रहा है। संचार माध्यम के द्वारा संप्रेषक और प्राप्तकर्ता या प्रापक के मध्य सूचनाओं का आदान–प्रदान होता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि संदेश या सूचना को प्रभावशाली ढंग से प्रापक तक पहुँचाने के लिए संवाहक या स्रोत जिस माध्यम की सहायता लेता है, वही संचार माध्यम है। इस प्रकार संचार माध्यम सूचना के आदान–प्रदान एवं एक स्थान से दूसरे स्थान तक संदेशों के सुगम प्रवाह करने हेतु जिस माध्यम का उपयोग किया जाता है, वही संचार माध्यम है।

क्या कभी आपने इस बात पर विचार किया है कि संचार माध्यमों का हमारे जीवन में क्या महत्व है? आइये हम इस लेख के माध्यम से संचार माध्यमों के बारे में जानते है। ये कितने प्रकार के होते है और हमारे लिए इनकी क्या उपयोगिता है।

संचार माध्यम के प्रकार– संचार माध्यम कितने प्रकार के होते हैं, संचार माध्यमों को तीन भागों में बांटा जा सकता है–

मुद्रित माध्यम:

1. पत्रिकाएँ
2. विषय सामयिकी
3. पुस्तकें

इलेक्ट्रोनिक माध्यम:

1. टेलीफोन
2. रेडियो
3. टेलीविजन
4. टेलीटेक्सट
5. विडियोटेक्सट
6. टेलीकांफ्रेन्स
7. इंटरनेट

1. **मुद्रित माध्यम –**सर्वप्रथम मुद्रण का उद्‌भव चीन में हुआ और 868 ई. में पुस्तक मुद्रित होकर विश्व के सामने आयी। आगे चलकर यूरोप में गुटनबर्ग ने 1440 ई. में प्रिंटिंग प्रेस का आविष्कार किया। भारत में मुद्रण का प्रचलन सन् 1556 में ईसाई धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए गोवा में स्थापित प्रिंटिंग प्रेस से माना जाता है। प्रिंटिंग प्रेस के आविष्कार ने मुद्रित संचार के क्षेत्र में क्रांति पैदा कर दी। समाचार–पत्र, पत्रिकाएँ, विभिन्न विषयों से सम्बन्धित सामयिकी, पुस्तकें आदि मुद्रित माध्यम के अन्तर्गत आते हैं। इस माध्यम की प्रमुख उद्देश्य समाज को ज्ञान, सूचना और मनोरंजन उपलब्ध कराना है।

1. **समाचार पत्र –** समाचार जगत अथवा प्रेस संचार का प्रमुख माध्यम है। अखबारों में समाचार प्रकाशित होते हैं। शिक्षा से लेकर, खेती बाड़ी, खेलकूद, स्वास्थ्य, सिनेमा, टेलीविजन के कार्यक्रम, बाजार भाव, भविष्यफल, विश्व के विभिन्न समाचार प्रकाशित होते हैं। समाचार पत्रों के माध्यम से प्रतिदिन घटने वाली घटनाओं की जानकारी होती है। समाचार पत्रों में देश विदेश की महत्वपूर्ण खबरे प्रकाशित की जाती है।

2. **इलेक्ट्रोनिक माध्यम –** संचार माध्यमों के विकास में इलेक्ट्रोनिक माध्यमों का विकास संचार जगत में एक क्रान्तिकारी घटना के रूप में देखा जाता है। इनमें टेलीफोन, रेडियो, टीवी, टेलीग्राफ, टेलीप्रिन्टर, फैक्स, कम्प्यूटर, ई–मेल अनेक माध्यम आते हैं कुछ प्रमुख इलेक्ट्रोनिक संचार माध्यम हैंरू

1. **रेडियों –** संचार माध्यमों में सर्वाधिक प्रभावी माध्यम रेडियो और टेलीविजन है। रेडियों एक श्रव्य माध्यम है जिसमे समाचार, विज्ञापन, सूचनाओं का प्रसारण किया जाता है। मुद्रित माध्यमों का लाभ केवल साक्षर लोग ही उठा पाते हैं परन्तु श्रव्य माध्यमों का लाभ कम पढ़े लिखे या निरक्षर उठा सकते है। रेडियो माध्यम जनसंचार द्रुतगामी और सर्वसुलभ माध्यम है, ध्वनित तरंगों का माध्यम होने के कारण इसके लिए समय और दूरी की कोई सीमा नहीं है।

रेडियों मे प्रसारित होने वाले समाचारों को यदि ठीक से सुना न जाए तो वे छूट जाते है परन्तु अखबार में ऐसा नही है उन्हें दुबारा पढ़ा जा सकता है। रेडियो के अलावा श्रव्य माध्यम के रूप में इन दिनों टेपरिकार्ड का भी प्रचलन तेजी से बढ़ा है। इसमें सूचनाओं को रिकार्ड करके रखा जा सकता है, जिसे अपनी मर्जी से सुना जा सकता है।

लाउडस्पीकर भी संचार का एक श्रव्य माध्यम है इसके जरिए कस्बों में सिनेमा का प्रचार करने वाले वाहनों में इनका उपयोग होता है महानगरों में लाल बतियों पर ट्रेफिक पुलिस का प्रचार प्रसारित होता रहता है।

3. **टेलीविजन –** टेलीविजन दृश्य– श्रव्य माध्यम है। इसके कार्यक्रम रेडियो की अपेक्षा अधिक रोचक होते हैं क्योंकि इस पर चित्र भी प्रसारित होते है। भारत में टेलीविजन की शुरूआत 15 सिम्बर 1959 को आल इंडिया रेडियों के एक सहयोगी विभाग के रूप में यूनेस्को की एक परियोजना के अधीन हुई थी। धीरे–धीरे प्रसारण में इसके विस्तार होने लगा और वर्ष 1976 में टेलीविजन आकाशवाणी से अलग होकर दूरदर्शन बना तथा एक स्वतंत्र संगठन के रूप में कार्यरत हुआ। दूरदर्शन वर्ष 1982 से टेलीविजन पर रंगीन प्रसारण शुरू किया।

आजकल दूरदर्शन एक महत्पूर्ण संचार माध्यम के रूप में विकासित हो चुका है। आज कल टेलीविजन लगभग हर में है और पुरे चौबीसों घंटे इसका प्रसारण होने के कारण समाज हर वर्ग आने वाली प्राक्रतिक और मानवी अपदाओ के बारे में पहले से बात सकता है और विविध पक्षों को दिखाने, हर पल की घटनाओं को प्रसारित करने में आसानी होती है। यह एक अत्याधुनिक उपकरण होने के कारण इसके माध्यम से सूचनाएं एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाना आसान हो गया है तथा घटना स्थल से भी सीधे आंखों देखा हाल प्रसारित किया जा सकता है।

4. **कम्प्यूटर –** कम्प्यूटर से अब कोई व्यक्ति अपरिचित नहीं है। आज यह संचार का एक महत्वपूर्ण एवं सशक्त माध्यम है। यह ऐसा उपकरण है जिसके कारण संचार के क्षेत्र में क्रांति आ गई है। आज संसार भर में ऐसा कोई क्षेत्र नही है जहाँ कम्प्यूटर की पहुंच नहीं है। इस पर अखबारों, रेडियो, टेलीविजन के लिए समाचार लिखे जा सकते है, संपादित किए जाते है तथा प्रकाशित प्रसारित किये जाते है।

5. **टेली कॉन्फ्रेंस –** टेली कॉन्फ्रेंस का अर्थ है– दूरसंचार साधनों द्वारा दो या दो से अधिक स्थानों पर दो या अधिक व्यक्तियों का आपस में विचार–विमर्श करना। टेली कॉन्फ्रेंस भी तीन प्रकार की होती हैं–

1. आडियो कॉन्फ्रेंस,
2. वीडियो कॉन्फ्रेंस
3. कम्प्यूटर कॉन्फ्रेंस

1. आडियो कॉन्फ्रेंसमें भाग लेने वाले व्यक्ति एक–दूसरे से बात तो कर सकते हैं, परंतु एक–दूसरे को देख नहीं सकते। इस प्रकार के कॉन्फ्रेंस सामान्यत: टेलीफोन द्वारा सम्पन्न होते हैं। वीडियो कॉन्फ्रेंस में लोग एक–दूसरे को देख भी सकते हैं तथा आपस में बात भी कर सकते हैं। कम्प्यूटर कॉन्फ्रेंस में अलग–अलग स्थानों पर बैठे व्यक्ति कम्प्यूटर को प्रयोग में लाकर सूचनाओं का आदान–प्रदान करते हैं।

6. **मोबाइल फोन –** यह घर के साधारण फोन से अलग होता है। घर के फोन को एक तार के जरिए जोड़ा जाता है इसलिए इसके उठाकर कही नहीं ले जाया जा सकता जबकि मोबाइल फोन बिना तार के काम करता है जिसे लेकर आसानी से कहीं भी ले जाया जा सकता है। इसे जेब में रखकर ले चलने की सुविधा के कारण इनके सेट काफी छोटे–छोटे तैयार किए जाने लगे हैं।

यह एक दूसरे से बातचीत करने के अलावा इसका उपयोग संदेश भेजने पाने (एस.एम.एस.) फोटो खीचने और तुरंत उसे दूसरे व्यक्ति के पास भेजने, बातचीत रिकार्ड करने और उसे दूसरे व्यक्ति के पास भेजने, फिल्में देखने, गाने सुनने, समाचार सुनने के लिए भी किया जात है।

7. इंटरनेट – इंटरनेट का अर्थ होता है कम्प्यूटरों का जाल-इंटरनेट हजारों नेटवर्कों का एक नेटवर्क है। सारी दुनिया के नेटवर्क इस व्यवस्था से आपस में जोडे जा सकते हैं या जुड़े हुए है। संसार के किसी भी कोने से कोई भी सूचना देनी या लेनी हो तो वह कुछ ही पलों में भेजी या प्राप्त की जा सकती है। इसके द्वारा व्यवसाय, स्टॉक मार्केट, शिक्षा, चिकित्सा, मौसम, खेलकूद आदि के अतिरिक्त अन्य किसी भी क्षेत्र में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

यहां तक कि यदि मन में कोई विचार आता है और हम उससे संबंधित जानकारी प्राप्त करना चाहते है तो वह भी हमें इंटरनेट के माध्यम से प्राप्त हो सकती है। इंटरनेट एक तरह से मुद्रित दृश्य-श्रव्य माध्यमों का मिला जुला रूप है।

आपदा प्रबन्धन में महत्त्वपूर्ण क्षेत्र:

1. संचार– संचार आपदा प्रबन्धन में अत्यधिक उपयोगी हो सकता है। संचार साधनों के माध्यम से जागरुकता, प्रचार-प्रसार तथा आपदा प्रतिक्रिया के समय आवास सूचना व्यवस्था के माध्यम से काफी सहायक हो सकता है।

2. सुदूर संवेदन– अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी आपदा के प्रभाव को कारगर ढंग से करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इसका उपयोग-

1. शीघ्र चेतावनी रणनीति को विकसित करना,
2. विकास योजनाएँ बनाने एवं लागू करने में,
3. संचार और सुदूर चिकित्सा सेवाओं सहित संसाधन जुटाने में,
4. पुनर्वास एवं आपदा पश्चात पुनर्निर्माण में सहायता हेतु किया जा सकता है।

3. भौगोलिक सूचना प्रणाली – भौगोलिक सूचना प्रणाली सॉफ्टवेयर भूगोल और कम्प्यूटर द्वारा बनाए गए मानचित्रों का उपयोग, स्थान आधारित सूचना के भण्डार के समन्वय एवं आकलन के लिये रहता है। भौगोलिक सूचना प्रणाली का उपयोग वैज्ञानिक जाँच, संसाधन प्रबन्धन तथा आपदा एवं विकास योजना में किया जा सकता है।

आपदा नियन्त्रण में व्यक्ति की भूमिका – भूकम्प, बाढ़, आंधी, तूफान में एक व्यक्ति क्या प्रबन्धन कर सकता है। इसका आपदा के सन्दर्भ में निम्नलिखित भूमिका सुझायी गई है-

भूकम्प के समय व्यक्ति की भूमिका – ऐसे समय में बाहर की ओर न भागें, अपने परिवार के सदस्यों को दरवाजे के पास टेबल के नीचे या यदि बिस्तर पर बीमार पड़े हों तो उन्हें पलंग के नीचे पहुँचा दें, खिड़कियों व चिमनियों से दूर रहें। घर से बाहर हों तो इमारतों, ऊँची दीवारों या बिजली के लटकते हुए तारों से दूर रहें, क्षतिग्रस्त इमारतों में दोबारा प्रवेश न करें।

भूकम्प का भी पूर्वानुमान लग सकेगा – टी.वी. रेडियो, इन्टरनेट से जहाँ तक सम्भव हो जुड़े रहें, अधिक वर्षा और अकाल जैसी प्राकृतिक आपदाओं के पूर्वानुमान के बाद अब भूकम्प की भी भविष्यवाणी की जा सकेगी लेकिन इसका पता कम्प्यूटर पर काम कर रहे व्यक्ति को सिर्फ कुछ सेकेण्ड पहले ही लग सकेगा। कैलीफोर्निया इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, यू.एस. ज्योलॉजीकल सर्वे तथा कैलीफोर्निया के खनिज और भू-भागीय विभाग के भूकम्पशास्त्री लगातार भूकम्प की ऑन लाइन पर भविष्यवाणी कर सकने की कोशिश कर रहे हैं। यह आपातकाल में ऐसे आंकड़े भेजेगा। जिससे कम्प्यूटर यूजर्स तक इमेल भेजा जा सकेगा। ट्राइनेट का लक्ष्य है कि 600 शक्तिशाली गति सेंसर और 150 बड़े इंटरनेशनल मिलकर आने वाली भूकम्पों के बारे में लोगों को सूचित करें। अगर ट्राइनेट अपने प्रस्तावित कार्य को करने में समर्थ हुआ तो कैलिफोर्निया भूकम्प क्षेत्र का निरीक्षण कर सकने वाला पहला राज्य होगा इस प्रकार भूकम्प का पूर्वानुमान लगाने की क्षमताएँ विकसित हो चुकी हैं। संक्षेप में कैलीफोर्निया के खनिज और भूगर्भीय विभाग के प्रमुख जिम डेविड कहते हैं कि सेंसर पृथ्वी थरथराने जैसे घटना के तुरन्त बाद कम्प्यूटर के जरिए सूचना देने में सक्षम होगा।

निष्कर्ष – आपदा पर किसी का नियंत्रण नहीं होता इसलिए इसे रोका नहीं जा सकता। अगर हमें आपदा प्रबंधन सही तरीके से करना हैं, तो हमें बहुत सुसज्जित तकनीक की आवश्यकता होती है सबसे बेहतर यही है कि आने वाली अपादाओ को कम करने के लिए हमें ऐसी गतिविधियों से बचना है जो पर्यावरण को नुकसान पहुंचाती है। मनुष्य का अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए प्रकृति को नुकसान पहुंचाना ही बहुत सी आपदाओं का कारण है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. चौहान, ज्ञानेन्द्र सिंह एवं पाहवा, एस.के. (2013) भारत में आपदा प्रबन्धन, रिसर्च जनरल ऑफ आर्टस, मैनेजमेंट एंड सोशल साइंसेज।
2. रामजी एवं शर्मा, शिवानाथ, प्राकृतिक आपदा-सूखा एवं बाढ़ की समस्या।
3. मामोरिया, चतुर्भुज, भौगोलिक चिन्तन, साहित्य भवन, आगरा।
4. नेगी, पी.एस. (2006-07) पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण भूगोल।
5. पाल, अजय कुमार, आपदा एवं आपदा प्रबन्धन।
6. आपदा प्रबन्धन राष्ट्रीय नीति-2005, भारत सरकार।
7. बवेजा, दर्शन, आपदा प्रबन्धन।
8. अवस्थी, एन.एम., पर्यावरणीय अध्ययन।

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Microplastics as Vectors for Pollutants

Dr. Rashmi Ahuja*

*Professor (Chemistry) Govt. Motilal Vigyan Mahavidyalya, Bhopal (M.P.) INDIA

Abstract - Microplastics, defined as plastic particles smaller than 5 mm, have emerged as a significant environmental concern due to their widespread distribution and persistence in the environment. Apart from their physical impact on ecosystems, recent research has highlighted their role as vectors for pollutants. This article explores the various ways in which microplastics act as vectors for pollutants, including their ability to adsorb and transport toxic chemicals, as well as their potential to bioaccumulate in organisms. The implications of these findings on environmental and human health are discussed, along with suggestions for future research and mitigation strategies.
Keywords- Microplastics, POPs, PAHs, etc.

Introduction - Microplastics, defined as plastic particles smaller than 5 mm, have emerged as a pervasive and challenging environmental issue in recent years. These minute particles are a result of the breakdown of larger plastic items or are intentionally manufactured for various purposes, such as in personal care products or industrial applications. Due to their small size, microplastics are capable of infiltrating a wide range of ecosystems, including oceans, rivers, lakes, soils, and even the atmosphere, leading to concerns about their potential impacts on environmental and human health.

One of the key concerns associated with microplastics is their role as vectors for pollutants. Microplastics have a high surface area to volume ratio, which allows them to adsorb and concentrate various pollutants from the surrounding environment. These pollutants can include persistent organic pollutants (POPs) such as polychlorinated biphenyls (PCBs) and polycyclic aromatic hydrocarbons (PAHs), as well as heavy metals. Once adsorbed onto microplastics, these pollutants can be transported over long distances, potentially impacting ecosystems far from their original source.

The problem of microplastics as vectors for pollutants is multifaceted. Not only do microplastics themselves pose a threat to marine life and terrestrial organisms, but the pollutants they carry can also have detrimental effects on ecosystems and human health. For example, POPs are known for their persistence in the environment and their ability to bioaccumulate in organisms, leading to long-term impacts on food chains and human populations. Similarly, heavy metals can cause a range of health problems, including neurological disorders and organ damage.

Addressing the issue of microplastics as vectors for pollutants requires a comprehensive understanding of their sources, distribution, and impacts. By elucidating the mechanisms through which microplastics interact with pollutants and assessing their environmental and health implications, we can develop strategies to mitigate their impact and protect ecosystems and human health.

Understanding Microplastics: Microplastics, defined as plastic particles smaller than 5 mm, have become a ubiquitous environmental pollutant due to their widespread distribution and persistence in the environment. They can be categorized into two main types: primary microplastics, which are manufactured at a small size for specific purposes such as exfoliants in personal care products, and secondary microplastics, which result from the breakdown of larger plastic items due to physical, chemical, or biological processes. Primary microplastics are intentionally manufactured at a small size, while secondary microplastics are the result of weathering and degradation of larger plastic items.

Microplastics originate from a variety of sources, including the fragmentation of plastic waste, the abrasion of synthetic fibers from textiles during washing, and the release of microbeads from personal care products. These sources result in the release of microplastics into the environment, where they can be transported by wind and water currents over long distances. Microplastics have been found in various environmental compartments, including oceans, rivers, lakes, soils, and even in the air, highlighting their pervasive nature.

Once released into the environment, microplastics can undergo various processes that affect their fate and transport. These processes include fragmentation, aggregation, and biofouling, which can alter the size, shape,

and surface properties of microplastics. These changes can affect the behavior of microplastics in the environment, influencing their interactions with organisms and their potential to act as vectors for pollutants.

Sources and Distribution: Microplastics originate from a variety of sources and are distributed widely throughout the environment. One of the primary sources of microplastics is the fragmentation of larger plastic items. Plastics in the environment can be broken down by physical processes such as wave action, UV radiation, and mechanical abrasion, leading to the formation of smaller particles. Additionally, the disposal of plastic waste, such as plastic bags and bottles, contributes to the release of microplastics into the environment.

Another significant source of microplastics is the shedding of synthetic fibers from textiles. When synthetic clothing is washed, microscopic fibers are released into the wastewater, eventually finding their way into rivers, lakes, and oceans. These fibers can persist in the environment for long periods and can be ingested by aquatic organisms, leading to potential harm.

Microplastics are also released into the environment through the use of personal care products that contain microbeads. These tiny plastic particles are used in products such as exfoliating scrubs and toothpaste and can enter waterways directly through wastewater discharge.

Once released into the environment, microplastics can be distributed widely through air and water currents. They can be transported over long distances, contaminating remote areas far from their original source. Microplastics have been found in high concentrations in marine environments, especially in areas with high levels of plastic pollution.

Microplastics as Vectors for Pollutants: Microplastics have the ability to act as vectors for pollutants in the environment, posing risks to ecosystems and human health. One of the key mechanisms through which microplastics act as vectors is adsorption. Due to their high surface area to volume ratio, microplastics can adsorb various pollutants from the surrounding environment. These pollutants can include persistent organic pollutants (POPs) such as polychlorinated biphenyls (PCBs), polycyclic aromatic hydrocarbons (PAHs), and heavy metals.

Once adsorbed onto microplastics, pollutants can be transported over long distances. Microplastics can be carried by wind and water currents, spreading pollutants to ecosystems far from their original source. This can lead to the contamination of remote and pristine environments, posing risks to wildlife and ecosystems.

Microplastics can also act as vectors for pollutants through bioaccumulation. When organisms ingest microplastics, either directly or indirectly through the food chain, the adsorbed pollutants can be released into their tissues. This can lead to the accumulation of pollutants in higher trophic levels, with potential implications for ecosystem health and human consumption.

The presence of microplastics as vectors for pollutants has significant implications for environmental and human health. Pollutants adsorbed onto microplastics can accumulate in sediments, soil, and water, posing a threat to aquatic and terrestrial ecosystems. Additionally, there is growing concern about the potential for humans to be exposed to these pollutants through the consumption of contaminated seafood.

In conclusion, microplastics act as vectors for pollutants through adsorption and bioaccumulation, with implications for environmental and human health. Mitigating the impact of microplastics as vectors for pollutants requires addressing the sources of microplastics and implementing measures to reduce their release into the environment.

Impact of Microplastic-Borne Pollutants: The presence of microplastics in the environment, acting as vectors for pollutants, has significant implications for ecosystems and human health. One of the key environmental impacts of microplastic-borne pollutants is their potential to accumulate in sediments, soils, and water bodies. This can lead to long-term contamination of ecosystems, with potential effects on wildlife and aquatic organisms.

Microplastic-borne pollutants can also have direct impacts on organisms. When ingested, microplastics and associated pollutants can cause physical harm, such as blockages in digestive tracts or internal injuries. Additionally, the pollutants adsorbed onto microplastics can be released into the tissues of organisms, leading to toxic effects.

The impact of microplastic-borne pollutants is not limited to the environment; it also extends to human health. There is growing concern about the potential for humans to be exposed to microplastic-borne pollutants through the consumption of contaminated seafood. Studies have shown that microplastics and associated pollutants can accumulate in the tissues of fish and other seafood, posing risks to human health.

The health impacts of microplastic-borne pollutants on humans are not yet fully understood. However, there is evidence to suggest that exposure to these pollutants could have negative effects, including inflammation, oxidative stress, and genotoxicity. Furthermore, the presence of microplastics in food and water sources raises concerns about their potential to act as carriers for pathogens, further increasing health risks.

Health & Environmental Impact: The presence of microplastics in the environment, acting as vectors for pollutants, poses significant health and environmental risks. One of the key environmental impacts of microplastic-borne pollutants is their ability to accumulate in ecosystems, leading to long-term contamination. This can have detrimental effects on wildlife and aquatic organisms, disrupting ecosystems and potentially causing population declines.

In terms of human health, there are concerns about

the potential for exposure to microplastic-borne pollutants through the consumption of contaminated food and water. Studies have shown that microplastics and associated pollutants can accumulate in the tissues of fish and other seafood, which are then consumed by humans. This raises concerns about the potential for these pollutants to enter the human body and cause harm.

The health impacts of microplastic-borne pollutants on humans are not yet fully understood. However, there is evidence to suggest that exposure to these pollutants could have negative effects. For example, some studies have suggested that microplastics and associated pollutants could lead to inflammation, oxidative stress, and genotoxicity in humans.

Furthermore, the presence of microplastics in the environment can have indirect health impacts through the ingestion of contaminated seafood. Ingestion of microplastics and associated pollutants can lead to physical harm, such as blockages in the digestive tract, as well as the release of toxic substances into the body.

Conclusion and Suggestions: Microplastics, as vectors for pollutants, pose significant risks to ecosystems and human health. They have the ability to adsorb and transport various pollutants, including persistent organic pollutants (POPs) and heavy metals, leading to contamination of the environment and potential harm to organisms. The impact of microplastic-borne pollutants is multifaceted, with implications for environmental health, ecosystem integrity, and human well-being.

The environmental impact of microplastic-borne pollutants is significant, particularly in aquatic ecosystems. These pollutants can accumulate in sediments and water bodies, posing risks to aquatic organisms. Microplastics can also alter habitats and disrupt ecosystems, leading to changes in biodiversity and ecosystem function. Additionally, the presence of microplastics in the environment can have broader ecological implications, including effects on food webs and nutrient cycling.

The health impact of microplastic-borne pollutants on humans is a growing concern. There is evidence to suggest that these pollutants can enter the human body through the consumption of contaminated food and water. Once ingested, microplastics and associated pollutants can accumulate in tissues and organs, potentially causing inflammation, oxidative stress, and genotoxicity. Furthermore, the presence of microplastics in food sources raises concerns about their potential to act as carriers for pathogens, further increasing health risks.

Mitigation Strategies: Addressing the issue of microplastics as vectors for pollutants requires a multi-faceted approach. One key strategy is to reduce the release of microplastics into the environment. This can be achieved through measures such as banning the use of microbeads in personal care products, reducing the use of single-use plastics, and implementing proper waste management practices.

Another important strategy is to remove existing microplastics from the environment. This can be done through the development of technologies to filter microplastics from water bodies and the implementation of cleanup efforts in areas heavily impacted by plastic pollution. Additionally, there is a need for more research to better understand the extent of the issue and to develop effective mitigation strategies. This could include research on the sources and distribution of microplastics, their interactions with pollutants, and their impacts on ecosystems and human health.

In conclusion, microplastics act as vectors for pollutants, posing significant risks to ecosystems and human health. Addressing this issue requires a concerted effort from governments, industries, and individuals to reduce the release of microplastics into the environment, remove existing microplastics, and conduct further research to better understand the extent of the issue and develop effective mitigation strategies. By taking action now, we can help protect the environment and safeguard the health of ecosystems and human populations for future generations.

References:-

1. Pelamatti, T., Cardelli, L. R., & Rios-Mendoza, L. M. (2022). The Role of Microplastics in Bioaccumulation of Pollutants. In Handbook of Microplastics in the Environment. Springer
2. Gonte, R., & Balasubramanian, R. (2021). Effect of microplastics in water and aquatic systems. Environmental Science and Pollution Research
3. Liu, X., Wang, J., & Xie, Y. (2021). The Dual Role of Microplastics in Marine Environment: Sink and Vectors for Organic Pollutants. Journal of Marine Science and Engineering
4. Arienzo, Michele, Luciano Ferrara, and Marco Trifuoggi. 2021. “The Dual Role of Microplastics in Marine Environment: Sink and Vectors of Pollutants” Journal of Marine Science and Engineering 9, no. 6: 642
5. Amelia, T. S. M., Khalik, W. M. A. W. M., Ong, M. C., Shao, Y. T., Pan, H. J., &Bhubalan, K. (2020). Marine microplastics as vectors of major ocean pollutants and its hazards to the marine ecosystem and humans. Progress in Earth and Planetary Science

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

स्त्री विमर्श की चुनौतियां और मैत्रेयी पुष्पा की रचनाएं

डॉ. मुकेश कुमार* डॉ. नविता चौधरी**

* सहायक आचार्य, विजय सिंह पथिक राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,कैराना, शामली (उ.प्र.) भारत
** देशबंधु महाविद्यालय ,कालकाजी (नई दिल्ली) भारत

प्रस्तावना - देश के अनेक भूभागों से नारी उत्पीड़न की खबरें आम बात हो गयी हैं।कभी तीन तलाक के नाम पर, कभी दहेज यह उत्पीडन के नाम पर तो कभी ऑनर किलिंग के नाम पर, अत्याचार जारी रहता है। यह अत्यंत हास्यास्पद लगता है जब कल तक स्त्री को जलानेवाले 'महिला दिवस' के अवसर पर अपनी शेखियां बघारते हैं और अपने दोयम अल्पफाज से स्त्री-हित के हिमायती बनने का नाटक करते हैं। उनके ये घड़ियाली अंसू बहाने वाले अंदाज की पोल तो आज की ताजातरीन शर्मनाक घटनाएं अपने आप ही खोल देती हैं। देश की राजधानी के लिए ऐसी शर्मसार करनेवाली घटनाएं उस बदनुमा दाग की तरह हैं, जो मिटाये नहीं मीट सकतीं। आठ महीने की एक बच्ची के साथ 27 साल के एक पापी द्वारा अमानवीय व्यवहार जैसी घटनाओं ने ही दिल्ली को 'रेप कैपिटल' बना दिया है। अब प्रश्न यह है कि ऐसी घटनाओं को सुनते, देखते हुए अपनी आंख बंद करनी है या चुप्पी को तोड़ते हुए विरोध का आगाज करना है? यह यक्ष प्रश्न सूरसा मुख की भांति भारत के हर जनमानस के आगे मुंहबाए खड़ा है? दिल्ली महिला आयोग की अध्यक्ष स्वाति मालिवाल ने तो इसके खिलाफ खुली लड़ाई छेड़ दी है। पर्चे बंटवाकर, एनजीओ के माध्यम से सार्वजनिक स्थानों पर मानव श्रृंखला बनाकर, नुक्कड़ नाटकों के द्वारा 'रेप रोको', 'बच्चों के बलात्कारियों को छह महीने के अंदर फांसी दो', जैसे मुद्दों को लेकर आम जनता को जागुत किया जारहा है। पर यह लडाई चंद स्थान विशेष की न होकर समस्त देशवासियों की है,बल्कि समाज के बुद्धिजीवी वर्ग की नैतिक जिम्मेदारी भी। ऐसे मे साहित्यकारों की भूमिका अति महत्वपूर्ण साबित होगी।जन जन तक पहुंचने में सबसे कारगर और लाभकारी भी। इनके बढ़ते हौसले के पीछे लाचार और धीमी कानूनी प्रक्रिया है।अकेले दिल्ली की बात की जाये तो दिल्ली पुलिस के मुताबिक दिल्ली में सन 2012 से सन 2014 के बीच महिलाओं के खिलाफ 31,446 अपराध दर्ज हुए जिनमें से 150 से कम अपराधियों को सजाएं हुई।इसके तह में जाएं तो जिम्मेवार सिर्फ कानून-व्यवस्था नहीं बल्कि जागरुकता का अभाव है। अत्यंत दुखद है किन्तु सर्वाधिक चिंतनीय भी। अगर अपने साहित्यिक जिम्मेवारी निभाते हुए रचनाकार जागृत हो जाएं तो बहुत सारी स्थितियों का समाधान करने में पाठक जनता निराकरण हेतु खद आगे आ जायें। गौरतलब है कि मैत्रेयी जैसी कई प्रबुद्धों ने स्त्री विमर्श के मुद्दों को बड़े शिद्दत से अपनी रचनाओं के माध्यमसे आगे बढ़ाया है। मैत्रयी ने 'गुनाह-बेगुनाह' में पुलिसिया जुल्म का पर्दाफाश किया है, तो उसी उपन्यास के पात्र इला, समीना के माध्यम से कारगर स्त्री हित के मायनों को भी सुझाव स्वरूप दर्शाया है। मैत्रेयी ने अपने उपन्यास आत्मकथा के माध्यम से दोहरे मानसिकता वाले वह भी पुरुष प्रधान समाज के घिनौने सच का कच्चा चिट्ठा खोला है। उनकी रचनाओं में से इससे संबद्ध कुछ घटनाओं पर नजर डालना ज्यादा समीचीन होगा।यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि आज से वर्षों पूर्व मैत्रेयी इन मामलों के प्रति संजीदा थीं। यह बात दीगर है कि विरोधियों ने इन्हीं महत्वपूर्ण कड्वी सच्चाई को लेकर मैत्रेयी को कट् आलोचना का निशाना बनाया। इससे बड़ी कड़वी सच्चाई और क्या हो सकती है कि एक थाने में शिकायत करने पहुंची महिला के साथ पुलिस वाली भी अपने आप को असूरक्षित महसूस करती है, क्योंकि वह विपरीत लिंगी है, एक महिला जीवन के अन्य क्षेत्रों की भांति महिला साहित्यकारों ने उपन्यास रचना के क्षेत्र में भी खूब धूममचाया है। लोकतंत्र की स्थापना और सर्वागीण सामाजिक विकास के लिए पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलनेवाली महिला रचनाकारों ने साहित्य जगत में हस्तक्षेप किया है। दोयम दर्जे की जबर्दस्त नागरिकता, लिंग-आधारित समाज के रवैये ने उन्हें समाज के कृत्यों से रूबरू कराने की ठान ली है। स्त्री जनित शारीरिक रचना के आधार पर उनके वैचारिक संघर्षों की लड़ाई के रूप में देखकर वजूदअवहेलना नहीं की जा सकती है। उनके सामाजिक चिंतन की आधार भूमि परिवार,समाज और राष्ट्र के नवनिर्माण का संकेतहै। जहां समानता, स्वतंत्रता तथा कायदे लिंग आधारित न होकर योग्यता आधारित हों।

कृष्ण और राधा की प्रेम कहानी तो सबको पता है। पर 'जैमंती' और 'मनसुखा महाराज' की प्रेमकथा लिखने की हिम्मत मैत्रेयी ही जुटा पाती हैं और इसके माध्यम से खोखली विचारधाराओं के वज्राघात से किसी के आत्मसम्मान को कुचलने वाले सामाजिक ठेकेदारों को चुनौती देती हैं। दाई का घर सवर्ण गली में?जरूर कोई लोचा है। उस लोचे में खली मानसिकता वाली संतो को धंधेवाली करार देना सामाजिक राजनैतिक विद्रुपता का परिचायक है। जातिवाद के नंगा नाच की शिकार होती स्त्री के अस्मिता का प्रश्न है।

औरत 'स्त्री', 'नारी', 'जननी' के रूप में चित्रित होने से पहले अपने पिया की प्यारी होकर रहना चाहती है जिसके लिए अपने बाबुल का देश छोड़ आई, अगर उसी के साहचर्य सुख में बाधा उत्पन्न होतो इसे विडंबना से कुछ कम नहीं अंकना चाहिए। अपने पिया के लिए समर्पण का भाव लिए मन हर्षित रहता है कि उसके अपनेपन का साथी, जिस पर न्योछावर होने का इकलौता अधिकार सिर्फ और सिर्फउसी का है। 'मैं विवाह के समय भी अपनी किताबें ही मायके की निशानी तौर पर साथ लाई थीं। जो अब भी मेरे पासथी। न जाने किस झोंक में पति को आम्रपाली की कथा सुना डाली और उनको मेरे वेश्या के प्रति लगाव का पता चल गया। तभी स्पष्ट किया- ऐसी औरतों की मूर्ति नहीं मिल सकती तुम्हें। बनाता ही नहीं कोई।'

व्यक्तिगत आजादी को लेकर भी समाज निर्मित विविध प्रकार का

व्यवधान झेलना पड़ता है तथा आचरण पर भी प्रश्न–चिन्ह खड़ा हो जाता है। आखिर ऐसा क्यों? फिर मैत्रेयी अगर समाज को एकस्त्री के नितांत निजी पर अत्यंत महत्वपूर्ण पहलुओं से अवगत करती हैं, तो इस मेहरज ही क्या है! बल्कि भावी समाज को जागरुक होकर विरोधियों के पर कतरने की कोशिशों के लिए नयी राह का सबक भी मिलता है।

अपने धून की पक्की होने के कारण मैत्रयी जी ने अपनी परेशानी, कठिनाइयों की रती–भर भी परवाह नहीं की। उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' की कि शुरुआत मंसाराममं जो कि श्कज्जाख समाजश के द्योतक हैं एवं 'कदमबाई' कबूतरी जाति के साथ होती हैं 'कुलशील संस्कारी मंसाराम की जिंदगी कबूतरी के हवाले हो गयी के वेघर–परिवार, पूरा मोहल्ला, गांव और नाते–रिश्तेदारियों में धिक्कार के पात्र होगए।'

यहां मंसाराम शोषक वर्ग से संबंधित है, जबकि 'कदमबाई' शोषितवर्ग की। कज्जा होने के बावजूद मंसाराम को अपने किए का पछतावा है। कदमबाई से आगाध प्रेम है। समाज ने इसके एवज में उनका बहिष्कार कर दिया है। उनका यह लगाव समाज में हो रहे समयानुकूल परिवर्तन का द्योतक है। मैत्रेयी की अधिकांश रचनायें नायिका प्रधान हो जाती हैं। पुरुष पात्र रचना में आते जरूर हैं, किन्तु लेखन के केंद्र में अंतत: नायिका मुख्य भूमिका में आ जाती है।

रस्किन ने शेक्सपीयर के बारे में एक बार कहा था– शेक्स्पीयर की रचनाओं में नायक नहीं बल्कि नायिकाएं होती हैं। सिर्फ कॅमेडी में उनकी नायिकाएं खूबसूरत, जानदार तथा आकर्षक होती हैं। उदाहरण के तौर पर 'रोजालिन्ड','बियाट्रिस','पोर्सिया' तथा 'वायोला' आदि गजब की कामयाब पात्र है। लेकिन इसके विपरीत ट्रेजेडी में उसकी उपस्थिति असहाय, बेसहारा तथा चिंतनीय है। उदाहरण के तौर पर 'कैल्फुर्निया क्लियांपैट्रा डेस्डोमोना', ओफेलिया तथा तथा कांडेलिया आदि की स्थिति दयनीय और चिंताजनक है।

मैत्रेयी की नारी पात्रों को भी कमोबेश कालांतर में स्थिति यही होती है। पर अंतोगत्वा रचना में उनकी उपस्थिति गैरतलब होती है। मैत्रेयी के एक उपन्यास 'चाक' के अंश का उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है ।'इस गांव के इतिहास में दर्ज दस्तानें बोलते हैं ।रस्सी के फंदे पर झूलती रुक्मणी, कुएं में कूदने वाली रामदेई, करबन नदी की समाधिस्थ नारायणी ....ये सब बेबस औरतें सीता मईया की तरह भूमि प्रवेश कर अपने शील सतीत्व की खातिर और कहता था बुलाओ उस हरामजा... मंदाकिनी को। मजदूर भड़काए, दंगा करवाया ।अब कत्ल करा दिया।'

लोग पुलिस की धमकी दे रहे हैं ।मंदा को ?दरोगा आ रहा है उसके नेतापन की हेकड़ी निकालने। लोकतंत्र की आवाज बहुआयामी है ।डरने वाले के साथ–साथ अच्छी राय देने वालों के भी कमी नहीं ।प्रधान काका उसे थाने न जाने की सलाह देते हैं।

मंदा जानती है कि सुगना की आहुति कभी बेकार न जाएगी ।भइस आहुति से वह ऊर्जा ग्रहण कर नई राजनीति की संभावनाओं को तलाश करती है।

मैत्रेयी की लेखनी की खासियत यह है कि वह अपनी रचनाओं में ऐसे सर्वव्यापी लोकाचार एवं लोकगीतों का संयोजन करती है कि वह सबको सभी क्षेत्र वासियों को बिल्कुल अपना लगने लगे ।गांव में शादी ब्याह के विविध रीति रिवाज ,स्त्री पुरुष के स्वाभाविक गुणों का समर्थन करती विविध विधियां, रचना को आकर्षक तथा प्रभावशाली बनती हैं। कथानक अपने आसपास के वातावरण का दर्शन करता है तथा कथ्य को मूल उद्देश्य से भटकाए बगैर निरंतरता एवं उपादेयता को रंच मात्र भी बिगड़ता नहीं देता ।असंभव सी दिखने वाला संभावना भी अंततोगत्वा अपने पूर्णता को प्राप्त कर ही लेती है।

'लला तो रात ही कितने चक्कर दै गए ।पर बिना देवता पूजा मिलत ,का दुल्हन ? पहले इतर –पीतर, दई– देवता ख़ुश करो तबहों तो....

और फिर अबै कगना बंधी है हाथ में।रिश्ते की भाभी कह रही थी।'

औरतें जुड़ आयीं। नाइन ने सूप धर लिया हाथ पर। उर्वशी की असल आंखें झुकी जा रही थीं कि पीछे से उठाए जाने वाले गीतों के बोलों ने उसे अपने अंकवार में भर लिया... छाती से चिपका लिया–

'कैसे कै दरसन पाऊरी /
माई तेरी संकरी दुअरिया /
माई के दुआरें एक कन्या पुकारै /
दैदेउ सजन–वर जाऊ री माई तेरी...
यही गीत तो हमारे गांव में भी... ।'

लोकतंत्र और लोक व्यवहार की परंपराओं का योग भावी संस्कृति का भविष्य निधारित करती है। साधारण रूप में मौजद परंपराएं लोकगीतों के माध्यम से मेत्रेयी की रचनाओं में स्वत: ही फूट पड़ती 'मैत्रेयी की अनेक रचनायें स्त्री– विमर्श के लिए खुली चुनौती, नयी सोच, वैचारिक दिशा–निर्देश के साथ विकास की संपूर्ण संभावनाएं प्रदान करती हैं। 'चर्चा हमारा', 'खुली खिड़कियां','तब्दील निगाहें' जैसी कृतियों में मैत्रेयी ने मौलिक समस्याओं के लिए उत्तरदाई परिस्थितियों को उलट–पलट कर पाठकों के सामने रख दिया है। खासकर भारतीय परिप्रेक्ष्य में भारतीय नारी की रूढ़िवादी किलाबंदी कर पितृसत्तात्मक समाज ने भरसक बेड़ियां डालने की पुरजोर कोशिश की है। आजकल की ताजातरीन घटनाएं इस बात का बेहतर तसदीक करती हैं।कहने को देश इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर चुका है, आजादी की स्वर्ण जयंती मनाई गयी, संयुक्त राष्ट्रसंघ में स्त्रियों को ऊच्च स्थान मिला, पर इन सब से इनकी वास्तविक स्थिति में क्या बदलाव आया,यह गौरतलब है। मैत्रेयी ने विमर्श के ऐसे दुखते रंग की पहचान कर अपनी रचना का सत्ताधारियों को जमकर कोसा है। भारतीय नारी का संदर्भ ऐसे गंभीर चिंतन को निश्चित तौर पर तरजीह देगा। इस बदलाव में नारी के बदलते नजरिए को समझने की जरूरत है। खासकर ग्रामीण नारी के बढते कदम इस बात के संकेत हैं कि अब वे अपनी मुश्किलें स्वयं हल करने मे सक्षम हैं। आवश्यकता इस बात की है कि ऐसी कौन सी मुहिम चलायी जाए की सबको समानता, समग्रता के साथ आगे बढ़ते हुए समाज की मुख्यधारा में अग्रणी होने का भरपूर अवसर प्राप्त हो। ऐसे गंभीर चिंतन से समाज को खासकर युवा पीढ़ी को रूबरू होने की सख्त आवश्यकता है। चिंता का विषय यह है कि कुछ तो परिवेश ने स्थिति बिगाड़ी है तो कुछ धर्मगुरु धार्मिक मान्यताएं भी ऐसी विचारधारा को पालती–पोसती हैं। स्त्रियों को दोयम दर्ज का समझने, उन्हें कम आंकने का मानो सारा ठेका इन ढोंगी धर्मगुरुओं के पास ही है? उन्हें यह कहते हुए लज्जा भी नहीं आती कि औरतों का तो काम ही है अच्छे नस्ल के बच्चे पैदा करना! कितने शरम की बात है कि वे ऐसी घटिया सोच रखते हैं।और उसे धर्म से जोड़कर अपने आप को धर्मगुरु कहते हैं। औरत के हक को लेकर समाज का प्रबुद्ध वर्ग हमेशा से चिंतनशील रहा है। इसका अंदाजा समाज में आए दिन हो रही चर्चा–परिचर्चा से बखूबी लगाया जा सकता है। इस प्रक्रम मे मीडिया भी अपनी प्रमुख भूमिका बखुबी निभाती है।

औरत के हक को लेकर एबीपी न्यूज ने 'धर्मसंकट' नाम से परिचर्चा का

आयोजन जुलाई 2016 किया था, जिसमें विमर्श के दो महत्वपूर्ण विचार बिंदु थे-'मर्द की सोच से चलेगी औरत?', 'फतवे तय करेंगे औरत की जिंदगी?'

गौरतलब यह है कि सबकुछ जानते हुए लोग अपनी आंखें मूंद लेते हैं।फिर हाशिए पर खड़ी स्त्री के लिए ऐसी परिस्थितियों से मुकाबला करना एक बड़ी चुनौती है। चुनौती से हार न मानकर इस फलसफे को आजमाने की पुरजोर कोशिश सराहनीय है। आधुनिक काल के प्रारंभ में युद्ध, भूकंप, महामारी से जूझते समाज ने करवट लेकर आधुनिक तकनीक के प्रयोग यथा आधुनिकत्म प्रिंटिंग प्रेस के बढ़ते उपयोग से अलग हटकर अन्य पहलुओं पर भी विचार करना शुरू कर दिया। अभी तक इन सबसे इतर समाज में मानवीय मूल्यों,आपसी संबंधों के मानसिक पहलुओं पर भी ध्यान दिया जाने लगा। इसके परोक्ष में खड़ी स्त्री अब मुख्य पक्ष के रूप में उभरकर सामने आने लगी। प्रभावशाली समाज ने इसे इतनी आसानी से नहीं देखा।उनकी जायज आवाज को भी दबाने की फलसफे को आजमाने की प्रजोर कोशिश सराहनीय है। आधुनिक काल के प्रारंभ में युद्ध, भूकंप, महामारी से जूझते समाज ने करवट लेकर आधुनिक तकनीक के प्रयोग यथा आधुनिकत्म प्रिंटिंग प्रेस के बढ़ते उपयोग से अलग हटकर अन्य पहलुओं पर भी विचार करना शुरू कर दिया। अभी तक इन सबसे इतर समाज में मानवीय मूल्यों,आपसी संबंधों के मानसिक पहलुओं पर भी ध्यान दिया जाने लगा। इसके परोक्ष में खड़ी स्त्री अब मुख्य पक्ष के रूप में उभरकर सामने आने लगी। प्रभावशाली समाज ने इसे इतनी आसानी से नहीं देखा।उनकी जायज आवाज को भी दबाने की कोशिश हुई। अब तक स्त्री विमर्श ने आपने नए स्वरूप को विस्तारित करना शुरू कर दिया था। इन बदलते हालातों का जायजा श्वर्जीनिया वुल्फश ने कुछ इन शब्दों में लिखा है-

'सन् 1910 के आसपास समाज ने न सिर्फ मानवीय मूल्यों में बदलाव देखा बल्कि बदलते हालातों ने मानवीय संबंधों यथा मालिक-नौकर, पति-पत्नी,अभिभावक-बच्चे के बीच के खाई को बढ़ा दिया है। '

वर्जीनिया की भांति मैत्रेयी ने भी इस बदलावों का सिर्फ अनुभव ही नहीं किया बल्कि अपनी रचनाओं में उकेरा भी है। ऐसा शायद इसलिए की नारी स्वभाव से ही संवेदनशील होती है।

लोग औरत से नाता तो जोड़ना चाहते हैं, पर उनकी भलाई के लिये नहीं बल्कि उनके दैहिक शोषण, अपने मनोरंजन अथवा निजी स्वार्थ के लिये। विडंबना यह है कि ऐसी मानसिकता को आज की नारी समझने लगी है और उनका विरोध भी करने लगी है।मैत्रेयी मानती हैं कि गांव हो या शहर, सारे मर्द एक ही जैसे हैं। स्त्रियों को लेकर उनकी सोच और रवैया एक ही जैसा है।उन्होंने उन्हें अपने सांचे में उतारने की जुगत ढूंढ़ ली है। कभी भावनाओं के जाल में फंसाकर तो कभी पैसे का लोभ लालच देकर, हर तरीके से उनका उपयोग करना सीख गए हैं। विज्ञापन में, सिनेमा में,थिएटर में, नाटक, संगीत हर जगह उनकी मदद ले लेते हैं। फिर उन्हें अपने समानांतर जगह देने में क्या दिक्कत है? बस वे इनसे अपनापन का तार नहीं जोड़ पाता सारे मर्द एक हैं, एकता के सूत्र में बंधे हैं, इन मसलों को लेकर।

'अपनापन नहीं जोड़ा तो एकता कैसे जुड़े? मन ही मन कुछ भी सोचते रहे,अपनी देह पर ही हमारा हक नहीं। हाय, हमें क्यों थोड़ा-थोड़ा भ्रम हो चला था कि अब पर्दा खुलेगा। घूंघट उघडेगा। अब स्त्री का चेहरा बाहर आयेगा। कुछ भी तो नहीं हुआ। चेहरा परदे से ढका रहा, देह उघाड़ दी गई! और देखो कि फिल्म की खिड़की पर अपार भीड़ थी। मर्द तो धक्का-मुक्की कर रहे थे कि किसी तरह टिकट हासिल हो जाए। उन्हें पता था कि परदे पर एक सुंदरता की मालकिन नंगी होने वाली है।'

स्त्री को किस रूप में पेश किया जाता है,यह अपने आप में बहुत बड़ा मुद्दा है। स्त्रियों के प्रति हो रहे रवैये को लेकर भी राजनीति होती रहती है। फिर ऐसे में एक बुद्धिजीवी साहित्यकार भला मूक दर्शक बना चुप कैसे रह सकता है? ऐसे में मैत्रेयी अपने उपन्यासों के माध्यम से राजनीतिक विद्रूपता को निडरता और पूरी निष्ठा से सबके सामने लाती हैं। स्त्री पात्रों के संघर्ष से विरोधी बना समाज उनकी उपस्थिति को सलाम करता है। बल्कि यूं कहें कि ऐसा करना उनकी मजबूरी और आवश्यकता दोनों बन जाती है। ऐसी राजनीतिक विद्रूपता और प्रतिमानों का परिवर्तन जहां एक ओर उच्च कोटि का साहित्यिक पैमाना बनता है,तो दूसरी ओर स्त्री विमर्श के पैमानों पर यथार्थोन्मुख आदर्श का कारक होता है। नई दृष्टि और नए नजरिए से हो रहे परिवर्तन के सही मापदंड का लेखा-जोखा मैत्रेयी के उपन्यासों का आधार है। महान रचनाकारों की रचनाओं में स्त्री-विमर्श की खोज और उनपर अपने हृदयस्पर्शी अनुभवों का तीखा प्रहार 'खुली खिड़कियां' में मैत्रेयी ने किया है। ऐसे अनुभव जो मानो सबके जीवन मे बल्कि यूं कहें जन साधारण के जीवन की सच्ची दास्तां प्रतीत होती हैं। निश्चत तौर पर यथार्थ के बहुत करीब होती हैं सारी घटनाएं।

मैत्रेयी के पात्र यथा मंदा, सारंग,नैनी, इला, समीना, अल्मा, उर्वशी, शीलो सबके विद्रोही तेवर ने तो समाज को एक नयी राह दिखाई, सोचने का नया नजरिया दिया। क्या आज के समाज की प्रतिनिधि स्त्री-समाज और उनके प्रबल दावेदार विमर्श की चुनौतियों को स्वीकारते हुए विद्रोही तेवर से अपनी चुप्पी तोड़ेंगी क्या?फिर समाज का बुद्धिजीवी वर्ग इसे किस रूप में लेगा? ऐसे प्रश्नों के साकारात्मक जवाब अभी बाकी हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. मैत्रेयी पुष्पा, गुड़िया भीतर गुड़िया, पहला संस्करण-2012, पृ.सं. -43, राजकमल प्रकाशन, 1-बी, नेताजी सुभाप मार्ग, नईदिल्ली -02, भारत।
2. अल्मा कबूतरी : मैत्रेयी पुष्पा, पहला संस्करण -2004,तीसरी आवृति -2011, पृ.सं. -9, राजकमल प्रकाशन -बोनेताजी सुभाप मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली - 10002, भारत।
3. मैत्रेयी पुष्पा: चाकय तीसरी आवृतिः राजकमल प्र. 1-बी-नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-02, भारत, 2010
4. मैत्रेयी पुप्पा, इदन्नमम, किताबघर प्रकाशन, 4855-56/24,अंसारी रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली -02, प्र.सं - 1994, सातवांसं.-2010, पृ.सं.-365, भारत।
5. मैत्रेयी पुप्यः बेतवा बहती रहीय संस्करण -2010: कितावयरप्र.-4855-56/24, अंसारीरोड, दरियागंज, नई दिल्ली-02,भारत, 2010 पृ.सं. -48।
6. एवीपी न्यूज प्रायोजित परिचर्चा 'धर्म संकट' 16 जुलाई 2016,श्रोत , एबीपी न्यूज सायंकाल, नई दिल्ली, भारत।
7. aoifrn gen- Accoring to Virginia Woolf," around 1910, not only had Humn an character changed, but all 'Human relations-between master and servants, husbands and wives,parents and childrens' had also shifled".
8. मैत्रेयी पुष्पा: खुली खिड़कियां, सिनेमावाली औरत, पृ.सं. -255, ती.सें -2009, सामयिक प्रकाशन, 3320/21, जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली-02, भारत।

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

साइबर अपराध और सोशल मीडिया की भूमिका

डॉ. संगीता कुंभारे*

* सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) पंडित दीनदयाल उपाध्याय शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, सागर (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – साइबर अपराध एक ऐसा अपराध है जिसमें कंप्यूटर नेटवर्क और डिवाइस,नेटवर्किंग शामिल है कंप्यूटर का उपयोग अपराध करने के लिए किया जा सकता है और अक्सर लक्ष्य होते हैं साइबर अपराध किसी भी व्यक्ति या देश की सुरक्षा और वित्तीय स्वास्थ्य के लिए खतरा है।

डिजिटल वर्ल्ड में सुविधाओं के साथ-साथ साइबर क्राइम और जालसाजी के केस भी बढ़ रहे हैं एक रिपोर्ट के अनुसार साल 2021 में पिछले साल के मुकाबले साइबर क्राइम में 5 फीसदी की वृद्धि देखने को मिली है। साल 2021 में साइबर क्राइम 52,974 अपराध दर्ज किए गए हैं 2020 में अपराध के 50,035 मामले दर्ज किए गए थे। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो NCRB की रिपोर्ट के अनुसार– –साइबर क्राइम के अधिकतर मामले उत्तर प्रदेश, तेलंगाना, कर्नाटक, असम और महाराष्ट्र में देखने को मिले हैं जबकि दिल्ली में साइबर अपराध के केवल 1.7 फीसदी देखे गए हैं।

जिनमें 2020 के मुकाबले 2021 में साइबर क्राइम के 5% मामले बड़े हैं साइबर क्राइम की घटनाओं की औसत दर 3.5 फीसदी (एक लाख आबादी) पर देखी गई है जबकि केवल एक तिहाई मामले ही दर्ज किए गए हैं। धोखाधड़ी के ज्यादा मामले आंकड़ों के अनुसार साइबर क्राइम में ज्यादातर मामले धोखाधड़ी के करीब 32,230 मामले मिले हैं यानी कि साइबर अपराध के कुल मामलों में 60.8 फीसदी मामले धोखाधड़ी के सामने आ रहे हैं।

समाज में कंप्यूटर के बढ़ते प्रयोग के साथ साइबर अपराध एक प्रमुख मुद्दा बन गया है। प्रौद्योगिकी को प्रकृति ने मनुष्य को अपनी सभी जरूर के लिए इंटरनेट पर निर्भर बना दिया है। साइबर अपराध समाज में होने वाले किसी भी अन्य अपराध से अलग हैं। इस कारण यह है कि इसकी कोई भौगोलिक सीमा नहीं है और साइबर अपराधी अज्ञात हैं यह सरकार व्यवसाय से लेकर नागरिकों तक सभी हितधारकों को समान रूप से प्रभावित कर रहा है भारत में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी खउढ बढ़ती उपयोग के साथ साइबर अपराध बढ़ रहा है।

इसलिए प्रस्तुत विषय अंतर्गत साइबर अपराध के संक्षिप्त परिचय विभिन्न प्रकारों संशोधनों का अध्ययन करने और भारत में हो रहे साइबर अपराध का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है इसके अलावा भारत में साइबर अपराध पर काबू पाने के लिए कुछ कदमों पर चर्चा की गई है हम जितनी तेजी से डिजिटल दुनिया की ओर बढ़ रहे हैं ठीक उतनी ही तेजी से साइबर अपराध की संख्या में वृद्धि हो रही है जिस गति से तकनीक ने उन्नति की है,डिजिटल दुनिया की ओर ठीक साइबर अपराध की संख्या में वृद्धि हो रही है तकनीक ने लास्ट लाइन उसी गति से मनुष्य की इंटरनेट पर निर्भरता भी बड़ी है एक ही जगह पर बैठकर इंटरनेट के जरिए मनुष्य की पहुंच विश्व के किसी भी व्यक्ति तक आसान हो गई है।

देश के हर कोने तक आसान हुई है आज के समय में हर वह चीज इसके विषय में इंसान सोच सकता है समझ सकता है उसे तक उसकी पहुंच इंटरनेट के माध्यम से हो सकती है जैसे कि सोशल नेटवर्किंग साइट ऑनलाइन स्टडी ऑनलाइन जॉब इत्यादि आज के समय में इंटरनेट का उपयोग हर क्षेत्र में किया जाता है इंटरनेट के विकास और इसके संबंध लाभों के साथ साइबर अपराधों की अवधारणा भी विकसित हुई है।

इंटरनेट के विकास और इसके संबंध लाभों के साथ साइबर अपराधों की अवधारणा भी विकसित हुई है।

शब्द कुंजी – सोशल नेटवर्किंग साइट, इलेक्ट्रॉनिक डिवाइस, इंटरनेट कम्युनिकेशन टेक्नोलॉजी, अपराध।

प्रस्तावना

साइबर अपराध क्या है?

साइबर अपराध विभिन्न रूपों में किए जाते हैं कुछ साल पहले इंटरनेट के माध्यम से होने वाले अपराधों के बारे में जागरूकता का अभाव था साइबर अपराधों के मामले में भारत भी उन देशों से पीछे नहीं है जहां साइबर अपराधों की घटनाओं की दर भी दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। साइबर अपराध के मामलों में एक साइबर अपराधी उपयोग उपयोगकर्ता को व्यक्तिगत जानकारी गोपनीय व्यावसायिक जानकारी सरकारी जानकारी या किसी डिवाइस को बंद करने के लिए कर सकता है। किसी उपकरण का उपयोगकर्ता को व्यक्तिगत जानकारी,उपरोक्त सूचनाओं को ऑनलाइन खरीदना या बेचना भी एक साइबर अपराध है इसमें कोई संशय नहीं है कि यह एक आपराधिक गतिविधि है। कंप्यूटर और इंटरनेट के उपयोग के द्वारा यह अंजाम दिया जाता है। साइबर अपराध के रूप में भी माना जाता है। यह एक ऐसा अपराध है जिसमें किसी भी अपराध को करने के लिए कंप्यूटर नेटवर्किंग साइट या नेटवर्क का उपयोग उपकरण के रूप में किया जाता है जहां इनके जरिए अपराधों को अंजाम दिया जाता है वही इन्हें लक्ष्य बनाते हुए इनके विरुद्ध अपराध भी किया जाता है।ऐसे अपराध में साइबर जबरन वसूली, पहचान की चोरी, क्रेडिट कार्ड, डेबिट कार्ड, एटीएम कार्ड की धोखाधड़ी, कंप्यूटर से डाटा हैक करना, अवैध डाउनलोडिंग, वायरस प्रसार सहित गतिविधियां शामिल है।

सॉफ्टवेयर चोरी भी साइबर अपराध की श्रेणी में आता है यह जरूरी नहीं की साइबर अपराध ऑनलाइन पोर्टल के माध्यम से ही किया जाए।

1. कंप्यूटर को हैक कर जानकारी प्राप्त करना।
2. कंप्यूटर को एक हथियार के रूप में प्रयोग करना साइबर आतंक, धोखाधड़ी, पोर्नोग्राफी आदि।

साइबर अपराध की श्रेणियां – साइबर अपराध के अंतर्गत प्रमुख श्रेणियां आती हैं जिनमें व्यक्ति विशेष संपत्ति और सरकार के विरुद्ध अपराध शामिल हैं।

व्यक्ति विशेष के विरूद्ध साइबर अपराध – ऐसे अपराध यद्यपि ऑनलाइन होते हैं परंतु वे वास्तविक लोगों के जीवन को प्रभावित करते हैं इनमें से कुछ अपराधों में साइबर उत्पीड़न और साइबर स्टॉकिंग, चाइल्ड पॉर्नोग्राफी की विवरण की जानकारी और विभिन्न प्रकार के कार्ड जिनके द्वारा लेनदेन किया जाता है पहचान की चोरी और मानव तस्करी पहचान ऑनलाइन बदनाम किया जाना शामिल है साइबर अपराध की इस श्रेणी में किसी व्यक्ति या समूह के खिलाफ दुर्भावना पूर्ण या अवैध जानकारी को ऑनलाइन लॉक कर दिया जाता है।

संपत्ति विशेष के विरूद्ध साइबर अपराध – कुछ ऑनलाइन अपराध संपत्ति के विरुद्ध होते हैं जैसे कि कंप्यूटर या सरवर के खिलाफ या उसे जरिया बनाकर किए जाते हैं। इन अपराधों में हैकिंग, वायरस ट्रांसमिशन, साइबर कॉपीराइट उल्लंघन आदि शामिल है।

उदाहरण– कोई आपको एक वेबलिंक भेजें जिस पर क्लिक करने के पश्चात एक वेब पेज खुलेगा जहां आपसे बैंक खाता संबंधी एवं दस्तावेज संबंधी संपूर्ण जानकारी मांगी जा रही है और आप वह जानकारी देते हैं। आपके दस्तावेज एवं बैंक खाते के साथ छेड़छाड़ की जाएगी और यह संपत्ति के विरूद्ध साइबर हमला कहा जा सकता है।

सरकार विशेष के विरूद्ध साइबर अपराध – यह सबसे गंभीर साइबर अपराध माना जाता है सरकार के खिलाफ किए गए ऐसे अपराध को साइबर आतंक के रूप में भी जाना जाता है सरकारी साइबर अपराध में सरकारी वेबसाइट या सैन्य वेबसाइट को हैक किया जाना शामिल है एक साइबर अपराध किया जाता है तो इसे उसे राष्ट्र की संप्रभुता पर हमला माना जाता है।

यह अपराध आमतौर पर आतंकवादी या अन्य शत्रु देश की सरकारें करती हैं इस प्रकार के साइबर अपराध पर नियंत्रण के लिए प्रत्येक देश की सरकार द्वारा कठोर साइबर कानून बनाए गए हैं।

आपातकालीन स्थिति में या साइबर अपराधों के अलावा अन्य अपराधों की रिपोर्ट करने के लिए स्थानीय पुलिस से संपर्क करें एवं राष्ट्रीय पुलिस हेल्पलाइन नंबर 112 है। और साइबर अपराध हेल्पलाइन नंबर 130 है।

Year	IT Act		IPC	
	Cases Registered	Persons Arrested	Cases Registered	Persons Arrested
2011	1791	1184	422	446
2012	2876	1522	601	549
2013	4356	2098	1337	1203
2014	7201	4246	2272	1224
2015	8045	5102	3422	2867
Total	24269	14152	8054	6289

सोशल मीडिया की भूमिका – बड़े पैमाने पर सोशल नेटवर्किंग साइट का उपयोग करने वाली जनसंख्या साइबर अपराध की खतरों से अनजान हैं जिनमें सोशल नेटवर्किंग साइट के सर्वर अन्य देशों के कंट्रोल में है एवं वहां पर केंद्रित हैं जिससे यह डर रहता है कि कहीं यह देश लोगों की व्यक्तिगत जानकारी का दुरुपयोग ना करें।

लोगों को विभिन्न सोशल नेटवर्किंग साइट पर हैकर्स ऑनलाइन ठगी का शिकार बनाते हैं।

सुरक्षा एजेंसी द्वारा यह पता लगाया जाता है ऑनलाइन मुद्रा स्थानांतरित करने वाले विभिन्न एप के माध्यम से आतंकवाद दोनों और देश विरोधी तत्वों को फंडिंग की जाती है साइबर अपराधी विभिन्न ऑनलाइन गेम्स के माध्यम से बच्चों को अपराध करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

सोशल मीडिया पर साइबर अपराध का तात्पर्य व्यक्तियों या समूह द्वारा दुर्भावना पूर्ण इरादे से की जाने वाली व्यापक अवैध गतिविधियों से है यह गतिविधियां व्यक्तियों के संगठनों या यहां तक की सरकारों को भी लक्षण कर सकती हैं, और इनमें ऑनलाइन धोखाधड़ी, उत्पीड़न और धोखे के विभिन्न रूप भी शामिल हैं।

अश्लील इलेक्ट्रॉनिक सामग्री प्रकाशित करने पर 5 साल की कैद और जुर्माना हो सकता है। 10 लाख जुर्माना भी राष्ट्रीय सुरक्षा को प्रभावित करने वाले साइबर अपराधों में आजीवन कारावास हो सकता है अन्य साइबर अपराधों के लिए 3 साल तक की कैद या जुर्माना या दोनों की कम सजा निर्धारित है।

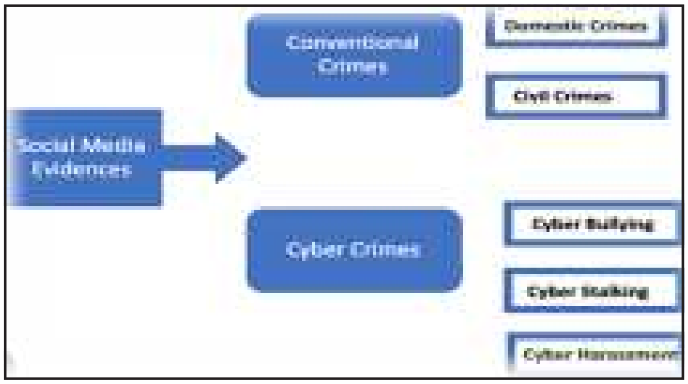

साइबर अपराधों से निपटने की दिशा में सरकार की प्रयास–भारत सरकार द्वारा सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000 पारित किया गया। जिनके प्रावधानों के साथ–साथ भारतीय दंड संहिता के प्रावधान सम्मिलित रूप से साइबर अपराधों से निपटने के लिए पर्याप्त हैं।

अध्ययन एवं विश्लेषण– सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000 की धाराएं

43,43A,66,66B,66C, 66D,66E,66F,67,67A,67B आदि हैकिंग और साइबर अपराधों से संबंधित हैं।

सरकार द्वारा राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा नीति 2013 जारी की गई जिसके तहत सरकार ने अति संवेदनशील सूचनाओं के संरक्षण के लिए राष्ट्रीय अति संवेदनशील सूचना अवधारणा संरक्षण केंद्र का गठन किया गया NCIIPC: नेशनल क्रिटिकल इनफॉरमेशन इंफ्रास्ट्रक्चर प्रोटेक्शन सेंटर। इसके अंतर्गत दो वर्ष से लेकर उम्र कैद तथा अर्थ दंड का भी प्रावधान है विभिन्न स्तरों पर सूचना सुरक्षा के क्षेत्र में मानव संसाधन विकसित से सरकार ने सूचना सुरक्षा शिक्षा और जागरूकता परियोजना आरंभ की है।

सरकार द्वारा कंप्यूटर इमरजेंसी रिस्पांस टीम की स्थापना की गई जो सुरक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर की मॉडल एजेंसी है।

भारत सूचना साझा करने और साइबर सुरक्षा के संदर्भ में सर्वोत्तम कार्य प्रणाली अपनाने के लिए अमेरिका ब्रिटेन और चीन जैसे देशों के साथ समन्वय कर रहा है।

इस योजना को संपूर्ण भारत में लागू किया गया है बेहतर तरीके से निपटने के लिए तथा 14C समन्वित और प्रभावी तरीके से लागू करने हेतु इस योजना के निम्नलिखित सात प्रमुख घटक हैं।

1. नेशनल साइबर क्राइम थ्रेट एनालिटिक्स यूनिट
2. नेशनल साइबर क्राईम रिर्पोटिंग पोर्टल
3. प्लेटफॉर्म फॉर जॉइंट साइबर क्राईम इन्वेस्टिगेशन टीम
4. नेशनल साइबर क्राइम फॉरेंसिक लेबोरेटरी इकोसिस्टम
5. नेशनल साइबर क्राइम ट्रेनिंग सेंटर
6. नेशनल साइबर रिसर्च एंड इन्नोवेशन सेंटर

बुडापोस्ट कन्वेंशन क्या है?

साइबर अपराध के संबंध में बुडापोस्ट कन्वेंशन सेंटर पर हस्ताक्षर करने के लिए गृह मंत्रालय द्वारा साइबर अपराध और डेटा सुरक्षा को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता पर बोल दिया जा रहा है।

बुडापोस्ट कन्वेंशन साइबर क्राइम पर एक कन्वेंशन है जिसे साइबर अपराध पर बुडापोस्ट कन्वेंशन के नाम से जाना जाता है।

यह अपनी तरफ से पहले ऐसा अंतरराष्ट्रीय समझौता जिसके अंतर्गत राष्ट्रीय कानून को व्यवस्थित करके जांच पड़ताल की तकनीक में सुधार करने तथा इस संबंध में विश्व के अन्य देशों में सहयोग को बढ़ाने हेतु और कंप्यूटर अपराधों पर रोक लगाने संबंधी मांग की गई है।

शोध की परिकल्पना– वर्तमान में भारत की आबादी बहुत ज्यादा है नेटवर्किंग साइट का उपयोग करती है भारत में सोशल नेटवर्किंग साइट के उपयोग भी बड़े हैं इनमें जानकारी का अभाव है सोशल नेटवर्किंग साइट के सरवर विदेश में है जिससे भारत में साइबर अपराध घटित होने की स्थिति में इनकी जड़ तक पहुंच पाना कठिन होता है।

इस आलेख में साइबर अपराध प्रकार के और सरकार के द्वारा किए गए प्रावधानों पर विमर्श किया जाएगा इसके साथ ही साइबर अपराध में सोशल नेटवर्किंग साइट की भूमिका का भी मूल्यांकन किया जाएगा।

निष्कर्ष– भारत इंटरनेट का तीसरा सबसे बड़ा उपयोग करता है और हाल ही के वर्षों में साइबर अपराध कई गुना बढ़ गए हैं। साइबर सुरक्षा उपलब्ध कराने के लिए सरकार की ओर से कई कदम उठाए गए हैं कैशलेस अर्थव्यवस्था को अपनाने की दिशा में बढ़ाने के कारण भारत में साइबर सुरक्षा सुनिश्चित करना आवश्यक है। डिजिटल भारत कार्यक्रम सफलता काफी हद तक साइबर सुरक्षा पर निर्भर करेगी अत: भारत को इस क्षेत्र में तीव्र गति से कार्य करना होगा वहीं दूसरी ओर सोशल मीडिया ने अभीव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को नया आयाम दिया है। आज प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी डर के सोशल मीडिया के माध्यम से अपने विचार रख सकता है और उसे हजारों लोगों तक पहुंचा सकता है परंतु सोशल मीडिया का सावधानीपूर्वक उपयोग ही हमें ऑनलाइन ठगी साइबर अपराध के गंभीर खतरों से बचा जा सकता है।

हम एक डिजिटल युग में रह रहे हैं और साइबर स्पेस किसी भी सीमाओं तक सीमित नहीं है बल्कि यह पूरी दुनिया को कवर करता है परिणाम स्वरुप साइबर क्राइम दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। डिजिटल प्रौद्योगिकी के चल रहे विकास के कारण सबसे बड़ी चुनौती साइबर अपराध की गतिशील प्रकृति से संबंधित है।परिणाम स्वरुप साइबर अपराध के नए तरीके और तकनीक प्रचलन में आती है इसलिए साइबर क्राइम को भी उतना ही महत्व दिया जाना चाहिए। जितना कि हमारे समाज में हो रहे अन्य अपराध।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. दैनिक भास्कर समाचार पत्र
2. पत्रिका समाचारपत्र
3. अनिमेश शर्मा साइबर सुरक्षा मुद्दे वर्तमान भारतीय साइबर कानून और उठाए जाने वाले कम
4. अन्य वेबसाइट
5. https://www.drishtiias.com/
6. https://cybercrime.gov.in/
7. National Cyber Crime Reporting Portal

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

कृषि भूमि उपयोग में जल संरक्षण की परम्परागत एवं आधुनिक विधियां कि आवश्यकता बड़वानी जिले के संदर्भ में

रमेश पवार* डॉ. मोहन निमोले**

* शोधार्थी (भूगोल) विक्रम विश्वविद्यालय,उज्जैन (म.प्र.) भारत
** शासकीय माधव कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र) भारत

शोध सारांश – प्रस्तुत शोध पत्र में बड़वानी जिले में शस्य संयोजन एवं कृषि भूमि में जल संरक्षण की परम्परागत एवं आधुनिक विधियां से वर्षा जल को सग्रहित कर उसे विभिन्न आवश्यकताओं में उसका उपयोग किया जाना एवं कृषि भूमि उपयोग मे किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने एवं जनसंख्या विस्फोट से भूखमरी जैसी समस्याओं से निपटने के लिए फसलों का उत्पादन बढ़ाने के लिए किया जाता है। उसके लिए वर्षा जल को अधिक समय तक सग्रहण कर उसे भूमि के लिए सिंचाई के उपयोग में लाने के लिए वर्षा जल को विभिन्न विधिया जैसे– तालब, बावड़ी, कुओं, क्यारी, रिसाव तालाब, एनिकट, कुई या बेरी, जल संरक्षण तालाब आदि के द्वारा वर्षा जल का संरक्षण किया जाना अध्ययन क्षेत्र मे इसका महत्वपूर्ण भूमिका है। इसके साथ ही जल ही जीवन है। यह सभी जीवों के लिए आवश्यक है।
शब्द कुंजी–बड़वानी जिला, कृषि भूमि उपयोग, जल संरक्षण, जल संरक्षण की विधियां।

प्रस्तावना –जल अत्याधिक उपयोगी परन्तु सीमित संसाधन है। परन्तु यह सर्वत्र सहन सुलभ नही है। फलन: जल संरक्षण अनिवार्य आवश्यकता है। जिस प्रकार जल के विभिन्न उपयोग हैं। उसी प्रकार उसका संरक्षण भी विभिन्न रूपो मे किया जाना आवश्यक है। वैसे तो जल का प्रधान और प्रमुख स्त्रोत समुद्र है, परन्तु समुद्र का जल खारा होता है। मानव को अपनी आवश्यता हेतु मिठा, मृदा जल चाहिये। यह जल भी हमे समुद्र से परोक्ष रूप मे प्राप्त होता है। समृद्र का भी पृथ्वी पर वर्षा द्धरा प्राप्त होता है। इस प्रकार वर्षा जल को उचित रूप मे ग्रहण करना और इस जल का संतुलित उपयोग संरक्षण का मूल तत्व है। जल सदैव समुद्र और जाने को उन्मुल रहता है अतएवं जल के प्रवाह को नियमित करना उसको संचय करना सतह पर निश्चित भण्डार बनाना और नदियो पर बांध बानाकर प्रवाह को नियमित करना बाढ़ रोकना आदि कार्य उपयोगिता हेतू परम आवश्यक है। जल संयत्र के साथ ही जल का दउपयोग भी सरक्षण का प्रमुख तत्व है। घरेंलु और उद्यौगिक आवश्कताओं मे जल का उचित उपयोग करके दूरउपयोग को दूर करके भी यह कार्य किया जा सकता है। जल का अत्याधिक शोषण भूमिगत जल के स्तर को नीचा कर देता है। भूमिगत जल कि मात्रा सीमित होती है और अत्याधिक शोषण से ये स्त्रोत समाप्त हो जाते है।

जल को शुद्ध रखना भी जल संरक्षण कि प्राथमिक अवश्यकता है दीद्यकाल से सीवर, उद्योग, गैस प्लाटो, खानो आदि के जहरीले और हानिकारक पदार्थ नदियों और झीलों मे गिराये जाने से स्वच्छ जल को प्राप्त हो पाना कठिन हो गया है। इन हानिकारक पदार्थ को दूर कर और जल को अधिकतम शुद्ध करके प्रयोग मे लाने पर ही अधिकतक लाभ लिया जा सकता है।

अध्ययन क्षेत्र– भौगोलिक दृष्टि से देश के सर्वाधिक विषमताओं वाला बड़वानी जिला मध्यप्रदेश के पशिचम भाग में स्थित है। जिले की समुद्र तल से ऊँचाई लगभग 177 मी. है। बड़वानी जिला 21° 37' उत्तरी अक्षांश से 22° 22' उत्तरी अक्षांश तथा 74° 27' पूर्वी देशान्तर से 75° 30' पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित है। जिले का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 5447 वर्ग कि. मी. है। बड़वानी जिले में 2011 की जनगणना के अनुसार 13,85,881 जनसंख्या निवास करती है। यहाँ का जनसंख्या घनत्व 255, लंगानुपात 982 तथा साक्षरता 49.08 प्रतिशत है।

बड़वानी जिले में जल संरक्षण की परम्परागत विधियां :

1. **बावड़ी–** बड़वानी जिलें में अधिक जनसंख्या वाले शहरी एवं ग्रामीण इलाकों में जल संरक्षण के लिए बावड़ी महत्वपूर्ण साधन है। अध्ययन क्षेत्र में बावड़ी का निर्माण की परम्परा प्राचीन काल मे बावड़ीयो का उपयोग पेयजल के रूप में किया जाता था पर वर्तमान में जनयंख्या वृद्धि के कारण भूखमरी जैसी समस्यों के कारण भूमि उपयोग मे बावड़ीयो का जल का प्रयोग सिंचाई के लिए महत्वपूर्ण जल स्त्रोत का साधन है। अध्ययन क्षेत्र की बावड़ीयां वर्षा जल संचय के काम में आती है। ग्रामीण क्षेत्रों में बावड़ी की दशा ठीक नही रहती है इसलिए इनका जीर्णोद्धार किया जना आवश्यक है।
2. **तालाब–** अध्ययन क्षेत्र में तालाब में मुख्यत: वर्षा जल को एकत्रित किया जाता है। जिले में प्राचीन काल से ही तालाबों का अस्तिव रहा है वर्तमान मे जहां पर बिजली की व्यवस्था उपलब्ध नही है उस क्षेत्र में सिंचाई के लिए तालाबों से नहरो के द्धारा सिंचाई की जाती है। इसलिए हमे अधिक संख्या में जालाबों का निमार्ण कर वर्षा जल को संचय करना आवश्यक है। तालाबों से ही कुओं, बावड़ीयो, नलकुबों को पानी मिलता है।
3. **टांका –** अध्ययन क्षेत्र में वर्षा जल को एकत्रित करने का साधन है यह पड़ती भूमि पर इसका निमाण किया जाता है टांका एक प्रकार का कुड़ जैसा होता है जिसमें वर्षा का जल एकत्रित किया जाता है। और इसका जल विशेष तौर पर पशुओं के लिए पेयजल के रूप में प्रयुक्त होता है। यह अध्ययन क्षेत्र में सूक्ष्म भूमिगत सरोवर होता है। जिसका निमार्ण मिट्टी और सीमेट से किया जाता है। वर्षा जल को एकत्रित करने के लिए खेत या आगन मे सरकार

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

द्वारा तथा निजी निर्माण सार्वजनिक रूप से लोगों द्वारा निमार्ण करवाया जाता है। सामान्यत: टांका 30 से 40 फिट तक गहरा होता है।

4. कुई या बेरी – अध्ययन क्षेत्र में कुई या बेरी अधिकतर तालाबों के पास बनाई जाती है। जिससे तालाब का पानी रिसकर कुई या बेरी में जमा होता है। इनकी गहराई 10 से 12 मीटर होती है। परम्परागत जल संरक्षण के लिए खेत के चारों तरफ मंड़ ऊची कर दी जाती है जिससे वर्षा का पानी जमीन मे रिसकर जमा होता रहता है।

बड़वानी जिले में जल संरक्षण की आधुनिक विधियां

1 **एनिकट –** अध्ययन क्षेत्र में जल संरक्षण की इस आधुनिक विधि से बांस से छोटी संरचना बनाई जाती है जो कि नदी के समानान्तर होती है। इसके जल को रोकने के लिए एनिकट के द्वारा अध्ययन क्षेत्र में व्यर्थ बहते जल को रोकने के लिए बांधनुमा एनिकटों का निमार्ण किया जाता है जिसमे अल्प वर्षा के समय क्यारियों द्वारा सिंचाई की जाती है जिससे किसानों की फसलों को लाभ मिलता है।

2. रिसाव तालाब – अध्ययन क्षेत्र में रिसाव तालाबों का निर्माण वर्षा के जल को तीव्रगती से भूगर्भ में भेजने के लिए किया जाता है। जिले में रिसाव तालाब का निर्माण ऐसे जगहो पर किया जाता है जहां की मिट्टी रेतीली होती है जल का रिसाव तेजी से होता है। रिसाव तालाबों की गहराई कम तथा चौडाई अधिक होती है। चौड़ाई अधिक होने से वर्षा के जल का रिसाव अधिक होने से भूमि में अधिक क्षेत्र में पानी का रिसाव ज्यादा होने से वर्षा जल से भूमि का अपरदन कम होता है। और असामान्य वर्षा की स्थिति में अध्ययन क्षेत्र में भूमि अपरदन को रोका जा सकता है। एवं वर्षा की स्थिति में होने वाले नुकसान को रोका जा सकता है।

3. क्यारी द्वारा – अध्ययन क्षेत्र में सड़को के किनारे वर्षा जल व्यर्थ बहने वाले जल को सड़को के दोनो किनारो पर क्यारी द्वारा वर्षा जल को तालाबनुमा बनाकर उसमे संग्रहित किया जाता है यह विधि असमतल भूमि पर इसका अधिक लाभ होता है। अध्ययन क्षेत्र में पहड़ी भूमि पर यह एक कारगर विधि जल संरक्षण के लिए उपयोगी है। अध्ययन क्षेत्र मे यह बावनगजा की पहाड़ी रामगढ़ की पहाड़ी नागलवाड़ी की पाहड़ीयों वालें क्षेत्र मे इस विधि द्वारा जल संरक्षण को अपनाया जाता है। उपयुक्त बाधों द्वारा छोटे कृत्रिम तालाबों का निर्माण होता है छोटे बाध होने के कारण कृत्रिम बोधें पर दबाव कम पड़ता है। सिससे अध्ययन क्षेत्र में इसके अलावा जल कृषि भूमि में सिंचाई के लिए उपयेग मे लाया जाता है। इन बांधों का निर्माण व देखरेख से अध्ययन क्षेत्र में जल संभर प्रबंधन कार्यक्रम के अन्तर्गत किया जाता है।

4. जल संरक्षण बांध– अध्ययन क्षेत्र में जिन क्षेत्रों मे वर्षा के दौरान सतह वाली भमि का जल व्यर्थ में बहता है उस क्षेत्र में वर्षा जल को रोकने के लिए छोटे–छोटे बाधों का निर्माण कर यह जल को वहा पर जमा होने दिया जाता है।

वर्षा जल संरक्षण के उद्देश्य – यह भूमिगत जल के पुन: भरण को बढाने कि तकनीक है। इस तकनीक मे स्थानीय रूप से वर्षा जल को को एकत्र करके भूमि जल भण्डरों मे सग्रहित करना शामिल । जिसमें स्थानिय घरेलू मांग को पूरा किया जा सके।

जल संरक्षण उद्देश्य:

1. भविष्य मे उपयोग के लिए संचय कराना।
2. भूमिगत भण्डारो का पुन: भरण करना।
3. शहरो में जल के असमान वितरण को दूर करना।
4. नगरो से लेकर गांवो तक के लोगों को घरेलू उपयोग हेतु स्वच्छ जल कि पूर्ति करना।
5. तालाब, झील, कुएं, बावडियां जैसे सतह के अन्य जल स्त्रातो को पद्रूषण रहित करना एवं इनको सुरक्षित रखना है।
6. जल सम्भोरो का उचित प्रबंधन करना ।

वर्षा जल संग्रहण –वर्षा जल संग्रहण विभिन्न उपयोगो के लिये वर्षा जल को रोकने और एकत्र करने कि विधि हो। उनका उपयोग भूमिगत जलभूतो के पुर्नभरण के लिये भी किया जाता है। यह एक कम मुल्य और पारिस्थितिकीय विधि है जिसके द्वरा पानी कि प्रत्येक बूँद संरक्षित करने के लिये वर्षा जल को नलकूपों गड्ढों और कुओं मे एकत्र किया जाता है। वर्षा जल संग्रहण पानी कि गतिविधिया को बढाता है, भूमिगत जल स्तर को निचा होने से रोकना है फास्फोरोस एवं नाइट्रेट्स सद्रूषको को कम करके अवमिश्रण भूमिगत जल कि गुणवत्ता बढता है। मृदा अपरदन और बाढ को रोकता है और यदि हमे जलभूतो के पुनर्भरण के लिये उपयोग किया किया जाता है। तो तटीय क्षेत्रों मे लवणीय जल के पवेश को रोकता है।

देश मे विभिन्न समुदाय लम्बे समय से अनेक विधियो से वर्षा जल सग्रहण करते आ रहे है। ग्रामिणो क्षेत्रो मे परम्परागत वर्षा जल संग्रहण सतह संचयन जलाशयों, जैसे झीलो, तालाबों, सिचाई तालबो आदि मे किया जाता है। राजस्थान मे वर्षा जल संग्रहण ढॉचे जिन्हे कुण्ड अथवा टांका एव ढका हुआ भूमिगत टंकी के नाम से जानी जाती है। जिसका निर्माण घर अथवा गांव के पास संग्रहित वर्षा जल को एकत्र करने के लिये किया जाता है।

वर्षा जल संग्रहण के उपाय –पानी या तो छतो से जमीन से, या फिर दोनों जगहो से साथ–साथ इकट्ठा किया जा सकता है। विभिन्न वर्षा जल संग्रहण प्राणी के विस्तार तथा जटिलता मे बडे अंतर हो सकते है। इसमे बांगवानी के काम के लिये किसी मकान कि छत से सीधा वर्षाजल का सीधा एकत्रीकरण हो सकता है या फिर किसी बडे स्कूल के पूरे परिसर से वहां के शोचालय मे उपयोग के लिये या भूमि में जल के पुनर्भरण के लिये एकत्रित किया जा सकता है।

1. किसी भी मकान कि छत से वर्षा जल का एत्रीकरण हेडपम्प के।
2. बिल्डिंगो कि छत से वर्षा जल एकत्रित कर उसे सुरक्षित गडडो या कुओं मे रखा जाना चाहिये।
3. वर्षा जल सडको एंव नालियो से बहकर तालाबो मे एकत्रित किया जाना चाहिये।
4. जल प्रबंध द्वारा वर्षा जल संरक्षण किया जा सकता है।
5. झीलो द्वारा वर्षा जल संरक्षण प्रकृति द्वारा संरक्षण होता है।

निष्कर्ष – उपर्युक्त वर्णित तकनीक कोई नई व्यवस्था नही है। प्राचीन काल से ही भारत मे वर्षा जल का संग्रहण होता आ रहा है। जल संग्रहण के उन्नत तरीको के प्रामाण भी मिलते है। नहरो, तालवो, तथा बांधों और कुओं के रूप मे जल संग्रहण होता था पर्वतीय एंव पहाडी क्षेत्र मे छतों के वर्षा जल और झरनों के जल को बांस कि नालियो द्वारा दुर–दुर तक ले जाया जाता था। शुष्क और अर्द्धशुष्क क्षेत्रो मे भू –जल के भण्डारों के उपयोग के लिये कुऐं और बावडिया बनाई जाती थी। राजस्थान मे छत के वर्षा जल को कृत्रिम रूप से विकसीत कुओं में जमा कर दिया जाता या संरचनाओं के नवीनीकरण और आधुनिकरण से न केवल जल भण्डरों कि सुविधा होती अपितु विभिन्न

उद्देश्यो के लिये जल कि उपयोग क्षमता मे वृद्धि होगी।

वर्षा जल संधारण :

1. बुद बुद से घडा भरता है, और बारिश के पानी से धरती माता का पेट।
2. जरूरत है आकाश पानी और पताल पानी को जोडने के लिये एक रास्ते की ताकि अतिवृष्टी मे भी पानी बह के बर्बाद न हो।
3. वर्षा- जल संधारण जरूरी भी है, और जिम्मेदारी भी है।
4. पानी रोकने का सही स्थान धरती मांकी गोद मे नही कल्की उसकी कोख है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. संसाधन भूगोल-डॉ. श्रीमती भावना माथुर, डॉ. महेश नारयण (साहित्य पब्लिकेशन)
2. सिचाई व जल संरक्षण- राजीव कुमार योजना जून 2011
3. जिला कृषि विकास कार्यालय बड़वानी

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

जनजातियों के शैक्षिक सुधार हेतु सरकार द्वारा उपलब्ध सुविधाओं का अध्ययन

अमित कोटेड*

* शोधार्थी (इतिहास) मानविकी संकाय मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत

प्रस्तावना – शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है जो व्यक्ति की प्रकृति प्रदत्त शक्तियों का विकास करती है। मनुष्य शैक्षिक प्रक्रिया में उद्‌भव से अवसान तक निरन्तर ज्ञान, अनुभवों, कौशलों एवं व्यवसायिक दक्षताओं को अपनी रूचि, योग्यता, वातावरण, सुविधा, आवश्यकता तथा परिस्थिति के अनुसार सीखता एवं अर्जित करते जाता है। शिक्षा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों के सामंजस्य पूर्ण स्वाभाविक विकास में सहयोग देकर उसका सर्वांगीण विकास करती है तथा उन्हें अपने वातावरण में सामंजस्य स्थापित करने में सहायता प्रदान करती है। शिक्षा के माध्यम से ही देश व समाज अपनी संस्कृति की रक्षा करता है। जीवन में उदारता, उच्चता, चिन्तन, सृजन, सौन्दर्य एवं उत्कृष्टता शिक्षा द्वारा ही संभव है। समाज के बदलते स्वरूप के कारण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनेक संभावनाएँ और समस्याएँ जन्म ले रही हैं। इन संभावनाओं और समस्याओं की खोज तथा समाधान शिक्षा द्वारा ही संभव है।

भारत अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक विविधताओं के साथ आदिकाल से ही विभिन्न धर्मो, मतों, संप्रदायों, संस्कृतियों, प्रजातियों, जातियों और जन-जातियों की कर्मभूमि रहा है। भारत की संपूर्ण जनसंख्या का लगभग 8 प्रतिशत भाग आदिम जातियों का है। आदिम या अनुसूचित जनजाति भारत के प्राचीनतम निवासी माने जाते हैं। देश के दूर वनांच्छादित पठारों, पहाड़ियों तथा बीहड़, अगम्य अंचलों में कई जनजातियां निवास करती हैं इन्हें वन्यजाति, आदिवासी, वनवासी, जनजाति और गिरिजन आदि नामों से संबोधित किया जाता है। शिक्षा का दायित्व समाज के विभिन्न वर्गो को साथ लाना और एकजुट समतावादी समाज का निर्माण करना है परंतु इन जनजातियों के विद्यार्थियों में सामाजिक एवं आर्थिक स्थितियों के कारण शाला में उपस्थिति संबंधी अनियमितता एवं शाला त्याग देखने को मिलता है।

देश की आजादी के इतने वर्षो पश्चात् भी ग्रामीण, पहाडी एवं वनीय क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों का शैक्षिक विकास नहीं हो पाया है। अनुसूचित जनजाति के व्यक्तियों में यह और भी कम देखा गया है। अनुसूचित जनजाति समूहों का सामाजिक एवं आर्थिक स्तर अत्यंत कम है। तात्पर्य यह है कि आज भी सामाजिक,आर्थिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों के कारण अनुसूचित जनजातियाँ औपचारिक शिक्षा से दूर है, यही बात उनके विकास में बाधक है। अत: अनुसूचित जनजातियों के सामाजार्थिक स्तर के विकास पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। अनुसूचित जनजाति के बच्चों को उचित शिक्षा प्राप्त करने में मदद दी जाएगी तभी वे देश की मुख्य धारा में रहकर देश की भलाई के लिए कुछ करने में पूर्णत: सक्षम हो सकेंगे।

अनुसूचित जनजातियों के शैक्षिक विकास के लिए संवैधानिक, केंद्रीय एवं राज्य स्तर पर विशेष प्रयास किया जा रहे हैं। संवैधानिक स्तर पर संविधान निर्माण के साथ ही अनुसूचित जनजातियों के लिए संविधान की धाराओं 15(4), 45 और 46 में अ.जा./अ.ज.जा. के बच्चों के लिए शिक्षा मुहैया कराने हेतु राज्य की प्रतिबद्धता की बात कही गयी है। अनुसूचित जनजातियों के शैक्षिक विकास के लिए संवैधानिक प्रावधान निम्नवत है-

1. अनुच्छेद 15(4) जनजातियों का सामाजिक तथा शैक्षणिक रूप से विकास के लिये प्रावधान करता है।
2. संविधान का अनुच्छेद 16(4) राज्य को सरकारी नौकरी में जनजाति लोगों को प्रतिनिधित्व देने हेतु आरक्षण का अधिकार देता है।
3. अनुच्छेद 23 जनजातियों के दुर्व्यवहार, बेगार, बंधक मजदूरी आदि बलातश्रम का निषेध करता है।
4. अनुच्छेद 29 अनुसूचित जनजाति को अपनी भाषा, बोली तथा संस्कृति में सुरक्षित रखने का अधिकार प्रदान करता है।
5. अनुच्छेद 45 में कहा गया है कि राज्य 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा दे।
6. अनुच्छेद 46 अ.जा./अ.ज.जा. के आर्थिक और शैक्षिक हितों का विशेष प्रावधानों के जरिए ध्यान रखने के विशिष्ट उद्देश्य को दर्शाती है।
7. अनुच्छेद 335 संघ या राज्य सेवाओं के सरकारी नौकरियों में जनजातियों हेतु पदों के आरक्षण की व्यवस्था करता है।

केंद्र सरकार द्वारा जनजातियों के आर्थिक और शैक्षिक सुधार हेतु पहली दो पंचवर्षीय योजनाओं में विशेष प्रयास किये गये है। इनका उद्देश्य दूरदराज और जनजातीय क्षेत्रों में विद्यालय जैसी मूलभूत सुविधा उपलब्ध कराना, किताबें और छात्रवृत्तियाँ प्रदान करना रहा है। चौथी पंचवर्षीय योजना के बाद सक्षम बनाने वाले हस्तक्षेपों का व्यापक फैलाव हो गया। 1986 की शिक्षा नीति ने जनजातियों की शिक्षा के लिए ज्यादा सहयोग देने का सुझाव दिया।

केंद्र सरकार द्वारा विद्यालयी स्तर पर विभिन्न योजनाएं जैसे- अ.जा./अ.ज.जा. के बीच कार्यरत स्वयंसेवी संस्थाओं को सहायता हेतु अनुदान देना, अस्वच्छ व्यवसायों जैसे कि चमड़ा बनाना, जानवरों की खाल छीलना और नाली, पाखाना सफाई करना इत्यादि को अपनाने वाली जातियों और परिवारों के बच्चों के लिए विशेष मैट्रिक पूर्व छात्रवृत्तियाँ देना, विद्यालय के

उच्च एवं माध्यमिक स्तर के लड़के और लड़कियों के छात्रावास, रूढ़िवादी वातावरण के कारण अ.जा. की लड़कियों की शिक्षा दर में कमी वाले जिलों के लिए केंद्र सरकार ने विभिन्न उपायों वाली योजना आदि संचालित की जा रही है।

राजस्थान राज्य में वर्ष 2011 जनगणना के अनुसार राज्य की कुल जनसंख्या में से अनुसूचित जाति की जनसंख्या 17.83 प्रतिशत तथा अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या 13.48 प्रतिशत है। 'शिक्षा के क्षेत्र में जनजाति लोगों का पिछडापन अत्याधिक था। जहां सन् 1981 में राज्य की साक्षरतादर 24.38 प्रतिशत थी वहां जनजाति के लोगों में यह 10.27 प्रतिशत थी। तथा जनजाति महिलाओं में मात्र 1.20 प्रतिशत थी। सन् 1991 की जनगणनानुसार जहां राज्य की साक्षरता दर 38.55 प्रतिशत रही वहां जनजाति के लोगों की साक्षरता दर 12 प्रतिशत के लगभग रही। स्त्रियों की साक्षरता दर 2 प्रतिशत पाई गई। सन् 2001 में पुरूष साक्षरता दर 62.10 प्रतिशत और स्त्रियों की साक्षरता दर 26.20 प्रतिशत रही है।

राजस्थान सरकार द्वारा जनजातियों के शैक्षिक स्तर सुधार हेतु जनजातियों के सामाजिक-आर्थिक असुविधा की क्षतिपूर्ति में सक्षम बनाने वाले प्रावधानों की एक ऐसी श्रृंखला तैयार की है, जो अ.जा./अ.ज.जा. के बालकों की विद्यालयी पहुँच और माध्यमिक एवं उच्च विद्यालय स्तर पर इनके ठहराव को बढ़ावा देगी। राज्य और केंद्र दोनों ही सरकारों ने विशेष शैक्षिक प्रावधानों को बनाने की जिम्मेदारी उठाई।

राजस्थान सरकार द्वारा विद्यालयी स्तर पर विभिन्न योजनाएं जैसे- (क) विद्यालयी शिक्षा की सभी अवस्थाओं के लिए मुफ्त किताबें एवं सामग्री, (ख) जनजातीय बालकों के लिए आश्रम (स्कूल), (ग) आश्रम विद्यालयों और सरकारी अनुमोदन प्राप्त छात्रावासों के बच्चों को मुफ्त पौशाकें, (घ) सभी स्तरों पर मुफ्त शिक्षा, (ड.) मैट्रिक पूर्व वजीफा, (च) पिछड़े वर्गो के छात्रावासों में ठहरने की सुविधा और सामान्य छात्रावास, (छ) जनजातीय क्षेत्रों में व्यवसायिक प्रशिक्षण (ज) पोस्ट-मैट्रिक छात्रवृति (झ) प्री-मैट्रिक छात्रवृति आदि संचालित की जा रही है।

राजस्थान सरकार द्वारा जनजातियों को प्रदत्त विशेष सुविधाओं का संक्षिप्त विवेचन निम्नवत है-

1. **जनजातियों के लिये आश्रम छात्रावासों का संचालन-** राज्य सरकार जनजातीय छात्र-छात्राओं के लिए दूर दराज के विद्यालयों में अध्ययन हेतु छात्रावासों का निर्माण किया गया है। जिससे परिवार के कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण वे शिक्षा से वंचित न हो पाये। ऐसे छात्र-छात्राओं के लिए 372 आश्रम छात्रावास संचालित किया जा रहे हैं जिनमें 23759 छात्र-छात्राओं को प्रवेश दिया जाकर लाभान्वित किया जा रहा है। इन छात्रावासों में छात्र-छात्राओं को नि:शुल्क आवास, भोजन, पोषाक एवं अन्य सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती है। इसके लिए प्रतिमाह 2500 रूपये निर्धारित किये गये हैं।

2. **आवासीय विद्यालय संचालन योजना-** जनजातीय छात्र-छात्राओं के शिक्षा के स्तर में सुधार हेतु भारत सरकार एवं राज्य सरकार द्वारा आवासीय विद्यालयों का निर्माण करवाया गया है। इनमें अनुसूचित, माडा तथा सहरिया क्षेत्र सम्मिलित है। 'आवासीय विद्यालय में स्वीकृत शैक्षणिक व गैर शैक्षणिक पदों पर शिक्षा विभाग से कर्मचारियों, अधिकारियों को प्रतिनियुक्ति एवं पदस्थापन पर लिए जाकर अध्ययन व्यवस्था संचालित की जा रही है। वर्तमान में विभाग द्वारा 13 आवासीय विद्यालयों का संचालन किया जा रहा है जिसमें 2585 छात्र-छात्राएं लाभान्वित हो रहे हैं।

3. **मॉडल पब्लिक रेजिडेंशियल स्कूल-** राज्य में अनुसूचित क्षेत्र में दो मॉडल पब्लिक रेजीडेंसी स्कूल का संचालन किया जा रहा है जो की ढिकली, जिला उदयपुर एवं सुरपुर, जिला डूंगरपुर में अवस्थित है। दोनों स्कूलों के कुल क्षमता 700 छात्र-छात्राएं है। शिक्षा सत्र 2019-20 में 699 छात्र-छात्राओं को प्रवेश दिया गया है।

4. **एकलव्य मॉडल रेजिडेंशियल पब्लिक स्कूल-** राज्य सरकार द्वारा अनुसूचित क्षेत्र में 14, माडा क्षेत्र में 6 एवं सहरिया क्षेत्र में 1 एकलव्य मॉडल रेजिडेंशियल पब्लिक स्कूल का संचालन किया जा रहा है। उक्त स्कूलों की कुल प्रवेश क्षमता 5855 छात्र-छात्राएं हैं।

5. **बहुउद्देशीय छात्रावासों का संचालन-**राज्य के उदयपुर, कोटा, डूंगरपुर, बांसवाड़ा एवं प्रतापगढ़ जिला मुख्यालय पर राज्य की अनुसूचित जनजाति की छात्राओं के लिए बहुउद्देशीय छात्रावासों का संचालन किया जा रहा है जिसमें वे छात्राएं जो शहर में रहकर पी.एचडी, पी.टी.ई.टी, नीट, आई.आई.टी, प्रशासनिक सेवाओं एवं अन्य उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु कमरा किराया लेकर अध्ययन करने में असमर्थ है उन्हें नि:शुल्क आवासीय व भोजन की सुविधा उपलब्ध करवाई जाती है। इस योजना में उदयपुर व कोटा में 150 बालिकाओं की क्षमता, डूंगरपुर, बांसवाड़ा व प्रतापगढ़ जिला मुख्यालय पर 100-100 बालिकाओं की क्षमता वाले बहुउद्देशीय छात्रावासों का संचालन किया जा रहा है।

6. **बोर्ड एवं विश्वविद्यालय में प्रथम श्रेणी उत्तीर्ण जनजाति प्रतिभावान छात्रों को छात्रवृत्ति योजना -** वर्ष 1993-94 से यह योजना प्रारम्भ की गई है। जनजाति के ऐसे प्रतिभावान छात्र जिन्होंने राजस्थान से माध्यमिक शिक्षा बोर्ड एवं केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा आयोजित कक्षा 10 एवं 12 की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की है तथा विश्वविद्यालय में स्नातक एवं स्नातकोत्तर की परीक्षा में भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होते हैं उन्हें राशि रू 350/- प्रति छात्र प्रतिमाह की दर से 10 माह तक छात्रवृत्ति दी जाती है।

7. **जनजाति छात्राओं को उच्च शिक्षा हेतु आर्थिक सहायता (निजी एवं राजकीय महाविद्यालय स्तर की छात्राओं के लिए)-** जनजाति छात्राओं को उच्च शिक्षा हेतु प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से वर्ष 1994-95 में यह योजना प्रारम्भ की गई। योजना का लाभ उन छात्राओं को प्राप्त होगा जो राज्य की मूल निवासी हों और महाविद्यालय (सामान्य शिक्षा) में नियमित रूप से अध्ययनरत हों। योजनानुसार प्रत्येक अध्ययनरत छात्रा को राशि रु 500/- प्रतिमाह कीदर से 10 माह तक (5000/- रू एकमुश्त) आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। इस योजना में उन्हीं छात्राओं को आर्थिक सहायता दी जाती है जिन्होंने महाविद्यालय में पिछली परीक्षा उत्तीर्ण कर अगली कक्षा में प्रवेश लिया हो साथ ही आर्थिक सहायता केवल उन्हीं छात्राओं को देय होगी जिनके माता-पिता आयकरदाता नहीं हैं।

8. **जनजाति छात्राओं को उच्च माध्यमिक शिक्षा हेतु आर्थिक सहायता-** राज्य सरकार द्वारा कक्षा 11वीं एवं 12वीं में अध्ययन करने वाली जनजाति छात्राओं को शिक्षा के क्षेत्र में उच्च माध्यमिक शिक्षा के लिये प्रेरित करने के उद्देश्य से वर्ष 2010-11 से यह योजना प्रारम्भ की गई। योजना का लाभ उन छात्राओं को प्राप्त होगा जो राज्य की मूल निवासी हों और राजकीय विद्यालयों में कक्षा 11वीं एवं 12वीं में नियमित रूप से अध्ययनरत हों। योजनानुसार प्रत्येक अध्ययनरत छात्रा को राशि रु 350/- प्रतिमाह की दर से 10 माह तक (3500/- रु एकमुश्त) आर्थिक सहायता

प्रदान की जाती है। इस योजना में उन्हीं छात्राओं को आर्थिक सहायता दी जाती है जिनके माता-पिता आयकरदाता नहीं हैं। छात्राओं के राज्य की मूल निवासी होने तथा राज्य में ही संचालित राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत रहने पर योजना का लाभ देय होगा।

9. जनजाति के कक्षा 6 से 12 तक चयनित छात्र-छात्राओं को प्रतिष्ठित विद्यालयों/ संस्थाओं के माध्यम से अध्ययन योजना- सामान्यतया जनजाति छात्र-छात्राएँ आर्थिक दृष्टि से कमजोर होने के कारण प्रतिष्ठित एवं अच्छी शिक्षा देने वाले निजी शैक्षिक विद्यालयों/ संस्थाओं में अध्ययन नहीं कर पाते हैं। इसलिए राज्य की कतिपय श्रेष्ठ शैक्षिक संस्थाओं में जनजाति छात्रों को सामान्य वर्ग के छात्रों के साथ अध्ययन कराने एवं इन्हें गुणवत्तायुक्त शिक्षा दिलवाये जाने हेतु योजना प्रारम्भ की गई। उक्त योजना के अन्तर्गत ट्यूशन फीस, आवास, भोजन, पुस्तकें, स्टेशनरी एवं पौशाक आदि हेतु राशि स्वीकृत की जाती है जो राज्य सरकार द्वारा वहन की जाती है

10. नि:शुल्क स्कूटी वितरण योजना- वित्तीय वर्ष 2019-20 से प्रभावी कालीबाई भील मेधावी स्कूटी योजना के अन्तर्गत राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड एवं केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा आयोजित परीक्षा में राजकीय विद्यालयों में व आरटीई के तहत निजी विद्यालयों में अध्ययनरत जनजाति की छात्राओं को योजना की गाईडलाईन अनुसार पात्र छात्राओं को 6000 स्कूटियां वितरण की गयी। कालीबाई भील मेधावी स्कूटी योजना में स्कूटी हेतु पात्रता माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान की सीनियर सैकण्डरी अथवा समकक्ष परीक्षा में 65 प्रतिशत एवं केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की सीनियर सैकण्डरी/समकक्ष परीक्षा में 75 प्रतिशत अंक निर्धारित किये गये है।

11. जनजाति आश्रम/महाविद्यालय स्तरीय/बहुउद्देशीय छात्रावासों का निर्माण- अनुसूचित जनजाति वर्ग की साक्षरता दर राज्य की कुल साक्षरता दर से लगभग 15 प्रतिशत कम है। जनजाति समुदाय के साक्षरता स्तर में सुधार हेतु विशेष प्रयास की आवश्यकता है। नवीन जनजाति आश्रम/ महाविद्यालय स्तरीय/बहुउद्देशीय छात्रावास का निर्माण ऐसे स्थान पर किया जाना है जहां उच्च माध्यमिक विद्यालय/ महाविद्यालय संचालित है।

12. एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालयों का निर्माण- जनजाति उपयोजना क्षेत्र में जनजाति छात्र/छात्राओं को एक ही स्थान पर नि:शुल्क आवासीय स्थल एवं शिक्षण सुविधा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय, (भारत सरकार के दिशा निर्देशानुसार) कुल क्षमता 480 (240 छात्र एवं 240 छात्राएं) का निर्माण कराया जाना है।

13. सहरिया विकास कार्यक्रम – 'बारां जिले की किशनगंज एवं शाहाबाद पंचायत समितियों के सहरिया जनजाति के लोगों के कल्याण के लिये यह योजना चलाई गई है। इसके द्वारा इनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हेतु कृषि, पशुपालन, शिक्षा, चिकित्सा, सिंचाई आदि में सुधार करता है। सहरिया विद्यार्थी नि:शुल्क शिक्षा, भोजन, आवास, किताबें, वर्दी आदि प्राप्त करते हैं। सहरिया लोगों के लिये सरकारी नौकरियों में 25 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान रखा गया है। छात्रावासों में रहने वाले विद्यार्थियों का मेस भत्ता बढ़ाकर 675 रु. प्रतिमाह किया गया है जिससे अनुसूचित जनजाति में छात्रों की संख्या में वृद्धि हुई है।'

इनके अतिरिक्त जनजाति के बच्चों के लिए छात्रवृत्ति, मैरिट छात्रवृत्ति, लड़कियों के लिए उपस्थिति छात्रवृत्ति, विशिष्ट स्कूल उपस्थिति इनाम, निदानात्मक कोचिंग और अध्ययन केंद्र, अध्ययन के खर्चों की अदायगी, विद्यार्थी ऋण, व्यवसायों, कला कक्षाएँ, स्वयं रोजगार के लिए प्रशिक्षण केंद्र, शिक्षकों के लिए आवास और इनाम कक्षाएँ, दोपहर का भोजन इत्यादि योजनाएं राजस्थान सरकार द्वारा संचालित की जा रही है।

सरकार द्वारा शिक्षा के विभिन्न स्तरों जैसे-मैट्रिक-पूर्व शिक्षा और मैट्रिक-पश्चात शिक्षा हेतु अनुसूचित जनजातियों के विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्ति और फेलोशिप योजनाओं की व्यवस्था की गयी है। इसी प्रकार उच्च शिक्षा के क्षेत्र में इन्हें बढ़ावा देने के लिए उच्च शिक्षा योजना चलाई जा रही है जो अनुसूचित जनजातियों के उन विद्यार्थियों के लिए है जिनके अभिभावकों की वार्षिक आय 6 लाख रुपए से कम है। सरकार ने हाल के वर्षों में महिला सशक्तिकरण और बालिका शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है।

जनजातियों को लाभ पहुंचाने के उद्देश्य से अनुसूचित जनजातियों की लड़कियों की शिक्षा से जुड़ी योजनाओं के लिए अधिक क्षेत्र आबंटित किया गया है। सरकार द्वारा जनजातीय विकास के लिए जनजातीय अनुसंधान को भी महत्व दिया जा रहा है तथा इसके लिए जनजातियों की संस्कृति के संरक्षण और डॉक्यूमेंटेशन, जनजातियों के प्रति जागरूकता और जानकारी का प्रसार करने की योजना बनाने और कानून बनाने पर विशेष धयान दिया जा रहा है।

इस प्रकार सरकार द्वारा अनुसूचित जनजातियों के शैक्षिक विकास हेतु विभिन्न योजनाओं एवं कार्यक्रमों का धरातलीय स्तर पर संचालन कर विभिन्न शैक्षिक सुविधाएं उपलब्ध करवायी जा रही है जिससे अनुसूचित जनजातियों को समाज की मुख्यधारा से सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक स्तर पर जोड़ा जा सकेगा।

निष्कर्ष एवं सुझाव- अनुसूचित जनजाति के बालकों की शैक्षिक भागीदारी के मूल बाधक तत्व गुणात्मक एवं संख्यात्मक दोनों रूप में अपर्याप्त प्रावधान हैं। इन वर्गो के समग्र एवं प्रभावी विकास हेतु राज्य बजट में से अनुसूचित जाति उपयोजना तथा जनजाति उपयोजना के तहत इनकी जनसंख्या के अनुपात में पृथक से बजट प्रावधान किये जा रहे हैं। भविष्य में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के विकास के दृष्टिगत योजना निर्माण, आंवटन एवं व्यय को और सुदृढ़ एवं प्रभावी बनाने हेतु सरकार द्वारा व्यवस्था को वैधानिक रूप देते हुए अधिनियम बनाया जाना चाहिये। साथ ही शैक्षिक स्तर सुधार हेतु अनुसूचित जनजाति एवं विशेष पिछड़ी जनजाति के विद्यार्थियों के लिए विशेष कोचिंग की व्यवस्था की जाये। विद्यार्थियों को दृश्य, श्रव्य सामग्रियों के आधार पर रोचक विधियों से सिखाया जाये जिससे इन बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि तथा वैज्ञानिक अभिवृत्ति की जानकारी प्राप्त कर आवासीय शालाओं के औचित्य तथा उनकी शैक्षिक गुणवत्ता सुधार की दिशा में प्रयास किए जा सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. कटारा अनिता, 'शिक्षा के द्वारा उन्नति का प्रयास (राजस्थान की जनजाति के विशेष संदर्भ में)' श्रृंखला एक शोध परक वैचारिक पत्रिका, मई 2018 कुमार नरेश, (2003) 'जनजातीय विकास मिथक एवं यथार्थ' रावत पब्लिकेशन प्रकाशन।
2. कंचन राकेश, 'सहरिया जनजाति के विभिन्न शैक्षिक स्तरों के प्रतिभाशाली बच्चों के सामाजिक आर्थिक स्तर तथा विद्यालय समायोजन का कम उपलब्धि के संदर्भ में अध्ययन' बुंदेलखंड

विश्वविद्यालय, झांसी, उत्तर प्रदेश।

3. गुप्ता मंजू, (2011) 'जनजातियों का सामाजिक आर्थिक उत्थान' अर्जुन पब्लिशिंग हाउस प्रह्लाद स्ट्रीट अंसारी रोड दरयागंज, नई दिल्ली।
4. चौधारी एस. एल., (2018) 'ट्राईबल कास्ट एंड डेवलपमेंट' रावत पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।
5. बया विकास, (2015) 'जनजातीय विकास दक्षिण राजस्थान के संदर्भ में', इंडियन बुक्स एंड पेरियोडिकल्स।
6. दोषी एस. एल.; जैन पी. सी. (2020) 'जनजातीय समाजशास्त्र (ट्राईबल सोशियोलॉजी)' रावत पैब्लिकेशन, नई दिल्ली।
7. पालीवाल पुनीता, (2011) 'अनुसूचित जनजाति के शैक्षिक विकास में कार्यरत गैर सरकारी संगठनों के योगदान का आलोचनात्मक। अधययन', उत्तर प्रदेश राजर्षी टंडन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
8. सैनी एस. के. (2003) 'राजस्थान के आदिवासी' यूनिक ट्रेडर्स, जयपुर।

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

यात्रा साहित्य का सामाजिक-सांस्कृतिक अवलोकन : अजय सोडाणी के दर्रा-दर्रा हिमालय के विशेष संदर्भ में

दिनेश कुमार*

* शोधार्थी (हिंदी) मानविकी संकाय मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत

शोध सारांश – मनुष्य का मानवीय जीवन ही सामाजिक जीवन के रूप में प्रस्तुत होता है। इसी प्रकार एक स्थान पर रहने वाले व्यक्तियों का समाज जब एक ही रीति, विश्वास एवं एक ही प्रकार के आदर्श सामने रखता है तब संस्कृति का जन्म होता है। संस्कृति का संबंध मनुष्य के सामाजिक जीवन से हैं। सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से प्रारंभिक काल से ही विश्व की विभिन्न सभ्यताएं परिपूर्ण रही है। यात्रा वृतांतकारों ने विभिन्न स्थानों की यात्रा कर स्थान विशेष के सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप को पाठकों के समक्ष दृश्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। इन स्थानों के प्राकृतिक सौंदर्य, भौगोलिक विशेषता, सामाजिक ताना-बाना, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विरासत का अनुभव आदि सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य को प्रस्तुत करते है। प्रस्तुत शोधा में अजय सोडानी के यात्रा वृतांत दर्रा-दर्रा हिमालय का विभिन्न आधारों पर सामाजिक-सांस्कृतिक अवलोकन किया गया है।

शब्द कुंजी –यात्रा वृतांत, प्राकृतिक सौंदर्य, समाज, संस्कृति, सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश, विविधता इत्यादि।

प्रस्तावना – यात्राएं मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है जो व्यक्ति की समरसता और जड़ता को तोड़ने का उपक्रम करती है। हिंदी साहित्य के विकास के प्रारंभिक दौर में कुछ यात्रा वृतांत लिखे गए पर साहित्यिक विधा के रूप में इसका उत्कर्ष बीसवीं सदी के उत्तारार्द्ध से ही माना जाता है। यात्रा साहित्य में साहित्यकार समग्र जीवन की अभिव्यक्ति को प्रस्तुत करते हैं। वे देश एवं स्थान विशेष की आत्मा का साक्षात्कार करते हैं साथ ही देश-विदेश में बिखरे इतिहास, संस्कृति समाज को अपनी अनुभूति का अंग बनाकर अभिव्यक्त करते हैं। यात्रा साहित्य मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति की विकास यात्रा को भी आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

यात्रा वृतांत में यात्रा स्थल का वर्णन इस प्रकार किया जाता है कि वहां के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश एवं परिदृश्य को पढ़ते समय दृश्य आंखों के सामने जीवंत जाते हैं। बिम्ब निर्माण करना किसी भी यात्रा लेखक की सबसे बड़ी सफलता है। यात्रा साहित्य मानव जीवन की आशा, आकांक्षा, सामाजिक रीति-रिवाज, परंपराएं, सामाजिक अपेक्षाएं आदि को रूपायित करता है साथ ही सांस्कृतिक परिवेश को भी प्रस्तुत करता है।

इक्कीसवीं सदी के यात्रा साहित्यकारों ने यात्रा वृतांतों को सामाजिक-सांस्कृतिक आधार पर विश्लेषित किया है। वर्तमान वैश्वीकरण एवं औद्योगीकरण के युग में यात्रा साहित्य में समाज के बदलते स्वरूपों, विषमताओं, देश-विदेश की समस्याओं आदि का चित्रण विशद स्तर पर किया जाता है। यात्रा साहित्यकारों ने क्षेत्रीय विविधता ओं को अपने यात्रा वृतांतों में अपने अनुभवों के आधार पर यथार्थ रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। क्षेत्रीय विविधता ओं के साथ-साथ यात्रा साहित्यकारों ने वहां के मौजूद विषमताओं को भी विश्लेषित किया है। भौगोलिक परिवेश के रूप में प्रकृति के रूप को व्याख्यायित करना यात्रा वृतांत का प्रमुख उद्देश्य रहा है।

वर्तमान समय में यात्रा वृतांत के विषयों में वृद्धि एवं परिवर्तन देखने को मिल रहा है। विभिन्न विमर्श एवं चिंतन, धार्म के बदलते स्वरूप, बाजारीकरण, सांस्कृतिक संक्रमण, शहरीकरण, उपभोक्तावादी संस्कृति एवं उसके प्रभाव आदि को यात्रा वृतांतकारों ने भोगा एवं अनुभव किया है उसके पश्चात रचनात्मक रूप से अपने यात्रा वृतांतों में प्रस्तुत किया है। यात्रा साहित्यकार अपनी यात्रा किये हुये स्थान का सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर सूक्ष्मता से अवलोकन करता है।

सामाजिक स्थिति का प्रस्तुतीकरण यात्रा साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति है जिसमें सामाजिक एवं सांस्कृतिक अवलोकन निहित है। 'एक सांस्कृतिक सेतु, यात्रा लेखन सांस्कृतिक पर्यटन का प्रसार करता है, हर देश, समाज व सस्कृति के श्रेष्ठ तत्वों को उजागर करते हुए, आपसी संवाद की पृष्ठभूमि तैयार कर रहा होता है। और अंर्तसांस्कृतिक संचार को संभव बनाता है, पुष्ट करता है। इस तरह यात्रा साहित्य सहज रुप में मानवीय सम्बन्धों को सशक्त करता है। लेकिन इसके लिए यात्रा लेखक में हर संस्कृति की श्रेष्ठ एवं आधयात्मिक परम्पराओं व जीवन दर्शन की कुछ समझ अपेक्षित रहती है।'

हिमालय के प्राकृतिक सौंदर्य ने यात्रा साहित्यकारों को सदैव ही आकर्षित किया है परंतु मानवीय संबंधों के रचनाकार अजय सोडानी को हिमालय के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन ने भी सदैव ही सम्मोहित किया है जिससे वे हिमालय की ओर बार-बार खींचे चले जाते हैं। अजय सोडाणी ने अपने यात्रा वृतांत दर्रा-दर्रा हिमालय में हिमालय के कालिंदी खाल एवं ओडीनकॉल के सफर को प्रस्तुत किया है जिसे उन्होंने अभियान के रूप में पूरा किया है। इस यात्रा के दौरान कहीं बार उन्हें मौत के मुकातिब भी होना पड़ा है लेकिन हिमालय की चोटियां, घाटियां, वहां की हवा, प्राकृतिक सौंदर्य, बर्फ, हिमालय की श्रृंखलाएं उन्हें हमेशा से ही आकर्षित करती रही है।

लेखक ने यात्रा वृतांत में कालिंदी खाल एवं ऑडनकॉल के सामाजिक एवं सांस्कृतिक अवलोकन को प्रस्तुत किया है। लेखक प्राकृतिक सौंदर्य के बीच अपना समध जीवन व्यतीत करने वाले सामान्यजन की देवता और

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

नियोक्ता के प्रति संवेदनशीलता प्रकट करते हैं साथ ही वहां के सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश को भी समझने का प्रयास करते हैं। लेखक ने भारतीय धार्मिक जीवन एवं संस्कृति को प्रस्तुत करते हुए सांस्कृतिक रूप से इसके देश–विदेश में विस्तार एवं विदेशी सैलानियों द्वारा अपनाने की प्रवृत्ति की ओर चर्चा करते हुए लिखा है–

'20–30 वर्ष के ये विदेशी धार्मिक सैलानी यहाँ एकाकी ही घूमते हैं और भारतीय परिपाटियों तथा रूढ़ियों को बिना समझे–बुझे निभाते हैं। कुछ एक तो थाली के चारों ओर अँजुरी से जल डालकर एवं गो–ग्रास निकालकर भोजन प्रारम्भ करते हैं। गौ–माता तो यहाँ होती नहीं, अत: कौओं जिनकी चोंच पीली होती है– की खूब दावत उड़ती है।' लेखक के अनुसार विदेशी सैलानी भारतीय परिपाटियों तथा रूढ़ियों से सदैव ही आकर्षित रहे हैं जो भारतीय सांस्कृतिक महत्व को प्रस्तुत करने का परिचायक है।

आगे लेखक ने हिमालय का धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्व तथा हिमालय के प्रति आस्था एवं विश्वास को प्रस्तुत किया है यथा– 'ऐसी हमारी मान्यता है कि पर्वतों के शिखरों पर तथा दर्रों के ऊपर ईश्वर का वास होता है। और इसका तीव्र एहसास भी हर पर्वतारोही निश्चित तौर पर करता है। अत: दर्रे पर एक हलकी–फुलकी पूजा करके ही आगे बढ़ा जाता है– चुनाँचे नवीन और रनी भी इसकी तैयारी में लगे थे। तैयारी तो क्या होती हैं बस दो अगरबत्तियाँ जलाना और कुछ प्रसादस्वरूप रख देना ही सम्भव होता है अक़सर!'

हिमालय प्रकृति को बनाए रखने एवं सांस्कृतिक सम्मोहन को गति एवं जीवन देने का माध्यम है। प्रकृति एवं हिमालय के रहस्य को उद्घाटित करना मनुष्य के लिए संभव नहीं है। अजय सोडानी अपनी यात्रा के दौरान हिमालय के क्षेत्र के साथ एकाकार करने की कोशिश करते हुए सोचते हैं– 'लगा कोई फुसफुसा रहा हो– क्या प्रकृति को नए सिरे से रचना चाहते हो? इस आगार में तुम मेहमान हो। जिस घर में अतिथि बनकर आए हो उसकी साज–सज्जा बदलने का हक तुम्हें किसने दिया? वह मृग बिंध है– घर–धणी की इच्छा। इस घर में टँगे पहाड़, पुष्प, वृक्ष, नदी, नाले, सागर सब–घर–धणी की इच्छानुरूप हैं। उनमें नए रंग भरने का प्रयास मत करो..., हिमालय का गुरुतत्व मेरे भीतर ज्योत जगा रहा था– तुम्हारे यहाँ होने से पैदा हुए असन्तुलन तथा तुम्हारे क्रिया–कलापों से उत्पन्न अवशिष्ट हटाने के अतिरिक्त तुम्हारी कोई जिम्मेदारी नहीं है। तुम कर्ता नहीं– माध्यम हो, तुम रंगकार की कूँची हो– रंगकर्मी नहीं।'

लेखक ने आगे हिमालय के ऊंचे पहाड़ों पर बंजारा जनजाति के सामाजिक जीवन का चित्रण करते हुए लिखा है 'सोनी ने झोपड़ी वाले की ओर इशारा करके कहना जारी रखा, बंजारे हैं– जानवर पालते हैं– और गर्मी में यहाँ ताजी घास आने पर ये अपने जानवरों के साथ ऊपर आ जाते हैं। यह छानी (झोपड़ी) इनका अस्थायी घर है। इनके पास रहने से हमें सुरक्षा के साथ इस जंगल में भी ताज़ा दूध और दही मिलेगा।'

अजय सोडाणी ने अपनी हिमालय यात्राओं के दौरान इन क्षेत्रों के सामाजिक जीवन को करीब से देखा, परखा एवं अनुभव किया है। हिमालय के ऊपर निवास करने वाले आर्थिक रूप से विपन्न अवश्य होते हैं लेकिन इनमें 'अतिथि देवो भव:' की संस्कृति आज भी विद्यमान है। वहां के लोगों की मानवीयता, प्रेम, करुणा एवं यात्रियों के प्रति सम्मान की भावना को महसूस करते हुए लेखक ने लिखा है–

'नहीं साहेब मुझे सिर्फ़ ढाई ही चाहिए।' रुपये पुन: मेरी हथेली पर धरते हुए उसने पहली बार मेरी आँखों में देखा! उसकी आँखों में माँ की करुणा थी, सागर– सी गहराई थी, ताजी ओस–से भीगे फूलों–सी सरसता थी, मिट्टी की सौंधी खुशबू थी। मुझे यूँ प्रतीत हुआ मानो मेरे सामने पुरुष नहीं वरन् एक स्त्री हो, भूख से बिलखते अपने लाल को स्तनपान करा रही स्त्री! मेरा गला भर आया, गाल गर्म होने लगे, निगाहें झुक गईं। मेरे पैर का अँगूठा तेज़ी से जमीन कुरेद रहा था– पर धारती फटने का नाम न ले रही थी।'

हिमालय के क्षेत्र के निवासियों का सामाजिक जीवन बेहद आम एवं सादा है। गांवों में आज भी छाछ, दूध, दही के साथ अपनत्व भी मिलता है। यहां के लोग अपने जीवन एवं संस्कृति से संतुष्ट नजर आते हैं साथ ही आने वाले पर्वतारोहियों के लिए वे एक मार्गदर्शन के रूप में भी कार्य करते हुए सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन में संतुलन बनाए रखने का प्रयास करते हैं– 'रास्ते में दो गाँव पड़े। सबसे पहले आया गंगी और उसके बाद रीह। न जाने कितने नाले और झरने पार करने के बाद हम पहुँचे गंगी। यहाँ तक पहुँचते–पहुँचते हमारी रसद भी समाप्त हो चुकी थी। गाँव में इस उम्मीद से प्रविष्ट हुए कि दूध, दही या जाएगी। पचास–साठ झोपड़ियों के इस गाँव में सिर्फ बुजुर्ग और बच्चे ही मिले, वह भी आधुनिक मापदंडों के अनुसार पूरी तरह फटेहाल। लेकिन उनके अनुसार वे प्रसन्न थे– सन्तुष्ट थे। गाँव में एक स्कूल था एवं प्राथमिक चिकित्सालय, जहाँ यदा–कदा शिक्षक या डॉक्टर भी आ जाते थे। इसी गाँव में हमें एक बुजुर्ग मिले, होंगे कोई सत्तार–अस्सी वर्ष के, लेकिन तन्दुरुस्त। युवा अवस्था में वे पर्वतारोहियों के साथ मार्गदर्शक के रूप में जाते थे।'

हिमालय क्षेत्र के निवासियों के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन का अवलोकन करते हुए लेखक ने यहां की विभिन्न परंपराओं एवं रीति–रिवाजों पर भी प्रकाश डाला है। 'गंगी में हमें एक आदिम परंपरा देखने को मिली – मिल बाँटकर खाने की। हम शहरी लोगों को मिल–जुलकर रहना एवं मिल–बाँटकर खाना आदिम नहीं तो और क्या लगता? यहाँ खेती थी पर उन्हें लकड़ी और गोश्त तो जंगल से ही मिलता। दो– चार दिन में जब भी कोई शिकार जाल में फँसता शिकारी उसे गाँव में ले आता है। जानवर को साफ़ करके उसकी बोटियाँ कर दी जाती हैं और उस गोश्त को छोटी– छोटी ढेरियों में विभाजित किया जाता है। जितने परिवार उतनी ढेरियाँ– इसे यहाँ 'बाँटा' कहते हैं। गाँव वाले आकर अपना हिस्सा ले जाते हैं– बदले में शिकारी को मिलता है आलू–आटा आदि। हाँ, दो–तीन हिस्से फ्री–फोकट में देने के लिए बनाए जाते हैं– जंगल वालों तथा कुछ अन्य सरकारी महकमे के लोगों के लिए। यह जंगल में किए जा रहे आखेट को अनदेखा करने का उनका 'पारिश्रमिक' था।' यह गांव–बांटा की प्रथा इन क्षेत्रों के निवासियों को जोड़े रखने एवं उनके सामाजिक जीवन को बनाए रखने में विशेष योगदान देती है साथ ही यहां के सामाजिक–सांस्कृतिक परंपराओं को बनाये रखने की आवश्यकता को प्रकट करती है।

निष्कर्ष– अजय सोडानी के यात्रा वृतांत के विश्लेषण से स्पष्ट है कि वर्तमान समय में वैश्वीकरण एवं औद्योगीकरण का प्रभाव हिमालय क्षेत्र पर व्यापक रूप से देखने को मिल रहा है। जंगलों की कटाई, शोषण, पर्वतारोहियों द्वारा पर्यावरण को पहुंचने वाला नुकसान आदि यहां की प्रमुख समस्या बनती जा रही है। आधुनिक समय में सरकार द्वारा विभिन्न योजनाओं द्वारा यहां का विकास करने का प्रयास अवश्य किया जा रहा है लेकिन भ्रष्टाचार यहां के भोले–भाले जीवन को भी निगलने की तैयारी कर रहा है। लेखक ने हिमालय यात्रा के दौरान पर्यावरणीय चिंतन के साथ ही सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन

के चिंतन का विस्तृत अवलोकन प्रस्तुत किया है। लेखक ने अपने यात्रा के दौरान हिमालय क्षेत्र में आने वाले विभिन्न स्थानों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक अवलोकन को दर्ज करते हुए उनका दृश्यात्मक एवं बिम्बात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. (सं.) के.डी. शर्मा ; इसपाक अली, उत्तम राजाराम आलतेकर : हिंदी में यात्रा साहित्य का योगदान, शोध समालोचना त्रैमासिक पत्रिका (ISSN 2348-5639), 2016-2017, पृ. 52
2. (सं.) नवीन नंदवाना; नई सदी का साहित्य चिंतन और चुनौतियां, प्रीति भट्ट : नई सदी के यात्रा साहित्य का विश्लेषण बोधि प्रकाशन, जयपुर, 2015 पृ. 133
3. सुनील कुमार यादव : समकालीन यात्रा वृत्तांतों के विश्लेषण का सामाजिक-सांस्कृतिक आधार, अपनी माटी, 2021
4. सुरेंद्र माथुर : हिंदी यात्रा साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली 1962, पृ. 86
5. अजय सोडानी : दर्रा-दर्रा हिमालय, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, 2019 वही, पृ. 22
6. वही, पृ. 60
7. पृ. 120
8. वही, पृ. 121
9. वही, पृ. 124
10. वही, पृ. 142
11. वही, पृ.152

****

राजस्थान के टोंक जिले के सन्दर्भ में जनसंख्या के आकार के आधार पर सेवा केन्द्रों के पदानुक्रम निर्धारण का विश्लेषणात्मक अध्ययन

प्रवीण यादव* डॉ. काश्मीर कुमार भट्ट**

* शोधकर्ता, महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.) भारत
** शोध पर्यवेक्षक, महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.) भारत

शोध सारांश – सेवा केन्द्रों का तात्पर्य उन गाँवों से है जो अपने चारों ओर स्थित क्षेत्र में कुछ निश्चित सेवाओं व आवश्कताओं की पूर्ति करते हैं तथा जो दूसरे केन्द्रों से अपनी क्रियाओं एवं विस्तार के आधार पर भिन्नता रखते हैं। भूगोलवेत्ताओं ने भिन्न-भिन्न स्तर पर सेवा केन्द्रों को अलग-अलग नामों से अभिव्यक्त किया है जैसे:- विकास केन्द्र, केन्द्र स्थल, विकास ध्रुव तथा सेवा केन्द्र आदि। किसी भी क्षेत्र में सेवा केन्द्र ग्रामीण विकास व ग्रामीण विकास की नीतियों एवं कार्यक्रमों को धरातल पर क्रियान्वित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अध्ययन क्षेत्र टोंक एक प्राचीन व ऐतिहासिक जिला रहा है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में टोंक जिले के सेवा केन्द्रों की स्थिति व जनसंख्या के आकार के आधार पर सेवा केन्द्रों का कोटि-आकार सम्बन्ध ज्ञात किया गया है। इसके लिए द्वितीयक आँकड़ों का प्रयोग किया गया है तथा सेवा केन्द्रों की कोटि ज्ञात करने के लिए जिफ के कोटि-आकार नियम विधि का प्रयोग किया गया है। सेवा केन्द्रों की स्थिति दर्शाने के लिए जिले के प्रशासनिक मानचित्र का प्रयोग किया गया है तथा जिफ के कोटि-आकार नियम की गणनाओं के लिए तालिका बनाई गई है।

शब्द कुंजी – सेवा केन्द्र, केन्द्र स्थल, ग्रामीण विकास, नियोजन व विपणन।

प्रस्तावना – वर्तमान समय में ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों के मध्य सम्बन्ध दिन-प्रतिदिन घनिष्ठ होते जा रहे हैं तथा ग्रामीण क्षेत्रों में सेवा केन्द्रों का महत्व व उनकी भूमिका भी लगातार बढ़ती जा रही है क्योंकि यह सेवा केन्द्र उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति का सबसे महत्वपूर्ण माध्यम होते हैं। क्रिस्टालर ने 1933 में ऐसे गाँवों को जो अपने समीपवर्ती क्षेत्रों को सेवाएँ प्रदान करते हैं, केन्द्र स्थल कहा। ये केन्द्र स्थल एक प्राथमिक ग्रामीण अधिवास से लेकर महानगर तक हो सकते हैं। उच्च स्तर के सेवा केन्द्र अधिक जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं एवं निम्न स्तरीय सेवा केन्द्रों की तुलना में इनका सेवा क्षेत्र अधिक विस्तृत होता है। इनके अतिरिक्त निम्न स्तर के सेवा केन्द्र जिन्हें विपणन ग्राम कहते हैं, वे अपने समीपस्थ गाँवों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। किसी भी गाँव में जहाँ निम्नलिखित कार्य व सुविधाएँ उपलब्ध हैं, उन्हें सेवा केन्द्र माना गया है :-

1. अधिवास स्थायी हो।
2. अधिवास की कुल जनसंख्या 1000 या 1000 से अधिक हो।
3. बाजार की सुविधा हो।
4. शैक्षिणक, चिकित्सकीय, प्रशासनिक सेवाएँ, संचार सुविधाएँ, परिवहन, कृषि व वित्तीय जैसी मूलभूत सेवाओं के 30 उप-समूह में से कम से कम 15 या 15 से अधिक सेवाएँ हो।

सेवा केन्द्रों की स्थापना में भौतिक व सांस्कृतिक तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विभिन्न भौतिक तत्व सेवा केन्द्रों की बाह्य स्थिति को नियंत्रित करते हैं। एक अन्य महत्वपूर्ण तत्व क्षेत्र की प्राकृतिक विशेषताएँ हैं जिसके अन्तर्गत प्राकृतिक भूखण्ड, मिट्टी के प्रकार, अपवाह प्रतिरूप एवं जल की उपलब्धता आदि आते हैं।

किसी भी क्षेत्र में सेवा केन्द्रों का नियोजित रूप से विकास करके समन्वित ग्रामीण विकास के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है तथा स्थानीय लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है। जो इस शोध-पत्र का मुख्य उद्देश्य भी है।

अध्ययन क्षेत्र– भारत के उत्तारी-पश्चिमी क्षेत्र में स्थित राजस्थान क्षेत्रफल की दृष्टि से देश का सबसे बड़ा राज्य है। टोंक जिला राजस्थान के उत्तरी-पूर्वी भाग में स्थित है। जिले का धरातलीय भाग लगभग समतल है, कुछ क्षेत्र पहाड़ी वाला भी है। जिले की प्रमुख बनास नदी जिले को दो भागों में बाँटती है। जिले में अरावली पर्वतमाला की कुछ श्रृंखलाएँ भी स्थित हैं। टोंक जिला $25^{0}41'$ से $26^{0}34'$ उत्तरी अक्षांश तथा $75^{0}07'$ से $76^{0}19'$ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है।

राज्य की राजधानी जयपुर टोंक जिला मुख्यालय से उत्तर दिशा में 100 किलोमीटर दूर स्थित है। टोंक जिले का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 7,194 वर्ग किलोमीटर है जो राज्य के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 3,42,239 वर्ग किलोमीटर का 2.11% है। अध्ययन क्षेत्र टोंक जिले की जनसंख्या 2011 की जनगणना के अनुसार 14,21,326 है। जिले का जनसंख्या घनत्व 198 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर तथा जिले की साक्षरता 61.58% है। जिले की दशकीय जनसंख्या वृद्धि दर 17.30% तथा लिंगानुपात 952 है। टोंक जिले की जलवायु शुष्क तथा स्वास्थ्यवर्धक है। सर्दी की ऋतु में न्यूनतम

तापमान 8°c व अधिकतम तापमान 22°c रहता है। गर्मी की ऋतु में न्यूनतम तापमान 30°c व अधिकतम तापमान 45°c रहता है। जिले में औसत वार्षिक वर्षा 61.36% व औसत आर्द्रता 59.30% पाई जाती है। उपरोक्त सभी आँकड़े जिला जनगणना पुस्तिका 2011 से लिए गए हैं।

शोध उद्देश्य:

1. सेवा केन्द्रों का अभिनिर्धारण करना।
2. अध्ययन क्षेत्र के प्रशासनिक मानचित्र में सेवा केन्द्रों को चिन्हित करना।
3. जनसंख्या के आकार के आधार पर सेवा केन्द्रों का पदानुक्रम निर्धारित करना।

आँकड़ों के स्रोत तथा शोध विधि तंत्र:- प्रस्तुत शोध-पत्र व्याख्यात्मक एवं विश्लेषणात्मक अनुसंधान पर आधारित है। इसमें पूर्व निर्धारित परिकल्पनाओं का तात्कालिक परिस्थितियों में परीक्षण किया गया है। शोध-पत्र में द्वितीय स्रोतों से प्राप्त आँकड़ों का उपयोग किया गया है। अध्ययन क्षेत्र में सेवा केन्द्रों के कोटि-आकार क्रम तथा सम्बन्धों को ज्ञात करने के लिए जिफ के कोटि-आकार नियम का उपयोग किया गया है साथ ही अन्य सामाजिक व आर्थिक तथ्यों को स्पष्ट करने के लिए राष्ट्रीय जनगणना 2011 से प्राप्त आँकड़ों का प्रयोग किया गया है।

कोटि-आकार नियम- आयरबैक पहले विद्वान थे जिन्होंने सन् 1913 में नगरों के आकार व उनकी कोटियों के मध्य सम्बन्धों का प्रतिपादन किया था, लेकिन इस नियम को मान्यता 1949 में जिफ के विश्लेषण के बाद ही मिली। ब्राउनिंग व गिब्स ने कोटि-आकार के मध्य सम्बन्धों का आकलन करने के लिए एक विधि का प्रतिपादन किया। प्रस्तुत शोध-पत्र में इस विधि का प्रयोग टोंक जिले के सेवा केन्द्रों के सन्दर्भ में किया गया है।

जब सेवा केन्द्रों को उनकी जनसंख्या के अनुसार कोटियों में इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि सबसे अधिक जनसंख्या वाले सेवा केन्द्र को तालिका में सबसे ऊपर रखा जाए उसके बाद कम होती हुई जनसंख्या के सेवा केन्द्रों को अवरोही क्रम में इस प्रकार रखा जाए कि सबसे अधिक जनसंख्या वाले सेवा केन्द्र का स्थान 1 हो, उससे कम जनसंख्या वाले सेवा केन्द्र का स्थान 2 हो। दूसरे सेवा केन्द्र की जनसंख्या पहले सेवा केन्द्र की जनसंख्या से आधी होगी। इस प्रकार से सेवा केन्द्रों का क्रम निश्चित करेंगे। जैसे:- यदि पहले स्थान के सेवा केन्द्र की जनसंख्या 1,00,000 है तो उसके बाद वाले दूसरे स्थान के सेवा केन्द्र की जनसंख्या 1,00,000/2 = 50,000 होगी।

प्रस्तुत शोध-पत्र में शोधार्थी ने कोटि-आकार सम्बन्ध और उसके विचलन को प्रकट करने का प्रयास किया है। इसके लिए जिफ, ब्राउनिंग व गिब्स की विधि के अनुसार सेवा केन्द्रों के जनसंख्या आधारित क्रम को एक सांख्यिकीय क्रम में अंकित किया गया है। जैसा कि सारणी:-1 को देखने से स्पष्ट है। सारणी:-1 में 2011 की जनगणना के अनुसार जिले के सेवा केन्द्रों की जनसंख्या का कोटि आकार नियम के अनुसार विस्तृत सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया है।

सारणी:-1 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

सेवा केन्द्रों की प्रत्याशित जनसंख्या ज्ञात करने के लिए सर्वप्रथम वास्तविक जनसंख्या को अवरोही क्रम में व्यवस्थित किया गया है। इसके बाद प्रत्येक सेवा केन्द्र को कोटि संख्या प्रदान की गई है यथा:- सर्वाधिक जनसंख्या वाले सेवा केन्द्र को कोटि 1, द्वितीय को 2, तृतीय को 3 इत्यादि। कोटि निर्धारण के बाद प्रत्येक सेवा केन्द्र का 'कोटि व्युत्क्रम' (प्रथम कोटि संख्या में क्रमश: अन्य कोटि संख्याओं का भाग देकर) ज्ञात किया गया है यथा:- प्रथम केन्द्र का कोटि व्युत्क्रम 1 है तो दूसरे केन्द्र का कोटि व्युत्क्रम 1/2 = 0.5000, तीसरे केन्द्र का कोटि व्युत्क्रम 1/3 = 0.3333... इत्यादि होगा।

तत्पश्चात् सम्पूर्ण केन्द्रों की वास्तविक जनसंख्या के योग को कोटि व्युत्क्रम के योग से विभाजित करके अध्ययन क्षेत्र में विद्यमान प्रथम नगर की प्रत्याशित जनसंख्या निकाली गई है। प्रथम नगर की प्रत्याशित जनसंख्या ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया गया है:-

प्र0ज0 = (Σ व0ज0)/(Σ प्र0क0)

यहाँ :- प्र0ज0 = प्रत्याशित जनसंख्या

व0ज0 = वास्तविक जनसंख्या

प्र0क0 = कोटि व्युत्क्रम (प्रत्याशित कोटि/प्रत्यावर्ती कोटि)

Σ= योग को दिखाता है।

इस सूत्र की सहायता से प्राप्त प्रथम नगर की प्रत्याशित जनसंख्या में 2,3,4,5... इत्यादि कोटियों का भाग देकर अन्य सभी सेवा केन्द्रों की प्रत्याशित जनसंख्या ज्ञात की गई है। तत्पश्चात् प्रत्याशित जनसंख्या व पूर्व ज्ञात वास्तविक जनसंख्या में अंतर ज्ञात किया गया है। इसके बाद क्रमश: वास्तविक जनसंख्या का अन्तर प्रतिशत में तथा प्रत्याशित जनसंख्या का अन्तर प्रतिशत में में ज्ञात किया गया है।

निष्कर्ष:- सारणी:-1 के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि अध्ययन क्षेत्र की वास्तविक व प्रत्याशित जनसंख्या में पर्याप्त अन्तर है। 10 सेवा केन्द्रों क्रमश: दूनी, डिग्गी, बनेठा, देवली, नासिरदा, पचेवर, चाँदसेन, लावा, राजमहल, लांबाहरिसिंह की वास्तविक जनसंख्या प्रत्याशित जनसंख्या से कम है। शेष 78 सेवा केन्द्रों निवाई(ग्रामीण), पीपलू, थनवाला, झिलाई,

नगरफोर्ट, शोप, टोरड़ी, आँवा, नगर, राहोली, डांगरथल, झिराना, दतवास, मंडावर, रानोली, पनवाड़, घाड़, मेहंदवास, सिरोही, नटवारा, पचाला, सोडा, बगड़ी, ककोड़, बमोर, पारड़ी, पनवालिया, चोरु, जामडोली, ललवाड़ी, धुआँकला, सिदड़ा, डारड़ाहिन्द, डारड़ातुर्की, सोहेला, कठमाना, मूंड़िया, मोरला, छान, उनियारा खुर्द, मोर, कांटोली, सुरेली, बूढ़ादेवल, बनथली, डाबरकला, बहार, कल्मण्डा, सिरस, नानेर, चांदली, रजवास, सोनवा, पलाई, साँवरिया, हतौना, थारोली, अवर, मेहरू, चवांदिया, कड़ीला, करेड़ा बुजुर्ग, बीजवार, पराना, हमीरपुर, बावड़ी, निवारिया, झारली, भरनी, दात्तोंब, संथाली, खरेड़ा, सांखना, घाँस, गहलोद, गणेती, मालपुरा(ग्रामीण) की वास्तविक जनसंख्या प्रत्याशित जनसंख्या से अधिक है। इस प्रकार वास्तविक जनसंख्या व प्रत्याशित जनसंख्या का अन्तर समस्त 88 सेवा केन्द्रों में या तो धनात्मक है या ऋणात्मक है जो कि कोटि-आकार नियम के अनुरूप नहीं है। अत: जिले के सेवा केन्द्र कोटि-आकार नियम का पालन नहीं करते हैं।

अध्ययन क्षेत्र के सेवा केन्द्रों में इस प्रकार की अनियमितता के मुख्य कारण सामाजिक, आर्थिक, भौतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, प्रशासनिक एवं राजनीतिक हो सकते हैं। यदि इन सभी कारणों को ध्यान में रखते हुए स्थानिक तंत्र को संगठित किया जाए तो अध्ययन क्षेत्र में कोटि-आकार नियम के अनुरूप सेवा केन्द्रों का विकास किया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची:-

1. Berry, B.J.L. and W.L. Garrison (1958), "Alternative explanation of Urban Rank-Size Relationship'', Annals Association of the American Geography. 48, pp. 83-91, Reprinted in Reaching in `Urban Geography' edited by Myre and Kohn. Central Book Dept. Allahabad, 1967, pp. 230-39.
2. Barai, D.C. (1974), "Rank Size Relationship and Spatial Distribution of Centres in Tamilnadu'', National Geographical Journal of India, National Geographical Society of India, Varanasi, Vol. 20, No. 40, pp. 246-56.
3. Singh, Om Prakash (1971), `'Relationship of Rank-Size and Distribution of Central Places in Uttar Pradesh'', National Geographer, Vol. 6, pp. 19-30.
4. Patil, S.R. (1969), "A Comparative study of Rank-Size Relationship of Urban Settlement of Mysore State", The Indian Geographical Journal, Vol. 44, No. 1-2, pp. 35-43.
5. Mark Jefferson: "The Law of Primate City," The Geographical Review, XXIX No. 2, 1939, pp. 226-32.
6. Berry, B.J.L. : "City-size Distribution and Economic Development", Economic Development and Cultural Change, Vol. IX, No. 4, 1961, pp. 573-588.
7. Martin Beekmen: "City Hierarchies and the distribution of City-Size,Economic Development and Cultural Changes", VI, April 1958, pp. 243-48.
8. Berry, B.J.L. : "Cities as Systems within systems of Cities, Regional Science Association (1964)" 13, pp. 147-163.
9. Zipf, G.K. : Human Behaviour and Principle of Least Efforts Readings, Mass: Addison-Wesley, 1949.
10. Khan, W. and Wanmali, S. : "Impact of Linguistic Reorganisation of states on city-size Distribution, Economic and Socio-Cultural Dimens-ions of Regionalisation", Office of the Registrar General of India 1972, p. 452.
11. Zipf, G.K. : National Unity and Disunity, Bloomington, Ind. Principia Press, 1941.
12. Stewart, J.Q. : "Empirical Mathematical Rules concerning the Distribut-ion and Equilibrium of Population", The Geographical Review, Vol. XXXVII No. 3, 1947, pp. 451-485.
13. Sovani, N.V. : "Trend of Urbanization in India" Paper read at the 39th Annual Confernce of the Indian Economic Association (1958 Bombay), pp. 107-114.
14. Sadasyuk Galina: "Urbanization and the Spatial Structure of Indian Economy", Economic and Socio-Cultural Dimensions of Regionali-zation, Office of the Registrar General India, 1972, p.452.
15. Stewart, Charles T.Jr. : "The Size and Spacing of Cities. The Geographical Review", 1958, pp. 222-245.

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

सारणी:–1: टोंक जिले का कोटि–आकार नियम के अनुसार क्षेत्रीय विश्लेषण

क्र.	सेवा केन्द्र	वास्तविक जनसंख्या	कोटि	कोटि व्युत्क्रम (प्रत्याशित कोटि / प्रत्यावर्ती कोटि)	प्रत्याशित जनसंख्या	वास्तविक जनसंख्या व प्रत्याशित जनसंख्या का अन्तर	वास्तविक जनसंख्या का अन्तर प्रतिशत में	प्रत्याशित जनसंख्या का अन्तर प्रतिशत में
1	दूनी	11295	1	1	69608	.58313	.516.3	.83.77
2	डिग्गी	11070	2	0.5	34804	.23734	.214.4	.68.19
3	बनेठा	8330	3	0.333	23202	.14873	.178.5	.64.1
4	देवली	8007	4	0.25	17402	.9395	.117.3	.53.99
5	नासिरदा	7440	5	0.2	13921	.6481	.87.12	.46.56
6	पचेवर	7332	6	0.167	11601	.4269	.58.23	.36.8
7	चाँदसेन	6828	7	0.143	9944	.3116	.45.64	.31.34
8	लावा	6799	8	0.125	8701	.1902	.27.97	.21.86
9	राजमहल	6722	9	0.111	7734	.1012	.15.06	.13.09
10	लांबाहरिसिंह	6671	10	0.1	6960	.289	.4.344	.4.163
11	निवाई(ग्रामीण)	6642	11	0.091	6328	314	4.7275	4.9621
12	पीपलू	6407	12	0.083	5800	606	9.4636	10.453
13	थनवाला	6143	13	0.077	5354	788	12.836	14.727
14	झिलाई	5758	14	0.071	4972	786	13.651	15.809
15	नगरफोर्ट	5647	15	0.067	4640	1006	17.823	21.689
16	शोप	5482	16	0.063	4350	1131	20.64	26.009
17	टोरड़ी	5453	17	0.059	4094	1358	24.911	33.176
18	आँवा	5445	18	0.056	3867	1577	28.979	40.803
19	नगर	5165	19	0.053	3663	1501	29.069	40.982
20	राहोली	4970	20	0.05	3480	1489	29.972	42.8
21	डांगरथल	4935	21	0.048	3314	1620	32.834	48.884
22	झिराना	4933	22	0.045	3164	1769	35.861	55.91
23	दतवास	4793	23	0.043	3026	1766	36.857	58.371
24	मंडावर	4501	24	0.042	2900	1600	35.562	55.189
25	रानोली	4411	25	0.04	2784	1626	36.878	58.423
26	पनवाड़	4352	26	0.038	2677	1674	38.483	62.556
27	घाड़	4160	27	0.037	2578	1581	38.027	61.361
28	मेहंदवास	4144	28	0.036	2486	1658	40.01	66.693
29	सिरोही	4112	29	0.034	2400	1711	41.628	71.314
30	नटवारा	4086	30	0.033	2320	1765	43.214	76.1
31	पचाला	3981	31	0.032	2245	1735	43.597	77.294
32	सोडा	3960	32	0.031	2175	1784	45.069	82.048
33	बगड़ी	3928	33	0.03	2109	1818	46.3	86.22
34	ककोड़	3921	34	0.029	2047	1873	47.786	91.521
35	बमोर	3864	35	0.029	1988	1875	48.53	94.288
36	पारड़ी	3809	36	0.028	1933	1875	49.237	96.995
37	पनवालिया	3801	37	0.027	1881	1919	50.505	102.04
38	चोरु	3737	38	0.026	1831	1905	50.982	104.01
39	जामडोली	3543	39	0.026	1784	1758	49.624	98.507
40	ललवाड़ी	3534	40	0.025	1740	1793	50.758	103.08
41	धुआँकला	3506	41	0.024	1697	1808	51.576	106.51
42	सिदड़ा	3487	42	0.024	1657	1829	52.471	110.4

43	डारड़ाहिन्द	3429	43	0.023	1618	1810	52.791	111.82
44	डारड़ातुर्की	3398	44	0.023	1582	1816	53.443	114.79
45	सोहेला	3268	45	0.022	1546	1721	52.667	111.27
46	कठमाना	3250	46	0.022	1513	1736	53.439	114.77
47	मूंड़िया	3242	47	0.021	1481	1760	54.318	118.9
48	मोरला	3229	48	0.021	1450	1778	55.089	122.66
49	छान	3224	49	0.02	1420	1803	55.938	126.95
50	उनियारा खुर्द	3210	50	0.02	1392	1817	56.631	130.58
51	मोर	3183	51	0.02	1364	1818	57.12	133.21
52	कांटोली	3181	52	0.019	1338	1842	57.918	137.63
53	सुरेली	3162	53	0.019	1313	1848	58.464	140.76
54	बूढ़ादेवल	3141	54	0.019	1289	1851	58.961	143.67
55	बनथली	3084	55	0.018	1265	1818	58.962	143.68
56	डाबरकला	3070	56	0.018	1243	1827	59.511	146.98
57	सूथरा	3021	57	0.018	1221	1799	59.577	147.38
58	बहार	2991	58	0.017	1200	1790	59.875	149.22
59	कल्म.डा	2959	59	0.017	1179	1779	60.129	150.81
60	सिरस	2947	60	0.017	1160	1786	60.633	154.02
61	नानेर	2937	61	0.016	1141	1795	61.147	157.38
62	चांदली	2910	62	0.016	1122	1787	61.419	159.19
63	रजवास	2827	63	0.016	1104	1722	60.917	155.86
64	सोनवा	2800	64	0.016	1087	1712	61.156	157.44
65	पलाई	2778	65	0.015	1070	1707	61.451	159.41
66	साँवरिया	2762	66	0.015	1054	1707	61.815	161.88
67	हतौना	2756	67	0.015	1038	1717	62.303	165.27
68	थारोली	2746	68	0.015	1023	1722	62.722	168.26
69	अवर	2718	69	0.014	1008	1709	62.884	169.43
70	मेह.	2700	70	0.014	994	1705	63.17	171.52
71	चवांदिया	2663	71	0.014	980	1682	63.185	171.63
72	कड़ीला	2641	72	0.014	966	1674	63.393	173.18
73	करेड़ा बुजुर्ग	2610	73	0.014	953	1656	63.466	173.72
74	बीजवार	2608	74	0.014	940	1667	63.932	177.26
75	पराना	2607	75	0.013	928	1678	64.399	180.89
76	हमीरपुर	2593	76	0.013	915	1677	64.678	183.11
77	बावड़ी	2502	77	0.013	904	1598	63.869	176.77
78	निवारिया	2422	78	0.013	892	1529	63.154	171.4
79	झारली	2386	79	0.013	881	1504	63.072	170.79
80	भरनी	2378	80	0.013	870	1507	63.41	173.3
81	दात्तोंब	2291	81	0.012	859	1431	62.49	166.59
82	संथाली	2118	82	0.012	848	1269	59.921	149.51
83	खरेड़ा	2041	83	0.012	838	1202	58.91	143.37
84	सांखना	2031	84	0.012	828	1202	59.199	145.09
85	घाँस	1937	85	0.012	818	1118	57.722	136.53
86	गहलोद	1628	86	0.012	809	818	50.283	101.14
87	गणेती	1467	87	0.011	800	666	45.461	83.354
88	मालपुरा(ग्रामीण)	1283	88	0.011	791	492	38.348	62.2
	योग	**352233**		**5.06**				

स्त्रोत:- 2011 की जनगणना पर आधारित

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

परसंस्कृतिकरण के प्रभाव से भील महिलाओं की सामाजिक समस्याओं में आई कमी का अध्ययन (धार जिले के विशेष संदर्भ में)

कीर्ति गोस्वामी*

* शोधार्थी (समाजकार्य) डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर सामाजिक विज्ञान विश्वविद्यालय, डॉ. अंबेडकर नगर, महू, जिला इंदौर (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – भील जनजाति महिलायें बदलते सामाजिक परिवेश में सामंजस्य बिठाकर अपना विकास कर पा रही है या नहीं। आधुनिकता के इस दौर में आज भी हम जनजातियों के विकास के लिए उपयुक्त सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का निर्माण नहीं कर पा रहे है। इसके साथ ही यह अध्ययन भील जनजाति पर परसंस्कृतिकरण के नकारात्मक प्रभाव को कम करके सकारात्मक प्रभाव को प्रोत्साहन देने एवं परसंस्कृतिकरण के प्रभाव से भील जनजाति समाज में उत्पन्न समस्या को हल करने तथा इनके विकास हेतु उपयुक्त सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के निर्माण में सहायक सिद्ध हो सकता है।

शब्द कुंजी– परसंस्कृतिकरण और भील महिलाओं की सामाजिक समस्याओं में कमी।

शोध का उद्देश्य–वर्तमान परिदृश्य में धार जिले की भील महिलाओं में परसंस्कृतिकरण के प्रभाव से उनकी सामाजिक समस्याओं में कमी का अध्ययन करना।

प्रस्तावना –भील जनजाति के लोग अपने पंरपरागत व्यवसाय कार्यो को छोडकर शहरों की ओर आकर्षित हो रहे है तथा शहरों की संस्कृति को अपना रहे है। परसंस्कृतिकरण की इस प्रक्रिया से भील जनजाति की महिलायें भी प्रभावित हो हुई है। परसंस्कृतिकरण के प्रभाव से भील जनजातियों के भौतिक व अभौतिक संस्कृतियों में परिवर्तन हो रहा है। शिक्षा के प्रसार, आधुनिक परिवहन और संचार के साधनों में वृद्धि एवं आजीविका उपार्जन के लिए नवीन प्रवृत्तियों से इनके सामाजिक, आर्थिक जीवन में सुधार हुआ है या नहीं।

शोध का चयन–भील जनजाति महिलाओं कावर्तमान परिदृश्य में परसंस्कृतिकरण के प्रभाव से उनकी सामाजिक समस्याओं में कमी आने या न आने, आदि को जानने के लिये शोध अध्ययन का चयन किया गया है।

साहित्य समीक्षा

1. **श्रीवास्तव प्रदीप, (2000)–** ने अपनी पुस्तक **'भारत का जनजातीय जीवन'** के जनजातीय समस्या के अंतर्गत बताया कि जनजातियों की अपनी संस्कृति की एक अलग पहचान है। लेकिन वर्तमान औद्यौगीकरण के बढते प्रभाव ने इनके सांस्कृतिक स्वरूप को छिन्न–भिन्न कर दिया है। औद्योगिकीकरण के कारण ही जनजातीयों में आधुनिकीकरण एवं परसंस्कृतिकरण को अपनाया है। वे अपने परंपरागत मूल्यों एवं मान्यताओं के स्थान नी नवीन मूल्यों, व्यवस्थाओं एवं आधुनिक संस्कृति को अपना रहे है। इनके सांस्कृतिक मूल्यों में काफी गिरावट आई है।

2. **श्रीवास्तव, आर. एन. (2007)–** ने बताया कि जनजाति मानव समाज का एक विस्तृत प्रवर्ग है। जनजातियों की अर्थव्यवस्था एवं जनजातियों की समस्याएँ तथा कृषिऔर वन से जुड़ी समस्याएँ जैसे–जनजातियों के लोगों का बाग व्यक्तियों द्वारा शोषण, ऋणग्रस्तता बंधुआ मजदूरी एवं जनजातिय क्षेत्रों में विकास की मंद गति, पंचवर्षीय योजनाओं एवं उपयोजनाओं के माध्यम से चलाए जा रहे कार्यक्रमों पर प्रकाश डाला गया है।

शोध अध्ययन क्षेत्र – प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु मध्यप्रदेश के भील जनजाति बाहुल्य क्षेत्र धार जिले को उद्देश्यपूर्ण विधि द्वारा चयनित कर अध्ययन क्षेत्र के रूप में सम्मिलित किया गया है। धार जिला मध्यप्रदेश के दक्षिणी–पश्चिमी भाग में स्थित है। यह 22°1' तथा 23° 9'49'' उत्तरी अक्षांश और 14°28' 27'' तथा 15° 42' 43'' पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित है। इस जिले के उत्तर में रतलाम एवं उज्जैन जिला तथा उत्तर पूर्व में इंदौर जिला तथा दक्षिण में बड़वानी जिला व पश्चिम मे अलीराजपुर जिला है। तथा उत्तर पश्चिम में झाबुआ जिला स्थित है। धार जिले का क्षेत्रफल 8153 वर्ग किलोमीटर है। भारत की जनगणना वर्ष 2011 के अनुसार जिले की कुल जनसंख्या 2185793 है इनमें पुरुष जनसंख्या 11,12,725 तथा महिला 10,73,068 है। तथा जिले की जनजातीय जनसंख्या 12,22,814 है। जो कुल जनसंख्या का 55.9 प्रतिशत है। धार जिले की कुल साक्षरता दर 61.57 प्रतिशत है। तथा अनुसूचित जनजाति साक्षरता दर प्रतिशत है। धार जिले में आठ तहसीलें धार, कुक्षी, बदनावर, मनावर, धरमपुरी, गंधवानी, सरदारपुर तथा डही है और 13 विकासखण्ड है। तथा जिले में सर्वाधिक भील जनजाति पायी है।

शोध प्रविधि – प्रस्तुत शोध अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति को आधार मानते हुये निरीक्षण, परीक्षण एवं प्रयोगात्मक शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन का समग्र – मध्यप्रदेश के धार जिले की समस्त भील जनजाति की 300 महिलायें उत्तरदाता अध्ययन का समग्र है।

अध्ययन की इकाई – प्रस्तुत शोध में चयनित गांव की भील जनजाति की महिलायें अध्ययन की इकाई है।

समंक संकलन –1. प्राथमिक स्त्रोत 2. द्वितीयक स्त्रोत

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

प्राथमिक स्त्रोत– प्राथमिक आंकड़ों का संग्रहण निर्मित साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से अध्ययन क्षेत्र में पाकर उत्तरदाताओं से प्रत्यक्ष संपर्क कर साक्षात्कार कर, क्षेत्र का निरीक्षक एवं अवलोकन तथा समूह चर्चा के माध्यम से एकत्र किये गये है। साक्षात्कार अनुसूची में अध्ययन के उद्देश्यों के अनुरूप प्रश्नों का समावेश किया गया है।

द्वितीयक स्त्रोत– प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु द्वितीयक स्त्रोतों का संकलन विभिन्न मानको विभिन्न रिपोर्ट, जनगणना पुस्तिका, जिला सांख्यिकी विभाग धार, राजस्व विभाग, तहसील कार्यालय, विकास खण्ड कार्यालय एवं ज्योतिबा फूले पुस्तकालय, डॉ.बी.आर.अम्बेडकर विश्वविद्यालय, महू (इंदौर), तथा केन्द्रिय पुस्तकालय, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इंदौर, मध्यप्रदेश आदि से द्वितीयक स्त्रोतों का संकलन किया गया है।

तकनीक एवं उपकरण –तथ्यों को एकत्रित करने के लिए अवलोकन पद्धति, समूह चर्चा, अनुसूची, प्रश्नावली साक्षात्कार पद्धति तथा अनौपचारिक वार्तालाप, एस. पी. एस. एस., फोटोग्राफी एवं सारणीयन का उपयोग किया गया है।

सारिणी क्र. – 1: परसंस्कृतिकरण से ग्रामीण जनजातीय महिलाओं में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता आने से संबंधित जानकारी

क्र.	उत्तरदाता	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	हां	60	20
2.	नहीं	240	80
	कुल	300	100

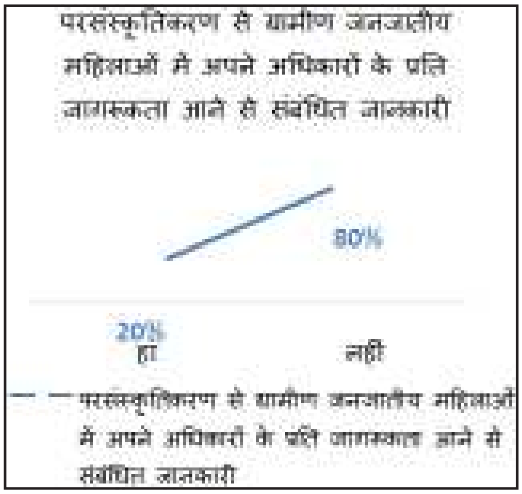

उपरोक्त सारिणी में उत्तरदाताओं से परसंस्कृतिकरण से ग्रामीण जनजातीय महिलाओं में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता आने से संबंधित जानकारी प्राप्त करने पर ज्ञात हुआ कि 300 महिला उत्तरदाताओं में से 60 महिला उत्तरदाताओं ने अपने अधिकारोंके प्रति जागरूक होना बताया जिसका 20 प्रतिशत है जो कि सबसे कम है जबकि 240 महिला उत्तरदाताओं ने परसंस्कृतिकरण से ग्रामीण जनजातीय महिलाओं में अपने अधिकारों के प्रति जागरूक न होना बताया जिसका 80 प्रतिशत है, जो कि सबसे अधिक है। अत: इससे स्पष्ट है कि परसंस्कृतिकरण से ग्रामीण जनजातीय महिलाओं में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता नहीं आई है।

सारिणी क्र. – 2: परसंस्कृतिकरण से सामाजिक समस्याओं में कमी आने से संबंधित जानकारी

क्र.	उत्तरदाता	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	बाल विवाह में कमी	150	50
2.	जातिवाद में कमी	60	20
3.	लैंगिक असमानता में कमी	30	10
4.	अस्पृश्यता में कमी	60	20
	कुल	300	100

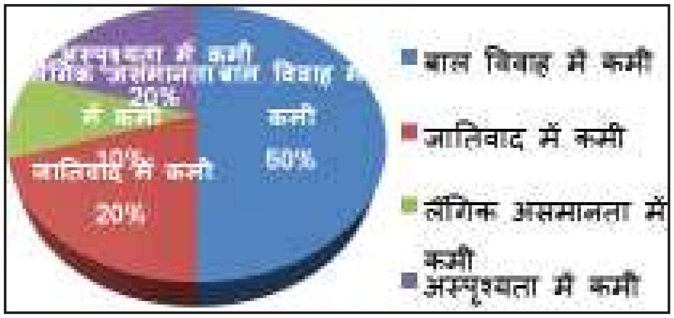

उपरोक्त सारिणी में उत्तरदाताओं से परसंस्कृतिकरण से सामाजिक समस्याओं में कमी आने से संबंधित जानकारी लेने से ज्ञात हुआ कि 300 महिला उत्तरदाताओं में से 150 महिला उत्तरदाता ने बाल विवाह में कमी आना बताया है जिसका 50 प्रतिशत है, जो कि सर्वाधिक है, जबकि 60 महिला उत्तरदाता ने जातिवाद में कमी आना बताया जिसका 20 प्रतिशत है। उसी प्रकार 30 महिला उत्तरदाता ने लैंगिक असमानता में कमी आना बताया जिसका 10 प्रतिशत है जो कि सबसे कम है। जबकि 60 महिला उत्तरदाता ने अस्पृश्यता में कमी होना बताया जिसका 20 प्रतिशत है। अत: इससे स्पष्ट है कि भील समाज में परसंस्कृतिकरण से बाल विवाह जैसी सामाजिक समस्याओं में कमी आई है।

सारिणी क्र. –3: भील महिलाओं के शोषण के प्रमुख कारण को जानने से संबंधित जानकारी

क्र.	उत्तरदाता	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	अशिक्षा	120	40
2.	पुरूष प्रधान	45	15
3.	पारिवारिक तनाव	75	25
4.	जागरूकता का अभाव	60	20
	कुल	300	100

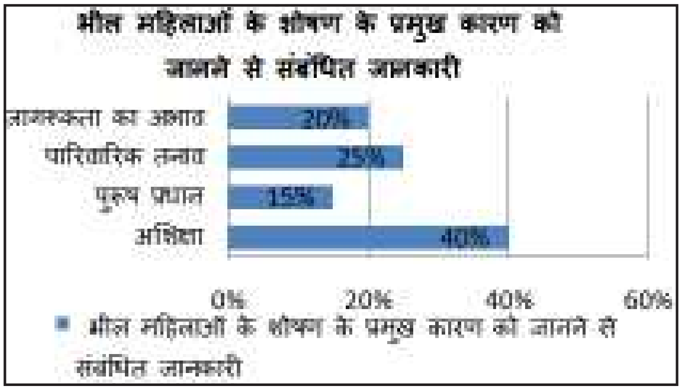

उपरोक्त सारिणी में भील महिलाओं के शोषण के प्रमुख कारण को जानने से संबंधित जानकारी प्राप्त करने पर ज्ञात हुआ कि 300 महिला उत्तरदाताओं

में से 120 महिलाओं ने अशिक्षा को भील महिलाओं के शोषण का कारण बताया जिसका 40 प्रतिशत है जबकि 45 महिलाओं ने उनके समाज में पुरूष प्रधान होना बताया जिसका 15 प्रतिशत है। उसी प्रकार 75 महिलाओं ने पारिवारिक तनाव होना बताया जिसका 25 प्रतिशत है जबकि 60 महिलाओं ने जागरूकता का अभाव बताया जिसका 20 प्रतिशत है। अत: इससे स्पष्ट है कि भील महिलाओं के शोषण का प्रमुख कारण उनका अशिक्षित होना है।

सारिणी क्र. –4: भील महिलाओं के सामाजिक विकास की मुख्य समस्यायें जानने से संबंधित जानकारी

क्र.	उत्तरदाता	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	आर्थिक समस्या	50	16.6
2.	शिक्षा का अभाव	90	30.0
3.	आवागमन के साधनों का अभाव	30	10.0
4.	दहेज प्रथा	25	8.4
5.	यौन शोषण	36	12.0
6.	गरीबी एवं भूखमरी	27	9.0
7.	अस्पृश्यता	12	4.0
8.	योजना का लाभ नहीं	30	10.0
	कुल	300	100

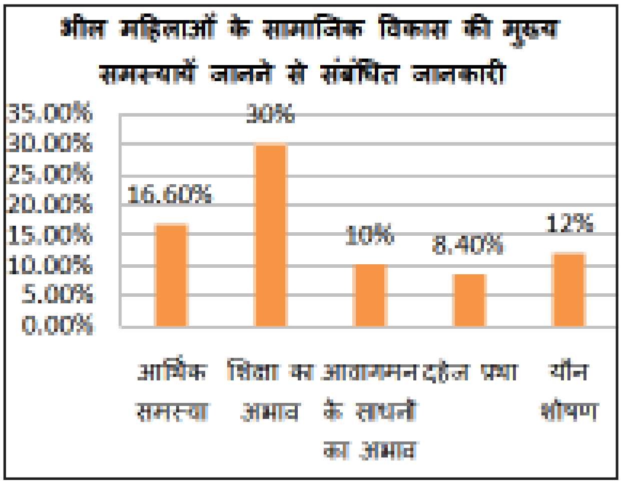

उपरोक्त सारिणी में भील महिलाओं के सामाजिक विकास की मुख्य समस्यायें जानने से संबंधित जानकारी जानने हेतु किये गये सर्वे के अनुसार 300 महिला उत्तरदाता में से 50 महिलाओं ने भील महिलाओं के सामाजिक विकास में आर्थिक समस्या बताई जिसका 16.6 प्रतिशत है जबकि 90 महिलाओं ने उनमें शिक्षा का अभाव होना बताया, जिसका 30 प्रतिशत है। उसी प्रकार 30 महिलाओं ने आवागमन के साधनों का अभाव बताया, जो कि 10 प्रतिशत है जबकि 25 महिलाओं ने दहेज प्रथा का होना बताया, जो कि 8.4 प्रतिशत है। 36 महिलाओं ने यौन शोषण होना बताया जो कि 12 प्रतिशत है जबकि 12 महिलाओं ने अस्पृश्यता बताई जिसका 4 प्रतिशत है, जो कि सबसे कम है तथा 30 महिलाओं ने योजनाओं का लाभ नहीं मिलना बताया जिसका 10 प्रतिशत है। अत: इससे स्पष्ट है कि भील महिलाओं की सामाजिक विकास में आर्थिक समस्या बाधक है।

निष्कर्ष :

1. परसंस्कृतिकरण से ग्रामीण जनजातीय महिलाओं में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता नहीं आई है।
2. भील समाज में परसंस्कृतिकरण से बाल विवाह जैसी सामाजिक समस्याओं में कमी आई है।
3. भील महिलाओं के शोषण का प्रमुख कारण उनका अशिक्षित होना है।
4. भील महिलाओं की सामाजिक विकास में आर्थिक समस्या बाधक है।

सुझाव :

1. ग्रामीण भील महिलाओं में उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करना अति आवश्यक है।
2. परसंस्कृतिकरण के महत्व का प्रचार–प्रसार बडे तादाद पर होना चाहिए जिससे महिलाओं के सामाजिक समस्याओं का समाधान हो सकें।
3. ग्रामीण क्षेत्रों की भील महिलाओं में शिक्षा का प्रचार–प्रसार उच्च स्तर पर होना चाहिए जिससे उनपर होने वाले शोषण को रोका जा सकें।
4. ग्रामीण भील महिलाओं को आर्थिक स्तर पा सक्षम बनाना अति आवश्यक है जिससे उनके सामाजिक विकास में बाधक न बन सकें।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. सोलंकी मांगीलाल, ***'भीलों की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि आलेख'*** व राष्ट्रीय अभिलेखाकार, नई दिल्ली।
2. श्रीवास्तव ए. आर. एन. (2002), ***'जनजातिय संस्कृति'***, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
3. श्रीनिवास, एम, एन, ***'आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन'*** राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. तिवारी शिवकुमार, (1986), ***'मध्यप्रदेश के आदिवासी'***, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
5. उपाध्याय नारायण, ***'निमाड़ का सांस्कृतिक इतिहास'***, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Digital Age Communication Device : A Cross-Functional Analysis

Dr. Khatoon Aftab Kathawala*

*Assistant Professor (Computer Science & Information Technology) Bhupal Nobles' University, Udaipur (Raj.) INDIA

Abstract

Purpose: The purpose of this study is to determine the importance of brand satisfaction, brand trust and brand equity in determining loyalty in the mobile phone purchase. The study argues that price consciousness of a consumer has a moderating impact on the above effects i.e. impact of brand satisfaction, brand trust and brand equity on loyalty components.

Design/methodology/approach: A total of 127 respondents were surveyed on 18 questions related to brand satisfaction, brand trust, brand equity, price consciousness, attitudinal and behavioral loyalty.

Findings: The findings revealed a significant impact of brand trust and brand equity on attitudinal and behavioral loyalty. The study also revealed a strong moderation impact of price consciousness on both the relationships

Research Limitations& Future Directions: Future studies may look at generalizing the findings by conducting studies in other geographies using a larger sample base.

Keywords: price consciousness, attitudinal loyalty, behavioral loyalty, brand trust, brand equity, brand satisfaction.

Introduction - Significant improvements in profits may result from a small increase in loyalty(Huffmire, 2001). Reichheld & Sasser (1990) predicted an increase of 30% to 85% for a 5% increase in loyalty. Because of this impact magnitude of loyalty, there has been an intense research focus in the domain of loyalty over the past three decades. In parallel, it has been noted that a significant way for a company to build and gain competitive advantage is to develop a strong brand (Pitta & Katsanis, 1995). Along same lines, retaining existing customers and making them loyal has been found to be one of the main components of maintaining sustained competitive advantage(Dekimpe, Steenkamp, Mellens, & Abeele, 1997).

Brand Loyalty in Electronic Appliances: Rundle-Thiele & Bennett (2001) noted from their review of loyalty literature that brand loyalty has different measurements for durables, consumables and services market. For durable goods like electronic appliances, the products have a longer useful life and are capable of surviving many uses.

Role of price consciousness: From the very early days of consumer research, the economic paradigm - prevalent in 1940s of consumer behavior, Zaichkowsky(1991) posited that individual buyers seek to maximize their satisfaction considering their tastes and relative prices. According to Zeithaml V. (1988), price is sacrificed to obtain some service or product and lower the perceived price, lower is the perceived sacrifice. This gives a sense of price fairness. However, consumers have been noted to trade off price consciousness with the product purchase risk.

The purpose of this study is to determine the importance of brand satisfaction, brand trust and brand equity in determining loyalty in the mobile phone purchase. Further, the study argues that price consciousness of a consumer has a moderating impact on the above effects i.e. impact of brand satisfaction, brand trust and brand equity on loyalty components.

Literature Review and Hypothesis

Theoretical Background: Expectation-Confirmation theory (Oliver R. , 1999) has formed the bedrock for a large set of loyalty studies. As per the theory, consumers form an initial expectation before the purchase, followed by development of perceptions about the performance of the product after an initial period of consumption. Post the initial consumption, consumer frames an opinion on the level of satisfaction in comparison to their initial expectation. If the initial expectation is met/ exceeded, the consumer is satisfied and hence has a greater likelihood of continuing their association and forming repurchase intention. Resultantly, satisfaction, trust and the perception of brand value that develops after a period of association and consumption is likely to form an antecedent of the decision to repurchase or may hence determine loyalty.

Brand Loyalty: Engel, Kollat, & Blackwell (1982) had defined Brand Loyalty as "preferential, attitudinal and

behavioral response expressed over a period of time by a consumer toward one or more than one brand in a product category". As one of the most widely accepted definitions, Oliver (1997)termed customer loyalty as "a deeply held commitment for rebuying or re-patronizing a preferred product/service consistently in future, leading to a repetitive same-brand or same brand-set purchasing, regardless of situational influences and marketing efforts that may have a potential for causing switching behavior".

Brand Satisfaction: Oliver (1997) defined satisfaction as the customer's fulfilment response on the basis of his judgement that the product or service has provided a pleasurable level of experience. Satisfaction is achieved when the performance of the brand meets the expectation of the customer and when the expectation is not met, it leads to dissatisfaction. Nam, Ekinci and Whyatt (2011) defined brand satisfaction as an evaluative summary of the direct consumption experience that is arrived at on the basis of the discrepancy between the expected and the actual performance of the brand.

Brand Trust: Trust can be understood as the acceptance of vulnerability with a confidence of relying on the other(Lewicki, McAllister, & Bies, 1998). One party's confidence in reliability and integrity of the other party has often been cited as the pre-requisite for development of trust (Morgan & Hunt, 1994). As Chaudhuri & Holbrook (2001) noted, a customer who trusts a brand is more likely to be a loyal customer and will be willing to buy new products, to pay premium for the brand and also share a positive word of mouth with others.

Brand Equity: Brand equity is one of the most important intangible assets possessed by a firm. Aaker(1995) defined brand equity as the set of brand assets and liabilities that are linked to the brand that either adds to or subtracts from the value provided by the product. The assets of a brand include elements like brand loyalty, awareness, perceived quality, association and intangibles like patents and trademarks. Brand equity may be exhibited in the manner customers consider, feel and act towards a brand and may also be reflected in the prices, market share and profitability a brand commands (Kotler & Keller, 2009).

Price consciousness: Price consciousness was first conceptualized as a construct by Lichtenstein, Ridgway, & Netemeyer (1993). They described price consciousness as the "degree to which a customer focuses exclusively on paying low prices". Monroe and Petroshius (1981) conceptualized price consciousness as an individual's differing reluctance to opt for additional features of product if the price differential is too large. Along similar lines, Miyazaki, Sprott, & Manning (2000) termed price consciousness as reflecting the difference in individual's enduring motivation for considering unit price information.

Research Model and Hypothesis: Background literature review suggests that loyalty has strong antecedents in Brand Satisfaction, Brand Trust and Brand Equity. Hence, the following research model is proposed to assess the moderating impact of price consciousness of the customer on the antecedent path of Loyalty.

Figure 1

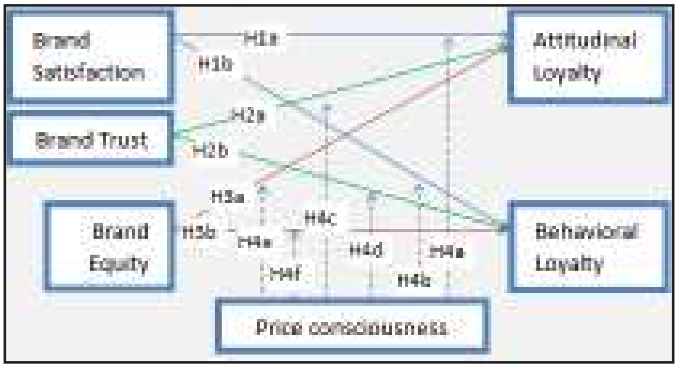

Brand Satisfaction and Loyalty: A large set of past studies have demonstrated a positive relationship between satisfaction and the twin dimensions of loyalty. Brand Satisfaction has been established as a key element of brand loyalty (Oliver R. , 1999). Taylor, Celuch, & Goodwin (2004) suggested that brand satisfaction is an attribute of both behavioral and attitudinal loyalty. Chiou & Droge (2006) found in their study the satisfaction experience by a customer has a positive impact on the exhibited attitudinal loyalty. On the behavioral front, Rauyruen & Barrett (2007) found that satisfaction emerged as a positive predictor of behavioral loyalty. The positive impact of satisfaction on behavioral and attitudinal loyalty was also established by Trif (2013).

Hence, it is hypothesized that:

H1a: *Brand Satisfaction has a positive impact on attitudinal loyalty in purchase of mobile phones*

H1b: *Brand Satisfaction has a positive impact on behavioral loyalty in purchase of mobile phones*

Brand Trust and Loyalty: Trust is a well studied and well established antecedent of loyalty (Chaudhuri & Holbrook, 2001). Trust in a strong brand enables customer to better understand the offering and be better equipped to evaluate the associated perceived risks of purchase and consumption of the offering (Berry, 2000).

Hence, it is hypothesized that:

H2a: *Brand Trust has a positive impact on attitudinal loyalty in purchase of mobile phones*

H2b: *Brand Trust has a positive impact on behavioral loyalty in purchase of mobile phones*

Brand Equity and Loyalty: Pitta and Katsanis (1995) called brand equity a fusion of all the procedures that went into marketing the brand in conjunction with the added value that the brand name contributed to the product. In line with the expectancy theory, a higher brand equity leads the consumer to the perception that the price and quality of the product is of a higher order and that the quality of product is fair for the product(Kim & Hyun, 2011). Hence, as consumer perceive a higher quality for a given price with a

higher brand equity product, they are more likely to purchase the product. Hence, in line with these, the following hypotheses for our study on mobile phone puchase behavior is proposed:

H3a: *Brand Equity has a positive impact on attitudinal loyalty in purchase of mobile phones*

H3b: *Brand Equity has a positive impact on behavioral loyalty in purchase of mobile phones*

Moderating role of Price Consciousness on antecedent path of Loyalty: Price consciousness is an important element influencing purchase behavior. Highly price conscious customers derive emotional value by searching for lower prices (Alford & Biswas, 2002). These customers get a feeling of pride if a lower priced product is found. Hence, a customers' level of price consciousness determines his/her propensity to search for prices.

Customers have been demostrated to be less price conscious in cases of high value purchases(Sinha & Batra, 1999). This is because high value purchases may be considered riskier (risk of going wrong with a purchase – viz. quality, value per unit) than low value purchases.

Basis this, the following are hypothesized:

H4a:*Price consciousness of customer moderates the relationship between Brand Satisfaction and Attitudinal loyalty in purchase of mobile phones*

H4b:*Price consciousness of customer moderates the relationship between Brand Satisfaction and Behavioral loyalty in purchase of mobile phones*

H4c:*Price consciousness of customer moderates the relationship between Brand Trust and Attitudinal loyalty in purchase of mobile phones*

H4d:*Price consciousness of customer moderates the relationship between Brand Trust and Behavioral loyalty in purchase of mobile phones*

H4e:*Price consciousness of customer moderates the relationship between Brand Equity and Attitudinal loyalty in purchase of mobile phones*

H4f:*Price consciousness of customer moderates the relationship between Brand Equity and Behavioral loyalty in purchase of mobile phones*

Research Design: The study employed a quantitative research design. Questionnaire development and sample selection are discussed in the following paragraphs:

Questionnaire Design: The questionnaire had 18 statements covering the dependent, independent and moderating variables of the study besides a set of demographic questions. A 5- point Likert scale was presented for assessment of all statements.

Table (see in last page)

Sample: An electronic survey was conducted using online survey platform for sampling from the mass population that had purchased mobile phones in past. Respondents were asked to rate the survey elements on a 5-point Likert-scale with respect to their last purchased mobile phone. A combined total of 127 responses were received. Of the final responses received 70% were from men and 30% were from women. The age group profile of the respondents is as follows:

Table 1: Age distribution of sample

Age bracket (years)	Percentage of Respondents
21-25 years	7.9%
26-30 years	26%
31-35 years	19.7%
36-40 years	15.8%
41-45 years	12.6%
46-50 years	5.5%
50+ years	12.6%

74% of the participants were employed full-time and 18% were self-employed. The remaining participants were retired, unemployed or students.

Data Analysis: A confirmatory factor analysis was conducted to test the measurement model for construct validity. Test on item loading highlighted that item on all the constructs barring price consciousness had standardized loading of 0.6 and above and were considered good indicators(Bagozzi & Yi, 1988). The standardized loading onone operating variables ofprice consciousness (0.55) was below an ideal acceptable level butabove threshold level of 0.5 as indicated by (Hair et al., 2010).

Table 2: Inter Construct Correlation Matrix

	AL	BL	BS	BT	BE	PC
AL	1					
BL	0.74	1				
BS	0.17	0.20	1			
BT	0.83	0.73	0.40	1		
BE	0.75	0.74	0.31	0.62	1	
PC	-0.23	-0.20	0.05	-0.27	-0.12	1

AL: Attitudinal Loyalty, BL: Behavioral Loyalty, BS: Brand Satisfaction, BT: Brand Trust, BE: Brand Equity, PC: Price Consciousness

Model Fitting: The Confirmatory Factor Analysis (CFA) conducted on the model indicated a good fit to the data. The various statistics related to model fitting are as follows:

Table 3: Model fitting statistics

Measure	Value
chi-square	149.45
Degrees of Freedom (df)	121
RMSEA	0.043
Normed Fit Index (NFI)	0.95
Non-Normed Fit Index (NNFI)	0.98
Comparative Fit Index (CFI)	0.99
Incremental Fit Index (IFI)	0.99
Relative Fit Index (RFI)	0.93
Goodness of Fit Index (GFI)	0.88
Adjusted Goodness of Fit Index (AGFI)	0.84

As evident, the model reported a chi-square/df of 1.24 that was well below (and in line with) the recommended level of chi-square/df< 3 signifying a good fit. The RMSEA value was again in line with the recommendation of <0.05.The NFI, NNFI, CFI, IFI and RFI were well below the

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

recommended threshold of 0.9 as required for a good model fit.GFI and AGFI were below the ideal level of 0.9 but within acceptable levels of goodness of fit.

Hypotheses Testing: Hypotheses testing were carried out using structured equation modelling and regression analysis.

Figure2: t-values of the structural model using LISREL

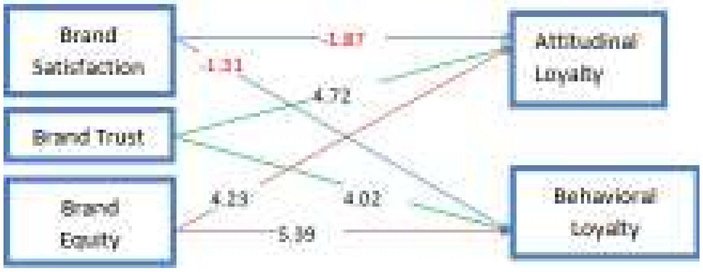

Results of a structured equation modelling analysis did not show a significant relationship between Brand Satisfaction and Attitudinal or Behavioral Loyalty. This was counter to our hypotheses wherein we had expected a positive impact of brand satisfaction on attitudinal and behavioral loyalty. This leads us to not accept the hypotheses H1a/H1b.

Brand Trust was found to have a significant positive impact on Attitudinal and Behavioral Loyalty. This finding was in line with our stated hypotheses. A similar positive impact of Brand Equity was foundon Attitudinal and Behavioral Loyalty. Hence, the hypotheses H2a, H2b, H3a and H3b were accepted on the basis of the results.

Linear regression analysis was carried out to examine the effect of price consciousness on the effect of brand satisfaction, brand trust and brand equity on attitudinal and behavioral loyalty. Centering of data was carried out before carrying out the analysis to rule out the problems of multi-collinearity. Moderation effect was tested for the two elements that had a significant impact on the twin components of loyalty – brand trust and brand equity. As hypothesized, the analysis revealed a significant moderation of the relationship of all the four relationships as reflected in the table below:

Moderation of price consciousness on:	Significa -nce level	Adjusted R-square
brand equity -> attitudinal loyalty	0.031	0.473
brand equity -> behavioral loyalty	0.005	0.389
brand trust -> attitudinal loyalty	0.002	0.428
brand trust -> behavioral loyalty	0.004	0.397

The moderation was found to be significant at <0.05 levels. This leads us to accepting the hypotheses H4c, H4d, H4e and H4f.

Discussion and Implications: This study examined antecedents of attitudinal and behavioral loyalty and the moderating role of price consciousness. The results herein found a strong support for brand trust and brand equity as being indicators for attitudinal and behavioral loyalty.

The deviation from the expected came in the relationship between brand satisfaction and the twin components of loyalty. Though past studies had found a significant impact of satisfaction on attitudinal and behavioral loyalty, the current study results did not highlight a significant finding. Hence even though a consumer may be satisfied with the performance of the current mobile brand, he/she may have a separate brand identified that may have come out with technologically superior product.

Finally, the results revealed a moderation impact of price consciousness on both the components of loyalty. The moderation impact was found for both the significant antecedents of brand equity and brand trust. This was in line with findings of Matzler, Grabner-Kräuter, & Bidmon (2006) who found trust and loyalty relationship to be moderated by price. Price-conscious moderation reflected here is alighned with Sinha & Batra(1999) findings considering that mobile phones fall across price segments. The results of this study has several managerial implications. First, companies involved in electronic products like mobile phones need to remember the role of price-consciousness in creating repeat purchase of their products. Though a consumer may be trusting a brand and have high reference for its brand equity, the same may not translate into repeat purchase of a brand that is not competitive on the price front.

Since, companies can gain several competitive advantages via brand loyal consumers, firms in the space of electronic durables like mobile phones should aspire for higher level of brand trust and brand equity as these have been found to be significant antecedents of both attitudinal and behavioral loyalty.

Limitations and Future Research Directions: Primary limitation of this study was that it was based on a survey questionnaire. There could be variance between survey reporting and actual behavior. Hence, for future studies, simulating an experimental study to test the hypotheses is strongly recommended. Second, confirmation of the study results on a larger sample size not limited to Indian geography is also recommended.

References:-

1. Aaker, D. A. (1991). *Managing Brand Equity: Capitalizing on the Value of a Brand Name.* New York: The Free Press.
2. Alford, B. L., & Biswas, A. (2002). The effects of discount level on price consciousness and sale proneness on consumers' price perception and behavioural intention. *Journal of Business Research, 55*, 775-783.
3. Bagozzi, R. P., & Yi, Y. (1988). On the Evaluation of Structural Equation Models. *Journal of the Academy of Marketing Science, 16*, 74-94.
4. Berry, L. (2000). Cultivating service brand equity. *Academy of Marketing Science, 28(1)*, 128-137.
5. Bodet, G. (2008). Customer satisfaction and loyalty in service: Two concepts, four constructs, several relationships. *Journal of Retailing and Customer*

Services, 15(3), 156-162.

6. Chang, H. H., & Wang, H. W. (2008). The relationships among e-service quality, value, satisfaction and loyalty in online shopping. *European Advances in Consumer Research*.
7. Chang, H., & Wang, H. (2011). The moderating effect of customer perceived value on online shopping behaviour. *Online Information Review, 35(3)*, 333-359.
8. Chaudhuri, A., & Holbrook, M. (2001). The Chain of effects from brand trust and brand affect to brand performance: the role of brand loyalty. *Journal of Marketing, 65(2)*, 81-93.
9. Chiou, J., & Droge, C. (2006). Service Quality, Trust, Specific Asset Investment, and Expertise: Direct and Indirect Effects in a Satisfaction-Loyalty Framework. *Journal of the Academy of Marketing Science, 34(4)*, 613-627.
10. Dekimpe, M., Steenkamp, J.-B., Mellens, M., & Abeele, P. (1997). Decline and variability in brand loyalty. *International Journal of Research in Marketing, 14(5)*, 405-420.
11. Engel, J. F., Kollat, D., & Blackwell, R. D. (1982). *Consumer behavior.* New York Press: Dryden Press.
12. Feick, L., & Lee, J. (2001). The impact of switching cost on the customer satisfaction- loyalty link; mobile phone service in France. *Journal of Service Marketing*, 35-48.
13. Fishbein, M., & Ajzen, I. (1975). *Belief, Attitude, Intention, and Behavior.* Addison-Wesley.
14. Hair, J. F., Black, W. C., Balin, B. J., & Anderson, R. E. (2010). *Multivariate data analysis.* Maxwell Macmillan International Editions.
15. Huffmire, D. (2001). Improving Customer Satisfaction, Loyalty, and Profit: an Integrated Measurement and Management System. *Choice, 38*, 946-947.
16. Kim, J. H., & Hyun, Y. J. (2011). A model to investigate the influence of marketing-mix efforts and corporate image on brand equity in the IT software sector. *Industrial Marketing Management, 40(3)*, 424-438.
17. Lassar, W., Mittal, B., & Sharma, A. (1995). Measuring customer-based brand equity. *Journal of Consumer Marketing, 12(4)*, 11-19.
18. Lewicki, R., McAllister, D., & Bies, R. (1998). Trust and distrust: new relationships and realities. *The Academy of Management Review, 23(3)*, 438-458.
19. Lichtenstein, D. R., Ridgway, N. M., & Netemeyer, R. G. (1993). Price Perceptions and Consumer Shopping Behavior: A Field Study . *Journal of Marketing Research, 30*, 234-245.
20. Matzler, K., Grabner-Kräuter, S., & Bidmon, S. (2006). The value-brand trust-brand loyalty chain: An analysis of some moderating variables. *Innovative marketing, 2(2)*, 76-88.
21. Miyazaki, A. D., Sprott, D. E., & Manning, K. C. (2000). Unit Prices on Retail Shelf Labels: An Assessment of Information Prominence. *Journal of Retailing, 76 (1)*, 93-112.
22. Monroe, K. B., & Petroshius, S. M. (1981). *Buyers' Perceptions of Price: An Update of the Evidence, "Perspectives in Consumer Behavior, eds.,.* Glenview, IL: Scott, Foresman and Company.
23. Morgan, R., & Hunt, S. (1994). The commitment-trust theory of relationship marketing. *Journal of Marketing, 58(3)*, 20-38.
24. Nam, J., Ekinci, Y., & Whyatt, G. (2011). Brand equity, brand loyalty and customer satisfaction. *Annals of Tourism Research,38(3)*, 1009-1030.
25. Oliver, R. (1997). *Satisfaction: A Behavior Perspective on the Consumer.* New York: McGraw-Hill.
26. Oliver, R. (1999). Whence Consumer Loyalty? . *Journal of Marketing.*
27. Pitta, D., & Katsanis, L. (1995). Understanding brand equity for successful brand extensions. *Journal on Consumer Marketing, 12(4)*, 51-64.
28. Rauyruen, P. M., & Barrett, N. (2007). Relationship quality as a predictor of B2B customer loyalty. *Journal of Business Research, 60(1)*, 21-31.
29. Reichheld, F. F., & Schefter, P. (2000). E-Loyalty: Your secret weapon on the web. *Harvard Business Review, 78(4)*, 105-113.
30. Reichheld, F., & Sasser, W. (1990). Zero defections: quality comes to services. *Harvard Business Review, 68(5)*, 105-111.
31. Rundle-Thiele, S., & Bennett, R. (2001). A brand for all seasons? A discussion of brand loyalty approaches and their applicability for different markets. *Journal of Product and Brand Management, 10(1)*, 25-37.
32. Sinha, I., & Batra, R. (1999). The effect of consumer price consciousness on private label purchase. *International Journal of Research in Marketing, 16*, 237-251.
33. Taylor, S., Celuch, K., & Goodwin, S. (2004). The importance of brand equity to customer loyalty . *Journal of Product & Brand Management, 13(4)*, 217-227.
34. Trif, S.-M. (2013). The influence of overall satisfaction and trust on customer loyalty. *Management & Marketing Challenges for the Knowledge Society,8(1)*, 109-128.
35. Wakefiled, K. L., & Inman, J. (2003). Situational Price Sensitivity: The Role of Consumption Occasion, Social Context and Income. *Journal of Retailing, 79(4)*, 199-212.
36. Yoo, B., Donthu, N., & Lee, S. (2000). An examination of selected marketing mix elements and brand equity. *Academy of Marketing Science, 28(2)*, 195-211.
37. Zaichkowsky, J. L. (1991). Consumer Behavior: Yesterday, Today, and Tomorrow. *Business Horizons*, 51-58.
38. Zeithaml, V. (1988). Consumer Perceptions of Price, Quality, and Value: A Means-End Model and Synthesis of Evidence. *Journal of Marketing, 52(3)*, 2-22.

Table

Construct	Operationalizing Statements	Scaled adapted from:
Brand Satisfaction	i. This electronic brand offers good value for the price I paid. ii. Thiselectronic brand provides customers with a good deal. iii.I consider this electronic brand to be a bargain for the benefits I am receiving.	(Lassar, Mittal, & Sharma, 1995)
Brand Trust	i. I trust this brand. ii. I rely on this brand. iii.This is an honest brand. iv.This brand is safe.	(Chaudhuri & Holbrook, 2001)
Brand Equity	i. It makes sense to buy this electronic brand instead of any other brand, even if they are the same. ii. Even if another brand has the same features as this electronic brand, I would prefer to buy this electronic brand. iii.If there is another brand as good as this electronic brand, I prefer to buy this electronic brand. iv.If another brand is not different from this electronic brand in any way, it seems smarter to purchase this electronic brand.	(Yoo, Donthu, & Lee, 2000)
Price consciousness	i. I am willing to make an extra effort to find a low price for electronic appliance. ii. I will change what I had planned to buy in order to take advantage of a lower price for electronic appliance. iii.I am sensitive to differences in prices of electronic appliances.	(Wakefiled & Inman, 2003)
Attitudinal Loyalty	i. I am committed to this brand. ii. I would be willing to pay a higher price for this brand over other brands.	(Chaudhuri & Holbrook, 2001)
Behavioral Loyalty	i. I will buy this brand the next time I buy electronics. ii. I intend to keep on purchasing this brand.	(Chaudhuri & Holbrook, 2001)

✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Impact of Influencer Marketing on Purchase Decision with Special Reference to Restaurant Industry

Ms. Shraddha Sengar* Ms. Anukruti Jain**

*Assistant Professor, Graduate School of Business, Nipania, Indore (M.P.) INDIA
** Scholar, Graduate School of Business, Nipania, Indore (M.P.) INDIA

Abstract - In recent years, influencer marketing has emerged as a prominent strategy for businesses to engage with consumers and influence their purchasing decisions. This research project aims to investigate the impact of influencer marketing on purchase decisions within the context of the restaurant industry. The study will explore how influencer-generated content affects consumer perceptions, attitudes, and ultimately, their decision-making process when it comes to choosing dining options.

Through a combination of qualitative and quantitative research methods, including surveys and interviews, this study will gather data from consumer's perspective only. By analyzing consumer behavior and attitudes towards influencer marketing campaigns, the research aims to provide valuable insights into the effectiveness and of influencer marketing in the restaurant sector.

The findings of this research are expected to contribute to the existing body of knowledge on influencer marketing and its impact on consumer behavior, particularly in the context of the restaurant industry. The results will have practical implications for restaurant owners and marketers, helping them to better understand how to leverage influencer partnerships to attract customers and enhance brand visibility. Additionally, this research will offer recommendations for future strategies and areas of focus for businesses looking to harness the power of influencer marketing in the competitive landscape of the restaurant industry.

Introduction - Over recent years, there has been a noticeable shift in how businesses approach marketing, transitioning from traditional methods to digital strategies. This shift is primarily attributed to advancements in technology and shifts in consumer behaviors. Digital marketing, encompassing various techniques such as influencer marketing, has emerged as a powerful tool for engaging with audiences on a personalized level.

Influencer marketing, a prominent aspect of digital marketing, involves leveraging the popularity and credibility of individuals on social media platforms to endorse products or services. This approach has proven effective in reaching target markets authentically, as influencers connect with their followers in a relatable manner. Businesses carefully select influencers whose values and audience align with their brand, leading to collaborations for content creation. These partnerships often result in sponsored posts, product reviews, or endorsements that resonate with the influencer's audience.

In India, influencer marketing has witnessed significant growth, largely fueled by the widespread usage of digital platforms. The country's vibrant social media landscape provides ample opportunities for brands to connect with consumers through influencer partnerships. As a result, the influencer marketing industry in India has experienced remarkable expansion, with projections indicating continued growth in the coming years.

When it comes to purchase decisions, consumers undergo a process of recognizing their needs, exploring various options, and considering factors such as reviews and recommendations. In this context, influencers wield considerable influence, as their endorsements can sway consumer perceptions and preferences. Authentic experiences shared by influencers contribute to shaping consumer choices, particularly in the restaurant industry.
The restaurant sector, known for its diversity and dynamism, continuously adapts to evolving consumer trends, technological advancements, and sustainability concerns. In India, this industry holds significant economic importance, contributing substantially to the country's GDP. Factors such as urbanization and technological innovation drive growth in the restaurant sector, leading to an ever-expanding market.

Influencers play a pivotal role in the growth of the restaurant industry by reaching wider audiences, sharing genuine experiences, and creating engaging content. Their partnerships with restaurants enable effective marketing strategies, enhanced customer engagement, and the

cultivation of brand loyalty. As a result, influencers contribute significantly to the success and prosperity of the restaurant industry, serving as invaluable allies in an increasingly competitive market landscape.

Influencer Marketing: Influencer marketing is a modern digital advertising approach that uses the popularity of public figures like social media personalities to boost brand visibility. Unlike traditional marketing, it relies on these influential individuals to promote products authentically. Restaurants collaborate with influencers, choosing ones whose values match their target audience. They offer incentives for content creation and share sponsored posts, reviews, or tutorials. Influencers engage with their audience, and brands measure campaign impact to inform future strategies. Building strong relationships with influencers is key for successful marketing. Overall, influencer marketing connects with audiences in a more genuine and effective way than traditional methods.

Image1: From Sushivid Blog

Growth of Influencer Marketing: In 2022, India's influencer marketing industry was valued at over 12 billion Indian rupees, projected to grow by 25% annually for the next five years. By 2026, it's expected to reach around 28 billion rupees. StayBoard18 also observed a notable increase, with the industry surpassing 1,200 crore rupees and projected to grow at a similar rate, nearing 2,800 crore rupees by 2026. The pandemic boosted this growth due to increased digital platform usage, presenting both opportunities and challenges for the industry.

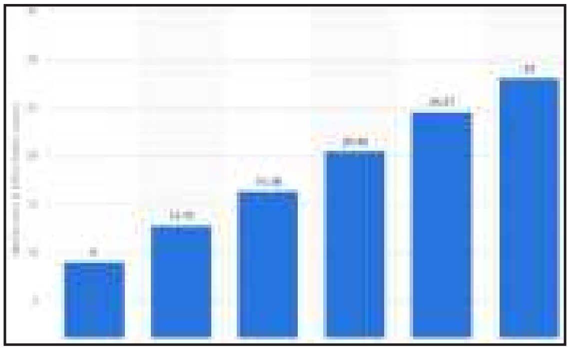

Fig1.1:Market Value of Influencer marketing in India, 2021-2026

Purchase Decision: Purchase decisions happen when individuals or businesses choose one option after considering factors like cost, quality, and brand reputation. Influences include personal preferences, recommendations, advertising, online reviews, budget, and time. Understanding customer decision-making helps businesses tailor marketing, products, pricing, and service, improving satisfaction and profitability.

Image 2: From GreekForGreek

Restaurant/ Food Service Industry: The restaurant and food service industry is diverse, offering various dining options from fast food to upscale experiences, including food trucks and catering services. It serves as a social hub where people gather for meals, offering a wide range of cuisines reflecting cultural diversity.

Recent changes in consumer preferences, technology, and socio-economic factors have impacted the industry. There's a growing demand for healthier food choices, leading restaurants to offer options like plant-based dishes. Technology, such as online ordering platforms, has become integral, along with a focus on sustainability.

In India, the restaurant industry is thriving, expected to reach $79.65 billion by 2028, driven by factors like rising incomes, urbanization, and digital platforms' popularity. Despite challenges like the COVID-19 pandemic, the industry remains resilient, embracing innovations like online ordering and delivery services.

The industry contributes significantly to India's GDP and cultural fabric, providing employment opportunities and culinary exploration. With its rich heritage and diverse offerings, India's restaurant industry presents opportunities for growth and success.

Contribution of Influencer in Growth of Food Service Industry: In recent years, influencers have significantly boosted the food service industry through marketing and brand promotion on social media. They leverage their large followings to increase restaurant visibility, attracting new customers. By sharing authentic experiences and recommendations, influencers build trust and excitement, driving positive word-of-mouth. Platforms like Instagram, YouTube, and TikTok serve as effective channels for showcasing dining experiences, driving customer traffic. Their engaging content tailored to specific interests

enhances restaurant marketing efforts, fostering customer loyalty and contributing to industry growth.

Literature Review

According to a study by Samsudeen Sabraz Nawaz and Mubarak Kaldeen, digital marketing has been shown to greatly increase customer engagement and the likelihood of customers wanting to buy a product.

In a study by Yodi H.P, Widyastuti S, and Noor L.S in May 2020 on The Effects of Content and Influencer Marketing on Purchasing Decisions of Fashion Erigo Company, it was found that influencer marketing increases the visibility of the brand by using influencers and their followers. This affects consumer trust and their decisions to make purchases.

According to the article by P. Ranjith, supervised by Mrs. K.R. Mahalaxmi, titled “A Study on Impact of Digital Marketing in Customer Purchase Decision in Trichy” (March 2016), the conclusion is that currently, digital channels do not significantly alter customers’ opinions about buying a product. However, there is a growing acknowledgment among customers of the potential influence of digital channels on their purchase decisions in the future.

The research conducted by Jignesh Vidani, Dr. Siddharth Das, and Dr. Indra Meghrajani (2023) at L J University highlights that influencers help businesses connect with different social groups within their target audience by sharing their brand message. It is suggested that businesses can maintain a low profile while their message spreads rapidly through influencers.

As per the research conducted by Dr. Mukta Martolia (July-December 2022) on Influencer Marketing as an Emerging Tool for the Success of Local Businesses, particularly in the Hotel and Restaurant Industry, it is stated that teaming up with local social media influencers is highly effective. This is because customers primarily trust local influencers when discovering new hotels and restaurants.

According to the research conducted by Miss Sineemas Chantavoraluk in 2019 on “Factors That Influence Customer Buying Decisions Regarding Social Media Influencers (Food Bloggers)”, the conclusion is that individuals often gather information or seek opinions on products and services they intend to buy from popular social media platforms like Facebook and YouTube.

According to an article titled “The Power of Influencer Marketing for Your Restaurant: Success Stories and Tips” by BuzzyBoost (August 2023), influencer marketing is essential for restaurants. Collaborating with food influencers helps eateries expand their audience, receive positive reviews, and stay competitive. Influencers create engaging content on different platforms, increasing brand visibility and building customer loyalty, leading to repeat business.

In a study named ‘The Effect of Influencer Marketing on Consumers’ Brand Admiration and Online Purchase Intentions: An Emerging Market Perspective’ conducted by Jay P Trivedi and Ramzan Sama The researchers observed the impact of an expert influencer vis-à-vis an attractive celebrity influencer on brand attitude (AB), which further influences brand admiration (BA) and finally resulting in online purchase intentions.

Objective Of The Study:

1. Investigating the impact of influencer marketing on restaurant choices.
2. Assessing how influencer recommendations and excitement influence dining decisions.
3. Exploring trust levels and alignment of values between consumers and influencers.
4. Comparing the effectiveness of influencer marketing versus traditional advertising.
5. Analyzing whether influencer-generated excitement translates into increased restaurant visits and sales.
6. Identifying new strategies for leveraging influencer marketing to attract and retain restaurant customers.
7. Aiming to enhance understanding of influencer marketing’s role in dining decisions for restaurant owners and marketers.

Hypothesis

Hypothesis 1:

H0: Influencer suggestions have no significant relation with consumers’ decisions to dine out at restaurants.

H1: Influencer suggestions have a significant relation with consumers’ decisions to dine out at restaurants.

Hypothesis 2:

H0: There is no significant difference in the impact of influencer endorsements compared to traditional advertisements on food choices.

H1: Influencer endorsements have a greater impact on food choices compared to traditional advertisements

Hypothesis 3:

H0: There is no significant difference in the likelihood of feeling let down after trying a food or restaurant recommended by an influencer compared to those not recommended.

H1: The likelihood of feeling let down after trying a food or restaurant recommended by an influencer is greater than that of trying one not recommended.

Hypothesis 4:

H0: Influencer marketing does not significantly influence food preferences; the perceived hype surrounding a place or food served there is independent of influencer recommendations.

H1: Influencer marketing significantly influences food preferences, contributing to the perceived hype surrounding a place or food served there.

Hypothesis 5:

H0: There is no difference in the likelihood of trying a new food or restaurant whether it is recommended by an influencer or not.

H1: The likelihood of trying a new food or restaurant is higher when it is suggested by an influencer compared to when it is not recommended.

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Research Methodology: The primary data collection method for this study involves a quantitative research survey using a questionnaire to explore the factors influencing consumer purchasing decisions through food bloggers on social media. The survey targets individuals in Indore, aged between young adulthood and adulthood, who regularly watch food reviews on social media platforms. The study aims to understand the relationship between influencer marketing and consumers' decisions to buy food from restaurants, utilizing the chi-square test for analysis. This test examines factors such as suggestions, recommendations, beliefs, expectations, and new options, providing insights into the influence of influencers on consumer behavior. With over 50 respondents, the chi-square test is well-suited for analyzing both small and large datasets in this study.

The Formula for Chi Square is

$X^2 = \Sigma(Oi – Ei)^2/ Ei$

X^2=chisquared

Oi=observedvalue

E• =expectedvalue

Ei=(R.T*C.T)/G.T

R.T: CorrespondingRowTotal

C.T: CorrespondingColumnTotal

G.T: GrandTotal

Calculations

We segmented our analysis into five parts based on key factors affecting consumer purchase decisions. Segment one addresses the null hypothesis (H0) regarding the influence of influencers' recommendations on buying decisions. We examine initial data through a contingency table focusing on suggestions.

Table 1- Contingency of factor Suggestion

Response/ Gender	Male	Female	Row total
Yes	23	30	53
No	10	8	18
Total	33	38	71

Application of Chi Square Test

To calculate the chi-square value, we apply a basic formula that requires determining expected frequencies based on the observed frequencies. Next, we construct a table displaying both expected and tabulated values. These values are derived from the data in Contingency Table 1.

Table 1.1- Calculation of Chi Square Value for Factor 'Suggestion'

Oi	Ei	Oi-Ei	(Oi-Ei)²	(Oi-Ei)²/ Ei
23	24.63	-1.63	2.65	0.10
30	28.36	1.64	2.68	0.09
10	8.36	1.64	2.68	3.11
8	9.63	-1.63	2.65	0.27

Findings: After analyzing the data, we found:

i. Calculated chi-square value: 3.27

ii. Tabulated chi-square value (at 5% significance level, df=1): 3.841

iii. Conclusion: Since the calculated value is less than the tabulated value, we reject the null hypothesis.

Thus, there's a significant relationship between influencer recommendations and purchase decisions in the restaurant industry.

In the second part, we focus on the second null hypothesis (H0).

Our aim is to assess if influencer marketing has a greater impact on consumer purchasing decisions compared to traditional advertisements.

Table 2- Contingency Table for factor Endorsement

Response/ Gender	Male	Female	Row total
Yes	15	10	25
No	10	5	15
May Be	13	18	31
Total	38	33	71

Application of Chi Square Test

We use a formula to calculate chi-square, deriving expected frequencies from observed ones. Then, we create a table with expected and tabulated values using data from Contingency Table 2.1.

Table 2.2- Calculation of Chi Square value for factor 'endorsement'

Oi	Ei	Oi-Ei	(Oi-Ei)²	(Oi-Ei)²/ Ei
15	13.38	**1.62**	**2.62**	**0.19**
10	11.61	-1.61	2.59	0.22
10	8.02	1.98	3.92	0.49
5	6.97	-1.97	3.88	0.56
13	16.59	3.59	12.88	0.56
18	14.40	3.6	12.96	0.9

Findings

From our analysis:

i. Calculated chi-square value: 3.13

ii. Tabulated chi-square value (at 5% significance level, df=2): 5.991

iii. Conclusion: Since the calculated value is less than the tabulated value, we reject the null hypothesis.

Hence, there's a significant relationship between influencer recommendations and purchase decisions in the restaurant industry.

In the third part, we investigate the third null hypothesis (H0).

Our goal is to determine whether customers feel disappointed after trying food or restaurants recommended by influencers.

Table 3- Contingency table for factor Expectation

Response/ Gender	Male	Female	Row total
Yes	16	16	32
No	10	13	23
MayBe	7	9	16
Total	33	38	71

Application of Chi Square Test

We calculate chi-square using a basic formula, deriving

expected frequencies from observed ones. Then, we create a table with expected and tabulated values using data from Contingency Table 1.3.

Table 3.1- Calculation of Chi Square value for factor 'Expectation'

Oi	Ei	Oi-Ei	(Oi-Ei)²	(Oi-Ei)²/ Ei
16	**14.87**	**1.13**	**1.27**	**0.08**
16	17.12	-1.12	1.25	0.07
16	10.69	-0.69	0.47	0.04
13	12.30	0.7	0.49	0.04
7	7.43	-0.43	0.18	0.02
9	8.56	0.44	0.19	0.02

Findings

i. Calculated chi-square: 0.27

ii. Tabulated chi-square (5% significance level, df=2): 5.991

iii. Conclusion: With the tabulated value higher than the calculated one, we reject the null hypothesis.

Hence, there's a significant relationship between influencer recommendations and purchase decisions in the restaurant industry.

Segment Four: Assessing the Impact of Influencer Marketing on Food Preferences. We aim to discern if influencer marketing authentically affects food preferences or if it's just an exaggerated trend.

Table 4 - Contingency table for Hype Created

Response/ Gender	Male	Female	Row total
Yes(hypecreated)	16	13	29
No(hypecreated)	3	4	7
MayBe(hypecreated)	14	21	35
total	33	38	71

Application of Chi Square Test

We calculate chi-square using a basic formula, deriving expected frequencies from observed ones. Then, we create a table with expected and tabulated values using data from Contingency Table 1.4.

Table 4.1- Calculation of Chi Square value for factor 'Hype Created'

Oi	Ei	Oi-Ei	(Oi-Ei)²	(Oi-Ei)²/ Ei
16	**13.47**	**2.53**	**6.40**	**0.47**
13	15.52	-2.52	6.35	0.41
3	3.25	-0.25	0.625	0.19
4	3.74	0.26	0.067	0.18
14	16.26	-2.26	5.11	0.31
21	18.73	2.27	5.11	0.27

Findings

i. Calculated chi-square: 1.83

ii. Tabulated chi-square (5% significance level, df =1): 3.841

iii. Conclusion: Since the tabulated value exceeds the calculated one, we reject the null hypothesis.

Thus, there's a significant relationship between influencer recommendations and purchase decisions in the restaurant industry.

In the fifth part, we explore the fifth null hypothesis (H0).

Our objective is to determine whether customers' purchasing decisions are impacted by influencer suggestions. To accomplish this, we create individual chi-square tables for calculation.

Table 5- Contingency table of factor recommendations for new options

Response/ Gender	Male	Female	Row total
Yes	22	29	51
No	12	8	20
Total	34	37	71

Application of Chi Square Test

We compute chi-square using a basic formula, deriving expected frequencies from observed ones. Then, we create a table with both expected and tabulated values.

Table 5.1 - Calculation of Chi Square value for factor 'Recommendations for New Option'

Oi	Ei	Oi-Ei	(Oi-Ei)²	(Oi-Ei)²/ Ei
22	24.42	-2.42	5.85	0.23
39	26.57	2.43	5.90	0.22
12	9.57	2.43	5.90	0.61
8	10.42	-2.42	5.85	0.56

Findings and conclusion

After constructing the table, here are the key findings:

i. Calculated chi-square: 1.62

ii. Tabulated chi-square (5% significance level, df=1): 3.841

iii. Conclusion: Since the tabulated value exceeds the calculated one, we reject the null hypothesis.

Thus, the likelihood of trying a new food or restaurant is higher when recommended by an influencer compared to when not recommended.

We've analyzed the responses to our two descriptive research questions, and here are the findings:

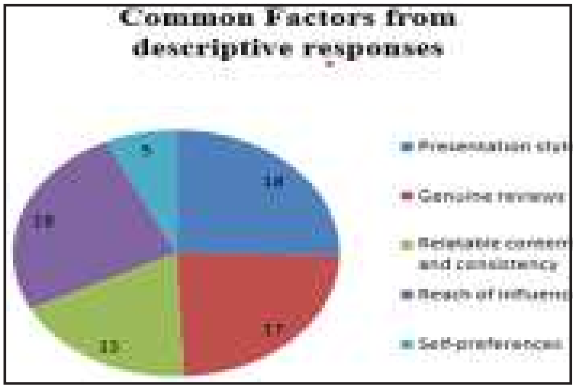

1. In our survey, we asked respondents about their reasons for trusting influencer recommendations for food or restaurants.

- Trust in influencer recommendations for food/ restaurants varies widely.
- Factors influencing trust include personal taste,

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

accurate information, honesty, excitement, local expertise, budget-friendliness, personal recommendations, authenticity, consistency, transparency, viewer comments, influencer reputation, passion, and expertise.

- Trust is influenced by presentation style, genuine reviews, relatable content, and influencer reach.

2. The opinions on the importance of influencer partnerships for food brands and restaurants vary widely.

Views on influencer partnerships vary: Some see them as vital for brand visibility and credibility, while others prioritize food and service quality. Benefits include wider audience reach and enhanced authenticity, but partnerships should align with a focus on high-quality products. Overall, their importance depends on individual perspectives and business strategies.

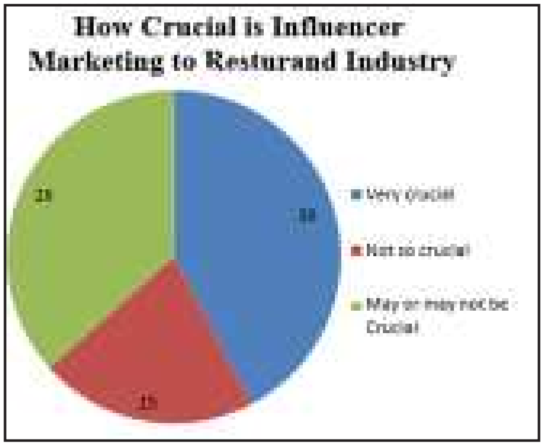

Conclusion: Our research shows that influencer marketing greatly impacts consumer choices in the restaurant industry. People tend to trust and follow influencers like Indori Zayaka, Indore Food Explorer, and Chirayu for restaurant recommendations in places like Indore. Authenticity and relatability are key factors for trusting influencer suggestions. Many prefer dining at places recommended by influencers they trust. Influencer marketing helps restaurants connect with their audience, increase visibility, and attract more customers. It's an important tool for restaurants to grow their businesses.

Recommendations: Based on our research on influencer marketing's impact on restaurant choices, here are some recommendations:

1. Restaurants should find popular influencers in their area or niche who have a large following and are trusted by their target customers.
2. Building genuine relationships with influencers can lead to authentic recommendations and partnerships. Restaurants can reach out to influencers for collaborations, like inviting them to dine or join in promotions.
3. To attract influencers and their followers, restaurants can offer unique dining experiences, special menu items, or exclusive promotions that are share-worthy on social media.

Limitations: Here are the constraints of our research project:

1. We surveyed only 100 people from Indore, which might not represent all consumer views from different regions. Also, the response rate of 71 out of 100 could introduce bias and affect our findings' reliability.
2. We focused solely on consumer perspectives, possibly missing insights from restaurant owners or managers about their experiences with influencer marketing and its impact on their businesses.
3. Our study looked only at the restaurant industry, limiting how much we can apply our findings to other industries. Different industries may have different dynamics with influencer marketing, so a broader analysis could give a more complete view.
4. We mainly asked about consumers' views on influencer marketing, overlooking important factors like food quality, pricing, and overall dining experience. Including these questions could have provided a more comprehensive understanding of influencer marketing's impact on restaurant choices.

Considering these limitations when interpreting our results is crucial, and future studies may need to address them for a more thorough and reliable analysis.

References:-

1. Samsudeen, Sabraz Nawaz & Kaldeen, Mubarak. (2020). Impact of Digital Marketing on Purchase Intention.
2. Yodi H.P, Widyastuti S, Noor L.S (2020). The effect of content and influencer marketing on purchasing decisions of Fashion Erigo company.Vol. 1 No. 2: Dinasti International Journal of Economics, Finance & Accounting.
3. P. Ranjith and Mrs. K.R. Mahalaxmi (2016). A Study on Impact of Digital Marketing in Customer Purchase Decision in Trichy. International Journal for Innovative Research in Science & Technology, Volume 2, Issue 10
4. Jignesh Vidani, Dr. Siddharth Das, Dr. Indra Meghrajan (2023) Journal of Education: Rabindra Bharati University, Vol.: XXV, No.: 6, 2023.
5. Dr. Mukta martolia (2022). Influencer Marketing an Emerging Tool for the Success of Local Businesses with Special Reference to the Hotel and Restaurant Industry. Journal of public relations and advertising Volume 1, Issue 2
6. Sineemas Chantavoral UK (2019). Factors that affect to customer's buying decision towars social media influencers (food bloggers).
7. BuzzyBoost (August 2023) The Power of Influencer Marketing for Your Restaurant: Success Stories and Tips. LinkedIn.
8. Alwan, Maher & Alshurideh, Muhammad. (2022). The effect of digital marketing on purchase intention: Moderating effect of brand equity. International Journal of Data and Network Science.

9. P Trivedi, Jay & Sama, Ramzan. (2020). The Effect of Influencer Marketing on Consumers' Brand Admiration and Online Purchase Intentions: An Emerging Market Perspective. Journal of Internet Commerce. 19.

Webliography:-

1. https://www.researchgate.net/profile/Sabraz-Nawaz-Samsudeen/publication/341670094_Impact_of_Digital_Marketing_on_Purchase_I ntention/links/5ece1b4092851c9c5e5f76fe/Impact-of-Digital-Marketing-on- Purchase-Intention.pdf
2. https://bit.ly/48Ylsfn
3. https://dinastipub.org/DIJEFA/article/view/309
4. https://www.google.com/search?sca_esv=277b a526b581d5c7&q=greek+for+greek+buying+decision+process&tbm=isch&source=lnms&sa=X&ved=2ah UKEwiThcCOzPmEAxV- s1YBHRhqDKAQ0pQJegQICxAB&biw=1366&bih=641&dpr=1#imgrc=A96DLc WmgsDGlM
5. https://www.mcu.ac.in/wp-content/uploads/2022/11/01-jpra-volume-1-issue-2- july-december-2022.pdf
6. https://archive.cm.mahidol.ac.th/bitstream/123456789/3767/1/TP%20EM.020%20 2019.pdf
7. https://www.google.com/search?sca_esv=941af24518045317&sxsrf=ACQVn0_miPfMimRzZG8iynMBoAyieTYwBw:1710433873718&q=purchase+decision+proce ss&tbm=isch&source=lnms&sa=X&sqi=2&ved=2ahUKEwi0qNHblvSEAxUt2DgGHTwVAdAQ0pQJegQIDhAB&biw=1366&bih=641&dpr=1#imgrc=A96DLcW mgsDGlM
8. https://blog.sushivid.com/evolution-of-influencer-marketing-ecommerce-rise-social-media-platforms#:~:text=It%20usually%20starts%20off%20on,place%2C%20product%2 C%20or%20service.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

The Importance of Biodiversity and Human Health

Dr. Nasreen Anjum Khan*

*Assistant Professor (Chemistry) Govt. College, Bichhua , Distt. Chhindwara (M.P.) INDIA

Abstract - Biodiversity promotes all life on Earth, and refers to biological variety in all its forms, from the genetic make up of plants and animals to cultural diversity. People depend on biodiversity in their daily lives, in ways that are not always apparent or appreciated. Human health finally depends upon ecosystem products and services such as availability of fresh water, food and fuel sources which are necessary for good human health and productive livelihoods. Biodiversity loss can have significant direct human health impacts if ecosystem services are no longer adequate to meet social needs. Indirectly, changes in ecosystem services affect livelihoods, income, local migration and, on occasion, may even cause or exacerbate political conflict. Futhermore, biological diversity of microorganisms, flora and fauna provides extensive benefits for biological, health, and pharmacological sciences. Significant medical and pharmacological discoveries are made through greater understanding of the earth's biodiversity. Loss in biodiversity may limit discovery of potential treatments for many diseases and health problems.
Keywords: health, habitats, immune,tolerance, disease, environment.

Introduction - More than half of the world's human population lives in cities. In Europe the figure is 70%, and the degree of urbanization is increasing everywhere [1]. Moreover, people spend more than 90% of their lives in buildings[2], with little physical activity. Sedentary lifestyle has become a serious concern in modern societies and increases the risk of many chronic diseases. Much time spent sitting is associated with diabetes but also with other chronic diseases, including heart disease, cancer, and high blood pressure, both in adults [3] and in adolescents[4]. The situation is particularly alarming among children. Parental fears ('culture of fear'), loss of natural environments in cities, increasingly busy schedules of families, and the ever-increasing time in front of electronic screens are some of the factors involved Biodiversity, ecosystem services, health, microorganism, livelihoods.

Urbanization and other forms of land conversion have caused massive loss of biodiversityaffecting populations and species and their natural habitatswhich is becoming a serious threat to humankind as loss of biodiversity adversely affects vital ecosystem processes related to the supply of food, water, and energy, as well as climate stability [5]. Less attention has been paid to the significance of natural environments on human health and well-being. However, the awareness of the formerly rather abstract concept of biodiversity loss is increasing with the accumulating data of its adverse health effects . The epidemics of chronic inflammatory diseases (allergic and autoimmune diseases, inflammatory bowel disease, and even certain cancers and depression) [6] are prime examples of such effects. Exposure to natural environments enhances physical and mental health as well as cognitive functions[7]. Urban upbringing and dwelling affect neural systems that influence social stress processing in humans and may lead to mental diseases, particularly anxiety and mood disorders.

The current public health challenge: Urban living in built, asphalt-covered environments with little green space, together with the use of processed water and food, may not provide us with the broad microbial stimulation necessary for the development of a balanced immune function. Many chronic diseases, including allergic, autoimmune, metabolic, and psychiatric diseases, are linked to alteration in the commensal microbial communities and the disappearance of ancient vertically and environmentally derived species from these indigenous communities. [8]

Psychiatric diseases and the gut–brain axis have gained much attention in recent years. Consistent evidence from animal models and increasingly also from humans indicates that there is a bidirectional communication between the gut microbiota and the central nervous system (CNS)via neural, endocrine, and immune pathwaysthat further affects brain function and behaviour. For example, stress appears to influence the composition of the gut microbiota, and the microbiota in turn influences stress reactivity. Further evidence of this communication has been obtained from human studies showing that a mixture of probiotics in long-term use alleviated psychological distress

and affected the activity of brain regions that control emotion and sensation processing.[9]This interesting field of research has been comprehensively reviewed elsewhere

The Biodiversity and the role of microbes in immune tolerance: Biodiversity can be broadly defined as the variety of life on Earth. It includes the genes in all living cells, populations, species and their communities, the habitats in which they occur, and the ecosystems they comprise The Biodiversity Hypothesis proposes that reduced contact of people with natural diverse environments, including environmental microbiota, adversely affects the assembly and composition of human commensal microbiotas and may thereby lead to inadequate stimulation of immunoregulatory circuits and ultimately to clinical disease. Ecologists often consider different components of biodiversity, such as species richness, evenness of the abundance, distribution, and diversity of functional traits. At present, we do not know about the relative importance of these features of biodiversity of animals and plants on the composition of the environmental microbiota.

Factors involved in poorly developed or broken immune tolerance: Compelling evidence indicates that a child's early environment, including signals transferred by the mother in prenatal life, can decisively affect the maturation of the immune system and modify the disease risk in later life[10]. Experiments on mice have revealed that maternal TLR signalling (exposure to commensal/ environmental bacteria) has a protective effect against asthma in the progeny. Novel findings suggest that transfer of microbes or microbial components to the child by the mother begins already in pregnancy, indicating that adequate microbial stimulation, not only postnatally, but also prenatally, may be necessary for normal immune development. Important issues in early microbial colonization include also route of birth and breast-feeding Environmental conditions may have effects that extend beyond several generations. The apparent heritability of cardiovascular and metabolic diseases may in fact stem from stressors experienced by (recent) ancestors early in life. Evidence from humans shows that environmental conditions during pregnancy can change the birth characteristics and health in later life, not only of the children but also of the grandchildren. Experimental data from rodents and other animal models have provided further support for such epidemiological findings.

Immigration studies have provided further evidence of the significance of environmental factors in early, even perinatal, life in modulating the disease risk. This immunomodulatory effect has proven to be surprisingly consistent for both chronic inflammatory and psychiatric diseases.[11]Although some adaptation occurs still in adulthood, many studies indicate that immigrants frequently retain the disease susceptibility level typical of their country of origin. The increase in disease risk (when moving from a low- to a high-risk area) often occurs first in the second immigrant generation; important determinants in the disease risk of immigrants are thus the age at immigration and whether a person is a first- or second-generation immigrant.

Dietary factors: Diet affects the composition of the gut microbiota and thereby maintenance of immune tolerance, but can modulate immunity via direct effects on immune cells as well. Altered or poor microbiota (dysbiosis) contributes to compromised epithelial integrity and disrupted tolerance[12]. Among the dietary factors, fat consumption (high-fat diets) profoundly affects gut microbiota composition . The deleterious effects of fat on the immune system and gut barrier may result from the decreased expression of specific peptides such as regenerating islet-derived 3-gamma and phospholipase A2 group-IIin the intestine. Interestingly, dietary factors such as prebiotics (food that promotes the growth of beneficial bacteria in the gut) can abolish these effects. Specific bacteria, e.g. *Akkermansia muciniphila*, may also reverse high-fat diet-induced metabolic disorders and reinforce intestinal immunotolerance

Home and its surroundings: A number of housing and lifestyle characteristics, including the type of dwelling, affect the quantity and diversity of microbial exposure in home environments. Examination of house dust has provided valuable information of the exposure to microbes in different home environments. House dust from urban environment is poor in microbial components and has a different immunomodulatory influence than dust from farm environment[13]. The link between microbial richness of farm/ rural dust and health has indeed been shown in a number of studies. In addition to house dust, drinking water, milk, pets, unprocessed food, as well as activities in nature are examples of everyday microbial exposures. Everything that we eat, Living in rural areas with agricultural and forested land is well known to confer protection against inflammatory diseases, but the protective factors at the molecular level are still only partly understood. A recent study showed that land-use around the home (within a radius of 3 km) affects the composition of the skin microbiota; classes of proteobacteria were more frequent in environments with more agricultural land and forests [14, 15]Contrasting healthy versus atopic individuals, the same study showed higher generic diversity of gammaproteobacteria on the skin of healthy than atopic individuals, and that the relative abundance of one gammaproteobacterial genus, *Acinetobacter*, correlated positively with the (unstimulated) expression of anti-inflammatory peripheral blood mononuclear cells (PBMC) in healthy individuals and conferred protection against allergic responses in mice. rink, touch, and breathe is reflected in our commensal communities .

Antibiotics: Recent evidence from humans indicates that the use of the most common antibiotics, â-lactams and macrolides, not only disturbs the composition of the gut microbiota (by decreasing its diversity and reducing the

number of core taxa, but can also affect many metabolic functions, including sugar metabolism and synthesis and degradation of intestinal/colonic epithelium components. Re-establishment of the gut microbiota often takes months after the cessation of the antibiotic use, although there are great variations between different antibiotics; their effect on the gut microbiota is dependent on the properties of the antimicrobial agent, the structure and function of the microbial community, and the presence of resistance genes in it Long-term metabolic effects of these changes in the gut community still remain largely unknown.

Conclusion: Biologically diverse environments modify and enrich our indigenous microbiota, which are fundamental for the development and maintenance of a balanced/well-functioning immune system. Changes in microbiota on skin and mucosal surfaces are linked to dysfunction in the regulatory network and broken tolerance. Dysbiosis in the gut microbiota has been associated, not only with immune-mediated intestinal diseases, but also Chronic inflammatory diseases in the context of increasing loss of biodiversity and increasing prevalence of sedentary lifestyle were the topics of the 60th Anniversary Yrjo Jahnsson Symposium. The following summary statements Meredith many extra-intestinal inflammatory conditions [16,17].

1. The epidemics of chronic inflammatory disease are largely the result of reduced exposure to natural environments, sedentary lifestyle, and changed diet. Naturally biodiverse environments include ancient micro-organisms important for human health.
2. Environmental biodiversity is reflected in the diversity of human skin and mucosal microbiota. Diversity is a central element of healthy microbiota in reducing the risk of chronic inflammatory diseases.
3. National Health and Nature Programmes (action plans) are needed to increase the public awareness of nature's health effects, and to affect attitudes and orientation. It is especially important to target children and adolescents; both the environment and the youngsters would benefit.
4. Politicians and stakeholders in urban planning must become more aware about the effects of natural environments on human health. People are not moving in masses back to the countryside, but elements of country life should be moved to cities, including measures that increase the diversity of microbiota.

References:-

1 Dye C. Health and urban living. Science. 2008; 319:766–69.
2 Evans G, Mitchell J. When buildings don't work: the role of architecture in human health. J Environm Psychol. 1998;18:85–94.
3 George E, Rosenkranz R, Kolt G. Chronic disease and sitting time in middle-aged Australian males: findings from the 45 and up study. Int J Behav Nutr Phys Act. 2013;10:20.
4 Kriska A, Delanhanty L, Edelstein S, Amodei N, Chadwick J, Copeland K, et al.
5 Sedentary behavior and physical activity in youth with recent onset of type 2 diabetes. Pediatrics. 2013;13:e850–6.
6 Louv R. Last child in the woods. London: Atlantic Books; 2009
7 Louv R. The nature principle. NC: Chapel Hill: Algonquin Books of Chapel Hill; 2012.
8 Yang W, Dietz T, Kramer DB, Chen X, Liu J. Going beyond the Millennium Ecosystem Assessment: an index system of human well-being. Plos One. 2013;8:e64582.
9 Bratman G, Hamilton P, Daily G. The impacts of nature experience on human cognitive function and mental health. Ann NY Acad Sci. 2012;1249:118–36.
10 Rook GA. Regulation of the immune system by biodiversity from the natural environment: an ecosystem service essential to health. Proc Natl Acad Sci. 2013;110:18360–7.
11 Von Hertzen L, Hanski I, Haahtela T. Biodiversity loss and inflammatory diseases are two global megatrends that might be related. EMBO Rep. 2011;12:1089–93.
12 Haahtela T, Holgate S, Pawankar R, Akdis C, Benjaponpital S, Caraballo L, et al. The biodiversity hypothesis and allergic disease: a statement paper of the World Allergy Organization. World Allergy Organ J. 2013;6:3.
13 Rook GA, Raison C, Lowry C. Can we vaccinate against depression? Drug Discov Today. 2012;17:451–8.
14 Kolb H, Mandrup-Poulsen T. The global diabetes epidemic as a consequence of life-style induced low-grade inflammation. Diabetologia. 2010;53:10–20.
15 Jussila A, Virta LJ, Salomaa V, Mäki J, Jula A, Färkkilä MA. High and increasing prevalence of inflammatory bowel disease in Finland with a clear North-South difference. J Crohns Colitis. 2013;7:e256–62.
16 Karjalainen E, Sarjala T, Raitio H. Promoting human health through forests: overview and major challenges. Environment Health Prev Med. 2010;15:1–8.
17 Lederbogen F, Kirsch P, Hahhad L, Streit F, Tost H, Schuch P, et al. City living and urban upbringing affect neural social stress processing in humans.Nature 2011;474:498–501.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Impact of Sodium Chloride and Sodium Carbonate on Photocatalalytic Degradation of Azure B dye.

Dr. David Swami*

***Department of Chemistry, S.B.N. Govt. P.G. College, Barwani (M.P.) INDIA**

Abstract - Azure B is a Phenothiazine class of dye in which an atom of sulphur replacing oxygen in heterocyclic ring. They have color range from green to blue and have been used for coloring paper, tannin mordant cotton, silk and leather. The decoloration and mineralization of the Azure B dye under condition of visible light and TiO_2 photocatalyst was studied. The textile waste-water from dyeing process normally contains considerable amount of chloride and carbonate ions. These chemicals are often used in textile processing operations for adjusting the P^H of the dye bath It is a important to study the effect of chloride and carbonates on the treatment efficiency. This study confirms that the presence of Na Cl and Na_2CO_3 led to inhibition of the degradation process.

Introduction - Synthetic dyes have quickly replaced the traditional natural dyes. They have offered a vast range of colors, impact better properties upon the dyed materials and cost less. [1] Synthetic dyes are prepared from aromatic compounds. Dyes pollutants from the textile industry are an important source of environment contamination . They enter the equatic ecosystem and can create various environmental hazards [2] Advanced exidation process oxidize and mineralize the pollutants into their simple forms, which are easily biodegradable and so it facilitating their treatments in conventional process[3]. Waste water contains not only organic contaminants but inorganic anions such as chloride and carbonate anions are also present in industrial wastewater.[4] The presence of NaCl and Na_2CO_3 led to inhibition of photodegradation process.

Experimental: Azure B was obtained from Loba Chemie. Photo catalyst TiO_2 was obtained from the S.D. Fine Company. All Solutions were prepared in doubly distilled water. Photo catalytic experiments were carried out with 50 ml of dye solution ($3.8x10^{-5}$ mol dm^{-3}) using 300mg of TiO_2 photo catalytic under exposure to visible irradiation in specially designed double-walled slurry type batch reactor vessel made up of Pyrex glass (7.5 cm height, 6 cm diameter) surrounded by thermostatic water circulation arrangement to keep the temperature in the range of 30 ± 0.3^0c. Irradiation was carried out using 500 w halogen lamp surrounded by aluminum reflector to avoid irradiation loss. During photo catalytic experiments after stirring for 10 min slurry composed of dye solution and catalyst was placed in dark for ½ h in order to establish equilibrium between adsorption and desorption phenomenon of dye molecule on photo catalyst surface. Then slurry containing aqueous dye solution and TiO_2 was stirred magnetically to ensure complete suspension of catalyst particle while exposing to visible light. At specific time intervals aliquot (3ml) was withdrawn and centrifuges for 2 min at 3500 rpm to remove TiO_2 particle from aliquot to assess extent of decolourisation photo metrically. Changes in absorption spectra were recorded at 480 nm on double beam UV-Vis, spectrophotometer (Systronic Model No. 166) Intensity of visible radiation was measured by a digital luxmeter (Lutron LX 101). pH of solution was measured using a digital pH meter

Results and Discussion:

Effect of NaCl and Na_2CO_3: The textile wastewater from dyeing process normally contains considerable amount of CO_3^{2-} and Cl^- ions. These chemicals are often used in textile processing operations for adjusting the pH of the dye bath[5]. As can be seen from Table 3.5 and Fig. 3.7, an increase in concentration of Cl^- from 2.0×10^{-6} mol dm^{-3} to 14.0×10^{-6} mol dm^{-3}, resulted in reduction of rate constant from 3.91×10^{-4} s^{-1} to 1.84×10^{-4} s^{-1}, which with same CO_3^{2-} ion concentration variation, the rate constant decreased from 3.64×10^{-4} s^{-1} to 2.87×10^{-4} s^{-1}. The cause of inhibition was due to the ability of these ions to act as hydroxyl radical (OH) scavengers. These ions might also block the active sites on the TiO_2 surface thus deactivating the TiO_2 towards the dye and intermediate molecules [6].

$TiO_2 \rightarrow TiO_2\ (h^+_{VB},\ e^-_{cb})$ (1)

$Cl^- + {}^{\bullet}OH \rightarrow Cl^{\bullet} + OH^-$ (2)

$Cl^- + h^+_{VB} \rightarrow Cl^{\bullet}$ (3)

$Cl^{\bullet} + Cl^- \rightarrow Cl_2^{-\bullet}$ (4)

${}^{\bullet}OH + CO_3^{2-} \rightarrow OH > + CO_3^{\bullet -}$ (5)

${}^{\bullet}OH + HCO_3^- \rightarrow H_2O + CO_3^{\bullet -}$ (6)

Table: Effect of NaCl and Na_2CO_3: [AB] = 3.0 × 10^{-5}mol dm^{-3}, TiO_2 = 200 mg/100 mL, pH = 9.0, Light intensity = 25 × 10^3 lux, Temperature = 30 ± 0.3 ºC.

[Salt] × 10^6 $mol^{-1}dm^3$	**NaCl**		**Na_2CO_3**	
	$k×10^{-4}s^{-1}$	**$t_{1/2}×10^3s^{-1}$**	**$k×10^{-4}s^{-1}$**	**$t_{1/2}×10^3s^{-1}$**
0.0	4.10	1.69	4.10	1.69
2.0	3.91	1.77	3.64	1.90
4.0	3.33	2.08	3.53	1.96
6.0	3.21	2.15	3.49	1.98
8.0	2.91	2.38	3.41	2.03
10.0	2.80	2.47	3.22	2.15
12.0	2.61	2.65	3.00	2.31
14.0	1.84	3.76	2.87	2.41

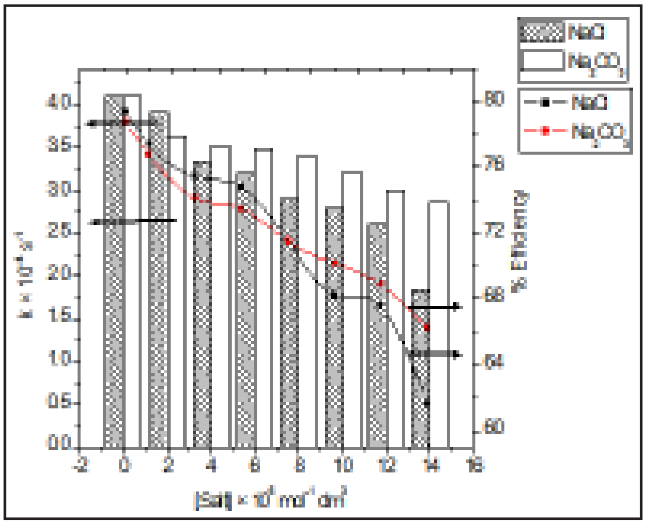

Fig: Effect of Salt NaCl and Na_2CO_3

$$^{\bullet}OH + HCO_3^- \rightarrow H_2O + CO_3^{\bullet -}$$

Table: Effect of NaCl and Na_2CO_3: [AB] = 3.0 × 10^{-5}mol dm^{-3}, TiO_2 = 200 mg/100 mL, pH = 9.0, Light intensity = 25 × 10^3 lux, Temperature = 30 ± 0.3 ºC.

[Salt] × 10^6 $mol^{-1}dm^3$	**NaCl**		**Na_2CO_3**	
	$k×10^{-4}s^{-1}$	**$t_{1/2}×10^3s^{-1}$**	**$k×10^{-4}s^{-1}$**	**$t_{1/2}×10^3s^{-1}$**
0.0	4.10	1.69	4.10	1.69
2.0	3.91	1.77	3.64	1.90
4.0	3.33	2.08	3.53	1.96
6.0	3.21	2.15	3.49	1.98
8.0	2.91	2.38	3.41	2.03
10.0	2.80	2.47	3.22	2.15
12.0	2.61	2.65	3.00	2.31
14.0	1.84	3.76	2.87	2.41

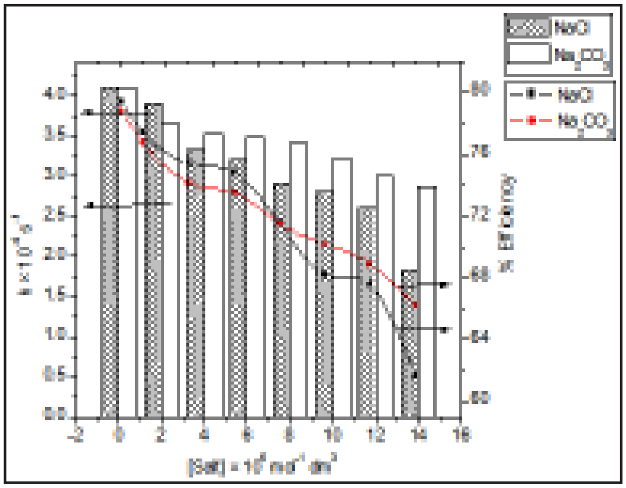

Fig: Effect of Salt NaCl and Na_2CO_3

Conclusion: This study confirms that photo assisted mineralization of Azure B dye can be effectively carried out utilizing TiO_2 with visible light. The presence of inorganic salts such as NaCl and Na_2CO_3 hinders the photocatalytic degradation of Azure B dye.

Acknowledgment: Author acknowledgement the support and laboratory facilities provided by Chemistry Department S.B.N. Govt. P.G. College, Barwani (M.P.) My sincere thanks to the technical staff of UGC-DAE, CSR, Indore for their kind co-operation and help offered during the work period.

References:-

1. Gulrajani M. L., *Introducation to Natural Dyes, Indian Institute of Technology, New Delhi,* (**1992**).
2. Lodha S., Vaya D., Ameta Rakshit and Panjabi P. B., *J. of the Serbian Chem.Soc.* 73 **(2008)** 631.
3. Alinsafi A., Evenou F., Abdulakarim E. M., Zahraa M. N. P., Benhammou A., Nejrreddire and Yaacoubi A., *Dyes and Pigments A*, 22 **(2007)** 439.
4. Goswami Y., *Advan. in Solar Energy,* 10 **(1995)** 735.
5. Mohammoodi N. M., Arami M., Limall N. and Tabrizi N. S., *J. Chem. Eng.,* 112 **(2002)** 191.
6. Sokmen M. and Ozkan K., *J. Photochem. Photobiol., A: Chem.,* 147 **(2002)** 77.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Challenges and Opportunities for Implementing NEP 2020 in the Higher Education Sector: A Comprehensive Analysis

Gajendra Kumar Singh* Dr. Neeraj Jaiswal**

*Assistant Professor (Political Science) Govt. College, Jaithari, Distt. Anuppur (M.P.) INDIA
** Assistant Professor (History) Govt. College, Jaithari, Distt. Anuppur (M.P.) INDIA

Introduction - Brief overview of the National Education Policy (NEP) 2020: The National Education Policy (NEP) 2020 is a comprehensive framework for transforming India's education system from early childhood care and education to higher education. The policy aims to make India a global knowledge superpower by providing equitable access to quality education for all learners, fostering creativity and innovation, promoting multilingualism and cultural diversity, and ensuring holistic development of individuals and society.

Importance of higher education in the context of NEP 2020: Higher education plays a vital role in the development of human capital, scientific and technological advancement, social and cultural progress, and economic growth of a nation. In the context of NEP 2020, higher education is envisioned to achieve the following goals:

i. To increase the Gross Enrolment Ratio (GER) in higher education, including vocational education, from 26.3% (2018) to 50% by 2035, with a focus on increasing access and participation of socially and economically disadvantaged groups (SEDGs).

ii. To provide broad-based, multidisciplinary, and holistic education across disciplines and fields, with flexible curricula, creative combinations of subjects, integration of vocational education, and multiple entry and exit options.

iii. To develop a culture of research and innovation among students and faculty, through the establishment of a National Research Foundation, dedicated research funding, interdisciplinary research centres, and academic-industry collaboration.

iv. To ensure the quality and excellence of higher education institutions (HEIs) through a light but tight regulatory framework, accreditation and ranking systems, institutional autonomy and accountability, and internationalization and global engagement.

v. To enhance the professional development and motivation of faculty and staff, through merit-based recruitment, career progression, continuous learning opportunities, and positive work environments.

vi. To revitalize the role of higher education in social and community service, through the promotion of constitutional values, ethics, human rights, gender sensitivity, environmental awareness, and social responsibility among learners and educators.

Recognition of opportunities that arise from the policy: Despite the challenges, NEP 2020 also offers several opportunities for transforming and improving the higher education sector, such as:

i. The opportunity to create a more inclusive and equitable higher education system, which caters to the diverse needs, interests, and aspirations of all learners, especially SEDGs, and ensures their access, retention, and success in higher education.

ii. The opportunity to provide a more flexible and learner-centric higher education system, which allows learners to choose their own learning paths and programs, and enables them to pursue their passions and potentials across disciplines and fields.

iii. The opportunity to foster a more innovative and creative higher education system, which nurtures a culture of research and innovation among students and faculty, and encourages them to solve complex problems and generate new knowledge and solutions.

iv. The opportunity to enhance the quality and excellence of HEIs, which empowers them to achieve high standards of teaching and learning, research and innovation, and governance and management, and enables them to benchmark themselves against global peers and competitors.

v. The opportunity to develop a more professional and motivated higher education workforce, which attracts and retains the best talent, and provides them with continuous learning and growth opportunities, and positive work environments.

vi. The opportunity to strengthen the role of higher education in social and community service, which instils a sense

of civic and social responsibility among learners and educators, and enables them to contribute to the social and cultural development of the nation.

4. **Key Provisions of NEP 2020:** This section elaborates on the key provisions of NEP 2020 that are relevant for the higher education sector, and discusses their implications and challenges for implementation. It covers the following aspects:

1. **Structural changes in higher education:** The NEP 2020 proposes to restructure the higher education system in India, and to make it more flexible, diverse, and inclusive. Some of the major structural changes are:

i. The NEP 2020 introduces a 4-year undergraduate degree with multiple exit options, such as a certificate after one year, a diploma after two years, a bachelor's degree after three years, and a bachelor's degree with research after four years. This is expected to provide more choice and flexibility to the students, and to reduce the dropout rates in higher education.

ii. The NEP 2020 proposes a credit transfer system, and an academic bank of credits, which will allow the students to transfer their credits across institutions and programmes, and to resume their education at any stage of their life. This is expected to enhance the mobility and continuity of the students, and to enable lifelong learning.

iii. The NEP 2020 envisages the creation of multidisciplinary education and research universities (MERUs), which will be the highest level of higher education institutions, and will offer education and research across disciplines and fields. These institutions will aim to achieve the highest standards of excellence, and will serve as models for other institutions.

iv. The NEP 2020 proposes to consolidate the higher education institutions into large, well-resourced, and multidisciplinary universities and colleges, and to phase out the single-stream and standalone institutions. This is expected to improve the quality and efficiency of the higher education system, and to foster collaboration and synergy among institutions.

2. **Pedagogical shifts and curriculum reforms:** The NEP 2020 emphasizes the need for pedagogical shifts and curriculum reforms in higher education, and advocates for a learner-centric, flexible, and experiential mode of education. Some of the major pedagogical shifts and curriculum reforms are:

i. The NEP 2020 proposes to revise the curriculum of higher education programmes to include contemporary and emerging subjects, such as artificial intelligence, data science, and environmental studies, and to align them with the national and global needs and demands. This is expected to make the curriculum more relevant and responsive to the changing world, and to equip the students with the necessary skills and competencies.

ii. The NEP 2020 promotes the use of technology and digital platforms to enhance the quality and accessibility of education, and to enable blended and online learning. It also proposes to create a National Educational Technology Forum (NETF) to facilitate the adoption and integration of technology in education, and to create a National Digital Educational Architecture (NDEAR) to provide a digital infrastructure for education.

iii. The NEP 2020 advocates for a learner-centric, flexible, and experiential mode of education, and encourages the use of innovative and interactive pedagogies, such as project-based learning, problem-based learning, and inquiry-based learning. It also proposes to reduce the curriculum load, and to focus on the core concepts and essential skills.

iv. The NEP 2020 supports the development of a multilingual and multicultural education, and proposes to offer higher education programmes in multiple languages, including the regional languages, the classical languages, and the foreign languages. It also proposes to internationalize the higher education system, and to facilitate the mobility and exchange of students and faculty across the world.

Challenges in Implementing NEP 2020: The NEP 2020 is an ambitious and visionary policy that aims to transform the higher education sector in India. However, the implementation of the policy faces several challenges, such as a shortage of trained teachers, inadequate infrastructure, lack of funds, and resistance to change. This section discusses the major challenges in implementing NEP 2020 under three categories: structural, pedagogical, and infrastructural.

A. Structural Challenges: The structural challenges refer to the difficulties in reorganizing and restructuring the higher education system in accordance with the NEP 2020. Some of the major structural challenges are:

1. Integration of vocational education: The NEP 2020 proposes to integrate vocational education into the mainstream higher education system, and to provide multiple entry and exit options for the students. This is expected to enhance the employability and skill development of the students, and to reduce the stigma associated with vocational education. However, this poses several challenges, such as:

i. The lack of adequate and qualified vocational teachers and trainers, who can impart both theoretical and practical knowledge to the students.

ii. The lack of coordination and collaboration among the various stakeholders, such as the higher education institutions, the industry, the government, and the civil society, who are involved in the design, delivery, and assessment of vocational education.

iii. The lack of standardization and quality assurance of the vocational courses and programmes, which may vary in terms of curriculum, duration, and certification across the institutions and regions.

2. Implementation of the multidisciplinary approach: The NEP 2020 advocates for a multidisciplinary approach

to higher education, and envisages the creation of multidisciplinary education and research universities (MERUs), and the consolidation of higher education institutions into large, well-resourced, and multidisciplinary universities and colleges. This is expected to foster academic excellence, innovation, and diversity in the higher education system. However, this poses several challenges, such as:

i. The resistance and reluctance of the existing higher education institutions, especially the single-stream and standalone institutions, to merge or collaborate with other institutions, and to adopt a multidisciplinary curriculum and pedagogy.

ii. The difficulty in ensuring the quality and relevance of the multidisciplinary programmes and courses, which may require a balance between breadth and depth, and a alignment with the national and global needs and demands.

iii. The complexity and cost of managing and administering the large, multidisciplinary universities and colleges, which may require a high degree of autonomy, accountability, and transparency.

B. Pedagogical Challenges: The pedagogical challenges refer to the difficulties in changing and improving the teaching and learning processes and outcomes in the higher education system in accordance with the NEP 2020. Some of the major pedagogical challenges are:

1. Faculty training and development: The NEP 2020 emphasizes the importance of faculty training and development, and proposes to establish a National Mission for Mentoring, and a National Professional Standards for Teachers, to enhance the quality and competence of the teachers and professors. This is expected to improve the pedagogical skills, subject knowledge, and research capabilities of the faculty. However, this poses several challenges, such as:

i. The shortage and uneven distribution of qualified and experienced faculty, especially in the rural and remote areas, and in the emerging and interdisciplinary fields.

ii. The lack of motivation and incentives for the faculty to participate in the training and development programmes, and to update their knowledge and skills on a regular basis.

iii. The lack of effective and efficient mechanisms for the evaluation and feedback of the faculty performance, and for the recognition and reward of the faculty excellence.

2. Adapting to new teaching methodologies: The NEP 2020 advocates for a learner-centric, flexible, and experiential mode of education, and encourages the use of innovative and interactive pedagogies, such as project-based learning, problem-based learning, and inquiry-based learning. It also promotes the use of technology and digital platforms to enhance the quality and accessibility of education, and to enable blended and online learning. This is expected to make the teaching and learning more engaging, meaningful, and personalized. However, this poses several challenges, such as:

i. The difficulty in changing the mindset and attitude of the faculty and the students, who may be accustomed to the traditional and conventional mode of education, and who may resist or reject the new teaching methodologies.

ii. The difficulty in designing and delivering the new teaching methodologies, which may require a clear and coherent curriculum, a suitable and supportive learning environment, and a appropriate and authentic assessment.

iii. The difficulty in ensuring the quality and effectiveness of the new teaching methodologies, which may require a rigorous and continuous monitoring and evaluation, and a feedback and improvement system.

C. Infrastructural Challenges: The infrastructural challenges refer to the difficulties in providing and maintaining the physical and technological facilities and resources for the higher education system in accordance with the NEP 2020. Some of the major infrastructural challenges are:

1. Upgrading existing facilities: The NEP 2020 proposes to upgrade the existing facilities of the higher education institutions, such as the classrooms, laboratories, libraries, and hostels, and to ensure that they are safe, secure, and accessible for all the students and faculty. This is expected to improve the learning and living conditions of the higher education community. However, this poses several challenges, such as:

i. The lack of adequate and sufficient funds, especially in the public higher education institutions, to renovate and modernize the existing facilities, and to meet the increasing demand and expectation of the students and faculty.

ii. The lack of proper and timely maintenance and management of the existing facilities, which may result in the deterioration and wastage of the facilities, and the dissatisfaction and frustration of the students and faculty.

iii. The lack of compliance and adherence to the norms and standards of the existing facilities, which may vary in terms of quality, quantity, and functionality across the institutions and regions.

2. Incorporating technology in education: The NEP 2020 promotes the use of technology and digital platforms to enhance the quality and accessibility of education, and to enable blended and online learning. It also proposes to create a National Educational Technology Forum (NETF) to facilitate the adoption and integration of technology in education, and to create a National Digital Educational Architecture (NDEAR) to provide a digital infrastructure for education. This is expected to leverage the potential and benefits of technology and digitalization in the higher education system. However, this poses several challenges, such as:

i. The lack of adequate and reliable technology and digital platforms, especially in the rural and remote areas, and in the underprivileged and marginalized sections of the society, to access and participate in the online and blended

learning.

ii. The lack of adequate and skilled technology and digital professionals, who can design, develop, and deliver the technology and digital solutions for the higher education system, and who can train and support the students and faculty in using the technology and digital platforms.

iii. The lack of adequate and appropriate policies and regulations for the technology and digital platforms, which may pose issues and risks related to the quality, security, privacy, and ethics of the online and blended learning.

Opportunities Arising from NEP 2020: The NEP 2020 is not only a policy that addresses the challenges, but also a policy that creates opportunities for the higher education sector in India. The policy envisions a higher education system that is dynamic, innovative, inclusive, and global. This section discusses the major opportunities arising from NEP 2020 under three categories: research and innovation, inclusive education, and globalization and internationalization.

A. Research and Innovation: The NEP 2020 gives a high priority to research and innovation in higher education, and aims to increase the research output and impact of India in the global arena. The policy creates several opportunities for enhancing the research and innovation culture and capacity in the higher education sector, such as:

1. Promotion of interdisciplinary research: The NEP 2020 promotes interdisciplinary research, and proposes to establish multidisciplinary education and research universities (MERUs), which will offer education and research across disciplines and fields. This will create opportunities for the students and faculty to explore and pursue diverse and emerging areas of research, and to address complex and multidimensional problems. The policy also proposes to create a National Research Foundation (NRF), which will fund and facilitate research across disciplines, and to encourage the integration of research and teaching in higher education institutions.

2. Encouraging collaboration with industries: The NEP 2020 encourages collaboration with industries, and proposes to create research parks and innovation centres in higher education institutions, and to foster partnership with the industry, the government, and the civil society. This will create opportunities for the students and faculty to engage in applied and translational research, and to develop innovations and start-ups that can contribute to the economic and social development of the country. The policy also proposes to create a National Innovation Fund, which will support the innovations and start-ups emerging from the higher education institutions.

B. Inclusive Education: The NEP 2020 supports inclusive education, and proposes to ensure that all students are able to thrive in the education system, regardless of their background, identity, ability, or location. The policy creates several opportunities for enhancing the access, equity, and quality of education for the diverse student populations in the higher education sector, such as:

1. Addressing the needs of diverse student populations: The NEP 2020 proposes to address the needs of diverse student populations, such as the socially and economically disadvantaged groups (SEDGs), the differently-abled students, the gifted students, and the adult learners. The policy proposes to provide scholarships, fee waivers, and financial assistance to the SEDGs, and to ensure that they have adequate representation and participation in the higher education institutions. The policy also proposes to provide accessible and inclusive facilities and resources to the differently-abled students, and to ensure that they have equal opportunities and support in the higher education institutions. The policy also proposes to identify and nurture the gifted students, and to provide them with accelerated and advanced learning opportunities. The policy also proposes to enable the adult learners to pursue higher education through flexible and modular programmes, and to provide them with recognition of prior learning.

2. Fostering social equity and inclusion: The NEP 2020 proposes to foster social equity and inclusion, and proposes to promote the values of diversity, pluralism, and constitutionalism in the higher education system. The policy proposes to offer higher education programmes in multiple languages, including the regional languages, the classical languages, and the foreign languages, and to support the development of a multilingual and multicultural education. The policy also proposes to integrate the knowledge and traditions of India, and to respect the local context and culture in the curriculum, pedagogy, and policy. The policy also proposes to inculcate the ethics and human and constitutional values, such as empathy, respect, democracy, service, liberty, equality, and justice, in the higher education system.

C. Globalization and Internationalization: The NEP 2020 supports globalization and internationalization, and proposes to make India a global hub of education and research. The policy creates several opportunities for enhancing the global presence and engagement of the higher education sector in India, such as:

1. Attracting international students and faculty: The NEP 2020 proposes to attract international students and faculty, and to provide them with quality education and research opportunities in India. The policy proposes to facilitate the mobility and exchange of students and faculty across the world, and to provide them with scholarships, fellowships, and visas. The policy also proposes to create a National Education Technology Forum (NETF) and a National Digital Educational Architecture (NDEAR), which will enable the delivery of online and blended learning to the international students and faculty.

2. Establishing global partnerships: The NEP 2020 proposes to establish global partnerships, and to collaborate with the leading universities and institutions across the

world. The policy proposes to participate in the global academic and research networks and initiatives, and to contribute to the global knowledge and innovation systems. The policy also proposes to create joint degree programmes, dual degree programmes, and twinning programmes with the foreign universities and institutions, and to facilitate the recognition and transfer of credits across the countries.

Recommendations: The NEP 2020 is a landmark policy that has the potential to transform the higher education sector in India. However, the policy implementation requires careful planning, coordination, and monitoring to ensure its effectiveness and sustainability. This section provides some recommendations for the policy makers and the higher education institutions to facilitate the successful implementation of NEP 2020. The recommendations are divided into two categories: policy recommendations and institutional recommendations.

A. Policy Recommendations: The policy recommendations are aimed at the policy makers, such as the Ministry of Education, the UGC, and other regulatory bodies, who are responsible for designing, implementing, and evaluating the NEP 2020. Some of the major policy recommendations are:

1. Adjustments to enhance policy effectiveness: The policy makers should make some adjustments to the NEP 2020 to enhance its effectiveness and feasibility. Some of the suggested adjustments are:

i. The policy makers should provide a clear and realistic timeline and roadmap for the implementation of the NEP 2020, and specify the roles and responsibilities of the various stakeholders involved in the process.

ii. The policy makers should allocate adequate and equitable funds for the implementation of the NEP 2020, and ensure that the funds are utilized efficiently and transparently.

iii. The policy makers should establish a robust and participatory monitoring and evaluation system for the NEP 2020, and collect and analyse data and feedback from the higher education institutions and the students and faculty.

2. Suggestions for policy refinement based on research findings: The policy makers should refine the NEP 2020 based on the research findings and evidence from the higher education sector. Some of the suggested refinements are:

i. The policy makers should review and revise the curriculum and pedagogy of the higher education programmes and courses, and ensure that they are aligned with the learning outcomes, the national and global needs and demands, and the student interests and aspirations.

ii. The policy makers should strengthen and expand the faculty training and development programmes, and ensure that the faculty are equipped with the necessary skills and competencies to deliver the new teaching methodologies and to conduct quality research.

iii. The policy makers should enhance and diversify the internationalization and globalization initiatives, and ensure that the higher education institutions and the students and faculty have access to the best practices and opportunities from the world.

B. Institutional Recommendations: The institutional recommendations are aimed at the higher education institutions, such as the universities and colleges, who are responsible for delivering and improving the quality of education and research in the higher education sector. Some of the major institutional recommendations are:

1. Strategies for overcoming specific challenges at the institutional level: The higher education institutions should adopt some strategies to overcome the specific challenges that they face at the institutional level. Some of the suggested strategies are:

i. The higher education institutions should develop and implement a strategic plan for the integration of vocational education and the multidisciplinary approach, and ensure that they have the necessary infrastructure, faculty, and curriculum to offer these programmes and courses.

ii. The higher education institutions should foster a culture of inclusion and diversity, and ensure that they have the necessary policies, practices, and support systems to cater to the needs of the diverse student populations.

iii. The higher education institutions should leverage the technology and digital platforms, and ensure that they have the necessary hardware, software, and connectivity to deliver online and blended learning.

2. Frameworks for successful implementation: The higher education institutions should adopt some frameworks for the successful implementation of the NEP 2020. Some of the suggested frameworks are:

i. The higher education institutions should adopt a participatory and collaborative framework, and involve the students, faculty, staff, and other stakeholders in the planning, implementation, and evaluation of the NEP 2020.

ii. The higher education institutions should adopt a flexible and adaptive framework, and be open to change and innovation in the curriculum, pedagogy, and assessment of the NEP 2020.

iii. The higher education institutions should adopt a quality and excellence framework, and strive to achieve the highest standards of education and research in the NEP 2020.

Conclusion: The conclusion section summarizes the main findings, implications, and recommendations of the research paper. It covers the following aspects:

a) **Summary of Findings:** The research paper explored the challenges and opportunities for implementing NEP 2020 in the higher education sector in India. The paper adopted a qualitative approach and a document analysis method to collect and analyse data from various sources related to the NEP 2020 and its implementation. The paper found that the NEP 2020 is a comprehensive and visionary policy that aims to transform the higher education system

in India by focusing on access, equity, quality, affordability, and accountability in education. The paper also found that the NEP 2020 faces several challenges in its implementation, such as structural, pedagogical, and infrastructural challenges, which may hinder its effectiveness and feasibility. The paper also found that the NEP 2020 creates several opportunities for enhancing the research and innovation, inclusive education, and globalization and internationalization in the higher education sector in India.

b) Implications for Policy and Practice: The research paper provided some implications and recommendations for the policy makers and the higher education institutions to facilitate the successful implementation of NEP 2020. The paper suggested that the policy makers should make some adjustments to the NEP 2020 to enhance its effectiveness and feasibility, such as providing a clear and realistic timeline and roadmap, allocating adequate and equitable funds, and establishing a robust and participatory monitoring and evaluation system. The paper also suggested that the policy makers should refine the NEP 2020 based on the research findings and evidence from the higher education sector, such as reviewing and revising the curriculum and pedagogy, strengthening and expanding the faculty training and development programmes, and enhancing and diversifying the internationalization and globalization initiatives. The paper also suggested that the higher education institutions should adopt some strategies to overcome the specific challenges that they face at the institutional level, such as developing and implementing a strategic plan for the integration of vocational education and the multidisciplinary approach, fostering a culture of inclusion and diversity, and leveraging the technology and digital platforms. The paper also suggested that the higher education institutions should adopt some frameworks for the successful implementation of the NEP 2020, such as a participatory and collaborative framework, a flexible and adaptive framework, and a quality and excellence framework.

c) Areas for Future Research: The research paper identified some areas for future research that can extend and enrich the knowledge and understanding of the NEP 2020 and its implementation. Some of the suggested areas for future research are:

i. The impact and outcomes of the NEP 2020 on the higher education sector in India, such as the learning outcomes, the employability and skill development, the research output and impact, and the social equity and inclusion.

ii. The comparative and cross-cultural analysis of the NEP 2020 and its implementation with other countries and regions that have implemented or proposed similar educational reforms, such as China, Singapore, and Europe.

iii. The best practices and lessons learned from the NEP 2020 and its implementation, and the identification and dissemination of the success stories and case studies from the higher education institutions and the students and faculty in India.

References:-

1. Ministry of Education, Government of India. (2020). National Education Policy 2020. New Delhi: Ministry of Education.
2. Altbach, P. G. (2016). Global perspectives on higher education. Johns Hopkins University Press.
3. Tilak, J. B. G. (2018). Education and development in India: Critical issues in public policy. Springer.
4. Agarwal, P. (2009). Indian higher education: Envisioning the future. Sage Publications.
5. Bele, M. (2023). National Education Policy 2020: Challenges & Opportunities in Higher Education in India.
6. Santra, R., & Basu, S. (2023). National Education Policy 2020: Opportunities and Challenges for India's Higher Education.
7. Sharma, S (2023). National Education Policy 2020: Navigating Opportunities And Challenges.
8. Reddy, P.N. (2021). National Education Policy 2020 - Challenges and Opportunities on the Educational System.
9. Farooq, U. (2023). National Education Policy 2020 and Higher Education: A Comprehensive Analysis.
10. Nair, V. (2024). Transforming Higher Education in India: Challenges, Opportunities and NEP 2020.
11. Dhokare, S. (2022). Transforming Higher Education: Exploring the Impact of NEP 2020.
12. Kumar, A., & Chander, A. (2023). Challenges and Prospects of Implementing the National Education Policy 2020 in Himachal Pradesh: A Stakeholder Perspective.
13. Nagpal, P. (2023). Implementing the National Education Policy 2020: Challenges and Solutions in School Education in India.
14. (2024). Major Reforms in Accreditation of Higher Education Institutions.
15. Duarte, N., &Vardasca, R. (2023). Literature Review of Accreditation Systems in Higher Education.
16. Radhakrishnan K. (2023). Transformative Reforms on the Anvil for Strengthening Periodic Assessment, Accreditation, and Ranking of India's Higher Educational Institutions.
17. Varghese, N. V. (2024). Reforms to Revive Higher Education in India.
18. Tilak, J. B. G. (2023). Reforming Higher Education in India in Pursuit of Excellence, Expansion, and Equity.
19. Sharma, A., Prakash, A. R., & Nehru, R. S. S. (2022. Reforms in Higher Education in India: National Education Policy - 2020.
20. Mallik, C. (2023). Critical Analysis of NEP 2020 and Its Implementation.
21. Wadhwa, R. (2024). Changing Landscape of Indian Higher Education: Retrospect and Prospect.
22. Tobenkin, D. (2022). India's Higher Education Landscape.

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

How to Minimize the Risk of Cancer

Dr. Rajesh Masatkar*

*Govt. Degree College, Nainpur, Distt. Mandla (M.P.) INDIA

Abstract - Cancer refers to any one of a large number of diseases characterized by the development of abnormal cells that divide uncontrollably and have the ability to infiltrate and destroy normal body tissue. Cancer often has the ability to spread throughout your body. Cancer is the second leading cause of death in the world. But survival rates are improving for many types of cancer. Thanks to improvements in cancer screening, treatment and prevention. In last, healthy active lifestyle, healthy diet and ideal weight of an individual minimize the risk of cancer.
Keywords – Antioxidants, Detoxify, Antibiotic. Preservatives, Chemotherapy, Carcinogenic.

Introduction - Cancer cells are different to normal cells in various ways. Cancer cells don't stop growing and dividing. Unlike normal cells, cancer cells don't stop growing and dividing when there are enough of them. So, the cells keep doubling, forming a lump (tumour) that grows in size. A tumour forms, made up of billions of copies of the original cancerous cell. Cancers of blood cells don't form tumours for example leukaemia. But they make many abnormal blood cells that build up in the blood. Cancer cells ignore signals from other cells. Cells send chemical signals to each other all the time. Normal cells obey signals that tell them when they have reached their limit. They will cause damage if they grow any further. But something in cancer cells stops the normal signalling system from working.

It can take many years for a damaged cell to divide and grow and form a tumour big enough to cause symptoms or show up on a scan. How mutations happen? Mutations can happen by chance when a cell is dividing. They can also be caused by the processes of life inside the cell. Or by things coming from outside the body, such as the chemicals in tobacco smoke. And some people can inherit faults in particular genes that make them more likely to develop a cancer. Some genes get damaged every day and cells are very good at repairing them. But over time, the damage may build up. And once cells start growing too fast, they are more likely to pick up further mutations and less likely to be able to repair the damaged genes.

O ne of the most harmful effects of preservatives on food items is their ability to transforms into carcinogen agents, some of the food items consist of nitrosamines, a preservative that has nitrites and nitrates, which mix with the gastric acids and form cancer-causing agents. To ensure that you avoid eating this preservative you need to avoid snacks or meals that are loaded with nitrites and nitrates.

Objectives – The main objectives are as given below.

1. To clean and detoxify an individuals' body naturally.
2. To save the individuals from this drastic disease.
3. To make the people of the country healthy and wealthy.
4. To make the people of the country useful in the development of our nation.
5. To increases the economic status of the people.
6. To minimizes the intake of medicines.
7. To reduces the cost of treatment of an individual at zero level.
8. To save the time of people from unnecessary treatments.
9. To improve the overall health of an individuals.

Methodology – By observing the lifestyle of an individual.

Symptoms – Signs and symptoms caused by cancer will vary depending on what part of the body is affected. Some general signs and symptoms associated with but not specific to, cancer.

1. Fatigue
2. Lump or area of thickening that can be felt under the skin.
3. Weight changes, including unintended loss or gain.
4. Skin changes, such as yellowing, darkening or redness of the skin, sores that won't heal, or changes to existing moles.
5. Changes in bowel or bladder habits
6. Persistent cough or trouble breathing.
7. Difficulty in swallowing
8. Hoarseness.
9. Persistent indigestion or discomfort after eating.
10. Persistent, unexplained muscle or joint pain.
11. Persistent, unexplained fevers or night sweats
12. Unexplained bleeding or bruising.

Risk Factors of Cancer – While doctors have an idea of what may increase your risk of cancer, the majority of cancers occur in people who don't have known risk factors. Factors known to increase your risk of cancer include.

Age – Cancer can take decades to develop. That is why most people diagnosed with cancer are 65 or older. While it is more common in older adults, cancer is not exclusively an adult disease cancer can be diagnosed at any age.

Habits – Certain lifestyle choices are known to increase your risk of cancer. Smoking, drinking more than one drink a day for women and up to two drinks a day for men, excessive exposure to the sun or frequent blistering sunburns, being obese, and having unsafe sex can contribute to cancer. You can change these habits to lower your risk of cancer.

Family History – Only a small portion of cancers are due to an inherited condition. If cancer is common in your family. It is possible that mutation nis being passed from one generation to the next. You might be a candidate for genetic testing to see whether you have inherited mutations that might increase your risk of certain cancers. Keep in mind that having an inherited genetic mutation does not necessarily mean you will get cancer.

Cancer Cells Do Not Repair Themselves or Die – Normal cells can repair themselves if their genes become damaged. This known as DNA repair. Cells self-destruct if the damage is too bad. Scientists call this process apoptosis. In cancer cells, the molecules that decide whether a cell should repair itself are faulty. For example, a protein called p53 usually checks if the cell can repair its genes, or if the cell should die. But many cancers have faulty version of p53, so they do not repair themselves properly. This lead to more problems. New gene faults or mutations can make cancer cells. Cancer cells can ignore the signals that tell them to self-destruct. So, they do not undergo apoptosis when they should. Scientists call these making cells immortal.

Health Conditions – Some chronic health conditions, such as ulcerative colitis, can markedly increase your risk of developing certain cancers.

Environment – The environment around you may contain harmful chemicals that can increase your risk of cancer. Evern if you don't smoke. You might inhale second hand smoke if you go where people are smoking or if you live with someone who smokes. Chemicals in your home or workplace. Such asbestos and benzene, also are associated with an increased risk of cancer.

Effect of Cancer and Its Treatment –

Pain – Pain can be caused by cancer or by cancer treatment, though not all cancer is painful. Medications and others approaches can effectively treat cancer-related pain.

Fatigue – Fatigue in people with cancer has many causes, but it can often be managed. Fatigue associated with chemotherapy or radiation therapy treatments is common.

Nausea – Certain cancers and cancer treatments can cause nausea.

Diarrhea or Constipation – Cancer and cancer treatment can affect your bowels and cause diarrhea or constipation.

Weight Loss – Cancer and cancer treatment may cause weight loss. Cancer steals food from normal cells and deprives them of nutrients. This is often not affected by how many calories or what kind of food is eaten. It is difficult to treat. In most cases, using artificial nutrition through tubes into the stomach or vein does not help change the weight loss.

Chemical Changes in Your Body – Cancer can upset the normal chemical balance in your body and increase your risk of serious complication. Signs and symptoms of chemical imbalances might include excessive thirst, frequent urination, constipation and confusion.

Brain and Nervous System Problems – Cancer can press on nearby nerves and cause pain and loss of function of one part of your body. Cancer that involves the brain can cause headaches and stroke like signs and symptoms, such as weakness on one side of your body.

Unusual Immune System Reaction to Cancer – In some cases the body's immune system may react to the presence of cancer by attacking healthy cells called paraneoplastic syndromes. These are very rare reactions can lead to a variety of sign and symptoms, such as difficulty walking and seizures.

Discussion – All the lifestyle changes in the world still can't guarantee that you'll never develop cancer or other health issues. Sometimes, nature just runs its course, and genetics can play a role too. While just under half of cancer related deaths are preventable, the reality is that over half of them is not. Dr. Kamath says unfortunately people who lead very healthy lifestyles do still develop cancer, but at the same time we still need to take every opportunity that we can maximize prevention. Importantly, the study shows hard proof that lifestyle changes can go a long way for your overall health. Dr. Kamath adds someone who limits alcohol consumption, maintains a healthy weight, lives a healthy active lifestyle and doesn't smoke is at a much lower overall risk for cancer. If you can develop healthy habits when you are young, you will continue them as your age, which is how you mitigate risk.

Findings:

1. Maintain ideal weight.
2. Eat a healthy diet.
3. Exercise most days of the week.

Suggestion:

1. Avoid junk food and packed food.
2. Stop smoking and drinking.
3. Avoid excess sugar and salt.
4. Use fresh fruits and vegetables.
5. Avoid excessive sun exposure.

Conclusion – It is old says that "Health is Wealth". If health is well then, all things is in our hand. But being author of this paper, I want to aware the people of our country to minimize the risk of cancer by developing healthy active

lifestyle. it is advisable to pay special attention to what you eat. avoid junk as much as possible and minimize intake of medicines for the little reason. Make a healthy routine for long time with consistently will minimize the risk of cancer.

References :–

1. Find out about different types of cancer according to the cell type they start in
2. Find out about trials that are looking at anti angiogenic drugs on our clinical trials database
3. Find out more about how cancer may spread to other parts of the body.
4. Cancer - Symptoms and causes - Mayo Clinic
5. How To Prevent Cancer: 6 Ways To Lower Your Risk (clevelandclinic.org)

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

वर्तमान विधिक शिक्षा एवं विधिक व्यवस्था एक मूल्यांकन

डॉ. ज़ाकिर खान*

* प्राचार्य, सांदीपनि विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – भारत के संदर्भ में विधिक शिक्षा से आशय अपना विधिक व्यवसाय प्रारंभ करने से पूर्व छात्रो को दी जाने वाली शिक्षा से है। भारत में विधि की शिक्षा परम्परागत विश्वविद्यालयों के साथ-साथ केवल विधिक शिक्षा हेतु स्थापित कुछ विश्वविद्यालयों द्वारा भी दी जाती हैं। सभी को स्पष्ट रूप से यह ज्ञात है कि भारतीय विधिक व्यवस्था में विधि की अज्ञानता या अनभिज्ञता को कानूनी बचाव के रूप में मान्यता दी जाती हैं। इसका तात्पर्य यह हैं कि यदि कोई भी व्यक्ति अज्ञानतावश किसी भी कानून का उल्लघंन कर देता हैं तो न्यायालय इस आधार पर कि उल्लघंनकर्ता को उस कानून की जानकारी नही थी कोई रियायत या लाभ नही दे सकता हैं।

अपनी दैनिक चर्चा में हम ऐसे कई कार्य करते हैं जिनके बार में कानून क्या कहता है- इसकी हमें इसकी जानकारी नही होती है। विधिक ज्ञान इतना महत्वपूर्ण होते हुये भी हमारी शिक्षा प्रणाली में कानूनी शिक्षा अपना वांछित स्थान नही प्राप्त कर पाई। एक तरफ तो सामान्य नागरिको को विधिक शिक्षा नही दी जाती हैं और दूसरी तरफ विधिक अज्ञानता के लिये दण्डित किया जाना अभी तक की सरकारो की बड़ी विफलता हैं वर्तमान में विधिक शिक्षा से तात्पर्य भविष्य में विधि को अपनी आय का साधन बनाने वालो को दी जाने वाली विधिक शिक्षा तक ही सीमित हैं जैसे वकील, जज, विधिक परामर्ष दाता, प्राध्यापक इत्यादि। वर्तमान परिदृष्य में बढ़ते इंटरनेट के उपयोग एवं अंतराष्ट्रीय व्यापार-व्यवसाय को दृष्टिगत रखते हुए विधिक शिक्षा व्यवस्था में वृद्धि कर न्यूनतम विधिक शिक्षा का निर्धारण कर प्रत्येक देशवासी को इसे प्रदान करने की आवश्यकता हैं।

विधिक शिक्षा के दो आयाम हैं- प्रथम, विधिक क्षेत्रो में जाने वालो को दी जाने वाली शिक्षा तथा दूसरी शेष सामान्य देशवासियों को दी जाने वाली शिक्षा। कानूनविदो को दी जाने वाली शिक्षा जो कि वर्तमान में एलएल.बी. तथा एलएल.एम. पाठ्यक्रमों के माध्यम से ही दी जाती हैं। एक अत्यंत विशेषीकृत शिक्षा है जो कि कानूनविदो/विधि विशेषज्ञो के लिये वांछित भी हैं, क्योंकि वर्तमान समय में न्याय प्रणाली का भार इन्हीं विधिज्ञो के कंधो पर हैं। यद्धपि यह शिक्षा भी समय काल एवं परिस्थिति के साथ कदम से कदम मिलाकर नही चल पायी हैं। हमारा विधिक पाठ्यक्रम अभी भी अंग्रेजी शासन काल की औपनिवेशिक मानसिकता से बाहर नही आ पाया हैं। उदाहरणार्थ एलएल.बी. पाठ्यक्रम में एक विषय भारत का विधिक इतिहास पढ़ाया जाता हैं जिसमें भारत में विधि अथवा कानून का विकास किस तरह हुआ इसका उल्लेख हैं किन्तु यह दुर्भाग्यपूर्ण एवं हास्यापद हैं कि आजाद भारत में विधि के छात्रो को भारत के विधिक इतिहास की शुरूआत सन् 1600 में होना पढ़ाया जा रहा हैं, जिस वर्ष ब्रिटिश शासन ने 'ईस्ट इण्डिया कंपनी' के निर्गमन का चार्टर जारी किया गया जबकि वास्तविकता यह है कि भारतीय विधिक इतिहास का प्रारंभ 5000 वर्षो से अधिक पुराने मनुस्मृति काल या उससे भी अधिक प्राचीन रहा है या इसे कोटिल्य के अर्थशास्त्र/नीतिशास्त्र से तो प्रारंभ माना ही जाना चाहिए। यदि उक्त दोनो महत्वपूर्ण प्राचीन पुस्तको के पूर्व हम न भी जावे तो भी ये दोनों ही पुस्तके विधिक संहिता के रूप में इतनी प्राचीन हैं, कि जिस काल में भारत में राजओं के भी राजा अर्थात् सम्राट हुआ करते थें, उस काल में संभवत: पश्चिमी विश्व जो कबिलो में निवास करता था को सभ्य कहना भी कुछ मुश्किल होगा।

इसी तरह पिछले 10 वर्षो में विधि के क्षेत्र में बहुआयामी विकास हुआ जैसे इंटरनेट के आने से ऑनलाईन अपराधियों का बढ़ना तथा देश-विदेश में सुगमता से लेन-देन तथा अन्य गतिविधियों के संचालन में सुविधा का हो जाना। उदाहरणार्थ भारत में क्रिप्टा करेंसी का व्यापार वैधानिक नही हैं परन्तु कई मोबाईल एप्लीकेशन के माध्यम से इस व्यापार के मामले आ रहे हैं जिसके लिये फिलहाल कोई सुनियोजित कानून हमारे सामने नही हैं। बहुत सारे ऐसे नये विषय समाविष्ट हुये हैं, जिनका वर्तमान औपचारिक विधिक शिक्षा में उचित समायोजन नही हो पाया हैं जैसे अन्तराष्ट्रीय मध्यस्थता, विदेश व्यापार, बैकिंग कानून, बौद्धिक सम्पदा आदि। इसके अतिरिक्त हमें विशेष रूप से न्यायाधीषो एवं अधिवक्ताओं में न्यायिक गुणो या ज्यूडिशियल वर्च्यूज के विकास की और ध्यान देना होगा जिससे कि न्याय प्रणाली व्यक्तिगत एवं मानवीय गुण दोषो से यथा संभव मुक्त रहे तथा व्यक्तिगत मान्यताएँ एवं व्यक्तिगत अंहकार न्यायिक अधिकारी की दृष्टि को बाधित न कर सकें।

विधिक शिक्षा का प्रथम और महत्वपूर्ण उद्देश्य देश में अच्छे नागरिको का निर्माण करना हैं ऐसे नागरिक जो न सिर्फ देश में स्थापित विधि के शासन को समझे बल्कि उसको सुदृढ़ करने में सकारात्मक योगदान भी दे सकें, परन्तु इसके लिये विधि एवं विधिक व्यवस्था जानना, समझना एवं उसके प्रति समर्पित होना आवश्यक हैं।

विधिक शिक्षा का दूसरा उद्देश्य प्रत्येक नागरिक को उसके अधिकारो और कर्तव्यों का ज्ञान कराना हैं तथा उनका पालन और निर्वहन कैसे विधि के द्वारा कराया जाना हैं यह बतलाना भी हैं अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूकता एवं सजगता सरकारी तंत्रो की निरंकुशता पर प्रभावी अंकुश लगा सकती हैं।

विधिक शिक्षा को विभिन्न विषयों से पूर्णत: पृथक कर नही देखा जा सकता हैं बल्कि यह तो हर विषय में समाहित भी हैं एवं उनका एक अभिन्न अंग हैं जैसे मोरल साइंस के विषय में हमारे चारो तरफ के पशु–पक्षी, पौधे इत्यादि के भी जीवन के अधिकार को पहचाना एवं उनका सम्मान करना, भाषा विज्ञान के छात्रो की बौद्धिक सम्पदा तथा कॉपीराईट इत्यादि की समझ विकसित करना, समाजशास्त्र में सामाजिक समरसता, धर्मनिरपेक्षता, सामाजिक न्याय के वैधानिक विकास के समझ को विकसित करना आवश्यक हैं। बच्चो को सही गलत, न्याय–अन्याय, अधिकार कर्तव्य, भारतीय संविधान के सिद्धांत इत्यादि के विषय में समझ एवं जागरूकता, उनको भविष्य के जिम्मेदार नागरिक बनाने में एक महत्वपूर्ण संगठक सिद्ध होगें अत: आवश्यक हैं कि देश के विधि शिक्षा के दोनों आयामो में इस प्रकार आमूलचूल परिवर्तन किया जायें, जिससे कि एक तरफ अच्छे नागरिको का निर्माण कर राष्ट्र निर्माण हो सकें और दूसरी तरफ निष्पक्ष न्यायिक गुणो से समृद्ध न्यायिक अधिकारियों के द्वारा परिचालित न्याय व्यवस्था कायम हो सकें।

हमारा देश अतीत से ही न्यायप्रिय रहा है। नीति, न्याय, धर्म आदि हमेशा से ही आदर्श रहे है। अनीति, अन्याय और अधर्म में उसकी कभी आस्था नही रही। अन्याय का उसने सदैव विरोध किया है। असहाय और निर्धन व्यक्तियों को कुचलने की उसकी कभी नियति नही रही है। निर्धन व्यक्तियों के विरुद्ध वाद दायर करना अथवा मुकदमा चलाना तभी न्यायपूर्ण कहा जा सकता है जब उन्हें अपनी प्रतिष्ठा को बचाने का समान अवसर मिले। भारतीय न्याय व्यवस्था का उद्देश्य कभी एक तरफा न्याय करने का नही रहा है। यदि कोई पक्षकार निर्धन या गरीब है तो हमने उसे सुविधा मुहैया की व्यवस्था की है। किसी भी व्यवस्था में जनता की अपेक्षा रहती हैं कि उसे न्याय सहज एवं सुगम रूप से उपलब्ध हो। न्यायालय तक पहुँचने की प्रक्रिया, अत्यन्त सरल एवं विधि की जटिलताओं एवं पेंचीदगियों से रहित होना चाहिए। इसके साथ–साथ सभी व्यक्तियों को न्याय प्रभावी रूप से उपलब्ध हो पाये एवं न्याय के समान अवसर मिल सकें, इस उद्देष्य को ध्यान में रखते हुए न्याय प्रशासन की व्यवस्थायें अधिक खर्चीली एवं मंहगी नही होनी चाहिए। विधिवेत्ता सिसरो ने सही कहा हैं–

'बुद्धिमान विवेक से, साधारण मनुष्य अनुभव से,
अज्ञानी आवश्यकता से और पशु स्वभाव से सीखते हैं।'

आज न्यायालयों में विशाल संख्या में अनेक प्रकार के वाद काफी लंबे समय से लंबित पड़े हैं, हमारे पास ऐसा कोई विकल्प नही हे कि शीघ्र एवं प्रभावी रूप से जनता को न्याय उपलब्ध हो पाये। कहने के लिए तो जनता को अनेक मूल अधिकार एवं अन्य विधिक अधिकार दिये गये हैं, लैकिन वास्तविकता यह हैं कि हमारी अधिकांश जनसंख्या गरीब, असहाय, निरक्षर होने के कारण अपने अधिकारो का प्रवर्तन करवाने में असमर्थ रहती हैं, उसका प्रमुख कारण हमारी जटिलता से पूर्ण एवं महंगी न्यायिक व्यवस्था हैं। अत: आज यह आवश्यक हो जाता है कि न्याय–प्रशासन में न केवल न्यायिक पदाधिकारीगण ही अपने दायित्व का उचित निर्वहन करें, अपितु अन्य समस्त प्राधिकारीगण एवं समाज के सभी वर्ग मिलकर गरीब व असहाय व्यक्तियों को न्याय दिलवाने में अपना भरपूर सहयोग प्रदान करें। वर्तमान न्याय व्यवस्था में इसके कई रूप है –

विधिक सहायता : निर्धन व्यक्तियों को न्याय सुलभ कराने के लिए हमारी न्याय व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण योजना के रूप में हैं विधिक सहायता। यदि कोई व्यक्ति निर्धन है और निर्धनता के कारण न्यायालय जाने में असमर्थ है तो ऐसे व्यक्तियों के लिए राज्य सरकार द्वारा अकिंचन को राज्य के व्यय पर विधिक सहायता उपलब्ध कराने का प्रावधान किया है।

दी न्यू एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका ने विधिक सहायता का अर्थ किसी जरूरतंद व्यक्ति को व्यवसायिक विधिक मदद देना, चाहे वह मुफ्त दी जाये अथवा कुछ राशि लेकर दी जाने से हैं।

इन्टरनेशनल कमीशन ऑफ जूरिस्ट ने अपने प्रतिवेदन में कहा कि विधिक सहायता में न्यायालयों को दी जाने वाली ऐसी विधिक सलाह एवं प्रतिनिधित्व के प्रावधान उन सभी के लिए सम्मिलित हैं, जिन्हें अपने जीवन, स्वाधीनता, सम्पत्ति या मान–मर्यादा को खतरा हैं एवं जो इस हेतु सलाह प्राप्ती या अपने हितार्थ प्रतिनिधि कि नियुक्ति पर होने वाले ० को वहन करने में असमर्थ हैं।

दी यूरोपियन कन्वेन्शन ऑफ ह्यूमन राईट्स अनुच्छेद 6 (3) (स) के अनुसार प्रत्येक व्यक्तिय जो को आपराधिक मामले में अभियुक्त हैं वह स्वयं के बचाव हेतु विधिक सहायता प्राप्त कर सकता हैं। हुसैन आरा खातुन विरूद्ध बिहार राज्य AIR 1979 SC 1360 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि यह बन्दी के प्रति युक्तियुक्त, ऋजु और न्यायोचित प्रक्रिया का अंग हैं, जो कि न्यायालय की प्रक्रिया के माध्यम से परिमोचन का प्रयास कर रहा है कि उसे विधिक सेवायें उपलब्ध करायी जाये। इस हेतु न्यायालय ने 39 (क) का भी सहारा लिया जिसमें नि:षुल्क विधिक सहायता के लिये उपबन्ध किया गया है कि इस मामले में न्यायालय ने उन बन्दियों में छोड़ने का आदेश दिया जिनको उस अवधि से लम्बी अवधि तक जेल में रखा गया था, जिसके लिये उन्हें सिद्धदोष ठहराये जाने पर अधिकतम सजा दी जा सकती थी।

सुनील बत्रा विरूद्ध दिल्ली प्रशासन[1] के मामले में जस्टिस अय्यर ने कहा कि केदी के अधिकार न्यायालय द्वारा याचिका एवं न्यायालय की अवमानना द्वारा संरक्षित किये जायेगे इस क्षेत्र अधिकार को व्यावहारिक बनाने के लिये केदियों के लिये नि:शुल्क विधिक सेवायें प्रोग्रामो को न्यायालयो द्वारा मान्यताप्रद व्यवसायिक संगठनो जैसे नि:षुल्क विधिक सहायता समिति द्वारा प्रोत्साहित किया जायेगा।

एम.एच. हासकाट विरूद्ध स्टेट ऑफ महाराष्ट्र[2] के वाद में न्यायाधीष कृष्ण अय्यर ने यह उचित ही संप्रेषण किया था कि नि:शुल्क विधिक सहायता प्रदान किया जाना राज्य का कर्तव्य और सरकार का एक आवश्यक कार्य हैं।

इसके लिए निम्नलिखित विधियाँ एवं संविधान में व्यवस्था की गई हैं–

1. संविधान के अनुच्छेद 39 क में
2. संविधान के अनुच्छेद 32 एवं 226 में
3. दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 303 एवं धारा 304 में
4. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 2 नियम 10 क, आदेश 33 एवं आदेश 44 में।

विधिक साक्षरता: विधि का ज्ञान सभी के लिए आवश्यक है। यदि किसी व्यक्ति के विधिक अधिकारों का उल्लंघन होता है तो वह अपने अधिकारों के संरक्षण/प्रवर्तन हेतु न्यायालय में तभी दस्तक दे सकता है, जब उसे अपने अधिकारों की जानकारी होगी। विधि की यह धारणा हैं कि कोई भी व्यक्ति यह बहाना नही बना सकता या बचाव प्रस्तुत नही कर सकता है कि उसे विधि की जानकारी नही हैं अर्थात् विधि अनभिज्ञता क्षम्य नही है। भारत वर्ष

में कानूनो का जाल बिछा हुआ हैं और सामान्य व्यक्तियों के लिये यह संभव ही नही हैं कि वह सभी कानूनो की जानकारी रख सके। स्वच्छ सामाज के लिये नागरिको को सामाजिक व्यवस्था के प्रति उत्तरदायी होना आवश्यक हैं। राज्य के विधिक सेवा प्राधिकरण ने विधिक साक्षरता एवं विधिक चेतना का कार्यक्रम अपने हाथ में लिया हैं। आज प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था में न केवल बिखराव आ रहा हैं, वरन जाति व्यवस्था के कारण समाज में तनाव व कटुता बढ़ रही हैं समाज में शोषण व अत्याचार बढ़ रहे हैं।

भारतीय संविधान ने पति व पत्नी को समान अधिकार दिये हैं। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 304 (ए), 498 (ए) व दहेज विरोधी अधिनियम की धारा 4 ने नारी के सम्मान एवं स्वतंत्र अस्तित्व के लिए ढाल का काम किया है। महिला को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 एवं हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24 व 25 के अंतर्गत निर्वाह भत्ता प्राप्त करने का अधिकार हैं एवं साथ ही महिला को पिता/पति अथवा पुस्तैनी जायदाद में भाई व पुत्रो के समान ही सम्पत्ति में उत्तराधिकार का हक प्राप्त हैं। अब संविधान में उसे पूर्ण स्वामित्व का दर्जा उपलब्ध कराया है। जिसका परिणाम यह हैं, कि अब नारी की अबला वाली स्थिति नही रही हैं।

विधिक साक्षरता कार्यक्रम के क्रियान्वयन में न्यायिक अधिकारीगण के अलावा अधिवक्तागण, सामाजिक कार्यकर्ता, शिक्षाविद एवं विधि छात्रो का पूरा सहयोग मिलता हैं। विधिक साक्षरता एक राष्ट्रीय कार्यक्रम हैं इसने लोगो में एक नई चेतना का संचार किया हैं।

1. साक्षरता शिविर
2. साहित्य प्रकाशन
3. पैरा–लीगल क्लिनिक
4. पैरा–लीगल सर्विसेज

लोकहित वाद : निर्धन व्यक्तियों को न्याय सुलभ कराने की दिशा में एक महत्तवपूर्ण पहल लोकहित वाद की है। यह व्यवस्था ऐसे व्यक्तियों के लिए है जो गरीबी अथवा कानून की अज्ञानता के कारण न्यायालय जाने में असमर्थ होते है। ऐसे व्यक्तियों की और से किसी भी अन्य व्यक्ति द्वारा अथवा संगठन द्वारा वाद दायर किया जा सकता है। यही लोकहितवाद की अवधारणा है। लोकहितवाद का उद्देश्य व्यक्तियों, शोषित वर्गो व अलाभप्रद व्यक्तियों के सांविधानिक व विधिक अधिकारो व लोकहित का संरक्षण हैं, व उन्हें सामाजिक व आर्थिक न्याय प्रदान करना हैं। लोकहित वादों के लिए यह आवश्यक है कि –

1. वह जनसाधारण के व्यापक हितों से जुड़ा हो,
2. निजी हित न हो,
3. सद्भावनापूर्ण हो,
4. राजनीति से प्रेरित न हो।

बधुआ मुक्ति मोर्चा विरूद्ध भारत संघ[3] के मामले में माननीय न्यायाधीष पी.एन. भगवती ने कहा–लोकहित मुकदमा प्रतिकूल प्रकृति का मुकदमा नही हैं वरन यह सरकार व उसके अधिकारियों को चुनौती का अवसर देता है कि वे मानवीय अधिकारो को समुदाय के वंचित व वेदना सहन करने वाले व्यक्तियों के लिए सार्थक बनाये एवं उन्हें सामाजिक व आर्थिक न्याय सुनिष्चित करे, जो संविधान की निहित भावना हैं।

एस.पी.गुप्ता व अन्य विरूद्ध भारतसंघ व अन्य[4] के वाद में उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधिपति पी.एन.भगवती ने कहा कि जो व्यक्ति लोकहित मुकदमा लेकर न्यायालय में आते है, उन्हें सद्भावनापूर्वक न्याय की रक्षा करने हेतु कार्य करना चाहिए यदि वे व्यक्तिगत लाभ या निजी उपलब्धि या राजनैतिक आशय या अन्य कुटिल विचार से कार्य करते है तो न्यायालय को इस तरह के व्यक्तियों की पहल पर सक्रिय नही होना चाहिए एवं उनके आवेदन को प्रारम्भ में ही निरस्त कर देना चाहिए।

विधिक सेवा प्राधिकरण : संसद ने राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 एवं इसका संशोधन अधिनियम 1994 इस उद्देश्य से पारित किया हैं, कि दूर दराज में रहने वाले गरीब एवं असहाय व्यक्तियों को न्याय प्राप्त करने की सुविधा उपलब्ध हो सकें। लोक अदालत एवं विधिक सहायता शिविरो के माध्यम से समाज के संभ्रान्त लोगों को जोड़कर न्याय उपलब्ध करवाने का प्रयत्न किया जाता हैं। यह अधिनियम प्राधिकरणो पर यह दायित्व डालता हैं कि वे विधिक सेवायें अनुसूचित जाति एवं जनजाति, मानव बेगार, अन्य रूप से असमर्थ व्यक्तियों या अन्य परिस्थितिजन्य व्यक्तियों जैसे जाति अस्पर्शयता, जाति संबंधी हिंसा, बाढ़, सुखा, तुफान अथवा औद्योगिक विपत्तियों से ग्रस्त, औद्योगिक कर्मचारियों का शोषण, पुलिस की सुरक्षा में अपराधी या ऐसे व्यक्ति जिनकी वार्षिक आय कम हैं अर्थात् जो अकिंचन हैं, जिनका मामला उच्चतम न्यायालय में या उच्चतम न्यायालय से भिन्न किसी अन्य न्यायालय में विचाराधीन हैं, ऐसे व्यक्ति उक्त योजना का लाभ प्राप्त करने के अधिकारी हैं।

इसी प्रकार राज्य स्तर पर राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण, जिला स्तर पर जिला विधिक सेवा प्राधिकरण तथा तहसील स्तर पर तहसील विधिक सेवा प्राधिकरण अपने कार्य का संचालन सुचारू रूप से कर रहे हैं।

लोक अदालत : 'न्याय सस्ता, सुलभ एवं त्वरित हो' लोक अदालत की अवधारणा इसी आधार सूत्र की उपज है। आज जगह–जगह लोक अदालतें आयोजित होने लगी है। न्यायालयों के अलावा विभिन्न प्रकार के मामलों को निपटाने के लिए लोक अदालत आयोजित होने लगी है। इस प्रकार लोक अदालत सस्ते, सुलभ एवं त्वरित न्याय का एक सशक्त मंच/माध्यम है। हमारे देश में यह व्यवस्था कोई नयी नही है। प्राचीन पंच परमेश्वर रूपी न्याय व्यवस्था का ही यह एक रूप है। गाँवों में आज भी 'चौपाल पर न्याय' की व्यवस्था प्रचलित है। लोक अदालतों की मुख्य विशेषताएँ हैं–

1. इनमें मामलों का निपटारा पक्षकारों में आपसी समझौते अथवा राजीनामों द्वारा होता है।
2. इसमें पक्षकारों के बीच कटुता को दूर कर उनमें मधुर सम्बन्ध स्थापित किये जाने का भी प्रयास किया जाता है।
3. इसमें खर्च भी बहुत कम आता है।
4. मामलों का निपटारा जल्दी हो जाता है।
5. राजीनामों में न्यायिक अधिकारी, शिक्षक, समाजसेवी आदि मिलकर अपनी भूमिका निभाते है।

लोक अदालत के माध्यम से संविधान में निहित उद्देष्यो को गरीब एवं असहाय लोगों को उपलब्ध करवा कर प्रजातंत्र एवं विधि शासन को प्रभावी रूप से लागू किया जाता हैं। भारतीय संविधान एक ऐसे समाज की परिकल्पना करता हैं, जिसमें सामाजिक–आर्थिक एवं विधिक न्याय सभी व्यक्तियों को समानता के आधार पर उपलब्ध हो। विधि के समक्ष समानता के इस संवैधानिक आदेश को लागू करने के लिए राज्य को यह सुनिष्चित करना हैं कि किसी भी नागरिक को आर्थिक या अन्य अयोग्यताओं के कारण न्याय उपलब्ध करवाने के अवसरो को प्रदान करने से इन्कार नही किया जायें। वैसे न्याय प्रदान करने वाली संस्थाऐ हमेषा इस बात पर तत्पर रहती हैं कि

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

प्रार्थी को न्याय शीघ्र अतिशीघ्र मिल जायें, किन्तु अपने अधिकारों की अज्ञानता के कारण तथा अन्य कारणो से वे न्याय प्राप्ति के लिये यथा योग्य कदम बढ़ाने में असमर्थ होते हैं। क्योंकि गरीब, पिछड़े एवं समाज के कमजोर वर्गो में इस प्रकार की शंका और भय उत्पन्न हो गया हैं कि वे न्याय प्राप्त नही कर सकते हैं। इसलिए समस्त विधिक सेवा कार्यक्रमों एवं योजनाओं को उपर्युक्त प्रभाव को दूर करने हेतु कार्य करना चाहिए तथा समाज के विभिन्न प्रकार से कमजोर वर्गो के मस्तिष्क में यह विश्वास पैदा करना चाहिए कि हमारा न्याय प्रशासन समाज के अंतिम पंक्ति तक के व्यक्तियों को समान न्याय उपलब्ध करवाने के लिये कटिबद्ध हैं।

पटना उच्च न्यायालय ने सुरेन्द्र सिंह एवं अन्य विरूद्ध देवमुनि सिंह एवं अन्य के वाद में यह निर्धारित किया कि स्थायी लोक अदालत नियमित न्यायालय नही होता हैं। वे निर्णय कृत्य नही करते हैं तथा वे केवल कानूनी सुलहकर्ता होते हैं। वे न्यायिक नियत कृत्य नही कर सकते तथा कपट के विवाध्यक के विचारण की अन्तर्निहित अधिकारिता उन्हें प्राप्त नही होती हैं।

लोक अदालत को धारा 2 (सी-1) (घ) विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 में पारिभाषित किया गया हैं जिसके अनुसार लोक अदालत का अर्थ एक ऐसी अदालत से है जो कि विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम की धारा 19 से 22 में सम्मिलित हैं।

लोक अदालत द्वारा दिया गया अधिनिर्णय अंतिम होगा तथा विवाद के समस्त पक्षकारों पर बन्धनकारी होगा।

पंजाब नेशनल बैंक विरूद्ध लक्ष्मीचंद्र के वाद में न्यायालय ने विनिष्चित किया कि लोक अदालत का पंचाट अंतिम होता हैं तथा इसके विरूद्ध किसी न्यायालय में अपील नही की जा सकती परन्तु ज्योति शर्मा विरूद्ध राजेन्द्र कुमार 2010 के मामले में न्यायालय में निर्धारित किया है कि लोक अदालत द्वारा पारित अधिनिर्णय उच्च न्यायालय की रिट अधिकारिता के अधीन हैं तथा इस अधिकारिता के प्रयोग में इसके विरूद्ध सुनवाई की जा सकती हैं। लेकिन रिट अधिकारिता का प्रयोग न्यायालय को आपवादिक मामलों में ही करना चाहिए।

पंजाब राज्य विरूद्ध फूलनरानी एवं अन्य के वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि लोक अदालत अपने अधिनिर्णय, समझौते या परिनिर्धारण के आधार पर देगी। यदि पक्षकारों के मध्य कोई समझौता न हो सके तो लोक अदालत कोई अभिनिर्धारण या आदेश पारित नही करेगी।

सकारात्मक रूप से कहा जाय तो विधिक शिक्षा के विकास में भारतीय विधिक परिषद् का योगदान सराहनीय हैं। अधिवक्ता अधिनियम की धारा 7 के अनुसार इसके कार्यों में विधिक शिक्षा का उन्नयन करना और ऐसी शिक्षा प्रदान करने वाले भारत के विश्वविद्यालयों और राज्य विधिक परिषदों से विचार विमर्श करके ऐसी शिक्षा के मानक निर्धारित करना सम्मिलित है। बार काउन्सिल ऑफ इण्डिया ने वास्तव में विधिक शिक्षा के विकास में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वर्तमान समय में स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् तीन वर्षीय विधि पाठ्यक्रम एवं इन्टरमिडिएट के बाद पांच वर्षीय विधि पाठ्यक्रम दोनों ही अस्तित्व में है। परन्तु पंचवर्षीय पाठ्यक्रम बेहतर माना जाता है। बेहतर होगा यदि सम्पूर्ण भारत वर्ष में पंचवर्षीय पाठ्यक्रम को अनिवार्य कर दिया जाय। भारत के प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में एक समान पाठ्यक्रम नही है, सभी विश्वविद्यालयों में एक समान पाठ्यक्रम लागू किया जाना चाहिए, जिससे विद्यार्थी को अपना पाठ्यक्रम पूरा करने का समान अवसर बगैर किसी परेशानी के प्राप्त हो सकें।

उक्त के ठीक विपरीत नकारात्मक रूप से यह कहा जा सकता हैं कि भारतीय विधिक परिषद् विधिक शिक्षा में आवश्यकतानुसार नये परिवर्तनों को लागू करने में विफल रहा है। भारतीय विधिक परिषद् का यह दृष्टिकोण है कि कानूनी शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य वकीलों को उत्पन्न करना हैं। जिस प्रकार प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक शिक्षा का आदर्श राष्ट्र को अच्छे नागरिक प्रदान करना होना चाहिये उसी प्रकार उच्चतर माध्यमिक के पश्चात् कि विधिक शिक्षा का आदर्श/लक्ष्य राष्ट्र के लिए लाभप्रद विधिक ज्ञान रखने वाले ऐसे विधिज्ञो को उत्पन्न करना होना चाहिये जो भारत को विश्व शिखर पर स्थापित करने के अपनी भूमिका का निर्वहन कर सकें। क्योंकि आज विधिक शिक्षा को न केवल बार की आवश्यकताओं और व्यापार, वाणिज्य और उद्योग की नई जरूरतों को पूरा करना है किन्तु वैश्वीकरण की आवश्यकताओं को भी पूरा करना है। अन्तर्राष्ट्रीय आयाम वाले नये विषय विधिक शिक्षा में आ गये हैं। बदलते परिदृष्य में अब व्यापार एवं वाणिज्य में गैर स्नातक विधि स्नातकों की भी एक बहुत बड़ी आवश्यकता है। अन्तर्राष्ट्रीय विधिक शिक्षा का उद्देश्य अब मात्र ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना मात्र ही नही होना चाहिए जो विभिन्न न्यायालयों में विधि का अभ्यास कर सकते है। यद्यपि ऐसे कार्यक्रम के इस तरह की क्षमता को अपने आप में एक उद्देश्य के रूप में नही देखा जाना चाहिए बल्कि केवल एक अच्छे परिणाम के रूप में देखा जाना चाहिए। हमारी विधिक शिक्षा से विद्यार्थियों को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, प्रथाओं, तुलनात्मक कानून, कानूनों के संघर्ष, अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकार कानून, पर्यावरण कानून, लिंग न्याय, अंतरिक्ष कानून, जैव चिकित्सा कानून, जैव नीति, अन्तर्राष्ट्रीय समर्थन आदि विषयो में विशेषज्ञता प्राप्त होना चाहिए।

विधि-पत्रिकाओं का भी विधि शिक्षा के विकास में विशेष महत्व होता हैं। विधि-जर्नल और रिपोर्ट की संख्या पर्याप्त नही हैं इसमें वृद्धि करने की व्यावस्था करनी चाहिए। विधि जर्नल एवं रिपोर्ट में सरल विधिक भाषा का उपयोग होना चाहिए ताकि विद्यार्थीगण भी इसका आसानी से लाभ उठा सकें।

विधिक शिक्षा की सफलता मुख्य रूप से शिक्षक गण, पुस्तकालय, विधि रिपोर्ट विधि विद्यार्थियों के लिए विहित पाठ्यक्रम, शोध सुविधाओं इत्यादि पर आधारित होनी चाहिए। अच्छे शिक्षकों को आकर्षित करने के लिए उन्हें अच्छा वेतन तथा अन्य सुविधाएँ प्रदान करना आवश्यक है। अच्छी पुस्तकें क्रय करने के लिए पुस्तकालयों को पर्याप्त धन प्रदान करना आवश्यक है। विद्यार्थियों की संख्या के अनुसार शिक्षकों की संख्या भी अच्छे पठन-पाठन के लिए आवश्यक है। विधि शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए कि विद्यार्थियों को सैद्धांतिक ज्ञान के साथ ही व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त हो।

विधि शिक्षा के विकास में पुस्तकों का बड़ा महत्व है। अनेक शिक्षकों एवं अधिवक्ताओं द्वारा विधि पुस्तकें लिखी जाती है परन्तु वे पर्याप्त नही है। पुस्तक लेखन कार्य को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। अच्छी पुस्तकें लिखने वाले शिक्षकों को सम्मानित करने की योजना भी बनाना चाहिए। ऐसे बहुत से शिक्षक है जो अच्छी पुस्तकें लिखना चाहते है परन्तु उन्हें प्रकाशक नही मिलते है। सरकार और बार काउंसिल ऑफ इंडिया को आगे आना चाहिए और अच्छी पुस्तकों को प्रकाशित करने की व्यवस्था करना चाहिए।

वर्तमान में विधि के क्षेत्र में शोध कार्य भी पर्याप्त नही है, अतः शोधकार्य हेतु प्रोत्साहन भी दिया जाना चाहिए। एम.पी. दीक्षित का यह सुझाव बेहतर

प्रतीत होता हैं कि विधि–विद्यालयो को न्यायालय से उसी प्रकार सम्बद्ध करना चाहिए जैसे कि मेडिकल कॉलेजो को अस्पतालों से सम्बद्ध किया जाता हैं। विद्यार्थियों को व्यवहारिक प्रशिक्षण देने में भी यह उपयोगी होगा।

उचित होगा यदि प्रत्येक राज्य में एक विधि शिक्षा समिति की स्थापना की जाये और राष्ट्रीय स्तर पर एक अखिल भारतीय विधिक शिक्षा समिति की स्थापना की जाए। राज्य समिति को अखिल भारतीय समिति की देखरेख एवं नियंत्रण में कार्य करें चाहिए। राज्य समिति राज्य में विधि शिक्षा देने वाले संस्थानो का निरीक्षण करना चाहिए। इसे स्वच्छ परीक्षा के निमित्त उचित कार्यवाही करने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिए। इसके सदस्यगण परीक्षा के दौरान उड़ाका दल के रूप में कार्य करें। परीक्षा में नकल होने पर इसे परीक्षा निरस्त करने की शक्ति प्राप्त होना चाहिए, साथ ही उसे किसी विधि–विद्यालय अथवा विश्वविद्यालय के विधि विभाग में छात्रो की संख्या के निर्धारण की भी शक्ति प्राप्त होना चाहिए।

विधिक शिक्षा के उत्थान के निमित्त विधिज्ञ परिषद्, विधि शिक्षक, न्यायाधीशगण एवं सरकार सभी का सहयोग आवश्यक है। विधि शिक्षा से संबंधित मामलो में इन सभी की सहमति से निर्णय लेना बेहतर होगा। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि विधि–शिक्षको के पूर्ण सहयोग के बिना विधि शिक्षा सम्बन्धी योजनाओं का कार्यान्वयन उचित रूप से करना दुष्कर होगा। विधि शिक्षको के अनुभव को दृष्टीकृत रखते हुए विधि स्नातक पाठ्यक्रम बनाने एवं परीक्षा सम्बन्धी नियम बनाने का कार्य विधि शिक्षको को ही दिया जाना चाहिये।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. भारत का संविधान – डॉ. जयनारायण पाण्डेय
2. जनहित वकालत, विधिक सहायता एवं विधिक सेवायें – डॉ. कैलाश राय
3. लीगल एण्ड पब्लिक इन्ट्रेस्ट लायरिग एण्ड पैरा लीगल सर्विसेज – डॉ. बसन्तीलाल पाण्डेय.
4. भारत का संविधान – डॉ. बसन्तीलाल बावेल
5. लोकहितवाद, विधिक सहायता एवं विधिक सेवायें, लोक अदालत तथा पैरा–लीगल सेवायें–प्रो. (डॉ.) हरिमोहन मितल

फुटनोट:-

1. AIR 1980 SC 1579
2. AIR 1978 SC 1548
3. AIR 1984 SC 1802
4. AIR 1992 SC 189

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

श्राद्ध माता-पिता के ऋण से उऋण होने के लिए सरल मार्ग

डॉ. दादूभाई त्रिपाठी*

* व्याख्याता, कांगेर वैली अकादमी, निकट पं रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.) भारत

प्रस्तावना - मनुष्य सभी ऋणों से मुक्त हो सकता है किन्तु माता-पिता के ऋण से मुक्त होना संभव नहीं है, क्योंकि माता-पिता जो कुछ अपनी संतान के लिए करते हैं, उसका मूल्यांकन संभव नहीं है। इसलिए उनका इसमें उनका समर्पण उनकी देन अतुलनीय है और पितृपक्ष में उन्हें स्मरण कर उनके लिए पूजा अर्चना करना हमारी सांस्कृतिक परंपरा है। जिससे हमें सुख एवं संतुष्टि प्राप्त होती है इसीलिए मानवीय मर्यादाओं में पितरों का श्राद्धादिक कर्म करना श्राद्ध कर्म करने की आवश्यक आवश्यक है। शास्त्रों में कहा गया है कि पुत्र अपने पिता के श्राद्ध के उद्देश्य से जितने कदम गया क्षेत्र की ओर चलता है, उतने ही कदम उनके पितरों के लिए स्वर्गारोहण सोपान बन जाते हैं। वायुपुराण में ऐसा कहा गया है।

गृहाच्चलितमात्रेण,गयायां गमनं प्रति।
स्वर्गारोहणसोपानं,पितृणां च पदे पदे।।
(वायुपुराणम् 105, 9, 39)

अत्यधिक शुद्धता के साथ देव ऋषि तथा पितरों का तर्पण करना चाहिए। इसीलिए पितृपक्ष के अवसर पर उन्हें श्राद्ध कर्म के द्वारा संतुष्ट करने से सुख समृद्धि प्राप्त होती है आश्विन मास के पितृपक्ष में पितरों को आशा लगी रहती है कि उनके पुत्र-पौत्र आदि तिलांजलि प्रदान कर उन्हें संतुष्ट करेंगे इसी आशा से पितर, पितृ लोक से पृथ्वी लोक पर आते हैं।

'पितरस्तस्य शापं दत्त्वा प्रयान्ति च' (नारद खंड)

अगर उन्हें यह सब नहीं मिलता तो वह न केवल निराश लौटते हैं बल्कि क्रोध आवेश में शाप तक दे देते हैं।

ब्रह्म पुराण पुराण में वर्णन आता है कि मृत प्राणी बाध्य होकर श्रद्धा न करने वाले अपने सगे संबंधियों का रक्त चूसने लगते हैं।

'श्राद्धं न कुरूते मोहात तस्य रक्तं पिबन्ति ते।' (ब्रह्म पुराण)

शास्त्र सम्मत जो बातें हैं उसके अनुसार जिस प्रकार काशी में व्यक्ति की मृत्यु होने पर उसे सायुज्य मोक्ष की प्राप्ति होती है। ठीक उसी प्रकार गया में मृत आत्मा को पिंडदान आदि कर देने से उन्हें ऊर्ध्व गति की प्राप्ति होती है।

काश्यां मरणान्मुक्तिः (काशी खंड)

श्राद्ध तर्पण एवं पिंडदान की परंपरा गया में कब से प्रारंभ हुई इसके पीछे अनेक मत मतान्तर हैं। आदि वैदिक युग में जब शवदाह की परंपरा प्रचलित नहीं थी तो लोग शव को देश की भूमि में समाधि दे दिया करते थे। किंतु उत्तर वैदिक काल में सिर्फ शवदाह की ही परंपरा थी। हालांकि उस युग में भी कहीं-कहीं दाह और समाधि इन दोनों ही परंपराओं का उल्लेख मिलता है। निष्कषर्तः भारत में दाह कर्म के प्रचलन के साथ ही वैदिक पितृ पिंडदान की परंपरा शुरू हुई।

जहाँ तक श्राद्ध, पिंडदान एवं तर्पण के पीछे छिपी वैज्ञानिकता का प्रश्न है उसके अनुसार इन दोनों पितृ पक्ष विशेष अवधि में चंद्रमा अन्य महीनों की अपेक्षा पृथ्वी के अधिक निकट हो जाता है। इस कारण उसकी आकर्षण शक्ति का प्रभाव पृथ्वी तथा उसमें अधिष्ठित प्राणियों पर विशेष रूप से पड़ता है। तभी जितने सूक्ष्म शरीर युक्त जीव चंद्रलोक के ऊपरी भाग में स्थित पितृ लोक में जाने के लिए बहुत समय से चल रहे होते हैं या चल पड़ते हैं। उनके उद्देश्य से उनके संबंधियों द्वारा प्राप्त पिंड अपने अंतर्गत सोम के अंश से उन जीवों को अध्यायित करके, उनमें विशिष्ट शक्ति उत्पन्न करके बिना अपनी सहायता के ही पितृलोक में उपलब्ध करा देता है। तब वह पितर भी उनकी ऐसी सहायता पाकर उन्हें हृदय से समृद्धि तथा वंश वृद्धि का आशीर्वाद देते हैं।

आश्विन मास के कृष्ण पक्ष की मृतक तिथि में यहां सभी मृतक पितरों के श्राद्ध किए जाते हैं। प्रतिवर्ष आश्विन मास एवं तिथि में जो श्राद्ध किए जाते हैं उसके पीछे भी कारण यह है कि वह तिथि ही कारण होती है। चंद्रमा की चंद्र गति के अनुसार उस समय चंद्रलोक में वे भीतर इस मार्ग में स्थित होते हैं जब वह इस तिथि में मरकर मार्ग को प्राप्त हुए थे। तब वह सूक्ष्म अग्नि से प्राप्त कराए हुए उसे श्राद्ध के सूक्ष्म अंश को अनायास प्राप्त कर लेते हैं।

अब श्राद्ध सामग्री पर ही विचार करें तो श्राद्ध के समय पृथ्वी पर कुश रखे जाते हैं और कुशों पर फूल फल एवं अक्षत आदि में पिंड प्रदान किए जाते हैं, उसके पीछे भी एक अलग विज्ञान छिपा है। चावल और जव में ठंडी बिजली होती है,तथा तिल और दूध में गर्म बिजली होती है, जबकि तुलसी में इन दोनों ही प्रकार की बिजली मौजूद होती है। जब कोई वेदविद् कर्मकांडी तथा ज्ञानी विद्वान अपने नियत पद प्रयोग परिपाटी वाले तथा नियम के अनुसार पितृ गानों से संबंध संबंध वेद मन्त्रों को पढ़ता है तब नाभि चक्र से समुचित वायु पुरुष के शरीर में एकाएक उष्ण विद्युत उत्पन्न करके उसे शरीर से अलौकिक वैदिक क्रिया सिद्ध विद्युत भी पिंडों में प्रवेश करता है।

यूँ तो श्राद्ध के संबंध में हमारे धर्मशास्त्रों में बहुत कुछ लिखा गया है। कहा गया है कि मृत्यु के बाद कर्ण को चित्रगुप्त ने मोक्ष देने में असमर्थता व्यक्त की। कर्ण ने कहा - मैंने तो सारी सम्पदा दान पूण्य में ही समर्पित की है। इसके उपरान्त भी मेरे ऊपर यह कैसा ऋण शेष रह गया है, जो मुझे मुक्ति नहीं मिल रही है। चित्रगुप्त का उत्तर था- राजन देवऋण और ऋषि-ऋण से मुक्त हो चुके हैं, पर आपके ऊपर पितृऋण शेष है। जब तक आप इस ऋण से

मुक्त नहीं होंगे, तब तक आपको मोक्ष मिलना कठिन होगा। इसके बाद धर्मराज ने कर्ण को यह व्यवस्था दी कि आप सोलह दिनों के लिए पुन: पृथ्वी पर जाइए तथा अपने ज्ञात और अज्ञात पितरों का श्राद्धतर्पण विधिवत् करके आइए, तभी आपको मोक्ष की प्राप्ति होगी और फिर कर्ण ने ऐसा ही किया।

श्राद्ध कर्म में जहां सुपात्र ब्राह्मण को भोजन कराने की व्यवस्था है, वहीं उसके भोजन सामग्री पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। विष्णु पुराण के अनुसार श्राद्ध काल में भक्ति और विनम्रचित्ता से उत्तम ब्राह्मणों को यथाशक्ति भोजन करना अनिवार्य माना गया है। असमर्थ होने पर श्रेष्ठ ब्राह्मणों को कच्चा धान्य और थोड़ी दक्षिणा भी दे देने से यह क्रिया सार्थक हो जाती है। यदि उसमें भी असमर्थ हों तो केवल आठ तिलों से ही श्रद्धांजलि दी जा सकती है। यह भी ना हो सके तो कहीं से गाय का चारा लाकर श्रद्धा और भक्तिपूर्वक गाय को खिला देने से श्राद्ध का फल प्राप्त हो जाता है। उपर्युक्त सभी वस्तुओं के अभाव में सिर्फ एकांत में खड़े होकर श्रीसूर्य आदि दिक्पालों से हाथ उठाकर अपनी असमर्थता और अपने पितरों के प्रति अगाध श्रद्धा निवेदित कर देने से भी श्राद्ध का कर्म सफल मान लिया जाता है

नेमेऽस्ति वित्तं न धनं न चान्य,
च्छ्राद्धोपयोग्यं स्वपितृन्नतोऽस्मि।
तृप्यन्तु भक्त्या पितरौ मयैतौ,
कृतौ भुजौ वर्त्मनि मारूतस्य।।

श्राद्ध कर्म में चावल, दूध और तिल को मिलाकर जो पिंड बनाते हैं उसे 'सपिंडीकरण' कहते हैं। पिंड का अर्थ है 'शरीर'। यह एक पारंपरिक विश्वास है, जिसे विज्ञान भी मानता है कि प्रत्येक पीढ़ी के भीतर मातृकुल तथा पितृकुल दोनों में पहले के पीढ़ियों के समन्वित गुणसूत्र उपस्थित होते हैं। चावल के पिंड जो पिता, दादा, परदादा और पितामह के शरीरों का प्रतीक है। उन्हें आपस में मिलाकर फिर अलग बाँटते हैं। यह प्रतीकात्मक अनुष्ठान जिन-जिन लोगों के गुणसूत्र श्राद्ध करने वाले की अपनी देह में है, उनकी तृप्ति के लिए होता है। श्राद्ध उस संतुष्टि की प्राप्ति का माध्यम है और श्राद्ध पक्ष में अपने पूर्वजों के लिए अपनी सामर्थ्य के अनुसार जो भी कर पाते हैं, उसमें कहीं न कहीं हमारी आत्मा को भी संतुष्टि प्राप्त होती है। इस कारण सभी पुत्रों को गया श्राद्ध करना पुत्रधर्म है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. वायुपुराण गीताप्रेश, गोरखपुर-2010
2. अन्त्यकर्म श्राद्धप्रकाश, गोरखपुर-2015
3. ब्रह्मपुराण, गोरखपुर-2010
4. मरणोत्तर श्राद्धकर्मविधान - श्रीरामशर्मा, युगनिर्माण योजना गायत्री तपोभूमि, मथुरा 2005
5. सुगम श्राद्धविधि- पं दिगम्बर झा, प्रज्ञा प्रकाशन, बेगूसराय विहार।

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

दक्षिणी राजस्थान में जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना का एक तुलनात्मक भौगोलिक विश्लेषण (2001-2011)

डॉ.राजेन्द्र कुमार मेघवाल*

* सहायक आचार्य भूगोल (वीएसवाय) राजकीय महाविद्यालय छोटी सरवन, बांसवाड़ा (राज.) भारत

शोध सारांश – राजस्थान के दक्षिणी भाग में स्थित भीलवाड़ा, राजसमन्द, उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, चित्तौड़गढ़ एवं प्रतापगढ वाला यह क्षेत्र दक्षिणी राजस्थान के नाम से जाना जाता हैं। प्रदेश का अक्षांशीय विस्तार 23°1'10'' से 26°1'15'' उत्तरी अक्षांश तथा 73°1'10'' पूर्वी देशान्तर से 75°43'30''पूर्वी देशान्तर तक अवस्थित हैं। इसका क्षेत्रफल 47397 वर्ग किमी है जो समस्त राजस्थान के क्षेत्रफल 342239 वर्ग किमी का 13.85 प्रतिशत हिस्सा हैं। इसका विस्तार पूर्व से पश्चिम 240 किमी तथा उत्तर से दक्षिण 210किमी हैं। यह क्षेत्र मध्यप्रदेश एवं गुजरात राज्यों की सीमा से जुड़ा हुआ हैं। उत्तर पूर्व से बूंदी एवं कोटा जिले पूर्व से रतलाम, मंदसौर एवं झाबुआ जिले (मध्यप्रदेश) तथा दक्षिण-पूर्व से गुजरात राज्य के बनासकांठा, सांबरकांठा तथा पंचमहल और पश्चिम में पाली तथा सिरोही जिलों से घिरा हुआ हैं। शोध क्षेत्र में 1981 में 47 तहसीले हैं, 1991 में 49 तथा वर्ष 2001 में तहसीलो की संख्या 51 हो गई। भारत की जनगणना 2011 के अनुसार तहसीलों की संख्या 54 हैं।सन् 2001 में क्षेत्र की कुल जनसंख्या 10046881 थी, जो राजस्थान की कुल जनसंख्या (56507188) का 17.78 प्रतिशत हिस्सा थी। सन् 2011 में क्षेत्र की कुल जनसंख्या 12231763 है, जो राज्य की कुल जनसंख्या (68548437) का 17.84 प्रतिशत हिस्सा हैं।जिसमें पुरुष जनसंख्या 50.64 प्रतिशत तथा महिला 49.36 प्रतिशत हैं। 2001 से 2011 के मध्य दशकीय वृद्धि दर 21.75 प्रतिशत रही हैं। दशकीय वृद्धि दर 2001 (25.64) की तुलना में -3.89 की गिरावट दर्ज की गई हैं जो क्षेत्र में शिक्षा, चिकित्सा, स्वास्थ्य सुविधाओं के बेहतर उपलब्धता का परिणाम हैं। 1901 से 2011 के मध्य 111 वर्षो की दशकीय वृद्धि दर का विश्लेषण करने से ज्ञात हुआ कि 1931, 1941, 1961, 1971, 1981 तथा 2001 में दशकीय वृद्धि दर धनात्मक रही तथा 1921, 1951, 1991, व 2011 के वर्षो में दशकीय वृद्धि दर ऋणात्मक रही । अध्ययन क्षेत्र में आज भी लोग मानसूनी कृषि पर रहकर अपना जीवनयापन करते है जिसके कारण क्षेत्र में अकार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत ज्यादा हैं।

प्रस्तावना – वर्तमान युग में जनसंख्या वृद्धि के अनुरुप विकास के आयाम सुनिश्चित होते हैं। अत: शोध के अन्तर्गत जनसंख्या संरचना का विश्लेषण आवश्यक हैं। मानव आर्थिक एवं सांस्कृतिक संरचनाओं उत्पादन, उपभोग, विनिमय, वितरण तथा राजस्व द्वारा क्षेत्रीय व प्रादेशिक विकास को आधार प्रदान करता हैं। दक्षिणी राजस्थान के भौगोलिक स्वरुप में मृदा, खनिज,वनस्पति जल संसाधन में क्षेत्रीय एवं स्थानिक विभिन्नताएँ मौजुद है इन्ही विभिन्नताओं ने प्रदेश में जनांकिकीय विषमताओं को जन्म दिया हैं। अध्ययन क्षेत्र में मुख्य कार्यशील, सीमान्त कार्यशील तथा अकार्यशील जनांकिकीय पक्षों की प्रवृतियों को उजागर करने के साथ -साथ व्यावसायिक जनसंख्या की प्रवृति को समझने में सहायक होगा।

अध्ययन के उद्देश्य– शोध क्षेत्र में व्यावसायिक जनसंख्या की संरचना का अध्ययन करने हेतु निम्न उद्देश्य हैं:

1. दक्षिणी राजस्थान में कुल कार्यशील जनसंख्या का विश्लेषण करना (2001-2011)
2. कुल जनसंख्या में से मुख्य, सीमान्त, तथा अकार्यशील जनसंख्या का तुलनात्मक विश्लेषण करना।
3. दक्षिणी राजस्थान की व्यावसायिक जनसंख्या की संरचना का विश्लेषण, शोध क्षेत्र एवं राजस्थान राज्य के संदर्भ में करना।

परिकल्पना:

1. दक्षिणी राजस्थान के विभिन्न जनसांख्यिकीय वर्ग जो कृषि, विनिर्माण और परिवहन जैसे कई अन्य क्षेत्रों में कार्यरत हैं, एक प्रदेश की

व्यावसायिक संरचना का गठन करते हैं।

2. क्षेत्र में कार्यरत जनसंख्या का प्रतिशत भिन्न-भिन्न हैं, उनके घटकों का पता लगाकर भावी व्युह रचना प्रस्तुत करना हैं।
3. मनुष्य या मानव जाति आने वाले कल का अनुमान लगाकर पूर्व तैयारी की रुपरेखा प्रस्तुत करना चाहता हैं।

विधि तंत्र- प्रस्तुत शोध कार्य में विवरणात्मक, विश्लेषणात्मक, शोध विधियों का प्रयोग किया गया हैं।

1. भारत की जनगणना 2001-2011 से द्वितीयक आंकड़े प्राप्त किए गए हैं।
2. राजस्थान की जिला सांख्यकीय रुपरेखा द्वारा द्वितीयक आंकड़ों का संग्रहण किया गया।
3. राजस्थान की कूल जनसंख्या में दक्षिणी राजस्थान की जनसंख्या का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया हैं।
4. शोध क्षेत्र की व्यावसायिक संरचना का तुलनात्मक विश्लेषण 2001-2011 के मध्य किया गया।

दक्षिणी राजस्थान में व्यावसायिक जनसंख्या संरचना – किसी राष्ट्र या क्षेत्र की कूल जनसंख्या में कार्यरत जनसंख्या के विभिन्न व्यवसायों में संलग्नता की स्थिति को जनसंख्या व्यावसायिक संरचना कहा जाता हैं। इसे सक्रिय जनसंख्या के रुप में भी अभिव्यक्त किया जाता हैं। इसमें मनुष्य प्राथमिक कार्य में आखेट, मत्स्य पालन, संग्रहण, कृषि,पशुपालन, वानिकी में मधुमक्खी पालन आदि क्रियाओं में सम्मिलित रहता हैं। द्वितीयक व्यवसाय में विनिर्माण उद्योग तथा शक्ति उत्पादन सम्मिलित हैं। प्रत्येक व्यवसाय में परिवहन, व्यापार, संचार, बैंकिंग प्रणाली एवं सेवाएँ सम्मिलित हैं। चतुर्थक व्यवसाय में उच्च सेवाएँ, भावी योजनाएँ, प्राविधिक ज्ञान, अनुसंधान तथा नवीन शोध क्रियाएँ सम्मिलित हैं।

व्यावसायिक संरचना प्रदेश में जनसंख्या की कार्यशीलता के स्वरुप को इंगित करती है जिससे अध्ययन क्षेत्र के आर्थिक तथा सामाजिक विकास का स्वरुप निर्धारित होता हैं। यह संरचना प्रदेश के भौगोलिक क्षेत्र में होने वाले कार्यो तथा उपयोग में लिए जाने वाले संसाधनों तथा कार्यशील तथा अकार्यशील जनसंख्या की वस्तुस्थिति को स्पष्ट करता हैं।

व्यावसायिक जनसंख्या का अर्थ – 'वह व्यक्ति जो लाभ, बिना लाभ के आर्थिक उत्पादक क्रियाओं में संलग्न है या एक वर्ष की अवधि में किया गया कार्य।'

क्रियाशील सक्रिय जनसंख्या – 'वह जनसंख्या जो पारिश्रमिक व्यावसायिक कार्यो में संलग्न हैं इन्ही कार्यो से अपनी आजिविका कमाने वाले जनसमूह को आर्थिक दृष्टि से क्रियाशील सक्रिय जनसंख्या कहते हैं, जिसमें से 15-59 वर्ष के स्त्री -पुरुष की जनसंख्या सम्मिलित हैं।'

स्रोत: Census Of India 2011

निष्क्रिय जनसंख्या – 'जनसंख्या का जो भाग लाभकारी, आर्थिक कार्यो में भाग नहीं लेता है, जिसमें घरेलु कार्यो में लगे व्यक्ति, सेवानिवृत व्यक्ति, छात्र, रॉयल्टी, किराया, पेन्शन आदि पर निर्भर व्यक्ति शामिल हैं।'

स्रोत: Census Of India 2011

- **कुल कार्यशील जनसंख्या (2001-2011)-** इसमें मुख्य कार्यशील तथा सीमान्त कार्यशील जनसंख्या सम्मिलित हैं। शोघ क्षेत्र में 2011 में कुल कार्यशील जनसंख्या 5906917 हैं जो अध्ययन क्षेत्र की कूल जनसंख्या 12231763 का 48.29 प्रतिशत है जबकि राज्य की कूल जनसंख्या का 8.62 प्रतिशत हिस्सा हैं। 2001 में शोध क्षेत्र में कूल कार्यशील जनसंख्या 4613713 थी जो अध्ययन क्षेत्र की कूल जनसंख्या 10046881 का 45.92 प्रतिशत हिस्सा थी व राज्य की कूल जनसंख्या का 8.16 प्रतिशत हिस्सा थी। सन् 2001 से 2011 के मध्य कूल कार्यशील जनसंख्या का दशकीय तुलनात्मक अध्ययन किया तो 2001 की तुलना में 2011 में शोध क्षेत्र की कूल जनसंख्या में कार्यशील जनसंख्या का 2.37 प्रतिशत की वृद्धि हुई तथा 2001 की तुलना में 2011 में कुल कार्यशील दशकीय जनसंख्या में 28.03 प्रतिशत की वृद्धि दर देखी गई हैं, जो क्षेत्र में व्यवसाय के सकारात्मक पक्ष को दर्शाता हैं।
- **कुल कार्यशील पुरुष जनसंख्या-**क्षेत्र में 2011 में कुल पुरुष कार्यशील जनसंख्या 3367145 हैं जो कुल कार्यशील जनसंख्या का 57 प्रतिशत, अध्ययन क्षेत्र की कुल जनसंख्या का 27.53 प्रतिशत एवं राज्य की कुल जनसंख्या का 4.91 प्रतिशत हिस्सा हैं।
- **कुल कार्यशील महिला जनसंख्या-** क्षेत्र में 2011 में कूल महिला कार्यशील जनसंख्या 2539772 हैं जो कुल कार्यशील जनसंख्या का 42.99 प्रतिशत, शोध क्षेत्र की कुल जनसंख्या का 20.76 प्रतिशत हिस्सा हैं।

1. मुख्य कार्यशील जनसंख्या (2001-2011) -दीर्घकालीन कर्मी वह व्यक्ति है जो एक वर्ष में 6 महीने या इससे अधिक समय तक काय करता हो उसे दीर्घकालिक/मुख्य कार्यशील/मुख्यकर्मी जनसंख्या कहा जाता हैं। इसको चार भागों में बाँटा गया हैं:

1. काश्तकार
2. खेतिहर मजदूर
3. पारिवारिक उद्योगकर्मी
4. अन्य कर्मी

2011 में मुख्य कार्यशील जनसंख्या 3812011 हैं, जो शोध क्षेत्र की कुल कार्यशील जनसंख्या का 64.54 प्रतिशत, दक्षिणी राजस्थान की कुल जनसंख्या का 31.16 प्रतिशत तथा राजस्थान की कुल आबादी का 5.56 प्रतिशत भाग हैं। जबकि 2001 में मुख्य कार्यशील जनसंख्या 3316313 थी जो शोध क्षेत्र की कुल जनसंख्या का 71.89 प्रतिशत तथा राज्य की कुज जनसंख्या का 5.87 प्रतिशत भाग था। 2001 की तुलना में 2011 में मुख्य कार्यशील जनसंख्या में दशकीय वृद्धि दर 14.95 प्रतिशत रहीं हैं, जो क्षेत्र में लगातार रोजगार के साधनों की बढोतरी, सार्वजनिक एवं औपचारिक-अनौपचारिक संस्थाओं द्वारा रोजगार के नित नए अवसर सृजित किए जा रहे हैं।

(1.1) मुख्य कार्यशील पुरुषकर्मी जनसंख्या- शोध क्षेत्र में 2011 में मुख्य पुरुषकर्मी जनसंख्या 2607965 हैं जो क्षेत्र की कुल मुख्यकर्मी जनसंख्या का 68.41 प्रतिशत, क्षेत्र की कुल कार्यशील जनसंख्या का 44.15 प्रतिशत तथा राज्य की कुल जनसंख्या का 3.80 प्रतिशत हैं।

(1.2) मुख्य कार्यशील महिलामकर्मी जनसंख्या – 2011 में मुख्य महिला कर्मी जनसंख्या 1204096 हैं जो कुल मुख्य कार्यशील जनसंख्या का 31.59 प्रतिशत, कुल कार्यशील जनसंख्या का 20.38 प्रतिशत क्षेत्र की कुल जनसंख्या का 9.84 प्रतिशत तथा राजस्थान की कुल जनसंख्या का 1.76 प्रतिशत भाग हैं।

2. कुल सीमान्त कार्यशील जनसंख्या (2001-2011) – वह व्यक्ति जो वर्ष में 6 महीने से कम कार्य करता हो अल्पकालिक कर्मी की श्रेणी में

रखा गया हैं। 2011 में अल्पकालिक कर्मी को दो उपभागों में बाँटा गया हैं-

- वे कर्मी जो वर्ष में 3 से 6 महीने कार्य करते हैं।
- वे कर्मी जो वर्ष में 3 महीने से कम कार्य करते हैं।

1. काश्तकार
2. खेतिहर मजदूर
3. पारिवारिक उद्योगकर्मी
4. अन्य कर्मी

शोध क्षेत्र में 2011 में कुल सीमान्त कर्मी जनसंख्या 2094906 हैं, जो क्षेत्र की कुल कार्यशील जनसंख्या का 35.46 प्रतिशत क्षेत्र की कुल जनसंख्या का 17.13 प्रतिशत तथा राजस्थान की कुल जनसंख्या का 3.06 प्रतिशत हिस्सा हैं, जबकि 2001 में कुल सीमान्त कर्मी जनसंख्या 1297400 थी, जो क्षेत्र की कुल कार्यशील जनसंख्या का 28.12 प्रतिशत, शोध क्षेत्र की कुल जनसंख्या का 12.91 प्रतिशत तथा राज्य की कुल जनसंख्या का 2.30 प्रतिशत हिस्सा थी। 2001 की तुलना में 2011 में दशकीय सीमान्त कर्मी की जनसंख्या में 61.47 प्रतिशत की वृद्धि दर रही हैं, जो क्षेत्र में सीमान्त कर्मी जनसंख्या का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, समावेशीय विकास के स्तर को दर्शाता हैं।

2.1 सीमान्त पुरुषकर्मी जनसंख्या - 2011 में सीमान्त पुरुषकर्मी जनसंख्या 759180 है, जो कुल कार्यशील जनसंख्या का 12.85 प्रतिशत, क्षेत्र की कुल जनसंख्या 6.21 प्रतिशत तथा राज्य की कुल जनसंख्या का 1.10 प्रतिशत हिस्सा हैं। सबसे ज्यादा सीमान्त पुरुषकर्मी जनसंख्या सराड़ा तहसील में 47.62 प्रतिशत हैं जबकि सबसे कम धरियावद में 22.40 प्रतिशत रहीं हैं।

2.2 सीमान्त महिलाकर्मी जनसंख्या - 2011 में 1335726 जनसंख्या है जो कुल कार्यशील जनसंख्या का 22.61 प्रतिशत, क्षेत्र की कुल जनसंख्या का 11 प्रतिशत तथा राज्य की कुल जनसंख्या का 1.95 प्रतिशत हैं।

3. अकार्यशील जनसंख्या (2001-2011) - इनके अन्तर्गत वे लोग सम्मिलित हैं जो वर्ष में कोई कार्य नहीं करते हैं इनमें विद्यार्थी, आश्रित, पेंशनर्स, भिखारी, आदि सम्मिलित हैं। 2011 में कुल अकार्यशील जनसंख्या 6324846 है, जो शोध क्षेत्र की कुल जनसंख्या का 51.71 प्रतिशत राज्य की कुल जनसंख्या का 9.23 प्रतिशत हैं, जबकि 2001 में कुल अकार्यशील जनसंख्या 5433168 थी जो क्षेत्र की कुल जनसंख्या का 9.62 प्रतिशत हिस्सा थी। 2001 से 2011 के मध्य 891678 अकार्यशील जनसंख्या की वृद्धि हुई जो 16.41 प्रतिशत दशकीय वृद्धि दर को दर्शाता हैं।

3.1 अकार्यशील पुरुष जनसंख्या - 2011 में गैरकर्मी जनसंख्या 2826932 है जो शोध क्षेत्र की कुल जनसंख्या का 23.11 प्रतिशत तथा राज्य का 4.12 प्रतिशत हिस्सा है। 54 तहसीलों में सबसे ज्यादा अकार्यशील पुरुष जनसंख्या पीपलखूँट तहसील में 50.70 प्रतिशत तथा सबसे कम गिर्वा उदयपुर में 38.12 प्रतिशत रहीं है।

3.2 अकार्यशील महिला जनसंख्या -2011 में अकार्यशील महिला जनसंख्या 3497914 है, जो शोध क्षेत्र के कुल जनसंख्या का 28.60 प्रतिशत तथा राज्य का 5.10 प्रतिशत है सबसे ज्यादा अकार्यशील महिला जनसंख्या गिर्वा 61.88 प्रतिशत तथा सबसे कम पीपलखूँट में 49.30 प्रतिशत रही हैं।

क्र.	कार्यशील जनसंख्या	2001		2011	
		जनसंख्या	प्रतिशत	जनसंख्या	प्रतिशत
1	मुख्य कार्यशील जनसंख्या	3316313	71.88	3812011	64.53
2	सीमान्त कार्यशील जनसंख्या	1297400	28.12	2094906	35.47
3	कुल कार्यशील जनसंख्या	4613713	100	5906917	100

स्रोत: भारतीय जनगणना सारणी (2001-2011)

सारणी 1 का आलेख कुल कार्यशील जनसंख्या का तुलनात्मक विश्लेषण 2001-2011

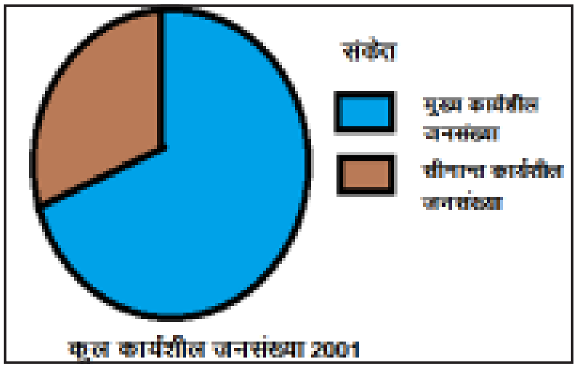

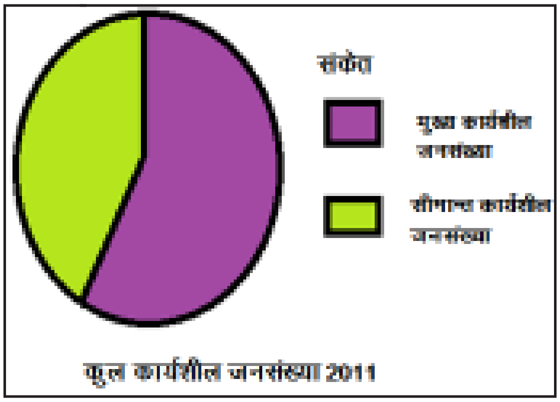

मुख्य कार्यशील, सीमान्त कार्यशील तथा अकार्यशील/गैर कार्यशील जनसंख्या का तुलनात्मक विश्लेषण (2001-2011)

सारणी -2

क्र.	व्यावसायिक संरचना	2001		2011	
		जनसंख्या	प्रतिशत	जनसंख्या	प्रतिशत
1	मुख्य कार्यशील जनसंख्या	3316313	33.02	3912011	31.16
2	सीमान्त कार्यशील जनसंख्या	1294400	12.89	2094906	17.13
3	गैर कर्मी/अकार्यशील जनसंख्या	5433168	54.09	6324846	51.71
	कुल जनसंख्या	10046881	100	12231763	100

सारणी 2 का आलेख मुख्य कार्यशील, सीमान्त कार्यशील तथा अकार्यशील/गैर कार्यशील जनसंख्या का तुलनात्मक विश्लेषण (2001-2011)

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

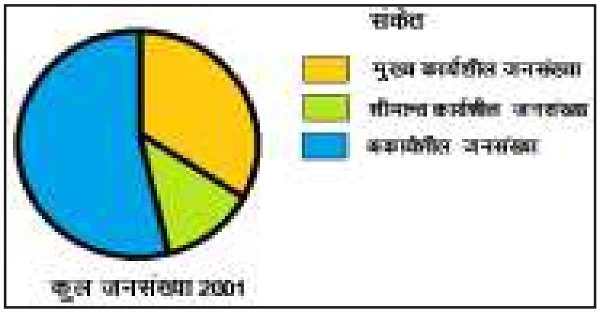

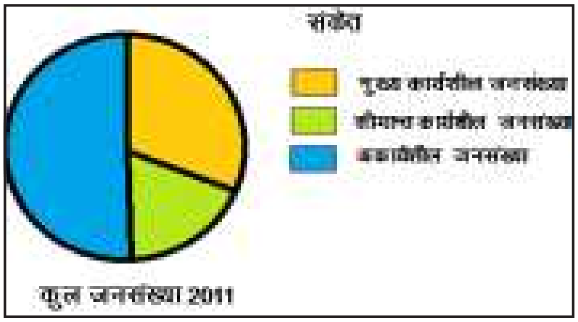

सारांश – दक्षिणी राजस्थान में जनसंख्या के व्यावसायिक संरचना का भौगोलिक सांख्यिकीय विधियों के के तुलनात्मक विश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि अध्ययन क्षेत्र में 2001 की तुलना में 2011 में आंशिक परिवर्तन देखने को मिला है, इसका मुख्य कारण दक्षिणी राजस्थान का यह क्षेत्र जनजातिय उपयोजना क्षेत्र (टी.एस.पी.) के रुप में जाना जाता हैं। यहाँ पर भौगोलिक प्राकृतिक विषमताएँ, उबड़–खाबड़ धरातल, पठारी तथा पर्वतीय भू–भाग अधिक होने के कारण यहाँ पर औद्योगिक विनिर्माण की क्रियाओं का विकास मंद गति से हो रहा हैं उसके साथ ही जनजातीय जनसंख्या अधिक होने के कारण अधिकांश लोग रुढिवादी विचारधारा से ओत–प्रोत होने के कारण प्राथमिक आर्थिक क्रियाओं पर ज्यादा निर्भर रहते हैं। भविष्य में इस क्षेत्र में शिक्षा, चिकित्सा, तथा रेल मार्ग का नेटवर्क तेजी से बढ़ाना होगा तभी क्षेत्र में नए रोजगार के साधनों का सृजन होगा क्योंकि दक्षिणी राजस्थान की अधिकांश जनसंख्या आज भी रोजगार के लिए गुजरात, महाराष्ट्र, तथा मध्यप्रदेश राज्यों की ओर मौसमी व्यवसायों के लिए प्रवास करती हैं इस प्रवास को तभी कम किया जा सकता हैं जब राज्य तथा केन्द्र सरकार द्वारा इस क्षेत्र में लघु तथा वृहद औद्योगिक इकाईयों का निर्माण किया जाए जिससे यहाँ कि 51.71 अकार्यशील जनसंख्या को रोजगार प्राप्त हो सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. Census of India, Rajasthan 1991
2. Census Of India, Rajasthan 2001
3. Census Of India, Rajasthan 2011
4. Basic Statistics, Rajasthan 2005
5. Statistical Abstracts, 2003
6. Economics survey Rajasthan, Jaipur 2005-06
7. TRI Udaipur Rajasthan.
8. Population Research centre, MLSU Udaipur.
9. www.rajasthan.gov.in
10. www.censusindia.gov.in

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Conflict between Hate Speech and Indian Laws

Pawan Kumar Chaurasia*

***Asst. Prof., Pt. Motilal Nehru Law College and Research Center, Chhatarpur (M.P.) INDIA**

Abstract - Now –a –days hate speech between two rival persons having different religion, cast, creed etc, political parties, countries have become a fashion in the name of right to speech and expression. India is not untouched from this disease as India is a country where person of all religion is found. Therefore India is called the country of diversity. But in India this right is not absolute as it is given under Article 19 (1) (a) of Constitution and restriction can be imposed on the right on the ground mentioned in Article 19(2) of the Constitution. Apart from this some special Acts are also controlled the hate speech in the name of right to speech and fetters have been imposed on the right.

Introduction - Words war between opposing political, social, and economic ideologies are being witnessed by the international community. It's not hard to imagine that in the not too distant future, speeches made at social events and on social media will ignite a brand-new form of conflict. Defaming and dehumanizing are the new tools that society uses to humiliate individuals on a large scale. These days, hate speech is mistakenly associated with the concept of freedom of expression. Social media's accessibility has allowed people the freedom and chance to express their opinions about concepts or individuals.

We have all experienced hate at some time in our life. The rise in popularity of hate speech can be attributed to the recent development of the mass media as the primary news distribution channel. Hate speech is now the best technique to ruin someone's reputation and cause suffering for others. Mass hate speech has the power to destroy people's lives and goals, as demonstrated by the leader of the CAA's few remarks that sparked riots. The many aspects of hate speech and its legality in India will be covered in this essay.

Hate Speech: Hatred is a common feeling in our culture and one we experience on a daily basis. Many lawmakers, academics, jurists, and others have made statements that are indicative of hate speech. The year 2018 was dubbed "THE ERA OF ONLINE HATE," according to reports, as many people used internet platforms to disseminate hate speech on a large scale[1].

Hate speech is defined as any communication that disparages another person based on their race, ethnicity, gender, religion, age, handicap, or any other comparable reason. However, the greatest testament to our free speech legal system is that it safeguards the right to voice the opinions we find objectionable [2].

Hateful Conduct = Hate Speech + Directed Action

When a communication targets a specific individual and is accountable for the consequences, it is considered hate speech.

Freedom of Speech and expression: The Indian Constitution stipulates in Article 19(1) (a) that every person has the right to freedom of speech and expression [3].The sole purpose of this article is to allow Indian citizens to speak their opinions while imposing some fair limitations.

The followings are the underlying premises of freedom of speech and expression:

1. No foreign citizen is granted the freedom to exercise this right; only Indian citizens are.
2. This right allows for the freedom to communicate one's opinions in any format, including written or spoken words, images, and more.
3. The government is authorized to enact laws supporting and opposing the freedom of speech and expression since it is not an unalienable right.

Article 19(2) addresses limitations placed on the right to free speech and expression as follows:-

Security of State: When the security of the state is questioned, it is forbidden for someone to freely voice their opinions [4].

Friendly relation between foreign countries: Article 19(2) prohibits speech, expression, and phrases that cause a breach in the relationship between India and other foreign nations. Such acts will be prosecuted as crimes.

Public order: Why State security and public order are distinct. When the public order is called into question, it is crucial to protect it and uphold its legitimacy [5].

Contempt of court: Any remarks that violate the court's decorum[6] are not forbidden under the right to free speech and expression[7].

Incitement of any offence: Any remarks that encourage others to commit crimes are forbidden in any way.

Sovereignty and integrity of India: It is forbidden for anybody to say anything that compromises India's integrity or sovereignty [8].

Defamation: Any statement[9] made by a person at any level via any media that disparages another person or society in any way is forbidden unless it serves the general welfare and lawfulness.

Penal provisions for hate speech:

Indian Penal Code, 1860: Section 124A punishes sedition, Section 153 provides for "promoting enmity between different groups on grounds of creed, race, place of birth, residence, language, etc. and committing acts prejudicial to the maintenance of harmony".

Section 153B punishes accusations, assertions harmful to national integration.

Section 295A punishes "willful and malicious acts aimed at infuriating the religious feelings of any class by insulting its religion or religious beliefs. Section 298 punishes words etc. with intent to offend the religious feelings of any person. Decisions 505(1) and (2) punish the publication or distribution of statements, rumors or messages that cause public nuisance and enmity, hatred or malice between classes.

The Representation of the People Act, 1951: Section 8 prohibits a person from running for office if he has been convicted of an offense involving the unlawful exercise of freedom of expression.

Section 123(3A) and Section 125 prohibits the promotion of hatred on the basis of religion, race, caste, community or language relating to elections as a corrupt electoral practice and disables it.

The Protection of Civil Rights Act, 1955: Decision 7 punishes incitement and incitement of immunity by words, whether spoken or written or by signs or visible images or otherwise.

The Religious Institutions (Prevention of Misuse) Act, 1988:- Section 3(g) prohibits a religious institution or its head from allowing premises owned or controlled by the institution to be used to promote or promote strife, hatred, enmity, ill will between different religious, racial, linguistic or regional groups or castes or communities.

The Code of Criminal Procedure, 1973:- Section 95 empowers the state government to destroy publications punishable under Sections 124A, 153A, 153B, 292, 293 or 295A of the IPC. Section 107 empowers a public officer or breach of public peace or breach of public peace public peace any illegal act likely to cause a breach of the peace or disturb the public peace. Section 144 empowers a District Judge, a Sub-Divisional Judge or any other Executive Magistrate with special powers. the State Government issues an order in that name in case of urgent disturbances or detected dangerous situations. The crimes mentioned above are cognizable. Thus, it affects serious civil liberties and gives the police the right to arrest without a judge's order and without a warrant, as set out in Section 155 of the Penal Code. Anger is an emotion that can be hidden behind curtains of a person. a statement that people might consider logical and natural. Apart from concealment, there are some key points that help identify hate in a statement or speech. According to the report [11], punishment will be imposed on anyone involved in hate speech against their origin, region or place of birth. up to 2 years or a fine of 5000 or both.

Effect of Internet and Social media\Internet is good and bad for society. Nowadays it is very difficult to imagine our life without the internet, but even though it is so useful and important in our lives, it somehow violates our privacy and also gives rise to hate speech. With the internet, there is a lot of hate speech. And the number of hate crimes is on the rise. It is said that what is said online is the result of offline chaos and because geography and time have no effect on the internet; hate speech affects many people across borders.

How does India regulate online hate speech? Social media has created new rules for how hate spreads through it. Now the government can order the authorities to delete such a post along with all user data within 24 hours so that action can be taken against him. Although social media platforms like Facebook,b YouTube and Twitter have taken appropriate measures to stop hate peech by developing some guidelines, it is difficult to stop hate speech when it comes to leaders who intentionally or unintentionally spread hate through their speech, causing anxiety and harm. to humanity.[12]

Effect of hate speech on Article 19 of Constitution. The freedom of speech and expression is one of the basic freedoms given to the citizens of the country [13]. The main idea of Liberty was to have different opinions on all new things. Freedom of speech and freedom of expression mainly governs the diversity of popular opinions, so unpleasant[14] or harmful speech is also protected by the state. Nowhere is hate speech defined as property, although there is an application that describes the level of hate speech.

Freedom of speech has always been considered an important part of any democracy. Rather, the doctrine of free speech conflicts with the state's power to regulate speech. The overview of the international legal system regarding hate speech stated that the exercise of freedom of expression is often treated as the freedom to discriminate and insult people in society.

Hate is expected of great importance. In the era of the Internet, when it is available to the public for a very short period of time, the Human Rights Council in its report restricted freedom of expression in some cases for the following reasons: Child pornography Hate speech that affects the community.

Conclusion: Hate is a subject of debate because of its

intellectual nature. Since hate speech is considered part of Article 19 freedom of speech and expression, distinguishing it from healthy speech becomes very difficult. Hate speech can be manipulated in various ways, which makes it difficult to criminalize under the provisions of the IPC, which makes it difficult to prosecute hate speech in court.

After examining all aspects of hate speech and freedom of speech and expression, it can be said that the laws are in place and it is necessary to revise and strengthen the revision penalties. Hate speech has become a universal problem these days because the Internet is accessible to everyone. it is payable for all the contracts of the society.

So that it does not affect the society and does not damage or offend someone's reputation and faith, a hugely transparent system is needed. Speech promoting violence and discrimination in many aspects can be punished. To fight hate speech, we need a wider forum where everything can transparently discussed and results can be achieved, because this is a battle that cannot be fought alone.

References:-

1. 2018 was the year of online hate. Meet the people whose lives it changed on https://www.washington post.com/business/technology/2018-was-the-year-of-online-hate-meet-the-people-whose-lives-it-changed/2018/12/28/95ac0558-f7dd-11e8-8c9a-860ce2a8148f_story.html?noredirect=on
2. Matal v. Tam, 2017 on http://www.ala.org/advocacy/intfreedom/hate
3. http://www.legalserviceindia.com/legal/article-572-constitution-of-india-freedom-of-speech-and-expression.html
4. People's union of civil liberties(PUCL)v. union of India
5. Romesh Thapar's case [AIR1950SC124]
6. Section2 of the contemptact,1971
7. E.M.S. Namboodripad v. T.N. nambar(1970)2SCC235; AIR 1970SC2015
8. Was added by the constitution(sixteenth amendment) act,1963
9. Affecting the religious believes or background or place of birth or colour or caste
10. Report given by the commission, headed by justice B.S. Chauhan
11. Hate Speech on Social Media: Global Comparisons, https://www.cfr.org/backgrounder/hate-speech-social-media-global-comparisons
12. Handyside v. United Kingdom, Application no. 5493/72(1976)
13. New York Times v. Sullivan, 376 U.S. 254 (1964)
14. Ibid.

✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Acharya Vinoba Bhave A Social Reformer

Dr. Arvind Sirohi*

*Assistant Professor (Cont.) (Sociology) C.C.S.University Campus, Meerut (U.P.) INDIA

Introduction - Acharya Vinoba Bhave (Vinayak Narahari Bhave) well knewas a philosopher whose thought and words inspired many peoples in different ways. Millions of the followers from India and around the world know him as a scholar and a man of God. He was a great social reformer, educationist, freedom fighter and follower of Gandhian principles.Chiefly he advocates Human Rights in India and a national teacher. He was born atKolaba District, Maharashtra on 11th September 1895. His mother Rukmini Devi was a very religious lady so he believed in the supremacy of God. He totally controlled his mind as he was away from 'Desires' and 'Ego'. He always wants to serve the poor peoples of the country. Strongly he advocates for land less peoples. He always strongly believes in universal brotherhood. He said that, "Water, Air and Land are the free gifts of God; it should be distributed in accordance to the need of the peoples".

A report in the newspaper about Gandhi's speech at the newly founded Banaras Hindu University attracted his attention.Once Mahatma Gandhi wrote a letter to him, "I don't know which adjectives I shouldgive to you. I am greatly impressed by your loving nature and strong character". Bhave participated with keen interest in the activities at Gandhi's ashram like e.g. studying, teaching and improving the life of the community. He went to Wardha on 8 April 1921 to take charge of the Ashram as desired by Gandhi. Vinoba Bhavelearnt various regional languages and scriptures as a student.

He was an eminent philosopher. The Gita has been translated into the Marathi language by him with the title Geetai (meaning 'Mother Gîta' in Marathi).Being an avid follower of Mahatma Gandhi, Vinoba upheld his doctrines of non-violence and equality.He worked tirelessly towards eradicating social evils like inequality.Influenced by the examples set by Gandhi; he took up the cause of people who were referred to as Harijans by Gandhi.He adopted the term Sarvodaya from Gandhi which simply means "Progress for all". He established the Brahma Vidya Mandir in 1959, a small community for women, aiming at self-sufficiency on the lines of Mahatma Gandhi's teachings. He took a strong stand on cow slaughter and declared to go on fast until it was banned in India.

He was chosen by Gandhi as the first individual Satyagrahi in a nonviolent movement in the year 1940 (*Peter: 2001).* After this event, the unknown Vinoba Bhave became known to the whole country.Vinoba is well known for holding Science and Spirituality together in his notion of Sarvodaya. The Sarvodaya movement under him implemented various programs during the 1950s, the chief among which is the Bhoodan Movement.He set up a number of Ashrams to promote a simple way of life, devoid of luxuries that took away one's focus from the Divine. After independence he started social reform movements such as Bhoodan Movement and Sarvodaya Movement. He also made some notoriousdacoits of Chambal surrender. In 1970, he announced his decision to stay at one place. He observed a year of silence from December 25, 1974 to December 25, 1975. In 1976, he undertook a fast to stop the slaughter of cows. His spiritual pursuits intensified as he withdrew from the activities. He died on November 15, 1982 after refusing food and medicine few days earlier. He was posthumously honored with the Bharat Ratna in 1984 (www.mkgandhi.org).

Vinoba was greatly influenced by the Bhagvad Gita and his thoughts and efforts were based upon the doctrines of the Holy Book. He set up a number of Ashrams to promote a simple way of life, devoid of luxuries that took away one's focus from the Divine. He established the Brahma Vidya Mandir in 1959, a small community for women, aiming at self-sufficiency on the lines of Mahatma Gandhi's teachings. He took a strong stand on cow slaughter and declared to go on fast until it was banned in India. Vinoba was arrested several times during the 1920s and 1930s and served a five-year jail sentence in the 1940s for leading non-violent resistance to British rule. The jails for Vinoba had become the places of reading and writing. He wrote Ishavasyavritti and Sthitaprajna Darshan in jail. He also learnt four South Indian languages and created the script of Lok Nagari at Vellore jail. In the jails, he gave a series of talks on Bhagavad Gita in Marathi, to his fellow prisoners. Bhave participated in the nationwide civil disobedience periodically conducted against the British, and

was imprisoned with other nationalists (Kumarappa: 1954). Despite these many activities, he was not well known to the public. He gained national prominence when Gandhi chose him as the first participant in a new nonviolent campaign in 1940. Bhave also participated in the Quit India Movement. Vinoba observed the life of the average Indian living in a village and tried to find solutions for the problems he faced with a firm spiritual foundation. This formed the core of his Sarvodaya movement.

On 18 April 1951, (www.mkgandhi.org) Bhave started his land donation movement at Pochampally of Nalgonda district Telangana,(Claude) the BhoodanMovement. He took donated land from landowner Indians and gave it away to the poor and landless, for them to cultivate. Then after 1954, he started to ask for donations from whole villages in a programme he called Gramdan. He got more than 1000 villages by way of donations. Out of these, he obtained 175 donated villages in Tamil Nadu alone. Noted Gandhian and an atheist Lavanam was the interpreter for Bhave during his land reform movement in Andhra Pradesh and parts of Orissa (*Markshep.com*). Another example of this is the Bhoodan (land gift) movement started at Pochampally on 18 April 1951, after interacting with 80 Harijan families. He walked all across India asking people with land to consider him as one of their sons and so give him one sixth of their land. He took donated land from land owners and gave it away to the poor and landless, for them to cultivate. Then after 1954, he started to ask for donations of whole villages in a programme he called Gramdan. He got more than 1000 villages by way of donation. Out of these, he obtained 175 donated villages in Tamil Nadu alone. Noted Gandhian and atheist Lavanam was the interpreter of Vinoba Bhave during his land reform movement in Andhra Pradesh and parts of Orissa Vinoba said, “I have walked all over India for 13 years. In the backdrop of enduring perpetuity of my life’s work, I have established 6 ashrams. Non-violence and compassion being a hallmark of his philosophy, he also campaigned against the slaughtering of cows. The Brahma Vidya Mandir is one of the ashrams that Bhave created. It is a small community for women that was created in order for them to become self-sufficient and non-violent in a community. This group farms to get their own food, but uses Gandhi’s beliefs about food production, which include sustainability and social justice, as a guide. Since its founding in 1959, members of Brahma Vidya Mandir (BVM), an international community for women in Paunar, Maharashtra, have dealt with the struggle of translating Gandian values such as self-sufficiency, non-violence, and public-service into specific practices of food production and consumption.

Vinoba Bhave worked tirelessly towards eradicating social evils like inequality. Influenced by the examples set by Gandhi, he took up the cause of people that his guru lovingly referred to as Harijans. It was his aim to establish the kind of society that Gandhi had envisioned in an Independent India. He adopted the term Sarvodaya from Gandhi which simply means “Progress for All”. The Sarvodaya movement under him implemented various programs during the 1950s, the chief among which is the Bhoodan Movement. In the 20th Century, a frail man named Vinoba Narahar Bhave walked about Seventy thousand kilometers for fourteen years in India and received around forty-two lakh acres (Seventeen lakh hectares) of land in a donation for landless farmers. It was a miracle of compassion and love in the history of mankind. Vinoba gave a new dictum to the world. Vinoba expressed that, we are in the era when service to all human beings should be considered service to God. Vinoba’s vision is that the days of Politics will be over. People will share all other God’s resources like air, water and land. All narrow boundaries of nationhood, caste, creed will dissolve and the world will be a family.

Vinoba Bhave has adopted the elements of Basic Education propounded by Mahatma Gandhi and accordingly he has expressed his views regarding education. He has talked of two phases of education. The first aims at the inner education of a man and the second speak for the outward education. By inner education, he means that education makes man’s soul strong and his notions regarding external education are consistent with the present school education. But the truth is that Vinoba wants the combination of both aspects. He is also in favor of makingstudents self-dependent so that students should not only enter the realm of knowledge but they should also acquire the capability to meet the needs of life. Thus the educational philosophy of Vinoba advocates such ability in man by which he might adjust himself according to the currents of time and country.

Main Features of Bhoodan Movement: The meaning of word Bhoodan is donation of land to the landless peoples of the Nation.

As implied by the name, in this movement, landlords voluntarily give up land to be distributed to landless laborers, who would then cultivate the land.

1. This is aimed at reducing the gap between the rich and the poor. Here, the land donors are not given any compensation.
2. This was initiated by Vinoba Bhave in Pochampally.
3. This movement went on for 13 years during which time Bhave travelled all over India. He collected 4.4 million acres of land to be distributed to landless farmers.
4. In 1954, he started the Gramdan movement which involved the voluntary donation of whole villages.
5. These movements attracted worldwide admiration for being stellar examples of voluntary social justice.

References:-

1. Acharya Vinoba Bhave, by Ministry of Information and Broadcasting, India, Published by Publications Division, Government of India, 1955

2. Claude Markovits : The Un-Gandhian Gandhi: The Life and Afterlife of Mahatma
3. Kumarappa B. ed. (1954) Gandhi M. Nature cure. Navajivan Publishing House
4. Narayanaswamy, K.S. (2000), "Acharya Vinoba Bhave – A biography (Immortal Lights series)", Bangalore, Sapna Book House
5. *Rühe, Peter(2001).* Gandhi*. Phaidon. p. 152.* ISBN 978-0-7148-4103-8
6. Reddy, V. Narayan Karan (1963), "Sarvodaya Ideology & Acharya Vinoba Bhave", Andhra Pradesh Sarvodaya MandalPublishig House
7. Tennyson Hallam (1955), "India's Walking Saint: The Story of Vinoba Bhave", Doubleday Publishing House
8. "The King of Kindness: Vinoba Bhave and His Nonviolent Revolution*". Markshep.com.* Retrieved 13 June 2012
9. http://www.britannica.com/biography/Vinoba-Bhave
10. http://www.culturalindia.net/reformers/acharya-vinoba-bhave.html
11. http://www.vinobabhave.org/
12. https://en.wikipedia.org/wiki/Vinoba_Bhave

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Political Parties and their Role in Indian Democracy

Tejasvi Dubey* Prabhanshu Tiwari**

*M.A. (Public Administration) IGNOU, New Delhi, INDIA
** M.A (Political Science) RDVV, Jabalpur (M.P.) INDIA

Abstract - The main goal of the study is to examine the many roles of political parties in India's democracy and evaluate how those positions affect government and the democratic process as a whole. An important object of study is to evaluate changes in political parties through time in Indian Democracy. To analyze the historical progression of Political Parties in India. To examine how opposition parties contribute to ensuring government accountability: And how opposition parties in India help to keep the government's checks and balances in place and what they may do to advance accountability and openness.
Keywords: Political Parties, Election, Government, Democracy, Organizations.

Introduction - The largest democracy in the world, India, is a living example of the complexity and vitality of democratic administration. Political parties, crucial organizations that have greatly impacted India's political landscape since winning independence in 1947, are at the center of this intricate democratic tapestry. These political parties are crucial to India's democracy because they provide more than simply a forum for people to voice their opinions. Our initial objective is to evaluate the basic aspects of a political party and how these components support the public interest while contributing to the establishment of governments This objective looks at how political parties have changed and developed their organizational frameworks and strategies in response to shifting social, political, and economic circumstances. It aims to demonstrate how these groups have changed gradually over time, shaping the country's changing political scene. This study looks closely at how Indian opposition parties carry out their role as checks and balances on the government. We want to maintain the democratic values that underpin India's governance framework by carefully examining the processes and strategies used by the opposition parties to hold the ruling elite accountable for their decisions and actions. We will examine the key characteristics that make up a political party and how they support the creation of governments and the protection of the general welfare. We will also look into how Indian political parties have evolved and broadened their organizational frameworks and methods over time in response to shifting social, political, and economic conditions. Finally, we will look closely at how Indian opposition parties perform their function of acting as a check and balance on the administration's dedication to upholding and defending the interests of the broader public.

Political Party And Their Recognition: A political party is a multifaceted organization with various components that enable it to operate within a democratic system. These components include membership, leadership, party platform, internal organization, campaign machinery, policy formulation, candidate selection, fundraising, communication, membership engagement, and electoral campaigning. Members come from diverse backgrounds and demographics, sharing common ideologies, goals, and values. Leadership structures may include elected officials, party leaders, and executive committee members. Party platforms outline the party's stance on various issues, such as the economy, healthcare, and foreign policy.

Campaign machinery, including campaign managers, strategists, and volunteers, organize rallies, canvassing, advertising, and mobilizing voters. Policy formulation involves developing detailed proposals and positions on various issues, which are often presented on party platforms. Candidates are nominated to contest elections at various levels of government, and fundraising activities are used to finance operations and campaigns. Effective communication is crucial for political parties, to use various channels to reach voters and promote their policies.

In India to Register a political party certain rules are prescribed by the Election Commission of India, According to Section 29 A of the Representation of the People Act, 1951 –

1. **Definition of Political Party -** According to Section 29A, a "political party" is any organization or collection of people that participates in elections and campaigns for or

against candidates for public office. Eligibility And Application - A group of people must have a minimum of 100 registered voters to be eligible for registration as a political party. This crucial need ensures that the party has a minimal level of support. This group or association must apply to the Indian Election Commission to begin the registration procedure as a political party. The application should include the party's charter, rules, information about its officeholders, and any other data the Election Commission may require.

2. **Reserved Symbols, Party Name-** Political parties with official recognition have the benefit of receiving a special symbol to use during elections. Independent candidates and unregistered parties are not permitted to use these symbols, the name of the party should not be similar to any other parties that are already in existence. A name may also be disqualified by the Election Commission if it is deemed improper, offensive, or deceptive. Parties may propose a specific symbol, but the Election Commission has the final say on whether or not such symbol will be made available.

3. **Financial Record-Keeping-** Political parties that have received formal registration are required to uphold the practice of keeping financial records and are required to submit an annual report to the Election Commission outlining their revenues and expenses.

Political Parties Role In Government Formation: Political Parties play an important role in the formation and function of government, by the following points can be described better –

1. **Contest Election and Seek the Majority-** The process of forming a government in most democratic systems requires that a political party or coalition of parties win a legislative majority, the size of which might vary depending on the rules of the individual nation. By selecting and fielding candidates for a variety of government positions, ranging from municipal offices to the national parliament, political parties play a crucial role in this process. These candidates represent the party's ideas, ideologies, and objectives to the electorate, bringing the party's vision to life.

2. **Win the Seats and Post-Election Alliance -** The ultimate goal of election campaigns is to secure a significant number of seats in the legislative body, whether it be a parliament, congress, or state legislature. Parties and their candidates aggressively campaign to win support from voters. It is typical for parties to start post-election discussions aimed at forming coalitions or alliances when a single party does not win an absolute majority. These coordinated efforts are designed to combine their seats to reach the majority requirement required for efficient governance.

3. **Government Formation and Policy Implement -** The party or coalition that wins the majority of seats in the legislature typically receives the authority to establish a government. As seen in the appointment of a prime minister in a parliamentary system, the leader of the winning party or the leader of the largest party within a coalition is typically extended an invitation to assume the role of the head of government. After assuming power, the governing party or coalition is then responsible for implementing its policies, legislative initiatives, and programs. The economics, international relations, and social policies are just a few of the sectors of administration that are significantly impacted by this governance process.

4. **Executive Appointment and Lawmaking -** Government parties use their legislative dominance to propose and enact bills, thereby influencing the legal framework of the country and instituting new laws. The government is responsible for appointing key executive officials, such as ministers, who oversee various government departments and ministries and play a crucial role in executing policies and managing administrative affairs.

5. **Crisis Management-** Political parties in power are tasked with handling a range of crises and difficulties, whether they arise in the economic, social, or political spheres. They are obliged to navigate unforeseen circumstances and offer effective leadership in response

Changes In Political Party Through The Time: In India, the progression of political parties has been a vibrant reaction to a myriad of social, political, and economic transformations that have defined the nation's course since gaining independence in 1947. These changes have not solely influenced the country's political terrain but have also mandated substantial adjustments and enhancements in the frameworks and approaches of political parties.

1. **Social Change -** Political party structures and operating procedures have been significantly impacted by social changes in India during the post-independence era. Transitions in the demographic composition of the population and the pervasive influence of caste and identity politics are two key aspects of these societal shifts. The political landscape of the country has been significantly shaped by demographic changes. India is undergoing a demographic change that is characterized by a sizable youth population, with a sizable majority under the age of 25. Political parties have been forced to hone their strategies to successfully interact with this younger electorate as this demographic sector has grown in both size and significance. Youth-related issues including technology, jobs, and education have taken center stage in political discourse.

2. **Political Shift -** The dominance of coalition politics and the rise of regional parties in India have significantly changed the country's political landscape. The structures and tactics of political parties have had to undergo major changes as a result of these political developments The emergence of coalition politics as a response to the distribution of political power has become a defining characteristic of Indian democracy. Coalitions are becoming the norm because no one party can win an absolute majority

in the national assembly. Political parties have thus had to hone their negotiating, compromising, and consensus-building abilities. As a result, regional parties frequently have a significant impact on national politics, and political alliances must take into account their demands.

3. **Economics Shift -** Economic transformations in India have wielded a profound influence on the approaches and structures of political parties. These shifts encompass an array of economic policy alterations, including the liberalization of the economy, shifts in development priorities, and changes in economic disparities. The economic liberalization that took place in the 1990s represented a pivotal juncture in Indian politics. It marked a departure from the previously predominant model of state-led economic advancement, favoring market-oriented policies instead. Consequently, political parties had to give prominence to these domains in their economic agendas and election manifestos.

4. **Technological Advancement-** New political engagement and campaigning trends have emerged in India thanks to technological breakthroughs. Political parties have reacted to the increased use of digital technology and the internet by making use of tools like social media, online advertising, and data analytics. With the aid of these tools, parties may more effectively mobilize supporters, target particular demographics, and reach a larger audience.

Role Of Opposition Party In India: Opposition in India is essential for the transparency of the government, it acts as a forum that opposes or criticizes the decision of the ruling government, it not only opposes but also does many jobs in the following areas-

1. **Democratic oversight-** The opposition party's function in India is fundamentally one of democratic monitoring, which is an essential tool for examining the legitimacy of the executive branch, preserving openness, ensuring accountability, and supporting democratic principles. The ruling government's actions and policies are actively evaluated by opposition parties, who hold them to account and demand transparency. The opposition draws attention to important topics, asks for answers, and challenges government actions that seem to go against the interests of the general public through legislative debates, inquiries, and deliberations.

2. **Policy Alternative and Parliamentary Functions -** The role of the opposition party in India transcends mere criticism of the government; it also encompasses the formulation of policy alternatives and active engagement in parliamentary proceedings. Opposition parties significantly enhance the democratic process by presenting alternative policy proposals and actively participating in the legislative process. Opposition parties function as a wellspring of alternative ideas and policy options. They scrutinize government policies, pinpoint their shortcomings, and put forward their remedies to address the nation's challenges.In a parliamentary system, opposition parties serve a variety of crucial roles. They partake in debates and discussions, scrutinize the government's decisions, and contribute to the creation and refinement of laws. In this way, opposition parties in India serve as indispensable components of the democratic framework, enriching the policymaking process and preserving the principles of democracy.

Conclusion: The democratic structure of the country is based on political parties, which represent the interests of the people, shape government formation, and change over time to meet shifting conditions. Opposition parties' existence and deeds contribute a crucial component to this democratic fabric. Since political parties are how the will of the people is translated into governance, they are essential to the creation of government. This emphasizes how important political parties are in determining the leadership and, in turn, the policies and course of the country .Political, social, and economic changes have prompted political parties to change over time. Technology developments, coalition politics, and local parties have changed tactics and brought with them opportunities as well as difficulties. These modifications have increased diversity in policy discourse, encouraged inclusivity, and sparked worries about privacy and false information. In summary, it is impossible to overestimate the importance of political parties in democracies. In the end, the role of political parties remains a cornerstone of Indian democracy, defining the very nature of governance and representation in the world's largest democracy.

References:-

1. Article "The Role of Political Parties in Making Democracy Work", https://v-dem.net/media/publications/brief3.pdf
2. Article " Political Parties and Democracy, https://www.annualreviews.org/doi/10.1146/annurev.polisci.2.1.243
3. Article " The Role of Political Party", https://uk.usembassy.gov/role-political-parties/
4. Book by Yogendra Yadav, The Party System in India: A Country Study.
5. Changing Party System in India: Implications for Political Change,(Article by Vandana Agarwal in the Journal of South Asian and Middle Eastern Studies), https://www.jstor.org/stable/2645573
6. Economic Liberalization, Economic Inequality, and the Rise of Indian Regional Political Parties" (Article by Ghanshyam Shah in Economic and Political Weekly), https://www.epw.in/journal/2008/06/special-articles/economic-growth-and-regional-inequality-india.html
7. Political Parties in India: Their Past, Present, and Future (Article by Sandeep Shastri in the Journal of Democracy in India), https://alochonaa.com/2014/02/21/indias-political-landscape-past-present-future/

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Utilizing Gamma Ray Spectrometry for Enhancing Food and Agriculture Quality Assurance

Parth Gupta* Kartikey Pandey** Dr. Anjul Singh***

*B.Tech, MBM University, Jodhpur (Raj.) INDIA
** IDD, Indian Institute of Technology (BHU), Varanasi (U.P.) INDIA
*** Professor (Chemistry) PG College Dholpur, (Raj.) INDIA

Abstract - This research paper explores the application of gamma ray Spectrometry as a powerful tool to enhance quality assurance in the fields of food and agriculture. Gamma ray Spectrometry has gained prominence for its non-invasive and highly sensitive capabilities, allowing for the rapid and precise assessment of various quality parameters. Through a comprehensive review of the literature, this paper discusses the theoretical and practical aspects of gamma ray Spectrometry, as well as its potential implications in food safety, crop quality, and agriculture productivity. The methodology section details the instrumentation and techniques used for data collection and analysis. Furthermore, this paper discusses real-world applications in food quality control, including contaminant detection and nutrient analysis, as well as in agriculture quality control for soil and crop monitoring. It also addresses the challenges and limitations associated with gamma ray Spectrometry, along with safety considerations and regulatory aspects. The paper concludes by highlighting the future.

Theory of Gamma Spectrometry:

i. Gamma rays are electromagnetic radiation produced during transitions between excited nuclear levels of a nucleus.
ii. Delayed gamma rays are emitted during the decay of parent nuclei, often following beta decay.
iii. Gamma rays can interact with matter through three main processes:
iv. Photoelectric Absorption: Gamma rays interact with inner-shell electrons, emitting photoelectrons. This is important for detection with semiconductor detectors.
v. Compton Scattering: Some of the gamma ray's energy is transferred to a recoil electron, resulting in a continuous background in the gamma spectrum.
vi. Pair Production: Occurs when gamma rays have more than 1.02 MeV energy, producing an electron/positron pair.

i. Semiconductor Detectors:

ii. Germanium detectors (Ge-detectors) are commonly used for gamma spectrometry.
iii. Early Ge-detectors had to be doped with n-type impurities like lithium (Ge (Li)-detectors) due to purity issues.
iv. Later, pure germanium crystals became available in n-type or p-type forms, with various geometries (closed-end coaxial, planar, borehole).
v. n-type detectors cover an energy range from about 10 keV to 3 MeV, while p-type detectors range from 40 keV to 3 MeV. P-type detectors with certain window materials are best for energies below 100 keV.

Requirements for Proper Gamma Spectrometry:

i. The Minimum Detectable Activity (MDA) of a Ge-detector depends on various factors, including energy resolution, crystal efficiency, background, measuring time, sample geometry, selfabsorption, and the emission probabilities of the gamma emission lines of the radionuclide.
ii. Commercial calibration sources containing a mix of gamma nuclides are used for detector calibration. These sources cover a range of energies.
iii. Calibration sources typically include radionuclides like 210Pb, 241Am, 109Cd, 139Ce, 57Co, 60Co, 134Cs, 137Cs, 88Y, and 85Sr.
iv. Calibration should include energy response, peak resolution, and counting efficiency.

It's important to ensure that gamma spectrometry equipment is properly calibrated and maintained to obtain accurate results. The choice of calibration sources and the correction of summing effects in complex spectra are important aspects of the calibration process. The field of gamma spectrometry plays a vital role in monitoring and managing radiation levels in various applications, from food and environmental analysis to industrial and medical settings. [1][2]

Background:

i. The background of a Ge-detector system is influenced

by detector shielding and the laboratory environment.

ii. Shielding materials, such as lead and copper, can be used to reduce background radiation.
iii. Reducing background radiation is essential for accurate measurements, and efforts should be made to minimize cosmic muon interference.

Attenuation Effects:

i. Photon attenuation depends on the elemental composition and density of the sample matrix.
ii. Attenuation effects are more significant for lower energy photons and high-volume sample geometries.
iii. Software, including Monte Carlo simulations, is used to account for attenuation in gamma spectrometry.

Coincidence Summing Effect:

i. Coincidence summing occurs when radionuclides emit multiple photons in sequence.
ii. The effect depends on the source-detector distance and detector efficiency.
iii. To avoid this effect, samples may be counted at a certain distance from the detector.

Dead Time:

i. High-activity samples can result in a loss of peak counts due to dead time.
ii. Dead time occurs when pulse processing electronics cannot keep up with incoming photons.

Proper sample geometry and distance from the detector can help avoid dead time.

Best Sample Geometries: The Minimum Detectable Activity (MDA) depends on the detector efficiency and sample weight.

i. Marinelli beakers (1 or 2 L) are suitable for large sample amounts and provide good efficiency.
ii. Smaller sample devices (e.g., 32- and 77-mL dishes) are better for small sample amounts, reducing gamma ray attenuation.

Interpretation of Gamma Spectrometry Data:

i. Dose-relevant radionuclides in the natural decay series of uranium, thorium, and actinium can be detected via the gamma emissions of their daughter nuclides.
ii. Equilibrium between mother and daughter nuclides is essential for accurate measurements.
iii. Some mother-daughter systems, such as 226Ra and 224Ra, are used for radium detection.
iv. Equilibrium is reached within minutes for certain systems due to short half-lives.
v. Relevant gamma emission lines for various natural radionuclides are listed in **Table 1.**

(see in last page)

Gamma spectrometry is a powerful technique for quantifying and identifying radioactive materials in various samples, and understanding these factors and techniques is crucial for accurate and reliable analysis. [4][3]

Instrumental Neutron Activation Analysis (INAA) is a nuclear technique used for the analysis of various materials, particularly to determine the elemental composition of samples. Here are some key points regarding the principle and operation of INAA, as described in the provided text:

Principle:

i. INAA relies on the production of short-lived radionuclides through nuclear reactions.
ii. Typically, reactor neutrons, particularly thermal neutrons, are used to activate various nuclides in the sample, turning them into radioactive nuclides.
iii. The efficiency of the irradiation process depends on two factors: the neutron flux density and the cross-section of the nuclear reaction that occurs in the irradiated nucleus.
iv. Nuclear reactors, such as the one at the University of Basel (AGN-211-P), are commonly used as sources of thermal neutrons for INAA.
v. The thermal neutrons are generated in the nuclear reactor, and their availability is crucial for the success of the analysis.

INAA is a powerful analytical technique that is particularly useful for determining trace elements in various materials. The irradiation process leads to the creation of radioactive isotopes, and the subsequent measurement of their gamma-ray emissions can provide valuable information about the elemental composition of the sample. The unique neutron flux and reactor setup described here are crucial for the success of INAA experiments.

Operational Procedure:

i. The detection limit of gamma spectrometry is influenced by the half-life of activated nuclides and the background radiation from highly activated nuclides, like sodium or chloride.
ii. Gold foils serve as internal standards and are placed on top of each sample.
iii. A sample series, consisting of 12 samples, each containing 1-2 grams of material, is irradiated for 30 minutes at a reactor power of 2 kW.
iv. Calibration of each irradiation position in the reactor's neutron field is achieved using coagulated salt solutions containing a known amount of the analyte and a corresponding gold foil. This helps determine response factors for each analyte.
v. The response factors are calculated using the comparator method.

Common Applications of INAA: Determination of Total Bromine Content in Food Samples:

INAA is used to determine the total bromine content in food samples, such as tea, coffee, dried mushrooms, vegetables, and spices.

i. This analysis provides insights into the use of methyl bromide, a fumigant, which results in bromide residues in food.
ii. Methyl bromide's bromide residues can be activated by neutrons to form the gamma-active compound 82Br (with a half-life of 35 hours) and analysed using gamma spectrometry.

iii. After irradiation for 30 minutes, samples are cooled down for several hours to allow for the disintegration of activated sodium and chloride nuclides.
iv. The gamma analysis of the samples takes approximately 15 minutes.

It's important to note that the use of methyl bromide as a fumigant has become less common in recent years, with other fumigants like sulfuryl fluoride, hydrogen cyanide, and phosphines gaining more prominence for various food treatment applications. INAA is a valuable technique for identifying and quantifying the presence of specific elements, such as bromine in this case, in food samples, aiding in quality control and regulatory compliance.

Determination of Total Iodine Content in Food:

i. INAA is used to determine the total iodine content in various food samples, particularly in iodine-rich foods like algae.
ii. Iodine is essential for the production of thyroid hormones and the prevention of goitre.
iii. In many European countries, there is a concern about iodine deficiency, so it's important to assess and declare the correct iodine content in food.
iv. About 1 gram of the sample is activated using reactor neutrons for 30 minutes at a power of 2 kW.
v. The radioactive product 128I is then analysed directly using a gamma spectrometer.
vi. The short half-life of 128I (25 minutes) necessitates immediate counting after activation, which can lead to higher detection limits.
vii. This method is applicable to the analysis of iodine content in fish, seafood, algae, and dietary supplements.

Determination of Flame-Retarding Agents in Plastics:

i. INAA can be employed as a screening analysis to detect flame-retarding agents in plastic materials, such as decabromo-bis-phenylether or tetrabromobisphenol A.
ii. The activation and decay processes for bromine analysis in plastic materials are similar to those used for food samples.
iii. INAA provides information about the total content of brominated flame-retarding agents.
iv. Samples with high bromine content are detected using this screening analysis, and further analysis with gas chromatography is conducted to determine the types and amounts of different flame-retarding compounds.

Determination of U and Th in Suspended Matter, Sediment, and Soil Samples:

i. INAA is applied to determine the content of uranium (U) and thorium (Th) in suspended matter, sediment, and soil samples.
ii. Approximately 1 gram of dried and ground material is irradiated for 30 minutes at a power of 2 kW.
iii. After a 2-hour cooling period, the samples are analysed using a gamma spectrometer.
iv. This method is useful for environmental studies and assessing the distribution of U and Th in various geological and environmental samples.

Instrumental Neutron Activation Analysis is a versatile analytical technique used in various applications, allowing for the determination of the elemental composition of samples and enabling the detection of specific elements, like iodine and bromine, in different materials, including food and plastics.

Radioactivity In Food

First Use of Natural Radioactivity:

i. After the discovery of radioactivity, the commercial use of technologically enriched naturally occurring radioactive material (TENORM) began.
ii. Radium and thorium were used for medicinal purposes to treat various diseases.
iii. Products like underwear, soap, lipstick, hair shampoo, toothpaste, and more were spiked with natural or enriched radioactive materials.
iv. Some individuals, like William Bailey, sold radioactive sources as medicinal drugs.
v. Tragedies like the case of Eben McBurney Byers, who died due to radiator therapy, and the "radium girls" who became ill from painting watch dials with radium, led to public awareness and the decline of the popularity of radioactivity.
vi. Today, radon therapy, which involves radon water, inhalation of radon air in tunnels, and drinking of radon water, is still used for health cures against certain chronic diseases.

Natural Radioactivity in Food:

i. Some natural radionuclides from the decay series of uranium and thorium enter the food chain.
ii. Polonium-210 (210Po), a product of the decay of uranium-238 (238U), is enriched in the intestinal tract of mussels and fish.
iii. Lead-210 (210Pb), radium, and thorium nuclides are present in cereals.
iv. Spices and salt may contain elevated levels of radium and potassium-40 (40K).
v. Foods rich in potassium are typically rich in 40K.

Radioactive Sources in Consumer Products:

i. Remnants of natural radionuclide applications from the past may still be found in households.
ii. Radioactive objects may include materials like thorium used in flame detectors and various consumer products.
iii. Examples of such products include dials with radium in watches, colored glass pearls, drinking glasses containing uranium oxides, wall tiles with uranium oxides, and more.
iv. Finders of such items are encouraged to bring them to specialized laboratories or collecting points for radioactive materials, as the included radioactive material may be harmful. [5][6]

Consumer product	Radionuclide(s)	Radionuclide content range
Radio luminous timepieces	^{3}H 147Pm 226Ra	4–930 MBq 0.4–4 MBq 0.07–170 kBq
Marine compass	^{3}H 226Ra	28MBq 15kBq
Aircraft luminous safety devices	^{3}H 147Pm	10 kBq 300 kBq
Static eliminators	210Po	1–19 MBq
Dental products	natU	up to 4 Bq
Gas mantles	232Th	1–2 kBq
Welding rods	232Th	0.2–1.2 kBq
Optical glasses Ophthalmic lenses [35]	232Th	5–75 Bq
Glassware: vaseline glass, canary flint glass	natU	100 kBq
Lamp starters	^{85}Kr	0.6 kBq
Smoke detectors	241Am	37 kBq
Electron capture detectors	^{63}Ni	370 kBq
Drinking devices "Radium Drinkkur"	226Ra, (222Rn)	100 MBq
Wall tiles, ceramics	natUO3	50–500 kBq
Granitic surfaces	natU	5–10 kBq/kg
Cardiac pacemaker [36]	239Pu	113GBq

Table2: Consumer products containing radioactive materials

Radio Contamination of Food:

i. Food can be contaminated shortly after its release with fallout of short-lived radionuclides.

ii. The contamination of food with long-lived radionuclides from global fallout and the Chernobyl catastrophe continues to be a concern.

iii. Contamination by short-lived radionuclides, such as 131I, 132I, and 134Cs, reduced within two years after the Chernobyl disaster.

iv. Long-lived radionuclides persist in the soil and can be transferred to crops and grass, particularly in feed for cows, with milk being a typical tracer food.

v. A review of radioactivity monitoring in

vi. Switzerland over 35 years showed that between 1990 and 2015, some moderate contamination was observed in specific food categories.

vii. Special cases of contamination were found in hazelnuts and tea from Turkey, with tea containing higher levels of radio caesium and radio strontium.

Wild-grown mushrooms, berries, and game, especially wild boars, remain the most affected food categories due to fallout from the Chernobyl disaster.

The monitoring and assessment of radionuclide contamination in food is essential for ensuring food safety and public health, particularly in regions affected by nuclear accidents and global fallout.

Data Analysis : The gamma-ray data were obtained using a portable passive gamma-ray spectrometer called the Mole, which uses a CsI(Tl) scintillation crystal detector. This device can be mounted on various vehicles or used manually. In this study, it was mounted on a wheelbarrow and moved at 1.2 m/s, with a field of view of about 3 meters in radius. Data was collected from eight rows in each field, spaced 10 meters apart, totalling around 4,000 data points, along with GPS coordinates accurate to 1 meter.[6][7]

To process and interpret the gamma-ray spectroscopy data, several steps were taken:

1. **Transformation of Multichannel Gamma-Ray Data**: The data from the 256 energy channels (ranging from 0 to 3.0 MeV) were converted into corresponding energies using a simple equation.

2. **Conversion to Count Rates**: Gamma-ray counts were converted to count rates by dividing them by the measurement time. This standardizes the data for analysis.

3. **Spatial Filtering**: A moving average filter was applied to smooth the data, reducing noise and fluctuations.

4. **Energy Channel Averaging**: Within each spectrum, a moving average of five energy channels was calculated to further reduce noise.

5. Energy-Windows (EWs) Method: Energy windows for specific radionuclides (like 40K, 238U, and 232Th) were determined by summing the gamma-ray counts in the energy spectrum around the peaks of these radionuclides. Additionally, a broad energy window called "Total Counts (TC)" was used. This process helps in identifying and analysing these radionuclides in the data.

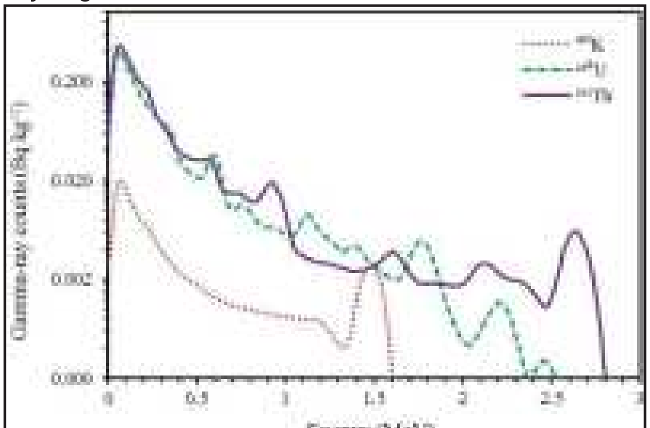

Figure 1: standard spectra of ^{40}K (dotted line), ^{238}U (dashed line) and ^{232}Th (solid line) collected by the Mole at 1Bq·kg^{-1} activity concentration in calibration setup.

The Full-Spectrum Analysis (FSA) method utilizes the entire gamma-ray spectrum to estimate concentrations of radionuclides (e.g., 40K, 238U, and 232Th). In this study, it employs Monte Carlo simulations for this purpose, making it comparable to the Energy-Windows (EWs) method. FSA fits standard spectra for these radionuclides to measured

data using a Chi-square algorithm to determine their concentrations in Bq·kg^(-1).

The data analysis involves:

1. **Exploratory Bivariate Analysis**: Using linear regression and correlation to understand relationships between radiometric data and soil and food properties.
2. **Calibration Datasets**: Linear regression of radionuclide concentrations obtained from both EWs and FSA against soil and food properties.
3. **Regression Models**: Developing models from calibration datasets for predicting soil properties in validation datasets.
4. **Model Evaluation**: Assessing model strength using metrics like R^2, RMSEP, and statistical significance tests.
5. **Ratio of Percentage Deviation (RPD):** Calculating RPD to evaluate model prediction ability. RPD > 1.4 indicates potential usability for predicting soil properties.

In addition, spectrum deconvolution techniques are used to identify and separate energy peaks in the raw gamma-ray spectrum, making it easier to distinguish different elements or isotopes.

Statistical Methods Used for Quality Assessment

Descriptive Statistics: Basic statistical measures like mean, standard deviation, and range are employed to summarize the data and understand the distribution of elemental concentrations within the sample.

Inferential Statistics: Inferential statistics, including hypothesis testing and confidence intervals, are used to make inferences about the population of interest based on sample data.

Multivariate Analysis: Techniques such as principal component analysis (PCA) and cluster analysis can be applied to identify patterns and relationships in complex spectral data, helping to differentiate between various samples. [8][9] **9.Challenges and Limitations**

1. Instrumentation Costs: One of the primary limitations is the cost of acquiring and maintaining gamma ray Spectrometry equipment. High-quality detectors and associated instruments can be expensive, making it challenging for smaller farms or laboratories with limited budgets to adopt this technology.

2. Limited Elemental Range: Gamma ray Spectrometry is most effective for the detection and quantification of elements with gamma-emitting isotopes. Elements that lack suitable isotopes or have weak gamma emissions may not be easily analyzed using this method.

3. Limited Depth of Penetration: Gamma rays have limited penetration depth in dense materials. This means that in applications where the material of interest is thick or heavily shielded, gamma ray Spectrometry may not provide accurate results.

4. Sample Size and Homogeneity: The accuracy of gamma ray Spectrometry depends on sample homogeneity. Nonhomogeneous samples can yield inaccurate results. Additionally, small sample sizes can pose challenges, as they may not provide a representative analysis.

5. Safety Concerns: The use of gamma ray sources for activation analysis can introduce radiation safety concerns. Proper training and safety measures are essential to protect operators and ensure regulatory compliance.

Safety Considerations and Regulatory Aspects

1. Radiation Safety: Gamma ray Spectrometry involves the use of ionizing radiation. It is critical to implement safety measures to protect individuals working with the equipment. This includes shielding, proper handling, and adequate training to minimize radiation exposure.

2. Regulatory Compliance: The use of gamma ray Spectrometry may be subject to national and international regulations, particularly in cases involving the use of radioactive materials. Compliance with these regulations is essential to ensure safe and legal operation.

3. Licensing and Certification: Operators and facilities using gamma ray Spectrometry often need to obtain licenses and certifications to handle radioactive materials and operate the equipment. Regular inspections and audits may be required to maintain compliance. [10][11][12]

Future Directions

Emerging Trends and Advancements in Gamma Ray Spectrometry

1. **Miniaturization and Portability**:Ongoing developments are focused on miniaturizing gamma ray Spectrometry equipment, making it more portable and accessible for field applications. This trend opens doors for real-time, on-site analysis in agriculture and food quality control.
2. **Automation and Integration**: Integrating gamma ray Spectrometry with automation and data analytics tools is becoming more prevalent. This allows for faster data processing, real-time decision-making, and seamless integration with other quality control technologies.
3. **Multimodal Sensing**: Combining gamma ray Spectrometry with other sensing techniques like hyperspectral imaging and acoustic sensors enables a more comprehensive assessment of food and crop quality. This multi-sensor approach provides a more holistic view of the sample.
4. **Machine Learning and AI**: Machine learning and artificial intelligence are increasingly applied to gamma ray Spectrometry data analysis. These technologies can improve the accuracy of quality assessments and allow for the detection of subtle patterns and anomalies.
5. **Spectroscopic Imaging:** Advancements in imaging systems are allowing for spatial mapping of elemental composition. This capability can be invaluable for pinpointing areas of concern in larger agricultural fields or during food processing.
6. **Non-Radioactive Sources**: Research into alternative sources of gamma radiation, such as Xray fluorescence, is gaining traction.

Nonradioactive sources reduce safety and regulatory

concerns associated with traditional gamma sources. [13][14]

Conclusion: In conclusion, gamma ray spectroscopy represents a valuable asset in the continuous pursuit of safer and more sustainable food production and agriculture practices. As technology continues to evolve and research progresses, its potential to revolutionize quality assurance in these sectors is substantial. Interdisciplinary collaboration and ongoing innovation will be essential in fully realizing the benefits of gamma ray spectroscopy in the

References :-

1. ojtyla P, Beer J, Stavina, P. Experimental and simulated cosmic muon background of a Ge spectrometer equipped with a top side anticoincidence proportional chamber. NuclInstr Methods Phys Res B. 1994; 86: 380–386.
2. 10.Seo B, Lee K, Yoon Y, Lee D. Direct and precise determination of environmental radionuclides in solid materials using a modified Marinelli beaker and a HPGe detector. Fresenius J Anal Chem. 2001; 370:264–269.
3. 11.Valkovic V. Determination of radionuclides in environmental samples. In: Barcelo D, editor. Environmental Analysis: Techniques, Applications and Quality. Amsterdam: Elsevier Science Publishers; 1993, p. 311–356.
4. 12.Wallbrink P, Walling D, He Q. Radionuclide measurement using HPGE gamma spectrometry. In: Zapata F, editor. Handbook for the Assessment of Soil Erosion and Sedimentation Using Environmental Radionuclides. Amsterdam: Springer; 2003. ISBN 978-0306-48054-6. p. 67–87.
5. 13.Lederer M, Shirley V. Table of Isotopes. 7th ed. New York: Wiley & Sons; 1978. ISBN: 0-471-04179-3.
6. 14.Erdtmann G and Soyka W. The Gamma Rays of the Radionuclides. Weinheim: Verlag Chemie; 1979. ISBN: 3-52725816-7.
7. 15.Wahl W. α–β–γ-Table of Commonly Used Radionuclides, Version 2.1; 1995. D83722 Schliersee.
8. 16.Firestone R, Shirley V. Table of Isotopes. 8th ed. New York: Wiley & Sons; 1999. ISBN: 978-0-471-35633-2
9. 17.Legrand J, Perolat J, Lagourtine F, Le Gallic Y. Table of Radionuclides. Atomic Energy Agency, Gif-sur-Yvettes, France 1957.
10. 18.Amiel S (Ed.). Nondestructive Activation Analysis, Amsterdam: Elsevier; 1981. ISBN: 0-444-41942-X.
11. 19.Parry S. Handbook of Neutron Activation Analysis. Woking: Viridian Publishing; 2003. ISBN: 0-9544891-1-X.
12. 20.Zehringer M, Stöckli M. Determination of total bromine residue in food and nonfood samples. Chimia2004;59:112.
13. 21.The Federal Department of Home Affairs. Ordinance on Contaminants and Constituents in Food; 1995.
14. 22.Zehringer M, Testa G, Jourdan J. Determination of total Iodine content of food with means of Neutron Activation Analysis (NAA). Proceedings of the Swiss Food Science Meeting (SFSM '13); 2013; Neuchatel.
15. 23.Bhagat P et al. Estimation of iodine in food, food products and salt using ENAA. Food Chem. 2009; 115: 706–710.

Radionuclide		Energy (keV)	Emission probability ε (%)	Interferences
7Be	Direct	477.61	10.3	
40K	Direct	1460.8	10.67	
226Ra	Direct 214Pb 214Pb 214Bi 214Bi 214Bi	186.2 295.21 351.92 609.32 1120.3 1764.5	3.5 18.2 35.8 44.6 14.8 15.4	235U (185.72keV; 57.2%) 211Bi (351.06keV; 12.91%)
228Ra	228Ac 228Ac 228Ac	338.32 911.21 968.97	11.3 26.6 15.8	
228Th	224Ra 212Pb 212Pb 208Tl 208Tl 208Tl	240.99 238.63 300.09 277.36 583.17 860.56	4.0 43.3 3.3 2.3 30.5 4.5	214Pb (241.98; 7.12%) 228Ac (583.41 keV; 0.114%)
227Ac	227Th 227Th 223Ra	235.97 256.5 269.5	12.1, 11.2 7.0 13.7	
235U	Direct	143.76 163.33 185.72 205.31	10.96 5.08 57.2 5.01	226Ra (186.1; 3.51%) 228Ac (204.10; 0.171%)
238U	234Th 234Th 234Th 234MPa 234MPa	63.28 92.37 92.79 766.37 1001.03	4.3 2.5 2.4 0.21 0.84	232Th (63.81; 0.267%) Weak line Weak line
210Pb	Direct	46.54	4.2	Weak line

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

उद्योग के क्षेत्र में ई-कॉमर्स का बढ़ता योगदान

नवीन कुमार बिठौरे*   डॉ. बी.आर. नलवाया**

* शोधार्थी, राजीव गांधी शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत
** शोध निर्देशक, राजीव गांधी शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – ई-कामर्स, साहित्य समीक्षा के संदर्भ में ई-कामर्स के वर्तमान और भविष्य के पहलुओं के बारे में चर्चा की इक्कीसवी सदी ने ऑनलाइन व्यापारो के लिए अनेक अवसर एवं प्रतिस्पर्धा का वातावरण प्रदान किया। ई कामर्स का प्रमुख लक्ष्य व्यावसायिक क्षेत्र को बढ़ाना और वैश्विक स्तर पर अपने उत्पादो और सेवाओं के लिए आज मार्केट को तलाशना है। ई-कामर्स बहुत तेजी से फैल रहा है और आज बहुत बड़ी कम्पनियां ई-कामर्स के लिए इन्फास्ट्रक्चर प्रदान कर रही है, जैसे कि Salefoce, ebay, amazon and Hp1 ई-कामर्स कई प्रकरा के होते है B2C, B2B, C2B, C2C, B2G, and G2B ई-कामर्स से पेपर वर्क बहुत ही कम होने लगा है। ई-कॉमर्स से मध्यस्थता समाप्त हो गई है जिससे उपभोक्ता को सस्ती वस्तुएँ उपलब्ध होती है। लेकिन ई-कामर्स के माध्यम से सारे प्रोडक्ट नही मिल पाते है। ई-कामर्स के माध्यम से प्रोडेक्ट खरीदने पर उपभोक्ता को सुविधाएँ भी मिलती है जैसे Cas back guarantee, cash on delivery, fast delivery, discounts, access to branded products इत्यादि।

प्रस्तावना – ई-कॉमर्स की शुरूआत 1960 के दशक में हुई, जब व्यवसायों ने अन्य कंपनियों के साथ व्यावसायिक दस्तावेज साझा करने के लिए ईडीआई का उपयोग करना शुरू किया। 1979 में, अमेरिकी राष्ट्रीय मानक संस्थान ने व्यवसायों के लिए इलेक्ट्रानिक नेटवर्क के माध्यम से दस्तावेज साझा करने के लिए एक सार्वभौमिक मानक के रूप में ASC X12 विकसित किया।

1980 के दशक में एक-दूसरे के साथ इलेक्ट्रानिक दस्तावेज साझा करने वाले व्यक्तिगत उपयोगकर्ताओं की संख्या बढने के बाद, 1990 के दशक में ईबे और अमेजन के उदय ने ई-कॉमर्स उद्योग में क्रांति ला दी। उपभोक्ता अब केवल ई-कॉमर्स विक्रेताओं जिन्हें ई-टेलर्स भी कहा जाता है, और ई-कॉमर्स क्षमता वाले ईट और मोर्टार स्टोर से कई वस्तुएं ऑनलाइन खरीद सकते हैं। अब लगभग सभी खुदरा कंपनियाँ ऑनलाइन व्यवसाय प्रथाओं को अपने व्यवसाय मॉडल में एकीकृत कर रही हैं।

इलेक्ट्रानिक कामर्स मुख्य रूप से इन्टरनेट तथा अन्य कम्प्यूटर नेटवर्क जैसे इलेक्ट्रानिक प्रणालियों पर सेवाओं तथा वस्तुओं के वितरण क्रय, विक्रय, विपणन तथा वस्तुओं की सेवाओं का नाम हैं। इक्कीसवी सदी ने ऑनलाइन व्यापारों के लिए अनके अवसर एवं प्रतिस्पर्धा का वातावरण प्रदान किया है। अनेक ऑनलाइन व्यापारिक कंपनियों की स्थापना हुई है। अनेक ऑनलाइन शाखाएँ खोल सखी है।

ई-कामर्स कंपनियों को यह सुनिश्चित करना होगा कि उनके प्लेटफार्म पर लिस्टेट प्रोडक्ट पर वह किस देश का बना हुआ है यह मौजूद रहे यानी कि कंट्री ओफ ओरिजन। यह एक बेहद मुश्किल टास्क है क्योंकि अमेजॉन और फिलपकार्ट पर लाखो प्रोडक्ट लिस्ट है इस नियम को लागू करने में जो सबसे बडी मुश्किल हो सकती है, वह यह है कि जब भी ग्राहक ओनलाइन खरीदारी करे तो उसे आंयातित प्रोडक्ट या सर्विस का लोकल ई-कॉमर्स कंपनियां और सेलर्स दोनों ही कोई उत्साह नहीं है।

ई-कॉमर्स प्लेटफार्म पर कुछ प्रोडक्ट ऐसे भी होते है जिन्हे खरीद लेने के बाद वापस नहीं किया जा सकता। आमतौर पर ओनलाइन शॉपिंग में फ्री एक्सचेंज या रिफंड की पेशकश रहती है। कंज्यूमर से स्पष्ट तौर पर उसकी मंजूरी जान लेना ग्राहक के लिए ऑनलाइन शोपिंग अनुभव को बेहतर ही बनाएगा।

ई-कॉमर्स काम कैसे करता है – ई-कॉमर्स इंटरनेट द्वारा संचालित होता है। यहा पर ग्राहक अपने डिवाइस के माध्यम से उत्पादों या सेवाओ को ब्राउज करने और ऑर्डर देने के लिए ऑनलाइन स्टोर तक पहुचते है।

जैसे ही ऑर्डर दिया जाएगा, ग्राहक का वेब ब्राउजर ई-कॉमर्स वेबसाइट को होस्ट करने वाले सर्वर के साथ आगे संचार करेगा। ऑर्डर से संबंधित डेटा एक केंद्रिय कंप्यूटर पर रिले किया जाएगा जिसे ऑर्डर मैनेजर के रूप में जाना जाता है। फिर इसे उन डेटाबेसों को अग्रेषित किया जाएगा जो इन्वेंट्री स्तरों का प्रबंध करते हैं, एक व्यापारी प्रणाली जो PayPal जैसे एप्लिकेशन का उपयोग करके भुगतान जानकारी का प्रबंध करती है, और एक बैंक अंत में यह वापस ऑर्डर मैनेजर के पास जाएगा। यह सुनिश्चित करना है कि ऑर्डर को संसाधित करने के लिए स्टोर इन्वेंट्री और ग्राहक फंड पर्याप्त हैं। ई-कॉमर्स लेनदेन की मेजबानी करने वाले प्लेटफार्मों में ऑनलाइन मार्केटप्लेस शामिल हैं जिनके लिए विक्रेता साइन अप करते हैं, जैसे अमेजन, एक सेवा के रूप में सॉफ्टवेयर उपकरण जों ग्रहकों को ऑनलाइन स्टोर के बुनियादी ढांचे को किराए पर लेने की अनुमति देता है, यह ओपन सोर्स टूल जिन्हें कंपनियां अपने इन-हाउस डेवलपर्स का उपयोग करके प्रबंधित करती हैं।

ई-कॉमर्स के प्रकार :

व्यवसाय-से-उपभोक्त (बी2सी) – बी2सी ई-कॉमर्स कंपनिया इसमें सिधे अपने सामान को उपभोक्ता तक पहुचाती है सेवाएं प्रतिष्ठान या कम्पनी से किसी उपभोक्ता को बेची जाती है।

व्यापार-से-व्यापार (बी2बी) – बी2सी के समान, एक ई-कॉमर्स व्यवसाय किसी उपयोगकर्ता को सीधे सामान बेच सकता है। हालाँकि, वह

उपयोगकर्ता उपभोक्ता होने के बजाय कोई अन्य कंपनी हो सकती है। बी2बी लेनदेन में अक्सर बडी मात्रा, अधिक विशिष्टताओं और लंबी लीड अवधी की आवश्यकता होती है।

उपभोक्ता से उपभोक्ता (सी2सी) – एक प्रकार का ई–कॉमर्स है जिसमें उपभोक्ता एक–दूसरे के साथ उत्पादों, सेवाओं और सूचनाओं का ऑनलाइन व्यापार करते हैं। ये लेन–देन आम तौर पर किसी तीसरे पक्ष के माध्यम से किए जाते हैं जो ऑनलाइन प्लेटफॉर्म प्रदान करता है जिस पर लेन–देन किया जाता है। उदाहरण के लिए किसी की ऑनलाइन नीलामी होना।

बिजनेस–टू–गर्वमेंट (बी2जी) – कुछ संस्थाएँ सरकारी ठेकेदारों के रूप में एजेंसियों या प्रशासनों को सामान या सेवाएँ प्रदान करने में विशेषज्ञ है। बी2बी संबंध के समान, व्यवसाय मूल्य की वस्तुओं का उत्पादन करता है और उन वस्तुओं को एक इकाई को भेजता है।

उपभोक्ता–से–व्यवसाय (सी2बी) – आधुनिक प्लेटफार्मो ने उपभोक्ताओं को कंपनियों के साथ अधिक आसानी से जुडने और उनकी सेवाए प्रदान करने की अनुमति दी है, विशेष रूप से अल्पकालिक अनुबंधों, गिग्स या अवसरों से संबंधित। उदाहरण के लिए, अपवर्क पर लिस्टिंग पर विचार करें।

उपभोक्ता–से–गर्वमेंट (सी2जी) – पारंपरिक ई–कामर्स संबंध से कम, उपभोक्ता सी2जी साझेदारी के माध्यम से प्रशासन, एजेंसियों या सरकारों के साथ बाताचीत कर सकते हैं। ये साझेदारिया अक्सर सेवा के आदान–प्रदान में नहीं बल्कि दायित्व के लेन–देन में होती हैं।

आप ई–कॉमर्स व्यवसाय कैसे शुरू कर सकते हैं – अपना व्यवसाय शुरू करने से पहले आपको यह सुनिश्चित करना होगा कि आप कौन से उत्पादो और सेवाओं को बेचने जा रहे है और बाजार में आपके कितने प्रतिस्पधी और अपेक्षित लागतों पर ध्यान देना होता है।

इसके बाद एक नाम के साथ आए, एक व्यवसाय संरचना चुने और दस्तावेज (करदाता संख्या, लाइसेंस और यदि वे आवेदन करते है तो परमिट) प्राप्त करें।

इससे पहले कि आप बिक्रि शुरू करें, एक प्लेटफॉर्म तय करें और अपनी वेबसाइट डिजाइन करें (या किसी से यह आपके लिए करवाए)।

शुरूआत में सब कुछ सरल रखना याद रखे और सुनिश्चित करें कि आप अपने व्यवसाय का विपणन करने के लिए जितना संभव हो उतने चैनलों का उपयोंग करें ताकि यह बढ सके।

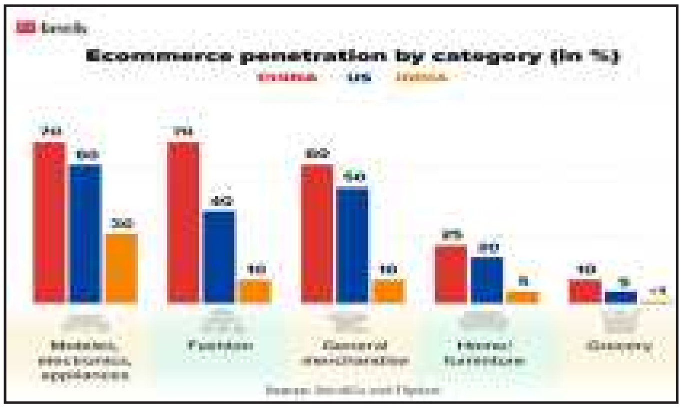

ई–कॉमर्स के उद्देश्य :

1. ग्राहक की संतुष्टि का पता लगाना की उसको क्या चाहिए उसे वह उपलब्ध करवाना।
2. कागजी काम को कम करना तथा समय के पत्राचार में खर्च करें।
3. ग्राहाको की सेवाओं में आने वाली परेशानियों को सुधारना।
4. इसकी बिक्रि के दायरे को बढाना।
5. सप्लायरों और ग्राहकों के साथ संवाद को सरल बनाना।
6. आगे आने वाले ई–कामर्स मार्केट में पोजीशन को बनाये रखना।
7. बडती हुई लागत को कम करना।
8. प्रोडक्ट की क्वालिटी का ध्यान रखना ग्राहक को अच्छि वस्तु उपलब्ध करवाना

ई–कामर्स के लाभ और हानि :

लाभ – ई–कॉमर्स उपभोक्ताओं को निम्नलिखित लाभ प्रदान करता है:

1. सुविधा – ई–कामर्स दिन के 24 घंटे, सप्ताह के सातों दिन हो सकता है। हालाँकि ई–कॉमर्स में बहुत काम लग सकता है, फिर भी जब आप सोते हैं तो बिक्री उत्पन्न करना या अपने स्टोर से दूर रहने के दौरान राजस्व अर्जित करना अभी संभव है।

2. बढा हुआ चयन – कई स्टोर अपने ईंट और मोर्टार समकक्षों की तुलना में ऑनलाइन उत्पादों की एक विस्तृत श्रंखला पेश करते हैं। और कई स्टोर जो पूरी तरह से ऑलनाइन मौजूद हैं, उपभोक्ता को विशेष इन्वेन्ट्री की पेशकश कर सकते हैं जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।

3. ई–कॉमर्स की मदद से बिजनस को पूरी दुनिया में फैला सकते है ये हमारे देश तक ही सीमित न रहकर इसको वर्ल्ड वाइड पब्लिश कर सकते है।

4. प्रोडक्ट के बारे में हम रिव्यू, कमेन्ट में बता सकते है ताकि दूसरे को वो चीज खरीदते समय समझ में आ सकता है की प्रोडक्ट के बारे में दूसरे लोगों की क्या राय है।

5. किसी भी चीज को ठीक तरह से जांच पडताल कर सकते है तथा दूसरे प्रोडक्ट के साथ तुलना भी कर सकते है।

6. ई–कॉमर्स से पेपर वर्क बहुत ही कम होने लगा है।

7. अंतर्राष्ट्रीय बिक्री – जब तक एक ई–कॉमर्स स्टोर ग्राहक को माल भेज सकता है, एक ई–कॉमर्स कंपनी दुनिया में किसी को भी बेच सकती है और यह भौतिक भूगोल द्वारा सीमित नहीं हैं।

हानि – ईकॉर्स के साथ कुछ कमियां भी आती है। नुकसान में शामिल है :

1. प्रौद्योगिकी पर निर्भतता – यदि आपकी वेबसाइट क्रैश हो जाती है, भारी मात्रा में ट्रेफिक एकत्र करती है, या किसी भी कारण से अस्थायी रूप से बंद कर दी जाती है, तो आपका व्यवसाय ई–कॉमर्स स्टोरफ्रंट वापस आने तक प्रभावी रूप से बंद हो जाता है।

2. उच्च प्रतिस्पर्धा – इसका मतलब है कि अन्य प्रतिस्पर्धी आसानी से बाजार में प्रवेश कर सकते हैं। ई–कॉमर्स संपनियों के पास सावधनिपूर्वक विपणन रणनीतियाँ होनी चाहिए और यह सुनिश्चित करने के लिए कि वे डिजिटल उपस्थिति बनाए रखें एसईओं अनुकूलन पर मेहनती रहें।

3. खर्चीली – ई–कॉमर्स वेबसाइट, एप्लीकेशन बनाने के लिए काफी खर्चीली होती है।

4. कई सारे प्रोडक्ट इन्टरनेट के माध्यम से नहीं मिल पाते है।

5. किसी भी नई वेबसाइट पर भरोसा करना थोडा मुश्किल है।

6. सिक्यूरिटी के बारे में हमेशा सतर्क रहना पड़ता है।

निष्कर्ष – छोटे तथा बड़े दोनों ही प्रकार की कम्पनियों को बाजार में उतरने तथा अर्न्तराष्ट्रीय बाजाज पर काबू करने के लिए ई–कॉमर्स अत्यन्त शक्तिशाली कारक है। इण्टरनेट इसीलिए ग्राहक सेवा तथा सपोर्ट के लिए

महत्वपूर्ण माध्यम है। ई–कॉमर्स ई–बिजनेस चलाने का सिर्फ एक हिस्सा है। जबकि उत्तरार्द्ध में ऑनलाइन व्यवसाय चलाने की पूरी प्रक्रिया शामिल है, ई–कॉमर्स का तात्पर्य केवल इंटरनेट के माध्य से वस्तुओं और सेवाओं की बिक्री से है। ई–कॉमर्स कंपनियों ने खुदरा उद्योग के काम करने के तरीके को बदल दिया है, जिससे प्रमुख, पारंपरिक खुदरा विक्रेताओं को अपने व्यापार करने के तरीके को बदलने के लिए मजबूर होना पड़ा है। इण्टरनेट के माध्यम से कम्यूनिकेशन अधिक प्रभावशाली हुआ है तथा इसमें गति सहतजा आई है और यह सस्ती हुयी है। इण्टरनेट की सहायता पूरी दुनिया क लोग एक दूसरे से बगैर बहुत अधिक खर्च के तथा विश्वसनीय रूप से जुड़ते है। टेक्नीकल इन्फ्रास्ट्रक्चर के रूप में यह वैश्विक नेटवर्क का एक संकलन है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सीता, अनुराग ई–कॉमर्स प्रयाग प्रकाशन प्रायवेट लिमिटेड, मथुरा, 2014
2. राघव, सतीष कुमार ई–कॉमर्स मारूति प्रकाशन दिल्ली रोड, मेरठ 2014
3. इंटरनेट
4 नईदुनिया, दैनिक भास्कर
5. www.esalestrack.com>blog>2008/09

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

वर्तमान में जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभाव, वित्तीय सहायता एवं निवारण हेतु उपाय

अंचल रामटेके*

* सहायक प्राध्यापक (प्राणीशास्त्र) राजाभोज शासकीय महाविद्यालय, मण्डीदीप, जिला रायसेन (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – जलवायु का तात्पर्य किसी क्षेत्र विशेष में रहने वाले औसत मौसम से होता है। वर्तमान में जलवायु परिवर्तन का दुष्प्रभाव स्पष्ट रूप से मानव जीवन, कृषि, मौसम तथा पशुओं पर देखा जा सकता है। ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन तथा निर्वनीकरण के कारण जलवायु में परिवर्तन हो रहा है। जिससे तापमान में वृद्धि, तुफान, सूखा, परिस्थितिक तंत्र पर प्रभाव स्वास्थ्य पर प्रभाव, भोजन में कमी, मृदा की गुणवत्ता में कमी, आदि प्रभाव उत्ळणन हो रहे है। इन परिवर्तनों को रोकने हेतु विश्व बैंक द्वारा UNFCCC, LDCF, SCCF, एडेप्टेशन फंड, हरित जलवायु कोष की स्थापना तथा वित्तीय सहायता प्रदान की गई है। अत: जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों के निराकरण हेतु प्रतिरोधक कृषि को बढावा देना, बडे बांधों को मजबूत बनाना, भू जल संरक्षण , तटों की सुरक्षा, सौर उर्जा को बढावा देना आदि उपाय किए जाने चाहिए।

शब्द कुंजी– जलवायु परिवर्तन, ग्रीन हाउस गैसें।

प्रस्तावना –जलवायु परिवर्तन का प्रभाव संपूर्ण विश्व में देखा जा सकता है। यह किसी स्थान विशेष में भी महसूस किया जा सकता है। जलवायु किसी क्षेत्र विशेष में लंबे समय तक का औसत मौसम होता है। अत: जब किसी क्षेत्र विशेष के औसत मौसम में परिवर्तन आ जाता है तो इसे जलवायु परिवर्तन कहते है।

पृथ्वी का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी के तापमान में निरन्तर वृद्धि हो रही है जिसका मानव जाति पर प्रभाव पड रहा है।

उद्देश्य– इस पेपर का उद्देश्य वैश्विक तथा भारतीय स्तर पर जलवायु परिवर्तन के कारणों तथा इस हेतु किए गए उपायों का अध्यन करना है।

अध्ययन स्त्रोत – इस पेपर हेतु इंटरनेट, समाचार पत्र – पत्रिकाँए आदि का प्रयोग द्वितीयक डाटा स्त्रोत के रूप में किया गया।

जलवायु परिवर्तन के कारण:

1. **ग्रीन हाउस गैसे–** इसके अंतर्गत मुख्य रूप से कार्बन डाई आक्साइड मीथेन, तथा क्लोरोफ्लोरो कार्बन शामिल है।

2. **निर्वनीकरण –** औद्योगीकरण तथा शहरीकरण के कारण वृक्षों की कटाई से जलवायु परिवर्तन हो रहा है। पेड़ एक प्राकृतिक यंत्र है जो कार्बन डाई ऑक्साइड को अवशोषित करते है।

जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न प्रभाव :

1. **तापमान में वृद्धि –** पावर प्लांट, ऑटोमोबाइल, वनों की कटाई तथा ग्रीन हाउस गैसों को उर्त् उत्सर्जन पृथ्वी के तापमान में वृद्धि कर रहा है यदि ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को रोकने की विशेष उपाय करने की आवश्यकता है अन्यथा पृथ्वी के तापमान में वृद्धि 10 डिग्री फेरनहाइट तक हो जाएगी।

2. **समुद्र के जल स्तर में वृद्धि –** ग्लोवल वार्मिग के कारण ग्लेशियर पिघल रहें है तथा समुद्र के जल स्तर में वृद्धि हो रही है।

3. **भयंकर तुफान –** तापमान में वृद्धि से नमी अधिक वाष्पित होती है, जिससे वर्षा एवं बाढ में अधिकता आती है। इस कारण भयंकर तूफान आते है गर्म होते महासागर उष्णकटि बंधीय तूफानों की आवृत्तिा में वृद्धि करते हैं जिससे आने वाले तूफान घर तथा जन समुदाय को नष्ट कर देते है यह आर्थिक नुकसान को बढावा देता है।

4. **सूखा–** जलवायु परिवर्तन के कारण सूखा बढ रहा है क्योंकि समय पर तथा पर्याप्त मात्रा में वर्षा नही हो रही है। इसका सबसे अधिक दुष्प्रभाव कृषि पर पड रहा है तथा पारिस्थितिक तंत्र कमजोर हो रहा है।

5. **जीवों के अस्तित्व पर संकट –** जीवों की अधिकांश प्रजातियाँ भूमी तथा जल पर वास करती है। जलवायु परिवर्तन से भूमी तथा समुद्र में जीवों के अस्तित्व पर संकट उत्पन्न हो गया है। इसके फलस्वरूप अगले कुछ वर्षो में कई लाख प्रजातियां नष्ट हो जाएगी क्योंकि सभी प्रजातियाँ बदलते जलवायु परिवर्तन के अनुरूप स्वंय को अनुकुलित करने में सक्षम नही है।

6. **समुद्र के तापमान में वृद्धि –** महासागर ग्लोबल वार्मिग से उत्पन्न ताप को सोख लेते है। चूंकि गर्म होने पर पानी में विस्तार होता है अत: समुद्र के आयतन में वृद्धि हो रही है। बर्फ की चादर पिघलने से समुद्र का जल स्तर बढ रहा है। महासागर कार्बनडाईऑक्साइड के अच्छे अवशोषक होते है परन्तु अधिक मात्रा में कार्बनडाईऑक्साइड इसकी अम्लीयता को बढा रहे है। जिससे मूंगा के अस्तित्व को खतरा है

7. **पारिस्थितिक तंत्र पर प्रभाव –** सबाना से लेकर कारण कटिबंधीय वर्षा वन प्रभावित हो रहे है। कीटों , रोगजनक संक्रमणों तथा आक्रामक प्रजातियों का प्रकोप बढने की संभावना है। इसके कारण वन्यजीव तथा वनस्पतियां दोनो प्रभावित हो रहे है तथा पारिस्थितिक तंत्र पर विपरीत प्रभाव पड रह है।

8. **स्वास्थ्य संबंधी समस्याँए –** चूंकि जलवायु परिवर्तन का असर ऋतु चक्र पर पडता है इससे स्वास्थ्य संबंधी विभिन्न समस्यांए उत्पन्न हो रही है।

9. **भोजन की कमी –** वर्षा में कमी तथा तापमान में वृद्धि होने से फसल

चक्र पूरी तरह से प्रभावित हो रहा है। इससे भोजन में कमी आ रही है अप्रत्याशित बाढ तथा लम्बे समय तक रहने वाला सूखा गंभीर तुफान ये सभी फसलों को बर्बाद कर देते हैं।

10. मृदा की गुणवत्ता में कमी – स्वस्थ मृदा कीड़े, बैक्टीरिया, कवक तथा सूक्ष्म जीवों से युक्त होती है। जिससे फसल उत्पादन में वृद्धि होती है लेकिन जलवायु परिवर्तन से मिट्टी की गुणवत्ता को और अधिक प्रभावित किया है।

11. पशुओं पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव – जलवायु परिवर्तन से उन प्रजातियों को और अधिक खतरा है जो जैव विविधता के कारण संकट में है। मुख्य रूप से महासागर तथा भूमी की संरचना में परिवर्तन होना, मछली पालन तथा पशुओं का व्यापार। जलवायु परिवर्तन उन स्थानों की संरचना को बदल देता है जिसके प्रति जीव वर्षो से अनुकूलित है। बालरस तथा पेगुइन जैसे वर्फ पर निर्भर रहने वाले प्राणियों का अस्तित्व वर्फ पिघलने के कारण खतरे मे है।

जलवायु परिवर्तन रोकने हेतु किए गए वित्तीय उपाय–जलवायु परिवर्तन के संकट का वित्तीय के द्वारा प्रबंधन उतना ही आवश्यक है जितने की अन्य उपाय–

1. व्यापक स्तर पर निवेश के द्वारा उत्सर्जन में कटौती हेतु विभिन्न योजनाए तैयार की जा सकती है।
2. मानव अधिकार संरक्षण विश्व में जलवायु वित्तीय इन्ही संदर्भ में एक वैध मांग के रूप में उभर रहा है।
3. प्रदूषण कर्ता भुगतान करे धारणा :– आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन द्वारा (OECD) पारित है जिसमें जलवायु परिवर्तन की आवश्यकता को रेखांकित किया गया है।
4. भारत द्वारा 2005 के स्तर पर 2020 तक सकल घरेलू उत्पाद के उत्सर्जन की तीव्रता 20–25 प्रतिशत तक कम करने का लक्ष्य है।
5. सत्र 2016 की रिपोर्ट :–

सत्र	उत्सर्जन की तीव्रता
2005–2010	12 प्रतिशत कमी

6. UNFCCC :– इसके अंतर्गत कार्यशील वित्तीय तंत्र निम्न है

GEF (ग्लोबल एन्वायरमेंट फैसिलिटी):–

गठन	उद्देश्य	सोर्स
1991	जैवविविधता , जलवायु परिवर्तन, जल भूमी अवमूल्यन, ओजोन क्षरण आदि हेतु परियोजना चलाने के लिए वित्तपोषित करना।	अनुदान व रियायती फंडिंग

अल्पविकसित देश कोष (LDCF) :–

गठन	कार्य
इसका गठन NAPAs के निर्माण एवं क्रियान्यन सहायता हेतु।	इस कोष द्वारा अल्प विकासित देशों को कृषि ,प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन जलवायु सूचना में सेवा, आपदा प्रबंधन आदि से मूल्यांकित करना।

SCCF (विशेष जलवायु परिपर्तन कोष) :–

गठन	कार्य
2001	जलवायु परिवर्तन राहत एवं जीवाश्म ईधन निर्भर देशों को आर्थिक विविधीकरण देना।

एडेप्टेशन फंड :–

गठन	उद्देश्य	सोर्स
2001	क्वोटो प्रोटोकाल के साझेदार देशों में कार्यक्रमों को वित्त	जलवायु परिवर्तन का सामना कर रहे राष्ट्रो पर ध्यान देना। पोषण करना।

हरित जलवायु कोष (GCF)

गठन	उद्देश्य	सोर्स
2011	जलवायु परिवर्तन से निपटने हेतु सहायता राशि उपलब्ध कराना।	2020 तक विकासशील देशो को 100 विलियन डॉलर उपलब्ध कराना।

पेरिस समझौता :

लक्ष्य :– इस शताब्दी के अंत तक तापमान 2°c के नीचे रखना।

कारण:– 2°c से अधिक वैश्विक तापमान होने पर समुद्र का स्तर बढने लगेगा। मौसम मे बदलाव होगा व जल व भोजन का अभाव होगा।

जलवायु परिवर्तन रोकने हेतु किए जा रहे उपाय:

1. प्रतिरोधक कृषि को बढावा देना –भारत को अपनी जलवायु प्रतिरोधकता को बढाने के लिए विश्व बैंक व्यापक क्षेत्रों में अनुकूलन के बढावा देने के लिए सरकार के साथ काम कर रहा है। किसानों को अपने फसल पैटर्न में विविधता लाने, नवीनतम कृषि जानकारी तक पहुँचने, डिजिटल प्रौद्योगिकी का उपयोग बढाने, मिट्टी और जल प्रबधन में सुधार करने में मदद की जाती है।

2. बांधों को मजबूत करना –समय के साथ भारत के 5700 बडे बाँध संरचनात्मक रूप से कमजोर हो गए है। विश्व बैंक के समर्थन से भारत बांध पुर्नवास कार्यक्रम लागू कर रहा है। जिसमें 300 बडे बांधों को मजबूत करने का प्रयास किसा जा रहा है। जिससे निचले प्रवाह में रहने वाले लोगों की सुरक्षा के मानक निर्धारित होंगें।

3. भूजल का संरक्षण – विश्व बैंक सात राज्यों में भारत की अटल भू जल योजना दुनिया का सबसे बडा समुदाय आधारित भूजल प्रबंधन कार्यक्रम का समर्थन कर रहा है। ग्रामीणों को उनके पानी के उपयोग अनुसार बजट बनाने, उचित जल धारण संरचनाओं का निर्माण करने और उचित सिचाई तकरनीकों को उपनाने की आवश्यकता है।

4. बाढ संभावित क्षेत्रों की सुरक्षा –बिहार की बाढ संवेदनशीलता का समाधान करने हेतु विश्व बैंक राज्य को उनके प्रभाव को कम करने में मदद कर रहा है।

5. सौर ऊर्जा का उपयोग –कार्बन उत्सर्जन में बिजली क्षेत्र का प्रमुख योगदान है। विश्व बैंक के सहयोग से रीवा सोलर पार्क में 750 मेगावाट का निजी निवेश किया गया है। 1500 की संयुक्त क्षमता वाले तीन अन्य पार्को को सर्मथन दिया जा रहा है। 2016 में विश्व बैंक से भारत में सोलर रुफ टॉप बाजार शुरू करने में मदद की है।

6. तटों की सुरक्षा हेतु मैग्रोव लगाना –मैंग्रोव (कच्छ बनस्पति) समुद्री जीव तथा लुप्तप्राय प्रजातियों का घर है। ये तटीय तूफानों व सुनामी के प्रभाव को कम करते है तथा चार गुना कार्बन अधिक सोखते है। 2010 से विश्व बैंक मैग्रोव लगाने और प्रजातियो की विविधता बहाल करने में मदद कर रहा है।

7. बैटरियों में नवीकरणीय ऊर्जा का प्रबंधन –विश्व बैंक बिजली क्षेत्र में बैटरी भंडारण के निवेश को प्रेरित करने तथा इससे जुडे पारिस्थितक

तंत्र के साथ मिलकर स्थाई बाजार लगाने में भारत के साथ काम कर रहा है।

8. **भविष्य के स्वास्थ्य की रक्षा** –जलवायु परिवर्तन से होने वाली स्वास्थ्य समस्याओं को देखते हुए स्वास्थ्य की रक्षा विश्व बैंक कार्य कर रहा है।

निष्कर्ष–अत: जलवायु परिवर्तन को रोकने हेतु किए गए विभिन्न उपायों के द्वारा, विश्व बैंक, द्वारा पोषित वित्तीय सहयोग से जलवायु परिवर्तन से होने वाले हानिकारक प्रभावों को रोका जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. रिर्पोट : द वर्ल्ड बैंक
2. www.worldbank.org
3. जैव विविधता और पर्यावरण
4. इंटरनेट

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

नागरिकता संशोधन अधिनियम 2019

डॉ. आभा सैनी*

* प्रोफेसर एवं अध्यक्षा (राजनीति विज्ञान) जैन कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मुजफ्फरनगर (उ.प्र.) भारत

प्रस्तावना – नागरिकता एक राजनीतिक स्थिति को दर्शाती है। यह व्यक्ति और राज्य के संबंध को प्रदर्शित करती है। किसी भी देश का नागरिक राजनीतिक समुदाय और राज्य का एक सहभागी सदस्य होता है। किसी भी राष्ट्र में कानूनी आवश्यकताओं को पूरा करके कोई व्यक्ति नागरिक बन सकता है। इसके बदले में राष्ट्रीय सरकार उसे अधिकार और विशेषाधिकार प्रदान करते हैं और नागरिक कानूनों का पालन करते हैं। किसी भी देश के मान्यता प्राप्त नागरिक होने के अनेक फायदे होते हैं, जैसे वहां पर वोट डालने का अधिकार व्यक्ति को प्राप्त हो जाता है, वह वहां जमीन खरीद सकता है, स्थाई रूप से निवास कर सकता है, रोजगार कर सकता है, उस राष्ट्र में सार्वजनिक पद धारण कर सकता है, स्वास्थ्य और शिक्षा से संबंधित सेवाओं और सामाजिक सुरक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

भारतीय संविधान में नागरिकता – भारतीय संविधान के अनुच्छेद भाग-2 में नागरिकता का वर्णन किया गया है। नागरिकता संघीय सूची का विषय है और संसद के विशेष अधिकार क्षेत्र में आती है। भारतीय संविधान में 'नागरिक' शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है, लेकिन अनुच्छेद 5 से लेकर 11 तक नागरिकता प्राप्त करने के तरीकों को बताया गया है। संविधान के यह अनुच्छेद 26 नवंबर 1949 से ही लागू कर दिए गए थे।

अनुच्छेद 5 में संविधान के प्रारंभ पर नागरिकता का वर्णन है, जिस में जन्म लेने वाले अथवा भारत में निवास करने वाले किसी भी व्यक्ति के माता या पिता में से कोई भी एक भारतीय नागरिक है तो उसे भारतीय नागरिक माना जाएगा। यदि किसी के सामान्य रूप से निवास की अवधि 5 साल रही हो तो भी वह भी भारतीय नागरिकता के लिए आवेदन करने का पात्र होगा।

अनुच्छेद 6 में पाकिस्तान से भारत को पलायन करने वाले व्यक्तियों के नागरिकता के अधिकार बताए गए हैं। 19 जुलाई 1949 से पहले यदि कोई व्यक्ति भारत में प्रवास किया हो और उसकी माता-पिता या दादा-दादी में से कोई भी भारत में जन्म हुआ हो तो वह भारत का नागरिक बन जाएगा लेकिन इसके बाद भारत में आने वाले प्रवासियों को पंजीकरण अनिवार्य होगा।

अनुच्छेद साथ में 7 में पाकिस्तान को प्रवसन करने वाले व्यक्तियों की नागरिकता के अधिकारों का वर्णन है। यह अनुच्छेद पाकिस्तान जाने वाले प्रवासियों को नागरिकता के अधिकार प्रदान करता है। जिसके अनुसार 1 मार्च 1949 को पाकिस्तान जाने वाले ऐसे व्यक्तियों को भारतीय नागरिक माना जाएगा जो कुछ समय बाद ही पुनर्वास के लिए भारत में पुनर्वास परमिट पर आ गए हो। जो व्यक्ति पाकिस्तान से पलायन कर रहे थे और वहां से शरणार्थी घोषित किए गए और फिर भारत में आए तो उनके प्रति भी सहानुभूति रखी गई और उन्हें भारतीय नागरिकता प्रदान की गई।

अनुच्छेद 8 में भारत के बाहर रहने वाले भारतीय व्यक्तियों के नागरिकता के अधिकार बताए गए हैं। जिसके अनुसार भारतीय मूल का कोई भी व्यक्ति जिसके माता-पिता या दादा-दादी में से कोई भारत में पैदा हुआ हो तो वह भारतीय राजनयिक मिशन के अंतर्गत भारतीय नागरिक के रूप में पंजीकृत हो सकता है।

अनुच्छेद 9 में विदेशी राज्य की नागरिकता स्वेच्छा से अर्जित करने वाले व्यक्तियों का नागरिक ना होना वर्णित है। इस अनुच्छेद के अनुसार यदि कोई व्यक्ति स्वेच्छा से किसी भी दूसरे देश की नागरिकता ग्रहण कर लेता है तो वह भारत का नागरिक नहीं रहेगा।

अनुच्छेद 10 में नागरिकता के अधिकारों का बना रहना दिया गया है। इस अनुच्छेद के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति जो इस भाग के पूर्व गामी प्रावधान के अनुसार भारत का नागरिक है, वह संसद की बनी हुई कानूनी प्रावधानों के अंतर्गत भारत का नागरिक बना रहेगा।

अनुच्छेद 11 में संसद द्वारा नागरिकता के अधिकार का विधि द्वारा विनियमन किया जाना उचित है। नागरिकता के अधिग्रहण और समाप्ति अथवा इससे संबंधित किसी भी प्रावधान या मसले पर संसद को प्रावधान का अधिकार प्रदान करता है।

भारत में नागरिकता प्राप्ति के तरीके – भारत में नागरिकता प्राप्त करने के 4 तरीके हैं। धारा 3 के अनुसार जन्म से किसी भी व्यक्ति को नागरिकता प्राप्त होगी यदि उनका जन्म भारतीय क्षेत्र में हुआ है चाहे उसके माता-पिता की राष्ट्रीयता कोई भी हो। 26 जनवरी 1950 और 1 जुलाई 1987 के बीच जन्म लिए हुए व्यक्तियों पर यह प्रावधान लागू होता है लेकिन यदि उसका जन्म 1 जुलाई 1987 के बाद और 2 दिसंबर 2004 के बीच होता है तो उसके माता-पिता में से यदि कोई भारतीय नागरिक है तभी उसे नागरिकता प्राप्त होगी। 3 दिसंबर 2004 के बाद कोई भी व्यक्ति तभी भारत का नागरिक हो सकता है यदि उसके माता-पिता में से कोई या दोनों भारत के नागरिक हों और उसका जन्म भारत में हुआ है, जन्म के समय अवैध प्रवासी ना हो।

यदि धारा 4 के अनुसार 26 जनवरी 1950 के बाद भारत के बाहर पैदा हुआ व्यक्ति वंश के आधार पर भारतीय नागरिक है। यदि उसके पिता भारत के नागरिक थे 10 दिसंबर 1992 के बाद और 2 दिसंबर 2004 के बीच वंश के आधार पर उसके माता या पिता में से कोई भी एक भारत का नागरिक है तो उसे भारतीय नागरिकता प्राप्त होगी। दिसंबर 2004 के बाद

यदि कोई व्यक्ति वंश के आधार पर भारतीय नागरिकता प्राप्त करना चाहता है तो उसके माता–पिता को यह बताना होगा कि उसके पास किसी अन्य देश का नागरिकता प्रमाण पत्र पासपोर्ट नहीं है और उसका जन्म भारतीय दूतावास में पंजीकृत हो।

धारा 5 के अनुसार पंजीकरण के द्वारा भी कोई व्यक्ति भारत का नागरिक हो सकता है बशर्ते कि वह आवेदन करने से पहले 7 साल भारत में रहा हो, ऐसे व्यक्ति जिनके अवयस्क बच्चे भारत के नागरिकों और भारतीय मूल का वह व्यक्ति जो भारत से बाहर रह रहा हो, भारतीय नागरिक से विवाह करने वाली स्त्री या पुरुष जो पंजीकरण के समय 7 साल से भारत में निवास कर रहे हो।

धारा 6 के अनुसार प्राकृतिक करण के आधार पर भी भारतीय नागरिकता प्राप्त की जा सकती है, बशर्ते कि वह व्यक्ति 12 साल से भारत का नगर निवासी रहा हो और नागरिकता अधिनियम की तीसरी अनुसूची में उल्लिखित योग्यताओं को पूरा करता हो।

भारतीय नागरिकता अधिनियम 1955 नागरिकता प्राप्त करने के तरीकों का प्रावधान करता है अधिनियम में चार बार संशोधन किया गया है। 1986, 2003, 2005 और 2015 (नागरिकता संशोधन अध्यादेश) 1986 का संशोधन जन्म के आधार पर भारतीय नागरिकता का वर्णन करता है। 2003 के संशोधन ने बांग्लादेशी घुसपैठ को रोकने के लिए इसके प्रावधान और अधिक कठोर बना दिए गए। इस संशोधन से भारतीय नागरिकता के प्रावधान रक्त संबंध के संकीर्ण सिद्धांतों की ओर बढ़ गए, जबकि इससे पहले यह जन्म के आधार पर थे। अब एक अवैध प्रवासी व्यक्ति प्राकृतिक करण या पंजीकरण के द्वारा भारतीय नागरिक नहीं बन सकता है जब तक भारत में 7 साल से भारत का निवासी ना रहा हो।

नागरिकता राष्ट्रीय रजिस्टर 1951 के बाद से तैयार किया गया है। इसमें प्रत्येक गांव के घरों को क्रम में दिखाया गया है और उसमें रहने वाले व्यक्तियों को संख्या और नाम का संकेत दिया गया है। यह केवल एक ही बार 1951 में प्रकाशित हुआ था। 1951 का नागरिकता राष्ट्रीय रजिस्टर और 1971 की मतदाता सूची को एक साथ डिलीवरी डाटा कहा जाता है या लीगेसी डेटा कहा जाता है। जिन व्यक्तियों और उनके वंशजों के नाम इसमें दिखाई देते हैं उन्हें भारतीय नागरिक के रूप में प्रमाणित किया गया है।

भारतीय नागरिकता समाप्ति के तरीके – किसी भी भारत के नागरिक की नागरिकता निम्न कारणों की वजह से समाप्त हो सकती है:-

1. यदि कोई नागरिक स्वेच्छा से अपनी नागरिकता का परित्याग करता है।
2. अन्य देश की नागरिकता ग्रहण करने पर नागरिकता की समाप्ति।
3. यदि भारत सरकार को यह अनुभव हो कि नागरिकता संविधान के प्रति अनादर किया है या फर्जी तरीके से नागरिकता प्राप्त की है या भारत से बाहर सात वर्षों से रह रहा हो या युद्ध के समय शत्रु देश के साथ गैरकानूनी रूप से संबंध स्थापित किये हो या शत्रु के साथ कोई राष्ट्रविरोधी सूचना साझा की हो। पंजीकरण या प्राकृतिक नागरिकता के पांच वर्ष के दौरान नागरिक को किसी भी देश में दो वर्ष की कैद की सजा हुई हो।

गृह मंत्रालय की एक रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2019 में भारतीय नागरिकता छोड़ने वालों की संख्या 1.44 लाख थी जो कोविद काल में 85,256 थी वही 2021 में 1.6 लाख से अधिक भारतीयों ने अपनी भारतीय नागरिकता त्याग दी। बेहतर रोजगार आवास शिक्षा व सुरक्षा जैसे महत्वपूर्ण कारणों से यह प्रवास जारी है।

नागरिकता संशोधन अधिनियम 2019 – यह अधिनियम अवैध प्रवासियों के कुछ समूहों को भारत की नागरिकता के लिए आवेदन हेतु पात्र बनाता है। 31 दिसंबर 2014 को या उससे पहले भारत में प्रवेश कर चुके अफगानिस्तान, पाकिस्तान और बांग्लादेश के हिंदू, सिख, बौद्ध, जैन, पारसी और ईसाई समुदाय के किसी भी व्यक्ति और जिसे केन्द्रीय सरकार ने पासपोर्ट भारत में प्रवेश अधिनियम 1920 के द्वारा या उसके अधीन अथवा विदेशी विषयक अधिनियम 1946 या उसके अधीन बनाए गए नियमों अथवा किए गए आदेशों के लागू होने से छूट दी है को इस अधिनियम के प्रायोजन के लिए अवैध प्रवासी नहीं माना जाएगा।

इस अधिनियम की यह भी विशेषता है कि इसमें देशीयकरण के लिए भारत में उनके निवास की अपेक्षित अवधि को 11 साल से कम करके 5 साल कर दिया गया है। इस अधिनियम में यह भी प्रावधान है इस की संविधान की छठी अनुसूची में सम्मिलित असम, मेघालय, मिजोरम, त्रिपुरा के जनजातीय क्षेत्र और बंगाल पूर्वी सीमांत विनियम 1873 के अधीन अधिसूचित आंतरिक रेखा के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों पर लागू नहीं होगा। इसके अंतर्गत यह भी प्रावधान है इसकी नागरिकता संशोधन अधिनियम 2019 के प्रारंभ की तारीख से इसके अंतर्गत आने वाले किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध अवैध प्रवसन या नागरिकता के संबंध में लंबित कोई भी कार्रवाई उसे नागरिकता प्रदान करने पर समाप्त हो जाएगी।

यह अधिनियम 12 दिसंबर 2019 को पारित किया गया और 10 जनवरी 2020 को अधिसूचित किया गया था। 11 मार्च 2024 को अधिनियम को आधिकारिक रूप से घोषित कर लागू कर दिया गया। इसके अंतर्गत आवेदन करने वाले इच्छुक व्यक्ति ऑनलाइन नागरिकता संशोधन अधिनियम की वेबसाइट पर (citizenshiponline.nic.in) आवेदन कर सकते हैं इसके लिए टोल फ्री हेल्पलाइन नंबर 1032 है। आवेदन जमा करने की इच्छुक व्यक्तियों को अपना ईमेल आईडी और मोबाइल नंबर भी प्रस्तुत करना होगा। इसके अंतर्गत आवेदन करने वालों को ऑनलाइन आवेदन करने के बाद अपने अफगानिस्तान, पाकिस्तान, बांग्लादेश में सरकार द्वारा जारी किए गए जन्म प्रमाणपत्र या पहचान पत्र या शैक्षिक प्रमाण पत्र या लाइसेंस जैसे प्रमाणपत्र स्थानीय स्तर पर जमा करने होंगे और इसमें जिला स्तर पर निर्मित एक कमेटी स्थानीय स्तर के स्वीकृत योग्यता और प्रमाण पत्रों की एवं ऑनलाइन प्रार्थना पत्र की जांच कर रिपोर्ट प्रस्तुत करेगी।

आलोचकों के द्वारा इस नियम की अनेक आधारों पर आलोचना की गई है जिसमें धर्म के आधार पर भेदभाव करने का विशेषकर मुसलमानों को बाहर करने के लिए इस अधिनियम का निर्माण जैसा आरोप लगाया गया है। तिब्बत, श्रीलंका और म्यांमार जैसे अन्य क्षेत्रों से सताए गए धार्मिक अल्पसंख्यकों के बहिष्कार पर भी सवाल उठाए गए है उन्हें इसमें सम्मिलित क्यों नहीं किया गया है। असम और अन्य पूर्वोत्तार राज्यों में अधिनियम के खिलाफ हिंसक प्रदर्शन हुए जिसमें यह आरोप लगाया की शरणार्थियों और अप्रवासियों को भारतीय नागरिकता देने से उनके राजनैतिक अधिकार, संस्कृति और भूमि अधिकारों का नुकसान होगा एवं बांग्लादेश से आगे प्रवसन को बढ़ावा मिलेगा। कानून के पारित होने के बाद भारत में बड़े पैमाने पर विरोध और प्रदर्शन किए गए। राजनीतिक दलों कांग्रेस, तृणमूल कांग्रेस, आम आदमी पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी, एडीएमके जैसे दलों ने इसका पूर्ण

विरोध किया। कुछ राज्यों ने घोषणा भी की कि वे इस अधिनियम को लागू नहीं करेंगे और यह अत्यधिक कानूनी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है तनाव, असुरक्षा, चिंता और सांप्रदायिक हिंसा को बढ़ावा देता है। आलोचकों का तर्क यह भी है कि यह अधिनियम आने के बाद राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर एनआरसी का प्रभाव खत्म हो जाएगा और ये संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करता है जो कि नागरिकों और विदेशियों को समानता एवं अधिकार की गारंटी देता है।

सरकार के द्वारा अलोचनाओं का जवाब देते हुए यह तर्क प्रस्तुत किया गया की नागरिकता केंद्र का विषय है और यह अधिनियम उन लोगों के लिए वरदान है जो विभाजन का शिकार हुए हैं। पाकिस्तान अफगानिस्तान और बांग्लादेश इस्लामिक गणराज्य है जहाँ मुसलमान बहुसंख्यक स्थिति में है इसलिए उन्हें उत्पीड़ित अल्पसंख्यक नहीं माना जा सकता है। सरकार ने यह भी आश्वासन दिया की नागरिको की भाषाएँ सांस्कृतिक और सामाजिक पहचान संरक्षित रखी जाएगी।इस अधिनियम से भारत के विदेश नागरिक कार्ड के रद्दकरण से पूर्व भारत के कार्डधारक विदेशी नागरिको को यह अधिनियम सुनवाई का अवसर प्रदान करता है इससे पूर्व इस तरीके का उपबंध उपलब्ध नहीं था। यह अधिनियम संविधान की छठी अनुसूची के अंतर्गत आने वाले पूर्वोत्तर राज्यों की देश जनसंख्या को प्रदान की गई संवैधानिक गारंटी की संरक्षा करने के लिए और बंगाल पूर्वी सीमांत विनियम 1873 की आंतरिक रेखा प्रणाली के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों को प्रदान किए गए कानूनी संरक्षण के लिए भी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. बसु दुर्गादास, 'भारत का संविधान : एक परिचय', नेक्सस नई दिल्ली।
2. www.hindustantimes.com
3. www.jagranjosh.com
4. www.thehindu.com
5. www.drishtiias.com
6. http://citizenshiponline.nic.in
7. http://loksabhadocs.nic.in

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

सोशल मीडिया का युवाओं पर प्रभाव

डॉ. सोनिका बघेल*

* सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शासकीय आदर्श महाविद्यालय, हरदा (म.प्र.) भारत

मुख्य शब्द – सोशल मीडिया, नैतिक मूल्य, समाज, अपराध, इंटरनेट, नेट वर्किंग, सोशल साइट जीवन शैली, युवा।

प्रस्तावना – सोशल मीडिया का प्रयोग वर्तमान में तेजी से बढ़ रहा है और इसके साथ ही इसका प्रभाव बढ़ रहा है। सोशल मीडिया का उपयोग युवाओं में तेजी से हो रहा है संपर्क के साधन के साथ राजनीति अर्थव्यवस्था और अन्य क्षेत्रों में इसका उपयोग तेजी से हो रहा है, इसके कारण समाज में प्रत्येक पहलुओं पर विशेष कर युवाओं के नैतिक और सामाजिक मूल्यों के साथ-साथ युवाओं के जीवन शैली और विचारों को प्रभावित कर रहा है।

सोशल मीडिया युवाओं पर अपनी निजी जिंदगी खोलने लगा है साथ ही प्रमाणित खबरों को वह सच मानने लगा है जिसके कारण सोशल मीडिया का नकारात्मक पहलू बड़ रहा है, प्रस्तुत लेख में सोशल मीडिया के प्रभाव का विस्तार पूर्वक वर्णन निम्न प्रकार विश्लेषित किया गया है।

सोशल मीडिया की परिभाषा में कहा गया है कि, यह इंटरनेट आधारित अनुप्रयोग का ऐसा समूह है जो प्रयोग जनित सामग्री के सृजन और आदान-प्रदान की अनुमति देता है। इसके अतिरिक्त सोशल मीडिया मोबाइल और वेब आधारित प्रौद्योगिकी ओर प्रौद्योगिकी से ऐसे क्रियाशील मंचों का निर्माण करता है। जिनके माध्यम से व्यक्ति और समुदाय प्रयोग जनित सामग्री का संप्रेषण कर सकते हैं, उसी प्रकार विचार विमर्श कर सकते हैं और उसका परिष्कार कर सकते हैं संगठन समुदायों और व्यक्तियों के बीच महत्वपूर्ण और व्यापक परिवर्तन को अंजाम देते हैं।

सोशल मीडिया सामाजिक नेटवर्किंग वेबसाइट जैसे फेसबुक, ट्विटर, लिन्कदे, युटुब, टेस्ट माय स्पेस, साउंडक्लाउड और इसे अन्य साइट्स पर इस्तेमाल करता है, इनको विचार विमर्श सृजन सहयोग करने तथा टैक्स इमेज ऑडियो और वीडियो रूपों में जानकारी में हिस्सेदारी करने और उसे परेशान उसे परिष्कृत करने की योग्यता और सुविधाएं प्रदान करता है, यह सच है कि सोशल मीडिया ने इंटरनेट का लोकतंत्रिकीकरण किया है और सबसे महत्वपूर्ण भारतीय है कि उसने भाषण और अभी व्यक्ति के आदर्शो को आदर्श को संरक्षित किया है। किंतु इसके साथ ही यह भी उतना ही सही है कि दैत्यों को भी जन्म दिया है जो घातक है हाथ में रखे जाने वाले मोबाइल स्मार्टफोन टैबलेट की संख्या तेजी से बढ़ रही है और उपकरणों के जरिए इंटरनेट की उपलब्धता से वास्तविक समाजीकरण के तात्कालिक भावना कई गुना बढ़ गई है इसके जरिए न केवल अति संवेदनशील और युवा दिलों को प्रभावित करने वाली अनुचित अनुचित सामग्री आसानी से उपलब्ध हो जाती है। बल्कि निर्धन्य मानसिकता और व्यक्तियों को विभिन्न प्रकार के जैन-धनी प्रयाग जनों से माध्यम से छूट मिल जाती है। साइबर रनिंग साइबर स्टॉकिंग ऑफ फाइव फैलाने वाले दुष्कर्म इस भाई वह दैत्य के मामूली नमूने हैं सोशल मीडिया ने इस्तेमाल करता जनित सामग्री के जरिए सर्वाधिक सार्वजनिक जीवन के जाने-माने व्यक्तियों की प्रतिष्ठा को भी आघात पहुंचा है। इसने लोगों के व्यक्तिगत रूप से मिलने की प्रवृत्ति पर विपरीत असर डाला है। जहां पारंपरिक ढंग से एक दूसरे से मिलने और बातचीत करने में समय किसी के पास नहीं है, लेकिन इसके बावजूद डिजिटल स्पेस सामाजिक नेटवर्किंग के नित्य ने आयाम और आकर्षक उपलब्ध करा रहा है। इंटरनेट एंड मोबाइल एसोसिएशन ऑफ इंडिया की रिपोर्ट के अनुसार शहरी क्षेत्र में सोशल मीडिया के प्रयोक्ताओं की संख्या दिसंबर 2012 में 62 करोड़ पहुंच चुकी थी। शहरी भारत में प्रत्येक चार में से तीन व्यक्ति सोशल मीडिया का इस्तेमाल करते हैं। इस रिपोर्ट में कुछ महत्वपूर्ण पहलू इस प्रकार है, मोबाइल इंटरनेट का इस्तेमाल करते हुए सोशल नेटवर्किंग एक्सेस के औसत आवृत्ति 1 सप्ताह में 7 दिन फेसबुक को भारत में 97% सोशल मीडिया प्रयोक्ताओं द्वारा एक्सेस किया जाता है। भारतीय सोशल मीडिया पर हर रोज औसत लगभग 30 मिनट व्यतीत करते हैं सस्ते मोबाइल हैंडसेट आसानी से उपलब्ध होने के कारण यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि इंटरनेट का इस्तेमाल और सोशल मीडिया नेटवर्किंग के इस्तेमाल से भारत में आने वाले कुछ वर्षों में जबरदस्त बढ़ोतरी होगी इस रिपोर्ट में कहा गया है कि आज यह देखा जा रहा है कि मोबाइल फोन के जरिए सोशल नेटवर्किंग के इस्तेमाल में निरंतर बढ़ोतरी हो रही है। मोबाइल फोन का प्रसार अत्यंत तीव्र गति से हो रहा है ज्यादा से ज्यादा संख्या में लोग फोन अपना रहे हैं जिनके विशिष्ट अनेक विशेषताएं होती हैं और स्मार्टफोन की संख्या लोगों के पास बढ़ती जा रही है। इंटरनेट सोशल नेटवर्किंग साइट भारत में सामाजिक सक्रिय इंटरनेट प्रयोक्ताओं के आधार पर तेजी से प्रसार कर रही है मोबाइल इंटरनेट सस्ता होने के कारण इसमें वृद्धि हो रही है।

युवाओं में बढ़ती अति सक्रियता वह उसके दुष्परिणाम वर्तमान समय में सोशल मीडिया के प्रयोग ने युवाओं को समय से पहले आक्रांत कर दिया है, युवक तुरंत पहचान बनाना चाहता है। बिना इंतजार किया प्रतिष्ठित होना चाहता है, और जब वह जहां पूरी नहीं होती तो वह आक्रामक व आपराधिक कार्यो को करने से नहीं डरते, नकारात्मक प्रवृत्ति पर रोग जरूरी सोशल मीडिया के फायदे तो बहुत है पर इसे युवाओं को भ्रमित खूब किया है इस पर धार्मिक उन्माद बने करने वाले बयान नहीं आना चाहिए। अश्लील वीडियो पर पाबंदी होनी चाहिए और इस पर प्रभावी अंकुश के लिए कठोर

कानून बनाकर कठोर कार्रवाई की जाना होगी। इस पर प्रभावी अंकुश के लिए कठोर कानून बनाकर कठोर कार्रवाई की जाना चाहिए।

साइबरबुलिइंग सोशल मीडिया का नकारात्मक प्रभाव :

1. मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ
2. सामाजिक संबंध
3. 'टेक एडिक्शन'
4. पूर्वाग्रहों पुष्टि
5. अनलाइन सोशन

कई अध्ययनों में सोशल मीडिया के उपयोग और अवसाद के बीच घनिष्ठ संबंध पाया गया है। एक अध्ययन के अनुसार, मध्यम से गंभीर अवसाद लक्षण वाले युवाओं में सोशल मीडिया का उपयोग करने की संभावना लगभग दोगुनी थी। सोशल मीडिया पर किशोर अपना अधिकांश समय अपने साथियों के जीवन और तस्वीरों को देखने में बिताते हैं। यह एक निरंतर तुलनात्मकता की ओर ले जाता है, जो आत्म-सम्मान और 'बॉडी इमेज' को नुकसान पहुँचा सकता है और किशोरों में अवसाद एवं चिंता की वृद्धि कर सकता है।

1. सोशल मीडिया के अत्यधिक उपयोग के परिणामस्वरूप स्वास्थ्यप्रद, वास्तविक दुनिया की गतिविधियों पर कम समय व्यय किया जाता है। सोशल मीडिया फीड्स को स्क्रॉल करते रहने की आदत जिसे 'वैम्पिंग' कहा जाता है, के कारण नींद की कमी की समस्या उत्पन्न होती है।
2. किशोरावस्था सामाजिक कौशल विकसित करने का एक महत्त्वपूर्ण समय होता है। लेकिन, चूँकि किशोर अपने दोस्तों के साथ आमने-सामने कम समय बिताते हैं, इसलिये उनके पास इस कौशल के अभ्यास के कम अवसर होते हैं।
3. वैज्ञानिकों ने पाया है कि किशोरों द्वारा सोशल मीडिया का अति प्रयोग उसी प्रकार के उत्तेजना पैटर्न का सृजन करता है जैसा अन्य एडिक्शन व्यवहारों से उत्पन्न होता है।
4. सोशल मीडिया दूसरों के बारे में उनके पूर्वाग्रहों और रूढ़ियों की पुन:पुष्टि का अवसर प्रदान करता है। समान विचारधारा वाले लोगों से ऑनलाइन मिलने से इन प्रवृत्तियों की वृद्धि होती है क्योंकि उनमें समुदाय की भावना का विकास होता है। उदाहरण: फ्लैट अर्थ सोसाइटी।
5. इसने गंभीर समस्याएँ पैदा की हैं और यहाँ तक कि किशोरों के बीच आत्महत्या के मामलों को भी जन्म दिया है। इसके अलावा, साइबर बुलिइंग जैसे कृत्य में संलग्न किशोर मादक पदार्थों के सेवन, आक्रामकता और आपराधिक कृत्य में संलग्न होने के प्रति भी संवेदनशील होते हैं।
6. संयुक्त राज्य अमेरिका में किये गए एक अध्ययन में पाया गया कि सर्वेक्षण में शामिल सभी अमेरिकी बच्चों में से लगभग आधे ने संकेत दिया कि उन्हें ऑनलाइन रहते हुए असहज महसूस कराया गया, उन्हें धमकाया गया या उनसे यौन प्रकृति का संवाद किया गया। एक अन्य अध्ययन में, यह पाया गया कि ऑनलाइन यौन शोषण के शिकार लोगों में से 50 प्रतिशत से अधिक 12 से 15 वर्ष की आयु के बीच के थे।
7. सोशल मीडिया के प्लेटफॉर्म पर हर मिनट, हर घंटे, हर दिन नई जानकारियां अपलोड की जा रही है, लेकिन इस वर्चुअल वर्ल्ड में अब यह पता लगाना मुश्किल है कि कौन की जानकारी सही है और कौन सी गलत। इसके कंटेंट पर किसी का कंट्रोल न होने से गलत जानकारियों के साथ फोटो व वीडियो शेयर किए जा रहे हैं। आधी अधूरी जानकारियां युवाओं पर सकारात्मक प्रभाव के साथ नकारात्मक प्रभाव भी डाल रही हैं।
8. अगर आप समाज से अलग-थलग महसूस करते हैं और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म जैसे फेसबुक, इंस्टाग्राम जैसे ऐप पर ज्यादा समय बिताते हैं, तो एक नये शोध के अनुसार, इससे स्थिति और बिगड़ सकती है. सोशल मीडिया से युवाओं में अवसाद बढ़ रहा है। फेसबुक से डिप्रेशन का खतरा 7% और चिड़चिड़ापन का खतरा 20% बढ़ा है। सोशल मीडिया ने मोटापा, अनिद्रा और आलस्य की समस्या बढ़ा दी है। 'फियर ऑफ मिसिंग आउट' को लेकर भी चिंताएं बढ़ गयी हैं। स्टडी के मुताबिक, सोशल मीडिया से सुसाइड के मामले बढ़े हैं। इंस्टाग्राम से लड़कियों में हीन भावना आ रही है। सोशल मीडिया चेक और स्क्रॉल करना, पिछले एक दशक में तेजी से लोकप्रिय गतिविधि बन गयी है। अधिकांश लोगों द्वारा सोशल मीडिया का उपयोग करने से ऐसा हो रहा है। वास्तव में, सोशल मीडिया एक व्यवहारिक लत है, जो इस प्लेटफॉर्म पर लॉग ऑन करने या उपयोग करने के लिए एक अनियंत्रित आग्रह से प्रेरित है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. दयाल, डॉ.मनोज, मीडिया शोध, हिसार, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी।
2. कुमार, विजय, 'कहां पहुंचा रहे हैं अतरंगता के नए पुल' : नवनीत हिंदी डायजेस्ट (मुम्बई), पृष्ठ-18
3. द्विवेदी, संजय, (2012) 'सोशल मीडिया के सामाजिक प्रभाव' : पंचनद रिसर्च जर्नल, अंक सं 19
4. भाटिया, चेतना,(2012) 'सामाजिकता के आईने में सोशल मीडिया' : पंचनद रिसर्च जर्नल, अंक सं 19
5. मानस,जयप्रकाश, (2012) 'नागरिक पत्रकारिता का प्रात: काल': मीडिया विमर्श, वर्ष 6, अंक सं 24

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

The Future of Military Applications of Artificial Intelligence: An overview of the Role for Confidence-Building Measures

Santosh Ambhore* **Ashok Shrama****

*Department of Chemistry, Govt. Motilal Vigyan Mahavidyalaya, Bhopal (M.P.) INDIA
** Department of Military Science, Govt. Motilal Vigyan Mahavidyalaya, Bhopal (M.P.) INDIA

Abstract - Artificial intelligence (AI) has become a reality in today's world with the rise of the 4th industrial revolution, especially in the armed forces. Military AI systems can process more data more effectively than traditional systems. Due to its intrinsic computing and decision-making capabilities, AI also increases combat systems' self-control, self-regulation, and self-actuation. Artificial intelligence is used in almost every military application, and increased research and development support from military research agencies to develop new and advanced AI technologies is expected to drive the widespread demand for AI-driven systems in the military. This paper will discuss several AI applications in the military, as well as their capabilities, opportunities, and potential harm and devastation when there is instability. The paper looks at current and future potential for developing artificial intelligence algorithms, particularly in military applications. Most of the discussion focused on the seven patterns of AI, the usage and implementation of AI algorithms in the military, object detection, military logistics, and robots, the global instability induced by AI use, and nuclear risk. The paper also looks at the current and future potential for developing artificial intelligence algorithms, particularly in military applications.

Introduction - Artificial intelligence is a type of computer technology which is concerned with making machines work in an intelligent way, similar to the way that the human mind works.

The abbreviation AI is also used. Artificial Intelligence is the developing arena of computer sciences wherein technology is advanced to make computers behave like Human Nervous system majorly brain. Artificial Intelligence has advanced in fields such as Computer games, Neural networks, Natural language, Expert Systems and Robotics. Artificial Intelligence research covers a broad range of topics that include knowledge representation, machine learning, natural language processing, computer vision, reasoning and logic, robotics, information systems, motion planning, Speech Technology, Speech Recognition, and Image Processing.

In short, Artificial Intelligence (AI) is the science of mimicking human intelligence inside a computer. In addition to Microsoft Corporation (NASDAQ:MSFT), Alphabet Inc. (NASDAQ:GOOG), and Apple Inc. (NASDAQ:AAPL), Oracle Corporation (NYSE:ORCL) is one of the biggest AI companies in the world. John McCarthy is considered as the father of Artificial Intelligence. John McCarthy was an American computer scientist. The term "artificial intelligence" was coined by him.

The journey of AI in India can be traced back to the late 20th century when research and development in the field were in their nascent stages. Educational institutions such as the Indian Institutes of Technology (IITs) played a pivotal role in nurturing talent and fostering AI research. Birth of AI 1950-1956 Alan Turing published his work "Computer Machinery and Intelligence" which eventually became The Turing Test, which experts used to measure computer intelligence. The term "artificial intelligence" was coined and came into popular use. AI entered India through the works of professor H.N. Mahabala in the 1960s. Knowledge-Based Computing Systems (KBCS) created in 1986 by UNDP also paved way for India to focus on AI. The history of AI in India dates back to the 1980s when the Indian government and research institutions started investing in AI research and development. One of the pioneers in AI in India is Prof. Raj Reddy, who is known for his contributions to AI and robotics. The impact of AI in India started to become more significant in the early 2000s with the growth of the IT industry and the emergence of startups focusing on AI and machine learning. Today, AI is influencing various sectors in India, including healthcare, finance, agriculture, and education.

Artificial intelligence (AI) has been gradually improving and becoming a more efficient way worldwide with the help of data, computer processing power, and machine learning

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

developments, especially during the last two decades. As a result, AI is being used increasingly and more frequently in the daily life of various sectors. A few of the various uses of this technology include speech recognition, biometric authentication, mobile mapping, navigational systems, transportation and traffic control, management, manufacturing, supply chain management, data collection, and control targeted online marketing. Therefore, it should come as no surprise that AI has many applications in the military sector also, in a vast range. Military capability is the current measurement index when determining a country or nation's "Power force." The U.S. Department of Defense defines military competence or capability as "the ability to achieve a certain combat objective (win a war or battle, destroy a target set)." It is directly or indirectly influenced by modernization, structure, preparedness, and sustainability. The equipment, arsenal, and level of technical sophistication largely determine the degree of modernization.

The Internet is replacing the conventional way of initiating war instigated from the start of the Second World War. Studies show that hacking attacks on for-profit companies and governmental institutions around the AI sector are more common now. According to researchers, modern autonomous systems and artificial intelligence (AI) are expected to be crucial in future military confrontations. Recent scientific publications show how prevalent neural network technology is today in the cyber fight. The development of intelligent transport systems (ITS) is one of the major examples, along with forecasting and assessing environmental phenomena, separating informational tweets from non informational ones (containing information that are rumors or non detailed irrelevant data), and forecasting dynamic FX conventional markets. This type of enhancer helps in the military sector in various ways and turns out to be the greatest weapon in developing military capability.

Data on a wide range of resources and capabilities (human resources combat and support vehicles, helicopters, cutting-edge intelligence, and communication equipment, artillery, and missiles) that can carry out complex tasks of various types, such as intelligence gathering, movements, direct and indirect fires, infrastructure, and transports, should be considered in military decisions. For instance, the decisional component necessitates an integrated framework that can carry out the necessary processes, from capturing a high-level course of action (CoA) to implementing a thorough analysis/plan of activities. One possibility is to build the approach on several AI methods, such as qualitative spatial interpretation of CoA diagrams and interleaved adversarial scheduling, and many others likewise enhance the military world in different paths.

Seven Patterns of AI: There are many applications for AI, including chatbots, automated drones, facial recognition, virtual assistants, cognitive automation, fraud detection, autonomous vehicles, and applications for predictive analytics. However, regardless of how AI is applied, each of these applications has something in common. Despite the variety of applications, people who have created hundreds or even thousands of AI projects know that every AI use case falls into one or more of seven categories, as shown in figure below.

Impact of AI in the Indian Army: Indian Army Day is celebrated annually on January 15 to commemorate the 1949 commissioning of the Indian Army's first Indian contingent. The impact of AI is transforming industries worldwide. The worldwide expenditure on AI reached $118 billion in 2022 and is expected to exceed $300 billion by 2026. Like other sectors, the influence of AI has resulted in a growing trend of global militaries using AI in their combat systems. The defence sector uses AI-based technologies for training, surveillance, logistics, cyber security, UAV, advanced military weaponry like laws, autonomous combat vehicles, and robotics. Rajnath Singh, the Indian Defence Minister, unveiled 75 recently created AI technologies on July 11, 2022. This event occurred at the inaugural 'AI in Defence' (AIDef) symposium and exhibition organized by the Ministry of Defence in New Delhi.

Furthermore, the minister emphasized the significance of promptly incorporating advanced technologies such as AI and Big Data in the defense sector. It is crucial to ensure we remain up-to-date with technical advancements and fully leverage technology for our services.

Applications of AI in Defence:

1. Border monitoring can be enhanced by integrating cameras, radar feeds, sensors, and other technologies aided by AI-based solutions.
2. These advanced technologies aid in identifying border breaches, categorizing targets, and improving the precision of defense operations.
3. Unmanned Aerial Vehicles (UAVs) - Drones outfitted with AI-based aircraft technology are highly proficient in conducting day and night surveillance operations, encompassing border control and comprehensive surveillance.
4. Lethal Autonomous Weapon Systems (LAWS) are equipped with integrated sensors and pre-programmed algorithms that assist in identifying, selecting, and tracking hostile targets.

5. These weapons can engage targets independently and thus reduce the need for personnel.
6. Autonomous armoured vehicles and robots perform unattended, real-time surveillance, transport injured individuals, and carry supplies under challenging locations, including deserts and mountainous areas.
7. Robots demonstrate superior performance in hazardous and high-pressure environments, surpassing the skills of humans.
8. Data management - AI can analyze and utilize unutilized or underutilized data, generating more practical and valuable insights for the Indian armed forces. It will improve the capabilities of Intelligence, Surveillance, and Reconnaissance (ISR).
9. Pattern recognition - AI can analyze data from many sources and discern patterns.
10. The purpose of this technology is to forecast possible terrorist attacks and insurgency activity and propose proactive measures.
11. Training and simulation encompass a range of disciplines that utilize system and software engineering principles to develop models that aid soldiers in training for various combat systems employed in real-world military missions.

AI Adoption in the Indian Military:

1. The Ministry of Defence's Department of Defence Production established a task force in February 2018 to examine the prospective implementation of AI in defence contexts. Its report was submitted in June 2018 under the "Strategic Implementation of AI for National Security and Defense" task force. In 2019, a Defence AI Project Agency (DAIPA) and a Defence AI Council (DAIC) were established by the task force's recommendations.
2. The DAIC comprises the three service commanders, the defence secretary, the national cyber security coordinator, and representatives from the DRDO, industry, and academia. The defense minister chairs it. The DAIC is tasked with convening biannually to deliver essential guidance that facilitates and executes policy-level modifications, operational framework development or customization, and structural support.
3. The ex officio president of the DAIPA is the Secretary (Defense Production), while members are selected from academia, industry partners, the services, Defense Public Sector Undertakings, DRDO, and the DAIPA. The DAIPA shall establish and implement benchmarks for AI initiatives' technology development and delivery process and consult user groups regarding the adoption strategy for AI-led and AI-enabled systems and processes.
4. At the level of the Defense Ministry, these are plausible measures; however, they must be supplemented with modifications to organizational structure, planning, and processes at the level of the end users, namely the military. Adoption of artificial intelligence will be inconsistent and suboptimal unless the military is adequately prepared to assimilate this technology.

Conclusion: AI is not a military plug-and-play technology. Some basic applications may fit into this category. Still, the Indian military must improve its data management and network systems, build acceptable organizational structures, and comprehensively prepare its staff to utilize AI. Technology's availability is less important than how to use it to improve our military.

The contributions of this paper are for the advancement of AI in the military capabilities, and the significance of this narrative review is to identify several key applications of AI in the military, including target recognition, surveillance, homeland security, cyber security, transportation and logistics, autonomous vehicles, and combat training. We have also highlighted the potential benefits of using AI in these areas, including increased efficiency, accuracy, and decision-making capabilities. The paper also identifies several challenges and potential risks associated with using AI in the military, such as the potential for malfunction, hacking, and other forms of cyber attacks. The ethical and legal implications of using AI in the military are discussed in detail, particularly in relation to issues such as autonomous weapons and the potential for unintended harm.

The study has the potential to inform policy and decision-making in this area, particularly in relation to issues such as military modernization and preparedness. The research findings could potentially aid in developing guidelines and regulations for the responsible use of AI in military settings.

References:–

1. A. Anastassov, "Artificial intelligence and its possible use in international nuclear security law," *BAS Humanities and Social Sciences*, vol. 1, 2021.
2. A. Mishra and P. Yadav, "Anomaly-based ids to detect attack using various artificial intelligence & machine learning algorithms: a review," in *Proceedings of the 2nd International Conference On Data, Engineering And Applications (IDEA)*, pp. 1–7, Bhopal, India, February 2020.
3. H. M. Chuang and D. W. Cheng, "Conversational AI over military scenarios using intent detection and response generation," *Applied Sciences*, vol. 12, no. 5, p. 2494, 2022.
4. H.-M. Chuang and D.-W. Cheng, "Conversational AI over military scenarios using intent detection and response generation," *Applied Sciences*, vol. 12, no. 5, p. 2494, 2022.
5. J. Dalzochio, R. Kunst, J. L. V. Barbosa et al., "Predictive maintenance in the military domain: a systematic review of the literature," *ACM Computing Surveys*, vol. 55, 135 pages, 2023.

6. J. Johnson, "Artificial intelligence in nuclear warfare: a perfect storm of instability?" *The Washington Quarterly*, vol. 43, no. 2, pp. 197–211, 2020.
7. JM. Bistron and Z. Piotrowski, "Artificial intelligence applications in military systems and their influence on sense of security of citizens," *Electronics*, vol. 10, no. 7, p. 871, 2021.
8. M. Taddeo, D. McNeish, A. Blanchard, and E. Edgar, "Ethical principles for artificial intelligence in national defence," *Philosophy & Technology*, vol. 34, no. 4, pp. 1707–1729, 2021.
9. M. Voskuijl, "Performance analysis and design of loitering munitions: a comprehensive technical survey of recent developments," *Defence Technology*, vol. 18, no. 3, pp. 325–343, 2022.
10. O. Gillath, A. Ting, M. S. Branicky, S. Keshmiri, R. B. Davison, and S. Ryan, "Attachment and trust in artificial intelligence," *Computers in Human Behavior*, vol. 115, 2021.
11. P. Sharma, K. K. Sarma, and N. E. Mastorakis, "Artificial intelligence aided electronic warfare systems- recent trends and evolving applications," *IEEE Access*, vol. 8, pp. 224761–224780, 2020.
12. Rhodes, B.J.; Bomberger, N.A.; Seibert, M.; Waxman, A.M. Maritime situation monitoring and awareness using learning mechanisms. In Proceedings of the MILCOM 2005-2005 IEEE Military Communications Conference, Atlantic City, NJ, USA, 17–20 October 2005; pp. 646–652.
13. Svenmarck, P.; Luotsinen, L.; Nilsson, M.; Schubert, J. Possibilities and Challenges for Artificial Intelligence in Military Applications. In Proceedings of the NATO Big Data and Artificial Intelligence for Military Decision Making Specialists' Meeting, Bordeaux, France, 31 May 2018.
14. Varma, A.; Sarma, A.; Doshi, S.; Nair, R. House Price Prediction Using Machine Learning and Neural Networks. In Proceedings of the 2018 Second International Conference on Inventive Communication and Computational Technologies (ICICCT), Coimbatore, India, 20–21 April 2018; pp. 1936–1939.
15. Wong, Y.H.; Yurchak, J.; Button, R.W.; Frank, A.; Laird, B.; Osoba, O.A.; Steeb, R.; Harris, B.N.; Bae, S.J. *Deterrence in the Age of Thinking Machines*; RAND Corporation: Santa Monica, CA, USA, 2020. Johnson, J. Artificial Intelligence & Future Warfare: Implications for International Security. *Def. Secur. Anal.* 2019, *35*, 147–169.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

राजगढ जिले का जनसंख्या स्वरूप सम्बन्धी- एक भौगोलिक अध्ययन

डॉ. रानी वास्केल*

* सहायक प्राध्यापक (भूगोल) शहीद भीमा नायक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – किसी देश के संसाधनों के बहुमुखी, मितव्यतापूर्ण उपयोग एवं समुचित राष्ट्रीय विकास में जनसंख्या का महत्वपूर्ण योगदान होता है। प्राकृतिक संसाधनो का उपयोग तथा देश की प्रौद्योगिक एवं व्यापारिक उन्नति वहाँ निवास करने वाली जनसंख्या, जनघनत्व, कुशलता व क्षमता एवं व्यक्तियों के स्वभाव पर निर्भर करती है।

शब्द कुंजी – जनांकीकी, संसाधन, घनत्व, लिंगानुपात, अपवाह तंत्र।

प्रस्तावना – किसी देश में उपलब्ध विविध संसाधनों के विकास के माध्यम से राष्ट्र के क्षमतावान विकास एवं आगे बढ़ने की दृढ़ इच्छा शक्ति के आधार का माध्यम तो मानवीय गुणोत्तरता ही है। किसी भी क्षेत्र के लिए जनसंख्या उसके जीवन में सत प्रवाह की तरह होती है, इसलिए जनसंख्या अध्ययन के अभाव में क्षेत्र के किसी भी तत्व का अध्ययन पूर्ण नही होता है।

भूगोल वह अनुशासन है, जो पृथ्वी के विभिन्न स्थानों, क्षेत्रों के परिवर्तनशील स्वरूपों का वर्णन एवं उनकी व्याख्या मानव संसार के रूप में करता है। भूगोल के अध्ययन में भू-स्वरूप एवं मानव दो प्रधान व महत्वपूर्ण शीर्षक है। भूगोल इन्हीं दो घटकों का परस्पर सम्बन्धों से उत्पन्न विविध परिवर्ती वितरणों तथा सम्मिश्रण अर्न्तसम्बन्धों का विश्लेषण करता है।

मानव समस्त विज्ञानों का अध्ययन करता है लेकिन इसके साथ ही वह अनेक विज्ञानों का अध्ययन क्षेत्र भी है। लगभग सभी सामाजिक विज्ञान मनुष्य और इसके कार्यो का अध्ययन करते है लेकिन प्रत्येक विज्ञान उसे एक विषिष्ट दृष्टिकोण से अध्ययन करता है।

वर्तमान में मानव विभिन्न प्रकार के भौगोलिक अध्ययन का मुख्य केन्द्र बिन्दु है। मानव भौगोलिक ज्ञान की धुरी है इसलिए जनांकीकी का अध्ययन मानव रूप करना चाहिए जिससे मनुष्य को अनेक भागो में घटित घटनाओं का ज्ञान हो सकेगा।

'मानव संसाधन की उत्कृष्ट क्षमता ही विकास के द्वार की प्रथम कुंजी है।' अत: किसी देश या प्रदेश के समुचित विकास हेतु उसी जनसंख्या को मानव संसाधन के रूप में उसके विभिन्न पहलूओं का अध्ययन करना आवष्यक है।

अध्ययन क्षेत्र का परिचय – राजगढ़ जिला म.प्र. के पश्चिमी भाग में स्थित है। राजगढ़ जिले की सीमा उत्तर में राजस्थान, दक्षिण में शाजापुर जिले से, दक्षिण पूर्व में सीहोर जिले से, पश्चिम में आगर मालवा से स्पर्श करती है। राजगढ़ जिला भौगोलिक दृष्टि से 23^0 28' से 24^{0}16' उत्तरी अक्षांश एवं 76^0 12' से 77^0 15' पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित है। मध्य प्रदेश राज्य के पश्चिम भाग में स्थित राजगढ़ जिला मालवा पठार के उत्तरी भाग में स्थित है और पार्वती नदी जिले की पूर्वी सीमा बनाती है।

मध्यप्रदेश राज्य के पश्चिम भाग में स्थित राजगढ़ जिला मालवा पठार के उत्तरी भाग में स्थित है और पार्वती नदी जिले की पूर्वी सीमा बनाती है। जिले का क्षेत्रफल 6153 वर्ग किलोमीटर है। क्षेत्रफल की दृष्टि से म.प्र. का 25 वॉ जिला है। राजगढ़ जिले का गठन वर्ष 1956 में किया गया है। राजगढ़ जिला प्रदेश की राजधानी भोपाल से 145 कि.मी. दूरी पर स्थित है। जिले की कुल 1545814 है।

वन क्षेत्र की अधिकता होने के कारण अत्यंत स्वास्थ्यवर्धक मौसम होता है। जिले में औसत वर्षा 44 इंच तक होती है। अपवाह तंत्र के अंतर्गत राजगढ़ जिले में पार्वती नदी, कालीसिन्ध नदी एवं नेवज नदियाँ है। जिले में 57.197 वर्ग कि.मी. आरक्षित वन क्षेत्र है। जिले के वनो में चीतल सांभर, नीलगाय मुख्य रूप से पाए जाते है। नरसिंहगढ़ अभ्यारण्य प्रमुख है। जिले में काली मिट्टी और हल्के लाल रंग की मिट्टी पायी जाती है। अध्ययन क्षेत्र में सिंचाई परियोजना के अंतर्गत कुण्डलिया परियोजना, कालीसिन्ध नदी पर निर्माणाधीन है। जिले में सहरिया, सौर इत्यादि जनजाति निवास करती है। अध्ययन क्षेत्र की मुख्य बोली मालवी है। परिवहन की दृष्टि से राष्ट्रीय राजमार्ग NH-752B, NH-752C, NH-12 नेशनल हाइवे मार्ग गुजरते है। जिले में पर्यटन स्थल जैसे- नरसिंहपुर किला, कपिलेश्वर मंदिर, ब्यावरा मॉडू, नरसिंहपुर जालपामाता मंदिर इत्यादि स्थित है।

अध्ययन का उद्देश्य – प्रस्तुत शोध पत्र में म.प्र. राज्य के राजगढ़ जिले का जनांकिकी स्वरूप-एक भौगोलिक अध्ययन के संदर्भ में प्रस्तुत किया।

1. अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या वृद्धि की स्थिति ज्ञात करना।
2. अध्ययन क्षेत्र में जनांकीकी विशेषता-साक्षरता, जनघनत्व, लिंगानुपात का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि – प्रस्तुत शोध पत्र के अध्ययन में द्वितीयक स्त्रोत के माध्यम से आकँड़े संकलित किये गये है। जैसे – Census Handbook (वर्ष 1981, 2001, 2011) Rajgath. (M.P.), राजगढ़ विकास योजना pdf 2011, इंटरनेट, पुस्तक इत्यादि।

मानचित्रांकन विधि – शोध पत्र में प्राप्त द्वितीयक आकँड़ो के आधार पर दण्ड आरेख, इत्यादि मानचित्रांकन विधि का प्रयोग किया है।

आकँड़ो का सारणीयन एवं विश्लेषण – प्रस्तुत शोध पत्र में अध्ययन क्षेत्र में जनांकीकी स्वरूप किस प्रकार है, इसे प्रदर्शित व जानने का प्रयास किया है। अत: आकँड़ो का सारणीयन कर उनका विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र का जनांकिकी स्वरूप – जनवृद्धि का अर्थ एक विशेष किसी समयावधि में निवास करने वाली जनसंख्या में मात्रात्मक परिवर्तन से है। राजगढ़ जिले में कुल 1728 गांव एवं 07 तहसील है। जनसंख्या वृद्धि की कुल जनसंख्या तथा प्रतिशत दोनो के द्वारा व्यक्त किया जाता है। जनसंख्या वृद्धि किसी भी प्रदेश की आर्थिक, सामाजिक उत्थान, ऐतेहासिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का एक महत्वपूर्ण सूचक होती है।

तालिका क्रमांक – 01: जिला राजगढ़ : जनसंख्या वृद्धि (प्रतिशत मे)वर्ष 1951 से 2011

वर्ष	1951	1961	1971	1981	1991	2001	2011
जनसंख्या वृद्धि	6.37	20.90	24.66	24.37	23.83	26.24	23.30

स्त्रोत –Census Handbook Rajgath : 1981 एवं 2011

तालिका क्रमांक – 02: जिला राजगढ़ : कुल जनसंख्या (वर्ष 1981 से 2011)

वर्ष	1981	1991	2001	2011
जनसंख्या	801384	992764	1254085	1545814

स्त्रोत –Census Handbook Rajgath : 1981, 2011

आरेख क्रमांक – 01

उपरोक्त तालिका क्रमांक 02 व आरेख क्रमांक 01 से स्पष्ट होता है कि शोध अध्ययन क्षेत्र राजगढ़ जिले में वर्ष 1981 से निरन्तर प्रतिवर्ष जनसंख्या में वृद्धि हुई है।

लिंगानुपात – लिंगानुपात से तात्पर्य प्रति हजार पुरूषों पर स्त्रियों की संख्या से है। लिंगानुपात किसी क्षेत्र की वर्तमान सामाजिक एवं आर्थिक दशाओं का सूचकांक होता है एवं प्रादेषिक विश्लेषण के लिए उपयोगी है। किसी क्षेत्र में लिगांनुपात में परिवर्तन से विभिन्न आयु स्तरों पर पुरूषों व स्त्रियों की जन्म व मृत्यु दर में परिवर्तन तथा प्रवास के स्वरूप का ज्ञान होता है। इससे सामाजिक एवं आर्थिक जीवन की प्रवृत्ति विश्लेषण एवं जनांकीकी तत्वों के प्रभावों को समझने में सहायता मिलती है। फैंकलिन के अनुसार 'लिंगानुपात किसी क्षेत्र की अर्थव्यवस्था का एक सूचक है तथा प्रादेशिक विश्लेषण के लिए अत्यन्त लाभदायक यन्त्र है।'

तालिका क्रमांक – 03

जिला राजगढ़ : लिंगानुपात (वर्ष 2001 एवं 2011)

क्र.	वर्ष	कुल
1	2001	932
2	2011	956

स्त्रोत – Census Handbook Rajgath 2011

उपरोक्त तालिका क्रमांक 03 से स्पष्ट है कि वर्ष 2001 में 932 लिंगानुपात रहा जो कि वर्ष 2011 में 956 हो गया अर्थात लिंगानुपात में वृद्धि हुई है।

जनसंख्या वितरण – जनसंख्या वितरण और घनत्व परस्पर संबंधित है लेकिन भिन्न–भिन्न संकल्पनाए है। जनसंख्या वितरण प्रारूप न केवल मानव के किसी क्षेत्र विशेष में बसाव संबंधित अभिरूचि एवं विरूचि का द्योतक है, अपितु क्षेत्र में कार्यरत भौगोलिक कारको के संश्लेषण का स्पष्ट प्रदर्शक भी होता है। जनसंख्या वितरण क्षेत्रीय प्रतिरूप की ओर इंगित करता है। जनसंख्या वितरण से आशय विभिन्न क्षेत्रो में व्यक्ति कितनी संख्या में निवास करने से है।

तालिका क्रमांक – 04 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

आरेख क्रमांक – 02 (अन्तिम पृष्ठ पर देखे)

तालिका क्रमांक 04 व आरेख क्रमांक 02 से स्पष्ट होता है कि शोध अध्ययन क्षेत्र राजगढ़ जिले में वर्ष 2001 में कुल जनसंख्या 1253246 थी जो कि वर्ष 2011 में बढ़ कर 1545814 हो गई है।

जनसंख्या घनत्व – जनघनत्व से तात्पर्य प्रति इकाई में निवास करने वाले व्यक्तियों से है। अर्थात प्रतिवर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर निवास करने वाले व्यक्तियों की संख्या को जनघनत्व कहा जाता है। एक संतुलित जनघनत्व किसी क्षेत्र के भावी विकास का अनुमान का मुख्य आधार है। जनसंख्या घनत्व प्राकृतिक सामाजिक, कृषि जैसे विभिन्न कारको का परिणाम है। अध्ययन क्षेत्र में भौगोलिक विषमता के कारण जनसंख्या घनत्व में काफी विभिन्नता पायी गई है।

तालिका क्रमांक 05: जिला राजगढ़ : जनघनत्व (प्रति वर्ग कि.मी. में)वर्ष 1991 से 2011

क्र.	वर्ष	जनघनत्व
1	1991	161
2	2001	204
3	2011	251

स्त्रोत – म.प्र. जनगणना वर्ष 2011

आरेख क्रमांक – 03

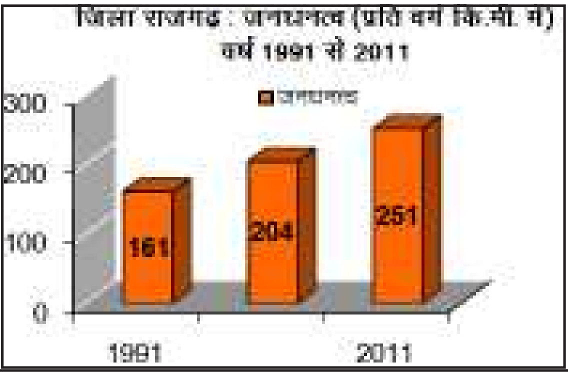

उपरोक्त तालिका क्रमांक 05 व आरेख क्रमांक 03 से स्पष्ट होता है कि जिले में प्रतिवर्ष जनघनत्व में निरंतर वृद्धि हुई है।

साक्षरता – साक्षरता वह वैयक्तिक गुण है जो व्यक्ति के पढ़ने और लिखने की योग्यता को प्रकट करता है, जनसंख्या भूगोल में साक्षरता को सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक प्रगति का एक विश्वसनीय सूचक माना गया है। साक्षरता प्रतिरूप समाज के सामाजिक एवं आर्थिक विकास की गति का सूचक है।

तालिका क्रमांक 06: जिला राजगढ़ : साक्षरता (प्रतिशत् में) वर्ष 1991 से 2011

वर्ष	1991	2001	2011
साक्षरता (% में)	25.59	53.70	61.21

स्त्रोत – Census Handbook 2011

निस्कर्षत: कहा जा सकता है कि अध्ययन क्षेत्र में जनांकिकी स्वरूप काफी विभिन्नता दृष्टिगत हुई है। राजगढ़ जिले में जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ साक्षरता में वृद्धि हुई है जो एक सकारात्मक स्थिति का सूचक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Census Handbook Rajgath : 1981 – 2011
2. म.प्र. जनगणना वर्ष 2011,
3. डॉ. चतुर्भुज मामोरिया (2004) 'भारत का वृहत भूगोल', साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, पृ.सं. 554.
4. पंडा, डॉ. बी.पी. (2004)'जनसंख्या भूगोल', म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पृ.सं. 01.
5. https://rajgath.nic.in

तालिका क्रमांक – 04: राजगढ़ जिले की जनसंख्या (वर्ष 2001 एवं 2011)

	जनगणना वर्ष 2001			जनगणना वर्ष 2011		
जिला राजगढ़	कुल जनसंख्या	पुरूष	महिला	कुल जनसंख्या	पुरूष	महिला
कुल	1253246	648850	804398	1545814	790212	755602
ग्रामीण	1036096	535380	500716	1269357	648407	620950
नगरीय	217150	113470	103680	276457	141805	134652

स्त्रोत – Census Handbook 2011 एवं म.प्र. जनगणना वर्ष 2001

आरेख क्रमांक – 02

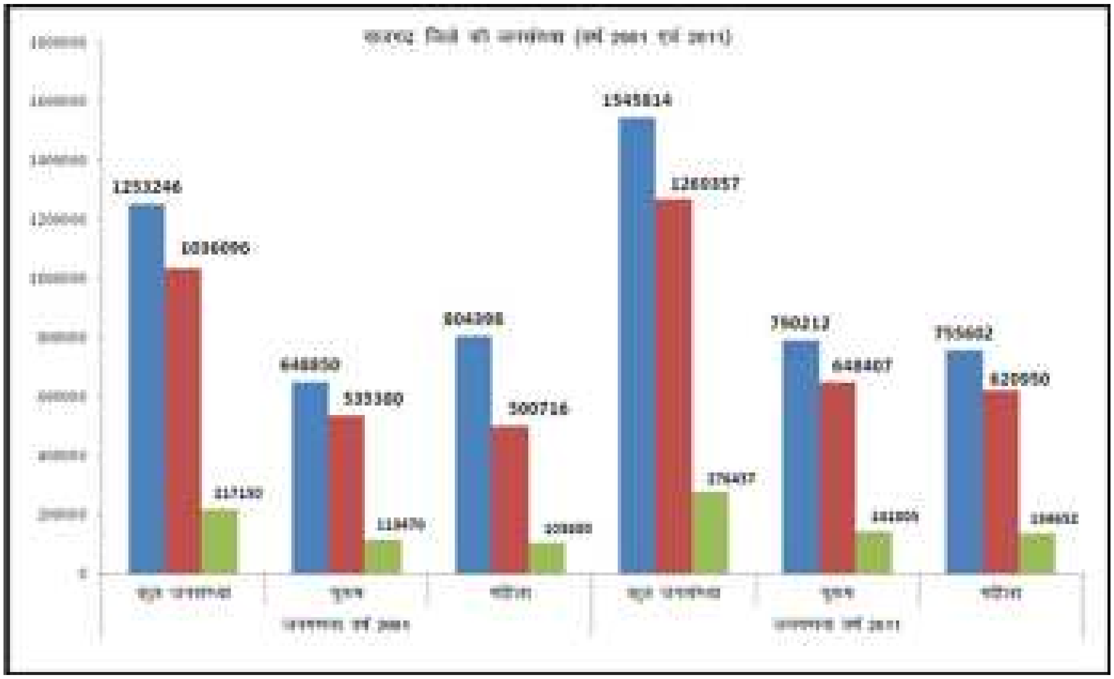

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

मध्यप्रदेश स्टार्टअप योजना एवं क्रियान्वयन का अध्ययन

डॉ. रश्मि चौहान*

* सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) शासकीय महाविद्यालय, कसरावद, जिला खरगौन (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना - मध्यप्रदेश क्षेत्रफल की दृष्टि से देश का दूसरा सबसे बड़ा राज्य है एवं आर्थिक विकास में अग्रणी राज्यों की श्रेणी में है। राज्य शासन की निवेश मित्र नीतियों, उद्योग एवं व्यापारिक क्षेत्र में सरलीकरण की प्रक्रिया, आर्थिक एवं सामाजिक अधोसंरचना में उल्लेखनीय प्रयासों के फलस्वरूप विगत वर्षो में प्रदेश में निवेश वातावरण में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। राज्य शासन का यह प्रयास रहा है कि नवाचार एवं उद्यमिता के माध्यम से प्रदेश के स्थानीय युवाओं को अधिकाधिक संख्या में रोजगार सृजन किया जा सके। इस श्रृखला में म.प्र. द्वारा वर्ष 2016 में प्रथम स्टार्ट-अप नीति लागू की गई थी। स्टार्ट-अप क्षेत्र की गतिशीलता को ध्यान में रखकर पुन: वर्ष 2019 में नवीन स्टार्ट-अप नीति को लागू किया गया। नवाचार एवं स्टार्ट-अप की गतिशीलता, वैश्विक आर्थिक वातावरण में परिवर्तन, विनियामक संशोधनों, भारत सरकार की नवीन शिक्षा नीति एवं राज्यों की स्टार्ट-अप रैंकिंग एवं इस सबसे ऊपर आत्म निर्भर भारत एवं आत्म निर्भर मध्यप्रदेश योजना, 2023 के उददेश्यों की पूर्ति हेतु नीत का एक और पुनरीक्षण आवश्यक हो गया है। अत: राज्य शासन द्वारा स्टार्ट-अप नीति को और समग्र, समेकित एवं प्रभावी बनाने के उद्देश्य से **'एमपी स्टार्ट-अप नीति एवं कार्यान्वयन योजना 2022'** लागू करने का निर्णय लिया गया है।

राज्य शासन ने नवीन नीति अन्तर्गत स्कूल एवं महाविद्यालयीन स्तर से छात्रों में नवाचार एवं स्टार्ट-अप की भावना जागृत करने के लिए विशेष प्रयास किये हैं। नीति को व्यापक रूप से लागू करने के लिए शासन के विभिन्न अंगों को नीति के प्रावधानों को प्रभावी रूप से अंगीकृत करने के लिए समेकित व्यवस्था की गई हैं। नीति को मात्र वित्तीय सहायता तक सीमित न रखकर स्टार्ट-अप को संस्थागत, ईज आफ डूईंग बिजनेस, बुनियादी अधोसंरचना, राज्य की उपार्जन नीति, विपणन तथा अन्य प्रोत्साहनात्मक सहयोग प्रदान करना उद्देश्य है।

स्टार्ट-अप नीति के उद्देश्य- म.प्र.स्टार्ट-अप नीति एवं कार्यान्वयन योजना 2022 के मुख्य उद्देश्य निम्नांकित है:

1. सकारात्मक हस्तक्षेप और अन्य उत्प्रेरक कार्यक्रमों के माध्यम से स्टार्ट-अप पारिस्थितिकी तंत्र का विकास करना।
2. स्टार्ट-अप इण्डिया, भारत सरकार में पंजीकृत एवं मान्यता प्रापत स्टार्ट-अप में 100 प्रतिशत विकास दर प्राप्त करना।
3. कृषि और खाद्य क्षेत्र में स्टार्ट-अप इण्डिया, भारत सरकार में पंजीकृत एवं मान्यता प्राप्त स्टार्ट-अप में 200 प्रतिशत विकास दर प्राप्त करना।
4. उत्पाद आधारित स्टार्ट-अप की संख्या में वृद्धि करना।
5. नवीन इन्क्यूबेशन सेंटर की स्थापना एवं विद्यमान इन्क्यूबेशन सेंटर्स की क्षमता विस्तार।
6. स्कूल एवं महाविद्यालयीन स्तर से छात्रों में नवाचार एवं स्टार्ट-अप की भावना जागृत करने के लिए विशेष कार्यक्रम आयोजित करना।
7. नवाचार और स्टार्ट-अप के माध्यम से आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं को सुलझाने हेतु संस्कृति का विकास करना।
8. भारत सरकार की स्टार्ट-अप रैंकिंग में मध्यप्रदेश को उच्च स्थान दिलाना।

स्टार्ट-अप नीति के उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु प्रयास- स्टार्ट-अप नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए नीति निम्नांकित पांच स्तंभों के अनुसरण पर केन्द्रित है:

1. संस्थागत सहयोग ईज आफ डूईग बिजनेस सहित।
2. उत्पाद आधारित स्टर्ट-अप को प्रोत्साहन देना।
3. नवाचार और उद्यमशीलता को बढ़ावा देना।
4. विपणन सहयोग करना।
5. वित्तीय एवं गैर वित्तीय सहायता प्रदान करना।

नीति की अवधि और प्रयोज्यता- यह नीति मध्यप्रदेश में अपनी अधिसूचना की तारीख से 5 वर्ष की अवधि के लिए, या किसी अन्य नीति द्वारा प्रतिस्थापित किए जाने तक जो भी पहले हो, तक प्रभावी रहेगी।

स्टार्ट-अप का अर्थ:

1. स्टार्ट-अप का अर्थ ऐसी इकाई से है जो भारत सरकार, वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय के उद्योग संवर्धन और आंतरिक व्यापार विभाग के अधीन स्टार्ट-अप इण्डिया से मान्यता प्राप्त हो एवं मध्यप्रदेश राज्य में स्थापित एवं पंजीकृत हों महिला द्वारा प्रवर्तित स्टार्ट-अप में उसकी भागीदारी 51 प्रतिशत से कम नहीं होनी चाहिए।
2. उत्पाद आधारित स्टार्ट-अप से अभिप्राय है ऐसा स्टार्ट-अप जो ऐसा उत्पाद निर्मित करता हो जिसका एक भौतिक आकार हो।
3. इंक्यूबेटर से अभिप्राय है स्टार्ट-अप इकाईयों को प्रारंभिक अवस्था के दौरान समर्थन करने के लिए परिकल्पित किया गया एक संगठन जो व्यावसायिक सहयोग, संसाधनों और सेवाओं के द्वारा एक स्केलेबल व्यापारिक मॉडल विकसित करने में सहायता करता है। साथ ही इसका स्टार्ट-अप इण्डिया से मान्यता प्राप्त होना तथा मध्यप्रदेश में स्थापित या कार्यरत होना अनिवार्य होगा।
4. प्रौद्योगिकी व्यवसाय इंक्यूबेटर से अभिप्राय है विश्वविद्यालयों,

सार्वजनिक अनुसंधान, संस्थानों स्थानीय शासन ओर निजी संस्थानों का एक उपक्रम है, जो एक नई प्रौद्योगिकी उद्यम को बढ़ावा और आधार देने के लिए कार्यरत है।

5. मेजबान संस्थाओं से अभिप्राय है मध्य प्रदेश स्थित कोई भी इंजीनियरिंग कालेज, उच्च शिक्षा संस्थान औद्योगिक प्रतिष्ठान या स्मार्ट सिटी कंपनियां और अन्य सोसायटी या विशेष प्रयोजन इकाईयां।
6. ट्रेड रिसीवेबल डिस्कॉउस्टिंग सिस्टम प्लेटफार्म से अभिप्राय है भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा परिभाषित ट्रेड रिसीवेबल डिस्कॉउस्टिंग सिस्टम एवं इस कार्य हेतु स्वीकृत संस्था।
7. राज्य स्तरीय स्टार्ट-अप साधिकार समिति से अभिपाय है राज्य नवाचार चुनौती अन्तर्गत स्टार्ट-अप स्क्रीनिंग एवं चयन तथा नीति के सुगम क्रियान्वयन एवं पर्यविक्षण हेतु मुख्य सचिव की अध्यक्षता में गठित समिति।
8. राज्य स्तरीय आंकलन या मूल्याकन समिति से अभिप्राय है राज्य नवाचार चुनौती के अन्तर्गत चयन स्टार्ट-अप्स के मूल्यांकन हेतु विषय से संबंधित विभाग के प्रमुख सचिव की अध्यक्षता में गठित समिति।
9. राज्य स्तरीय सहायता समिति से अभिप्राय है प्रमुख सचिव, सूक्ष्म लघु और मध्यम उद्यम विभाग की अध्यक्षता में नीति अन्तर्गत प्रावधानित सुविधाओं का लाभ स्वीकृत करने हेतु गठित समिति।

स्टार्अ-अप एवं इन्क्यूबेटर्स को सहयोग एवं सहायता प्रदान करना- स्टार्ट-अप एवं इन्क्यूबेटर्स पारिस्थितिकी तंत्र को विकसित करने तथा उन्हें आवश्यक सहयोग एवं सहायता प्रदान करने के लिए संस्थागत, विपणन वित्तीय तथा व्यापार सरलीकरण स्तम्भ प्रमुख होते हैं। राज्य शासन इन स्तम्भों के माध्यम से प्रदेश को स्टार्ट-अप विशेषकर उत्पाद आधारित स्टार्ट-अप का निवेश गंतव्य बनाने हेतु कृत संकल्पित है।

मध्य प्रदेश में स्टार्अ-अप सेंटर की स्थापना- मध्यप्रदेश में स्टार्अ-अप्स को फेसिलीटेशन एवं आवश्यक सहयोग एक संस्थागत मंच प्रदान करने तथा उन्हें वैश्विक तथा स्थानीय बाजार, आयोजनों, कार्यशालाओं आदि में पर्याप्त अवसर प्रदान करने हेतु मध्य प्रदेश लघु उद्योग निगम के संरक्षण तथा तत्वाधान में विषय विशेषज्ञों से युक्त स्टार्अ-अप सेंटर की स्थापना की जावेगी। यह सेंटर राज्य में स्टार्अ-अप पारिस्थितिकी तंत्र को बढ़ावा देने, मजबूत करने और सुविधा प्रदान करने वाली समर्पित एजेंसी का कार्य करेगी।

स्टार्अ-अप सेंटर के उद्देश्य एवं कार्यक्षेत्र:

1. राज्य में स्टार्ट-अप का मार्गदर्शन और सहायता करना।
2. स्वीकृत पारिस्थितिकी तंत्र के सुचारू संचालन के लिए आवश्यक स्वीकृति के लिए राज्य सरकार के विभिन्न विभागों के साथ समन्वय एवं सतत सम्पर्क करना।
3. निर्धारित नीति से किसी भी अनुमोदन, प्रोत्साहन और किसी भी अन्य मुद्दों से संबंधित शिकायतों को हल करना।
4. राज्य के स्टार्ट-अप पारिस्थतिकी तंत्र की समीक्षा कर राज्य सरकार को आवश्यक अनुशंसा कर सकता है।
5. केन्द्र का उद्देश्य राज्य में उद्यमिता अभिनव और स्टार्ट-अप उद्यमिता को बनाने और समर्थन करने के उद्देश्य से नवाचार संचालित स्टार्ट-अप इकोसिस्टम को बढ़ावा देकर मध्यप्रदेश को एक आत्मनिर्भर स्टार्ट-अप और इनोवेशन हब बनाना है।
6. केन्द्र स्टार्ट-अप नवोन्मेषी उद्यमशीलता को प्रोत्साहित करने के लिए विभिन्न निवेशों, बाजार तथा अन्य संबंधित प्लेटफार्म में अपनी सेवाओं, उत्पादों को पिच, शोकेस करने की सुविधा प्रदान करेगा। यह मेंटरशिप सहायता प्रदान करने में भी मदद करेगा और सेवी, आरबीआई, अन्य सक्षम प्राधिकारियों के साथ पंजीकृत एंजेल निवेश, कॉर्पोरेट निवेशकों, अन्य फंडिंग एजेंसियों से आवश्यक निवेशकों से पूंजी या वित्तीय व्यवस्था करने में मदद करेगा।
7. मास्टर डाटा बेस को तैयार करना।
8. स्टार्ट-अप को कम्पनी तथा कर संबंधी कानूनों के परिप्रेक्ष्य में आ रही समस्याओं के निराकरण में मार्गदर्शन एवं सहयोग प्रदान करना है।
9. राज्य एवं राज्य के बाहर बूट केम्प्स चैलेंज प्रतियोगिताओं, रोड शोज तथा निवेशक सम्मेलन या कार्यशालाओं का आयोजन करना।
10. स्टार्ट अप एवं इन्क्यूबेटर के लिए सिंगल विण्डों एजेंसी के रूप में कार्य करेगा।
11. बाजार पूर्व अध्ययन एवं मूल्यांकन।

प्रस्तावित सेंटर हेतु वित्तीय व्यवस्था- एम.पी. स्टार्ट अप सेंटर के संचाचलन एवं निर्धारण हेतु वित्तीय व्यवस्था उद्यमिता विकास केन्द्र तथा लघु उद्योग निगम के आन्तरिक पुनर्गठन तथा स्टार्ट अप मद में उपलब्ध विभागीय बजट आवंटन से की जावेगी। वेंचर केपीटल फंड हेतु विभाग के बजट में आवंटित राशि का उपयोग एम.पी. स्टार्ट अप सेंटर की स्थापना एवं स्टार्ट अप या इन्नोवेशन संबंधी गतिविधियों मे किया जायेगा।

ऑनलाईन पोर्टल का विकास- प्रदेश में स्टार्ट अप हेतु एक सुदृढ ऑनलाईन पोर्टल विकसित किया जायेगा जो स्टार्ट अप, निवेशकों, इन्क्यूबेटर्स तथा अन्य संबंधित हित धारकों के लिए आपसी सम्पर्क हेतु सेतु का कार्य करेगा। इस पोर्टल को भारत सरकार के स्टार्ट अप पोर्टल से एकीकृत किया जावेगा। प्रदेश में स्टार्ट अप एवं इन्क्यूबेटर्स को इस ऑनलाईन पोर्टल के माध्यम से प्रधानत: सभी प्रावधानित सुविधाओं का लाभ प्रदान किया जावेगा।

अकादमिक सहयोग एवं भागीदारी- मध्यप्रदेश में स्टार्ट अप विशेषकर उत्पाद आधारित स्टार्ट अप तथा नवाचार को प्रोत्साहित करने तथा उन्हें आवश्यक तकनीकी एवं मार्गदर्शी सहयोग प्रदान करने के लिए उन्हें राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर के तकनीकी एवं प्रबंधन संस्थानों, विश्वविद्यालयों एवं अन्य अकादमिक संस्थाओं से आवश्यक सहायता एवं भागीदारी प्राप्त की जावेगी। मध्यप्रदेश स्टार्ट अप सेंटर नवाचार के द्वारा आकल्पित एवं विकासधीन उत्पादों की टेंस्टिंग, अनुसंधान एवं विकास इत्यादि के लिए आवश्यक उच्च तकनीक की मशीनरी निश्चित समय के लिए उपलब्ध कराने हेतु भारत सरकार के एमएसएमई टेक्नॉलाजी सेंटर इंदौर एवं भोपाल, नेशनल इंस्टीटयूट आफ डिजाइन, भोपाल आइआइएसईआर, आईआईआईटीडीएम जबलपुर इत्यादि के साथ हर संभव सहयोग प्राप्त करेगा।

माध्यमिक, उच्चतर माध्यमिक एवं उच्च शिक्षण संस्थानों में उद्यमिता विकास संबंधी कोर्स पाठ्यक्रम में शामिल किये जावेगें। इन संस्थानों में नियमित रूप से बुद्धिशीलता एवं विचार मंथन कार्यशालाओं का आयोजन किया जावेगा। छात्रों को उद्यमिता की ओर आकर्षित करने के लिए इंटर्नशिप को प्रोप्साहित किया जावेगा।

छात्रों को स्टार्ट अप प्रारंभ करने के लिए सरकार द्वारा उपलब्ध कराए जा रहे वित्तीय तथा गैर-वित्तीय सुविधाओं से अवगत कराने के लिए स्टार्ट

अप इंण्डिया के सहयोग से वर्ष में दो बार पारस्परिक चर्चा हेतु कार्यशालाओं का आयोजन किया जावेगा।

विपणन एव नकद सहयोग एवं सहायता– मध्यप्रदेश में स्टार्ट अप को संस्थागत विपणन सहायता हेतु मध्यप्रदेश भण्डार क्रय तथा सेवा उपार्जन नियम 2015 में निम्नानुसार प्रावधान किए जावेगें:

1. रूपये 1 करोड तक की शासकीय निविदा में भाग लेने वाले स्टार्ट अप उद्यम को अनुभव एवं टर्नआवेर संबंधी शर्तो एवं मापदण्डों से छूट प्रदान की जावेगी। रूपये 1 करोड से अधिक की शासकीय निविदा हेतु संबंधित विभाग यदि उचित समझे तो पृथक से स्टार्ट अप से सेवा एवं उत्पाद उपार्जन का प्रावधान कर सकता है।
2. रूपये 1 करोड से अधिक के सेवा उपार्जन संबंधी निविदाओं प्रस्ताव के अनुरोध के परिप्रेक्ष्य में स्टार्ट अप के लिए आकल्पन प्रमाण को मान्य या स्वीकार किया जावेगा। किन्तु उपरोक्त प्रावधान अन्तर्गत सेवा अथवा उत्पाद की गुणवत्ता तथा अन्य आवश्यक अहर्ताओं की शर्तो में कोई परिवर्तन नहीं होगा।
3. राज्य शासन के समस्त निविदाओं या प्रस्ताव के अनुरोध में सुरक्षा निधि बयाना राशि से छूट प्राप्त होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. जिला उद्योग केन्द्र जिला शहडोल से प्राप्त जानकारी।
2. समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं से संग्रह।
3. इंटरनेट से प्राप्त जानकारी।
4. स्टार्टअप के लिए अनुपालन की मूल बातें– डॉ. अनुराग एस.डी. राय एवं रीता पवार।
5. कैसे करें स्टार्टअप बिजनेस शुरू – पंकज गोयल
6. स्टार्टअप हो तो ऐसा हो – एन. रघुरामन
7. खुद का स्टार्टअप कैसे करे – पवन के.बी.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

दल-बदल कानून की प्रासंगिकता

कमलेश पवार*

* शोधार्थी, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – भारत को विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र के रूप में जाना जाता है। हमारे देश का लोकतंत्र संप्रभु, समाजवाद, धर्म निरपेक्षता, लांकतांत्रिक गणराज्य आदि सिद्धांतों पर निर्भर है।

भारत में लोकतंत्र का अर्थ केवल वोट देने का अधिकार ही नहीं बल्कि सामाजिक और आर्थिक समानता को सुनिश्चित करना है, किन्तु आज भी सही मायने में लोकतंत्र को परिभाषित किया जाना अनिवार्य है। आज़ादी के बाद देश में कई समस्याएँ देखने को मिली जिनमें निरक्षरता, गरीबी, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, नक्सलवाद, राजनैतिक अपराधीकरण, जनसंख्या वृद्धि, बेरोजगारी, क्षेत्रवाद आदि। इनमें से एक प्रमुख समस्या बनकर दल-बदल हमारे सामने आया है। आये दिन संसद व विधानसभाओं में दल-बदल जैसे मुझे भारतीय लोकतंत्र को दूषित कर रहे हैं।

भारतीय दलीय व्यवस्था लंबे समय तक विकृत रही। केन्द्र में सरकारों के पतन के लिए मुख्यतः दल-बदल ही उत्तरदायी रहा। भारतीय संविधान का ५२वाँ संविधान संशोधन विधेयक १९७३ में प्रस्तुत किया गया था परन्तु वह पारित नहीं हो सका। राजनैतिक दलों के विकृत स्वरूप में निरन्तर वृद्धि होती गई।

भारतीय राजनीति में सर्वाधिक प्रचलित राजनीतिक खेल का नाम है दल-बदल। एक पार्टी छोड़कर दूसरी पार्टी में शामिल हो जाना, सदन में सत्ता दल छोड़कर विरोधी दल में शामिल हो जाना, अपना खेमा बदल लेना दल-बदल की मान्य परिभाषा रही है।

दल-बदल का सहज अर्थ अपने दायित्व को त्यागना या उससे मुकरना है, किन्तु राजनीति में विविध स्थितियों में इसके विविध स्वरूप होते हैं। जैसे जिस दल के अधीन चुनाव लड़े उस दल का त्याग, सदन के भीतर पाला बदलना, किसी दूसरे दल में शामिल होने के लिए अपने दल को छोड़ना फिर एक निर्दलीय की तरह रहना या एक नया दल या गुट बनाना। इस प्रकार की दल-बदल की परिभाषा सर्वविदित है।

विधायी संस्थाओं के प्रारंभ से ही दल-बदल की घटनाओं का प्रारंभ माना जा सकता है। भारत सरकार अधिनियम १९३५ के अधीन सन् १९३७ के चुनाव में कांग्रेस को संयुक्त प्रान्त में पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ, फिर भी मुख्यमंत्री श्री गोविन्द वल्लभ पंत ने मुस्लिम लीग के कुछ सदस्यों को दल-बदलने और काग्रेस संगठन को छोड़ने का फैसला किया, उस समय सदस्यों की संख्या बहुत अधिक थी, केवल उत्तरप्रदेश की संख्या ही ५० थी, इनमें आचार्य नरेन्द्र देव ने दल बदल करके जन कांग्रेस नामक एक नये दल की स्थापना की।

१९५६ में तीव्र उठापठक और पैतरेबाजी के पश्चात् ९८ विधायकों ने, दल-बदल किया। सन् १९६७ के पूर्व आचार्य नरेन्द्र देव, आचार्य कृपलानी, अशोक मेहता, रफी अहमद किदवई, टी. प्रकाशम् व डॉ. रघुवीर सिंह जैसे दिग्गज नेताओं ने अपनी राजनीतिक प्रतिबद्धतायें बदली।

सन् १९५७ से १९६७ के दशक में ५४२ दल-बदल की घटनाएँ हुई। अकेले १९६७ में ही ४३८ सदस्यों ने दल-बदल किया। १९६७ से १९७३ की अवधि में २७०० विधायकों ने विभिन्न स्वार्थों से दल-बदल किया। इनमें से १५ मुख्यमंत्री बने तथा २१२ को मंत्रीपद प्राप्त हुआ। इस प्रकार संपूर्ण देश में दल-बदलुओं की संख्या ४००० से भी अधिक हो गई। व्यापक दल-बदल के कारण ६ राज्यों में सरकारें बिगड़ी और बनी। ६ राज्यों में राष्ट्रपति शासन घोषित हुआ और ४ विधानसभाओं को भंग कर मध्यावधि चुनाव कराये गये।

चौथे आम चुनाव के बाद दल-बदल चरम-सीमा पर पहुँच गया। यू.एन.आई. सर्वेक्षण के अनुसार दिसम्बर १९६७ तक ९ प्रतिशत से भी अधिक राज्यों के विधायकों ने अपना दल बदला। दल-बदल की प्रवृत्ति १९६८ में बहुत जोरों पर थी, जिसके फलस्वरूप कई सरकारें टूटी, कई बनी और कई प्रान्तों में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। मार्च १९६७ से १९७० तक ४००० विधायकों में से १,४०० विधायकों ने दल-बदलें। सबसे अधिक दल-बदल काँग्रेस में हुआ।

दल-बदल के प्रेरक कारण

राजनैतिक दलों की आंतरिक गुटबंदियों के कारण भी दल-बदल को भारी प्रोत्साहन मिला। पद, धन, स्तर आदि के कारण भी दल-बदल हुए। राजनीति में व्याप्त ढोंग, गरीबी, व अज्ञानता के कारण भी राजनैतिक वास्तविकताओं के बीच बड़ी खाई पैदा हुई जिसे पाटना कठिन हो गया।

दल-बदल के आधारभूत कारणों पर प्रकाश डालते हुए प्रो.रजनी कोठारी के अनुसार दल-बदल में दो बातों का मुख्य हाथ रहा-प्रथम चुनाव के पहले टिकिट का बँटवारा और दूसरा चुनाव के बाद मंत्रीमंडल का गठन। ये नई बात नहीं थी १९६७ में और बाद में जितनी आसानी से लोग कांग्रेस छोड़ देते थे, उतना पहले कभी नहीं देखा गया था।

दल-बदल की प्रक्रिया के अनेक राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक और नैतिक पहलू हैं। राजनीतिज्ञों, विधायकों, सांसदों की कितनी ही मानसिक कुठाओं और अतृप्त इच्छाओं का इतिहास है जिसे भलीभाँति जाना जा सकता है।

अतः दल-बदल की एक समाज वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विवेचना करना जरूरी है।

१. सत्ता की स्वार्थ लिप्सा के लिए दल-बदल– सत्ता के लिए संघर्ष राजनीतिक दलबंदी का एक प्रमुख लक्षण है। राजनैतिक दल सत्ता हथियाने के लिए अनेक अशोभनीय तरीके अपनाते हैं। इसी कारण आयाराम-गयाराम की राजनीति का विकास हुआ।

दल-बदल का सबसे बड़ा कारण सत्ता पाना और पद प्रलोभन है। १९८२

में हरियाणा में दल-बदल का भाव २०,००० रू. से ४०,००० रू. तक आँका जा रहा था। हरियाणा के राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति को भेजी गई रिपोर्ट में उक्त उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं।

सन् १९६९, १९७८, १९७९ में सत्ता परिवर्तन के उदाहरण दिये गये हैं। सन् १९७९ में चरणसिंह समर्थकों द्वारा जनता पार्टी को तोड़कर जनता(एस) का गठन और बाद में कांग्रेस (एस) और अन्य दलों की सहायता से सरकार बनाने के पीछे स्वार्थ-लिप्सा की भावना ही प्रमुख रही।

नवम्बर १९९० में चौधरी देवीलाल और चन्द्रशेखर द्वारा अपने समर्थकों सहित अलग होकर समाजवादी दल का गठन कर कांग्रेस (इ) की सहायता से सरकार बनाने का निर्णय इसी सत्ता की राजनीति का ही अंग था।

सन् १९९५ में आंध्रप्रदेश में चंद्राबाबू नायडू ने मुख्यमंत्री बनने की महत्वाकांक्षा को पूरा करने के लिए, रामाराव को अपदस्थ कर तेलगू देशम् का ही विभाजन कर दिया।

सन् १९९७ में भाजपा ने उत्तरप्रदेश में कल्याण सिंह की सरकार बनाने के लिए कांग्रेस तथा बहुजन समाजवादी पार्टी में विभाजन कराया।

२. **भीतर की गुटबंदी और भाई-भतीजावाद –** विभिन्न गुटों या धड़ों के बीच सत्ता संघर्ष के लिए गुटबंदी की जाती है।

रजनी कोठारी का अभिमत है कि सत्ताधारी और विपक्ष दो गुट होते हैं। उनके समर्थक सत्ता प्राप्ति के लिए क्षेत्रवाद, साम्प्रदायिकता, जातिवाद आदी का सहारा लेते है। गुटबंदी और प्रशासन में बढ़ते भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद इन संघर्षो के कारण होते हैं।

३. **दलीय दलबदल –** १९६९ में कांग्रेस का विभाजन हुआ। १९७२ में सोशलिस्ट पार्टी और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी अस्तित्व में आई। इस कारण दलबंदी के कारण दलों में विभाजन होना स्वाभाविक है।

४. **व्यक्तित्व संघर्ष–** वरिष्ठ सदस्यों की उपेक्षा और व्यक्तित्व संघर्ष के कारण भी दल-बदल को प्रोत्साहन मिलता है। कई बार पार्टी टिकिटों के असमान बँटवारें के कारण भी दल-बदल को प्रोत्साहन मिलता है।

५. **राजनैतिक सत्ता की प्राप्ति –** दल-बदल की अभिप्रेरक शक्ति में राजनैतिक संभावनाएँ बढ़ती है। आर्थिक लाभ तथा अन्य आधारों पर दल-बदल करना सामान्य बात हो गई है। दल-बदल करके भी लाभ के पद को काबिज़ किया जाता है।

मंत्री पद पर आसीन होने पर कई विधायक अन्य अप्राप्य जीवन की सुख-सुविधाओं और विलास सामग्रियों का स्वयं उपभोग करने के साथ-साथ दूसरों को भी व्यापक संरक्षण प्रदान करने और उनके स्वार्थ साधने की स्थिति में सहज हो जाते हैं।

६. **पद एवं सम्मान की लालसा –** सत्ता का मोह और पद लोलुपता ने देश के राजनैतिक वातावरण को इतना खराब और दूषित बना दिया है कि विधायकों की दृष्टि में सिद्धान्त, आदर्श, नैतिकता आदि का महत्व कम हो गया है।

७. **सशक्त एवं महान नेतृत्व का अभाव –** दलीय राजनीति व्यक्तित्व नेतृत्व पर आधारित रही है।

आज नेतृत्व का आधार न तो लोकसेवा है न ही निर्वाचकों में लोकप्रियता। अतः लोकसभा और विधानसभाओं के निर्वाचित कई सदस्यों में मौलिक निष्ठा का अभाव है और वे विशुद्ध रूप से राजनीतिक अवसरवाद की भावना से कार्य कर रहे हैं। सत्ता के लोभ में उन्हें दल-बदलने में भी कोई संकोच नहीं होता। केवल निर्वाचनों के अवसर पर ही राजनीतिक दल धन खर्च करके जनता को हतप्रभ करने में प्रयासरत रहते हैं।

८. **प्रभावशाली नेतृत्व का अभाव –**पूर्व में प्रभावशाली व्यक्तित्वों का लोप हो चुका है। इसलिए अब जो भी नेतृत्व सामने आ रहे हैं उनके व्यक्त्वि में प्रभावशाली नेता दिखाई नहीं देते, जो दलों के भीतर दल पर नियंत्रण कर सके।

९. **जनता की उदासीनता –** आज जनता में भी नेतृत्व के प्रति अब कोई विशेष आकर्षण नहीं रहा है। आम जनता नेतृत्व के प्रति उदासीन होती जा रही हैं।

१०. **राजनैतिक दलों में ध्रुवीकरण का अभाव –**डॉ. सुभाष कश्यप लिखते हैं कि जिस आसानी से नेता एक दल का परित्याग कर दूसरे दल में शामिल होते हैं इससे स्पष्ट है कि राजनैतिक दलों में सिद्धान्त जैसी कोई बात नजर नहीं आती। विभिन्न दलों में कोई वास्तविक ध्रुवीकरण नहीं है। उनके मतभेदों का स्वरूप भी धुंधला है।

दल-बदल के परिणाम:

१. दल-बदल के कारण शासन में अस्थिरता पैदा होती है। जिससे आगामी विकासगामी प्रवृत्तियों में शिथिलता उत्पन्न होती है।

२. दुर्बल मिली-जुली सरकारों का निर्माण -संविद सरकारों के विभिन्न घटकों में कोई ताल-मेल नहीं रहता। मंत्रीमंडल में एकता का अभाव दिखाई देता है। जो भी गठबंधन बना लिये जाते हैं जो कालान्तर के बाद अस्थिर होने लगते हैं।

३. नौकरशाही के प्रभाव में वृद्धि- दल-बदल के कारण प्रशासनिक रिक्तता, राजनैतिक अनिश्चितता का प्रभाव बढ़ता रहा है।

४. मंत्रिमंडलों में अनावश्यक विस्तार- उदाहरण के लिए राव वीरेन्द्रसिंह मंत्री मंडल में २३ मंत्रियों का विस्तार किया गया।

५. अल्पमत सरकारों का निर्माण- दल-बदल के कारण पंजाब, पश्चिमी बंगाल आदि राज्यों में अल्पमत सरकारों का निर्माण किया गया।

६. राजनैतिक दलों का विघटन- दल-बदल के कारण राजनैतिक दलों में बिखराव और विघटन की प्रक्रिया जारी रही।

७. सिद्धांतहीन और नैतिकता शून्य राजनीति का सूत्रपात हुआ।

८. विकास कार्यों में बाधाएँ पैदा होती गई।

इस प्रकार शासन व्यवस्था सुचारू रूप से जारी नहीं रही। जब लोकप्रिय सदन के चुनाव में किसी एक राजनैतिक दल को स्पष्ट बहुमत नहीं होता, तब त्रिशंकु लोकसभा या विधानसभाओं में अनावश्यक गठबंधन की स्थितियाँ पैदा होने लगती हैं। इस प्रकार दल-बदल की बीमारी ने राष्ट्रीय दलों की जड़े कमजोर बना दी। क्षेत्रीय दलों की महत्वाकांक्षा में वृद्धि होती गई।

दल-बदल कानून की आवश्यकता क्यूँ?

भारत में लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था को अपनाया गया है जिसमें दलों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, किन्तु स्वतंत्रता के बाद देखा गया कि जनादेश की अनदेखी होने लगी। विधायकों या सांसदों की जोड़-तोड़ से सरकारें बनने व गिरने लगी। इस प्रकार की घटनाओं ने राजनैतिक अस्थिरता को जन्म दिया। ७० के दशक में यह देखने में आया कि लोगों ने एक दिन में तीन बार दल बदलें। हरियाणा के एक विधायक गयालाल ने ३० अक्टूबर १९६७ को एक दिन में ३ बार दल बदला। तब से आयाराम-गयाराम की कहावत प्रचलित हुई।

इसके बाद जनादेश का उल्लंघन करने वाले सदस्यों को चुनाव में भाग लेने से रोकने की आवश्यकता महसूस होने लगी। परिणामस्वरूप सन् १९८५ में प्रधान मंत्री राजीव गाँधी द्वारा ५२ वें संविधान संशोधन के रूप में दल-बदल कानून अस्तित्व में लाया गया। उक्त कानून में कुछ कमियों को देखते हुए कुछ वर्ष बाद सन् २००३ में ९१ वां संविधान संशोधन पारित किया गया जिसमें निम्न प्रावधान किये गयेः

१. दल-बदल करने वाले सदस्यों की सदस्यता स्वतः समाप्त हो जायेगी।

२. दल-बदल करने वाले सदस्य किसी भी प्रकार का सरकारी/लाभ का पद प्राप्त नहीं कर सकेंगे।
३. सदन की सदस्यता प्राप्त करने के लिए पुनः चुनाव जीतना होगा।
४. मंत्रिपरिषद का आकार केन्द्र एवं बड़े राज्यों लोकप्रिय सदन की सदस्य संख्या का १५ प्रतिशत से अधिक नहीं होगा।

दल-बदल विरोधी कानून निम्न आधार पर लागू नहीं होगाः

१. यदि सदन के सदस्यों की कुल संख्या के एक तिहाई सदस्य दल विभाजन के परिणाम स्वरूप उसकी सदस्यता का परित्याग करते हैं या दो तिहाई सदस्य किसी अन्य राजनीतिक दल में शामिल हो जाते हैं और अलग समूह के रूप में कार्य करने का निर्णय करते हैं।
२. लोकसभा एवं विधानसभा के अध्यक्ष और राज्यसभा का उपसभापति चाहे तो अपने निर्वाचन के बाद अपनी पार्टी से इस्तीफ़ा दे सकते है किन्तु एक बार इस्तीफ़ा देने के बाद पर पर रहते हुए वे पुनः पार्टी में शामिल होते है तो अयोग्य घोषित किये जाएंगे। इसका निर्णय पीठासीन अधिकारी करेगा।
३. यदि किसी विधायक अथवा सांसद को पार्टी द्वारा निष्कासित किया जाए।
४. यदि किसी राजनीतिक पार्टी का अन्य दल में विलय हो रहा हो और यदि उसका कोई सदस्य उससे बाहर रहना चाहता है तो उस पर दल-बदल कानून लागू नहीं होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

१. सुभाष कश्यप- दल-बदल और राज्यों की राजनीति मीनाक्षी, मेरठ,१९७०
२. गोस्वामी भालचंद्र-दल-बदल-दशा और दिशा पंचशील, जयपुर १९९९
३. डॉ. जैन पुखराज-दल-बदल की राजनीति-२०००
४. विनोद श्रीवास्तव-दल-बदल अधिनियम, छिन्न-भिन्न होती राजनैतिक निष्ठा, सरिता, दिसम्बर १९९७
५. डॉ. चेतना नेहरा- लोकतंत्र और दल-बदल अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नईदिल्ली।

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

मध्यप्रदेश में महिला नीति एवं कल्याणकारी योजनाएं एक अध्ययन (रीवा जिले के सेमरिया तहसील के विशेष संदर्भ में)

डॉ. अर्चना श्रीवास्तव* मंजुला द्विवेदी**

* सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान) शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तार स्वशासी महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत
** शोधार्थी (राजनीति विज्ञान) बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – मध्य प्रदेश देश का ऐसा राज्य है जहां सबसे पहले राज्य स्तर पर महिला नीति तैयार कर क्रियान्वित की गई है, महिला नीति का अर्थ महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वावलंबी, आत्मविश्ववासी और अपनी अस्मिता के प्रति सकारात्मक सोच वाला बनाना है ताकि वे कठोर परिस्थितयों का मुकाबला करने में सक्षम हो और विकास कार्यों में भी उनकी भागीदारी हो सके। भारतीय समाज में संविधान की स्थापना में लेख किया गया है कि समतावादी प्रजातांत्रिक मूल्यों को प्राप्त करने के उदेश्य से समाज में किसी भी आधार पर लिंग, जाति, नस्ल आदि भेदभाव नहीं किया जा सकता, इसलिए लम्बे समय से महिलाओं की कमजोर परिस्थिती को मजबूत बनाने के उदेश्य से प्रथम वो महिला कल्याण कार्यों को प्रथमिकता दी गई। मध्य प्रदेश शासन का लक्ष्य महिलाओं का पूर्ण रूप से विकास एवं सशक्त बनाना है, महिला नीति की मूल अवधारणा महिलाओं के प्रति समाज की मानसिकता में सकारात्मक परिवर्तन लाना है।

शब्द कुंजी– महिला नीति, कल्याणकारी योजनाएं, सशक्तिकरण।

प्रस्तावना– लगभग डेढ़ दशक पूर्व वर्ष 2001 में राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण नीति एनपीडब्ल्यू तैयार की गई थी इसके तहत आर्थिक एवं सामाजिक नीतियों के माध्यम से महिलाओं के संपूर्ण विकास एवं सशक्तिकरण का लक्ष्य रखा गया था वर्तमान वैश्वीकरण के युग में महिलाओं के कार्य क्षेत्र का दायरा बढ़ने के साथ–साथ समस्याएं नए–नए रूपों में प्रकट हो रही हैं इनके निराकरण हेतु केंद्रीय महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा 17 मई 2016 को राष्ट्रीय महिला नीति 2016 का प्रारूप हित धारकों की टिप्पणियों एवं परामर्श हेतु जारी किया गया।

जनसामान्य के जीवन के सभी आयामों का सर्वांगीण विकास करना प्रत्येक कल्याणकारी राज्य का मुख्य उद्देश्य होता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए राज्य द्वारा विभिन्न नीतियों का निर्धारण किया जाता है, इन नीतियों में निर्धारित की गई कार्य योजना का क्रियान्वयन कर समय बद्ध तरीके से लक्ष्य प्राप्त करने का प्रयास कर विभिन्न योजनाओं एवं कार्यक्रमों का निर्माण भी इन नीतियों पर ही आधारित होता है। योजनाओं तथा कार्यक्रमों की सफलता एवं असफलता का मूल्यांकन कर समय–समय पर नीतियों में संशोधन किए जाते हैं अर्थात यह नीतियां राज्य के कार्य क्षेत्र का आईना होती हैं।

उद्देश्य– मध्यप्रदेश की महिला नीति एवं कल्याणकारी योजनाओं का क्रियांवयन सेमरिया तहसील के विशेष सन्दर्भ में।

महिला नीति– महिलाओं का समर्थ होना निरंतर नीति की बुनियाद है। समर्थ होने पर ही महिलाएं अपने जीवन के सभी पहलुओं पर पूरा नियंत्रण पा सकती हैं, यदि अन्याय पूर्ण सामाजिक ढांचे को तोड़ना है और राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में महिलाओं को उनका उचित स्थान दिलाना है, तो महिलाओं का सर्वांगीण विकास करना अति आवश्यक है।

मध्यप्रदेश शासन महिलाओं की समानता, सुरक्षा, स्वतंत्रता उनके लिए न्याय विकास एवं सशक्तिकरण के लिए प्रतिबद्ध है, महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं शैक्षणिक सशक्तिकरण विकास के लिए संचालित लाइफ साइकिल अप्रोच आधारित प्रदेश के अनेक कार्यक्रम एवं योजनाओं की देश में अलग पहचान बनी है।

मध्यप्रदेश शासन का लक्ष्य महिलाओं का पूर्ण सशक्तिकरण है। राज्य की महिला नीति की मूल अवधारणा महिलाओं के प्रति समाज की मानसिकता में सकारात्मक परिवर्तन लाना है, जिससे उनके साथ विद्यमान विभेदकारी असमानता की स्थिति समाप्त हो, महिलाओं के प्रति समानता एवं सम्मान की भावना एवं उनकी सुरक्षा आर्थिक आत्मनिर्भरता एवं विकास में समान भागीदारी सुनिश्चित हो।

मध्य प्रदेश में विकास की प्रक्रिया में आरंभ से ही महिलाओं की ओर ध्यान देने का प्रयास किया जाता रहा है, राज्य में महिलाओं की संख्या लगभग आधी है, राज्य में महिलाएं सबसे गरीब सुविधा से वंचित वर्ग में आती हैं, जिन्हें विकास से अक्सर लाभ नहीं हो पाया है। महिलाएं मुख्यत: कृषि,वन, घरेलू उत्पादन और शहरी अनौपचारिक क्षेत्रों में काम करती हैं। महिलाओं की स्थिति में सुधार करने के लिए मध्यप्रदेश राज्य की प्रथम महिला नीति घोषित की गई है।इस नीति में निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं–

1. नारी जीवन का अस्तित्व और उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करना है।
2. समाज में महिलाओं की भरपूर सहभागिता सुनिश्चित करना और निर्णय लेने में उनकी भूमिका को सशक्त करना।
3. सभी क्षेत्रों में विकास के प्रयासों का भरपूर लाभ उठाने के लिए महिलाओं को समर्थ बनाना।

4. महिलाओं में आत्मविश्वास जागृत करना और समाज में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाना।
5. आर्थिक गतिविधियों में महिलाओं की भरपूर भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए सकारात्मक कदम उठाना।
6. जीवन के सभी क्षेत्रों में महिलाओं की उपस्थिति सुनिश्चित करना।
7. महिलाओं के प्रश्न पर व्यापक समाज के रवैया में परिवर्तन लाना और उसे संवेदनशील बनाना।
8. महिलाओं के साथ हो रहे नृशंसित अत्याचार और हिंसाचार की रोकथाम करना।

मध्य प्रदेश में महिलाओं की स्थिति– मध्य प्रदेश में महिलाओं के विकास विभिन्न संकेतको में सकारात्मक परिवर्तन परिलक्षित हुआ है। वर्ष 2011 की जनगणना के आधार पर राष्ट्रीय स्तर पर स्त्री–पुरुष अनुपात 1000 पर 940 है जो मध्यप्रदेश में 931 है। (ग्रामीण जनसंख्या में 936 तथा शहरी जनसंख्या में 918)। वर्ष 2001–2011 के दौरान मध्यप्रदेश में दशकीय किए वृद्धि दर राष्ट्रीय वृद्धि दर 17.7 प्रतिशत की तुलना में 20.35 प्रतिशत है। वर्ष 1991 से 2001 के दौरान मध्यप्रदेश में यह दर 24. 3 प्रतिशत थी। मध्यप्रदेश में दशकीय वृद्धि दर में पुरुष (19.6%) एवं महिला (21 प्रतिशत) है। मध्यप्रदेश में शिशु लिंगानुपात (0 से 6 वर्ष) जनगणना 2001 में मध्यप्रदेश में शिशु लिंगानुपात 932 था, जो जनगणना 2011 में 14 अंकों की गिरावट के साथ 918 हो गया।

मध्यप्रदेश में साक्षरता दर 69.3 प्रतिशत है, जो 2011 की जनगणना में 63.7 प्रतिशत थी। मध्य प्रदेश की साक्षरता दर में 5.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। मध्यप्रदेश में साक्षरता दर पुरुष 78.7 प्रतिशत, महिला 59.2 प्रतिशत, ग्रामीण 63.94 प्रतिशत नगरीय 82.85 प्रतिशत थी। भारत की साक्षरता दर 73 प्रतिशत है।

महिलाओं को राजनीतिक रूप से सशक्त करने के लिए पंचायत राज संस्थाओं एवं नगरीय निकायों में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण दिया गया है। महिला जनप्रतिनिधियों की निर्णय क्षमता विकसित करने के लिए ओरियंटेशन प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं, वन समितियों में भी 50 प्रतिशत महिलाओं को स्थान दिया गया है।

मध्यप्रदेश शासन द्वारा महिलाओं के लिए संचालित कल्याणकारी योजनाएं– मध्यप्रदेश शासन द्वारा महिलाओं के विकास हेतु अनेक प्रकार की योजनाएं संचालित की गई है, इन योजनाओं का **संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है–** 22 जनवरी 2015 को प्रधानमंत्री ने **'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ'** योजना प्रारंभ की। यह योजना लड़कियों को बचाने एवं जन्म का उत्सव मनाना और उसे शिक्षा प्रदान करना है। यह वर्ष 2014–15 के बजट में की गई घोषणा के अनुसार 100 करोड़ रुपए की आरंभिक राशि द्वारा शुरू की गई थी। वर्ष 2022–23 के बजट में बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ सहित कुछ अन्य प्रमुख योजनाओं को मिशन शक्ति के अंतर्गत मिलाकर कुल 3184.11 करोड़ रुपए आवंटित किए गए हैं। इसके अलावा **'लाडली लक्ष्मी योजना'**, श्स्वागतम लक्ष्मी योजनाश का संचालन लड़कियों एवं महिलाओं को समाज की मानसिकता में सकारात्मक परिवर्तन लाने का प्रयास किया जा रहा है। ग्रामीण एवं शहरी महिलाओं को आर्थिक रूप से सुदृढ़ बनाने के लिए महिलाओं द्वारा संचालित स्व सहायता समूहों का गठन किया है **'तेजस्विनी ग्रामीण महिला सशक्तिकरण कार्यक्रम'** मध्य प्रदेश में शासकीय सेवा को 50% आरक्षण दिए जाने का प्रावधान किया जा रहा है। बालिकाओं को शैक्षणिक रूप से सशक्त करने के लिए **'गांव की बेटी योजना'** 12वीं कक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने वाली ग्रामीण बालिका को नि: शुल्क उच्च शिक्षा तथा 500 रुपए प्रतिमाह की दर से छात्रवृत्ति दी जाती है। **'प्रतिभा किरण योजना'** इस योजना में गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाली मेधावी छात्राओं का शिक्षा स्तर बढ़ाने का प्रयास किया गया है। 'एकल बालिका नि:शुल्क योजना' इकलौती बालिका को केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के सभी विद्यालयों में निशुल्क शिक्षा उपलब्ध कराना।

रीवा जिले की सेमरिया तहसील की महिलाओं की साक्षरता दर

तालिका–1: महिला साक्षरता दर

महिलाए	
साक्षर महिलाए	निरक्षर महिलाए
49 %	51%
कुल योग 100%	

मध्य प्रदेश की महिला कल्याणकारी योजनाओं की प्रभावशीलता का आनुपातिक अध्ययन करने के लिए शोधार्थी ने 50 महिलाओं का आकलन करते हुए उनका एकीकृत चिंतन जानने की कोशिश की जिसका विवेचनात्मक विश्लेषण दिया गया है। अध्ययन क्षेत्र रीवा जिले के सेमरिया तहसील से चयनित 50 उत्तरदाताओं (महिलाओं) से जब यह प्रश्न किया गया कि क्या आपको शासकीय योजनाओं की जानकारी है तो इस पर उनके उत्तर निम्न रहे हैं।

तालिका–2: शासकीय योजनाओं की जानकारी (उत्तरदाता 50 महिलाए)

क्र.	विवरण	महिलाओं की संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	35	70%
2.	नहीं	15	30%
	योग	50	100%

अपरोक्त तालिका में महिलाओं के कल्याण हेतु संचलित योजनाओं के संदर्भ में वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। उत्तरदाताओं की अभिरुचि से स्पष्ट होता है कि क्षेत्र की 70% महिलाओं ने हाँ एवं 30% महिलाओं ने नहीं में जवाब दिया है, अर्थात क्षेत्र में अभी भी महिलाओं को जानकारी का अभाव है।

तालिका–3: योजनओं से लाभ की जानकारी

क्र.	विवरण	महिलाओं की संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	40	80%
2.	नहीं	10	20%
	योग	50	100%

उक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि क्षेत्र में 80 प्रतिशत महिलाओं को योजनाओं से लाभ मिल रहा है एवं 20 प्रतिशत महिलाएं अभी भी किसी करण से लाभ प्राप्त नहीं कर पा रही हैं।

तालिका–4: स्वास्थ्य संबंधी योजनाओं से लाभ की जानकारी

क्र.	विवरण	महिलाओं की संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	35	70%
2.	नहीं	15	30%
	योग	50	100%

क्षेत्र में 70 प्रतिशत महिलाओं को स्वास्थ्य संबंधी योजनाओं से लाभ मिल रहा है, एवं 30 प्रतिशत महिलाएं अभी भी लाभ लेने से वंचित हैं।

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

निष्कर्ष– लगभग 15 वर्षों बाद राष्ट्रीय महिला नीति में संशोधन का प्रस्ताव आया जिसमें जारी मसौदे का उद्देश्य महिलाओं को सामाजिक आर्थिक व शैक्षणिक रूप से सशक्त बनाना है। सरकार की इस नीति के माध्यम से महिला कल्याण, महिला विकास एवं महिलाओं के स्वास्थ्य सुरक्षा के साथ–साथ महिलाओं के संपूर्ण विकास कार्यों अथवा महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए लोक कल्याणकारी योजनाओं का संचालन कर महिलाओं के संपूर्ण जीवन में सरकार का काफी योगदान रहा है। मध्य प्रदेश की महिलाओं की स्थिति में काफी परिवर्तन हुआ है जिससे उनके विकास कार्यों में काफी सुधार हुआ है। सामाजिक प्रतिबन्ध और राजनीतिक प्रतिरोध के चलते महिलाओं का अधिक विकास अभी भी जैसा होना चाहिए नहीं हो पाया है। इसके लिए स्वयं महिलाएं जिम्मेदार हैं साथ ही पुरुष प्रधान समाज ने महिलाओं को आगे बढ़ने से रोका है, महिला सशक्त तभी होगी जब पुरुष मानसिकता बदलेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची:–

1. घटना चक्र 188/128 एलनगंज, चर्चलेन प्रयागराज इलाहाबाद–211002 वर्ष 2022,
2. प्रतियोगिता संदर्भ 36– एच, विज्ञान नगर इंदौर–12(म.प्र.),
3. महिला नीति 2015 (महिला एवं बाल विकास विभाग मध्यप्रदेश),
4. तिवारी रविशंकर, मध्यप्रदेश कल्याणकारी योजनाएं फरवरी 2022,
5. सम–सामयिकी घटना चक्र

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय राजनयिक संबंधों में कौटिल्य के षाड्गुण्य नीति की उपयोगिता- एक अध्ययन

डॉ. शोभाराम सोलंकी*

* सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान) शासकीय महाविद्यालय, कसरावद, जिला खरगोन (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – कौटिल्य की षाड्गुण्य नीति राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा में महत्त्वपूर्ण नियमों की स्थापना करती है। इसने समाज के सामूहिक उत्थान, राजनीतिक स्थिरता, और आर्थिक समृद्धि को महत्तव दिया है। नीति में सुरक्षा को संरक्षित करने के लिए शक्तिशाली संरचनाएं और संघर्ष के नियमों का वर्णन किया गया है। यह राष्ट्रीय सुरक्षा को सुनिश्चित करने के साथ ही अंतरराष्ट्रीय समझौतों में भी सुरक्षा की महत्ता को बताती है। नीति ने सामरिक सुरक्षा को भी उच्च प्राथमिकता दी है। इन सिद्धांतों का पालन करके सुरक्षा के विभिन्न पहलुओं को समझाने और समाधान करने में मदद की जा सकती है, जो राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सुरक्षा की प्रतिबद्धता के रूप में काम करते हैं।आचार्य कौटिल्य केद्वारा प्रतिपादित संधि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय, द्वैधीभाव आदि नीति वर्तमान में अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के क्रियांवयन में प्रासंगिक है। प्रस्तुत शोध पत्र में आचार्य कौटिल्य के षाड्गुण्य नीति पर प्रकाश डालने का विनम्र प्रयास किया गया है।

शब्द कुंजी– अर्थशास्त्र, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति, षाड्गुण्य नीति, संधि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय, द्वैधीभाव।

प्रस्तावना – एतिहासिक स्रोतों से ज्ञात होता है कि आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व तत्कालीन तक्षशिला विश्वविद्यालय के आचार्य कौटिल्य द्वारा क्रियांवित उत्ताम राजव्यस्था, प्रशासनिक कार्यकुशलता एवं सुदृढ़ सैन्य विधान परवर्ती युगों के लिए प्रेरणा स्रोत बनी। किसी भी राज्य की एकता, अखंडता, स्वतंत्रता एवं सम्प्रभुता के स्थायित्व के लिए दूरदर्शी व स्पष्ट नीतियों का निर्धारण अति आवश्यक है जिसके सफल क्रियान्वयन पर ही सम्बंधित राज्य का अस्तित्व टिका रहता है। कौटिल्य की षाड्गुण्य नीति एक प्राचीन नीतिशास्त्र है जो उसके अर्थशास्त्र में विस्तार से वर्णित है। यह नीति राजनीति, आर्थिक, सामाजिक और राष्ट्रीय सुरक्षा के क्षेत्र में सुरक्षा और स्थिरता को प्राप्त करने के लिए अनुशासन और नीतियों की महत्ता पर जोर देती है।षाड्गुण्य नीति में छह गुणों का उल्लेख है, जो समृद्ध और सुरक्षित समाज की नींव रखते हैं। पहला गुण, 'रक्षा' है, जो राष्ट्रीय सुरक्षा और रक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण है। दूसरा गुण, 'संरक्षण' नीतियों के माध्यम से समाज की सुरक्षा और स्थिरता को सुनिश्चित करने के लिए जरूरी है। तीसरा गुण, 'आर्थिक समृद्धि', विभिन्न आर्थिक उपायों के माध्यम से समृद्धि की दिशा में महत्तवपूर्ण है। चौथा गुण, 'सामरिक सुरक्षा', जनता की सुरक्षा और संरक्षण को सामाहित करता है। पांचवा गुण,'समरसता', समाज में सभी वर्गो के बीच समानता और न्याय की स्थापना के लिए है। और आखिरी गुण, 'नीति', सुचारु नीतियों और निर्णयों के माध्यम से राष्ट्रीय सुरक्षा और समृद्धि को सुनिश्चित करने के लिए जरूरी है।षाड्गुण्य नीति ने समृद्धि, समानता, और सुरक्षा के महत्वपूर्ण पहलुओं को प्रोत्साहित किया है और उन्हें समाहित करने के लिए नीतियों और अनुशासन की महत्ता को जागरूक किया है। यह नीति समाज और राजनीति को स्थापित करते समय उपयोगी हो सकती है, ताकि एक समृद्ध, सुरक्षित और समान समाज की दिशा में कदम बढ़ाया जा सके।

शोध का उद्देश्य:

1. आचार्य कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र में वर्णित षाड्गुण्य नीति का अध्ययन करना।
2. षाड्गुण्य नीति में बताये गये निर्देश का मूल्यांकन करना।
3. आचार्य कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित षाड्गुण्य नीति का वर्तमान में उपयोगिता का अध्ययन करना।

शोध परिकल्पना–राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय सम्बंधों के क्रियान्वयन में अर्थशास्त्र वर्णित षाड्गुण्य नीति वर्तमान समय में प्रासंगिक है।

शोध प्रविधि– प्रस्तुत शोध पत्र को तैयार करने में पुस्तकालय अनुसंधान विधि का प्रयोग करते हुए विभिन्न प्रबुद्ध लेखकों के ग्रंथ, पत्र-पत्रिकाओं, इंटरनेट स्रोतों आदि की सहायता ली गई है।

आचार्य कौटिल्य ने अन्तर्राष्ट्रीय एवं अन्तर्राज्य सम्बन्धों के संदर्भ में परराष्ट्र नीति अथवा सुरक्षा नीति के संचालन के लिए षाड्गुण्य नीति को आधार माना है।

एवंषड्भिर्गुणैरेतै: स्थित: प्रकृतिमण्डले।
पर्येषेत क्षयात स्थान, स्थानात् वृद्धिं च कर्मसु।।[1]

अर्थात राजा अपने प्रकृतिमण्डल में स्थित षाड्गुण-नीति द्वारा क्षीणता से स्थिरता तथा स्थिरता से वृद्धि की अवस्था में जाने की चेष्टा करे।[2] उन्होंने इस नीति के अन्तर्गत पुरातन छ: सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, जो इस प्रकार हैं- सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय। उनके अनुसार देश, काल एवं परिस्थिति के अनुरुप षाड्गुण्य नीति में परिवर्तन कर लेना चाहिए। सभी नीतियों का मुख्य उद्देश्य शत्रु की तुलना में अपने आप को शक्तिशाली बनाकर राज्य का विस्तार करना चाहिए। आचार्य कौटिल्य के षाड्गुण्य नीति का सविस्तार वर्णन इस प्रकार है-

1. **सन्धि–** यदि कोई निर्बल राजा किसी बलवान चक्रवर्ती राजा से घिर

जाए तो तुरन्त कोष, दण्ड (सेना), भूमि और अपने आपको यथावश्यक समर्पित करके सन्धि कर ले।[3] आचार्य कौटिल्य के अनुसार किसी भी राजा के द्वारा सन्धि करने का उद्देश्य शत्रु राज्य की शक्ति को नष्ट करके स्वयं को शक्तिशाली बनाना होता था। उनके अनुसार ऐसे शत्रु जिस पर विजय प्राप्त करना सम्भव न हो, सन्धि करके स्वयं को सबल बनाने के लिए कुछ समय प्राप्त कर लेना चाहिए।[4]

आचार्य कौटिल्य के अनुसार निम्नलिखित परिस्थितियों में सन्धि का आश्रय लेना चाहिए यदि विजिगीषु राजा सन्धि करने पर अपने बड़े-बड़े कार्य सम्पादित करने में तथा शत्रु के कार्यों में हानि पहुंचाने में समर्थ हो, अपने उत्तम कार्यों के साथ-साथ षत्रु के उत्तम कार्यों से भी लाभ उठा सकता हो। सन्धि के पष्चात शत्रु का विश्वासपात्र बनकर गुप्तचरों तथा विष-प्रयोगों से शत्रु का नाश कर सकता हो। शत्रु के मित्रों को अपना कृपापात्र बनाकर अपनी ओर आकृष्ट कर सकता हो। तो उसे सन्धि कर लेनी चाहिए।[5]

सन्धि के प्रकार- आचार्य कौटिल्य ने अनेक प्रकार के सन्धियों का विस्तृत वर्णन किया है। हीनबल राजा अपने सबल शत्रु से सन्धि करता है, तो उसे हीनबल सन्धि कहते हैं। यह सन्धि तीन प्रकार की होती है[6]-

(1) दण्डोपनत सन्धि (2) कोषोपनत सन्धि (3) देवोपनत सन्धि।

उपर्युक्त सन्धियों के अतिरिक्त भी कौटिल्य ने कुछ और सन्धियों का भी उल्लेख किया है।[7]

परिपणित देश सन्धि, परिपणित काल सन्धि,परिपणित कार्य सन्धि आदि।

2. **विग्रह या युद्ध का समय-** जब राजा देखे कि शत्रु विपत्ति में उलझ रहा है, उसकी प्रजाऐं सेना द्वारा पीड़ित हैं और राजा से विरक्त हो रही हैं, वे क्षीण हो चुकी हैं, निरुत्साहित हैं, आपस में लड़-झगड़ रही हैं और अब उन्हें लोभ द्वारा बस में किया जा सकता है, और जब वह देखे कि अग्नि, जल, व्याधि, महामारी आदि दैवी आपत्तियों द्वारा शत्रु के वीर पुरुष, वाहन आदि नष्ट हो चुके हैं और वह अपनी रक्षा करने में असमर्थ है- उसी समय राजा शत्रु से विग्रह करने के लिए निकल पड़े।[8]

विग्रह का अभिप्राय है- युद्ध। आचार्य कौटिल्य के मतानुसार विग्रह नीति का प्रयोग तभी करना चाहिए, जब शत्रु राजा निर्बल हो तथा विजिगीषु राजा की युद्ध व्यवस्थाऐं पूर्ण हों और वह अपनी शक्ति के विषय में पूर्णतया आश्वस्त हो। विग्रह करने से पूर्व ही राजा को राज्य मण्डल के मित्र राज्यों की सहायता प्राप्त कर लेनी चाहिए। आचार्य कौटिल्य के शब्दों में विजिगीषु राजा यह समझे कि मेरे देश में आयुध जीवी क्षत्रिय और कृषक अधिक हैं। मेरे देष में पहाड़, जंगल, नदी तथा किले बहुत हैं। मेरे राज्य में आने-जाने के लिए एक ही मार्ग है। शत्रु के किसी भी आक्रमण का प्रतिकार मेरा देश करने में समर्थ है या राज्य की सीमा पर अति दुर्भेध दुर्ग का आश्रय लेकर शत्रु के कार्यों का विनाशकाल अब समीप आ पहुंचा है अथवा विग्रह करते हुए शत्रु के जनपद को मैं किसी दूसरे रास्ते से पार कर लूंगा, तो विग्रह कर दे। ऐसी अवस्था में विग्रह करके ही वह अपनी उन्नति करे। दूसरी तरफ आचार्य कौटिल्य ने यह भी कहा है कि यदि विजिगीषु राजा सन्धि तथा विग्रह में समान लाभ देखे तो सन्धि का ही अवलम्बन लें, क्यों कि विग्रह करने में प्रजा, धन-धान्य आदि की बहुत क्षति होती है।[9]

आचार्य कौटिल्य ने विग्रह नीति का अनुसरण करने वाले राजा के लिए तीन शक्तियों से युक्त होना अनिवार्य माना है- उत्साहशक्ति, प्रभावशक्ति तथा मंत्र शक्ति। उत्साह शक्ति का अभिप्राय है- सफल युद्ध के लिए आवष्यक नैतिक बल, प्रभावशक्ति का अभिप्राय है- अस्त्र-शस्त्र आदि सामग्री तथा मंत्र शक्ति का अभिप्राय मंत्रणा तथा कूटनीति से है। उपर्युक्त तीनों शक्तियों में आचार्य कौटिल्य ने उत्साह शक्ति को प्रधानता दी है।[10]उन्होंने युद्ध के लिए संगठित और शक्तिशाली सैन्यबल का होना भी आवश्यक माना है।

युद्ध की परिस्थितियां- आचार्य कौटिल्य के अनुसार युद्ध से पूर्व विजिगीषु को निम्नलिखित परिस्थितियों पर अवश्य विचार कर लेना चाहिए-

राज्य की सभी प्रकृतियां स्वस्थ हों क्योंकि एक के भी व्यसन ग्रस्त होने से युद्ध में असफलता का सामना करना पड़ सकता है। युद्ध से पूर्व सैनिक शक्ति, भौतिक साधन, कूटनीति आदि सभी स्तरों पर शत्रु से श्रेष्ठ हों। युद्ध से पूर्व ही लाभ-हानि पर पूर्ण विचार-विमर्श कर लेना चाहिए तथा उसकी अनुपस्थिति में मंत्री, पुरोहित या युवराज द्वारा आन्तरिक विद्रोह करके राज्य को असुरक्षित न कर दिया जाये, इस विषय पर भी पूर्ण ध्यान देना चाहिए।[11]

आचार्य कौटिल्य ने युद्ध के प्रबन्ध का विस्तार से विवेचन किया है, उनके शब्दों में- सैनिकों के स्वास्थ्य संरक्षण और मनोविनोद के लिए चिकित्सक, काटने के औजार, चिमनी, दवाई, घी, तेल, मरहम-पट्टी, सह-चिकित्सक, खाने-पीने की साम्रग्री और सैनिकों को प्रसन्न करने वाली स्त्रियां, इन सब को युद्धभूमि के लिए प्रस्थान करते समय सेना के पिछले हिस्से में रखा जाये।[12] युद्ध के समय सेनापति सिपाही को उत्साहित करे। वह इस बात की घोषणा करे के जो सिपाही युद्ध में अपनी वीरता का परिचय देगा, उसे पुरस्कृत और सम्मानित किया जावेगा, उसको पदोन्नति दी जायेगी तथा उसका वेतन दोगुना कर दिया जायेगा।

युद्ध में प्राप्त भूमि पर विचार करते हुए आचार्य कौटिल्य ने लिखा है कि विजिगीषु जब शत्रु के राज्य को अपने अधीन कर ले तो उसे नये राज्य की प्रजा के लिए कल्याणकारी कार्य करने चाहिए। उसे प्रजा को ऋणदान और कर मुक्ति से प्रसन्न करना चाहिए। उसे अपने प्रजा जनों के समान ही शील, वेषभूषा और आचरण का व्यवहार करना चाहिए, प्रजा के विश्वासों की भांति, राष्ट्रदेवता, समाजोत्सव तथा विहारों में अपनी भक्ति भावना रखनी चाहिए।[13]

3. **यान अथवा युद्ध के लिए प्रस्थान-** किसी अन्याय-वृत्ति राजा की प्रजाओं में क्षय, लोभ तथा वैराग्य (असंतोष) फैलता है, जब वह राजा न करने योग्य कार्यों को करता हो और करने योग्य कार्यों का नाश कर देता हो, जब वह दण्डनीयों को दण्ड न देता हो और अदण्डनीयों को दण्ड देता हो, जब वह प्रधान पुरुष पर दोष लगाता हो, और मान्यों का अपमान करता हो। संक्षेप में जब वह राजा प्रमाद, आलस्य और योग-क्षेम (कल्याण) की हानि द्वारा प्रजाओं को उत्तेजित करता हो। वही समय उचित अवसर है, जबकि उस राजा के विरुद्ध यान अथवा युद्ध के लिए प्रस्थान कर देना चाहिए।[14]

यान का अभिप्राय है- वास्तविक आक्रमण। इस नीति को तभी अपनाना चाहिए जब विजिगीषु राजा अपनी स्थिति को सुदृढ़ देखे तथा उसे ऐसा प्रतीत हो कि आक्रमण के बिना शत्रु को वश में करना असम्भव हो। विग्रह तथा यान में केवल स्तर का ही भेद है। आचार्य कौटिल्य के अनुसार- यदि समझें कि शत्रु के कार्यों का नाश यान से सम्भव है तथा मैने अपने कर्मो की रक्षा का पूरा प्रबन्ध कर लिया है तो यान का आश्रय लेकर अपनी उन्नति करें।[15]

यान किस परिस्थिति में किया जाये इसका वर्णन करते हुए उन्होंने ने लिखा है कि- जब देखें कि शत्रु व्यसनों में फंसा हुआ है, उसका प्रकृति मण्डल के व्यसनों में उलझा है, अपनी सेनाओं से पीड़ित उसकी प्रजा उससे

विरक्त हो गई है, राजा स्वयं उत्साह हीन है, प्रकृति मण्डल में परस्पर कलह है, उसको लोभ देकर फोड़ा जा सकता है, शत्रु अग्नि, जल, व्याधि, संक्रामक रोग के कारण वह अपने वाहन, कर्मचारी, कोष आदि की रक्षा करनें में असमर्थ है तो ऐसी दशा में विग्रह करके चढ़ाई कर दें।[16]

4. आसन– जब राजा यह समझे कि मेरा शत्रु इतना समर्थ नहीं है कि मेरे कामों को हानि पहुंचा सके और न मैं उसके कामों को बिगाड़ सकता हूं, यद्यपि षत्रु राजा पर व्यसन है, परन्तु कलह में कुत्तो और शूकर की लड़ाई के तुल्य कोई फल न निकलेगा, अपना काम करते रहने पर मैं वृद्धि को प्राप्त करुंगा– तो इस परिस्थिति में राजा चुपचाप बैठा रहे और आसन नीति का अवलम्बन करे।[17]

आसन का अभिप्राय है– तटस्थता। आचार्य कौटिल्य के अनुसार अपनी वृद्धि के लिए समय की प्रतीक्षा करते हुए चुपचाप बैठे रहना ही आसन नीति है। राजा आसन नीति तभी अपनाता है जब वह स्वयं को शत्रु का नाश करने में असमर्थ समझता है तथा शत्रु भी इतना प्रबल नहीं होता कि उसका नाश कर सके।[18] आसन की नीति अपनाते हुए राजा के द्वारा शक्ति अर्जन की लगातार चेष्टा की जानी चाहिए। आचार्य कौटिल्य के अनुसार आसन के, स्थान तथा उपेक्षण दो नाम और भी हैं। चुपचाप बैठे रहना और किसी विषय में उपाय करते रहना स्थान है। अपनी वृद्धि के लिए चुपचाप बैठे रहना आसन कहलाता है। किसी उपाय का अवलम्बन न करना उपेक्षण कहलाता है।[19]आसन दो प्रकार के हैं– विग्रहय आसन तथा सन्धाय आसन।[20]

5. संश्रय– राजा का जो प्रिय हो अथवा दो में से जो अधिक प्रिय हो, राजा उसी का आश्रय ग्रहण करे।[21] संश्रय का अर्थ है– बलवान राजा की शरण लेना। यदि किसी राजा में शत्रु को क्षति पहुंचाने की क्षमता का तो अभाव हो ही, अपनी रक्षा करने में भी असमर्थ हो तो, उसे बलवान राजा की शरण लेना चाहिए। लेकिन इस बात पर अवश्य विचार कर लेना चाहिए कि जिसके षरण ली जा रही है, वह शत्रु से अधिक शक्तिशाली हो। आचार्य कौटिल्य के मतानुसार अगर दूसरा शक्तिशाली राजा न मिले तो, शत्रु का ही आश्रय ले लेना चाहिए।[22]

6. द्वैधीभाव– सन्धि के लिए किसी राजा द्वारा कहे जाने पर अथवा स्वयं किसी राजा के साथ सन्धि करने के लिए उद्यत होने पर, विजयेच्छुक राजा प्रथम सन्धि के तथा विग्रह के लाभ– हानि पर विचार करे और जैसा भी श्रेयस्कर प्रतीत होता हो, उसके अनुसार आचरण करे।[23]

द्वैधीभाव का अभिप्राय एक राजा से सन्धि तथा दूसरे से विग्रह करना है। जब कोई राजा किसी राजा से सन्धि करके उससे सेना तथा शस्त्रादि की सहायता लेकर शत्रु का नाश करता है, तो उसे द्वैधीभाव सन्धि कहते हैं। आचार्य कौटिल्य के मतानुसार द्वैधीभाव नीति के द्वारा शक्तिशाली राजा के साथ सन्धि व दुर्बल राजा के साथ विग्रह करना चाहिए। यदि संश्रय और द्वैधीभाव दोनों में समान लाभ हो तो द्वैधीभाव की नीति को ही अपनाना चाहिए, क्योंकि इससे राजा कार्यरत रहकर अपनी भलाई करता है।[24]

आचार्य कौटिल्य ने परराष्ट्र नीति के सफल क्रियान्वयन के लिए साम, दाम, भेद और दण्ड, इन चतुवर्ग उपायों के प्रयोग का विधान किया है।

कौटिल्य की षाड्गुण्य नीति का वर्तमान में उपयोगिता[25] –

कौटिल्य की षाड्गुण्य नीति राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा के क्षेत्र में बहुत महत्तवपूर्ण सिद्धांतों को संकेत करती है–

1. राष्ट्रीय सुरक्षा में उपयोगिता– षाड्गुण्य नीति राष्ट्रीय सुरक्षा में अपना महत्तवपूर्ण योगदान देती है। इस नीति के सिद्धांतों के अनुसार, राष्ट्रीय सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए सरकार को सशक्त और निर्णायक कदम उठाने चाहिए। यह सुरक्षा को बढ़ावा देता है जो आर्थिक, सामाजिक, और राजनीतिक सुरक्षा के रूप में व्यक्त हो सकता है।

2. संघर्ष और संरक्षण– यह नीति संघर्ष और संरक्षण के माध्यम से राष्ट्रीय सुरक्षा को समझाती है। सुरक्षा को बढ़ावा देने के लिए सरकार को आवश्यक रक्षा संरचना, सेना और प्रशासनिक उपायों का उपयोग करना चाहिए।

3. अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा में महत्तव– षाड्गुण्य नीति का अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी महत्त्व है। इसने विदेशी नीतियों, संबंधों और अंतरराष्ट्रीय समझौतों में सुरक्षा को बढ़ावा देने के तरीकों को समझाया है।

4. संघर्ष के नियम– षाड्गुण्य नीति ने संघर्ष के नियमों को समझाया है और इसे राष्ट्रीय सुरक्षा में उपयोगी माना है। इसने युद्ध, शांति संधि और रक्षा के लिए विभिन्न रणनीतियों को सुझाव दिया है।

5. सामरिक सुरक्षा की बढ़ावा– नीति ने सामरिक सुरक्षा को भी महत्तव दिया है, जो एक राष्ट्रीय सुरक्षा के माध्यम से संचालित होती है और जिसमें लोगों की सुरक्षा और संरक्षण शामिल होता है।

इन सिद्धांतों का अनुसरण करके, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा में सुरक्षा और स्थिरता को सुनिश्चित किया जा सकता है। यह नीति सुरक्षा के विभिन्न पहलुओं को समझने और सुलझाने में मदद कर सकती है, जो राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सुरक्षा की गारंटी के रूप में काम करते हैं।

निष्कर्ष – कौटिल्य की षाड्गुण्य नीति राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा में महत्तवपूर्ण नीतियों को प्रस्तुत करती है। इस नीति के अनुसार, समृद्धि, समानता, और सामाजिक सुरक्षा को बढ़ावा देने के लिए सामाजिक न्याय और संरक्षण को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। राष्ट्रीय सुरक्षा के मामले में, नीति ने शक्तिशाली संरचनाओं, सेना, और रक्षा प्रणालियों को सुझाव दिया है जो राष्ट्रीय हितों की रक्षा में मदद कर सकते हैं। यह नीति अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा के मामले में भी महत्तवपूर्ण है। विदेशी नीतियों, संबंधों, और समझौतों में सुरक्षा को बढ़ावा देने के तरीकों को समझाने के साथ-साथ, इसने अंतरराष्ट्रीय समूहों और संबंधों को मजबूत करने का भी सुझाव दिया है। आचार्य कौटिल्य वर्णित अर्थशास्त्र एक व्यवहारिक ग्रंथ है जिसमें विविध समस्याओं के समाधान हेतु शत्रु राज्य के विरुद्ध विजिगीषु राज्य को कई उपाय बताये हैं। आज विश्व की बड़ी महाशक्तियां जैसे अमेरिका, रुस, ब्रिटेन, चीन, फ्रांस इत्यादि के राजनीतिक, आर्थिक एवं सामरिक व्यवहार का सिंहावलोकन करने पर पता चलता है कि षाड्गुण्य नीति एवं साम, दाम, भेद व दण्ड की नीति का ही पालन किया जा रहा है।

ऐसे में आचार्य कौटिल्य के सैन्य चिंतन की प्रासंगिकता को नकारना अथवा विस्मृत करना बड़ी भूल होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सिंह, लल्लन जी, राष्ट्रीय रक्षा एवं सुरक्षा, 12वां संस्करण, पृ. 01
2. प्रो. इन्द्र, कौटिल्य अर्थशास्त्र, पृ. 108
3. वही, पृ. 109
4. कौटिल्यम् अर्थशास्त्रम्, 2/3
5. गैरोला, वाचस्पति –कौटिल्यम् अर्थशास्त्रम्, 7/1
6. वही
7. वही, 7/3
8. प्रो. इन्द्र, कौटिल्य अर्थशास्त्र, पृ. 111

9. गैरोला, वाचस्पति –कौटिल्यम् अर्थशास्त्रम्, 7/6
10. कौटिल्यम् अर्थशास्त्रम्, 7/1/2
11. कौटिल्यम् अर्थशास्त्रम्, 7/16
12. अग्रवाल, कमलेश –कौटिल्य अर्थशास्त्र एवं शुक्रनीति की राज्य व्यवस्थाऐं, पृ0 247
13. कौटिल्यम् अर्थशास्त्रम्, 10/3
14. प्रो. इन्द्र, कौटिल्य अर्थशास्त्र, पृ. 114–115
15. कौटिल्यम् अर्थशास्त्रम्, 13/5
16. कौटिल्यम् अर्थशास्त्रम्, 12/1
17. प्रो. इन्द्र, कौटिल्य अर्थशास्त्र, पृ. 111
18. वही
19. कौटिल्यम् अर्थशास्त्रम्, 7/1
20. कौटिल्यम् अर्थशास्त्रम्, 7/3
21. प्रो. इन्द्र, कौटिल्य अर्थशास्त्र, पृ. 116
22. प्रसाद, चन्द्रदेव– कौटिल्य, पृ016
23. प्रो. इन्द्र, कौटिल्य अर्थशास्त्र, पृ. 117
24. कौटिल्यम् अर्थशास्त्रम्, 7/2
25. www.historysaransh.com

****

हिन्दी साहित्य में पर्यावरणीय संचेतना

डॉ. सपना*

* दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

प्रस्तावना – 'पर्यावरण' शब्द का निर्माण दो शब्दों से मिलकर हुआ है। 'परि' और 'आवरण' अर्थात हमें चारों ओर से घेरे हुए आवरण। पर्यावरण शब्द की उत्पत्ति संस्कृति के शब्द 'परि' उपसर्ग और 'आवरण' से प्रत्यय से मिलकर हुई है। जिसका अर्थ है ऐसी चीजों का समुच्चय जो किसी मनुष्य या जीवधारी को चारों ओर से आवृत्त किए हुए है। भूगोल एंव परिस्थितिकी में यह शब्द अंग्रेजी के environment के पर्याय के रूप में प्रयोग किया जाता है।[1] संचेतना शब्द चेतना शब्द से ही बना है परंतु यह विशेष चेतना अर्थात जागरूकता, सजगता के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

हिन्दी साहित्य में सामान्यत: प्रकृति और पर्यावरण को एक ही समझ कर बात की जाती है। परंतु यहाँ समझने वाली बात यह है कि प्रकृति और पर्यावरण एक ही शब्द नहीं हैं। प्रकृति एक बहुत ही व्यापक अवधारणा है जबकि 'पर्यावरण' व्यक्ति विशेष के संदर्भ में उन सभी भौतिक, रासायनिक, एवं जैविक कारकों की समष्टिगत इकाई है, जो किसी जीवधारी अथवा पारितंत्रीय आबादी को प्रभावित करते हैं तथा उनके रूप, जीवन और जीविता को निर्धारित करते हैं।

पर्यावरण मूलत: प्रत्येक जीव के साथ जुड़ा हुआ है। हमारे चारों तरफ सदैव व्याप्त रहता है। पर्यावरण में जैविक और अजैविक दो प्रकार के संघटक माने जाते हैं। जैविक संघटको में सूक्ष्म जीवाणु से लेकर कीड़े- मकोड़े, सभी जीव–जंतु और पेड़- पौधे आ जाते हैं और साथ ही उनसे जुड़ी सारी जैविक क्रियाएं और प्रक्रियाएं भी। अजैविक संघटकों में चट्टानें, पर्वत, नदी, हवा और जलवायु के तत्वों के साथ और कई तत्व समाहित हैं।

मानव जीवन पर्यावरण की अनुकूलता पर निर्भर करता है। पर्यावरण की सम स्थितियाँ ही मनुष्य के जीवन की अनिवार्य शर्त है। परन्तु आज अन्ध आधुनिकीकरण की दौड़ में मनुष्य ने इस सार्वभौमिक सत्य को बिसार दिया है। जिसके परिणाम हमें प्राकृतिक आपदाओं के रूप में देखने को मिलते हैं। मानव द्वारा निरंतर किए जा रहे पर्यावरण विनाश से विश्वस्तर पर भविष्य में मानव अस्तित्व के संकट की चिंता सताने लगी है।

भारतीय समाज आदिकाल से ही प्रकृति पूजक संस्कृति के रूप में जाना जाता है। प्राचीन समय से ही हम अग्नि, सूर्य, नदियों, पेड़–पौधों, जीव- जंतु जैसे- गाय,सर्प, गरुड़, हाथी, मूशक आदि ना जाने कितने ही रूपों को देव स्वरूप मानकर पूजते आए हैं। भारतीय वाडमय में प्रारंभ से ही इसके साक्ष्य उपलब्ध हैं। हमारे प्राचीन वेद ऋग्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद पर्यावरण के महत्व से भरे पड़े हैं।

हिन्दी साहित्य भी इस परम्परा से अछूता नहीं है। साहित्य मूलत: समाज का ही लेखा–जोखा है। वह उसी प्रकृति पूजक, संरक्षक समाज का चित्रण आदिकाल से ही करता आया है। आदिकालीन हिन्दी साहित्य में आलंबन तथा उद्दीपन दोनों ही रूपों में प्रकृति का चित्रण हुआ है। विद्यापति अपनी 'पदावली' में पर्यावरण का अद्धितीय चित्र प्रस्तुत करते हैं।

'मौली रसाल मुकुल भेल ताब
समुखहिं कोकिल पंचम गाय।'[2]

भक्ति कालीन कवि भक्ति के रहस्यात्मक वर्णन में प्रकृति के बिम्बों का मुक्तकंठ से प्रयोग करते हैं। जिसे कबीर, तुलसी, जायसी की रचनाओं में सफलता पूर्वक देखा जा सकता है। तुलसीदास जी रामचरितमानस में सीता और लक्ष्मण को वृक्षारोपण करते हुए दिखाते हैं।

'तुलसी तरुवर विविध सुहाए
कहुं कहुं सिया कहुं लखन लगाएं।'[3]

रामचरितमानस में राम के वन निवास के समय के प्रसंगों में प्रकृति के अनेक रूप बिखरे पड़े हैं। सूरदास के भ्रमरगीत में पर्यावरण के सुन्दर प्रसंगानुकूल चित्र सर्वत्र व्याप्त है।

रीतिकालीन कवियों यथा बिहारी, पद्माकर, देव एवं सेनापति की रचनाओं में प्रकृति का उद्दीपन रूप में सुंदर चित्रण दर्शनीय है। बिहारी का दोहा यहाँ उल्लेखनीय है।

'चुवत स्वेद मकरंद कन
तरु तरु तर विरमाइ
आवती दच्छिन देश तैं
थक्यौं बटोही बाइ।'[4]

आधुनिक काल में छायावादी कवि आत्मोन्नमुख होने के साथ ही स्वयं को प्रकृति के रूपों में खोजना चाहते हैं। छायावादी कवि स्वयं को प्रकृति से इस प्रकार आबद्ध मानते हैं कि अपने नाम के साथ प्रकृति को जोड़ लेता है। सुमित्रानंदन पंत 'प्रकृति के सुकुमार' कवि कहलाये, तो सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने स्वयं को 'वसंत का अग्रदूत' कहा और बादल राग ही रच डाला। महादेवी वर्मा कविता में 'नीर भरी दुख की बदली' के रूप में स्वयं को अभिव्यक्त करती हैं। वहीं संस्करण में 'सोना हिरणी' तथा 'गुल्लू गिलहरी' का चित्रण करती हैं। प्रसाद की कविताओं में पर्यावरण की चिंता स्पष्ट रूप से दिखती है। 'कामायनी' में वे प्रकृति के मोहक और विकराल दोनों रूपों से परिचय कराते हैं। जहाँ प्रकृति देवताओं की असहिष्णु, अकर्मण्य और असंतुलित दोहन की लालची प्रवृति से क्षुब्ध होकर विकराल रूप धारण करती है जिसके परिणामस्वरूप जल प्लावन होता है एवं देव सभ्यता नष्ट

हो जाती है।

'प्रकृति रही दुर्जेय,पराजित
हम सब थे भूले मद में
भोले थे, हाँ तिरते केवल
सब विलासिता के नद में।
वे सब डूबे, डूबा उनका
विभव, बन गया परावर
उमड़ रहा है देव सुखों पर
दुख जलधि का नाद अपार।'[5]

प्रकृति के पास ध्वंस के उपरांत सुधार और नवीन सृजन के स्वयं का का तंत्र होता है। प्रकृति मानव हस्तक्षेप से प्रभावित होकर ध्वंस करती है। परंतु यदि मनुष्य हस्तक्षेप न करे तो स्वयं के पुर्नसृजन की क्षमता भी रखती है। प्रलय की भयानक रात्री बीत जाने के पश्चात्य सुन्दर सुनहरी सुबह भी होती है।

'उषा सुनहले तीर बरसती, जल लक्ष्मी सी उदित हुई
उधर पराजित काल रात्री भी, जल में अन्तर्निहित हुई।'

आधुनिक काल में भी पर्यावरण की चिंता अनेक रूपों में दिखती है। यहाँ अज्ञेय नगरीय जीवन की धूर्तताओं और स्वार्थपरक आत्मकेंद्रितता पर चोट करते हैं।

'सांप
तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना
भी तुम्हें नहीं आया
एक बात पूछूं (उत्तर दोगे?)
तब कैसे, सीखा डसना
विष कहाँ से पाया।'[6]

काशीनाथ सिंह का 'जंगल जातकम' पर्यावरण को बचाने की अच्छी कोशिश है। लेखक संवेदनात्मक धरातल पर जंगल का मानवीकरण करते हैं। नागार्जुन 'वरुण के बेटे', सर्वेश्वर की 'कुआनी नदी', सर्वेश्वर दायाल सक्सेना की 'भेड़िए', चंद्रकांत देवताले की रचनाएं, नासिरा शर्मा की 'कुइयांजान', रत्नेश्वर कुमार सिंह की 'एक लकड़ी पानी पानी' और 'देखना मेरी जान' पर्यावरण के सन्दर्भ में लिखी गयी है। निर्मला पुतुल की कविताओं में जल-जंगल को बचाने की पुरजोर कोशिश है। वहीं अनिल यादव की 'कीड़ाजड़ी' में पहाड़ी पर्यावरण और उसकी चिंताओं का संवेदनात्मक चित्रण करते हैं।

मनुष्य द्वारा प्रकृति के निरंतर तीव्र दोहन एवं असीम पूंजी उगाही की अंध लालसा ने पर्यावरण प्रदूषण से होते हुए आज पर्यावरण परिवर्तन की गंभीर समस्या खड़ी कर दी है। आज यह विश्व के सम्मुख गंभीर चुनौती है।जिसने मनुष्य के अस्तित्व को संकट में डाल दिया है। बड़े- बड़े द्वीप (देश) जलमग्न हो रहे हैं। इस समस्या पर प्रथम विचार स्टॉकहोम (1972) में अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में किया गया। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यू एन ई पी) बैनर तले बने समूह ने जल संकट पर गंभीर रिपोर्ट रखी है। मानव जीवन के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए हमें पर्यावरण संरक्षण के लिए सचेत होकर तत्काल प्रयास प्रारंभ करने होंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. विकिपीडिया।
2. पदावली, विद्यापति।
3. रामचरितमानस, अयोध्या कांड, गोस्वामी तुलसीदास, गीताप्रेस, गोरखपुर।
4. बिहारी सतसई, भाग-60, बिहार, प्रकाशन पुस्तक भंडार, पटना, 1947
5. कामायनी, चिंता सर्ग, जयशंकर प्रसाद, मधुर पेपर बैक्स, 1936
6. इन्द्र-धनु रौंदे हुए थे, अज्ञेय, सांप, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, बनारस, 1957

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Callus culture from apical bud of *Bombax ceiba* L. (semul)

Dr. Kanchan Vaidya*

*Asst. Professor (Botany) Govt. Sanjay Gandhi Smriti PG College, Ganjbasoda (M.P.) INDIA

Abstract - Callus of *Bombax ceiba* L. Regenerated from apical bud explant.WPM. supplemented with different concentration and combination of plant growth regulators with NAA, KN, BAP maximum callus induction occurred in high concentration of NAA with low to high concentration of BAP
Keywords- Callus , Plant growth hormones,.NAA, BAP, KN.

Introduction - The major micro propagation system can be recognised by axiliary shoot proliferation, adventitious shoot formation directly from organ and indirectly by callus and somatic embryogenesis directly from organ or from callus. (Jones 1983 ,Ammirato and styer 1985, Bonga and Aderkas 1992 ,Finer 1995) . In these system callus also play an important role in Plant Tissue Culture Technique .The main advantage of propagation from callus ,and especially from cell suspension, are that propagation can potential be achieved in large number per unit time, that handling procedure are simpler and that experimental genetic modification is easier to achieve(Krikorian 1982)

Semul *Bombax ceiba* L. is an important tree species used in match would and insulation industries (Venkatesh1988). The young fruits are reported to be employed as expectorant, stimulant and diuretic. The oil from the seeds is edible and can be used as a substitute for cotton seed oil. Tt can also be used for soap making and as an illuminant (Chatterjee and Prakashi 1994). Besides it possesses high medicinal value. It's propagation through conventional vegetative method is very poor and survival rate meagre. (Ghate at all 1988). Besides naturally propagated through seeds with long generation period, improvement possibilities of the tree are limited since callus induction in semul (*Bombax ceiba* L) proceeds for adventitious shoot formation and somatic embryogenesis. In present investigation has been taken up apical bud for callus culture

Material and method: Various vegetative mature and juvenile explant were used for callus culture. explants were collected from the nature grown selected plus tree 0.4 -0.7 cm long apical bud

Mature apical but were thoroughly washed in running tape water 2 - 3 hour immersed in depol 0.01%(v/v) for 10 minutes and then rinsed with tap water 2 -3 times and finally wash with distilled water 2-3 times they were then immersed in 70% (v/ v) ethanol 5-7 minutes this was followed by mercuric chloride 0.1%(w/v) treatment for 10 minutes. These explant work right between presterilized filter papers and inoculated on the sterile culture media

The medium was supplementary with different concentration of growth regulators viz..cytokininBAP(Benzyl Amino Purine) and KN(6 Furfuryl Amino Purine). Or in combination with an auxin viz. NAA(Naphthalene Acetic Acid)the pH of the medium was adjusted 5.6—5.8 before autoclaving at 15 lbs pressure and 121°C for 20 minutes The medium was solidify using 8 g /l agar (Difco_ Bacto) at least 15 culture were raised in each experiment and all experiments were repeated at least twice. Culture maintained at 25 ±2°C and relative humidity (RH) of 70% with 16-hour photoperiod (approx. 1500 lux) and 8 hr dark and sub-cultured every 4-6 weeks

Result and Discussion: In present work initially all experiments were carried out on both WPM (woody plant medium) and MS medium. But in case of callus induction WPM was found to be better than MS media.WPM supplemented. With various auxin NAA, 2,4 -D, IAA and cytokinin with BAP, KN were observed In aseptic culture of apical bud in the present study the main hazards was exudation of phenolic substance in the medium due to which apical bud is necrosed and provide no in vitro response as reported in the past (Cresswell at all 1982). Phenolic exudation observed in mature plant was for higher than Juvenile once.

Apical bud of semul cultured in WPM (Woody plant medium). Containing high concentration of NAA and low to high concentration of BAP is best for callus proliferation. callus observed in 100% apical bud explant within 10 — 12 days, in NAA 2.68 µm + BAP 2.21µm, NAA 5.37 µm +BAP 2.21µm, NAA 5.37µm+ BAP 44.39µm,NAA 26.35+BAP 0.44µm. The callus obtained was white friable

in texture and fast growing and also used for further regeneration. Whereas 2,4-D is also produced 80% callus but this callus is dull brown, soft and slow growing. In IAA only lowest concentration supported callusing.Callus was soft slow growing. Regeneration of plants from callus or cell suspension has been achieved with several tree species viz. *Santalum* (LaxmiSita et. al.1980, Bapat and Rao 1984) *Hevea* (Carron and Enjalric1982)*Mangifera indica* (Litz 1984) *Cocos nucifera* (Branton and Blake 1983).In this way callus induction by apical bud of *Bombax ceiba L*.may be used for further regeneration by in vitro method.

Callus Culture From Apical Bud of *Bombax Ceiba* After 10-12 Days of Culture (Data Are Mean±Se)

S.	Concentrations (µm)	Nature Of Response	Frequency Of Callus
	NAA+ BAP	-	-
1	0.53+0.44	-	-
2	0.53+2.21	C^{+}	98.65+0.6
3	0.53+4.43	C^{+}	87.96+1.2
4	0.53+22.19	C^{+}	55.34+1.1
5	0.53+44.39	C^{+}	73.48+1.4
6	2.68+0.44	C^{+}	100.0+0.0
7	2.68.+2.21	C^{+}	80.00+1.9
8	2.68+4.43	C^{+}	-
9	2.68+22.19	-	42.06+0.0
10	2.68+44.39	C^{+++}	100.0+0.0
11	5.37+0.44	C^{+++}	100.0+0.0
12	5.37+2.21	C^{+++}	73.6 7+8.16
13	5.37+4.43	C^{+++}	58.55+1.8
14	5.37+22.19	C^{+++}	100+0.00
15	5.37+44.39	C^{+++}	100+0.00
16	26.35+0.44	C^{+++}	97.22+2.8
17	26.35+2.21	C^{+++}	73.61+1.4
18	26.35+4.43	C^{+++}	61.11+1.1
19	26.35+22.19	C^{+}	-
20	26.35+44.39	-	77.7+2.7
21	53.70+0.44	C^{++}	72.5.1.4
22	53.70+.2.21	C^{++}	53.7+1.9
23	53.70+4.43	C^{++}	-
24	53.70+22.19	-	-
25	53.70+44.39	-	-

C Callus ++Localised callus - No response
+ scanty Callus +++ profuse callus

Callus induction form Apical bud of *Bombax ceiba* L.(Semul).

Conclusion: The above results emphasizes that callus culture of *Bombax ceiba* L is feasible from apical bud explant. It is suggested that further study of in vitro regeneration should be carried out from the apical but derived callus in order to enhance the propagation efficiency of *Bombax ceibaL* as a high multiplication rate could be achieved further experiment can be carried out to produce secondary metabolite from the apical bud derived of *Bombax ceiba* L

References:-

1. Ammirato,P.V.and Styer,D.J.(1985), Strategies for large scale multiplication of somatic embryo's in suspension culture in: Biotechnology in plant science.Zaittin,M.Day P. and Hollender ,A.(eds) Acad .press New York. PP-161- 178 .
2. Bapat ,V.A. and Rao, P.S. (1984).Regulatory factor for in vitro multiplication of sandalwood tree *Santalum album* l shoot but regeneration and somatic embryo-genesis in hypocotyle cultures Proc. Ind.Acad.Sci.(Plantsci) 93 (I) :19-27
3. Bonga,J.M. and Aderkas,P.V.(1992),.Clonal propagation, In vitro culture of Trees Kluwer Acad. pub. Dordrecht. The Netherlands
4. Branton,R.L., and Blake,J.(1983). Development of organised structure in callus derived from explant of cocosnucifera L. Ann. Bot 52: 673—678
5. Carron,M.P.,and Enjalric,F.(1982). Studies on vegetative micropropagation of *Hevea brasiliensis* by somatic embryogenesis and in vitro microcutting. In : Plant Tissue Culture, fojiwara, A.(ed) Maruzen.Co. Tokoya, PP 111—112.
6. Chatterjee,A.and Pakrashi,S.C.(1994).The treatise on Indian Medicinal Plant Vol.3 publication and information Directorate, New Delhi,PP 36—71.
7. Finer,J.J.(1995). Direct somatic embryogenesis in plant cell tissue and organ culture-Fundal Methods Gamborg,O.I. and Philips,C.G.(eds) Springer —Verlag, BarlinHeidelber.PP 91—102.
8. Cresswell,D.,Boulay.M.and Franclet,A.(1982). Vegetative propagation of Eucalyptus.In Tissue Culture in Forestry.Bonga,J.M. and Durzan,D.J.(eds), Martinus Nijhoff/Dr.W.Junk Publisher, Dordrecht,PP 150—181
9. Ghate ,V.S.,Agte, v.and Vartak,V.D.(1988). Promising economic potential of Semul (*Bombax ceiba* L.)as a Tuber Crop.Ind.J.For11(2):158-159.
10. Jones,O.P.(1983). In vitro propagation of tree crop. In Plant Biotechnology,MantellS.H.and ,Smith.H.(eds), Cambridge Univ.Press PP:139-159.
11. Krikorian,A.D.(1982).Cloning higher Plants form aseptically Cultured tissue and cells.Biol.Rev,57:151-218.
12. Laxmi Sita,G.RaghvaRam,N.V.and Vaidyanathan,C.S.(1980). Triploid plants from endosperm culture of

Sandal Wood by experimental embryogenesis. Plant Sci.Lett. 20:63 -69.

13. Litz,R.E.(1984). In vitro somatic embryogenesis from nuclear cell of monoembryonic *Mangifera indica* L .Hort.Sci.19:1962-1964.

14. Venkatesh,C.S.(1988). Genetic importance of multipurpose tree species. The International Tree Crop.Jour, 5:109-124.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

An Overview of AI Technology in Society

Dalendra Kumar Bhatt*

*Govt. College, Sitamau, Distt. Mandsaur (M.P.) INDIA

Introduction - Today the whole world is running after it, we have highlighted some special aspects in this research article. Artificial intelligence aims to imitate human intelligence. At present, the whole world is going through the transition period of artificial intelligence. In this, we need to explain it in the sense of utility for the society. Whenever any new technology comes, it has to prove itself better in the context of the old one. Artificial intelligence is a Apart from being a new technology, it is also a subject of curiosity.

Keywords: Artificial intelligence (AI), human intelligence, future of Society, AI's era.

The origin of artificial intelligence: Although nothing can be said with certainty about the origin of artificial intelligence, its idea had come before the world since the beginning of the 19th century. The maximum interest of scientists about this was seen in the 1980s, when the computer era had started, from then till the present day, it has remained a part of the most golden discovery of scientists.

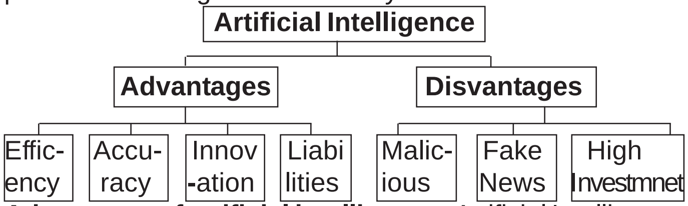

Advantages of artificial intelligence: Artificial Intelligence can bring revolutionary changes in the future of society in filds like medicine, education, energy, driverless cars, smart cities etc.

There are many other benefits of Artificial Intelligence such as it makes human work easier, takes decisions faster, work can be done faster in the industry. It can do everything that a human can do.

The use of artificial intelligence can bring revolutionary changes in many areas like space, healthcare, transportation and communication. This could lead to a world of increased efficiency, productivity and quality of life for many people. As artificial intelligence becomes more powerful, their decision-making abilities improve. Artificial intelligence gives an idea to make in modern society across various fields like healthcare analysis, fraud detection, manufacturing, risk assessment, language translation and vehicles, improve efficiency, accuracy, and traffic management etc. Overall, AI gives the potential to take exact decision and making efficiency and accuracy of modern society.

Disvantages of artificial intelligence: Humans can hold several different contradictory mindsets at one time, whereas the thought processes of machines can only follow a logical chain. They cannot identify emotionally about good and bad at that moment. Artificial Intelligence can do every work quickly which a human cannot do so quickly. For this reason, misuse of Artificial Intelligence can become a threat to the entire humanity. Artificial Intelligence is a technology in which a machine can cause irreparable harm to humans due to it being capable of taking decisions automatically.

With the advent of artificial intelligence, humans can become lazy. If every work is done by machines, then it is natural that human labor will decrease due to the impact of people's ability to work, which is the harbinger of decline for any nation. Apart from being very expensive to create artificial intelligence, it is also very important for the people using it to be proficient in it, otherwise its overall use will not be possible. If society does not have complete control over technology then there are always some concerns in the society. Although the misuse of artificial intelligence poses a threat to the physical security of the society, when it comes to the benefits of artificial intelligence, it can be beneficial whenever there is a large amount of data or information to be analyzed. This can be done easily using this type of technology.

Artificial intelligence can be used for malicious purposes by others, such as: - Making predictions using logical geometry. It can also be used to create fake or distorted news and to control people's thoughts. Additionally, artificial intelligence can take decisions that lead to destruction of the entire universe.

Conclusion: In today's era, where there is always a doubt about the trustworthiness of humans, there can be no doubt about the trustworthiness of artificial intelligence. It has brought revolutionary changes in many areas like space, healthcare, transportation and communication. This could lead to a world of increased efficiency, productivity and quality of life for many people.

Artificial Intelligence is finding many ways to advance

society in health and safety and continues to create new innovations to improve our daily lives. Every situation or option will have some disadvantages, but taken as a whole, there are clearly advantages to artificial intelligence in mitigating or tolerating the disadvantages along with the liabilities. The future of Society will depends on AI expect in the next century years. Society's life and its behaviors will be transformed as AI's bi-lows.

References:-

1. A.Vaio, R. Palladino, R. Hassan, O. Escobar:- Artificial intelligence and business models in the sustainable development goals perspective: A systematic literature review. J. Bus. Res., 121, 283–314(2020).
2. Das, B. & Majumder, M:- Factual open cloze question generation for assessment of learner's knowledge. International Journal of Educational Technology in Higher Education, 14(24) (2017).
3. Davadas, S.D.; Lay, Y.F. :-Factors affecting students' attitude toward mathematics: A structural equation modeling approach. Eurasia J. Math. Sci. Technol. Educ. (2017).
4. N. Soni, E.K. Sharma, N. Singh, A. Kapoor:-Impact of Artificial Intelligence on Businesses: From Research, Innovation, Market Deployment to Future Shifts in Business Models. arXiv, arXiv:1905.02092(2019).
5. Shukla, A.K.; Janmaijaya, M.; Abraham, A.; Muhuri, P.K. Engineering applications of artificial intelligence: A bibliometric analysis of 30 years (1988–2018). Eng. Appl. Artif. Intell., 85, 517–532(2019).
6. S. Chatterjee and K.K Bhattacharjee, "Adoption of artificial intelligence in higher education: A quantitative analysis using structural equation modelling", Education and Information Technologies, vol. 25, no. 5, pp. 3443-3463(2020).

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Offloading Methods in Mobile Cloud Computing

Prof. Syed Asif Ali*

*Vice Principal & HOD (Computers) Prof. Brijmohan Mishra Institute of Medical and Technical Sciences, Burhanpur (M.P.) INDIA

Abstract - Based on user behavior and demand, the computational tasks are first offloaded from mobile users to the mobile edge network and then executed at one or several specific base stations in the mobile edge network. The MEC architecture has the capability to handle a large number of devices that in turn generate high volumes of traffic. In this work, we first provide a holistic overview of MCC/MEC technology that includes the background and evolution of remote computation technologies. We further discuss the challenges and potential future directions for MEC research.Offloading works as the fundamental feature that enables MCC to relieve task load and extend data storage through an accessible cloud resource pool. Several initiatives have drawn attention to delivering MCC-supported energy-oriented offloading as a method to cope with a lately steep increase in the number of rich mobile applications and the enduring limitations of battery technologies. However, MCC offloading relieves only the burden of energy consumption of mobile devices; performance concerns about Cloud resources, in most cases, are not considered when dynamically allocating them for dealing with mobile tasks. The application context of MCC, encompassing urban computing, aggravates the situation with very large-scale scenarios, posing as a challenge for achieving greener solutions in the scope of Cloud resources. Thus, this article gathers and analyzes recent energy-aware offloading protocols and architectures.

Introduction - Cloud Computing is an emerging paradigm which caters to the use of a number of remote servers that are hosted on internet, to store and manipulate data. There is no need to keep huge data and its transactions on a local or personal computer. As per NIST (National Institute of Standards and Technology), Cloud Computing is a model for enabling convenient, on-demand network access to a shared pool of computing resources that can be rapidly provided with minimal management efforts. As the Cloud Computing uses pay as you demand strategy, it is considered to be the most economical way of using the network services. Cloud Computing is described as a distributed system that gives computing services via the TCP/IP. The main benefits of Cloud Computing are on demand self-service, ubiquitous network access, location independent resource pooling and transfer of risks. Certain additional advantages are lower costs, ease of utilization, quality of service and reliability. The problem areas include risk of data confidentiality, complete dependency on internet connection and quite vulnerability to infiltration. However, the Cloud Computing has played a vital role in today's world. There are two types of Cloud Computing models namely Deployment Model and Service Model. The Deployment model consists of Public Cloud, Community Cloud, Private Cloud and Hybrid Cloud. It mainly deals with the provision of internet to a particular number and type of users. On the other side the Service Model takes into account the infrastructure, software, platform and desktop as a service in cloud computing.

Mobile Computing is a paradigm that transmits data, voice and video through a computer or any wireless enabled device. The major components involved are Mobile Communication, Mobile Hardware and Mobile Software. The Mobile communication is the term which is used for seamless and reliable communication. This includes devices such as protocols, services, bandwidth and other portals. The Mobile Hardware includes hardware devices like laptops, mobile phones and palm tops. Mobile Software is the program that runs on the mobile device. It deals with the characteristics of mobile applications. It includes all the features of mobile communication. Mobile Cloud Computing is an integration of cloud computing technology with mobile computing to make mobile devices resource-full in terms of computational power, memory, storage and energy. According to the Mobile Cloud Computing Forum "Mobile Cloud Computing at its simplest form refers to an infrastructure where both the data storage and the data processing happen outside of the mobile device. Mobile cloud applications move the computing power and data storage away from mobile phones and into the cloud, bringing applications and mobile computing to not just smartphone users but a much broader range of mobile

subscribers".

Mobile Cloud Computing centers are accessed via a mobile browser from a remote web server, without the need for installing a client application on the recipient phone. In other words, Mobile Cloud Computing means to run an application for mobile on a remote resource rich server while the mobile device acts like a thin client connecting over to the remote server through a wireless media like 3G, 4G or Wi-Fi. A mobile cloud approach enables developers to build applications designed specifically for mobile users without being restricted by the mobile operating system and the computing power or memory capacity of the smart phone. Some examples of Mobile Cloud Computing are Facebook services, twitter for mobile and mobile weather widgets. With the ever-going usage of Internet, there is a growing trend of disseminating and exchanging information via the Mobile Cloud Computing paradigm.

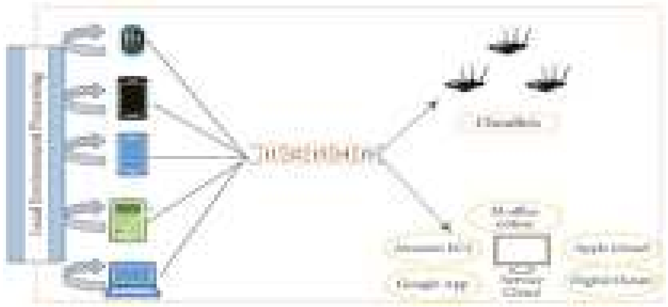

Concepts and background

Cloud computing: CC is a new way of providing computing resources and services. It refers to an on-demand infrastructure that allows users to access computing resources anytime from anywhere. CC offers to users and business three main advantages:

1. Enormous computing resources available on demand,
2. Payment for use as needed and on a short-term basis (storage by the day and release them as needed), and
3. Simplified IT management and maintenance capabilities.

CC provides clients with different applications as services via the Internet. As examples of public CC we can list Windows Azure and Amazon Web Services (AWS). Windows Azure is an open and flexible cloud platform which provides several services to develop, deploy and run web applications and services in cloud data centers. AWS, which is considered as an example of a public computing tool, provides users with two models: infrastructure as a service and software as a service. These services allow the user to use virtualized resources in cloud data centers. Computational clouds implement a variety of service models in order to use them in different computing visions.

Mobile cloud computing:MCC can be seen as a bridge that fills the gap between the limited computing resources of SMDs and processing requirements of intensive applications on SMDs.

The Mobile Cloud Computing Forum defines MCC as follows: "Mobile Cloud Computing at its simplest form refers to an infrastructure where both the data storage and the data processing happen outside of the mobile device. Mobile cloud applications move the computing power and data storage away from mobile phones and into the cloud, bringing applications and mobile computing to not just smartphone users but a much broader range of mobile subscribers".

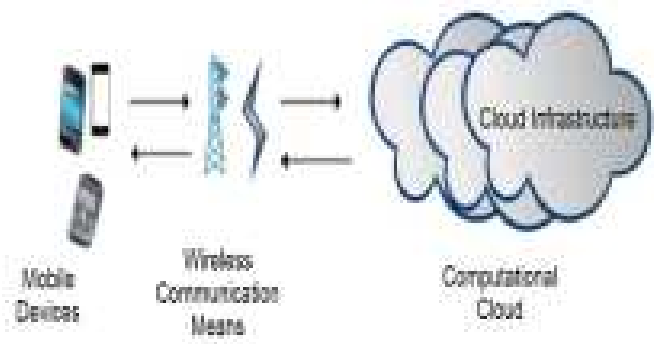

MCC has attracted the attention of business people as a beneficial and useful business solution that minimizes the development and execution costs of mobile applications, allowing mobile users to acquire latest technology conveniently on an on-demand basis.

Objective (s) /need of study:

1. To analyze and implement various existing Computation Offloading approaches in Mobile Cloud Computing.
2. To improve Mobile Computation offloading methods to reduce computational overhead.
3. To evaluate the performance of the proposed strategies in terms of efficiency and context awareness parameters like performance enhancement, local resources access and computational intensity.

Need of the study: The aim of this study is to the Computation Offloading is migrating all the process or a part of the application to the Cloud for execution. Mobile Cloud Computing uses different application development models that support computation offloading. Generally there are two environments where the applications can be held––the smartphone and the cloud. Hence, Mobile computing assisted with cloud computing gives us the benefit to transfer, storing of data and its processing is done at the cloud end. To deploy this advantage, the consumer and enterprise markets are increasingly adopting this mobile cloud approach to provide best services to the customers and end users. It will boost their profits by reducing the development cost incurred in developing mobile applications. The infrastructure-based architecture of MCC is taken into consideration in which the computer infrastructure does not change positions and provides services to mobile users, via Wi-Fi or 3G. These models migrates heavy applications to the cloud through a process module and application that is in the cloud and helps to

execute mobile phone's requests. There are two types of Mobile Cloud Applications which are almost similar in nature.

Conclusion: This paper discusses three main concepts: (1) cloud computing, (2) mobile cloud computing, and (3) computation offloading. More specifically, it presents existing frameworks for computation offloading along with the various techniques used to enhance the capabilities of smartphone devices based on the available cloud resources. The paper investigates the different issues in current offloading frameworks and highlights challenges that still obstruct these frameworks in MCC. Moreover, the paper shows the different approaches that are used by the frameworks to achieve offloading. Some of these approaches use static offloading while others employ dynamic offloading. Even though there exist a variety of approaches, all of them target the same objective which is the improvement of the smartphone device capabilities by saving energy, reducing response time, or minimizing the execution cost.

We notice that current offloading frameworks are still facing some challenges and difficulties. For instance, lack of standard architectures. This shortage leads to more complications while developing and managing a proposed framework. Finally, it is important to come up with a lightweight paradigm or model that will help to overcome the difficulties and minimizing efforts while developing, deploying, and managing an offloading framework.

We believe that exploring other alternatives, such as introducing a middleware based architecture using an optimizing offloading algorithm, could help better the available frameworks and provide more efficient and more flexible solutions to the MCC users

References:-

1. Computation Offloading in Mobile Cloud Computing and Mobile Edge Computing: Survey, Taxonomy, and Open Issues (researchgate.net))
2. Sustainable Offloading in Mobile Cloud Computing: Algorithmic Design and Implementation: ACM Computing Surveys: Vol 52, No 1
3. Almadhor, Ahmad & Alharbi, Abdullah & Alshamrani, Ahmad & Alosaimi, Wael & Alyami, Hashem. (2022). A new offloading method in the green mobile cloud computing based on a hybrid meta-heuristic algorithm. Sustainable Computing: Informatics and Systems. 36. 100812. 10.1016/j.suscom.2022.100812.
4. Thakur, Pawan & Verma, Amandeep. (2015). Process Batch Offloading Method for Mobile-Cloud Computing Platform. Journal of Cases on Information Technology. 17. 1-13. 10.4018/JCIT.2015070101.
5. Mobile cloud computing for computation offloading: Issues and challenges - ScienceDirect

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

समाज में व्यक्ति का असामान्य व्यवहार

श्रीमती कविता आर्य रामाणी*

* पूनमचंद गुप्ता वोकेशनल महाविद्यालय,खंडवा (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – असामान्य का अर्थ है, भिन्न । जब हमें अपने आस-पास कुछ अलग सा घटित होता दिखाई देता है, तब उसे हम असामान्य कह सकते है। यह प्राकृतिक एवं मानव रचित हो सकता है । यह व्यवहार भी हो सकता है, वस्तु भी हो सकती है या परिदृश्य भी। वैसे तो सभी मनुष्यों के व्यवहार में कुछ न कुछ विशेषता और भिन्नता होती है जो एक व्यक्ति को दूसरे से भिन्न बतलाती है, फिर भी जब तक वह विशेषता अति अद्भुत न हो, कोई उससे उद्विग्न नहीं होता, उसकी ओर किसी का विशेष ध्यान नहीं जाता। पर जब किसी व्यक्ति का व्यवहार, ज्ञान, भावना, या क्रिया दूसरे व्यक्तियों से विशेष मात्रा और विशेष प्रकार से भिन्न हो और इतना भिन्न होकि दूसरे लोगों को विचित्र लगे,तब उस क्रिया या व्यवहार को असामान्य या असाधारण कहते हैं। आधुनिक समय में असामान्य व्यवहार पहचान पाना कठिन है और उसे परिभाषित करना कठिन हो सकता है, लेकिन जब ऐसा होता है तो इसे नोटिस करना अक्सर आसान होता है। असामान्य व्यवहार उन कार्यो के लिए एक मनोवैज्ञानिक शब्द है जो किसी विशेष समाज या संस्कृति में मानक माने जाने वाले दायरे से बाहर होते हैं। यह असामान्य व्यवहार परिभाषा कई उद्देश्यों के लिए कार्यात्मक और उपयोगी है। हालाँकि, असामान्य व्यवहार की अधिकांश परिभाषाएँ इस बात को भी ध्यान में रखती हैं कि मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से, मानसिक बीमारी, दर्द और तनाव अक्सर व्यवहार पैटर्न में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। ऐसे मनोरोग जिनमें अनेक प्रकार की मनोविकृतियाँ उनके लक्षणों के रूप में पाई जाती है। इनके होने से व्यक्ति के आचार और व्यवहार में कुछ विचित्रता आ जाती है, पर वह सर्वथा निकम्मा और अयोग्य नहीं हो जाता। इनको साधारण मनोरोग कह सकते हैं। ऐसे किसी रोग में मन में कोई विचार बहुत दृढ़ता के साथ बैठ जाता है और हटाए नहीं हटता। यदा-कदा और अनिवार्य रूप से वह रोगी के मन में आता रहता है। किसी में किसी असामान्य विचित्र और अकारण विशेष भय यदा-कदा और अनिवार्य रूप से अनुभव होता रहता है। जिन वस्तुओं से साधारण मनुष्य नहीं डरते, मानसिक रोगी उनसे भयभीत होता है। कुछ लोग किसी विशेष प्रकार की क्रिया को करने के लिए, जिसकी उनको किसी प्रकार की आवश्यकता नहीं, अपने अंदर से इतने अधिक प्रेरित और बाध्य हो जाते हैं कि उन्हें किए बिना उनको सुकून नहीं आता।

असामान्य व्यवहार की परिभाषा व्यक्तिपरक हो सकती है और सांस्कृतिक प्रभावों पर काफी हद तक निर्भर हो सकती है। कुछ ऐसा जो एक संस्कृति में असामान्य व्यवहार है, वह दूसरों में असामान्य नहीं हो सकता है। समाज भी सदैव परिवर्तनशील है। एक प्रकार का व्यवहार सैकड़ों वर्ष पहले पूर्णत: स्वीकाय रहा होगा जो आज स्वीकाय नहीं है।

शब्द कुंजी – असामान्य व्यवहार, मनोविज्ञान, मानसिक रोग, विकृति, सांवेगिक अस्थिरता, न्यूरोट्रांसमीटर हार्मोन, अल्जाइमर,एंग्जायटी, डिमेंशिया, डायथेसिसमॉडल, सामाजिक-सांस्कृतिक तनाव।

परिकल्पना –प्रकृति ने मनुष्य को अनके गुणों से संवारा है। इन्हीं गुणों में से एक गुण जिज्ञासा का भी है। इस गुण के कारण मनुष्य अपनें तथा दूसरों के बारे में जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करता है। जब व्यक्ति ने अपने तथा दूसरों के व्यवहारों को वातावरण के परिप्रेक्ष्य में समझने की कोशिश की तो मनोविज्ञान का जन्म हुआ। जीवन की विभिन्नअवस्थाओ में उत्पन्न हो सकने वाले असामन्य व्यवहार को हम निम्न बिन्दुओ में बाँट सकते है-

1. असामान्य व्यवहार किस प्रकार का हो सकता है,
2. असामान्य व्यवहार को किन-किन भागो में बांटा जा सकता है,
3. बच्चों,वयस्कों एवं वृद्धों में असामन्य व्यवहार के लक्षण और उनका निदान,
4. भारत एवं अन्य देशो में बढ़ता असामन्य व्यवहार,
5. विभिन्न प्रकार के असामन्य व्यवहार का तुलनात्मक अध्ययन।

असामान्य मनोविज्ञान के कारक-विश्व स्वास्थ्य संगठन (2022) के अनुसार, एक मनोवैज्ञानिक विकार किसी व्यक्ति के संज्ञान, भावनात्मक विनियमन या व्यवहार में नैदानिक रूप से महत्वपूर्ण गड़बड़ी है। असामान्य व्यवहार शब्द को परिभाषित करना कठिन हो सकता है। हमारे पास असामान्य व्यवहार का वर्णन करने के कई तरीके हैं, जैसे पागलपन, या भावनात्मक रूप से परेशान इत्यादि। कुछ कारक है जो मनुष्य के व्यवहार को प्रभावित करते है, जिसके कारण वह असामान्य व्यवहार करने लगता है। असामान्य व्यवहार मुख्यत: तीन ज्ञात कारकों के कारण होता है।

जैविक कारक-जीन में हमारे व्यक्तित्व के 90% गुण शामिल होते हैं, और हम उन्हें अपने माता-पिता से प्राप्त करते हैं, या हम कह सकते हैं कि जीन के कुछ सेट एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक प्रसारित होते रहते हैं। असामान्य व्यवहार के लक्षण आनुवंशिक भी हो सकते हैं और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानांतरित हो सकते हैं। सिजोफ्रेनिया असामान्य व्यवहार का एक उदाहरण है।यह किसी व्यक्ति में जीन का एक विशिष्ट पैटर्न है, जो उन्हें दूसरों की तुलना में उल्लेखित बीमारी के प्रति अधिक संवेदनशील बनाता है। जीन का यह पैटर्न आनुवंशिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानान्तरित होता है। जीन के अलावा, अन्य जैविक कारक जो किसी के व्यवहार की असामान्यता में कुशलता से योगदान करते है, वे न्यूरोट्रांसमीटर हार्मोन हैं। जीएबीए, नॉरपेनेफ्रिन इत्यादि जैसे न्यूरोट्रांसमीटर में असंतुलन, असामान्य तंत्रिका प्लास्टिसिटी या मस्तिष्क की शिथिलता का कारण बनता

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

है। डोपामाइन सेरोटोनिन जैसे हार्मोन का असंतुलन, मूड और चिंता विकार का कारण बन सकता है जो किसी व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकता है।

मनोवैज्ञानिक कारक– मनोवैज्ञानिक कारक मुख्य रूप से इस बात में हस्तक्षेप करते हैं कि कोई व्यक्ति बाहरी और आंतरिक तनाव से कैसे निपटता है। उनके व्यवहार का प्रतिबिंब दर्शाता है कि वे अपनी भावनाओं या अतार्किक भय को कितने बेहतर तरिके से नियंत्रित कर सकते हैं और उनके जीवन के अनुभवों और सीखों को कितना प्रभावितकर सकते हैं। सुपरईगो का असंगत विकास या यहां तक कि सुपरईगो की कमी धीरे–धीरे तर्कहीन और असामान्य व्यवहार में विकसित हो सकती है। हीन या श्रेष्ठ भावना किसी व्यक्ति के अवचेतन एवं चेतन मन पर हमला कर सकती है, जिससे बहुत ही असामान्य व्यवहार और विचार उत्पन्न होते हैं, जो समाज के मानदंडों के विपरीत हैं। इस प्रकार का व्यवहार पूरी तरह से असामान्य नहीं है किंतु इसके निदान की आवश्यकता हो सकती है।

सामाजिकएवंसांस्कृतिक कारक–सामाजिक–सांस्कृतिक शब्द अलग–अलग दायरे वाली विभिन्न संस्थाओं को संदर्भित करता है, उदाहरण के लिए, परिवार और दोस्त या पड़ोस या यहां तक कि किसी विशेष देश की नीतियां। तुलना और भेदभाव, असामान्य व्यवहार के लिए सामाजिक–सांस्कृतिक कारकों को प्रभावित करने वाले शीर्ष कारक बने हुए हैं। आईक्यू या धन या यहां तक कि दिखावे के बीच तुलना के परिणामस्वरूप मनोवैज्ञानिक विकार हो सकते हैं। व्यक्ति अपने अस्तित्व के प्रति अधिक सचेत हो जाता है जिससे विचलित व्यवहार उत्पन्न हो सकता है। लिंग, जाति, राष्ट्रीयता, धर्म, वैवाहिक स्थिति, रंग आदि के आधार पर भेदभाव किसी व्यक्ति की मानसिक स्थिति को प्रभावित कर सकता है, जिससे वे मानसिक रूप से बाधित हो सकते हैं या उनमें अतार्किक भय भी विकसित हो सकता है। दुर्व्यवहार एक मानसिक घाव भी छोड़ सकता है और किसी व्यक्ति में असामान्य व्यवहार विकसित कर सकता है। विषाक्त पालन–पोषण, जहां माता–पिता अपने बच्चों के साथ भेदभाव करते हैं या उनकी तुलना करते हैं या उनके साथ शारीरिक या मौखिक रूप से दुर्व्यवहार करते हैं, उन बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य परगहरा प्रभावडलते हैं। बच्चों में असामान्य व्यवहार दिखाई देने लगता है, जैसे पढ़ाई में रुचि कम होना, विश्वास की समस्या पैदा होना और यहां तक कि अपनी राय बताने से डरना, जिससे उनके मानसिक विकास पर प्रभाव पड़ने लगता है।

असामान्य मनोविज्ञान की श्रेणियां :

बालको में असामान्य व्यवहार– बालको में व्यवहार संबंधित समस्या होना, माता पिता और शिक्षक दोनों के लिए चिंता का विषय है। हो सकता है व्यवहार सम्बन्धी समस्या के कारण बालक को, अन्य बालक अपने मध्य स्वीकार या पसंद ना करे।बालको में असामान्य व्यवहार की समस्या उनके आने वाले कल को अंधकार में डाल सकती है। यदि उनके व्यवहार में नकारात्मकता आ जाए या वे गलत व्यवहार करें तो इसके कारण उनके व्यक्तित्व पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। असामान्य व्यवहार के पीछे कई बार बच्चों में छिपा तनाव होता है, जिसके कारण बच्चे जिद्दी, हट्टी स्वभाव के हो जाते हैं और उनके व्यवहार में नकारात्मकता आने लगती है।

सभी बालक समय–समय पर शरारती, उद्दंड और आवेगी हो सकते हैं, जो बिल्कुल सामान्य है। हालाँकि, कुछ बालको में बेहद कठिन और चुनौतीपूर्ण व्यवहार होते हैं, जो उनकी उम्र के मानक से बाहर होते हैं। ये समस्याएँ, बालक के जीवन में अस्थायी तनाव के परिणामस्वरूप हो सकती हैं, या वे अधिक स्थायी विकारों का प्रतिनिधित्व कर सकती हैं। जिसके कारण बालक असामान्य व्यवहार करने लगता है। लड़कियों की तुलना में लड़कों में असामान्य व्यवहार संबंधी विकारों से पीड़ित होने की संभावना अधिक होती है। बालको के असामान्य व्यवहार और भावनात्मक विकारों का समाज, परिवार, विद्यालय, उसकी शिक्षा, मनोसामाजिक कार्यप्रणाली एवं अन्य गतिविधियों पर प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

उपचार के तौर पर माता–पिता, प्रबंधन प्रशिक्षण, संज्ञानात्मक व्यवहार, दवा और संबंधित समस्याओं का समाधान, मनोचिकित्सक से परामर्श आदि कर सकते हैं।

बच्चों में असामान्य व्यवहार के लक्षण:

1. बच्चों का झूठ बोलना, चोरी करना, गलत शब्दों का प्रयोग,
2. बड़ों को धमकी देना, जबान चलाना,
3. पालतू जानवरों को नुकसान पहुंचाना,
4. गलत चीज जैसे– धूम्रपान, शराब आदि चीजों पर आकर्षित होना,
5. पढ़ाई में मन ना लगना, महंगी चीजों को तोड़ना,
6. हर वक्त आलस में रहना और बहाने बनाना।

वयस्कों में असामान्य व्यवहार– वयस्क व्यक्तियों में असामान्य व्यवहार में मनोवैज्ञानिक, भावनात्मक और व्यवहारिक गड़बड़ी की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल होती है, जो दैनिक कामकाज और समग्र कार्य प्रणाली पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है, जिनमें मनोवैज्ञानिक विकार, भावनात्मक विचलन और क्रूरता पूर्ण तंत्र शामिल हैं, लेकिन इन्हीं तक सीमित नहीं हैं। ऐसी चुनौतियों का सामना करने वाले व्यक्तियों के लिए प्रभावी हस्तक्षेप और सहायता प्रदान करने के लिए मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञ, शोधकर्ताओं और बड़े पैमाने पर समाज के लिए असामान्य व्यवहार को समझना महत्वपूर्ण होता है।

वयस्कों में असामान्य व्यवहार आनुवंशिक, जैविक, मनोवैज्ञानिक और पर्यावरणीय कारकों की जटिल परस्पर क्रिया से उत्पन्न हो सकता है। आनुवंशिक प्रवृत्तियाँ, न्यूरोबायोलॉजिकल असामान्यताएं, बचपन के शुरुआती अनुभव, आघात, मादक द्रव्यों का सेवन और सामाजिक–सांस्कृतिक प्रभाव सभी असामान्य व्यवहार के विकास और अभिव्यक्ति में योगदान करते हैं।

वयस्क व्यक्तियों के लक्षणों में मूड में बदलाव, मतिभ्रम, अव्यवस्थित सोच, सामाजिक अलगाव, आत्म–नुकसान व्यवहार, मादक द्रव्यों का दुरुपयोग और बिगड़ा हुआ पारस्परिक संबंध शामिल हो सकते हैं, लेकिन इन्हीं तक सीमित नहीं हैं। ये अभिव्यक्तियाँ अक्सर दैनिक कामकाज और जीवन की गुणवत्ता परनकारात्मकप्रभावडालती हैं।

असामान्य व्यवहार के लिए एक समग्र दृष्टिकोण में हस्तक्षेप और उपचार शामिल है जो जैविक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और पर्यावरणीय कारकों के द्वारा संभव है।असामान्य व्यवहार के लक्षणों को प्रबंधित करने और कम करने के लिए उपयोग की जाने वाली रणनीतियों में मनोचिकित्सा, दवा प्रबंधन, संज्ञानात्मक–व्यवहार हस्तक्षेप, माइंडफुलनेस तकनीक, योगा और ध्यान, सामाजिक सहायता नेटवर्क और जीवनशैली में संशोधन शामिल हैं। परिणामों में सुधार और रिकवरी को बढ़ावा देने के लिए प्रारंभिक हस्तक्षेप और व्यापक उपचार योजनाएँ महत्वपूर्ण हैं।

वयस्कों में असामान्य व्यवहार के लक्षण :

1. **समाज विरोधी व्यवहार–** असामान्य व्यवहार समाज विरोधी होता है। असामान्य व्यवहार सामान्यतया सामाजिक रूप से स्वीकृत नियमों, मानकों, मूल्यों एवं प्रत्याशाओं के प्रतिकूल होता है।

2. **परिस्थिति के प्रतिकूल व्यवहार–**असामान्य व्यवहार का वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं होता है अर्थात पीड़ित व्यक्ति उसकी मनोस्थिति के अनुसार बात या व्यवहार करता है।

3. **मानसिक असन्तुलन–** असामान्य व्यवहार करने वाले व्यक्ति मानसिक रूप से असन्तुलित होते हैं। असामान्य लोगों के व्यक्तित्व के ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक पक्षों के बीच कोई समन्वय या सन्तुलन नहीं रहता है। इसी मानसिक असन्तुलन के कारण व्यक्ति के विचारों में अस्थिरता व असंगतता दिखाई पड़ती है।

4. **सूझ की कमी–** असामान्य व्यक्ति के व्यवहार में सूझ की काफी कमी होती है। उसे कहाँ, कैसे व क्या व्यवहार करना चाहिए, इसकी समझ नहीं रहती है। इस प्रकार वह उचित व अनुचित की परख करने में असमर्थ पाया जाता है।

5. **निरर्थक व्यवहार–** असामान्य व्यक्ति के व्यवहार में नियमितता या प्रासंगिकता का अभाव होता है। इस प्रकार के व्यक्ति घण्टों धूप में घूमते रहते हैं तथा एक ही पैर पर खड़े रहते हैं, इत्यादि। इस प्रकार उसके व्यवहार में विचित्रता की विशेषता परिलक्षित होती रहती है।

6. **अपर्याप्त समायोजन–** असामान्य व्यक्तियों के व्यवहार में समायोजन की अपर्याप्तता पायी जाती है। इस प्रकार के व्यक्ति का व्यवहार 'अनभिज्ञयोजित' स्वरूप का होता है। सांवेगिक अस्थिरता (Emotional instability)के कारण इनकी मानसिक स्थिति निरन्तर बदलती रहती है। जिससे इसकी सामाजिक एवं घरेलू समायोजन शक्तिक्षीणहोती जाती है।

वृध्दों में असामान्य व्यवहार– वृद्ध वयस्कों में असामान्य व्यवहार विभिन्न मानसिक और न्यूरोलॉजिक विकारों से उत्पन्न हो सकता है, जो उनकी आयु और जीवन संघर्ष की चुनौतियों के कारण होता है। वृद्ध वयस्कों में असामान्य व्यवहार उनके विचारों, भावनाओं और कार्यों के तरीके को संदर्भित करता है जो उनके आयु वर्ग के व्यक्तियों से कुछ हद तक या बहुतायत भिन्न होते हैं। यह ध्यान देने की बात है कि उम्र बढ़ना स्वयं असामान्य व्यवहार का पर्याय नहीं है, हालाँकि, कुछ कारक जैसे मानसिक कमजोरी, शारीरिक स्वास्थ्य, और मनोसामाजिक परिवर्तन वृद्ध व्यक्तियों के असामान्य व्यवहार में योगदान कर सकते हैं।

वृद्ध वयस्कों में असामान्य व्यवहार अक्सर संज्ञानात्मक विकारों जैसे अल्जाइमर रोग, मनोभ्रंश और न्यूरो सिस्टम की असामान्यता आदि से जुड़ा होता है, अवसाद और चिंता जैसे मानसिक विकारों का अनुभव होता है, जो लगातार उदासी, सामाजिक अलगाव, बेचैनी या अत्यधिक चिंता, यौन रूप से अनुचित व्यवहार करना या मौखिक विस्फोट जैसे असामान्य व्यवहार के रूप में प्रकट हो सकता है। ये विकार पुरानी बीमारी, स्वतंत्रता की कमी, या सामाजिक अलगाव जैसे कारकों से बढ़ सकते हैं। प्रलाप करना मानसिक स्थिति में अचानक और गंभीर परिवर्तन है जो उनमे भ्रम, मतिभ्रम, उत्तोजना, ध्यान और जागरूकता में विचलन पैदा करता है। यह अक्सर अंतर्निहित चिकित्सा स्थितियों, दवा के दुष्प्रभावों या संक्रमण से उत्पन्न होता है और इसके लिए तत्काल चिकित्सीय परामर्श लेने की आवश्यकता होती है। मादक द्रव्यों के सेवन, नशा, आत्म-देखभाल की उपेक्षा, या जोखिम भरे व्यवहार जैसे असामान्य व्यवहार हो सकते हैं। इनमें अनिद्रा, दिन में अत्यधिक नींद आना या नींद में चलना, इत्यादिहो सकता है और यह मनोरोग स्थितियों से जुड़ा हो सकता है।

मानव जीवन की विभिन्न अवस्थाओ में असामान्य व्यवहार कारण एवं निदान : जीवन के विभिन्न आयु वर्गों में उत्पन्न असामान्य व्यवहार कई कारणों से दृष्टिगत होता है।हमारे आस-पास अनेक ऐसे लोग रहते जो इस प्रकार की असामान्यता प्रदर्शित करते हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से कई तरीके खोजे गए है, जिनसे असामान्यता को कम या खत्म किया जा सकता है।

1. **बालको के असामन्य व्यवहार कारण एवं निदान**

जन्मांग विकार–कुछ बालकों के असामान्य व्यवहार का मूल कारण जन्मांग विकार हो सकता है, जैसे कि डाउन सिंड्रोम, ऑटिज्म, अटेंशन डिफिसिट हाइपरएक्टिविटी डिसआर्डर (ADHD), एटिचिसन सिंड्रोम, आदि।

पारिवारिक परिस्थितियाँ– परिवार में संघर्ष, सामाजिक विरासत, या सामाजिक अलगाव के कारण बालकों में व्यवहार की समस्याएं उत्पन्न हो सकती है।

मानसिक समस्याएं– डिप्रेशन, अटेंशन डिफिसिट डिसआर्डर, ओसीडी, अवसाद, या अन्य मानसिक समस्याएं भी बालकों के असामान्य व्यवहार के कारण हो सकती है।

भौतिक समस्याएं– दाँतों की समस्याएं, विटामिन या पोषण की कमी, या अन्य भौतिक समस्याएं भी असामान्य व्यवहार के कारण हो सकती है।

बालकों में असामान्य व्यवहार के उपचार में सही निदान और सहायक चिकित्सा की मत्वपूर्ण भूमिका होती है। कुछ उपचार, तकनीकों और समाधानों की संक्षिप्त जानकारी निम्न है –

चिकित्सीय निदान– बच्चे को सही निदान के लिए एक मानसिक स्वास्थ्य चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिए। यह विशेषज्ञ बच्चे की समस्या का निदान करने में सहायता कर सकते है।

बालको से संवाद– असामान्य व्यवहार केनिदानहेतु बच्चे के साथ बातचीत करना, उनके विचारों, भावनाओं और समस्याओं को समझना और उनका समाधानकरना महत्वपूर्ण है।

परिवार की सहायता–बालक के समस्या को समझने और समर्थन प्रदान करने में परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पारिवारिक संपर्क और समर्थन असामान्य व्यवहार का उपचारकरने में सहायता कर सकते हैं।

परामर्श चिकित्सा– इसमें परिवारिक और व्यक्तिगत सहायता के साथ परामर्श चिकित्सा शामिल होती है। इसमें विशेषज्ञों द्वारा समाधान तकनीकों का उपयोग किया जाता है।

दवाओं की सहायता– कई मामलों में, दवाइयों की सहायता ली जा सकती है, विशेषकर यदि बालक को मानसिक समस्याओं से पीड़ित होने का संकेत है। यह दवाएं मानसिक रोग विशेषज्ञ द्वारा निर्धारित की जाती हैं।

विशेष शैली और शिक्षा– कुछ बालकों को विशेष शैली और शिक्षा के उपायों की आवश्यकता हो सकती है। इसमें संसाधनों की उपलब्धता सहायक शिक्षकों का समर्थन, और अनुकूल परिस्थितियों द्वारा सहायता कर सकते हैं।

2. **वयस्कों के असामन्य व्यवहार कारण एवं निदान–** वयस्कों में असामान्य व्यवहार के कारण और निदान, उनकी जीवनशैली, स्वास्थ्य स्तर, और मानसिक स्वास्थ्य के साथ संबंधित हो सकते हैं। इस वर्ग में कई प्रकार के विकार हो सकते हैं, जैसे कि डिप्रेशन, अभिव्यक्ति असमर्थता,

उत्साहहीनता, उत्तोजना, और अत्यधिक चिंताआदि। वयस्कों में असामान्य व्यवहार के बहुत से कारणो में विभिन्न कारक सम्मिलित हो सकते हैं। ये कारण निम्नलिखित है–

मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य समस्याएं– डिप्रेशन, अभिव्यक्ति असमर्थता, या अबाधित विचलन एवं चिकित्सा समस्याएं जैसे: ब्रेन इंजरी, या अन्य न्यूरोलॉजिक विकार भी असामान्य व्यवहार का कारण बन सकते हैं।

सामाजिक और परिवारिक परिस्थितियाँ– परिवार में संघर्ष, सामाजिक अलगाव, या स्वार्थी व्यवहार के कारण भी व्यक्ति में असामान्य व्यवहार दिख सकता है।

मानसिक और भावनात्मक तनाव– भावनात्मक और मानसिक तनाव, असमंजस, या अनियंत्रित भावनाएं भी असामान्य व्यवहार का कारण बन सकती हैं।

असामान्य व्यवहार का निदान उन विकारों का पता लगाने में मदद करता है जो इसे उत्पन्न कर सकते हैं। निदान में शामिल होने वाले तत्व निम्नलिखित हो सकते हैं–

मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञ की सलाह– असामान्य व्यवहार का सही निदान करने के लिए मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञ की सलाह लेना महत्वपूर्ण है।

जांच एवं चिकित्सा उपचार– शारीरिक और मानसिक जांच करने से व्यक्ति के असामान्य व्यवहार के पीछे छिपे कारण का पता लगाया जा सकता हैतथाविशेषज्ञ द्वारा परामर्श और चिकित्सा उपचार कीसहायता से असामान्य व्यवहार का निदान कर सकते है।

परिवार और सामाजिक समर्थन– असामान्य व्यवहार के सही निदान और उपचार करने में परिवार और सामाजिक समर्थन भी व्यक्ति के लिए सहायक हो सकता है।

3. वृद्धो के असामन्य व्यवहार कारण एवं निदान– वृद्धावस्था में असामान्य व्यवहार कई कारणों से उत्पन्न हो सकते है, जो मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के संबंधित में होते हैं। ये करण निम्नलिखित है–

मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य समस्याएं– वृद्ध व्यक्तियो में डिप्रेशन, एंग्जायटी, डिमेंशिया, या अन्य मानसिक स्वास्थ्य संबंधित समस्याएं हो सकती हैं तथा इन्हें शारीरिक स्वास्थ्य संबंधित समस्याएं जैसे कि अल्जाइमर, पार्किंसन रोग, डायबिटीज, या किसी अन्य बीमारी का सामना करना पड़ सकता है, जो उनके व्यवहार में परिवर्तन ला सकती हैं।

सामाजिक परिवेश– कुछ वृद्ध व्यक्तियों को सामाजिक या परिवारिक संबंधों में समस्याएं हो सकती हैं, जो उनके व्यवहार को प्रभावित कर सकती हैं। उदाहरण के लिए, अकेले रहना, परिवार के सदस्यों की कमी, या सामाजिक संबंधों में टकराव इसमें शामिल हो सकते हैं। ये परिस्थितियाँ इनके आत्मविश्वास, मनोबल, और शारीरिक स्वास्थ्य की स्थिति उनके व्यवहार को बदल सकती हैं। यदि कोई व्यक्ति अपनी स्थिति से असंतुष्ट है या स्वास्थ्य संबंधित समस्या से जूझ रहा है तो यह उनके व्यवहार को प्रभावित कर सकता है।

वृद्ध व्यक्तियों के असामान्य व्यवहार के पीछे एक या एक से अधिक कारणों का होना संभव है। सही देखभाल, समर्थन और संबंधों में सम्मान इन मामलों में सहायता कर सकते है।

वृद्धों के असामान्य व्यवहार का उपचार करने में विशेषज्ञता और समर्थन की आवश्यकता होती है। इस तरह के व्यवहार को समझने और उसका समाधान ढूंढने के लिए कुछ कदम निम्नलिखित हो सकते हैं–

मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य का जांच– असामान्य व्यवहार के पीछे डिप्रेशन, एंग्जायटी, डिमेंशिया, या अन्य मानसिक समस्याएं हो सकती हैं। इसमे मानसिक स्वास्थ्य की जाचं एवं प्रोफेशनल से परामर्श लेना महत्वपूर्ण होता है। इसके अतिरिक्त व्यवहार में परिवर्तन का कारण शारीरिक समस्याएं भी हो सकती हैं। उपचार में शारीरिक स्वास्थ्य का ध्यान रखना, उचित आहार, व्यायाम, और दवाओं का सही उपयोग समाहित हो सकता है।

सामाजिक एवं संवेदात्मक समर्थन– वृद्ध व्यक्ति को सामाजिक समर्थन की आवश्यकता हो सकती है, जैसे: परिवार या समुदाय के सदस्यों का समर्थन। साथ ही, सामाजिक कार्यक्रमों और गतिविधियों में भाग लेने का मनोबल बढ़ाने में सहायता मिल सकती है एवं मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञ, वृद्धाश्रम, और समाज सेवा संगठनों का संवेदात्मक समर्थन महत्वपूर्ण होता है।

चिकित्सा उपचार– कुछ असामान्य व्यवहार के लिए चिकित्सा उपचार भी उपलब्ध हो सकते हैं। उचित दवाओं का सही उपयोग करने से व्यक्ति की स्थिति में सुधार हो सकता है।

असामान्य व्यवहार का उपचार व्यक्ति की स्थिति, समस्या का प्रकार, और उसके पीछे कारणों पर निर्भर करता है। सही उपचार और समर्थन से, व्यक्ति की जीवन गुणवत्ता में सुधार हो सकता है और वह स्वस्थ और समृद्ध जीवन व्यतीत कर सकता है।

भारत देश में व्यक्ति के असामान्य व्यवहार की स्थिति – भारत देश में व्यक्ति के असामान्य व्यवहार की स्थिति पर चर्चा एक व्यापक एवं महत्वपूर्ण विषय है। भारत की सांस्कृतिक, सामाजिक, और आर्थिक परिस्थितियों में असामान्य व्यवहार के कारण, प्रकार, और उपचार में भिन्नताएं हो सकती हैं। यहां हम कुछ बिन्दुओ के माध्यम से भारत देश में व्यक्ति के असामान्य व्यवहार की स्थिति पर चर्चा करेंगे–

1. सांस्कृतिक विविधता– भारतीय समाज सांस्कृतिक विविधताओ का देश है, जिसमें विभिन्न भाषा, धर्म, और स्थानीय समुदाय सम्मिलित हैं। व्यक्ति के असामान्य व्यवहार को समझने में सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का महत्वपूर्ण योगदान होता है। भारतीय समाज में धार्मिक प्रक्रियाएँ असामान्य व्यवहार के पीछे का कारण बन सकती हैं। कई बार देखा गया है कि कई लोग बाध्यतावश संस्कारो का पालन करते है, जो वे व्यक्तिगत रूप से नहीं करना चाहते। प्राय: देखा गया है की यह भी असामान्य व्यवहार का कारण बनते है। इसी क्रम में खानपान, पहनावा, बोलचाल, व्यक्तित्व भी सम्मिलित हो सकता है, जिनका पालन करने के लिये व्यक्ति को बाध्य किया जाता है परिणामस्वरूप व्यक्ति असामान्य व्यवहार प्रकट करता है।

2 मानसिक स्वास्थ्य सेवाएं–भारत में मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता और पहुंच का स्तर विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न होता है। कुछ क्षेत्रों में इसकी कमी हो सकती है जिससे असामान्य व्यवहार का समय पर पता नहीं चल पाता है। भारत में वृद्धों के लिए मानसिक स्वास्थ्य सेवाएं और असामान्य व्यवहार के लिए उपचार की उपलब्धता कम हो सकती है। सामान्य व्यक्ति द्वारा एक ही दवा का चिकित्सक के बिना परामर्श लगातार सेवन करते रहना, दवाइयों के साइड इफेक्ट, गलत चिकित्सीय परामर्श, स्वास्थ्य के लिए नकारात्मत सोच से पीड़ित व्यक्ति भी असामान्य व्यवहार व्यक्त करता है। उत्तार अमेरिका और यूरोपीय देशों में व्यक्ति को असामान्य व्यवहार

के लिए तत्काल चिकित्सा सेवाएं और मानसिक स्वास्थ्य संबंधित समर्थन मिल सकता है। किन्तु भारत में यह सुविधाए तत्काल रूप से उपलब्ध नहीं हो पाती है। वर्तमान समय में इस क्षेत्र में कई प्रयास किये जारहे है।

3 **सामाजिक और पारिवारिक समर्थन–**भारत में पारिवारिक समर्थन की परंपरा हैं। असामान्य व्यवहार के मामले में परिवार का समर्थन और सहायता महत्वपूर्ण होती है। भारतीय समाज में परंपरागत सांस्कृतिक मान्यताओं और परिवार के महत्व की वजह से वृद्धों के असामान्य व्यवहार के पीछे विभिन्न कारण हो सकते हैं। भारत में बुजिर्गो को परिवार का वट वृक्ष कहा जाता है इसलिए धार्मिक और सामाजिक संबंधों की दृष्टि से उन्हें सम्मान देने का परंपरा चलती आ रही है। भारत में परिवार और समुदाय की समर्थन संरचना मजबूत होती है, जो असामान्य व्यवहार के समाधान में सहायता करती है। भारत में असामान्य व्यवहार में सामाजिक संरचनाओं का महत्व बढ़ जाता है।

4 **स्वास्थ्य नीतियां और कानून–**भारत में स्वास्थ्य नीतियों और कानूनों में कई बार अंतर्निहितता और विपरीतता हो सकती है, जिससे मानसिक स्वास्थ्य के मामलों को समझना और उनका समाधान करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है।वर्तमान समय में न्यूरोलॉजिकल अध्ययन और उपचार की विकसित तकनीकें असामान्य व्यवहार को समझने और उसका समाधान करने में सहायता कर रही हैं। डायथेसिस एक ऐसामॉडल है, जो किसी व्यक्ति की तनाव प्रतिक्रिया के साथ परस्पर क्रिया करता है। यह मॉडल बताता है कि कैसे उच्च तनाव या कम तनाव से निपटने की क्षमता वाला व्यक्ति असामान्य व्यवहार जैसे विकारों से ग्रस्त होता है। जब कारकों तक पहुंच हो जाती है, तो चिकित्साद्धारा उपचारआसान हो जाता है।

उपसंहार– असामान्य व्यवहार एक गंभीर समस्या है, जो समाज में व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। यह न केवल उस व्यक्ति के लिए परेशानी उत्पन्न करती है, बल्कि उसके परिवार और समाज के लिए भी एक चुनौती है। असामान्य व्यवहार के पीछे कई कारण हो सकते हैं, जैसे मानसिक रोग, तनाव, या समाजिक परिस्थितियों का प्रभाव। असामान्य व्यवहार को नियंत्रित करने और समझने के लिए युगों से ऐतिहासिक रूप से उपयोग किए जाने वाले तीन मुख्य दृष्टिकोण जैविक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक परंपराएं हैं। बीमारी का जैविक–मनोवैज्ञानिक–सामाजिक मॉडल आमतौर पर इस बात पर ध्यान केंद्रित करता है कि असामान्य व्यवहार का वास्तविक कारण क्या है, क्या यह जैविक है, जिसका कारण जीन हो सकते है या जीवनशैली और सामाजिक–सांस्कृतिक तनाव के कारण हार्मोनल असंतुलन है। इसे समझने और समाधान करने के लिए,संवेदनशीलता और समझ के साथ हमें उनकी स्थिति को समझना चाहिए, समाज में जागरूकताएवं मानसिक स्वास्थ्य की सहायता के लिए विभिन्न संसाधनों को प्राथमिकता देनी चाहिए, उन्हें समाज में सम्मान और स्थान देने का प्रयास करना चाहिए, और यदि आवश्यक हो तो सहायता और समर्थन प्रदान करना चाहिए। उन्हें सामाजिक संगठनों और पेशेवर सहायता के स्रोतों के संपर्क में लाना भी सहायक हो सकता है, जिससे उनके व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन देखने को मिल सकते है।इस प्रकार, हम समाज में स्थिरता, समर्थन, और सम्मान का वातावरण निर्मित हो सकता हैं, जो सभी के लिए स्वस्थ और सकारात्मक जीवन की दिशा में महत्वपूर्ण है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1 Behavioural and emotional disorders in childhood: A brief overview for paediatricians- World journal of clinical pediatrics- 2018 Feb 8;7(1):9.
2 Abnormal Psychology: The Science and Treatment of Psychological Disorders, Ann M. Kring, Sheri L. Johnson(January 30, 2015).
3 असामान्य मनोविज्ञान,डॉ. रीना चावला, Green Leaf Publication (1 January 2016).
4 National Institute of Mental Health.(n.d.) Mental health information. Retrieved from https://www.nimh.nih.gov/health/index.shtml
5 Abnormal Psychology - Ronald J. Comer (2019)
6 World Health Organization-(2018). Mental disorders Retrieved from https://www.who.int/mental_health/management/en/
7 Indian Mental Healthcare Act,2017.
8 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' द्धारा प्रकाशित रिपोर्ट "World Health Report"
9 Abnormal Psychology,Ronald J.Comer. (1 March 2009)

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

An Audit of Integrated Child Development Services Program (A Study of Salumbar Project)

Manish Bansal*

*B. Com, M. Com (ABST, Bus Adm., BBE), CS executive, MBA, CA foundation, Sector 11, Hiran Magri, Udaipur (Raj.) INDIA

Introduction - Integrated Child Development Services is the only national program that addresses the needs of children under 6 years of age. It provides facilities like supplementary nutrition, health care and pre-school education to young children in an integrated manner. The health and nutritional needs of children cannot be met apart from their mother, that is why adolescent girls, pregnant women and lactating mothers have also been included in the programme.

Integrated Child Development Services provides its services through a vast network of Anganwadi centres. Anganwadi is actually a courtyard-based center which is run by an Anganwadi worker who receives normal honorarium and is assisted by a part-time assistant. Each Anganwadi has to reach a population of about 1000 (about 200 families). Local Anganwadi is the foundation stone of the framework of integrated child development services.

In the presented research article, the expenditure incurred by the government on supplementary nutrition to the beneficiaries of 20 centers associated with the project implemented in Salumber Panchayat Samiti of Salumber district under Integrated Child Development Services has been studied in the context of the financial year 2023-24.

Services Provided By Anganwadi Center

Immunization: Financial provisions and physical targets are not kept by the department for this service. Vaccination is done by medical and health department personnel at Anganwadi centres. Vaccines are very expensive and the government has to spend a lot of money in purchasing them, maintaining them and transporting them etc. But all vaccination services are provided free of cost to children and pregnant women in government health centers and hospitals.

Health check up: Financial provisions and physical targets are not kept by the department for this service also. On this day, growth monitoring table is maintained by taking the weight of severely malnourished and malnourished children. The health of children is checked by health workers. Pre- and post-natal care of women and health check-up of children are done by health workers and medicines for treatment of diseases are also distributed at the centre. The beneficiaries will be provided with iron/folic acid tablets, Vitamin A supplements and ORS. packets are also distributed. Necessary medicines have also been distributed to sick children and mothers from the medical kits available at Anganwadi centers and through the Health Department.

Health and Nutrition Education: Financial provisions and physical targets are not kept by the department for this service also.

Preschool education: Financial provisions are not made by the department for this service also. Out of the six services of Integrated Child Development Services, Preschool education is an important service, which is provided at Anganwadi centers to children aged 3 to 6 years. Under this, activities related to physical, mental, creative, emotional, linguistic and social development of children are conducted. Children are prepared to study. The child has to stay at the centers for 4 hours, in which he is fed hot nutrition at an interval of two and a half to three hours.

Referral Services: Financial provisions are not made by the department for this service also. Pregnant women, lactating mothers and children below 6 years of age who are sick or malnourished are sent by the Anganwadi worker with a referral slip to the nearest Primary Health Center/ Community Center as per requirement.

Objectives Of Study:

1. To know the satisfaction levels and expenditure audit of beneficiaries with respect to supplementary nutrition services.
2. To know the satisfaction level of beneficiaries regarding health check-up service.

Sampling And Study Area: For the present study, Salumbar Panchayat Samiti of Salumbar district has been selected, out of total 191 Anganwadi centres, 20 Anganwadi centers have been selected from all the sectors.

Research Methodology: The nature of this study is author's. From the textual point of view, the library clarifies the descriptive nature of the research methodology. Research methodology is an important aspect without clarifying which no research can be completed. In the

collection of facts, the departmental budget and related expenditure will be inspected, officers, Anganwadi workers and Panchayati Raj representatives will be interviewed and the details of income and expenditure will be compiled and various items will be studied.

Supplementary Nutrition Service: Health check-up of women belonging to Anganwadi center reveals that they are pregnant and their names are registered in the Anganwadi centre. After this, under the Integrated Child Development Services (ICDS) programme, pregnant women are benefited with supplementary nutrition through Anganwadi centres. The purpose of providing nutritional supplements to pregnant mothers for 7 days is so that their health can be checked again after 7 days. Pregnant women consume the said nutritional supplement by preparing different dishes for 7 days.

After delivery, the name of the pregnant woman is recorded in the column of lactating woman and she is given weekly nutritional supplements for six months so that she can breastfeed the baby better. Weekly nutritional food is also distributed to children aged 6 months to 3 years by the Anganwadi centre.

Children aged 3 to 6 years are provided hot supplementary nutrition and other services at Anganwadi centres. Two girls who do not go to school in the area related to the Anganwadi center are identified and provided weekly nutritional food. The details of expenditure on supplementary nutrition of pregnant women, lactating mothers, children between 6 months to 3 years, children between 3 years to 6 years and adolescent girls at 20 Anganwadi centers of Salumbar Project.

Supplementary Nutrition Of Pregnant Mothers: 13 percent of the beneficiaries were found to be completely satisfied with the nutrition provided to the pregnant mothers and 16 percent of the beneficiaries were only satisfied and 31 percent of the beneficiaries expressed neutrality on this subject and did not give any answer and 22 percent of the beneficiaries were dissatisfied while the nutritional food given to the pregnant mothers was found to be dissatisfied. 17 percent beneficiaries were found to be completely dissatisfied with the nutrition.

Supplementary Nutrition Of Lactating Mothers: 15 percent beneficiaries were found to be completely satisfied with the nutritional food given to lactating mothers and 16 percent beneficiaries were only satisfied and 29 percent beneficiaries expressed neutrality on this subject and did not give any answer and 22 percent beneficiaries were dissatisfied while the nutritional food given to lactating mothers was not satisfied. 19 percent beneficiaries were found to be completely dissatisfied with the nutrition.

Supplementary Nutrition Of Children Aged 0 To 3 Years: 11 percent beneficiaries were found to be completely satisfied with the nutrition provided to children aged between 0 to 3 years and 18 percent beneficiaries were only satisfied and 21 percent beneficiaries expressed neutrality on this issue and did not give any answer and 25 percent beneficiaries were dissatisfied while 0 25 percent of the beneficiaries were found to be completely dissatisfied with the nutrition provided to children up to 3 years of age.

Supplementary Nutrition Of Children Aged 3 To 6 Years: 20.2 percent beneficiaries were found to be completely satisfied with the nutrition provided to children aged between 3 to 6 years and 19 percent beneficiaries were only satisfied and 20.4 percent beneficiaries expressed neutrality on this issue and did not give any answer and 25.2 percent beneficiaries were dissatisfied while 3 15.2 percent beneficiaries were found to be completely dissatisfied with the nutrition provided to children up to 6 years of age.

Supplementary Nutrition Of Adolescent Girls: 22.2 percent beneficiaries were found to be completely satisfied with the nutrition provided to adolescent girls and 21.2 percent beneficiaries were only satisfied and 15.4 percent beneficiaries expressed neutrality on this issue and did not give any answer and 21.2 percent beneficiaries were dissatisfied while the nutrition provided to adolescent girls was not satisfied. 19.6 percent beneficiaries were found to be completely dissatisfied with the nutrition.

Health Checkup Of Pregnant Mothers: 20.6 percent beneficiaries were found to be completely satisfied with the health checkup given to pregnant mothers and 21.8 percent beneficiaries were only satisfied and 31.4 percent beneficiaries expressed neutrality on this subject and did not give any answer and 13.4 percent beneficiaries were dissatisfied while the service of the said health checkup 12.8 percent beneficiaries were found to be completely dissatisfied.

Health Checkup Of Lactating Mothers: 23.6 percent beneficiaries were found to be completely satisfied with the health check-up given to lactating mothers and 19.2 percent beneficiaries were only satisfied and 29.4 percent beneficiaries expressed neutrality on this subject and did not give any answer and 14.2 percent beneficiaries were dissatisfied while the service of the said health check-up 14.6 percent beneficiaries were found to be completely dissatisfied.

Health Checkup Of Children Aged 0 To 3 Years: 24.6 percent beneficiaries were found to be completely satisfied with the health check-up given to children aged 0 to 3 years and 24 percent beneficiaries were only satisfied and 12.2 percent beneficiaries expressed neutrality on this subject and did not give any answer and 17.2 percent beneficiaries were dissatisfied while the above 19.8 percent beneficiaries were found to be completely dissatisfied with the health check-up service.

Health Checkup Of Children Aged 3 To 6 Years: 30.8 percent beneficiaries were found to be completely satisfied with the health check-up given to children of 3 to 6 years of age and 33.2 percent beneficiaries were only satisfied and 9.2 percent beneficiaries did not give any answer expressing

neutrality on this subject and 10.2 percent beneficiaries were dissatisfied while the above 17.6 percent beneficiaries were found to be completely dissatisfied with the health check-up service.

Health Check-Up Of Adolescent Girls: 24.4 percent beneficiaries were found to be completely satisfied with the health check-up given to adolescent girls and 35.2 percent beneficiaries were only satisfied and 9.4 percent beneficiaries expressed neutrality on this subject and did not give any answer and 11.4 percent beneficiaries were dissatisfied while the service of the said health check-up 19.6 percent beneficiaries were found to be completely dissatisfied.

Expenditure On Supplements For Pregnant Women: In the details of expenditure on supplementary nutrition for pregnant women, it was found that 237 pregnant women registered at 20 Anganwadi centers were given Rs. At the rate of Rs 55.8/- per beneficiary, the expenditure for one week was Rs 13224.6 while the total expenditure on nutrition distributed for 36 weeks was Rs 476089/-.

Expenditure On Supplements For Lactating Women: In the details of expenditure on supplementary nutrition for lactating mothers, it was found that Rs. 218 were spent on 218 lactating mothers registered at 20 Anganwadi centres. At the rate of Rs 55.8/- per beneficiary, the expenditure for one week was Rs 12164.4 while the total expenditure on nutrition distributed for 24 weeks was Rs 291949/-.

Expenditure On Nutrition For Children 6 Months To 3 Years: In the details of expenditure on supplementary nutrition for children aged between 6 months to 3 years, it was found that Rs. 430 was spent on 430 registered children aged between 6 months to 3 years at 20 Anganwadi centres. At the rate of Rs 45/- per beneficiary, the expenditure for one week was Rs 19350 while the total expenditure on nutrition distributed for 48 weeks was Rs 928800/-.

Expenditure On Nutrition For Children 3 To 6 Years: In the details of expenditure on supplementary nutrition for children between 3 years to 6 years, it was found that Rs. 416 registered children between 3 years to 6 years were spent on 20 Anganwadi centres. At the rate of Rs 9/- per beneficiary, the expenditure for one day was Rs 3744 while the total expenditure on nutrition distributed for 300 days was Rs 1123200/-.

Expenditure On Nutrition For Adolescent Girls: In the details of expenditure under the head of supplementary nutrition for adolescent girls, it was found that the expenditure for one week on supplementary nutrition of 240 registered adolescent girls at 20 Anganwadi centers at the rate of Rs 55.8/- per beneficiary was Rs 13392, while it was distributed for 48 weeks. The total expenditure on nutrition was Rs 642816/-.

Conclusion:

1. 13 percent were found to be completely satisfied with the nutrition provided to pregnant mothers and only 16 percent of the beneficiaries were found to be satisfied.
2. 15 percent were found to be completely satisfied with the nutritional food provided to lactating mothers.
3. 11 percent beneficiaries were found to be completely satisfied with the nutrition provided to children aged 0 to 3 years.
4. 20.2 percent beneficiaries were found to be completely satisfied with the nutrition provided to children aged 3 to 6 years.
5. 22.2 percent beneficiaries were found completely satisfied with the nutrition provided to the adolescent girls and 19.6 percent beneficiaries were found completely dissatisfied with the nutrition.
6. In the details of expenditure on supplementary nutrition for pregnant women, it was found that the total expenditure on nutrition distributed for 36 weeks at the rate of Rs 55.8/- per beneficiary was Rs 476089/-.
7. In the details of expenditure on supplementary nutrition for lactating mothers, it was found that the total expenditure on nutrition distributed in 24 weeks at the rate of Rs 55.8/- per beneficiary was Rs 291949/-.
8. In the details of expenditure on supplementary nutrition for children aged between 6 months to 3 years, it was found that the total expenditure on nutrition distributed for 48 weeks at the rate of Rs 45/- per beneficiary was Rs 928800/-.
9. In the details of expenditure on supplementary nutrition for children aged between 3 years to 6 years, it was found that the total expenditure on nutrition distributed for 300 days at the rate of Rs 9 per beneficiary was Rs 1123200/-.
10. In the details of expenditure on supplementary nutrition for adolescent girls, it was found that it was distributed for 48 weeks at the rate of Rs 55.8/- per beneficiary, on which the total expenditure was Rs 642816/-.

Suggestion:

1. All information related to Anganwadi should be released by the administration on its own initiative. A board with important information should be displayed at each centre.
2. All the expenses of Anganwadi Center can be adjusted by the personal income of Gram Panchayats. Due to which the responsibilities of the state and central government can be transferred to the Panchayats.

References:-

1. District-levelcoverage of interventions in the Integrated Child Development Services (ICDS) scheme during pregnancy, lactation and early childhood in India: Insights from the National Family Health Survey-4. (2018). (n.p.): Intl Food Policy Res Inst.
2. Annual Utilization Certificate, 2023-24, Department of Integrated Child Development, Project Salumber, Government of Rajasthan.

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

शोषण का शिकार नारी

डॉ. वंदना अग्निहोत्री* हिना**

* प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (हिन्दी)माता जीजाबाई शासकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत
** शोधार्थी, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – आधुनिक युग में समाज सुधारकों का ध्यान मुख्यत: नारी की दयनीय स्थिति पर केन्द्रित रहा तथा उसी को केन्द्र में रखकर समाज-सुधार का कार्य चलता रहा। यही स्थिति उपन्यासकारों को भी रही। युगों में पीड़ित नारी के विभिन्न पहलूओं को उन्होंने अपने उपन्यासों का विषय बनाया तथा युगानुसार उसकी नई प्रतिष्ठि की। नारी की समस्याओं का विवेचन करके उनका समाधान प्रस्तुत किया। यह सोचने वाला प्रष्न है कि इन समाज सुधारकों तथा विशेषत: सामाजिक उपन्यासकारों के सम्मुख केवल नारी ही ज्वलंत प्रश्न के रूप में क्यों आयी?

भारतीय समाज चाहे वह हिन्दू हो या मुस्लिम दोनों ही नारी की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। सत्य तो यह है कि युगों से भारतीय समाज की गति अवरूद्ध हो गई थी और जड़ता की इस सीमा तक उसकी उद्योगति हो चुकी थी कि पीड़ित तथा दलित वर्गो के प्रति अमानुशिक, अमानवीय व्यवहार के विरूद्ध विद्रोहाग्नि उठने की बात दूर रही वरना इन सबको भी धर्म की स्वीकृति दे दी गई। अन्तत: इस विक्रति का परिणाम यहाँ तक तक हुआ जहाँ तक हिन्दू-समाज में पुरूष वर्ग को अनेक विवाह करने की छूट मिली। साथ-साथ नारी के पतिव्रत धर्म की परीक्षा के लिए सती प्रथा की शुरूआत हुई।

भारतीय समाज में आर्थिक शोषण, राजनैतिक शोषण की तरह नारी शोषण भी मोटे तौर पर समाज में होने लगा। नारी वर्ग तो निम्नवर्ग से भी ज्यादा पीड़ित रहा। सती प्रथा के रूप में समाज में नारी के लिए पतिवर्तय धर्म की स्थापना की। उसे रोकने के लिए कानूनी तौर पर व्यवस्था की। नारी की इस दयनीय स्थिति की ओर लेखकों का ध्यान जाना स्वाभाविक है। समाज-सुधार आन्दोलनों ने भी मुख्यत नारी जागरण का ही बीड़ा उठाया था। वैसे भी अंग्रेजी शिक्षा तथा आधुनिक सभ्यता से सम्पन्न पुरूष वर्ग के लिए परिवार में अशिक्षित तथा रूढ़िवादी में पली नारी के साथ सामंजस्य बिठाना कठिन प्रतीत होने लगा। यह आवष्यक हो गया था कि पुरूष वर्ग में नारी-स्थिति को प्रकट करना हिन्दी उपन्यासकारों का लक्ष्य बन गया। गिरिराज किषोर के उपन्यासों में भी जनता की दयनीयता नारी-शोषण चित्रित हुआ।

शोषण तो नारी जाति का भाग्य है। समाज की सारी समस्याएँ, गरीबी, अन्याय, भ्रष्टाचार, शिक्षा आदि हल होगी परन्तु नारी का गुलामीपन और उसके प्रति अन्याय कभी खत्म नहीं होगा। हम लाख कोशिश करते रहेंगे, फिर भी शोषण नामक दूषण दूर होना बहुत दूर की बात है। गिरिराज जी जुगलबन्दी, लोग और ढ़ाई घर में सामन्ती प्रथा का ही चित्रण है। तीनों ही उपन्यासों में इस बात पर जोर दिया गया है कि नारी के अस्तित्व का कोई मूल्य ही नहीं है। सामन्त वर्ग का ऐसा वर्ग भी है जो नारी को केवल अर्थोपार्जन का साधन मानते हैं। काफिरों की स्त्रियाँ दयनीय परिस्थिति से गुजर रही है। हिन्दी उपन्यास का इतिहास में गोपालनाथ ने बताया है कि विसंगतियाँ और अंतर्विरोध किसी काल विशेष के बाह्य जीवन में ही नहीं होते, बल्कि उसके आन्तरिक जीवन में भी होते हैं। ब्रिटिशकालीन जमींदारों का बाहरी जीवन जहाँ समृद्ध और तड़क-भड़क से भरा था। वहीं उनका पारिवारिक जीवन अनेक प्रकार की विसंगतियों से ग्रस्त था। परिवार में सबसे अधिक यातनापूर्ण स्थिति बहुओं की होती थी, अपनी सासें और ननदों-बुआओं के अमानवीय व्यवहारों की शिकार बनी। जुगलबन्दी में माँ और बुआ के चरित्रों के माध्यम से उपन्यासकार ने संवेदनात्मक गहराई और ईमानदारी के साथ पारिवारिक अंतर्विरोधों का उद्घाटन किया है। धर्म और पूजा के आडम्बर के पीछे कैसी निर्ममता और असहिष्णुता छिपी हो सकती है, इसका अकन गिरिराज जी ने बीस की पत्नी की मूक पीड़ा के अंकन के रूप में किया है।'[2]

स्वार्थपूर्ण मान्यताओं के कारण नारी का सदैव शोषण हुआ 'जुगलबन्दी' में स्त्री की उपेक्षा और शोषण का चित्रण किया गया है। किसी भी बड़े घर में बहू-बेटी के लिए डॉक्टर नहीं आता। उसे सिर्फ चार-दीवारी में रहना पड़ता है। समाज में स्त्रियों के कमरे में मर्दों का जाना अच्छा नहीं माना जाता था। 'ढाई घर' में भी स्त्री की दयनीय हालत निरूपित है। वह भोग की वस्तु बनकर रह गयी है। षिक्षा और ज्ञान से वंचित घर की चारदीवारी में बन्द वह पुरूष के शोषण और अत्याचार को अपानी नियति के रूप में स्वीकार करना उसके जीवन का अमिट सत्य है।

स्त्री की स्थिति के बारे में गिरिराज किशोर ने कहा है कि सभी औरतें करीब-करीब एक सा भाग्य लिखवाकर आती हैं। बच्चे हुए तो पति सुख नहीं देखा......... पति सुख हुआ तो कुछ और हो गया। बड़ी जिठानी के सब कुछ था – सन्तान भी......... इतने बड़े पति थे पर पति से ऐसे डरती रही जैसे गाय, कसाई से डरती है। इतने नौकरों-चाकरों के होते हुए रात-बेरात चूल्हा फूंकते-फूंकते आँखें खो दी, फिर हाथ पसारे चली गयी।'[2]

इनके उपन्यास सिर्फ चार दीवारों में ही नारी को उद्घाटित करते हैं, ऐसा नहीं। तीसरी सत्ता और चिड़ियाघर नामक उपन्यासों में नारी को अलग रूप प्रस्तुत किया है। तीसरी सत्ता की मिसेज शर्मा आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होने पर भी परम्परागत सामाजिक नियमों के कारण पति का अत्याचार सहती है। परिवार में नारी को अलग करना ही यातना देना है। समाज में ऐसा लेकिन आज की नारी आधुनिक बन गई है। भारतीय नारी विलासिता की वस्तु बनकर नहीं रह गई है। वह भारतीय सभ्यता और संस्कृति की वाहक बन गई है। समाज के विकास में नारी के योगदान को कोई भी झुठला नहीं

सकता। जिस प्रकार तार के बिना सितार होता है, उसी प्रकार नारी के बिना नर का जीवन। नारी को एक ओर जहाँ स्वतंत्रता और पहचान प्राप्त हुई है, वहीं उसकी समस्याएँ भी बढ़ गई है। कई बार वह अपनी समस्याओं और दायित्वों के बीच दबकर रह जाती है, किन्तु प्राय: देखा जाता है कि उनका हल भी वह स्वयं ही ढूंढ लेती है। आज की नारी पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण कर अपनी संस्कृति और आदर्शों को भूल रही है। गिरिराज किशोर के उपन्यास 'चिड़ियाघर' की पात्र मिसेज रिजवी एक उत्तम उदाहरण है। अपने पति के होते हुए भी वह अन्य पुरूषों के साथ रहती है। 'क्यों जौहरी अगर मैं एक एक्सपेरीमेंट करूँ चार शौहर रखूँ, जिनमें से एक होम देखे, दूसरा फाईन रिलेशन्स की देखरेख रखे, तीसर प्रोटोकॉल का ध्यान रखे, और चौथा एंटरेटन करे। तुम्हारा क्या ख्याल है।'[3]

वर्तमान युग में नारी परम्परागत आदर्शों से हटकर चल रही है। 'यात्राएँ' की नायिका वन्या बदलते नए मूल्यों के साथ चलती है। 'ढाईघर' के राय परिवार में अरूण की पत्नी पर्दा रखना नहीं मानती मझली चाची और छोटी चाची पुराने ढंग से जी रही है। नई पीढ़ी नया विचार लेकर आयी है। स्वाभिमानी एवं आत्मनिर्भर बनना चाहती है।

गिरिराज जी ने अपने उपन्यासों में स्त्री का यही स्वरूप चित्रित किया है। इनके नारी पात्र यौन शोषण के साथ-साथ अनेक अत्याचारों से पीड़ित पात्रों की श्रेणी में आते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. गिरिराज किशोर, ढाई घर, पृ.सं.60
2. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, पृ.सं.-297
3. चिड़ियाघर, गिरिराज किशोर, पृ.सं.-91

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

साहित्य मे स्त्री विमर्श की आवश्यकता

डॉ. सरला पण्ड्या *

* कार्यवाहक प्राचार्य (हिन्दी) हरिदेव जोशी राजकीय कन्या महाविद्यालय, बाँसवाड़ा (राज.) भारत

प्रस्तावना – समकालीन महिला लेखिकाओं में उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, मंजुला भगत, नासिरा शर्मा, प्रभा खेतान, कृष्णा अग्निहोत्री एवं ममता कालिया का महत्वपूर्ण स्थान है। आठवें दशक की इन महिला उपन्यासकारों की लेखन शैली में भावुकता के स्थान पर तर्क, विचार, बुद्धि, सुक्ष्म अन्वेषण, विश्लेषण व रचनात्मक दृष्टिकोण दिखाई देता है। व्यक्ति और समाज के बदलते संबंधों, तनावपूर्ण जीवन शैली, व्यक्ति के अंत: संघर्ष से उत्पन्न द्वन्द्वात्मक स्थिति के साथ ही सामयिक जीवन संदर्भो के परिप्रेक्ष्य में स्त्री विकास की अनेक संभावनाओं को उजागर किया है। उन्होंने स्त्री की बदलती भूमिका व उसके सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलुओं पर चिंतन भी किया है। इन लेखिकाओं ने समाज की परिस्थितियों को देखा व अनुभव किया है इसके पश्चात् ही उसे साहित्य रचना में उतारा है।

'मार्क्स की अवधारणा है कि 'मनुष्य की चेतना उसकी परिस्थितियों का निर्धारण नहीं करती अपितु परिस्थितियाँ ही चेतना का निर्धारण करती है।' साहित्य लेखन में सर्वाधिक महत्व चेतना का है जिसका निर्धारण उस समाज की विभिन्न परिस्थितियाँ करती है।'[1]

महिला उपन्यासकारों ने स्त्री विमर्श के सभी पहलुओं –स्त्री के प्रति शोषण, स्त्री आंदोलन, स्त्री और आधुनिकता, औरत की परिवर्तित आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक स्थितियाँ, मूल्य विसंगतियाँ व स्वायत्तता, स्त्री व भूमंडलीकरण, स्त्री अस्मिता, साँस्कृतिक परिवर्तन, स्त्री आरक्षण आदि बहुआयामी एवं वैविध्यपूर्ण विषयों के साथ साहित्य रचना की है। आपका बंटी, नरक दर नरक, उसके हिस्से की धूप, प्रतिध्वनियाँ, टेसू की टहनियाँ आदि रचनाएँ इसी यथार्थबोध को व्यक्त करती है। इसी प्रकार नारी अस्मिता को व्यक्त करने वाली रचनाएँ सुरजमुखी अंधेरे के, रेत की मछली, अचला एक मन: स्थिति, बात एक औरत की भी लिखी गई है। हजारी प्रसाद द्विवेदी– 'यह विचित्र बात है कि स्त्री जब साहित्य लिखती है तो स्त्रियों के बारे में ही लिखती है और पुरुष जब साहित्य लिखता है तब भी स्त्रियों के संबंध में ही लिखता है। दोनों में अंतर यह होता है कि स्त्री के लिखने का उद्देश्य है, अपने विषय में फैले हुए भ्रम का निराकरण करना और पुरुष का उद्देश्य है उसके विषय में ओर भी भ्रम पैदा करना।'[3] नारी को भारतीय संस्कृति के अनुरुप विचारवान एवं प्राणवान रुप में चित्रित किया गया। लेकिन समय परिवर्तन के साथ स्त्रियों को निम्न वर्ग के रूप में माना गया। उन्हें शोषित व पीड़ित बताया गया है। उसको विभिन्न मुखौटों से ढक दिया गया है।

महादेवी वर्मा ने लिखा है– 'आधुनिक नारी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कुण्ठित है। यदि वह शान्त भाव से अपनी समस्या पर विचार करे तो तनाव भी नहीं रहेगा। वह दो नावों पर पैर रखे है, न पुराना आडम्बर छोड़ना चाहती है, न नवीन की सहजता स्वीकार करती है।'[4] इन्होंने स्त्रियों को विद्रोह की प्रेरणा दी। वे अन्याय के प्रति सदैव असहिष्णु रही है। भारतीय नारी संस्कृति सापेक्ष रह कर समय के साथ गत्यात्मक (DYNAMIC) बने किन्तु विध्वंस करना वे नहीं सिखाती है। आशापूर्णा देवी– 'लम्बे समय तक साहित्य सृजन के दौरान ऐसा भी हुआ है कि हताशा और निराशा मिली है लेकिन मैंने इस ह्रास और पतन को जीवन का अंतिम वक्तव्य कभी नहीं माना। मैं जानती हूँ कि अतृप्ति के साथ–साथ पूर्णता प्रदान करती है।' लेखिकाओं ने नई चेतना दृष्टि से इतिहास, संस्कृति व मानवीय संबंधों को पुन: विश्लेषित किया है। इससे नारी की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक व सामाजिक छवि बदलती हुई प्रतीत होती हे। इसमें सभी वर्ग, वर्ण, धर्म, जाति व देश की स्त्रियाँ शामिल है। अंग्रेज़ी के फेमिनिज्म शब्द को हिंदी में नारी चेतना रुप दिया गया है।

लेखिका महुआ मात्री लिखती है कि 'साहित्य में इतना माद्दा है कि वह समाज को बदल सकता है। उसे समाज तक पहुँचाया जाए। जब तक वह लोगों तक नहीं पहुँचेगा, तो उसकी सोच का असर कैसे पड़ेगा। इसलिए साहित्य जन प्रिय होगा तो समाज को जरूर बदलेगा।' चंद्रकांता के अनुसार– स्त्री विमर्श को वृहत्तार अर्थो में परिभाषित करना चाहे तो वह घर, परिवार, समाज, नीति और राष्ट्रनीति में नारी की अस्मिता, अधिकार और उन अधिकारों के लिए संघर्ष चेतना से जुड़े संवाद की कल्पना है। वहाँ सामाजिक, धार्मिक अंध रूढ़ियों में दबी किसी स्त्री की आहे–कराहे ही नहीं बल्कि शोषण व्यवस्था के विरूद्ध उसका आक्रोश, विद्रोह भी है। साथ ही स्त्री की गरिमापूर्ण सशक्त छवि गढ़ने की महिमा भी।

मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों की नायिकाएँ गहरे संघर्ष एवं अंर्तद्वन्द्व में भी जीवन व परिवार में बराबर बनी रहती है। 'अपनी धरती पर खड़े होकर शिकंजों को काटने की कुव्वत मेरे उपन्यास की हर नायिका में है। संबंध कोई नहीं तोड़ती।'[5] महिला कथाकारों ने समकालीन स्थितियों में स्त्री समाज की त्रासदी और विडम्बनाओं, शोषण, सामाजिक, आर्थिक पराधीनता, परम्परागत स्त्री–पुरुष संबंध, सामंती मूल्यों के कई प्रश्नों को तीखे व साहसपूर्ण ढंग से अपनी कहानियों व उपन्यासों में व्यक्त किया है।

महिला लेखिकाओं ने दलित औरत, देहाती औरत, श्रमजीवी औरत, सांस्कृतिक उत्पीड़न, दैहिक शोषण की मार सहती औरत, आदिवासी औरत आदि का वर्णन भी किया है क्योंकि भारत में इस प्रकार की महिलाओं की स्थिति अधक दयनीय है। देश के कई राज्य स्त्रियों की खरीद–फरोख्त,

वैश्या समस्या से भी रूबरू हो रहे है।

'महिला मुद्दों पर कलम चलाने वाली डॉ. मृदुला सिन्हा का मानना है कि दुनिया छोटी हो गई है और महिला लेखन की संभावनाएँ बढ़ गई है।............... स्वयं महिलाओं का कार्य क्षेत्र भी विस्तृत हुआ है। इसलिए अपने और दूसरों के अनुभव के आधार पर लेखन में प्रवीणता आई है। विश्व बंधुत्व की कामना करने वाले भारतीय समाज के लिए वैश्वीकरण हौव्वा नहीं बनना चाहिए।'[6] वर्तमान में लेखिकाओं ने स्त्री के जमीनी संघर्ष को महसूस किया है तो साथ में सैद्धान्तिक सुत्रों की पड़ताल करते हुए इतिहास के पुनर्लेखन व साहित्य रचना के माध्यम से अपने विरोध भाव को भी दर्ज किया है। 'भाषा विधान व ज्ञानात्मक अनुशासन के इस रास्ते पर वर्ग, जाति, धर्म, प्रांत पर आधारित पहचान के कई मोड़ आते है जहाँ महिला लेखकों की मुठभेड़ सामाजिक ढाँचे एवं उस पर निर्मित पितृसत्तात्मक सांस्कृतिक आदर्शों, प्रतीकों एवं सौन्दर्य दृष्टि से होता है।'[7] पूरे विश्व की स्त्री की समस्याओं को एक ही मानते हुए लिखती है- यही स्त्री सदियों से सभ्यता के आदिकाल से पुरुष वर्ग द्वारा दलित है, शोषित है। सिमोन द बोउआ, केट मिलेट, जर्मेन ग्रीयर, बेइट्टी फ्राइडेन इत्यादि पश्चिम की नारीवादी लेखिकाएँ इस बात को अपने शोध कार्यों से स्थापित कर चुकी है कि स्त्री होना एक ऐतिहासिक घटना है। वह जन्म से स्त्री नहीं बल्कि हजारों साल की सभ्यता ने उसे वस्तु रूप में परिणत कर दिया है।' [8]

सामाजिक सरोकारों से जुड़ी डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री का भी मानना है कि 'जब समस्या ही बाजारवाद का है तो उसे स्वीकारते हुए ही उन्हीं के बीच से हल निकालने होंगे।'[9] नारी की जागृति के साथ ही उसकी भूमिकाओं और दायित्वों में भी वृद्धि हुई है। वह एक माता और पत्नी के रूप में जितनी सशक्त है, उतनी ही एक कार्यकारी और अधिकारी के रूप में भी। स्त्री परिवार, समाज एवं देश का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होते हुए भी उसे समुचित समानता प्राय: प्रत्येक क्षेत्र में देने की आवश्यकता बनी हुई है। क्योंकि स्वतंत्रता का अर्थ नकारात्मक रूप में यानि स्वेच्छाचारिता के अर्थ में लिया जा रहा है जबकि विधायक स्वतंत्रता हमेशा होती है। कला, संगीत, सौंदर्य, साहित्य की अन्तर्वर्ती धारा की प्रेरणा और मूर्तिकरण के बावजूद नारी सदा जीवन के हाशिये पर जीती रही।

इस बारे में लिखा गया है कि 'वैसे भी अपने स्वानुभूत इतिहास के आधार पर महादेवी से लेकर कृष्णा सोबती तक हमारे वक्त के बेहतर महिला लेखन में लगातार कुछ नया स्फुटित होता रहा है। मनुष्य और पशुजगत, स्त्री और प्रकृति, माँ और बेटी के रिश्तों के संदर्भ में बहुत सारा अनुभव, भाषा के कई प्रयोग समय-समय पर इन लेखिकाओं ने प्रचलित संदर्भों से तोड़कर एकदम नए संदर्भों में रखे और परखे है, जाहिर है भाषा और भावों के ऐसे समायोजन में बहुत सारे पुराने अनुभव और भाषा रूप, या तो हटा दिए जाएँगें या नए अनुभवों से जुड़कर एकदम नई रंगत देने लगेंगे।'[10]

नोबल पुरस्कार विजेता मारिसन का मानना है कि 'नई शताब्दी की इस महिला एक बदलते हुए रूप में कुछ नए अर्थो में इस विश्व को नया रास्ता दिखाएगी और वह है जन संचार और प्रसारण-माध्यम, जैसे टी.वी., रेडियो, अखबार इत्यादि, परन्तु इनके दुष्प्रभाव भी होंगे। इस शताब्दी के शुरू में महिलाएँ अब एक बदली हुई भूमिका में विश्व को रास्ता दिखा रही है। मेरा मानना है कि यह शताब्दी महिलाओं की ही होगी।'[11]

सभी वर्ग, जाति, लिंग की स्त्रियों पर समान रूप से लागु होता यह स्त्री विमर्श उसे मानवी बनाने के लिए कृत संकल्पित है। प्राचीन पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्री को आर्थिक, सामाजिक व वैचारिक रूप से अधीन कर रखा है। उसे मृदुभाषी, कर्मशील व सेवाभावी होना अनिवार्य बताया गया है। उसे घर-परिवार से सामाजिक समानता, पुरुषवादी अहं से मुक्ति, शिक्षा व क्षमताओं पर विश्वास, नेतृत्व क्षमता व मानवीय सरोकारों का वातावरण चाहिए। काम-काज की दुनिया में समान कार्य एवं समान वेतन में बराबरी की माँग करती दिखाई देती, वह समाज में परम्परागत नियमों को तोड़ना चाहती है। वह आत्मनिर्भरता, अधिकार व स्व निर्णय की स्थिति को प्राप्त करना चाहती है, मनचाही जिन्दगी जीना चाहती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सं.प्रकाश आतुर : *साहित्य की प्रतिबद्धता और सरोकार*, पृ. 78
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी : स्त्री प्रतिभा, *कमला पत्रिका*, अक्टू. 1939, पृ. 3
3. रेणुका नैयर : *महादेवी वर्मा(व्यक्ति भेंटवार्ता) : नारी स्वातंत्र्य के बदलते रुप*, पृ. 142
4. सृजन-विश्व, रविवारीय, *राजस्थान पत्रिका,* 28 अक्टू. 2007, पृ. 2
5. सृजन-विश्व, रविवारीय, *राजस्थान पत्रिका,* 19 अक्टू. 2008, पृ. 2
6. परिवार, *राजस्थान पत्रिका*, 31 जन. 2007
7. *राजस्थान लेखिका सम्मेलन-2012*, राजस्थान साहित्य अकादमी एवं मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वाधान में आयोजित, 3-4 नव. 2012
8. प्रभा खेतान : *स्त्री विमर्श के अंतर्विरोध*, पृ. 358
9. सृजन-विश्व, रविवारीय, *राजस्थान पत्रिका*, जून 2008, पृ. 2
10. मृणाल पांडे : *जहाँ औरते गढ़ी जाती है*, पृ. 51
11. कमला रत्तू : भारतीय महिलाएँ एवं मीडिया क्रांति के संदर्भ में, *मधुमती(अंक-11)*, नव. 2006, पृ. 31

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

पद्मावत में लोक-संस्कृति की अभिव्यक्ति

डॉ. संगीता मरावी*

* सहायक प्राध्यापक (हिन्दी) पं.शम्भूनाथ शुक्ला विश्वविद्यालय, शहडोल (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – अपनी रचनाओं में लोक-जीवन का चित्रण करने में वहीं कवि या लेखक समर्थ और सफल होता है जिसने लोक-जीवन के साथ घुल-मिल कर उसका निकट से अध्ययन किया हो। वाल्मीकि, व्यास, होमर, शेक्सपीयर, जगनिक, जायसी, तुलसी, प्रेमचन्द, गोर्की आदि विश्व साहित्य के ऐसे ही मनीषी कलाकार हुए हैं। जायसी को लोक-जीवन का गहरा और विस्तृत अनुभव था। कवीर के समान वह भी बचपन से साधु-फकीरों की संगति में देशाटन करते और लोगों से मिलते-जुलते रहे थे। यही लोक-जीवन को समझने और अनुभव करने का प्रधान साधन होता है। जायसी भी यदि दरबारी-कवियों के समान किसी राजा या नवाब के दरबार में रहते तो 'पद्मावत' जैसे सशक्त काव्य की रचना करने में असमर्थ रहते । हिन्दी का कोई भी सुफी कवि दरबारी कवि नहीं था। ये लोग तो प्रेम के दीवाने उपासक थे, इसलिए राजसी दरबारी वातावरण इन्हें कभी रास ही नहीं आ सकता था। जायसी पर कुछ आलोचकों ने यह आरोप लगाया है कि उनके 'पद्मावत' में लोक-जीवन का वैसा विस्तृत और गहन चित्रण नहीं हुआ है जैसा कि तुलसी के 'रामचरित मानस' में मिलता है, यह आरोप गलत है। इसे सिद्ध करने के लिए हमें 'पद्मावत' में लोक संस्कृति की अभिव्यक्ति को विस्तार से चर्चा करनी होगी।

'पद्मावत' एवं रामचरित मानस में भिन्नता– सामाजिक चित्रण में अनुपात की दृष्टि से 'रामचरित मानस' और 'पद्मावत' में जो अन्तर मिलता है उसका मूल कारण तुलसी और जायसी के उद्देश्यों की भिन्नत्ता में छिपा हुआ है। तुलसी ने 'रामचरित मानस' के माध्यम से लोक-रक्षक और धर्म-संस्थापक राम का चरित्र अंकित किया था। तुलसी सतर्क सजग सामाजिक दृष्टा थे। समाज के प्रत्येक अंग और गतिविधि पर उनकी गहरी नजर रहती थी। वह अपने आराध्य राम का ऐसा रूप प्रस्तुत करना चाहते थे जो विस्तृत समाज को अपनी परिधि में समेट समाज के लिए आदर्श और वरेण्य बन सके। इसी कारण उन्होंने 'रामचरित मानस' में सामाजिक चित्रण को इतना महत्व और विस्तार दिया था। उन्हें अपने इस प्रयत्न में पूर्ण सफलता भी मिली। आज लगभग चार सौ वर्ष बीत जाने पर भी तुलसी के राम और उपका चरित-काव्य मानस भारतीय हिन्दू-समाज की प्रेरणा बने हुए हैं।

इसके विपरीत जायसी तुलसी के समान समाज के सतर्क-सजग दृष्टा न होकर प्रेम को पीर के उसी प्रकार अनन्य उपासक थे जैसे सूर आदि कृष्ण-भक्त कवि थे। इस कारण जायसी की अपनी सीमाएँ थी। उनकी दृष्टि प्रेम के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन करने पर ही निरन्तर लगी रही। प्रेम के उस सीमित क्षेत्र में युग-जीवन का जितना भी अंश समा सका उसका उन्होंने पूर्ण मनोयोग के साथ चित्रण कर दिया। उन्होंने सूर आदि के ही समान अपनी इस सीमा से बाहर कदम रखने का कहीं भी प्रयत्न नहीं किया। क्योंकि यदि वे ऐसा करते तो उनका उद्देश्य अपूर्ण और विकलांग रह जाता। यही कारण है कि हमें 'पद्मावत' में 'रामचरितमानस' के समकालीन आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि स्थितियों के मार्मिक और विस्तृत चित्रण न मिल कर उनके केवल हल्के से संकेत भर मिलते हैं। फिर भी हमें 'पद्मावत' में समकालीन युग के अनेक ऐसे चित्र मिल जाते हैं जिसके आधार पर उस युग के जन-जीवन का एक स्थूल और यथार्थ चित्र अंकित किया जा सकता है।

मूलत: हिन्दू-समाज का चित्रण– जायसी ने पद्मावत में रत्नसेन और पद्मावती की कथा का वर्णन किया है। इसकी पूर्वार्द्ध की कथा पूर्ण रूप से हिन्दू-जीवन और समाज से सम्बन्धित रही है। इस कथा के मा'पद्मावत'यम से भले ही उन्होंने सूफी साधाना पद्धति के प्रति अप्रत्यक्ष संकेत किया हो परन्तु प्रकट रूप से उसमें इस्लामी-जीवन या इस्लामी धार्मिक मान्यताओं की रंचमात्र भी छाया नहीं मिलती। कथा के उत्ताराद्ध में दिल्ली-सम्राट अलाउद्दीन कथा-मंच पर प्रवेश करता है, परन्तु उसका वर्णन करते समय भी जायसी ने इस्लामी- जीवन का कोई चित्रण नहीं किया है। उन्होंने केवल उसके वैभव, शक्ति, राजदरबार आदि का ही विस्तृत वर्णन किया है। इस प्रकार हमें 'पद्मावत' में हिन्दुओं के सामाजिक जीवन का तो विस्तृत रूप मिल जाता है, परन्तु उसे समस्त भारतीय समाज का रूप माना जा सकता है। क्योंकि उस समय तक मुसलमान भी भारतीय समाज के अनिवार्य अंग बन चुके थे। इसलिए जायसी अपने समकालीन युग का अधूरा चित्र ही अंकित करने में सफल हुए हैं, सम्पूर्ण युग-जीवन का नहीं। परन्तु उन्होंने हिन्दू-समाज के जिस पक्ष का अंकन किया है, वह अपने-आप में पूर्ण है। इसे जायसी की एक विशिष्ट उपलब्धि माना जा सकता है। हमारे समाजशास्त्री उसके आधार पर उस युग के सामाजिक जीवन का एक विस्तृत चित्र अंकित कर सकते हैं।

सामाजिक जीवन– 'पद्मावत' की कथा यद्यपि राजन्य वर्ग से ही सम्बन्धित रही है, परन्तु जायती ने इस वर्ग के माध्यम से हिन्दू-जीवन का बड़ा सुन्दर और यथार्थ चित्रण किया है। इसमें उन्होने जन्म से लेकर मृत्यु तक के पूरे जीवन को समेटा है। इस चित्रण में यद्यपि उन्होंने जीवन के उन्हीं अंशों को विस्तार और प्रधानता दी है जो प्रेम से सम्बन्धित रहे है, फिर भी जीवन से सम्बन्धित सभी अंशों को उन्होंने समेट लिया है। रत्नसेन और पद्मावती का जन्म होता है। ज्योतिषी आकर उनकी जन्म कुंडलियाँ बनाते और भविष्यवाणियाँ करते हैं। बालिका पद्मावती बड़ी होती है, शास्त्रों का अध्ययन करती है। उधर रत्नमेन बड़ा होकर राजा बन जाता है। जायसी ने दोनों की इस स्थिति का वर्णन संक्षेप में ही किया है। पद्मावती के किशोरवस्था प्राप्त

करते ही जब उसके मन में काम का संचार होता है, जायसी के वर्णन विस्तृत और मार्मिक रूप धारण करने लगते हैं। क्योंकि यह प्रेम का क्षेत्र है। काम भावना प्रेम की जननी होतो है। प्रेम हृदय में उल्लास उत्पन्न करता है। इसलिए जायसी पद्मावती के इस उल्लास को व्यक्त करने के लिए नाना प्रकार के रीति-रिवाजों, ऋतुओं, त्यौहारों, वस्तुओं, विवाह, भोज आदि का विस्तृत वर्णन करते हैं। ये सब प्रेमसिक्त जीवन के उल्लास को बढ़ाने वाले हैं। इनके रूप में हमें तत्कालीन राजन्य-वर्ग के सामाजिक जीवन का सुन्दर और मार्मिक परिचय प्राप्त होता है। ये जीवन के एक विशिष्ट अंग होते हैं।

विवाहोत्सव – प्रेम की पूर्णता और सार्थकता प्रेमी-प्रेमिका के विवाह में प्रतिफलित होती है। सामान्य जीवन में भी विवाह जीवन का सर्वाधिक उल्लासमय क्षण होता है, फिर प्रेमी युगल के लिए तो वह जीवन की चरम उपलब्धि का क्षण बन जाता है। जायसी ने इसी कारण विवाहोत्सव का बड़ा विस्तृत वर्णन किया है। उन्होंने 'बरेक्षा' अर्थात् सगाई से लेकर सुहागरात तक का विस्तृत वर्णन किया है। इस वर्णन द्वारा एक तथ्य यह प्रकाश में आता है कि सामाजिक उत्सव और कृत्य शताब्दियों तक एक ही सा रूप धारण किए रहते हैं। उनमें कोई विशिष्ट अन्तर नहीं आ पाता। क्योंकि जायसी ने रत्नसेन-पद्यावती के विवाहोत्सव का जो वर्णन किया है वह आज भी चार-पाँच सदियाँ बीत जाने पर भी लगभग वैसा ही मिलता है। आज भी विवाह उसी प्रकार होते हैं, राजन्य वर्ग में तो विशेष रूप से उसी प्रकार होते हैं। इसलिए सामाजिक-विकास का अध्ययन करने वालों के लिए यह वर्णन अपना विशिष्ट महत्व रखता है। साथ ही यह भी बताता है कि लोकप्रिय सामाजिक रूढ़ियाँ सदियों तक अपरिवर्तित बनी रहती हैं।

अब इस वर्णन की भी थोड़ी-सी झांकी देख ली जाय। जायसी ने रत्नसेन पद्मावती के विवाह से सम्बन्धित प्रत्येक रस्म का विस्तृत वर्णन किया है। आरम्भ मे बरेक्षा (सगाई या टीका) की रस्म की जाती है-'भा बरोक अब तिलक संवारा।' इसके बाद पंडितगण पत्रा देखकर विवाह की लग्न (मुहूर्त) निकालते हैं और फिर उसी के अनुसार सारे सिहल में निमन्त्रण-पत्र भिजवाये जाते है-

'लगन धारा औ रचा वियाहू। सिहल नेवत फिरा सब काहू।'

इसके उपरान्त विवाह की तैयारियां आरम्भ हो जाती है। मंडप छाया जाता है, जमीन पर लाल बिसात बिछाई जाती है और अन्य साज-सज्जा के साथ सार नगर विवाह के मंगल-गीतों से गूंजने लगता है-

'रचि-रचि मानिक मांडव छावा। औ भुँइ रात बिछाय विछावा ।।
चन्दन खांभ रचे बहु भाँती। मानिक दिया बरहि दिन-राती ।।
घर घर बन्दन रचे दुबारा । जावत नगर गीत झनकारा ।।'

इस तैयारी के उपरान्त रत्नसेन राजसी वस्त्र धारण कर, दूल्हा बन घोड़े पर सवार हो, बारात के साथ राजा गन्धर्वसेन के द्वार की ओर चल देता है। बारात की अगवानी सुन पद्मावती अपने दूल्हे को देखने की उत्सुकता से भर सखियों सहित अटारी पर जा चढ़ती है और वहाँ से रत्नसेन के दर्शन कर आनन्द और उल्लास से भर उठती है। बारात के दरवाजे पर आ जाने पर उसका स्वागत सत्कार किया जाता है और फिर जनवासे में ठहरा दिया जाता है। इसके बाद बारात को भोजन कराया जाता है और फिर रत्नसेन और पद्मावती का विवाह उसी रीति से किया जाता है। जिस प्रकार कि आजकल भी हिन्दओं में होता है। विवाह के उपरांत गन्धर्वसेन अपने जामाता को अपार दहेज देता है। यहाँ इस सम्बन्ध में यह द्रष्टव्य है कि जायसी ने इस विवाहोत्सव से सम्बन्धित छोटी-सी-छोटी रस्म का भी वर्णन किया है। इस वर्णन की यह विशेषता है कि इसमें एक राजा और राजकुमारी के विवाह का वर्णन किया गया है। पुराने जमाने में राजा के विवाह के समय लाल रंग का विशेष महत्व माना जाता था। इसी कारण जायसी ने इस अवसर पर रत्नसेन के वस्त्र, रथ, सिहासन, छत्र आदि सभी को लाल रंग का दिखाया है। जैसे-

'औ भुँइ रात बिछाव बिछावा।'
'पहिरडू राता दगल सोहाबा।'
'भो राता सोने रथ साजा।'
'ऊपर रात छत्र तस छावा।'

भोज-वर्णन – जायसी ने 'पद्मावत' में दो प्रसंगों में दो प्रकार के भोजों (दावतों) का वर्णन किया है। पहला भोज राजा गन्धार्वसेन पद्मावती के विवाह के अवसर पर रत्नसेन और उसके साथियों को देता है। यह भोज पूर्ण रूपेण शाकाहारी भोज है जिसमें नाना प्रकार के पकवान पकाए जाते हैं, माँस नहीं पकाया जाता। इसका वर्णन करते समय जायसी ने पकवानों की एक लम्बी तालिका दी है। उन्होंने इस भोज को शाकाहारी सम्भवतः इसीलिए बताया है कि यह एक हिन्दू द्वारा दूसरे हिन्दुओं को दिया गया भोज था। और हिन्दू शाकाहारी होते हैं। इसीलिए उन्होने इसमें माँस-मछली द्वारा बनाए जाने वाले खाद्य-पदार्थों का वर्णन नहीं किया है।

जायसी दूसरे प्रकार के भोज का वर्णन रत्नसेन द्वारा अलाउद्दीन को दिए गए भोज के प्रसंग में करते हैं। इसमें रत्नसेन शाकाहारी और माँसाहारी दोनों प्रकार के खाद्य पदार्थ तैयार करवाता है। इसलिए कि अलाउद्दीन मुसलमान है और मुसलमान मांसाहारी होते है। इस भोज का वर्णन करते समय जायसी दोनों प्रकार के खाद्य-पदार्थों की विस्तृत सूची हमारे सामने रख देते हैं। हमारा ख्याल है कि संसार के सर्वाधिक प्रसिद्ध भोजों के अवसरों पर भी इतने प्रकार के खाद्य-पदार्थ नहीं बने होंगे जितने कि इस भोज के अवसर पर बने बताए गए हैं।

त्यौहारों का वर्णन–त्यौहार सामाजिक जीवन के अभिन्न अंग होते हैं। जायसी के युग में भी समाज में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान था। विशेष रूप से दो त्योहारों बसन्त और होली का ही वर्णन किया। इन दोनों में से भी उन्होंने बसन्त का ही अधिक वर्णन किया है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि श्रृंगार रस के चित्रण में बसन्त का विशेष महत्त्व माना जाता है। बसन्त पंचमी को बसन्तोत्सव मनाया जाता है। जायसी इसी बसन्त पंचमी के अवसर पर पद्मावती को पूजन के निमित्त महादेव के मंडप में भेजकर रत्नसेन के साथ उसकी पहली मुलाकात कराते हैं। इस ऋतु में विभिन्न प्रकार के उत्सव मनाए जाते हैं। सारी धारती फूलों से भर जाती है। नारियाँ श्रृंगार कर गाती नाचती हैं। जायसी इसी का वर्णन करते हुए कहते हैं-

'नवल बसन्त नवल सब बारी । सैंदुर वुक्कन होइ धमारी ।
खिनहिं खिनहिं खिन चाँचरि होई । नाच कूद भूला सब कोई ।।
सेदुर खेह उड़ा अस, गगन भएउ सब रात ।
राती सगरिउ धरतीं, राते विरिष्छन्ह पात ।।'

जायसी ने वसन्त का अनेक स्थानों पर विस्तृत वर्णन किया है। फाल्गुन का महीना बसन्त का महीना होता है। इसकी पूर्णिमा को होली जलाई और खेली जाती है। इसलिए जायसी होली का वर्णन बसन्त के साथ ही करते हैं। होली के साथ ही बसन्त ऋतु समाप्त हो जाती है-

'फागु बेनि पुनि दाहब होली। सँइतव बेह उड़ाव झोली ।।'

सेना, युद्धादि का वर्णन – 'पद्मावत' में कई युद्धों का वर्णन है। जायसी ने उनके प्रसंग में सेना, युद्ध आदि का विस्तृत वर्णन किया है। इस वर्णन को

पढ़ कर यह पता चलता है कि उस युग में सेनाएँ कैसी होती थीं और युद्ध कैसे लड़े जाते थे। अलाउद्दीन की सेना में भारत के विभिन्न प्रदेशों के सैनिकों के अतिरिक्त दूसरे देशों के भी असंख्य सैनिक थे। ये सैनिक युद्ध करते समय तोप, तीर, तलवार, भाला, साँग, बुर्ज आदि नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करते थे। जब किसी गढ़ पर कोई शक्तिशाली शत्रु आक्रमण करता था तो उस गढ़ का राजा युद्ध और जीवन के लिए आवश्यक सभी प्रकार की वस्तुओं का प्रचुर मात्रा में संचय कर गढ़ का फाटक बन्द कर भीतर बैठ जाता था और गढ़ की प्राचीरों पर से शत्रु-सेना पर वाण-वर्षा होती रहती थी। शत्रु- सेना आकर गढ़ को चारों ओर से घेर वहीं जम जाती थी। जब प्रयत्न करने पर भी गढ़ नहीं टूट पाता था तो शत्रू-सेना ऊँचे-ऊँचे बुर्ज बना उसके ऊपर से तोपों द्वारा गढ़ पर भयंकर गोलाबारी करने लगती थी। जायसी ने अलाउद्दीन द्वारा चित्तौड़ गढ़ का घेरा डाले जाने के अवसर पर तत्कालीन युद्ध-नीति का विस्तृत वर्णन किया है।

विभिन्न प्रथाओं का वर्णन - जायसी ने राजपूतों की दो इतिहास प्रसिद्ध प्रथाओं का भी वर्णन किया है। ये दो प्रथाएँ हैं-जौहर-प्रथा, और सती-प्रथा। जब अलाउद्दीन पहली बार चित्तौड़ पर आक्रमण करता है तो राजपूत अपनी पराजय को निश्चित समझ जौहर करने की तैयारियाँ करने लगते हैं। जायसी इसका वर्णन करते हुए कहते है-

'चन्दन अगर मलय गिरि काड़ा। पर घर कीन्ह सरा रचि ठाड़ा ।।
जौहर कहूँ साजा रनिवासू। जिन्ह सत हिय कहाँ तिन्ह आँसू ।।
पुरुषन्ह खड़ग सम्भारे, चन्दन सेवरे देह।
मेहरिन्ह सेंदुर मेल, चहहि भई नरि बेह ।।'

परन्तु रत्नसेन और अलाउद्दीन में सन्धि हो जाने से जौहर नहीं हो पाता जौहर उस समय होता है जब अलाउद्दीन दूसरी बार चित्तौड़ पर आक्रमण करता है।

'जौहर भई सब इस्तिरी, पुरुष भुए संग्राम।
बादशाह गढ़ चरा, चितउर भा इसलाम ।।'

सती-प्रथा का वर्णन 'पद्मावत' के अन्त में होता है। रत्नसेन की मृत्यु हो जाने पर नागमती और पद्मावती पति के साथ सती हो जाने के लिए सोलह श्रृंगार करने लगती हैं। सती होने वाली नारियाँ विलाप न कर सुहाग के सम्पूर्ण चिह्न धारण कर शान्त और गम्भीर भाव से पति की चिता पर चढ़कर भस्म हो जाती हैं। रत्नसेन की दोनों रानियाँ इसी प्रकार सती होती हैं। जायसी ने सती होने की प्रत्येक क्रिया का जो वर्णन किया है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय सती प्रथा का कैसा रूप था। सती होने से पूर्व दोनों रानियाँ अन्तिम बार अपना पूरा श्रृंगार करती हैं। वह विलाप नहीं करतीं। परलोक में पुन: उसी पति के साथ मिलन होने की आशा से भर, गाजे-बाजे के साथ पति के शव के साथ श्मशान की ओर प्रस्थान करती हैं। श्मशान में जब चिता सजा दी जाती है तो वे पहले खूब दान-पुण्य करती है, फिर सात बार चिता की परिक्रमा कर पति के शव के साथ चिता पर बैठ जाती हैं। उसके बाद चिता में आग लगा दी जाती है और वे पति के शव के साथ भस्म हो जाती है। जायसी इसका वर्णन करते हुए कहते हैं-

'सर रचि दान पुत्र बहु कीन्हा। सात बार फिरि भाँवरि कीन्हा ।।
लेइ सर ऊपर खाट बिछाई। प्रौढ़ी दुवौ कन्त गर लाई ।।
लागी कंठ आगि देइ होरी। छार भई जरि, अंग न मोरी ।।
राती पिउ के नेह गई, सरग भएउ रतनार
जो रे उवा, सो अथवा, रहा न कोई संसार।'

लोक-विश्वासों और लौक विचारों का वर्णन - जायसी ने समाज में प्रचलित नाना प्रकार के लोक-विश्वासों और लोक विचारों का भी विस्तृत वर्णन किया है। शकुन विचार, मुहूर्त-विचार देवता, जोगिनी, जादू टोना, सिद्ध-गुटिका आदि सम्बन्धी वर्णन जन-सामान्य के इनमें गहरे विश्वास को ध्वनित करते हैं। उस युग में जनता इनमें गहरा विश्वास रखती थी। रत्नसेन के चित्तौड़ से सिंहल के लिए प्रस्थान करते समय जायसी शुभ शकुनों से सम्बन्धित महर्षि व्यास के विचारों को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं-

'आगे सगुन सगुनिये ताका। दहिने माछ रूप के टाँका ।।
भरे कलस तरुनी जल आई। 'दहिउ लेउ' ग्वालिनि गोहराई ।।
मालिनि आब मौर लिए गाँथे। खंजन बैठ नाग के माथे ।।
दहिने मिरिग आइ बन धाएँ। प्रतीहार बोला खर बाएँ ।।
जा कह सगुन होहि अस, औ गवन जेहि आस ।।
अष्ट महासिधि तेहि कहें, जस कवि कहा बियास ।।'

किसी कार्य को करते समय या यात्रा के अवसर पर इन शकुनों के अतिरिक्त दिशाशूल, योगिनी, तिथि, राशि, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदि के सम्बन्ध में भी विचार किया जाता था। इनका सम्बन्ध, ज्योतिष शास्त्र से माना गया है। आज भी भारत के बहुत से व्यक्ति इनका विचार करते हैं और इन्हें अनुकूल या प्रतिकूल जान कर ही किसी भी कार्य को करने या न करने का निर्णय लेते हैं। जायसी ने रत्नसेन के सिंहल प्रस्थान करते समय इन सारी बातों का विस्तार के साथ वर्णन किया है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है-

दिशाशूल

'उदित सूक पश्चिम दिसि राहु। बीफै दखिन लक दिसि दाहू ।।
सोम सनीचर पुरुषन चालू। मंगल बुध उतर दिसि कालू ।।'

दिशाशूल के निवारण के उपाय - यदि कहीं जाना अनिवार्य हो और जिस दिशा में जाना हो उधार जाने में ज्योतिष के अनुसार संकट अर्थात् दिशाशूल हो तो जायसी उस दिशाशूल के प्रभाव को दूर करने का उपाय भी बता देते हैं, जैसे-

'मंगल चलन मेल मुख धनियाँ। चलत सोम देखे दरपनियाँ ।।
सूकहि चलत मेल मुख राई। बीफ चलै दखिन गुड़ खाई ।।'

तिथि-विचार -यात्रा करने से पूर्व सप्ताह के दिनों के ही समान तिथि का भी विचार किया जाता है, जैसे-

'परिवा नौमी पुरुष न जाए। दूइज दसमी उत्तर बदाए।'

चन्द्र-विचार - इसी प्रकार यात्रा करने से पूर्व चन्द्रमा की स्थिति पर भी विचार किया जाता है, जैसे-

'गवन कर कहाँ उगरै कोई। सनमुख सोम लाभ बहु होई ।।
दहिन चन्द्रमा सुख सरवदा। बाएँ चन्द्र त दुख आपदा ।।'

जायसी ने ये सारे वर्णन ज्योतिष शास्त्र के अनुसार ही किए है। आज भी हमारे रूढ़िवादी समाज में इनका बरावर विचार किया जाता है।

निष्कर्ष - 'पद्मावत' में पाए जाने वाले उपयुक्त नाना प्रकार के वर्णनों से उस युग के समाज, उनकी मान्यताओं और उसमें प्रचलित नाना प्रकार की रूढ़ियों और प्रथाओं का एक अच्छा-खासा चित्र प्रस्तुत हो जाता है। इस ग्रन्थ की रचना करने में जायसी का उद्देश्य समकालीन समाज का चित्रण करना न होकर प्रेम के निर्मल, उदात्त रूप की प्रतिष्ठापना करना ही रहा था। इसी कारण उनका सारा ध्यान प्रेम के इसी रूप का चित्रण करने में लगा रहा है। परन्तु उन्होंने यह चित्रण एक कथा के माध्यम से किया है, और कथा में सामाजिक जीवन अनिवार्य रूप से आ जाता है। अत: जायसी को इस कथा

को कहते समय जितना अवकाश और अवसर मिल सका है, उन्होंने उसके अनुसार ही सामाजिक जीवन को अपनी लेखनी की परिधि से समेट लिया है। इसके साथ ही उन्होंने जगह–जगह नाना विधायों से सम्बन्धित अपने ज्ञान का भी प्रदर्शन किया है। इस ज्ञान–प्रदर्शन से हमें इतना तो पता चल ही जाता है कि उस युग के समाज में किस–किस प्रकार की मान्यताएँ प्रचलित और लोकप्रिय थी। इन सबकी सहायता से उस युग के समाज का अध्ययन करने वाले समाजशास्त्री उस युग के समाज की एक स्थल रूपरेखा तो बना सकते हैं।

अत: यह कहना नितान्त भ्रमपूर्ण है कि जायसी 'पदमावत' की रचना करते समय समाज की सर्वथा भूल केवल प्रेम का ही चित्रण करने में डूबे रहे थे । यह सही है कि समाज का चित्रण करते समय उनकी दृष्टि तुलसी के समान व्यापक नहीं रही थी। इसी कारण 'पद्मावत' में 'रामचरितमानस' के समान समाज में व्यापक स्थान नहीं मिल सका। जायसी की सूर के ही समान अपनी सीमाएँ थीं । अपनी उन्हीं सीमाओं के भीतर रहते हुए उन्होंने समाज का जितना चित्रण किया है, उसे उपेक्षणीय नहीं माना जा सकता। समाजशास्त्र की दृष्टि से उसका अपना एक निश्चित और विशिष्ट महत्व है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. जायसी– पद्मावत।
2. तुलसी – रामचरित मानस।
3. कबीर– बीजक।
4. प्रेमचन्द्र का साहित्य।

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

वित्तीय समावेशन

डॉ. रुकमणी यादव*

* सहायक प्राध्यापक, श्री नीलकंठेश्वर शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खंडवा (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – जब हर किसी की वित्तीय सेवाओं तक पहुंच होती है जैसे ऋण, ऋण, इक्विटी, बचत और बीमा – वे सभी धन विकसित कर सकते हैं। इसे वित्तीय समावेशन कहते हैं।

लेन-देन, भुगतान, बचत, ऋण और बीमा की उनकी मांगों को पूरा करने के लिए लोगों और व्यवसायों को व्यावहारिक और उचित मूल्य की वित्तीय वस्तुओं और सेवाओं तक पहुंच होनी चाहिए। इसे वित्तीय समावेशन कहते हैं।

वित्तीय समावेशन से लोगों के जीवन और उद्यमों को पूरी तरह से बदला जा सकता है। वित्तीय संस्थानों ने ऐतिहासिक रूप से कम आय वाले व्यक्तियों, महिलाओं और अन्य सामाजिक-आर्थिक रूप से वंचित समूहों को कम किया है। वे अक्सर अनौपचारिक, अनियमित वित्तीय उपकरणों पर निर्भर रहे हैं क्योंकि उनके पास औपचारिक सेवाओं तक पहुंच के साथ-साथ उन्हें नियोजित करने के लिए लचीलापन और ज्ञान की कमी है। आधिकारिक सेवाओं तक पहुंच रखने वाले लोगों और कंपनियों के विपरीत, यह आर्थिक संभावनाओं का लाभ उठाने की उनकी क्षमता को सीमित करता है और उनके लिए अप्रत्याशित चिकित्सा लागत या जलवायु परिवर्तन से जुड़ी मौसम संबंधी घटनाओं जैसे झटकों से उबरने में अधिक मुश्किल बनाता है।

क्या आप बिना लोन लिए घर या कार खरीद सकते हैं? हममें से बहुत लोग ऐसा नहीं करेंगे। बीमा न होने और आपातकालीन चिकित्सा देखभाल के लिए भुगतान करने के बारे में क्या? एक ही कथा। वित्तीय संस्थानों तक पहुँच के बिना लोगों के लिए खर्च के लिए पर्याप्त धन बचाने के लिए लगभग कठिन है, बहुत कम वह धन जमा करते हैं जो वे अपने बच्चों के लिए छोड़ सकते हैं।

वैश्विक स्तर पर वित्तीय समावेशन एक महत्वपूर्ण समस्या है। उभरती अर्थव्यवस्थाओं में, औपचारिक बचत और ऋण लगभग 1.5 बिलियन व्यक्तियों के लिए दुर्गम है। वे ऋण के लिए अनाधिकारिक ऋणदाताओं और व्यक्तिगत नेटवर्क पर निर्भर हैं, नकदी के साथ हर चीज के लिए भुगतान करते हैं, और अपने पैसे को स्टोर करने और निवेश करने के लिए एक सुरक्षित साधन की कमी है। ऐसा इसलिए है क्योंकि वित्तीय समावेशन केवल ऋण, खुले बैंक खाते और भुगतान करने के लिए आवेदन करने में सक्षम होने से अधिक है। यह एक उपकरण के रूप में भी कार्य करता है। आर्थिक अवसर और उपलब्धि के बीच मौजूद अंतर को वित्तीय समावेशन के माध्यम से बंद किया जा सकता है। हमारे पास सदियों के सीमांतकरण को पलटने और सामान्य आर्थिक विस्तार का मार्ग प्रशस्त करने का एक महत्वपूर्ण अवसर है।

भारत में वित्तीय समावेशन – 15 अगस्त 2014 को वित्तीय समावेशन के लिए राष्ट्रीय मिशन प्रधानमंत्री जन धन योजना (पीएमजेडीवाई) को पहली बार चार साल की अवधि के लिए शुरू किया गया था। इसमें वित्तीय साक्षरता, ऋण उपलब्धता, बीमा और पेंशन के साथ-साथ प्रत्येक परिवार के लिए कम से कम एक बुनियादी बैंक खाते के साथ बैंकिंग सेवाओं तक सार्वभौमिक पहुंच की परिकल्पना की गई है।

तीन सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम, प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना (पीएमजेजेबीवाई), प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना (पीएमएसबीवाई) और अटल पेंशन योजना (एपीवाई) के पास पीएमजेडीवाई के लिए एक मंच है। प्रशासन ने 28 अगस्त, 2018 को व्यापक पीएमजेडीवाई पहल जारी रखने का फैसला किया है, लेकिन हर घर से हर वयस्क पर जोर देने के साथ।

वित्तीय समावेशन पहल

जन धन-आधार-मोबाइल (जेएएम) ट्रिनिटी – पीएमजेडीवाई, आधार और अधिक मोबाइल कनेक्टिविटी के लागू होने से सरकारी सेवाएं प्राप्त करने के तरीके में बदलाव आया है।

मार्च 2020 के अनुमानों के अनुसार, कुल मिलाकर 380 मिलियन लोगों को जन धन प्रणाली से लाभ हुआ है।

आधार ने व्यक्तिगत पहचान के विचार में क्रांतिकारी परिवर्तन किया है, एक ऐसी प्रणाली स्थापित करके वित्तीय समावेशन की प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाया है जो न केवल सत्यापित करने के लिए सुरक्षित है बल्कि प्राप्त करने के लिए सरल भी है।

देश के गरीब और अशिक्षित नागरिकों को सशक्त बनाने के लिए सरकार ने वित्तीय समावेशन का समर्थन करने और वित्तीय सुरक्षा प्रदान करने के लिए कई ऐतिहासिक कार्यक्रम भी शुरू किए हैं। इनमें अटल पेंशन योजना, प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना, प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना, प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना और प्रधानमंत्री मुद्रा योजना शामिल हैं।

ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में वित्तीय सेवाओं का विस्तार – ग्रामीण क्षेत्रों में वित्तीय समावेशन को बढ़ावा देने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) और राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) ने पहल की है।

1. इनमें सुदूर क्षेत्रों में बैंक शाखाएं खोलना शामिल है।
2. किसान क्रेडिट कार्ड जारी करना (केसीसी)।
3. बैंकों के साथ स्व-सहायता समूहों (एसएचजी) को जोड़ना।
4. स्वचालित टेलर मशीनों (एटीएमएस) की संख्या में वृद्धि।
5. बिजनेस कॉरेस्पोंडेंट्स मॉडल ऑफ बैंकिंग आदि।

डिजिटल भुगतान को बढ़ावा - एनपीसीआई द्वारा एकीकृत भुगतान इंटरफेस (यूपीआई) को मजबूत करने के साथ डिजिटल भुगतान को अतीत की तुलना में सुरक्षित बनाया गया है।

आधार आधारित भुगतान प्रणाली (एईपीएस) किसी भी स्थान पर और किसी भी समय माइक्रो एटीएम का उपयोग करके आधार सक्षम बैंक खाता (एईबीए) को सक्षम बनाती है।

ऑफलाइन लेन-देन-अनुकूलित अनुपूरक सेवा डेटा (यूएसएसडी) के कारण भुगतान प्रणाली को अधिक सुलभ बनाया गया है, जो इंटरनेट के बिना भी मोबाइल बैंकिंग सेवाओं का उपयोग करना संभव बनाता है।

वित्तीय साक्षरता में वृद्धि -परियोजना वित्तीय साक्षरता पहल भारतीय रिजर्व बैंक ने शुरू की है। इस परियोजना का उद्देश्य कई लक्षित दर्शकों को शिक्षित करना है, जिनमें महिलाएं, स्कूल में नामांकित बच्चे या कॉलेज में प्रवेश करने की योजना बनाना, ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में गरीब, सशस्त्र बलों के सदस्य और वरिष्ठ नागरिक, केंद्रीय बैंक और बुनियादी बैंकिंग अवधारणाओं के बारे में।

राष्ट्रीय प्रतिभूति बाजार संस्थान (एनआईएसएम) और भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी) की मुख्य पहल को पॉकेट मनी कहा जाता है और इसका उद्देश्य छात्रों की वित्तीय साक्षरता बढ़ाना है। स्कूली बच्चों को पैसे का मूल्य और निवेश, बचत और वित्तीय योजना के महत्व का लक्ष्य है।

संबंधित चुनौतियां - सभी वित्तीय सेवाओं के लिए प्रवेश बिंदु एक बैंक खाता है। हालांकि, विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में 190 मिलियन वयस्कों का बैंक खाता नहीं है।

डिजिटल विभाजनरू वित्तीय समावेशन को बढ़ावा देने वाली डिजिटल प्रौद्योगिकी को अपनाने की सबसे आम बाधाएं:

1. उचित वित्तीय उत्पादों की अनुपलब्धता।
2. डिजिटल सेवाओं का उपयोग करने के लिए हितधारकों के बीच कौशल की कमी।
3. बुनियादी मुद्दे।
4. कम आय वाले उपभोक्ता जो डिजिटल सेवाओं तक पहुंच के लिए आवश्यक प्रौद्योगिकी का वहन करने में सक्षम नहीं हैं।

घाटे को लागू करना: उदाहरण के लिए, बहुत सारे निष्क्रिय खाते जो कभी भी वास्तविक वित्तीय गतिविधि को नहीं देखते थे, जन धन नीति के परिणामस्वरूप खोले गए थे। बड़े परिचालन व्यय ने केवल वास्तविक लक्ष्य को कमजोर करने के लिए काम किया क्योंकि ऐसे सभी कार्यों में शामिल संगठनों के लिए एक खर्च होता है। यह महत्वपूर्ण है कि सभी हितधारक सही इरादों के साथ इस तरह की गतिविधियों में संलग्न हों न कि केवल इन हानिकारक परिणामों को रोकने के लिए दिखाने के लिए।

अनौपचारिक और नकदी-बहुल अर्थव्यवस्था: भारत भारी प्रभुत्व वाली नकदी अर्थव्यवस्था है, यह डिजिटल भुगतान अपनाने के लिए एक चुनौती है। इसके अलावा, अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) के अनुसार, भारत में कार्यरत लगभग 81 प्रतिशत लोग अनौपचारिक क्षेत्र में काम करते हैं। लेनदेन के नकद मोड पर उच्च निर्भरता के साथ एक विशाल अनौपचारिक क्षेत्र का संयोजन डिजिटल वित्तीय समावेशन के लिए एक बाधा है

वित्तीय समावेशन में लिंग अंतर: कई रिपोर्टों के अनुसार समाज में पुरुषों द्वारा धारित खातों की संख्या महिलाओं से अधिक है और महिलाओं को बैंकिंग प्रणाली से कम जोड़ा जाता है, यह मोबाइल हैंडसेट की उपलब्धता और महिलाओं की तुलना में पुरुषों में इंटरनेट डेटा सुविधा की उपलब्धता सहित सामाजिक-आर्थिक कारकों के लिए जिम्मेदार है।

ऋण पहुंच की कमी: कम आय वाले परिवारों और अनौपचारिक व्यवसायों को ऋण प्रदान करने में मुख्य बाधाओं में से एक औपचारिक ऋणदाताओं के पास उपलब्ध जानकारी की कमी है जो उनकी ऋण पात्रता निर्धारित करती है। इससे ऋण की भारी लागत आती है।

उठाए जाने वाले कदम

संवाददाता मॉडल को पुनर्जीवित करना: चूंकि देश के हर कोने में शाखाएं होना अव्यावहारिक है, इसलिए संभावित ग्राहकों से बैंक पत्राचार के माध्यम से संपर्क किया जाता है। हालांकि, एक अपर्याप्त क्षतिपूर्ति संरचना संवाददाता बैंकिंग की अपील से अलग हो जाती है। नतीजतन, बैंकिंग पत्राचारों के लिए अधिक वित्तीय प्रोत्साहन के साथ-साथ बेहतर प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

JAM ट्रिनिटी का लाभ उठाना: एक घर के मूल्यांकन और एक अनौपचारिक व्यापार की क्रेडिटवर्थ को प्रौद्योगिकी द्वारा बढ़ाया जाना चाहिए। डेटा गोपनीयता के लिए पर्याप्त सुरक्षा प्रदान करते हुए सरल ऋण पहुंच प्रदान करने के लिए आवश्यक प्रौद्योगिकियों के साथ एक नया डेटा-शेयरिंग ढांचा (जन धन और आधार प्लेटफार्मों का उपयोग) लागू किया जाएगा।

डेटा संरक्षण व्यवस्था के लिए आवश्यक: अधिक डिजिटलीकरण के अलावा देश में साइबर सुरक्षा और डेटा सुरक्षा व्यवस्था को मजबूत करने की भी जरूरत है।

अलग-अलग बैंकों का लाभ उठाना: भुगतान बैंकों और छोटे वित्त बैंकों जैसे अलग-अलग बैंकों का उपयोग कम सेवा वाले क्षेत्रों में भुगतान प्रणाली को बढ़ाने के लिए किया जा सकता है।

ग्रामीण क्षेत्रों के लिए यूएसएसडी को बढ़ावा देना: चूंकि यूएसएसडी (अनस्ट्रक्चरल सप्लीमेंटरी सर्विस डेटा) चौनल के माध्यम से भुगतान का इंटरनेट पर एक लाभ है, क्योंकि वे गैर-स्मार्ट फोन उपयोगकर्ताओं के एक महत्वपूर्ण प्रतिशत को भी कवर कर सकते हैं, उन्हें आगे बढ़ाया जाना चाहिए (यूएसएसडी प्रक्रिया में किए गए खर्चों की क्षतिपूर्ति करके)। भारत में, ग्रामीण क्षेत्रों में जहां कुछ आबादी पर निर्भर रहने योग्य इंटरनेट कनेक्टिविटी जारी है, नेक से बहुत लाभ हो सकता है।

उपसंहार - भारत में वित्तीय समावेशन की सफलता के लिए, एक बहुआयामी दृष्टिकोण होना चाहिए जिसके माध्यम से मौजूदा डिजिटल प्लेटफार्मों, बुनियादी ढांचे, मानव संसाधनों और नीतिगत ढांचे को मजबूत किया जाता है और नए तकनीकी नवाचारों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। यदि मौजूदा समस्याओं से निपटने के लिए पर्याप्त उपाय किए जाते हैं तो वित्तीय समावेशन में गरीबों के आर्थिक विकास के लाभों को बढ़ाने की क्षमता है। कम आय वाले और कमजोर व्यक्तियों, परिवारों और एमएसई के लिए अधिक समावेशी, लचीला और पर्यावरण के अनुकूल भविष्य बनाने के लिए, वित्तीय समावेशन

2.0 को समावेशी वित्त के प्रभाव को अधिकतम करने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Toxic Disaster (Which was published in The Hindu on May 8th 2020)
2. Google Images
3. RBI website for (Defining Financial Inclusion)
4. https://pib.gov.in/ (For Details of JAM trinity.)

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

योग और ध्यान के वैज्ञानिक पहलू

प्रियंका गुप्ता* हिमांशु मुछाल सुजीत भट्ट*****

* विभागाध्यक्षा (योग विभाग) पंजाब सिन्ध क्षेत्र साधू महाविद्यालय, ऋषिकेश (उत्तराखंड) भारत
** एम0ए0 योगाचार्य (छात्र) (योग विभाग) पंजाब सिन्ध क्षेत्र साधू महाविद्यालय, ऋषिकेश (उत्तराखंड) भारत
*** सहायक प्राध्यापक (योग विभाग) पंजाब सिन्ध क्षेत्र साधू महाविद्यालय, ऋषिकेश (उत्तराखंड) भारत

प्रस्तावना– आज भूमन्डलीकरण के युग में अति मशीनीकरण एवं प्रतिस्पर्धात्मकता होने से जीवन में अत्यधिक तनाव भरा रहता है। इसके अतिरिक्त समाज में हो रहे नित्य बदलाव–आधुनिकीकरण, नगरीकरण, भौतिकवाद और प्रतिस्पर्धा इत्यादि से हर आयु वर्ग को तनाव ग्रस्त बना दिया है। आजकल समाज का हर वर्ग चिंता एवं तनाव का सामना कर रहा है। प्रत्येक व्यक्ति का अनुभव है कि व्यक्ति कि आवश्यकताएं पूरी नहीं होने की स्थिति उनकी पूर्ति में बाधाएं समय–समय पर उत्पन्न होती रहती है। इस कारण तनाव होता है। वर्तमान समय में व्यक्ति को कई परिस्थितियों एवं समस्याओं का सामना करना पड़ता है तब आवश्यकता की पूर्ति होती है। प्रतिकुल परिस्थितियां तनाव उत्पन्न करती है आज की व्यस्त जीवनचर्या एवं भागदौड़ की जीवन शैली में प्रत्येक व्यक्ति तनाव का शिकार है। इसे बीसवी शताब्दी में बीमारी के रूप में स्वीकार किया गया है। आज प्रत्येक वर्ग नौकरी–पेशा, अमीर गरीब, स्त्री–पुरुष बालक युवा एवं वृद्ध सभी तनावग्रस्त है। तनाव ग्रस्तता के कई कारण है। इनसे अनेक समस्याओं का जन्म होता है जैसे :– रोजगार की समस्या, भ्रष्टाचार की समस्या, प्रतिस्पर्धा, संघर्ष, युद्ध का भय एवं प्राकृतिक आपदा तथा तेज रफ्तार भरी जिन्दगी की ओर बढ़ते हुए कदम, भौतिक जीवन शैली में कई वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास ने व्यक्ति के जीवन स्तर को बढ़ाया है, परन्तु इन्हें प्राप्त करने में व्यक्ति को संघर्ष करना होता है। इसमे व्यक्ति कि शारीरिक व मानसिक ऊर्जा का व्यय अधिक होता है।

अब विद्यार्थियों में भी तनाव के स्तब्धकारी लक्षण तथा प्रभाव गोचर होने लगे है जिससे कि उनके शारीरिक, मानसिक, मनोभावों और सामाजिक दृष्टिकोण के प्रति दृढ़ता के विकास एवं वृद्धि का ह्रास हो रहा है। विद्यार्थियों के जीवन में भी तनाव के अस्तित्व का प्रभाव राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के कारण उजागर होने लगा है। इसके अतिरिक्त आधुनिक शिक्षा प्रणाली में परीक्षाएँ भी विद्यार्थियों को बहुत अधिक व्यस्त करती हैं और उन्हें इतना समय भी नहीं मिल पाता कि वह अपने आप को मुक्त रूप से विकसित करें तथा स्वयं एवं समाज के प्रति सजगता दिखा सकें। तनाव विद्यार्थी को अलगाव एवं वैराग्य की ओर धकेलता है या फिर उत्तोजित एवं असामान्य व्यवहार या असमायोजक गतिविधियों में पड़कर चारित्रिक हनन की ओर अग्रसर करता हैं। शैक्षिक तनाव विद्यार्थियों से विशेष रूप से सम्बन्धित है। हम सब इस परिणाम परक युग में जी रहें हैं जिसमें अत्याधिक लोग परखने के उपरान्त ही प्रभावित होते हैं।

विद्यार्थी की सफलता का स्तर शिक्षा प्रणाली में हुए परीक्षण एवं परीक्षाओं में प्राप्त अंको द्धारा मापा जाता है। शिक्षा प्रणाली पर हुए कई प्रकार के शोधकार्यों पर सर्वेक्षणों में यह पाया गया कि विद्यार्थियों पर भाँति–भाँति के तनाव व्याप्त है जैसे कि सामाजिक एवं शैक्षिक तनाव। कई प्रकार की नकारात्मक परिस्थितियों के विषय में सोचने पर भी तनाव का प्रभाव बढ़ता है जैसे कि परीक्षा में असफलता, जीवन में भविष्य का क्या होगा? और असफल रहने पर स्वयं का उत्तारदायित्व क्या होगा? इत्यादि। समाज में आनंद एवं समृद्ध जीवन जीने के असीम माधुर्य को प्राप्त करने में योग–विद्या विश्वभर में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। वास्तव में 'योग' की व्याख्या मानसिक नियंत्रण के विज्ञान के रूप में की गई है। यदि योग को बचपन से नियमित रूप से अपनाया जाएं तो यह केवल मानसिक स्थिति पर ही नियंत्रक की भूमिका ही नही निभाता है बल्कि व्यवहार कुशलता और व्यक्तित्व को भी निखारता है। यदि मध्यम एवं प्रौढ़ आयु वर्ग के लोग भी यौगिक अभ्यास नियमित रूप से करे तो उनके वृद्ध होने की प्रक्रिया भी निलम्बित होगी जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति क्रियाशील एवं शक्ति व उमंग से संपन्न होगा तथा विश्वसनीय रूप से उसकी आयु भी लम्बी होगी। नियमित दैनिक योगाभ्यास शरीर और मन की संपूर्ण समस्थिति को जीवन भर बनाये रखता है।यह ग्रन्थि मस्तिष्क के मध्य में स्थित होती है, मेडिकल शोधकर्ताओं के अनुसार इस अंग में रक्त आपूर्ति शरीर के अन्य अंगों की तुलना में अधिक होती है तो निश्चित हो यह कहा जा सकता है कि यह अंग अन्य अंगों की तुलना में महत्वपूर्ण है और यह रक्त आपूर्ति निश्चित ही महत्वपूर्ण कार्यों में ही खर्च होती होगी। अभी तक बहुत अधिक इस ग्रन्थि के विषय में ज्ञात नहीं हो पाया है। यह ग्रन्थि मेलेटोनिन नामक हॉर्मोन का नियमन करती है जो कि सैक्स हॉर्मोन है। अत: यौन विकास में यह महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। बच्चों में पीनियल ग्रन्थि के सक्रिय होने से ही यौन क्रियाएं नियन्त्रित रहती हैं। आध्यात्मिक रूप से यह ग्रन्थि आज्ञा चक्र से सम्बन्धित है। त्राटक के अभ्यास से पीनियल ग्रन्थि सक्रिय होती है, चित्त एकाग्र होता है और उच्च स्थिति प्राप्त होती है। महर्षि घेरण्ड ने त्राटक के अभ्यास से दिव्य दृष्टि की प्राप्ति की बात कही है दिव्य दृष्टि अर्थात् चित्त की शान्त और एकाग्र अवस्था। चित्त की एकाग्रता से पीनियल ग्रन्थि खुलती है।

तर्क संगत कार्यों को नियमित करने वाला हॉर्मोन सीरोटोनिन भी इसी ग्रन्थि के द्धारा नियंत्रित होता है। अत: पीनियल के व्यावस्थित होने से बुद्धि एकाग्र होनी है। स्मरण शक्ति बढ़ती है। यह दृष्टि से सम्बन्धित संवेदनाओं को भी नियन्त्रित करती है। शरीर नियन्त्रण, निद्रा एवं ऐसे बहुत से कार्यों में पीनियल का नियन्त्रण है जो कि शरीर और मन दोनों के द्धारा संचालित

होते हैं। योग की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण ग्रन्थि है।

आज योग को मात्र आत्मा परमात्मा के मिलन के रूप में ना जान कर अलग अलग व्याधियों बीमारियों के निदान में योग एवं आसन प्राणायाम को अनुसंधान के द्वारा पुष्ट किया जा चुका हैं। योग द्वारा सभी प्रकार के रोगों का निदान संभव है। इसे अलग अलग संस्थानों ने चिकित्सकों ने पूर्व परीक्षण एवं पश्च परीक्षण के द्वारा योग के प्रभाव को देखा गया। जिसे मेडिकल साइंस की दृष्टि में योग शीर्षक में प्रस्तुत किया जा रहा है। 'ध्यानं निर्विषयं मन: सांख्य' दर्शन के अनसुार मन का विषय विकारों से रहित होना ध्यान है।

प्रवीणता एवं प्रतिभा को निखारने के लिए प्रगति का मार्ग प्रशस्त करने के लिए एकाग्रता का सम्पादन आवश्यक है। शरीर गत संयम से मनुष्य दीर्घ जीवी तथा स्वस्थ्य होता है। उसी प्रकार संयम एवं एकाग्रता के भाव से वह बुद्धिमान विचारकों की गणना में आ जाता है।

चित्त की चंचलता का समाधान एकाग्रता का अभिवर्धन जिस उपाय से बन पडे उसे ध्यान कहा जाता है। ध्यान में तन्मयता और तत्परता से कार्य किया जाता है। इसी तन्मयता तत्परता के बल से कालिदास जैसे मन्द बुद्धि भी महाकवि कालिदास के रूप में उच्च कोटि के विद्वान बन गए। असफलताओं के कारणों में साधनों की कभी या प्रतिकूल परिस्थितिया उतनी बाधक नहीं होतीं जितनी चित्त की चंचलता होती है। शारीरिक क्षमता के प्रति उदासीनता आलस्य है तथा मानसिक क्षमता का उपयोग न करना प्रमाद है। इन दोनों शत्रुओं की जननी चित्त की चंचलता है।

ध्यान का मुख्य उद्देश्य चंचल चित्त को नियत प्रयोजन की ओर लगा देने की दक्षता ही ध्यान है।ध्यान के लिए यह आवश्यक नहीं कि जन शून्य स्थान हो या जंगल हो। इसके लिए विक्षेप रहित वातावरण होना चाहिए। ध्यान के लिए कोलाहल रहित वातावरण हो साथ ही विक्षेपकारी आवागमन न हो ऐसे स्थान पर ध्यान किया जा सकता है। प्रत्येक क्षेत्र में उपासना उपयोगी मानी जाती है। उपासना सामूहिक होती है तो कोई हानि नहीं है। प्राय: मन्दिरों गिरजाघरों एवं मस्जिदों तथा गुरुद्वारों में सामूहिक रूप से प्रार्थना का रिवाज है। यहाँ न तो एकांत की कमी अखरती है और न ही किसी की एकाग्रता में बाधा होती है। एक दिशा में चिंतन होने से अनेक व्यक्तियों का समूह होने पर भी एक साथ बैठकर एकाग्रता का भली प्रकार से अभ्यास करते है। नितान्त एकान्त में बैठना वैज्ञानिक एवं तात्त्विक अन्वेषण के लिए आवश्यक होता हैं, जबकि एकाग्रता एवं उपासना के लिए एकान्त ढूँढने की आवश्यकता नही है। सेना में सामूहिक रूप से कदम से कदम मिलाकर चलने में सैनिकों का ध्यान नही बॅटता वरन् साथ-साथ चलने की पैरों की ध्वनि के प्रवाह से हरेक के पैर अच्छी तरह नियत क्रम से उठते हैं। इसी प्रकार सहगान, सह ध्यान एवं सहभजन भी अधिक सफल और अधिक प्रखर बनता है। जीवन में प्रत्येक लक्ष्य की प्राप्ति में एवं किसी कार्य को करने में एकाग्रता का बहुत महत्व होता है। इसलिए किसी भी कार्य को करने के पूर्व कहा जाता है कि ध्यान से करना अर्थात मस्तिष्कीय बिखराव को रोककर कर एक चिंतन बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित कर जीवन में प्रत्येक लक्ष्य को प्राप्त कर सकते है।

जीवन के विकास हेतु जीविकोपार्जन के विभिन्न क्षेत्रों जैसे शिल्प, कला, साहित्य, शिक्षा, विज्ञान व्यवस्था आदि सभी प्रयोजनों की सफलता में एकाग्रता का महत्व होता है। प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए एकाग्रता एक उपयोगी सत्प्रवृत्ति है। जबकि चित्त की चंचलता मन: संस्थान की दिव्य क्षमता को निरर्थक कम कर नष्ट-भ्रष्ट करती है। संसार में जितने भी महापुरुष हुए उन्होने किसी एक विषय में पारंगत होकर प्रवीणता हासिल की या सफलता प्राप्त की। इन सबके प्रति मानसिक एकाग्रता प्रमुख कारण रहा है। मानसिक एकाग्रता की साधना को ध्यान कह सकते है।सांसारिक सफलताएं भी ध्यान का ही परिणाम है। मन लगाकर पढने वाले विद्यार्थी अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होते है। कवि, लेखक, चित्रकार , कलाकार, वैज्ञानिक, वकील, चिकित्सक आदि बुद्धिजीवी वर्ग के लोगो की प्रगति का आधार उनकी एकाग्र साधना ही है। शारीरिक रूप से किए गए कार्यो की सुन्दरता और सफलता मात्र श्रम पर आधारित नही होती उनमें भी मनोयोग की आवश्यकता होती है। यह मनोयोग ध्यान ही है। प्रत्येक व्यापारी, अध्यापक, शिल्पी अथवा श्रमिक इस प्रयास के बिना अपने कार्य में न तो कुशल हो सकता है। और नही सफल।

छान्दोग्य उपनिषद् के सप्तम अध्याय के सातवें खण्ड में ध्यान योग की महिमा का विस्तार पूर्वक वर्णन है। ध्यान योग साधना को उपासना की उच्च कक्षा माना गया है। नामोच्चारण से बढकर वाक् वाक् से बडा मन, मन से भी अधिक महत्वपूर्ण संकल्प और संकल्प से भी अधिक बलवान चित्ता को माना गया है तथा चित्ता से भी बढकर सामर्थ्यवान ध्यान को बताया है। नाम, जप, मौन, मनोनिग्रह, संकल्पोद्भव चित्त निरोध ये सभी उपासना के क्रमिक सोपान हैं। ध्यान इन सबसे ऊपर है।

ध्यान के उद्देश्य:

1. चेतना की रहस्यमयी परतो को अपने मनोबल द्वारा उभारना।
2. अनगढ मस्तिष्कीय उछल-कूद को नियंत्रित करना।
3. चेतना की रहस्यमयी परतो को अपने मनोबल द्वारा उभारना।
4. नियंत्रित विचार शक्ति को अभीष्ट लक्ष्य प्राप्ति में नियोजित करना।
5. चेतना की रहस्यमयी परतो को अपने मनोबल द्वारा उभारना।
6. एकाग्रता द्वारा बौद्धिक क्षमता एव बौद्धिक प्रखरता उत्पन्न करना।
7. संकल्प शक्ति को किसी स्थान पर केन्द्रित कर चमत्कारी हलचले उत्पन्न करना।
8. अवांछनीय संस्कारों को हटाना।
9. सत्प्रवृत्तियों का विकास करना।
10. प्रतिकूलताओं के बीच भी संतुलन बनाये रखना।
11. प्रत्येक स्थिति में आनन्द एवं उत्साह बनाये रखना।
12. ध्यान का आरम्भ विचारों पर नियंत्रण एवं उनके सुनियोजन से किया जाता है।

मेडिकल साइंस के दृष्टिकोण में योग – शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य और व्यक्तित्व के आध्यात्मिक विकास में योग भारत की विश्व को अमूल्य देन है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि मेडिकल साइंस भी योग के चमत्कारिक प्रभावों को मान चुका है। योग के शारीरिक व मानसिक प्रभावों के सन्दर्भ में कुछ प्रसिद्ध डाक्टरों के विचार इस प्रकार है-

केन्द्रीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद के निदेशक डॉ0 एन0के0शास्त्री के अनुसार आजकल खेत खलिहानों में तो काम किया नहीं जाता, मेहनत मजदूरी, का भागने-दौड़ने का, खेलकूद का काम भी बहुत कम लोग करते है। इस कारण कुछ आम बीमारियाँ बढ़ती जा रही है। जैसे थकावट, नींद न आना, बाल झड़ना, तनाव, दमा, गठिया, मधुमेह, पीठ दर्द, गैस आदि। इन सबके अलावा अन्य बहुत सी ऐसी बीमारियों का जवाब योग है। प्रतिदिन एक घण्टे तक किया गया योग बहुत फलदायक

रहता है।

डॉ0 प्रदीप चौबे, सीनियर बैरियाट्रिक व लैप्रोस्कोपिक सर्जन, मैक्स हॉस्पिटल, नईदिल्ली,'शरीर व मन का समन्वय करता है योग' मेरी राय मे योग का रोगो की रोकथाम में कहीं ज्यादा महत्व है। योग की प्रीवेंटिव वैल्यू ज्यादा है।

डॉ0 अम्बरीश मित्तल, सीनियर इंडोक्राइनोलॉजिस्ट, मेदान्त दि मेडिसिटी, गुड़गाँव,'मधुमेह के नियन्त्रण में प्रभावी' योग में युक्ति यानी तरीका और मुक्ति (थकान या तनाव से छुटकारा) इन दोनो ं का ही महत्व है। योग प्रभावी ढंग से ब्लड शुगर को नियन्त्रित करने का प्राचीन उपाय है। नियमित रूप से योग ब्लड प्रेशर को नियन्त्रित रखता है। यही नहीं योग से मधुमेह से सम्बन्धित जटिलताओं में कमी आती है।

डॉ0 उन्नति कुमार, मनोरोग विशेषज्ञ, कानपुर, 'डिप्रेशन और मनोरोगो ं में लाभप्रद' योग शरीर के आटोनॉमिक नर्वस सिस्टम को सशक्त करता है। इस कारण योग से डिप्रेशन तनाव एंडजाइटी और पैनिक अटैक जैसे मनोरोगो को दूर करने में ं मदद मिलती है।योग का शरीर की अनैच्छिक क्रियाओ ं पर अच्छा असर पड़ता है।

डॉ0 पुरूषोत्तम लाल, निदेशक मेट्रो हॉस्पिटल व हार्ट इंस्टीट्यूट, नोएडा,'हृदय रोगोंके उपचार में ं सहायक' दरअसल योग केवल कुछ आसनों का नाम नहीं है बल्कि यह जीने का सम्पूर्ण विज्ञान है। योग साहित्य के अनुसार धूम्रपान, व्यसन और नशीले पदार्थो से परहेज, शाकाहार और शारीरिक व्यायाम और तनावमुक्ति इस जीवन पद्धतिके मुख्य अंग है। योग न केवल हृदय की बीमारी की रोकथाम के लिये बल्कि बाईपाससर्जरी और एंजियोप्लास्टी कराने के बाद लाभदायक साबित होता है। योग एवं ध्यान से मांसपेशियों को विश्राम देकर और रक्तचाप को नियंत्रित कर दिल का दौरा पड़ने की आशंका कम हो जाती है।

डॉ0 सूर्यकान्त, सीनियर पल्मोनोलाजिस्ट, के0जी0एम0 यूनिवर्सिटी, लखनऊ 'सशक्त होता है इम्यून सिस्टम', विश्व स्वास्थ्य संगठन (थक्ज) ने 1947 में स्वास्थ को इस प्रकार परिभाषित किया था, 'दैहिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक रूप से पूर्णत:स्वस्थ होना ही स्वास्थ्य है।' योग इन उद्देश्यों को प्राप्त करने का एक सशक्त माध्यम है। के0जी0एम0यू0 और लखनऊ विश्वविद्यालय के तत्वाधान में योग और अस्थमा पर हुये एक शोध कार्य द्वारा यह निष्कर्ष सामने आया है कि यदि प्रतिदिन 30 मिनट योगकिया जाये तो अस्थमा के मरीजों के जीवन स्तर में सुधार आता है। इस लिये योग को सह चिकित्सा के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है।

शिक्षा में ध्यान के प्रयोग सम्बन्धी शोध–आन्द्रे एस जोआ ने हालैन्ड में हाईस्कूल विद्यार्थियों को 1 वर्ष ध्यान का अभ्यास कराने के पश्चात् पाया कि नियमित ध्यान करने वाले विद्यार्थियों की सामान्य विद्यार्थियों की अपेक्षा बुद्धि क्षमता में बहुत अधिक वृद्धि पायी गई। कठिन मामलों के हल प्रश्नों के उत्तर देने में ध्यान करने वाले छात्र अग्रणी रहे । स्मृति क्षमता में भी वृद्धि हुई तथा शैक्षिक प्रदर्शन में ये छात्र सर्वश्रेष्ठ थे।

केशव रेड्डी ने 6 सप्ताह तक खिलाडियों पर ध्यान के प्रभाव के अध्ययन में पाया कि ध्यान अभ्यास से खिलाडियों की हृदय गति की दर में महत्वपूर्ण कमी आती है। यह कार्डियोवेस्कुलर की सक्रियता व उसकी क्षमता वृद्धि की परिचायक है। इससे वाइटल केपेसिटी जीवनी शक्ति भी बढती है। तथा हृदय दर जितनी कम होगी उतनी ही रक्त विश्राम की बढी अवधि (क्यू0टी0 इन्टरवल) में हृदय को आराम मिलेगा तथा वाइटल केपेसिटी के बढने से फूजन वैन्टीलेशन अनुपात बढ़ने से स्फूर्ति सहज ही आती है।

मस्तिष्क वैज्ञानिकों के अनुसार ध्यान की प्रगाढ़ता आने पर व्यक्ति की अल्फा तरंगों में अकल्पित वृद्धि होती है जिससे अदम्य धैर्य, स्थिरता एवं गहन शान्ति उत्पन्न होती है। ध्यान का शरीर क्रिया विज्ञान पर पडने वाले प्रभाव को अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान दिल्ली के डॉ0 छिन्ना एवं डॉ0 बलदेव सिंह ने आज से 19 वर्ष पहले इस निष्कर्ष रूप में पाया कि मननशील एकाग्र ध्यानस्थ मस्तिष्क में अनेक विशेषताएँ विकसित होती है। ई0ई0जी0 (इलेक्ट्रो इन सेफेलोग्राफ) द्वारा ध्यानस्थ अवस्था के परिवर्तनों को देखा जा सकता है। साथ ही रक्त के स्नायु रसायनों का उपकरणों के माध्यम से मापने किया जा सकता है कि शरीर में क्या प्रतिक्रिया हुई है।

शारीरिक व मानसिक स्तर पर ध्यान के प्रभाव पर शोध अध्ययन – नियमित ध्यान का अभ्यास करने से लैक्टिक एसिड की मात्रा में 50 प्रतिशत तक कमी आती है। रक्त में इस तत्व की उपस्थिति से मस्तिष्क भय, चिंता, उदासी, तनाव जैसे विकारों से भरा रहता है तथा शरीर के अन्य अवयव भी अव्यवस्थित एव थकान ग्रस्त बने रहते हैं। ध्यान के द्वारा इसके रक्त स्तर में कमी आने से व्यक्ति अन्दर से उत्साह उमंग स्फूर्ति एवं नवीन चेतना से भरा होता है शरीर की प्रतिरोधी क्षमता एम्यून सिस्टम में भी परिर्वतन होता है।

ध्यान की अवस्था में मस्तिष्क का शारीरिक क्रियाओं पर पूर्ण आधिपत्य होने से दिल की धडकन, रक्त वाहनियों में रक्त दबाव में कमी एवं श्वास की दर में कमी आने से शरीर की मेटोबोलिक क्रियाएँ घट जाती है। इसलिए तनाव से पूर्ण मुक्ति और शरीर व मस्तिष्क को पूर्ण विश्रान्ति प्राप्त होती है।

डॉ0 वेनसन ने ध्यान के पश्चात् रोगियों के परीक्षण में रक्तचाप को सामान्य पाया। ध्यान का अभ्यास 4 सप्ताह तक बन्द कर देने से रक्तचाप पूर्व स्थिति में आ जाता है। उनका कहना है कि ध्यान के पश्चात रक्तचाप में यह महत्वपूर्ण कमी इन्टिग्रेटेड हाइपोथेलेमिक रेस्पोन्स जिसे रिलैक्सेशन रेस्पोन्स भी कहते है की सक्रियता के कारण होता है।

डॉ0 वेनसन एवं बैलेस ने 1832 व्यक्तियों पर ध्यान के परीक्षण में पाया कि जो व्यक्ति नियमित ध्यान का अभ्यास करते हैं ध्यान लगाने से उनके शरीर की जैविक क्रियाएं कुछ मिनटों में मन्द पड जाती है जो कई घंटों की नींद के बाद प्राप्त होती है। ध्यान में तीन मिनट के भीतर ही आक्सीजन की खपत दर में 16 प्रतिशत की कमी आ जाती है जबकि 5 घंटे की नींद में केवल 8 प्रतिशत ही कमी आती है।

थियोफेन ने अपने अध्ययन में पाया कि अध्ययन करनेवाले व्यक्तियों की साइकोलॉजी में असाधारण रूप से परिवर्तन होता है। ऐसे व्यक्तियों में घबराहट उत्तेजना, मानसिक तनाव साइकोसोमैटिक बीमारियां स्वार्थपरता आदि विकारो में कमी पायी गई है तथा आत्म विश्वास और संतोष में वृद्धि, सहन शक्ति, साहसिकता, सामाजिकता, मैत्री भावना जीवन्तता, भावनात्मक स्थिरता, कार्यदक्षता, विनोदप्रियता एकाग्रता जैसे सद्गुणो की वृद्धि ध्यान के प्रत्यक्ष लक्ष्य हैं।

पैरासाइकालॉली पर शोध कर रहे मनोवैज्ञानिकों ने अपने शोध में पाया कि ध्यान प्रक्रिया द्वारा मस्तिष्क में अनेको रासायनिक परिवर्तन किए जा सकते है तथा मस्तिष्कीय क्रिया कलापों पर नियंत्रण करके रनकेफेलिन, एन्डॉर्फिन्स जैसे एन्डोजीनस दर्द निवारक तत्वों की मात्रा को घटाया बढाया जा सकता है। ये तत्तव मस्तिष्क के तंतुओं में पाए जाते है जिसके कई लाभ है। विशेषज्ञों ने निष्कर्ष दिया है कि दर्द को दबाने वाली तीव्र औषधियों के स्थान पर ध्यान के द्वारा संज्ञा शून्यता उत्पन्न की जा सकती है।

सतत एवं नियमित रूप से योग साधना करने वाले योग साधकों पर किए गए प्रयोगों एवं परीक्षणों के आधार पर विशेषज्ञो ने निष्कर्ष में पाया कि ध्यान, प्रक्रिया के अभ्यास से तनाव घटता है मन शांत तथा उद्विग्नता मिटती है। नाड़ी का तापमान भी नीचे उतर जाता है। इसके करने से शारीरिक मानसिक शक्ति की बचत होती है अतिरिक्त ऊर्जा संग्रहण होता है ध्यान की अवस्था में श्वास की गति 1 मिनट में 16 से 5 व 6 तक हो जाती है।

इस सम्बन्ध में लोकमान्य तिलक के जीवन का संस्मरण है। उनके अंगूठे का ऑपरेशन होना था। चिकित्सकों ने बेहोशी की दवा सुघॉने का प्रयास किया तब उन्होंने कहा कि मै गीता के प्रगाढ अध्ययन में लगता हूँ आप बेझिझक ऑपरेशन कर लीजिए डाक्टरों को तब आश्चर्य हुआ जब उन्होने बिना हिले डुले शांतिपूर्वक ऑपरेशन करा लिया। पूछने पर तिलक ने कहा ध्यान तन्मयता इतनी थी कि शल्य चिकित्सा की ओर ध्यान ले नही गया और दर्द अनुभव नही हुआ।

टाइम्स फाउन्डेशन की ओर से मूलचंद हास्पिटल नई दिल्ली में आयोजित कार्यक्रम में लेवी सेंटर फार द हिंलिंग सेन्टर के डायरेक्टर डा0 रिक वेवी ने ध्यान का महत्व बताते हुए कहा कि ध्यान करने से बीमारियों से लडने की क्षमता बढती है। ध्यान की अवस्था में इलेक्ट्रो मेग्नेटिक वेव निकलती है जो शरीर की प्राकृतिक क्षमता को बढाती है। ध्यान करने से शरीर को मजबूती एवं मस्तिष्क को भी शांति मिलती है। इसलिए अमेरिका के अस्पतालों में अध्यात्म सेंटर खुल रहे है। भारत अध्यात्म के क्षेत्र में प्राचीन समय से अग्रणी रहा है। डॉ0 वेवी ने यह भी कहा कि ध्यान के साथ योग एवं मौन का महत्व अपना कर भी यहॉं के लोग रोग मुक्त रह सकते है।

शरीर के रोग प्रतिरोधक क्षमता इम्यून सिस्टम में भी आमूल-चूल परिवर्तन होता है। त्वचा की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाने से उसके सम्पर्क में आने वाले जीवाणुओं का प्रभाव समाप्त हो जाता है। मानसिक क्षमता के केन्द्रीकरण प्रयोग से कोई भी मंद बुद्धि या दुर्बल काय मनुष्य स्वयं को बदल कर अपना कायाकल्प कर सकता है।

ध्यान का लिम्बिक तंत्र पर प्रभाव-जनरल पब्लिक लायब्रेरी ऑफ साइंस वन में प्रकाशित शोध पत्र में विस्काविसन विश्वविद्यालय के शोधकर्ता डेंवीड रिचर्डसन ने 10000 घंटे ध्यान कर चुके 16 बौद्ध भिक्षुक तथा 2 सप्ताह पहले ध्यान करने वाले 32 लोगों पर अध्ययन किया। रिचर्डसन ने निष्कर्ष रूप में बताया कि तिब्बती भिक्षुकों में लिम्बिक सिस्टम अधिक सक्रिय पाया गया जो भावनाओं याददास्त एवं संवेदनाओं के लिए जिम्मेदार होता है। उन्होने यह भी बताया कि ध्यान करने वालो में सहानुभूति एवं सकारात्मक भावना जाग्रत होती है। इसलिए बौद्ध धर्म गुरू बच्चों को प्यार करने एवं एक-दूसरे पर पूर्ण सहानुभूति रखने का संदेश देते है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते है कि ध्यान के द्वारा अपनी ऊर्जा को संचित किया जा सकता है। इस संचित ऊर्जा को आत्मिक ज्ञान में लगा सकते है। ध्यान के नियमित अभ्यास से आत्मिक शांति बढ़ती है साथ ही मानसिक शांति की भी अनुभूति होती है। ध्यान का मस्तिष्क पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है इसलिए अवांछित विचारों को मन से निकाल कर वांछित विचारों को मस्तिष्क में स्थान मिलता है। इस प्रकार ध्यान का 5 से 20 मिनट अभ्यास कर हम अपनी शारीरिक, मानसिक एवं अध्यात्मिक ऊर्जा में सकारात्मक विकास कर सकते है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, **'योग निद्रा'**, संस्करण परिवर्द्धित 2002, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार।
2. स्वामी निरंजनानंद सरस्वती, **'प्राण-प्राणायाम-प्राण विद्या'**, वर्ष 2001, संस्करण प्रथम, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार।
3. श्री स्वामी ओमानंद तीर्थ, **'पातन्जल योग प्रदीप'**, वर्ष 2001, संस्करण बीसवॉं, गीता प्रेस, गोरखपुर।
4. मुछाल एम0के0 **'मानसिक अवसाद एवं योग'**, 'योजना', दिसम्बर 2005
5. नागेन्द्र एच0आर0, **'प्राणायाम कला और विज्ञान'**, वर्ष 1999, संस्करण द्वितीय, विवेकानन्द केन्द्र योग प्रकाशन, बैंगलोर।
6. पण्डया, प्रणव **योग से समृद्ध होता जीवन**, सप्तरंग, दैनिक जागरण, 17जून 2015,
7. रविशंकर, **श्री श्री ऊर्जा एवं उत्साह का योग,** 21 जून 2015 दैनिक जागरण, पृष्ठ 16,17
8. **मोदी संग पूरी दुनिया योग पथ पर** (2015, जून 22) दैनिक जागरण, पृष्ठ1,12,15
9. मिश्र, गिरीश्वर **जीवन जीने की कला**, (2015, जून 19) दैनिक जागरण, पृष्ठ16
10. शंकर, गणेश (1988) होलिस्टिक एपरोच आफ योगा,नई दिल्ली : आदित्य प्रकाशन
11. शर्मा, श्रीराम (1988) व्यक्तित्व विकास हेतु उच्च स्तरीय साधनाएँ, मथुरा : अखंड ज्योति संस्थान
12. मुछाल, एम0 के0, (2004) योग के वैज्ञानिक पहलू, कुरूक्षेत्र, 51,(2)
13. आयंगर, बी0 के0ए एस0, (2005) सभी के लिए योग, नई दिल्ली : भारत प्रकाशन
14. आचार्य, बाल कृष्ण (2007) विज्ञान की कसौटी पर योग, हरिद्वार : पतंजलि, योगपीठ
15. मुछाल, एम0 के0 (2007) तनाव मुक्ति में योग, योजना, 51(1)
16. आचार्य श्री राम शर्मा, व्यक्तित्व विकास हेतु उच्च स्तरीय साधनाएं, अखंड ज्योति संस्थान, मथुरा, वर्ष 1998, संस्करण द्वितीय
17. आयंगर बी0के0एस0, सभी के लिए योग, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण, वर्ष 2005
18. ध्यान, योग और मौन बढाते है शारीरिक क्षमता, नवभारत टाइम्स 9, अप्रैल 2009
19. किसी को ठीक से सुनना ध्यान योग- नवभारत 2 मार्च 2008
20. स्वामी रामदेव, प्राणायाम रहस्य, कृपालु बाग आश्रम हरिद्वार
21. स्वामी रामदेव योग साधना एवं योग चिकित्सा रहस्य, कृपालु बाग आश्रम, हरिद्वार
22. स्वामी सत्यानन्द रोग और योग , योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुगेर, बिहार पुर्नमुद्रण 2003
23. शुक्ला अतुल, योग चिकित्सा, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली, वर्ष 2007
24. स्वामी सत्यानन्द, समस्या पेट की समाधान योग का योग, वर्ष 2004
25. वेब दुनिया- बडे ध्यान का जादू

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

कर्मचारी प्रतिधारण एवं वित्तीय व गैर-वित्तीय अभिप्रेरक तत्व के मध्य संबंध

साक्षी शर्मा* डॉ. अक्षिता तिवारी**

* शोधार्थी (वाणिज्य) विक्रम विश्वविद्यालय,उज्जैन (म.प्र.) भारत
** सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) लोकमान्य तिलक विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – अभिप्रेरणा एक आंतरिक विचारधारा है। यह मानव को आंतरिक रूप से कार्य के प्रति प्रोत्साहित करती है। अभिप्रेरित कर्मचारी संगठन की उत्पादकता को बढ़ाने में सहायक होते है; जिससे संस्था के लक्ष्यों को आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। इसके द्वारा ही कर्मचारियों की आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है। अभिप्रेरणा, कर्मचारियों की गतिशीलता को रोकने में सहायक है। इसके द्वारा संस्था के कर्मचारियों को प्रतिधारित किया जाता है। इस शोध-पत्र का उद्देश्य वित्तीय एवं गैर-वित्तीय अभिप्रेरक तत्वों की प्रभावशीलता का अध्ययन करना है। शोध कार्य हेतु द्वितीयक समंकों का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के दौरान पाया गया कि, वित्तीय अभिप्रेरक तत्वों की तुलना में गैर-वित्तीय अभिप्रेरक तत्व कर्मचारी-प्रतिधारण को अपेक्षाकृत अधिक प्रभावित करते है।

शब्द कुंजी – कर्मचारी प्रतिधारण, वित्तीय अभिप्रेरणा, गैर-वित्तीय अभिप्रेरणा।

प्रस्तावना – अभिप्रेरणा एक सकारात्मक विचारधारा है, जिसका संबंध कुशल कर्मचारियों से है। संगठन की सफलता के अग्रदूत उसके निष्ठावान कर्मचारी होते है। कर्मचारी ही संगठन के सभी लक्ष्यों की प्राप्ति के प्रमुख साधक है। मानव-संसाधन प्रबंध का दायित्व है कि, वह कर्मचारियों की आवश्यकताओं को पूरा करें। अभिप्रेरणा, कर्मचारियों की आवश्यकताओं की पूर्ति का सशक्त माध्यम है। जिसके अंतर्गत वित्तीय एवं गैर वित्तीय अभिप्रेरक तत्वों को शामिल किया जाता है। यह दोनों ही तत्व कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। कर्मचारी संस्था में किसी एक उद्देश्य की पूर्ति के लिए कार्य नहीं करते अपितु, अपनी अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कार्य करते है। अभिप्रेरक तत्वों की अनुपस्थिति कर्मचारियों को कार्य के प्रति उदासीन बना देती है, जिससे उनके भीतर नकारात्मकता जन्म ले लेती है। परिणामस्वरुप वह अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु विकल्पों की खोज करने लगते है। जिस संस्था में उन्हें अपनी प्रत्याशा पूर्ण होती दिखाई देती है, वह उस संस्था से जुड़ जाते है, और पूर्व संस्था से अपने संबंध विच्छेद कर लेते है। इसी से 'कर्मचारी-गतिशीलता' नामक विषय का प्रादुर्भाव होता है। अत: प्रबंधन का यह प्राथमिक दायित्व है कि वह अपने कुशल कर्मचारियों को प्रतिधारित करके रखें। इस शोध-पत्र का उद्देश्य कर्मचारी-प्रतिधारण एवं वित्तीय व गैर-वित्तीय अभिप्रेरक तत्वों के मध्य संबंध का अध्ययन करना है। अध्ययन हेतु द्वितीयक समंकों का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के दौरान पाया गया की गैर-वित्तीय अभिप्रेरक तत्व एवं कर्मचारी-प्रतिधारण में सकारात्मक संबंध है। गैर-वित्तीय अभिप्रेरक तत्व के अभाव में कर्मचारी किसी भी संस्था में लंबें समय तक नहीं रहते। अत: कर्मचारी-प्रतिधारण हेतु गैर-वित्तीय अभिप्रेरक तत्व का होना अनिवार्य है।

शोध – समीक्षा

Jamila Jaganjac et al. (2020). "Effect of Work Stress and Job Satisfaction on Employee Retention: A Model of Retention Strategies" समीक्षा के दौरान पाया गया कि, यदि संस्था अपने कर्मचारियों के लिए अभिप्रेरक तत्वों का प्रयोग नहीं करती है, तो वे अपने कार्य के प्रति उदासीन हो जाते है। अर्थात् उनकी कार्य-क्षमता पर इसका नकारात्मक प्रभाव देखने को मिलता है। परिणामस्वरुप वे संस्था से पृथक हो जाते है। इस शोध-पत्र में लेखक द्वारा अभिप्रेरण तकनीक, कार्य संतुष्टि व कार्य तनाव आदि का विस्तृत वर्णन किया गया। इस शोध-पत्र में पाया गया कि, वित्तीय अभिप्रेरक तत्व की तुलना में, गैर-वित्तीय अभिप्रेरक तत्व एवं कार्य संतुष्टि में सकारात्मक सहसंबंध है।

Kelson Dicko (2020). "The Role that Financial and Non-Financial Incentives play in Motivating Employees within a Financial Institution in Sandton" इस शोध-पत्र का उद्देश्य संगठनात्मक प्रभावशीलता पर कर्मचारी-अभिप्रेरण के प्रभाव का अध्ययन करना था। इसके अंतर्गत शोधार्थी द्वारा अभिप्रेरणा से संबंधित सभी तथ्यों का विस्तृत वर्णन किया गया। इसके अंर्तगत लेखक द्वारा अभिप्रेरणा के दो सिद्धांतों को शामिल किया गया। जिसमें Herzberg's Two-Factor Theory एवं Self Determination Theory को सम्मिलित किया गया। लेखक के द्वारा निष्कर्ष के रूप में कहा गया कि, कर्मचारी को अभिप्रेरित करने में व्यक्तिगत विकास एवं चुनौतीपूर्ण कार्य दोनों ही अपनी मुख्य भूमिका निभाते है। साथ ही यह भी बताया गया कि कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने वाले तत्व एवं कर्मचारियों को संस्था में स्थायी रखने वाले तत्व दोनों ही भिन्न-भिन्न है।

Mahpara Shah et al. (2018). "Effect of Motivation on Employee Retention: Mediating Role of Perceived Organizational Support" इस शोध-पत्र का उद्देश्य कर्मचारी-प्रतिधारण पर आंतरिक एवं बाह्य अभिप्रेरणा के प्रभाव का अध्ययन करना

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

था। अध्ययन के दौरान पाया गया कि संतुष्ट कर्मचारी संगठन के प्रति पूर्ण निष्ठा एवं प्रतिबद्धता रखते है। परिणामस्वरूप वे संस्था में लंबे समय तक बने रहते है।

Maqsood Haider et al. (2015). "A Literature Analysis on the Importance of Non-Financial Rewards for Employee's Job Satisfaction" शोध समीक्षा के दौरान पाया गया कि वित्तीय अभिप्रेरक तत्व जैसे- वेतन, बोनस, जीवन-बीमा, अतिरिक्त सुविधाएं आदि कर्मचारियों को प्रभावित करते है। परंतु गैर-वित्तीय अभिप्रेरक तत्व जैसे- कार्य-पहचान, निर्णय लेने की क्षमता एवं उत्साह आदि अपेक्षाकृत अधिक प्रभावी है। यह प्रत्यक्ष रूप से कर्मचारियों को कार्य संतुष्टि प्रदान करते है। लेखक के अनुसार, गैर-वित्तीय अभिप्रेरक तत्व संस्था में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

Dhanonjoy Kumar et al. (2015). "Impact of Non-Financial Rewards on Employee Motivation" इस शोध कार्य हेतु लेखक के द्वारा बांग्लादेश के विभिन्न संस्थाओं के कर्मचारियों का चयन किया गया। इस शोध-पत्र में लेखक ने दो प्रकार के कर्मचारियों का वर्णन किया। प्रथम श्रेणी - गैर-अभिप्रेरक कर्मचारी, ये वे कर्मचारी है जिन्हें किसी भी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं मिलता। परिणामस्वरूप वह अपने कार्य को बिना रुचि एवं अपेक्षाकृत अल्प प्रयास एवं निम्न कार्य-कुशलता के साथ करते है। साथ ही एक समय के पश्चात् वे संस्था से असंतुष्ट होकर, अन्य संस्था की और गतिशील हो जाते है। द्वितीय श्रेणी - अभिप्रेरक-कर्मचारी, जो अपने कार्य को पूरी लगन, मेहनत व ईमानदारी के साथ करते है। तथा संस्था के प्रति पूर्ण निष्ठावान बने रहते है। लेखक के द्वारा निष्कर्ष के रूप में कहा गया कि गैर-वित्तीय प्रोत्साहन एवं कर्मचारी अभिप्रेरणा के मध्य सकारात्मक संबंध है।

शोध पत्र का उद्देश्य - कर्मचारी प्रतिधारण वर्तमान समय में एक गंभीर विषय के रूप में उभर रहा है। कर्मचारियों को संस्था में बनाए रखने के लिए अभिप्रेरक तत्व अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। कर्मचारी को प्रोत्साहित करने के लिए निम्न उद्देश्यों की पूर्ति करना अनिवार्य है-

1. वित्तीय अभिप्रेरक तत्वों का अध्ययन करना।
2. गैर-वित्तीय अभिप्रेरक तत्वों का अध्ययन करना।
3. अभिप्रेरणा के सिद्धांतों का अध्ययन करना।

शोध - प्रविधि - शोध प्रविधि, शोध कार्य का आधारभूत स्तंभ है। इस शोध कार्य हेतु द्वितीयक संमकों का प्रयोग किया गया। जिसके अंतर्गत शोध-पत्र, शोध-आलेख एवं विषय से संबंधित पुस्तकों के अध्ययन को शामिल किया गया। जिसमें मुख्य रूप से शोध संबंधी वेबसाइट का प्रयोग किया गया।

अभिप्रेरणा - कर्मचारियों को कार्य के प्रति प्रेरित करने हेतु किया गया प्रयास ही अभिप्रेरणा कहलाता है। इसके द्वारा कर्मचारियों की कार्य कुशलता में वृद्धि होती है। वैज्ञानिक प्रबंध के जन्मदाता एफ. डब्ल्यू. टेलर के अनुसार, 'व्यक्ति उस सीमा तक ही अपना कार्य कुशलता से करता है जिस सीमा तक उसे प्रतिफल प्राप्त होता है। व्यक्ति को जितना अधिक प्रतिफल प्राप्त होगा, वह उतना ही अधिक कार्य करेगा।'

व्यक्ति की कार्यकुशलता को बढ़ाने का मुख्य अस्त्र है -'अभिप्रेरणा'। यह मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है- वित्तीय अभिप्रेरणा एवं गैर-वित्तीय अभिप्रेरणा।

चित्र क्र. 01

(स्त्रोत-स्वनिर्मित)

वित्तीय अभिप्रेरणा के अंतर्गत निम्न अभिप्रेरक तत्वों को शामिल किया जाता है-

i. उचित वेतन- कर्मचारी, वेतन की प्रत्याशा में ही कार्य करते हैं। यह उनके द्वारा किये गए कार्य के प्रतिफल के रूप में प्रदान किया जाता है। कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने हेतु प्रबंधन को चाहिए, कि वह समय-समय पर वेतन के स्तर में वृद्धि करते रहे। परिणामस्वरूप कर्मचारी संतुष्ट होकर अपना कार्य करेंगे एवं संस्था में बने रहेंगे।

ii. बोनस- यह कर्मचारी के लिए अतिरिक्त आय के समान कार्य करता है। और इसकी अनुपस्थिति उन्हें हतोत्साहित कर देती है। अत: बोनस कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

iii. लाभ का हिस्सा- कई कंपनियाँ अपने कर्मचारियों को अतिरिक्त लाभ होने की दशा में उसका कुछ भाग प्रोत्साहन के रूप में प्रदान करती है। जिससे कर्मचारी सकारात्मक रूप से अभिप्रेरित होते है व अपनी संस्था के प्रति निष्ठावान हो जाते है।

गैर-वित्तीय अभिप्रेरणा के अंतर्गत निम्न अभिप्रेरक तत्वों को शामिल किया जाता है-

i. कार्य-सुरक्षा- अपने कार्य के प्रति सुरक्षा का भय सभी कर्मचारियों को सताता रहता है। यदि उन्हें कार्य से असमय बहिष्कृत कर दिया जाये, तो इसका दुष्प्रभाव उनकी आजीविका पर पड़ेगा। अत: कार्य-सुरक्षा उन्हें इस भय से मुक्ति दिलाता है, और कर्मचारी प्रसन्न मन से अपने कार्य पर बने रहते है।

ii. कार्य की दशाएं- कार्य करने का अनुकूल वातावरण कर्मचारियों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। इसके अंतर्गत दो प्रकार के वातावरण को शामिल किया जाता है- भौतिक वातावरण (इसमें मुख्य रूप से कार्य करने की दशाएं, कार्य-स्थल स्वच्छता आदि) व व्यवहारिक वातावरण (इसमें कर्मचारी व प्रबंधक के मध्य समन्वय, कार्य का सकारात्मक वातावरण आदि)। कर्मचारी भौतिक वातावरण की तुलना में व्यावहारिक वातावरण को अधिक महत्व देते है। क्योंकि इसका सीधा प्रभाव उनकी मानसिक स्थिति पर पड़ता है।

iii. पदोन्नति - (K.K. Sharma et al.,2020) प्रत्येक मानव में यह जन्मजात भावना होती है, कि वह उन्नति करे और इसके लिए वह विकास के अवसरों की आशा करता है। संस्था को कर्मचारियों की योग्यता व अनुभव के आधार पर उन्हें पदोन्नति का अवसर प्रदान करना चाहिए। इसके द्वारा

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

कर्मचारी गतिशीलता को कम किया जा सकता है व उन्हें प्रतिधारित करके रखा जा सकता है।

अभिप्रेरणा के सिद्धांत – अभिप्रेरणा का सैद्धांतिक पक्ष अत्यंत परिपक्व है। इसके सिद्धांतों को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा गया है – परंपरागत सिद्धांत एवं आधुनिक सिद्धांत। **परंपरागत सिद्धांत,** व्यक्तियों को अभिप्रेरित करने में पूरी तरह असफल रहे, इसका मुख्य कारण इन सिद्धांतों में व्याप्त कठोरता व व्यक्ति के प्रति उदासीनता का होना है। इसकी तुलना में **आधुनिक सिद्धांत**, कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। अत: इन सिद्धांतों का विवरण निम्नानुसार है –

1. **हर्जबर्ग की द्विघटक विचारधारा** – हर्जबर्ग की द्विघटक विचारधारा का सिद्धांत आधुनिक अभिप्रेरणा के सिद्धांत में अपना सर्वोच्च स्थान रखता है। इस सिद्धांत का प्रतिपादन हर्जबर्ग और उनके साथियों ने किया। इसके अंतर्गत मनुष्य की आवश्यकताओं को दो समूहों में विभक्त किया गया। जिसमें पहले समूह में **'स्वास्थ्य घटक या तत्व'** (Hygiene Factors) को शामिल किया गया। हर्जबर्ग के अनुसार, यह समूह व्यक्ति के अंदर नकारात्मक विचार को जन्म देता है इसलिए इसका समाधान करना अनिवार्य है। इसे बाह्य घटक माना गया। एवं दूसरे समूह में **'अभिप्रेरक घटक या तत्व'** (Motivators) को शामिल किया गया। यह तत्व कर्मचारियों को अधिक कुशलता के साथ कार्य करने के लिए प्रेरित करता है। इसे आंतरिक घटक माना गया। स्वास्थ्य घटक व अभिप्रेरक घटक का वर्गीकरण निम्नानुसार है–

चित्र क्र. 02

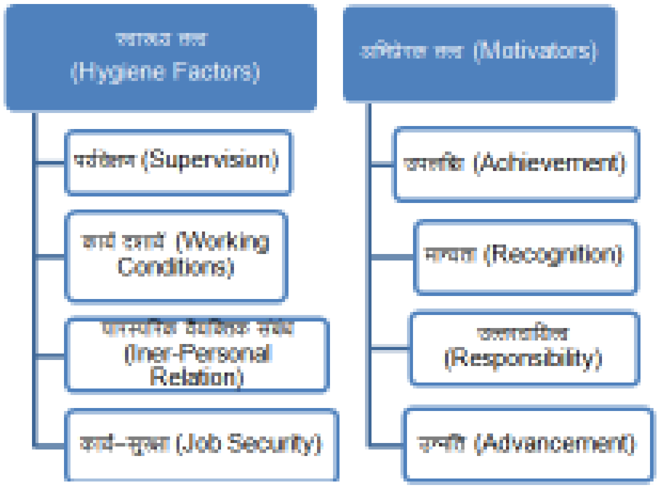

(स्रोत–स्वनिर्मित)

समीक्षा – इस सिद्धांत के वर्गीकरण के अनुसार यह कहा जा सकता है, कि प्रबंधन को मुख्य रूप से स्वास्थ्य घटकों पर ध्यान देना चाहिए। क्योंकि यह कर्मचारियों पर अपना नकारात्मक प्रभाव डालते है। इनकी उपस्थिति कर्मचारी गतिशीलता में वृद्धि करती है। कर्मचारी प्रतिधारण हेतु हर्जबर्ग के इस घटक का निवारण करना अनिवार्य है।

2. **प्रत्याशा विचारधारा** – प्रत्याशा विचारधारा के सिद्धांत का प्रतिपादन सन् 1964 में **विक्टर एच. व्रूम** द्वारा किया गया। प्रबंध के क्षेत्र में यह सिद्धांत अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस सिद्धांत की कुछ महत्वपूर्ण मान्यताएं है। जैसे– कर्मचारियों की प्रत्याशायें एवं कर्षण शक्तियाँ भिन्न–भिन्न होती है। यह शक्तियाँ व्यक्ति एवं वातावरण से संबंधित होती है। कर्मचारी कोई भी कार्य उस समय करता है जब उसे यह ज्ञात होता है, कि इससे उसे भविष्य में लाभ प्राप्त होगा। व्रूम ने इसे निम्न सूत्र के द्वारा अभिव्यक्त किया है–

अभिप्रेरणा = कर्षण शक्ति या आकर्षण X प्रत्याशा

Motivation = Valence x Expectancy

समीक्षा – यह सिद्धांत स्पष्ट करता है कि, प्रबंधन को प्रत्येक कर्मचारी की प्रत्याशा व अभिप्रेरक कारकों का ध्यान रखना चाहिए। संतुष्ट कर्मचारी ही इच्छित परिणाम प्रदान कर सकते है। इसके द्वारा कर्मचारी प्रतिधारण को भी बढ़ाया जा सकता है।

3. **जॉन स्टेसी एडम की साम्य विचारधारा** – कर्मचारी प्रतिधारण के क्षेत्र में **जॉन स्टेसी एडम** द्वारा दी गई साम्य विचारधारा एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है। इस सिद्धांत के अनुसार, केवल अच्छी कार्य दशाएँ, अच्छा वेतन आदि अभिप्रेरणा के मुख्य कारक नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त प्रबंध को अन्य कारकों पर भी अपना ध्यान केंद्रित करना होता है। क्योंकि व्यक्ति निरंतर अपनी तुलना संगठन अथवा संगठन के बाहर दूसरे व्यक्तियों से करता रहता है, और जब उसे इसमें भिन्नता दिखाई देती है तो वह नकारात्मक रूप से प्रभावित होता है। इसके अंतर्गत दो विषयों को शामिल किया जाता है। पहला – **निवेश** (Input), जो कर्मचारी अपनी संस्था को प्रदान करते है। जैसे– समय, प्रयास, निष्ठा, सहनशीलता आदि। दूसरा – **उत्पादन** (Output), जो उसे संगठन के द्वारा प्राप्त होता है। इसके अंतर्गत कार्य–सुरक्षा, वेतन, पहचान, सम्मान आदि। इनका अवलोकन वह निम्नानुसार करता है–

चित्र क्र. 03

(स्रोत–स्वनिर्मित)

समीक्षा – कर्मचारी प्रतिधारण हेतु साम्य विचारधारा एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है। एक संतुष्ट कर्मचारी ही सफल व्यवसाय का द्योतक होता है। कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिए संस्था को आंतरिक एवं बाहरी दोनों ही घटकों को महत्व देना चाहिए। जिससे कर्मचारी दीर्घ समय तक संस्था में बने रहे।

कर्मचारी प्रतिधारण एवं अभिप्रेरक तत्व के मध्य संबंध की विवेचना

तालिका क्र. 01 **(अन्तिम पृष्ठ पर देखे)**

उपसंहार –अभिप्रेरणा पूर्णत: एक मनोवैज्ञानिक विचारधारा है। जिसमें वित्तीय एवं गैर–वित्तीय दोनों के ही अभिप्रेरक तत्वों को शामिल किया जाता है। अध्ययनानुसार, कर्मचारी प्रतिधारण हेतु संगठन को वित्तीय व गैर–वित्तीय दोनों ही अभिकारकों का प्रयोग करना चाहिए। अभिप्रेरणा के सिद्धांतों द्वारा यह ज्ञात होता है कि गैर–वित्तीय अभिप्रेरक तत्व कर्मचारी प्रतिधारण हेतु अति आवश्यक है। यह कर्मचारी के भीतर संस्था के प्रति विश्वास, ईमानदारी एवं निष्ठा को बढ़ाते हैं। कर्मचारी वेतन की तुलना में अपने मान–सम्मान को अधिक बढ़ावा देते है। **लिकर्ट** के अनुसार,'यदि पर्यवेक्षक

कर्मचारियों को अभिप्रेरित करना चाहते है, तो उन्हें 'कृत्य केन्द्रित' (Job Centred) नहीं होना चाहिए; उन्हें 'कर्मचारी केन्द्रित' (Employee Centred) होना चाहिए।' (K.K. Sharma et al.,2020) उन्हें अपना ध्यान 'कर्मचारियों से किस प्रकार कार्य लिया जाये पर केन्द्रित करने के स्थान पर, कर्मचारियों की समस्याओं के मानवीय पहलू पर केन्द्रित करना चाहिए।' अभिप्रेरणा कर्मचारियों को कार्य संतुष्टि प्रदान करती है। अत: निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है, कि कर्मचारी जीवनपर्यत उसी संस्था में बने रहना चाहते है जहाँ उन्हें अपनी महत्वकांक्षा पूर्ण होती दिखाई देती है। अत: कर्मचारी प्रतिधारण हेतु गैर-वित्तीय अभिप्रेरक तत्व का होना अति आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Singh, Devendra., Jain, Dhruv., Suresh, Dhruv., Chawla, Harjas., & Sarda, Hemanshu. (2022). `Enhancing Employee Performance through Monetary Incentive- A Systematic Review'.International Research Journal of Modernization in Engineering Technology and Science.9(4),2582-5208. www.irjmets.com
2. Dr. Twinkle. (2022). `Enhancing Employee Performance through Monetary Incentives.' International Journal of Novel Research and Development (IJNRD).12(7),2456-4184. www.ijnrd.org
3. Mittal, Khushi. (2022). `Enhancing Employee Performance through Non-Monetary Incentive.' International Journal of Novel Research and Development (IJNRD). 7(8), 2456-4184. www.ijnrd.org
4. Sharma, K K., Khurana, G C., & Sharma, Arun. `Human Resource Management.' Jaipur, RBD Publishing House, 2020-2021, 81-8142-217-1.
5. Jaganjac, Jamila.,Gavric Tanja.&, Obhođaš, Ibrahim. (2020). `Effect of Work Stress and Job Satisfaction on Employee Retention: A Model of Retention Strategies.' International Journal of Sales, Retailing & Marketing. 9(2).
6. Dicko, Kelson. (2020). `The Role that Financial and Non-Financial Incentives play in Motivating Employees within a Financial Institution in Sandton.' The IIE, www.iiespace.iie.ac.za
7. Adaeze, Ekwochi., & Ogechukwu, Okoene. (2019). `Effect of Monetary Incentives on Workers Performance in Organization Nigerian Situation.' Journal of Theoretical & Applied Statistics. 7(2), 2079-2174. www.researchgate.net
8. Mokhniuk, Anna & Yushchyshyna, Larysa. (2018). `The Impact of Monetary and Non-Monetary Factors of Motivation on Employee Productivity.' Economic Journal of Lesia Ukrainka Eastern European National University. 13(1), 94-101. www.researchgate.net
9. Arun Kapoor. (2018). `Effect of Non-Monetary Rewards on Employee's Motivation and Retention in Private Companies.' International Research Journal of Management Science & Technology (IRJMST). 9(3), 2250-1959. www.irjmst.com
10. Shah, Mahpara. & Asad, Muzaffar. (2018) `Effect of Motivation on Employee Retention: Mediating Role of Perceived Organizational Support.' European Online Journal of Natural and Social Sciences. 7(2), 511-520, 1805-3602, www.european-science.com
11. Haider, Maqsood., Aamir, Alamzeb., Hamid, AA., & Hashim, Muhammad. (2015). `A Literature Analysis on the Importance of Non-Financial Rewards for Employee's Job Satisfaction.' Abhasyn Journal of Social Sciences, 8(2), 341-354, www.scholar.google.com
12. Kumar, Dhanonjoy., Hossain, Md. Zakir., & Nasrin, Shahnaz. (2015). `Impact of Non- Financial Rewards on Employee Motivation.' Asian Accounting and Auditing Advancement, 5(1), 18-25.
13. Bakotiæ, Danica., & Babiæ, Tomislav. (2013). `Relationship Between Working Conditions and Job Satisfaction: The Case Croation Shipbuilding Company.' International Journal of Business and Social Science, 4(2). www.ijbssnet.com
14. Brun, Jean- Pierre & Dugas, Ninon. (2008). `An Analysis of Employee Recognition: Perspectives on Human Resource Practices.' The International Journal of Human Resource Management, 19(4), 716-730, 1466-4399. www.researchgate.net
15. www.scholar.google.com
16. www.lnct.ac.in

तालिका क्र. 01

क्र.	वित्तीय अभिप्रेरक तत्व	लेखक (अनुशंसा)	मात्रा	प्रभाव
1.	**वेतन**	1.1 Devendra Singh et al. (2022) 1.2 Dr. Twinkle (2022) 1.3 Ekwochi, Adaeze & Okoene, Ogechukwu (2019) 1.4 Mokhniuk et al. (2018)	उचित मात्रा अनुचित मात्रा	कर्मचारी–प्रतिधारण कर्मचारी–गतिशीलता
2.	**बोनस**	2.1 Mokhniuk et al. (2018)	उचित मात्रा अनुचित मात्रा	कर्मचारी–प्रतिधारण कर्मचारी–गतिशीलता
3.	**कार्य–सुरक्षा**	3.1 Khushi Mittal (2022)	उचित मात्रा अनुचित मात्रा	कर्मचारी–प्रतिधारण कर्मचारी–गतिशीलता
4.	**कार्य की दशाएं**	4.1 Devendra Singh et al. (2022) 4.2 Khushi Mittal (2022) 4.3 Danica Bakotiæ & Tomislav Babiæ (2013)	उचित मात्रा अनुचित मात्रा	कर्मचारी–प्रतिधारण कर्मचारी–गतिशीलता
5.	**कर्मचारी–पहचान**	5.1 Khushi Mittal (2022) 5.2 Aruna Kapoor (2018) 5.3 Brun et al. (2008)	उचित मात्रा अनुचित मात्रा	कर्मचारी–प्रतिधारण कर्मचारी–गतिशीलता
6.	**निष्पक्ष–नीतियाँ**	6.1 Danica Bakotiæ & Tomislav Babiæ (2013)	उचित मात्रा अनुचित मात्रा	कर्मचारी–प्रतिधारण कर्मचारी–गतिशीलता

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Transforming Curriculum with Information Communication Technology (ICT): Toward Sustainable Education Goals

Dr. Dharmendra Kumar Meena*

***Professor (Computer Science) Govt. Meera Girls' College, Udaipur (Raj.) INDIA**

Abstract - ICTs have the potential to overcome historical challenges such as isolation and lack of access to information, which can impede educational and socioeconomic development. However, many teachers still use traditional teaching methods and struggle to integrate ICT into their subjects effectively. This raises concerns about how to impart knowledge on contemporary issues related to sustainable development. The paper investigates the challenges faced in developing curricula that utilize ICT effectively and whether these challenges might hinder sustainable development. It also seeks to identify ways to address these obstacles to achieve educational goals aligned with sustainable development. The study aims to provide answers to these questions and suggests ideas that could contribute to achieving education for sustainable development, an objective the world is striving towards.
Keywords: ICT, curriculum development, education for sustainable development.

Introduction - The integration of ICTs into the curriculum is essential for developing countries to thrive in an online world. ICT is foundational to most activities and plays a key role in empowering future generations. ICT literacy is critical for achieving economic and social goals, improving productivity and efficiency, and fostering innovation and competitiveness. In education, the significance of ICT cannot be overstated, as it equips individuals with the skills to access, manage, evaluate information, and communicate effectively. A Performance Measurement and Reporting Taskforce (2005) defined ICT literacy as the ability to use ICT to navigate society and develop new understandings.

Integrating ICT in the curriculum allows students to become skilled, creative, and productive users of technology, helping them achieve curriculum outcomes and actively participate in society. By developing the ability to inquire, create, and communicate through ICT, students gain essential knowledge and skills for effective societal engagement. ICT also addresses historical challenges such as isolation and lack of access to information, facilitating educational and socioeconomic development. The educational landscape has been reshaped by ICT, affecting content delivery and institutional operations. Implementing ICT is key to curriculum reform, promoting learner-centered environments and achieving future educational goals.

Despite ICT's potential, it remains underutilized in daily teaching (Gajendran, 2007). Many teachers rely on a traditional, teacher-centered approach and lack the know-how to integrate IT into their subjects. This raises concerns about how they can teach contemporary issues crucial for sustainable development. Building and developing curricula with ICT presents challenges, including hindering sustainable development if not addressed. The study examines these challenges and how to overcome them to achieve education for sustainable development. By offering solutions, the paper contributes to the global effort toward sustainable education.

Curriculum Development: In any educational system, available resources limit the introduction of new subjects into the school curriculum, especially when only basic facilities exist. Given the critical role of ICT in a country's future industrial and commercial health, investing in equipment, teacher training, and support services for effective ICT curriculum delivery should be a top government priority. National curricula must consider these resource issues and establish minimum requirements for effective delivery in various circumstances.

Redefining education to address Education for Sustainable Development (ESD) involves integrating principles, skills, perspectives, and values related to sustainability that are often lacking in current education systems (Ehlers, 2007). This process emphasizes the quality and relevance of education over quantity, promoting a vision that combines environmental, economic, and social aspects. Reorienting education requires teaching knowledge, skills, and values to guide and motivate individuals toward sustainable living, democratic participation, and sustainable livelihoods. Program

developers must balance future-oriented sustainability with traditional ecological knowledge, which carries values and practices of sustainable resource use. While a return to indigenous lifestyles may not be feasible for many, their values can be adapted to modern life. Redefining the curriculum involves creating a framework that enhances both teachers' and students' knowledge and skills in ICT. This design includes four key areas that align with the four stages of teaching and learning: ICT literacy, application of ICT in subject areas, integration of ICT across the curriculum, and ICT specialization.

Education For Sustainable Development: Education is a crucial element in the pursuit of sustainable development, but formal education must adapt by reorienting and re-engineering traditional methods (Tilbury et al., 2002; Huckle & Sterling, 1996; UNESCO, 2003). Research shows that even in technologically advanced nations, education systems have not effectively influenced choices and behaviors supporting sustainable development (Aston, 2002; Roschelle et al., 2007; Paas & Creech, 2008). In 2005, UNESCO launched the "Decade for Education for Sustainable Development," aiming to speed up the adoption of a new educational vision. This initiative calls for collaborative efforts to reorient policies, programs, and practices in education to better equip society to work together for a sustainable future (UNESCO, 2003). Research by Paas (2004) suggests that integrating ICTs more fully into the learning environment can support the changes needed for ESD. The next section explores how technological advances and technology policies drive ICT use in education.

ICT And Education For Sustainable Development: ICTs are crucial for advancing Education for Sustainable Development (ESD) in two key ways (Paas & Creech 2008). First, ICTs expand access to sustainability education through distance learning, networks, and databases. Second, they facilitate innovative interactions that emphasize not only knowledge but also choices, values, and actions. At a basic level, ICTs enable multimedia course content and content archiving. They also offer new interactivity and simulation methods that can enhance learning and foster new understandings. Utilizing these technologies can open up exciting possibilities for transforming educational methods in line with ESD goals. Paas & Creech (2008) outline three main applications of ICTs in Education for Sustainable Development (ESD): information resources, classroom supplements, and tools for distance learning. Information resources provide educators with access to extensive links, knowledge-sharing platforms, and support materials for ESD. Despite these resources, research on ICT use in ESD, including educational policies and pedagogical approaches, remains limited. ESD's roots in environmental education, focusing on outdoor experiences, may contribute to this gap. Early ICT use in education was often linked to civics and media awareness activities. Other fields, such as geography, increasingly integrate ICT tools like GIS and GPS into the curriculum.

ICTs are supplementing classroom activities by facilitating collaboration, connectivity, real-world, experience-based learning, and systems thinking—key pedagogical methods supporting education for sustainability. This approach is applied in both primary and university education, offering opportunities for real-time, real-world learning and collaborative experiences.

ICTs are primarily applied in distance learning, which has evolved from print-based materials to online learning environments that use audio/video teleconferencing, computer-aided instruction, and other digital tools (Tella, A., & Adu, E., 2009). Terms such as e-learning, online learning and mobile learning are often used interchangeably, though they can represent different approaches with varied target audiences, pedagogical methods, and learning tools. Wikipedia offers useful summaries of the tools and differences in online learning terminology. While ICT use in education offers many benefits, it also presents challenges that must be addressed.

Obstacles And Strategies For Integrating Ict In Education In India

The introduction of ICT into the curriculum faces numerous challenges, such as:

1. **Infrastructure Limitations:** Many schools, particularly in rural areas, lack the necessary infrastructure such as reliable electricity, high-speed internet, and updated hardware to support ICT integration.
2. **Cost Constraints:** The cost of ICT equipment, software, and maintenance can be prohibitive for many educational institutions, particularly those with limited budgets.
3. **Lack of Teacher Training:** Teachers often lack the training needed to effectively integrate ICT into their teaching methods. This includes not only technical skills but also pedagogical strategies for using ICT in the classroom.
4. **Language Barriers:** Many educational resources available in ICT are primarily in English, which can be a barrier for students and teachers who are more comfortable in regional languages.
5. **Uneven Access:** There is a significant digital divide between urban and rural areas, as well as between different socio-economic groups, which limits equal access to ICT resources.
6. **Cultural Resistance:** In some regions, there may be resistance to changing traditional teaching methods, and skepticism about the effectiveness of ICT in education.

Strategies:

1. **Government Initiatives:** The Indian government can play a crucial role in promoting ICT in education through policies and initiatives such as the Digital India campaign, which aims to enhance digital infrastructure and literacy across the country.
2. **Public-Private Partnerships:** Collaboration with the

private sector can help bring in investment, technology, and expertise to improve ICT infrastructure and resources in schools.

3. Teacher Training Programs: Comprehensive teacher training programs should be implemented to enhance teachers' ICT skills and pedagogical approaches for integrating technology into their teaching.

4. Local Language Content: Developing and promoting educational content in local languages can make ICT resources more accessible and relevant to a wider range of students and teachers.

5. Subsidized Technology: Providing subsidies or financial support for ICT equipment and internet access can help bridge the digital divide and increase access to technology for students and schools.

6. Community Involvement: Engaging local communities and stakeholders in the implementation of ICT programs can help ensure cultural relevance and support for the initiatives.

7. Monitoring and Evaluation: Continuous assessment of ICT integration programs can help identify areas for improvement and ensure that resources are being used effectively to enhance education.

By addressing these obstacles and implementing targeted strategies, India can make significant progress toward integrating ICT in education and improving learning outcomes for students across the country.

Conclusion: The study focuses on the critical issue of integrating ICT (Information and Communication Technology) into curriculum development for achieving education for sustainable development. It examines the challenges of incorporating ICT into the curriculum and emphasizes the goal of transforming learning effectively through ICT adoption. The study argues that the integration of ICT should be driven by curriculum needs rather than technology itself, aiming for future curriculum reform. Many educational programs are designed to contribute to sustainable development and should foster a culture of values, attitudes, knowledge, and skills among individuals. To address the challenges, developing ICT experts capable of managing projects in both public and private sectors is essential. Additionally, retraining teachers in ICT use is crucial for designing diverse activities for different learners. Proper information management requires the establishment of information policies, which many countries currently lack. The study also notes the importance of making ICT accessible in various languages beyond English and French to ensure inclusivity for non-English and non-French speakers. Accelerating initiatives to support multiple languages in ICT is necessary to broaden access.

References:-

1. Astonm (2002).The development and use of indicators to measure the impact of ICT use in education in the United Kingdom and other European countries. Developing Performance Indicators for ICT in Education. UNESCO Institute for Information Technology (IITE). Chapter 43, pp: 62–73.
2. Ehlers, Ulf. (2007). Quality Literacy - Competencies for Quality Development in Education and e-Learning. Educational Technology & Society. 10. 96-108.
3. Gajendran N (2007). The third eye of the teacher. Indian J.Sci.Technol. 1 (2), 1-2.
4. Huckle J and Sterling S (1996). Education for Sustainability. London: Earth scan.
5. PaasL and Creech H (2008). How ICTs can support Education for Sustainable Development: Current Uses and Trends. Paper Prepared with the support of the Province of Manitoba and Presented to Manitoba Education, Citizenship and Youth. Winnipeg, Manitoba, Canada.
6. Performance Measurement and Reporting Taskforce (2005). An Assessment Domain for ICT Literacy, Ministerial Council on Education, Employment, Training and Youth Affairs (MCEETYA), Carlton South.
7. Roschelle J, Patton C and Tatar D (2007). Designing networked handheld devices to enhance school learning, in M. Zelkowitz (ed.) Advances in Computers. 70, 1–60.
8. Schrum L and Solomon G (2007). Web 2.0 and you: Starting the conversation. International Society for Technology in Education (ISTE).
9. Tella, A., & Adu, E. (2009). Information Communication Technology (ICT) and Curriculum Development: the Challenges for Education for Sustainable Development. Indian Journal of Science and Technology, 2(3), 55-59.
10. Tilbury D, Stevenson R B, Fien J and Schreuder D (2002). Education for Sustainable Development: Dimensions of Work. IUCN Commission on Education and Communication–The World Conservation Union.
11. UNESCO (2003). Rewarding Literacy: A study of the history and impact of the International literacy Prices, Paris.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Impact of Internet Banking on Customer Satisfaction: An Empirical Study

Rajesh Kumar Saini* Dr. Laxmi Narayan Sharma**

*Research Scholar (Commerce) Vikram University, Ujjain (M.P.) INDIA
** Principal & Prof. (Commerce) Rajiv Gandhi Govt. P.G. College, Mandsaur (M.P.) INDIA

Abstract - The banking sector has been swiftly embracing Internet banking as an effective and practical means to enhance customer value. It stands out as one of the favored services provided by traditional banks, aiming to deliver faster and more dependable services to online users. Given the swift advancement of computer technology as a commercial tool, Internet banking can effectively attract more customers to engage in banking transactions within affiliated banks.The main objective of this study was to investigate the impact of internet banking on customer satisfaction within Indore region. Data were collected from a sample of 401 participants of Indore through a closed-ended structured questionnaire, the respondents were selected by convenience sampling technique. Correlation and regression analysis was applied to test the proposed hypotheses. Results suggest that internet banking puts significant positive impact on customer satisfaction among respondents of Indore. Future suggestions and recommendations concludes the article.
Keywords: Customer Satisfaction, Internet banking, Security, Trust.

Introduction - In today's digitally-driven world, where technology permeates nearly every aspect of our lives, the banking sector stands as no exception to the transformative power of the internet. With the advent of internet banking, traditional brick-and-mortar institutions have undergone a remarkable metamorphosis, fundamentally altering the way customers interact with their finances. This paradigm shift has not only revolutionized banking processes but has also significantly influenced customer satisfaction, a pivotal metric in determining the success and sustainability of any financial institution.

To comprehensively assess the impact of internet banking on customer satisfaction, it is essential to employ a multifaceted approach that incorporates both qualitative and quantitative methodologies. By analyzing customer feedback, conducting surveys, and leveraging data analytics, researchers can gain valuable insights into customer perceptions, preferences, and behaviors regarding internet banking services. Moreover, comparative studies examining customer satisfaction across different banking channels, such as branch banking, mobile banking, and internet banking, can provide nuanced insights into the relative strengths and weaknesses of each channel, informing strategic decision-making and resource allocation.

The aim of this study is to delve into the intricate relationship between internet banking and customer satisfaction, unpacking the various dimensions and nuances that underpin this dynamic interaction. By conducting a comprehensive analysis, we endeavor to provide valuable insights into the impact of internet banking on customer satisfaction, thereby aiding banking institutions in refining their strategies to better cater to the evolving needs and preferences of their clientele.

Literature Review

Internet banking, also known as online banking or e-banking, refers to the provision of banking services over the internet, allowing customers to conduct a wide array of financial transactions remotely, anytime and anywhere(Chauhan.et.al.,2022). From checking account balances to transferring funds, paying bills, and even applying for loans, the functionalities offered by internet banking platforms are extensive, offering unparalleled convenience and accessibility to users.

The adoption of internet banking has witnessed exponential growth in recent years, fueled by advancements in technology, changing consumer behaviors, and a growing preference for digital solutions (Schlich, 2014). According to a report by Statista, the number of digital banking users worldwide is projected to surpass 3.6 billion by 2024, underscoring the increasing reliance on online channels for financial management.

Against this backdrop, understanding the impact of internet banking on customer satisfaction becomes imperative for banking institutions seeking to remain competitive in a rapidly evolving landscape (Supriyanto et al.,2021). Customer satisfaction, often regarded as the cornerstone of business success, encompasses the overall

sentiment and perception of customers regarding the products, services, and experiences offered by a company. In the context of banking, satisfied customers are more likely to exhibit loyalty, engage in repeat business, and serve as brand advocates, thereby contributing to the long-term profitability and viability of the institution (Hammoud et al. ,2018).

The relationship between internet banking and customer satisfaction is multifaceted, influenced by a myriad of factors ranging from usability and functionality to security, reliability, and customer support (Zouari and Abdelhedi, 2021). At the heart of this relationship lies the concept of convenience – a key driver of customer satisfaction in the realm of internet banking. By enabling customers to perform transactions at their convenience, without the constraints of time or location, internet banking platforms empower users with unprecedented control over their finances, fostering a sense of autonomy and empowerment (Toor ,2016).

Moreover, the seamless integration of internet banking into the fabric of everyday life has reshaped customer expectations, raising the bar for service excellence and convenience. In an era characterized by instant gratification and on-demand services, customers demand banking solutions that are not only efficient and user-friendly but also personalized and tailored to their individual needs(Tiruneh ,2017). As such, banking institutions must continually innovate and enhance their internet banking offerings to meet the evolving expectations of their tech-savvy clientele.

However, the proliferation of internet banking also brings forth a host of challenges and concerns, chief among them being security and privacy (Mwiya et al. ,2022). With the increasing prevalence of cyber threats such as phishing attacks, identity theft, and data breaches, customers are understandably apprehensive about the safety of their personal and financial information when conducting transactions online. Consequently, the perceived security of internet banking platforms plays a pivotal role in shaping customer satisfaction, with robust security measures serving as a fundamental prerequisite for building trust and confidence among users.

Furthermore, the digital divide remains a pertinent issue, with certain segments of the population, such as the elderly or those residing in rural areas, facing barriers to accessing internet banking due to technological literacy or infrastructure constraints. Addressing these disparities and ensuring inclusivity is essential for banking institutions to foster broad-based customer satisfaction and promote financial inclusion(Villers ,2012).

In addition to convenience and security, the quality of customer support and service delivery also significantly impacts customer satisfaction in the context of internet banking. Prompt resolution of inquiries, efficient problem-solving, and personalized assistance contribute to a positive customer experience, fostering trust and loyalty towards the banking institution(Zavareh et al. ,2012). Conversely, poor customer service can result in frustration and dissatisfaction, leading to customer churn and reputational damage.

The advent of internet banking has transformed the banking landscape, offering unprecedented convenience and accessibility to customers while posing new challenges and considerations for banking institutions. Understanding the impact of internet banking on customer satisfaction is crucial for navigating this rapidly evolving landscape, enabling banks to tailor their strategies and offerings to meet the evolving needs and expectations of their clientele. Through rigorous analysis and research, this study aims to shed light on the intricacies of this relationship, providing valuable insights that can inform the development of customer-centric banking solutions and drive enhanced satisfaction and loyalty among customers.

Objectives Of The Study:

1. To study the relationship between digital banking and customer satisfaction among respondents of Indore city.
2. To study the effect of digital banking on customer satisfaction among respondents of Indore City.

Hypotheses:

1. There is a significant relationship between digital banking and customer satisfaction among respondents of Indore city.
2. There is significant effect of digital banking on customer satisfaction among respondents of Indore city.

Research Methodology

Sample

A total of 401 respondents were selected through a convenient random sampling method. The participants were chosen from Indore city, based on their experience with online banking and banking technology. Data collection was conducted using Google Forms, emails, and physical questionnaires. Of the 450 distributed questionnaires, 401 complete and suitable responses were received for analysis.

Tools for Data Collection: A questionnaire, formulated after reviewing relevant literature, was employed for the study. It encompasses a demographic section capturing respondents' details such as gender and age. Additionally, it incorporates two scales: the first scale assesses Digital banking services, comprising of 15 items; the second evaluates Customer satisfaction with 15 items. Each scale ranges from strongly disagree (1) to strongly agree (5).

Statistical Tools Used: Correlation analysis was employed to examine the relationship between internet banking and customer satisfaction. Additionally, regression analysis was utilized to assess the impact of internet banking on customer satisfaction.

Results: The sample comprised 214 males and 187 females, with an average age falling between 30 and 40 years (n=143). Additionally, participants included individuals

above 40 years of age (n=123) and those aged between 20 and 30 years (n=135). Regarding the highest educational attainment, participants included postgraduates (n=154), graduates (n=139), and undergraduates (n=108). Furthermore, participants reported varying monthly incomes, with some earning above 5 Lakhs (n=129), 2-5 Lakhs (n=148), and below 2 Lakhs (n=124). In terms of professional experience, respondents indicated periods of less than 1 year (n=104), 1-5 years (n=124), 6-10 years (n=96), and more than 10 years (n=77).

Two variables were employed in the study. The first variable, internet banking,consisted of 15 items and the second variable, customer satisfaction, comprised 15 items.

The Cronbach's alpha coefficient for the internet banking measure was calculated as .912, while for the customer satisfaction measure it was determined as .916. According to the literature review, an alpha value exceeding .60 is considered good and acceptable for measurement.

Table 1: Reliability Statistics of Study Variables

Reliability Statistics

Scale	Cronbach's Alpha	Cronbach's Alpha Based on Standard -ized Items	No. of Items
Internet Banking	0.912	0.907	15
Customer Satisfaction	0.916	0.910	15

Table 2 : Pearson coefficient correlation between Internet Banking and Customer Satisfaction.

Correlations

		IB	CS
IB	Pearson Correlation	1	.792**
	Sig. (2-tailed)		0.000
	N	401	401
CS	Pearson Correlation	.792**	1
	Sig. (2-tailed)	0.000	
	N	401	401

**. Correlation is significant at the 0.01 level (2-tailed).

In the current study, Hypothesis 1 aims to investigate the association between Internet Banking and Customer Satisfaction. The findings presented in Table 2 reveal a correlation coefficient of .792. This result signifies a substantial positive correlation between internet banking and customer satisfaction. Consequently, the null hypothesis is rejected, and the alternative hypothesis is supported.

Table 3 (see in last page)

Table 3 presents the Regression Model, with Internet Banking serving as the independent variable and Customer Satisfaction as the dependent variable. The R-squared (R2) value is .649, indicating that internet banking accounts for 64.9% of the variability in Customer satisfaction. The F statistic is 272.785, significant at .000 level, indicating the model's overall significance.

The t statistic for internet banking is 16.779 at a significance level of .000. With a p-value less than .005, the regression model highlights a significant impact of internet banking on Customer satisfaction among respondents from Indore. Consequently, the null hypothesis is rejected, and the alternative hypothesis is accepted. Thus, internet banking collectively exerts a substantial influence on Customer satisfaction.

The findings of this study underscore the pivotal role that internet banking plays in shaping customer satisfaction, with convenience emerging as a central theme in driving positive sentiment among users. By enabling customers to conduct a wide array of financial transactions remotely, anytime and anywhere, internet banking platforms offer unparalleled convenience and accessibility, empowering users with greater control over their finances. The ability to check account balances, transfer funds, pay bills, and even apply for loans with just a few clicks not only streamlines the banking process but also enhances the overall customer experience, fostering a sense of autonomy and empowerment.

Conclusion: In the realm of modern banking, where technology continues to redefine the way financial services are delivered and consumed, the impact of internet banking on customer satisfaction stands as a critical area of inquiry. Through an in-depth analysis of the various dimensions and nuances that underpin this dynamic relationship, this study has sought to provide valuable insights into the evolving landscape of digital banking and its implications for customer experience and satisfaction.

However, the proliferation of internet banking also brings forth a host of challenges and considerations, chief among them being security and privacy. In an era characterized by increasing cyber threats and data breaches, customers are understandably concerned about the safety of their personal and financial information when conducting transactions online. Thus, banking institutions must prioritize the implementation of robust security measures and protocols to safeguard customer data and build trust and confidence among users.

In conclusion, the findings of this study highlight the transformative impact of internet banking on customer satisfaction and underscore the need for banking institutions to continually innovate and adapt to meet the evolving needs and expectations of their clientele. By prioritizing convenience, security, and inclusivity in their internet banking offerings, banks can foster enhanced satisfaction and loyalty among customers, driving long-term profitability and sustainability. Moving forward, further research and analysis will be needed to continue monitoring the evolving landscape of digital banking and its implications for customer satisfaction, ensuring that banking institutions remain responsive to the changing needs and preferences of their customers in an increasingly digital world.

Recommendations: Based on the study findings following

recommendations could be made for different stakeholders of the study.

Enhance User Experience: Banking institutions should prioritize the continual enhancement of user experience (UX) across their internet banking platforms. This includes optimizing the design and navigation to ensure ease of use, streamlining the account management process, and implementing intuitive features such as personalized dashboards and interactive tools.

Invest in Security Measures: Given the paramount importance of security in internet banking, banks should invest in robust cybersecurity measures to safeguard customer data and mitigate the risk of cyber threats. This includes implementing multi-factor authentication, encryption protocols, and intrusion detection systems to protect against unauthorized access and data breaches. Additionally, banks should educate customers about best practices for online security and provide resources for reporting suspicious activity or potential security breaches.

Offer Personalized Services: Personalization is key to enhancing customer satisfaction in internet banking. Banks should leverage data analytics and artificial intelligence to gain insights into customer preferences and behaviors, enabling them to offer personalized product recommendations, targeted promotions, and customized financial advice. By tailoring their services to meet the unique needs of each customer, banks can deepen engagement, foster loyalty, and drive enhanced satisfaction.

Foster Financial Literacy: Banking institutions should invest in educational initiatives and resources to promote financial literacy and empower customers to make informed decisions about their finances. This may include offering online tutorials, workshops, or personalized coaching sessions to help customers navigate internet banking platforms confidently and effectively.

Solicit and Act on Customer Feedback: Banks should implement mechanisms for soliciting feedback from customers, such as surveys, feedback forms, or online forums, and prioritize responsiveness to customer concerns and suggestions.

The recommendations outlined above provide a roadmap for banking institutions to optimize the impact of internet banking on customer satisfaction. By adopting a customer-centric approach and continually iterating on their internet banking offerings, banks can drive enhanced satisfaction, loyalty, and long-term success in an increasingly digital world.

References:-

1. Schlich. B. (2014). Winning Through Customer Satisfaction. EY Global Consumer Banking Survey.
2. Villers.V (2012). Banking will mean digital banking in 2015. Retrieved [February 3, 2015].from http://www.pwc.lu/en/press-articles/2012/banking-will-mean-digital-banking-in-2015.jhtml
3. Chauhan, V., Yadav, R., & Choudhary, V. (2022). Adoption of electronic banking services in India: An extension of UTAUT2 model. Journal of Financial Services Marketing. https://doi.org/10.1057/s41264-021-00095-z
4. Hammoud, J., Bizri, R. M., & El Baba, I. (2018). The impact of e-banking service quality on customer satisfaction: Evidence from the Lebanese banking sector. SAGE Open, 8(3), 2158244018790633.
5. Supriyanto, A., Wiyono, B. B., & Burhanuddin, B. (2021). Efects of service quality and customer satisfaction on loyalty of bank customers. Cogent Business & Management, 8(1), 1937847.
6. Toor, A. (2016). The impact of e-banking on customer satisfaction: Evidence from banking sector of Pakistan. International Journal of Trends in Business Administration. https://doi.org/10.5430/jbar.v5n2p27
7. Zouari, G., & Abdelhedi, M. (2021). Customer satisfaction in the digital era: Evidence from Islamic banking. Journal ofInnovation and Entrepreneurship, 10(1), 1–18.
8. Tiruneh, G. A. (2017). Measuring the service quality of Amhara credit and saving institutions towards small and micro sized enterprises. Singaporean Journal of Business Economics, and Management Studies, 5(10), 1–15. https://doi.org/10.12816/0037569
9. Mwiya, B., Katai, M., Bwalya, J., Kayekesi, M., Kaonga, S., Kasanda, E., Munyonzwe, C., Kaulungombe, B., Sakala, E., &Muyenga, A. (2022). Examining the efects of electronic service quality on online banking customer satisfaction: Evidence from Zambia. Cogent Business & Management, 9(1), 2143017.
10. Zavareh, F. B., Arif, M. S. M., Jusoh, A., Zakuan, N., Bahari, A. Z., & Ashourian, M. (2012). E-service quality dimensions and their efects on e-customer satisfaction in internet banking services. Procedia-Social and Behavioral Sciences, 40, 441–445.

Table 3: Regression Analysis

Model Summary

R	R Square	Adjusted R Square	Std. Error of the Estimate	Change Statistics				
				R Square Change	F Change	df1	df2	Sig. F Change
.790[a]	0.649	0.642	4.839	0.649	272.785	1	409	0.000

a. Predictors: (Constant), IB

ANOVA[a]

Model		Sum of Squares	df	Mean Square	F	Sig.
1	Regression	5912.990	1	5912.990	272.785	.000[b]
	Residual	4993.395	209	22.419		
	Total	10906.39	210			

a. Dependent Variable: CS

b. Predictors: (Constant), IB

Coefficients[a]

Model		Unstandardized Coefficients		Standardized Coefficients	t	Sig.
		B	Std. Error	Beta		
1	(Constant)	9.139	1.980		5.114	0.000
	IB	0.512	0.032	0.790	16.779	0.000

a. Dependent Variable: CS

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

भारत-चीन के मध्य आर्थिक संबंधों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. शकुन शुक्ला* कामना देवी साहू**

* सेवानिवत्त प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान) शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत
** शोधार्थी (राजनीति विज्ञान) बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना - भारत और चीन दोनों ही विश्व के सबसे बड़ी जनसंख्या वाले पड़ोसी देश हैं। भारत ने लंबे समय के संघर्ष के बाद 1947 में ब्रिटिश उपनिवेशवाद से स्वतंत्रता प्रापत की तथा चीन ने 1949 की साम्यवादी शासन की स्थापना की भारत ने चीन की साम्यवादी क्रांति का स्वागत किया तथा संयुक्त राष्ट्र संघ में राष्ट्रवादी चीन के स्थान पर साम्यवादी चीन की सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता का समर्थन किया। 1954 में चीन के प्रधानमंत्री चाउ एन लाई भारत आए तथा दोनों देशों ने आपसी संबंधों को निर्देशित करने वाले पंचशील समझौते पर हस्ताक्षर किए। पंचशील समझौते में एक-दूसरे की सम्प्रभुता और अखण्डता का सम्मान शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व, पारस्परिक लाभ तथा सहयोग जैसे बिन्दु शामिल किये गये। इसी यात्रा के दौरान चीन, हिन्दी भाई-भाई का नारा दिया गया लेकिन चीन की विस्तारवादी नीति के चलते पंचशील की भावना अधिक समय तक नहीं टिक सकी। तिब्बत के प्रश्न पर दोनों देशों के मध्य 1959 में तनाव उत्पन्न हो गया। चीन के लिए आपत्ति का मुख्य विषय यह था कि वह तिब्बत को चीन का अभिन्न अंग मानता है, जबकि लामा की सरकार को भारत में टिकने की इजाजत दी। इस तनाव का परिणाम यह हुआ कि 1962 में चीन ने भारत पर सैनिक आक्रमण कर दिया जिसमें भारत की पराजय हुई तथा चीन ने लद्दाख क्षेत्र में अक्साई चीन पर अपना कब्जा स्थापित कर लिया। दूसरी तरफ चीन अरुणाचल प्रदेश में अपना प्रस्तुत कर रहा है। तब से लेकर वर्ताओं के बावजूद आज तक दोनों देशों के मध्य सीमा विवाद मौजूद है, इस युद्ध के उपरांत जहां चीन और पाकिस्तान के बीच सैनिक व सामरिक गठबंधन का विकास हुआ। वहीं भारत अपनी सुरक्षा के लिए चीन के प्रति आशंकित बना रहा। 1962 में समाप्त हुए कूटनीतिक संबंधों की पुन:स्थापना 1976 में हुई। तब से लेकर अब दोनों देशों के मध्य सम्बन्धों को सामान्य बनाने की प्रक्रिया चल रही है। भारत और चीन दोनों ने वैश्वीकरण के युग में आर्थिक उदारीकरण की नीति को अपना कर तीव्र आर्थिक विकास किया है। दोनों के मध्य आर्थिक सम्बन्ध गत दो दशकों में मजबूत हुए हैं, लेकिन सीमा विवाद का अभी तक कोई समाधान नहीं खोजा जा सका है, इसके अतिरिक्त वर्तमान में चीन और पाकिस्तान का सैनिक गठजोड़ तथा चीन द्वारा दक्षिण एशिया में भारत को घेरने की नीति भी भारत के लिए चिंता का विषय है कि चीन के सहयोग से ही पाकिस्तान अपने परमाणु तथा मिसाइल कार्यक्रम को आगे बढ़ा सका है। 2009 में चीन ने जम्मू-कश्मीर को स्थिति को भी विवादित बनाने का प्रयास किया है, अत: दोनों के मध्य तनावपूर्ण स्थिति में आर्थिक संबंधों का विकास हो रहा है।

यह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की एक विडंबना ही है कि भारत और चीन के मध्य तमान राजनीतिक मतभेदों के बावजूद दोनों के आर्थिक व व्यापारिक सम्बन्धों का अबाध गति से विस्तार हो रहा है। वर्ष 2010 में चीन भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार देश बन गया है। इस परिप्रेक्ष्य में 2010 में ही दोनों के मध्य रणनीतिक आर्थिक वर्ताओं का दौरा आरंभ हुआ है। ये वर्ताएं दोनों के आर्थिक सम्बन्धों को मजबूती प्रदान करने में सहायक सिद्ध हो सकती है, लेकिन पुन: मूल प्रश्न यह है कि भारत और चीन के मध्य आर्थिक सम्बन्धों की निकटता उनके राजनीतिक सम्बन्धों को सुधारने में कहां तक कामयाब हो सकेगी? वैसे भी चीन और भारत के मध्य समानताएं-असमानताएं तथा प्रतियोगिता के तत्व अत्यन्त महत्वपूर्ण है। दोनों में समानता यह है कि दोनों एशियाई महाद्वीप के सबसे बड़े पड़ोसी देश हैं, वर्तमान में दोनों की गणना विश्व की उभरती हुई आर्थिक शक्तियों में की जा रही है। चीन ने जहां पिछले तीन दशकों में लगभग 10 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर अर्जित की है, वहीं भारत ने गत दो दशकों में लगभग 8 प्रतिशत की आर्थिक वृद्धि दर अर्जित की है। चीन अमरीका के बाद विश्व की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। क्रय शक्ति समतुल्यता (परचेजिंग पावर पैरिटी) की दृष्टि से भारत तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। दोनों ही देश कई अंतर्राष्ट्रीय विषयों जैसे वैश्विक वित्तीय संस्थाओं का सुधार विश्व व्यापार संगठन का कृषि पर समझौता, जलवायु परिवर्तन, नई अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था आदि के सम्बन्ध में लगभग समान दृष्टिकोण रखते हैं। दोनों ही देशों की उभरती अर्थव्यवस्थाओं के संगठन 'ब्रिक्स' के सदस्य हैं, जिसका एक प्रमुख उद्देश्य एक ऐसी वैश्विक व्यवस्था की स्थापना करना है, जो समाधान और न्याय के साथ-साथ बहुपक्षीय निर्णय प्रक्रिया से संचालित हो। मूलत: यह संगठन पश्चिमी देशों के प्रभुत्व वाली वैश्विक व्यवस्था को अधिक लोकतांत्रिक व बहुपक्षीय बनाना चाहती है। इसी तरह दोनों देश विश्व की 20 सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं के संगठन का मुख्य उद्देश्य वैश्वीकरण के युग में विश्व अर्थव्यवस्था का प्रबन्धन व संचालन करना है।

लेकिन दोनों के मध्य असमानता और प्रतियोगिता के तत्व भी कम महत्वपूर्ण नहीं है, जहां चीन साम्यवादी विचारधारा से संचालित अर्थव्यवस्था वाला देश है। वहां भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था के सिद्धांत को लागू किया गया है, राजनीतिक दृष्टि से ही चीन में बहुदलीय लोकतंत्र का अभाव है। वहीं भारत बहुदलीय लोकतंत्र का विश्व में सबसे बड़ा उदाहरण है। इतना ही नहीं दोनों के मध्य लम्बे समय से सीमा का विवाद लम्बित है तथा दोनों देश 1962 में सैनिक संघर्ष में भी संलग्न रहे हैं। इसके अतिरिक्त दोनों के मध्य

दक्षिण एशिया पूर्व एशिया तथा अफ्रीका में सामरिक प्रतियोगिता भी चल रही है। दक्षिण एशिया में चीन भारत के पड़ोसी देशों विशेषकर पाकिस्तान, मालद्वीप, म्यामार आदि के साथ सामरिक संबंधों का विकास कर भारत को घेरने की नीति का अनुसरण कर रहा है।

भारत और पाकिस्तान के सामरिक, सैनिक व आर्थिक सम्बन्ध भारत की सुरक्षा की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसी तरह दक्षिण पूर्व एशिया में भारत की बढ़ती रणनीतिक साझेदारी व प्रभाव को रोकने के लिए चीन प्रयासरत है। अफ्रीका में भी दोनों देशों के मध्य संसाधनों की उपलब्धता विशेषकर ऊर्जा संसाधन तथा राजनीतिक प्रभाव वृद्धि के क्षेत्र में प्रतियोगिता का दौर जारी है।

भारत-चीन की रणनीतिक आर्थिक वार्ताएं - उक्त विषमताओं व प्रतियोगिता के संदर्भ में भारत और चीन के मध्य बढ़ रहे आर्थिक संबंधों की प्रकृति उल्लेखनीय है। वर्ष 2001 में दोनों के मध्य कुल व्यापार मात्र 2.32 बिलियन डॉलर था। यह द्विपक्षीय व्यापार 2011 में बढ़कर 73.9 बिलियन डॉलर हो गया है। दोनों देशों ने 2015 तक इस व्यापार को 100 बिलियन डॉलर तक बढ़ाने का लक्ष्य निधारित किया है। उल्लेखनीय डॉलर है। इसके बावजूद व्यापारिक सम्बन्धों का निरंतर विस्तार हो रहा है। दोनों देशों ने 2005 में सामरिक और सहयोगात्मक साझेदारी बढ़ाने के लिए एक संयुक्त वक्तव्य पर हस्ताक्षर किए थे तथा उसी वर्ष दोनों देशों ने यह तय किया था कि दोनों के मध्य प्रतिवर्ष नियमित आधार पर वार्षिक शिखर वार्ताओं की शुरूआत की जाएगी। तब से लेकर निरन्तर प्रतिवर्ष दोनों के मध्य नियंत्रित शिखर वार्ताएं आयोजित की जा रही हैं। इसी क्रम में दिसंबर 2010 में इन शिखर वार्ताओं का आयोजन नई दिल्ली में किया गया था। इन शिखर वार्ताओं में ही दोनों देशों ने रणनीतिक आर्थिक वार्ता प्रक्रिया आरंभ करने का निर्णय लिया था। सरकारी विज्ञप्ति के अनुसार इन आर्थिक राजनीतिक वार्ताओं का मुख्य उद्देश्य दोनों के मध्य व्यापक आर्थिक समन्वय करना, आर्थिक मामलों में अनुभवों का आदान-प्रदान करना तथा भारत और चीन के मध्य आर्थिक सहयोग को बढ़ाना है। ये वार्ताएं दोनों देशों के मध्य आमतौर पर चल रही अन्य वार्षिक वार्ताओं से भिन्न है। इन वार्ताओं की मुख्य बात यह है कि इसके अंतर्गत दोनों देश रणनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण आर्थिक मुद्दों पर विचार विमर्श करते हैं। दोनों के मध्य सम्बन्धों में आर्थिक पक्ष को सर्वाधिक महत्व देने की यह प्रवृत्ति दोनों के सम्बन्धों में नये युग की शुरूआत है।

रणनीतिक आर्थिक वार्ताओं का सम्पादन वार्षिक आधार पर एक दूसरे के देश में बदल-बदल कर किया जाता है। इन वार्ताओं का प्रथम दौर सितम्बर 2011 में चीन की राजधानी बीजिंग में सम्पन्न हुआ। इन वार्ताओं के विकास ऊर्जा संसाधनों के संरक्षण जल संसाधनों के बेहतर प्रयोग तथा पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में सहयोग को बढ़ाने के लिए उच्चस्तरीय विचार-विमर्श किया। दोनों देशों ने इन क्षेत्रों में अपने अनुभवों के आदान-प्रदान पर अपनी सहमति व्यक्त की। चीन ने भारत में छ: अति द्रुतगामी रेल्वे गलियारों के विकास में सहायता देने पर सहमति व्यक्त की। इन वाताओं की एक प्रमुख उपलब्धि यह थी कि दोनों देशों ने प्राथमिकता वाले पांच क्षेत्रों के नीति समन्वय, ढांचागत सुविधाएं, ऊर्जा, पर्यावरण संरक्षण तथा उच्च तकनीकी के क्षेत्र में सहयोग व विचार-विमर्श को आगे बढ़ाने के लिए पांच अलग-अलग कार्यदलों के गठन का निर्णय लिया।

वैश्विक स्तर पर सहयोग दोनों पक्षों में विभिन्न वैश्विक मुद्दों पर सहयोग हेतु विचारों का आदान-प्रदान किया। दोनों ने वर्तमान वैश्विक आर्थिक विकास व चुनौतियों के समाधान में सहयोग के लिए प्रतिबद्धता व्यक्त की। इसके साथ ही दोनों ने अपने सामान्य हितों के संरक्षण के लिए वैश्विक स्तर पर विभिन्न मुद्दों में समन्वय पर सहमति व्यक्त की। दोनों ने कई सामान्य हितों को रेखांकित किया जो प्रमुख है। अन्तरर्राष्ट्रीय वित्तीय व भौतिक संस्थाओं में सुधार विश्व स्तर पर वस्तुओं की कीमतों में स्थिरता लाना, जीवन्त विकास की प्रक्रिया को मजबूत बनाना। जलवायु परिवर्तन वार्ताओं का समतापूर्व समापन तथा खाद्यान्न एवं ऊर्जा आर्थिक विकास गति को बनाए रखने के लिए बाह्य ऊर्जा स्त्रोतों पर निर्भर है। अत: ऊर्जा संसाधनों की सुरक्षा व उपलब्धता दोनों की विदेश नीति का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य है।

वृहद् आर्थिक नीतियों में विचारों के आदान-प्रदान को मजबूत बनाने के लिए दोनों देशों ने इस बात पर सहमति व्यक्त की कि 2008 से चल रही वैश्विक मंदी के चलते विश्व स्तर पर विकास की गति धीमी हो गई। नकारात्मक प्रभाव सामने आए हैं। जैसे विकसित देशों के बाजारों में मांग का कम होना। यूरोपीय देशों में रोजगार व कीमतों का संकट निम्न व्यापारिक गतिविधियां तथा कीमतों में वृद्धि की प्रवृत्ति आदि इस परिवेश से दोनों देशों में अपनी आर्थिक विकास की गति को बनाए रखने के संकल्प को दोहराया। इसके लिए दोनों देशों ने अपने विनिर्माण तथा सेवा क्षेत्रों में समायोजन करने उपलब्ध तकनीकी को समुन्नत बनाने तथा आधारभूत सुविधाओं के विस्तार पर सहमति व्यक्त की। इन मामलों में दोनों देशों ने उच्चस्तरीय संयुक्त अध्ययनों की आयोजित करने हेतु भी सहमति व्यक्त की।

व्यापार तथा निवेश का विस्तार दोनों देशों ने अपनी लाभ की दृष्टि से द्विपक्षीय व्यापार तथा निवेश को बढ़ाने पर सहमति व्यक्त की। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए दोनों देशों ने कतिपय उपायों की आवश्यकता पर बल दिया, जैसे- दोनों के मध्य पूरक क्षेत्रों की पहचान, व्यापार तथा बाजार की बाधाओं को दूर करना, प्रोजेक्ट साझेदारी को बढ़ाने निजी क्षेत्र के व्यावसायिक समूहों में आदान-प्रदान को बढ़ाना, यातायात नेटवर्क को मजबूत बनाना, संतुलित व्यापार को सुनिश्चित करना तथा द्विपक्षीय निवेश को बढ़ाना आदि।

आधारभूत सुविधाओं व वित्तीय क्षेत्र में सहयोग को बढ़ाना दूसरे चक्र की रणनीतिक, आर्थिक वार्ताओं की एक मुख्य उपलब्धि दोनों देशों के मध्य वित्तीय व आधारभूत सुविधाओं के क्षेत्र में सम्बन्धों को मजबूत बनाने को लेकर बनी सहमति है। उल्लेखनीय है कि भारत ने देश में आधारभूत सुविधाओं के विकास के लिए एक व्यापक योजना तैयार की है तथा इस योजना को कार्यरूप देने के लिए उसे बाह्य वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता है। इस दृष्टि से यह सहमति अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके साथ ही दोनों देशों ने वित्तीय संस्थाओं के कार्यकरण में आपसी सहयोग को बढ़ाने पर बल दिया। इन उपायों से दोनों देशों में बल दिया, इन उपायों से दोनों देशों में आर्थिक विकास को गति प्राप्त होगी।

चीन से आयात-निर्यात - वर्तमान समय की बात करें तो भारत अमेरिका के बाद चीन से ही सबसे अधिक व्यापार करता है। भारत के कुल आयात में चीन से किये गये उत्पादों का हिस्सा लगभग 14 प्रतिशत है। जिसमें इलेक्ट्रॉनिक उपकरण दवाएं, रसायन, आटोमोबाइल पुर्जे आदि मुख्य हैं। दैनिक जीवन में उपयोग होने वाले इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों जैसे- स्मार्टफोन, स्मार्टवाच, स्मार्ट टेलीविजन, खिलौने आदि का एक बहुत बड़ा हिस्सा चीन द्वारा ही निर्यात किया जाता है। वहीं भारत में बनने वाली दवाओं

के घटकों की बात करें तो लगभग 70 फीसदी दवाओं को बनाने के लिए हम चीन पर निर्भर हैं जबकि निर्यात की बात करें तो चीन को किया जाने वाला निर्यात चीन से किये जाने वाले आयात की तुलना में बहुत कम है। वित्त वर्ष 2019-20 में भारत ने कुल 16 अरब डॉलर का निर्यात चीन को किया जो कुल आयात का लगभग पांचवां हिस्सा है। भारत द्वारा निर्यात किये जाने वाले उत्पादों में मुख्यत: सूती धागे, खनिज अयस्क, जैविक रसायन, प्लास्टिक उत्पाद, रत्न एवं आभूषण है। अत: चीन के साथ होने वाले व्यापार में भारत लगभग 48 अरब डॉलर के घाटे में रहा।

द्विपक्षीय व्यापार - इस सदी की शुरूआत से भारत-चीन द्विपक्षीय व्यापार के तेजी से विस्तार को 2008 तक भारत के सबसे बड़े माल व्यापार भागीदार के रूप में उभरने के लिए प्रेरित किया, जिस स्थिति पर चीन आज भी कायम है। पिछले दशक की शुरुआत से दोनों देशों के द्विपक्षीय व्यापार में तेजी से वृद्धि दर्ज की गई। 2015 से 2022 तक, भारत-चीन द्विपक्षीय व्यापार में 90.14 प्रतिशत की वृद्धि हुई, जो औसत वार्षिक वृद्धि 12.87 प्रतिशत है। 2022 में चीन के साथ कुल व्यापार साल दर साल 8.47 प्रतिशत बढ़कर 136.26 बिलियन अमेरिकी डॉलर का आंकड़ा पार कर गया। व्यापार घाटा 101.28 बिलियन अमेरिकी डॉलर पर आ गया क्योंकि चीन से भारत का आयात 118.77 प्रतिशत की वृद्धि के साथ 118.77 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुंच गया। इस बीच चीन को भारत का निर्यात साल दर साल 37.59 प्रतिशत कम होकर 17.49 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुंच गया, जो पिछले साल के शुद्ध निर्यात से कम है।

सारणी क्र. 01: भारत-चीन द्विपक्षीय व्यापार के आँकड़े (यूएसडी बीएन में)

वर्ष	भारत का चीन को निर्यात	भारत का चीन से आयात	कुल व्यापार
2015	13.4	58.26	71.66
2016	11.75	59.43	71.18
2017	16.34	68.1	84.44
2018	18.83	76.87	95.7
2019	17.97	74.92	92.9
2020	20.87	66.78	87.65
2021	28.03	97.59	125.62
2022	17.49	118.77	136.26

(स्त्रोत : सामान्य सीमा शुल्क प्रशासन, चीन)

चीन जहां एक ओर भारत के साथ अपने व्यापारिक सम्बन्धों को बढ़ाना चाहता है ताकि चीन की विनिर्माता कंपनियों का भारत का विशाल उपभोक्ता बाजार मिलता रहे। वहीं चीन सामरिक मोर्चे पर भारत को घेरने की रणनीति पर चलता रहता है। चीन में स्ट्रिंग ऑफ पर्ल्स (String of Pearls) की नीति पर चलते हुए हिन्द महासागर में श्रीलंका में हम्बान टोटा, बांग्लादेश में चटगांव बंदरगाहों के विकास में आर्थिक सहायता प्रदान की है। 19 फरवरी, 2013 को पाकिस्तान सरकार ने चीन की आर्थिक सहायता से विकसित बलूचिस्तान प्रांत के ग्वादर बन्दरगाह का प्रबन्धन चीन की सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनी चाइनीज ओवरसीज पोर्ट होलर्डिंग्स लि0 को सौंप दिया। 248 अरब डॉलर की लागत में 80 प्रतिशत से अधिक हिस्सेदारी चीन की नौसेना द्वारा भी किया जा सकेगा। अरब सागर में होर्मुज जल डमरू मध्य के निकट ग्वादर बन्दरगाह चीन के लिए कच्चे तेल का प्रारंभिक बिंदु है तथा ईरानी खाड़ी की स्थिति को चीन द्वारा प्रभावित करने की समस्या सामरिक शाखा भी इस तरह चीन हिन्द महासागर में भारत की सामरिक एवं आर्थिक क्षमताओं और उपस्थिति को सीमित करने का हर संभव प्रयास कर रहा है।

निष्कर्ष - ऐसा प्रतीत होता है कि भारत और दोनों ही वर्तमान में अपने आर्थिक हितों को अधिक महत्व प्रदान कर रहे हैं इसीलिए राजनीतिक विवादों व सामरिक प्रतियोगी के बावजूद दोनों के आर्थिक सम्बन्ध निरन्तर आगे बढ़ रहे हैं। दोनों देश इस बात से सहमत हैं कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया को सामान्य सम्बन्धों की पृष्ठभूमि में ही आगे बढ़ाया जा सकता है। इसीलिए दोनों पक्ष विवादास्पद बिंदुओं को किनारे रखकर आर्थिक क्षेत्र में सहयोग के अवसरों की तलाश कर रहे हैं फिर भी चीन की विदेश नीति अत्यन्त गोपनीय है। वहां एक दलीय शासन प्रणाली है तथा चीन अपनी सैनिक शक्ति का तेजी से विकास कर रहा है। इन तथ्यों के आलोक में भारत को अपने सामाजिक हितों की रक्षा के लिए चीन के प्रति सचेत रहने की आवश्यकता है। दक्षिण पूर्व एशिया तथा अफ्रीका में दोनों के मध्य चल रही सामरिक प्रतियोगिता इसका संकेत है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. प्रतियोगिता दर्पण अप्रैल 2013 अरुणोदय बाजपेयी
2. भारत एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध - बी.एल. फाड़िया
3. 21वीं शताब्दी में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध - पुष्पेश पंत McGraw Hill Education (India) Private Limited
4. https://www.eoibeijing.gov.in

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Impact of Training on Sales Person of Private Insurance Companies

Taranjeet Kaur Monga* Dr. Bhoj Raj Nalwaya**

*Research Scholar, School of Studies of Commerce, Vikram University, Ujjain (M.P.) INDIA
** Professor and Head (Commerce) Govt. Rajeev Gandhi P.G. College, Mandsaur (M.P.) INDIA

Abstract - In the recent years, importance of insurance sector is increasing and is expecting further growth. Hence, the career opportunities are enhancing in this sector. The study indicates the important role that staff training plays in guaranteeing organisational productivity, technological development adaptability, industry compliance and drawing on a variety of investigations. Also the study highlights the need of training of sales force in the insurance companies and to examine the competencies needed by those sales representatives. This study also suggests that general insurance companies need to train their sales person to an adequate standard in competencies of problem solving, information technology utilization, cultural adaptability, emotional intelligence, collective competence and work ethics.The insurance industry continues to face various challenges. Significant among them is the poor public perception, which leads to lower penetration level. The overall objective of this study is to assess the impact of training programs to overcome such challenges affecting the growth of life insurance business.
Keywords: Effectiveness, training programs, sales force, productivity, development, growth, insurance sector.

Introduction - The study examines the effectiveness of training and development programs on the sales force in the general insurance companies.Manpower management and retention is the key reason for survival of any business. Training assists the employees and sales staff in improving their interpersonal skills and enhancing their knowledge with a practical approach. It also generates the future opportunities for the sales personnel by creating a better work position. Trainingand development programs create a significant impact on the sales force performance. It helps the staff to gain knowledge about the customer's needs which plays crucial role in the insurance industry. Training helps the employees to adapt to the changes in environment and organization. It not only helps in enhancing the organizational productivity but also improves the skillof the employees and motivates in achieving the organizational as well as their personal goals.

Review Of Literature

Nworie & Onwuka (2023) studied that an organization's productivity is closely linked to the expertise of its workers serves as the foundation for the importance of employee training and personnel development in the insurance sector. Training programmes play a crucial role in equipping employees in the insurance industry to take advantage of technology improvements, adapt to changes in the industry, and deliver great service.

Okikiola & Oluwayimika (2022) examined from strategic standpoint to connect training and development with organization expansion in the competitive and ever changing insurance sector to have effectiveness of learning and development programs that promotes employee performance ,organizational success.

Chowa (2022) studied the review on employee training in life insurance indicates significance of cultural aware and financially literate training programs to improve employee comprehension and decision making.

Utomo & Ruslan (2021) examined how training management has evolved for both employee and agents, as well as the knowledge and abilities of the workforce in the insurance sector.

Umar et al.(2020) intended to invest in empirical relationships in a model that becomes the process of team performance as a result of participation in practical training. This study establishes a causal relationship between training effectiveness variables, employee creativity, soft skill competency in Training-Effectiveness and Team performance in Public Organization.

Ali et al.(2019) focused on how important it is for trainer to pay closer attention to what agents actually requires to evaluate the understanding on the basic product knowledge and thus transferring this to sales.

Adebowale & Adefulu (2019) indicated that moderately positive connection between employee productivity and training. This results Board decision to investments on employee skills, attitudes and personal development that has increased output.

Chavan CSIBER Kolhapur &Chavan Assist (2018) evaluated how training satisfaction and effectiveness relate to one another and how that relates to organizational positive in life insurance firms.

Krivokapic et al. (2017) indicated that training initiatives are positively correlated with customer happiness, organizational effectiveness, and overall competitiveness in the ever-changing insurance market. Insurance workers may be more innovative and adaptable by navigating changes in the sector by customizing training programmes to improve their technical skills, customer-centric capabilities, and digital literacy. In the ever-changing marketplace, employee training is becoming increasingly important from a strategic standpoint

Shen et al. (2017) identified that there is need to shift from the conventional training methods to creative approach such as technology-driven procedures and the incorporation of soft computing techniques to establish relationship between employee training in insurance sector and financial performance.

Akbar et al. (2015) indicated the significance of work-life balance, competitive pay. It reveals that employee training plays in keeping competent workers in the insurance industry and significance its affects job satisfaction, career progression and organizational commitment.

Objectives:

1. To understand the importance of training the sales force in the general insurance companies.
2. To observe the need of training.
3. To highlight the impact of training the sales personnel.
4. To enlighten the future prospects in the insurance sector.

Meaning Of Training: Training is an organized activity for enhancing the technical skills of the sales person to enable them to do certain jobs efficiently. In another words, training provides facilitates the staff to gain technical knowledge and to learn new skills to do specific jobs. Training is equally important for the existing as well as the new employees. It enables the fresher's to get acquainted with their jobs and also increase the job-related knowledge and skills. It is crucial to the existing employees to keep them motivated and to adapt with the changing technology.Training process moulds the thinking of employees and leads to quality performance of employees. It is continuous and never ending in nature.Every individual has some shortcomings and training and development helps employees iron them out. If shortcomings and weaknesses are addressed, it is obvious that an employee's performance improves. Training and development, however, also goes on to amplify your strengths and acquire new skill sets. It is important for a company to break down the training and development needs to target relevant individuals.

Need Of Training

1. **Learning for New Recruits:** Once the employees are selected and placed in a position they need to be trained for a specific job. It helps them to perform their job effectively. On job training helps them to handle their job competently.
2. **Promotions:** In order to prepare the existing employees for higher roles they need to be trained in the areas of their added responsibilities so that they can do justice to the position.
3. **Transfers:** Training on different jobs makes the employees mobile and versatile and makes them capable to be moved from one job to another.
4. **Bridging the Gap:** There can at times be some gaps between the knowledge and skills an employee possesses and the requirements of the job. Training helps in bridging this gap and making the employees more productive.

Importance Of Training: Adequately planned and well-executed training program can lead to the following advantages.

1. **Higher productivity and better quality of work**: Formal training leads to the enhancement of skills of the employees that enables them to perform their job more efficiently. As standard methods are taught to the employees it improves the quality of product and services.
2. **Reduction in wastage and cost**: Workers learn how to make the optimum use of resources. Training leads to the economic use of material and machinery and helps minimize the cost of operations per unit.
3. **Increases morale and loyalty**: Training helps boost the morale of the employees by developing a positive attitude, job satisfaction and enhanced learning. It makes them loyal to the organization as they develop a sense of commitment.
4. **Reduced supervision and low accident rates**: Training develops well-motivated employees who are self-reliant, they do not need constant guidance and supervision. Employees can also avoid mistakes and accidents on the job as they can handle a job with confidence and adopt the right work methods.

Impact Of Training On Sales Person In General Insurance Companies: Regular training and development programme helps the organisations to achieve certain and defined aims and objectives. Training aids in improving employees' efficiency and effectiveness at work. Training helps to overcome the nervousness of the new staff and makes them comfortable with the work environment and organization. Various methods of training are being used to enhance the knowledge and skills of employees. These methods vary from organization to organization as per their requirements. Training raised the sales person's productivity and the overall productivity of the organization. Training minimized the wastage by learning the proper usage of equipment. It raised the employee's morale and raised the sales. Training gives proper understanding of the customer's needs thereby providing them with the product matching their choice.

Methodology: The study is descriptive in nature and is

based on the secondary data which have been collected/ compiled mainly from the online journals, websites, newspapers and magazines and other available sources were collected. Also, the study is based on the review of the various authors and their studies.

Conclusion: With the increasing competition in the general insurance companies, role of training is inevitable. Study shows that training has a positive impact on the sales person. By training and development employees needed less supervision and enhanced confidence in their performance. This raised the sense of loyalty towards the organization and developed commitment towards their organization.The study further concluded that training and development programmes in the insurance companies have greatly influenced organisational growth; and this is because employees who passed through the trainings have had mastery of the organisations' modus operandi and had become acclimatised with the organisations' culture which has made them increasingly reliable and relevant in their respective organisations.

References:-

1. Ms.AlganiSravani and Dr. R S Ch Murthy Chodisetty, effectiveness of training in insurance industry: a literature review, Vol. 04, Issue 02, February 2024
2. Dr Sanjay Sugandhi and Dr.PoonamWani, an empirical analysis of general insurance agent performance in an indian insurance sector, Volume 11, Issue 4 April 2023, ISSN: 2320-2882
3. Dr. Josiah Mutembei, Impact of Employees Capability Affecting the Growth of Life Insurance Business. A Critical Literature Review, Vol. 1, Issue No. 1,pp 1-12,2022
4. Keneley, M., &Verhoef, G. (2015). Establishing insurance markets in settler economies. a comparison of Australian and South Africa insurance markets, 1820-1910. African Historical Review, 47(1), 76-105
5. Pidchosa, O., &Dovhosheia, A. (2019). Global insurance industry: peculiarities and current development trends. International relations, part "Economic sciences", (18)
6. Sung, S. Y., & Choi, J. N. (2018). Effects of training and development on employee outcomes and firm innovative performance: Moderating roles of voluntary participation and evaluation. Human resource management, 57(6), 1339-1353.
7. Sariwulan, T., Thamrin, S., Suyatni, M., Agung, I., Widiputera, F., Susanto, A. B., &Capnary, M. C. (2021). Impact of employee talent management. Academic Journal of Interdisciplinary Studies, 10(5), 184-184.
8. Ocen, E., Francis, K., &Angundaru, G. (2017). The role of training in building employee commitment: the mediating effect of job satisfaction. European Journal of Training and Development.
9. Osborne, S., & Hammoud, M. S. (2017). Effective employee engagement in the workplace. International Journal of Applied Management and Technology, 16(1), 4.
10. https://economictimes.indiatimes.com/small-biz/hr-leadership/people/importance-of-training-and-development-in-an-organization/articleshow/48739569.cms?utm_source=contentofinterest&utm_medium=text&utm_campaign=cppst

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Animal Rights and the Importance of Their Protection

Dr. Mamta Pandey*

***Assistant Professor, Govt. Law College, Rewa (M.P.) INDIA**

Introduction - Animal right refers to the priviledges that animals should enjoy. The traditional attitude towards animals was based on the assertion that have no rights and therefore it is not the subject of moral concerns. The interests of animals should not be ignored because they belong to the species that are considered inferior to the human beings. Animals also should have rights as they contribute to the world economy and improve people's life by providing all favourable socialized conditions. Animal interests should have the same moral weight as human ones and all animals are equal. So they should not be eaten or killed.

Practices amount to cruelty on animals- According to section 11(1) (a) to (o) of the Prevention to cruelty to animal act, 1960 prescribes and enumerates the forms of cruelty mentioned hereunder:

a) Beating, kicking, over-riding, over-loading, torturing, causing unnecessary pain or suffering to the animals.
b) Employing any animal which, by reason of its age or any disease, unfit to be so employed and still making it work or labour or for any purpose.
c) Willfully and unreasonably administering any injurious drug or injurious substance.
d) Conveying or carrying, either in or upon any vehicle in such a manner as to subject it to unnecessary pain or suffering.
e) Keeping or confining any animal in any cage or any receptacle, which does not measure sufficiently in height, length and breadth to permit the animal a reasonable opportunity for movement.
f) Keeping for an unreasonable time any animal chained or tethered upon an unreasonably heavy chain or chord.
g) Being the owner, neglects to exercise or cause to be exercised reasonably any dog habitually chained up or kept in close confinement.
h) Being the owner of any animal fails to provide such animal with sufficient food, drink or shelter.
i) Being the owner, without reasonable cause, abandons any animal in circumstances, which render it likely that it will suffer pain by reason of starvation or thirst.
j) Willfully permits any animal, of which he is the owner to go at large in any street while the animal is affected with a contagious or infectious disease or without reasonable excuse permits any diseased or disabled animal, of which he is the owner, to die in any street.
k) Offers for sale or without reasonable cause, has in his possession any animal which is suffering pain by reason of mutilation, starvation, thirst, overcrowding or other ill-treatment.
l) Mutilates any animal or kills any animal (including stray dogs) by using the method of strychnine injections in the heart or in any other unnecessarily cruel manner.
m) Solely with a view to providing entertainment –
1) Confines or causes to be confined any animals (including tying of an animal as bait in a tiger or other sanctuary) so as to make it an object of prey for any other animal.
2) Incites any animal to fight or bait any other animal.
n) Organises, keeps, users or acts in the management of any place for animal fighting or for the purpose of baiting any animal or permits or offers any place to be so used or receives money for the admission of any other person to any place kept or used for any such purposes.
o) Promotes or takes part in any shooting match or competition wherein animals are released from captivity for the purpose of such shooting.

The choice of loving, caring, feeding and giving shelter to animals is the natural right of any individual. If cruelty is being done on animals, any person or individual under whose presence any offence under the act is committing can immediately lodge a written complaint with the nearest police station for taking action. Sec.34 of the Prevention of Cruelty to Animals Act, 1960 provides the general power of seizure for examination to the police officer above the rank of constable. If the police officer comes to know about commission of any offence under Prevention of Cruelty to Animals Act has been committed or is been committed on any animal, he can seize the animal and produce the same for examination by the nearest magistrate or by the veterinary officer. In the case of overloading of animals or

beating of animal or any offences under this Prevention of Cruelty to Animals Act, the police have the power to seize the animals and send them to infirmaries for the treatment and care of animals, until they are fit for discharge. The animal sent to an infirmary cannot be released from such places unless the veterinary officer issues the certificate of its fitness for discharge. The cost of transporting the animal to an infirmary and its maintenance and treatment in an infirmary has to be paid by the owner of the animal.

Laws on Animal sacrifice:-

i. Prevention of Cruelty to Animals Act, 1960.
ii. Wildlife Protection Act, 1972.
iii. Indian Penal Code, 1860.
iv. Local Municipal Corporation Acts.
v. Experiments on Animals (Control and Supervision) Rules, 1968.
vi. The Prevention of Cruelty to Animals (Slaughter House) Rules, (2001).
vii. The Transportation of Animals Rules, 1978.
viii. Animal transportation act, 2006.
ix. Transportation of animals (amendment) rules, 2009.
x. The prevention of cruelty to Draught and Pack Animals Rules, 1965.
xi. The performing Animals Rules, 1973.
xii. The Performing Animals (Registration) Rules, 2001.
xiii. Animal Birth Control Rules, 2001.

Legal action taken for killing of an animal or pet: Killing of animal is a cognizable offence under Sec. 428 and 429 of the IPC. Sec 428 of the IPC deals with the punishment for committing mischief by killing, poisoning, maiming or rendering useless any animal or animals of the value of ten rupees or upwards. The punishment for such acts/offences are simple or rigorous Imprisonment for a term, which may extend to two years or with a fine or with both. Sec. 429 of the IPC deals with the punishment for the same nature of crime but for the animals of the value of fifty rupees or upwards. It must be immediately lodged as an FIR with the area police station. The punishment in this case will be imprisonment of either description for a term, which may extend to five years or with a fine or with both.

According to Animal Birth control Rules 2001, no Sterilised dogs can be relocated from their areas. Sterelised dogs can remain in their original areas. If any dog is not sterilized, the society can simply ask on Animal welfare organization to sterilize and vaccinate the dog.

Practicing of phooka or doom dev or any other operation being performed upon any cow or other milch animal, to improve its lactation. This is injurious to health of the animal. The animal on which such operation was performed shall be forfeited to the government and produce it for the examination by the veterinary officer in charge of the area in which the animal is seized.

Oxytocin injection on milching animal in order to induce milk is illegal and amount to cruelty on animal under sec. 12 of Prevention of Cruelty to Animals Act, 1960. The proprietor of the shop selling these drugs to a dairy shall be liable to lose his license as a pharmacist and shopkeeper in addition to criminal charges with punishment of up to 5 years in prison. Under the provision of the Drugs and cosmetic Act, Oxytocin has been classified as a prescription drug. No person can purchase the drug without having the requisite prescription from a Registered Medical Practitioner or Registered Veterinarian. But despite this, oxitocin ampoules are easily and readily available not only at chemists but also from other unauthorized outlets in market situated close to the dairies.

Exhibition and training of performing animals is also restricted under Sec 22 Prevention of Cruelty to Animals Act. According to sec 2(b) of the performing Animals rules,1973 the performing animals are animal which is used for the purpose of any entertainment to which the public is admitted through the sale of tickets. The central government by notification in the official Gazette has restricted the exhibition and training of animas like Bears, Monkeys, Tigers, Panthers and Lions. If any person is desirous of training and exhibiting performing animal, has to apply for registration to the prescribed authority under Sec.3 of the Performing Animals (Registration) Rules, 2001. Sec.8 of the same rule lays down general conditions for registration, which the prescribed authority while granting registration may impose.

The sale of animals in fair is normally meant for farmers but nowadays animal provided to butchers, which is illegal. In order to prevent this from happening local administration should check and should be verified to avert cow slaughter, which is a criminal offence and buyer must specify for what purpose he is buying the animal.

Wild animals, birds, other wild species, any endangered species could not be sold or brought in the fairs.

Sec. 27 of the Prevention of Cruelty to Animals Act, 1960 acts as an exemption clause. It permits the training of animals for bonafide military or police purpose. But during such training it has to be kept in mind that no animals can be treated cruelly or in a way that harms or injures them.
According to the prevention of cruelty to Draught and Pack Animals Rules, 1965. The maximum load for drought animal is stated. No person is allowed to use any animal for drawing any vehicle or carrying any load above the decided weight laid down in the Rule.

For the transportation of animal, some general conditions are provided under sec. 98 of the transport of Animal Rules, 1978.

1. Animals to be transported shall be healthy and in good condition. They should be examined by a veterinary doctor for freedom from infectious diseases.
2. An animal which is unfit for transport shall not be transported and the animals that are newborn, diseased, blind, emaciated, lame, fatigued or having given birth during the preceding 72 hours or likely to give birth during transport shall not be transported.

3. Pregnant and very young animals shall not be mixed with other animals during transport.
4. Different classes of animals shall be kept separately during the transport.
5. Diseased animals, whenever transported for treatment, shall not be mixed with other animals.

For slaughtering of an animals: Certain rules provided under Prevention of Cruelty to Animals Act, 1960 namely Slaughter House Rules, 2001. Slaughter house is a place where 10 or more than 10 animals are slaughtered per day and is duly licenced or recognized under a central, state of provincial Act or any rules or regulation made there under. Sec. 3(2) of the said rules prohibits slaughtering of any animal-

i. which is pregnant.
ii. has an offspring less than three months old, or
iii. the animal which is under the age of 3 months.
iv. which has not been certified by a veterinary doctor that it is in a fit condition to be slaughtered.

Animals can not be slaughter in slums, in roadside meat shops or in dhabas or in private houses. With regard to environmental hazard and public nuisance Smt. Maneka Gandhi moved the Delhi court against the Idgah Slaughter house of Delhi, in the larger public interest. The Court gave useful directions to all slaughter houses. The provision to kill or sell meat is available only for slaughtering cattle, goats, sheep and pigs within the corporation limits. On Bakri-id no animal can be slaughtered except goats. The Division Bench of Calcutta has ruled that the slaughter of Cows by members of Muslim Community on Bakri-id is not a requirement of the Muslim region and should be banned. The Supreme Court has upheld this decision. On this day slaughter can only take place in government designated Idgahs, but not in mosques.

Local Municipal Corporation Acts prohibit the slaughter of any animal within a Corporation area, other than in a licensed slaughter house. The Killing of an animal in public place amounts to public nuisance and annoyance to the public.

Sec. 4 of the Experiments on Animals (control and supervision) Rules, 1968 lays down certain conditions regarding the conducting of experiment on animals. It is illegal to sell animals for experiments According to the rule no officer, employee or agent of any animal control authority shall sell, give transfer, trade, supply or otherwise provide any animal coming into his or her possession to any animal dealer, commercial kennel, pet shop, laboratory, educational institution or other person for the use in research, product development testing, education, biological production or other scientific, biomedical or veterinary purposes. Also mentioned institutions are prohibited to purchase animals. No private person in India is allowed to capture, buy, sell, to train or show any wild animals for public exhibition. It is cognizable offence under Wildlife Protection Act, 1972 and Sec. 22 of the Performing Animal Rules of the Prevention of Cruelty to Animals Act 1960. The man can be arrested on the spot and the animal confiscated and handed over to the Wild Life Department, Zoo or a Local Animal Welfare Shelter.

Related cases:

i. Akhil Bharat Goseva Sangh Vs State of A.P. & ors. On 29 March 2006.
ii. Maneka Gandhi vs Union Territory of Delhi & ors.on 18 march 1984.
iii. Hanif Qureshi Vs st. of Bihar 23 April 1958.
iv. S. Muralidharan Vs Nagarajan on 27 July 2015.

Conclusion: There is some conflict between the relation of human being and animal and hence some classes of animals become the subject of criminal activities of human beings. Indian laws has special protection provisions to save animals. The judiciary had taken an active role in protecting aminals. When the state machinery failed in the compliance of duties mentioned under statute. After the working of courts many states established institutions required under the act to stop unsympathetic treatment of animals during slaughter and travel. Now animal experimentation is permissible for the benefit of man and animal. The owner's responsibility is not only to provide food and nutrition but also to take care of the animals in preventing cruelties on them. So, we all should try to safeguard animal protection and promote the preservation of the dignity of animals in various stages of human use. Animal are always responsible in the ecosystem for the maintenance of harmonious life in nature.

References:-

1. Bodhistava Majumdar, Ban on Cow Slaughter(A Constitutional Perpespective), LAW TIMES JOURNAL (2020)
2. Abha Nadkarni & Adrija Ghosh, Broadening The Scope of Liabilities for Cruelty Against Animals: Gauging the Legal Adequacy of Penal Sanctions Imposed, 10 (The National University Of Juridical Science Law Review (2017)
3. Jonathan Benthall, Animal Liberation and Rights, 23 Anthropology Today (2017)

Books:-

1. Dr. H.N.Tiwari, Environmental Law (Allahabad Law Agency,5th Ed. 2016
2. S.C. Shastri, Environmental Law (Eastern Book Company Ed. 2018

Website:-

1. http://lawtimesjournal.in/ban-on-cow-slaughter/

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Electronic Contracts: Legal Validity and Enforcement in the Digital Age

Dr. Rashmi Sharma*

***Assistant Professor, Law, Govt. Law College, Ujjain (M.P.) INDIA**

Abstract - "Electronic contracts (e-contracts) have become integral to modern commerce, facilitating transactions in the digital age. This paper examines the legal validity and enforcement of e-contracts, focusing on their formation, essential elements, and practical implications. It explores frameworks governing e-contracts in different jurisdictions, and discusses key challenges and opportunities in their implementation. By examining case studies and emerging trends, this research sheds light on the evolving landscape of electronic contracting and provides insights for policymakers, businesses, and legal practitioners navigating this complex terrain."
Keywords: e-contracts, electronic contracts, contract law, digital transactions, legal validity, formation process, enforcement mechanisms, challenges, opportunities, blockchain, smart contracts, artificial intelligence, data security, dispute resolution.

Introduction - In an age characterized by digital transformation and technological innovation, the landscape of commerce has undergone a profound shift. Central to this evolution is the emergence of electronic contracts (e-contracts), which have become the cornerstone of modern business transactions[1]. E-contracts, formed, executed, and enforced through electronic means, represent a departure from traditional paper-based agreements, offering unparalleled efficiency, accessibility, and convenience in the digital realm.

The proliferation of e-contracts across diverse sectors, from e-commerce platforms and cloud computing services to mobile applications and digital marketplaces, underscores their importance in facilitating commercial interactions in the digital age. However, with this transition from pen and paper to pixels and bytes comes a myriad of legal considerations, challenges, and opportunities.The primary aim of this research paper is to provide a comprehensive examination of the legal framework, practical implications, and future trends of e-contracts. By delving into the intricacies of e-contracting, we seek to unravel the complexities surrounding their legal validity, formation processes, essential elements, enforcement mechanisms, and dispute resolution mechanisms in the digital realm.

At the heart of any contract, electronic or otherwise, lie certain fundamental elements that must be satisfied for the agreement to be legally binding. These elements, including offer, acceptance, consideration, and intention to create legal relations, form the bedrock of contract law and play a pivotal role in the formation and interpretation of e-contracts. However, the electronic manifestation of these elements introduces novel challenges and considerations that require careful examination.Furthermore, the formation process of e-contracts presents unique considerations, such as the role of electronic signatures, automated systems, and the use of standard terms and conditions. While technological advancements have streamlined the contracting process, they have also raised questions regarding consent, authentication, and contract formation, necessitating a nuanced understanding of these issues.

In addition to formation, the enforcement of e-contracts poses its own set of challenges, including jurisdictional issues, electronic evidence admissibility, and cross-border enforcement. As e-contracts transcend geographical boundaries and traditional legal frameworks, there is a pressing need for robust enforcement mechanisms that can effectively address disputes arising from electronic transactions.

By examining these key aspects of e-contracts, this research paper seeks to provide valuable insights for legal practitioners, businesses, policymakers, and scholars navigating the complex landscape of electronic contracting. Through a critical analysis of existing legal frameworks, case studies, and emerging trends, we aim to contribute to the ongoing dialogue surrounding the evolution of contract law in the digital age.In conclusion, as we embark on this journey through the intricate terrain of e-contracts, it is essential to recognize the transformative potential of digital technology while acknowledging the legal challenges and

opportunities it presents. By illuminating the legal complexities of e-contracts, we can empower stakeholders to navigate the digital landscape with confidence, ensuring the efficient and secure conduct of commercial transactions in the 21st century.

Historical Background: The evolution of contracts traces back to ancient civilizations where verbal agreements and simple written records governed transactions. Over time, formalized contract laws emerged, establishing principles of offer, acceptance, and consideration. With the advent of the printing press, contracts became standardized and more widely accessible.The digital revolution of the late 20th century marked a significant turning point, introducing electronic communication and commerce. As businesses embraced the internet, electronic contracts began to proliferate, challenging traditional notions of contract formation and enforcement.Legal frameworks adapted to accommodate these changes, with landmark cases and legislative efforts establishing the validity of electronic signatures and transactions. Today, electronic contracts are ubiquitous, facilitating global commerce and shaping the way individuals and organizations engage in commercial activities.

In the digital age, the proliferation of electronic contracts has been accelerated by advancements in technology, such as the widespread adoption of computers, smartphones, and the internet. These technological innovations have facilitated the creation, transmission, and storage of electronic documents, making it easier than ever for parties to enter into agreements remotely and across vast distances. As a result, the traditional barriers to contract formation, such as physical presence and paper documentation, have been overcome, paving the way for a new era of electronic commerce.

Moreover, the globalization of markets and the rise of digital platforms have further fueled the growth of electronic contracts, transcending geographical boundaries and enabling businesses to engage in transactions on a global scale. This interconnectedness has not only accelerated the adoption of electronic contracts but has also raised complex legal questions regarding jurisdiction, applicable law, and cross-border enforcement. As businesses continue to embrace digital transformation and consumers increasingly conduct transactions online, the role of electronic contracts in shaping the future of commerce is likely to expand even further, necessitating ongoing legal and regulatory adaptation to ensure the integrity and enforceability of electronic transactions.

E-Contract Overview: In the contemporary digital landscape, electronic contracts (e-contracts) have become integral to modern commerce, enabling parties to enter into agreements through electronic means. This section provides an overview of e-contracts, including their definition, various forms, and methods of formation.

Meaning of E-Contracts: E-contracts refer to contractual agreements formed, executed, and enforced through electronic means, such as the internet, email, and electronic data interchange (EDI). These contracts eliminate the need for traditional paper-based documentation and enable parties to conduct transactions efficiently and securely in the digital realm. E-contracts are governed by the same legal principles as traditional contracts, including offer, acceptance, consideration, and intention to create legal relations, but are executed using electronic communication and authentication methods.

Forms of E-Contracts:

1. **Clickwrap Agreements:** Clickwrap agreements are commonly used in online transactions, where users are required to click on a button or checkbox to indicate their acceptance of the terms and conditions presented. By clicking “I agree” or a similar prompt, users signify their consent to be bound by the terms of the contract. Clickwrap agreements are prevalent in e-commerce platforms, software installations, and online services.
2. **Browsewrap Agreements:**Browsewrap agreements are terms and conditions that are posted on a website or platform and are accessible via a hyperlink. Unlike clickwrap agreements, browsewrap agreements do not require users to actively acknowledge their acceptance of the terms. Instead, users are deemed to have agreed to the terms by merely accessing or using the website or platform. Browsewrap agreements are commonly used in website terms of service and privacy policies.
3. **Shrinkwrap Agreements:**Shrinkwrap agreements are associated with software products and typically involve the acceptance of terms and conditions enclosed within the product packaging. When users open the shrinkwrap packaging or break the seal, they are deemed to have agreed to the terms of the contract printed inside. Shrinkwrap agreements often include license agreements and end-user agreements for software products.
4. **E-Mail Contracts:** E-mail contracts are formed through electronic communication exchanged between parties via email. While the formalities of contract formation may vary, the essential elements of offer, acceptance, and consideration must be present for a valid contract to be formed. E-mail contracts are common in business transactions, negotiations, and informal agreements.
5. **Electronic Data Interchange (EDI):** Electronic Data Interchange (EDI) involves the electronic exchange of business documents, such as purchase orders, invoices, and contracts, between trading partners. EDI facilitates the automation of business processes and transactions, allowing parties to conduct transactions electronically without the need for paper-based documentation. EDI contracts are governed by specialized legal frameworks and industry standards.

Formation Of E-Contracts: In the digital age, the formation of electronic contracts (e-contracts) involves unique considerations and mechanisms. This section explores the

key aspects of e-contract formation, including electronic signatures, automated systems, and the use of standard terms and conditions.

1. Electronic Signatures: Electronic signatures play a pivotal role in the formation of e-contracts, serving as a digital equivalent to handwritten signatures. The use of electronic signatures allows parties to indicate their consent to the terms of a contract without the need for physical presence or paper documentation. Various forms of electronic signatures exist, ranging from simple scanned signatures to advanced cryptographic techniques.

Types of Electronic Signatures:

- **Simple Electronic Signatures:** These are basic electronic representations of a person's signature, such as typing one's name or using a stylus to sign on a touchscreen device.
- **Advanced Electronic Signatures (AES):** AES are more sophisticated and secure forms of electronic signatures that use cryptographic techniques to verify the identity of the signer and ensure the integrity of the signed document.
- **Qualified Electronic Signatures (QES):** QES are a specific type of advanced electronic signature that meets certain legal requirements and is granted a higher level of legal recognition and presumption of validity.

Legal Recognition of Electronic Signatures:

- Many countries have enacted legislation or adopted international conventions to provide legal recognition and validity to electronic signatures. For example, in the United States, the Electronic Signatures in Global and National Commerce Act (ESIGN) and the Uniform Electronic Transactions Act (UETA) establish the legal equivalence of electronic signatures with handwritten signatures in most transactions.

2. Automated Systems and Contract Formation: In some cases, contracts may be formed through automated systems or processes without direct human involvement. Automated contract formation mechanisms, such as online platforms, chatbots, and smart contracts, enable parties to negotiate, agree to, and execute contracts in a streamlined and efficient manner.

Key Aspects of Automated Contract Formation:

- **Algorithmic Decision-Making:** Automated systems may use algorithms to generate contract terms, assess risks, and facilitate negotiations between parties.
- **Conditional Logic:** Smart contracts, powered by blockchain technology, can execute predefined actions automatically based on predefined conditions or triggers, such as payment upon delivery of goods or completion of services.
- **Legal and Ethical Implications:** The use of automated systems in contract formation raises important legal and ethical questions, including issues related to accountability, transparency, and the potential for algorithmic bias or discrimination.

3. Standard Terms and Conditions: Many e-contracts incorporate standard terms and conditions that govern the rights and obligations of the parties. Standard terms are pre-drafted provisions that are typically included in contracts by one party and presented to the other party on a take-it-or-leave-it basis. These terms often cover a wide range of issues, including payment terms, delivery arrangements, dispute resolution mechanisms, and liability limitations.

Challenges and Considerations:

- **Unilateral Nature:** Standard terms are often drafted by one party and may contain terms that are more favorable to that party's interests, raising concerns about fairness and inequality of bargaining power.
- **Readability and Accessibility:** Standard terms are sometimes lengthy and complex, making them difficult for parties to understand fully. Ensuring that standard terms are presented in a clear and accessible manner is essential to promoting transparency and informed decision-making.
- **Enforceability:** Courts may scrutinize standard terms for unconscionability or unfairness, particularly if they are found to be oppressive or one-sided. Drafting standard terms that are reasonable and conscionable can enhance their enforceability and validity.

LEGAL REGULATION OF E-CONTRACTS: The legal regulation of electronic contracts (e-contracts) in India is governed by a combination of statutes, including the Indian Contract Act, 1872, the Information Technology Act, 2000, and the Indian Evidence Act, 1872. This section explores the provisions and implications of these laws in the context of e-contracts.

1. Indian Contract Act, 1872[2]: The Indian Contract Act, 1872 (ICA) is the primary legislation governing contracts in India, including electronic contracts. While the ICA predates the digital era, its provisions are applicable to e-contracts, subject to certain adaptations and interpretations in light of technological advancements.

Key Provisions Relevant to E-Contracts:

- **Offer and Acceptance (Sections 2 and 7):** The ICA defines the essentials of a valid contract, including offer and acceptance. In the context of e-contracts, communication of offer and acceptance through electronic means is considered valid, provided it meets the requirements of the law.
- **Consideration (Section 25):** Consideration is a fundamental requirement for the validity of a contract. In e-contracts, consideration may take various forms, including monetary payments, goods, or services exchanged electronically.
- **Capacity (Sections 10 and 11):** The ICA specifies the capacity of parties to enter into contracts, including minors, persons of unsound mind, and those disqualified by law. While electronic contracts are generally enforceable regardless of the medium of communication, issues of capacity may arise in certain cases.
- **Legality (Section 23):** Contracts that are unlawful or

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

against public policy are void. E-contracts must comply with the legal requirements and regulations applicable to the subject matter of the contract.

2. Information Technology Act, 2000: The Information Technology Act, 2000 (IT Act) is the principal legislation regulating electronic transactions and e-commerce in India. It provides legal recognition and validity to e-contracts and electronic signatures and establishes mechanisms for their enforcement.

Key Provisions Relevant to E-Contracts:

- **Legal Recognition of E-Contracts (Section 10A)[3]:** The IT Act recognizes electronic contracts formed through electronic means as legally valid and enforceable, subject to certain conditions. These include the use of electronic signatures and compliance with prescribed procedures for authentication.
- **Electronic Signatures (Sections 2(1)(ta) and 3)[4]:** The IT Act provides for the legal recognition and validity of electronic signatures, including digital signatures. It establishes the Controller of Certifying Authorities (CCA) to regulate the issuance and management of digital certificates for electronic signatures.
- **Electronic Records (Section 2(1)(t))[5]:** E-contracts are deemed to be electronic records under the IT Act. This provision ensures that electronic records have the same legal status as paper-based records in legal proceedings.
- **Liability of Intermediaries (Section 79)[6]:** The IT Act provides a safe harbor for intermediaries, such as internet service providers and e-commerce platforms, from liability for the content or actions of users. This provision promotes the growth of e-commerce and electronic transactions by shielding intermediaries from legal risks.

3. Indian Evidence Act, 1872: The Indian Evidence Act, 1872 (IEA) governs the admissibility and proof of electronic records and electronic contracts in legal proceedings.

Key Provisions Relevant to E-Contracts:

- **Admissibility of Electronic Records (Section 65B):** Section 65B[7] of the IEA specifies the conditions for the admissibility of electronic records as evidence in court. It requires electronic records to be accompanied by a certificate issued by a person in charge of the electronic record, confirming its authenticity and integrity.
- **Presumption as to Electronic Signatures (Section 85A):** Section 85A[8] of the IEA creates a presumption that electronic signatures appearing on electronic records are genuine and have been affixed by the person by whom they purport to have been affixed. However, this presumption is rebuttable, and the authenticity of electronic signatures may be challenged in court.

In various legal proceedings, courts have addressed different aspects of e-contracts, setting precedents and introducing new perspectives on this matter. For instance, in the case of **BhagavandasKedia vs. Girdharilal[9],** the Supreme Court of India, drawing from the judgment in **Entores vs. Miles Far East Corporation**[10], established that a contract reaches completion only when the offeror receives acceptance of their offer.

Similarly, in **Quadricon Pvt. Ltd. vs. Bajarang Alloys Ltd.[11]**, the Bombay High Court equated fax communication to Telex, ruling that the contract is finalized only upon the offeror's receipt of the acceptance.

INTERNATIONAL CONVENTIONS ON E-CONTRACTS: In the globalized digital economy, electronic contracts (e-contracts) are increasingly prevalent, transcending national borders and facilitating cross-border transactions. To address the legal challenges and promote harmonization in the regulation of e-contracts, several international conventions and initiatives have been established. This section explores key international conventions on e-contracts and their implications for international commerce.

1. United Nations Commission on International Trade Law (UNCITRAL): UNCITRAL has played a central role in developing international conventions and model laws to promote the harmonization and modernization of international trade law, including the regulation of e-contracts. The following UNCITRAL instruments are relevant to e-contracts:

- **UNCITRAL Model Law on Electronic Commerce[12]:** Adopted in 1996 and subsequently amended in 2001, the Model Law provides a comprehensive legal framework for electronic commerce, including the formation and validity of e-contracts, electronic signatures, and the admissibility of electronic records as evidence in legal proceedings. The Model Law serves as a guide for countries seeking to harmonize their laws governing e-commerce and electronic transactions.
- **UNCITRAL Model Law on Electronic Signatures:** Adopted in 2001, the Model Law on Electronic Signatures complements the Model Law on Electronic Commerce by providing specific rules and standards for the use of electronic signatures in electronic transactions. The Model Law promotes the legal recognition and validity of electronic signatures and establishes mechanisms for their authentication and verification.

2. Hague Conference on Private International Law
The Hague Conference on Private International Law has developed international conventions addressing various aspects of private international law, including jurisdiction, recognition, and enforcement of judgments, and the use of electronic documents in international trade. The following Hague Conventions are relevant to e-contracts:

- **Hague Convention on the Law Applicable to Certain Rights in Respect of Securities Held with an Intermediary:** Adopted in 2006, the Convention addresses conflict-of-law issues arising from the use of intermediaries in electronic securities transactions. It provides rules for determining the applicable law governing the rights and obligations of parties in cross-border securities transactions involving intermediaries.

3. International Chamber of Commerce (ICC): The

International Chamber of Commerce (ICC) has developed guidelines, rules, and standards to facilitate international trade and commerce, including the use of electronic contracts and electronic signatures. The following ICC instruments are relevant to e-contracts:

- **ICC Model Contract for the Sale of Goods (ICC Model)**: The ICC Model Contract provides a standardized framework for the sale of goods in international transactions, including provisions related to electronic communications, electronic signatures, and the formation and enforcement of e-contracts. The Model Contract is widely used by businesses and legal practitioners to facilitate international trade and mitigate risks in cross-border transactions.

Case Studies And Examples: This section delves into real-world examples and case studies that demonstrate the practical application of electronic contracts (e-contracts) across different industries. By examining these cases, we can gain insights into the challenges, opportunities, and legal considerations involved in e-contracting practices.

1. E-Contracting in E-Commerce Platforms:Case Study: Amazon's Terms of Service: Amazon, one of the world's largest e-commerce platforms, relies heavily on electronic contracts to govern its relationships with customers and third-party sellers. Amazon's Terms of Service, accessible to users during account registration and checkout, constitute a binding e-contract that outlines the rights, obligations, and dispute resolution mechanisms for parties engaging with the platform. By analyzing Amazon's e-contracting practices, we can explore the role of standard terms and conditions, clickwrap agreements, and dispute resolution mechanisms in the context of online transactions.

2. E-Contracts in Software Licensing:Case Study: Microsoft End-User License Agreement (EULA)[13] : Software companies often use electronic contracts to license their products to end-users. Microsoft's End-User License Agreement (EULA) is a prominent example of an e-contract governing the use of software applications such as Microsoft Office and Windows operating systems. By examining the terms and conditions of Microsoft's EULA, including provisions related to licensing, intellectual property rights, and limitations of liability, we can analyze the legal and practical implications of e-contracts in the software industry.

3. E-Contracting in Financial Services:Case Study: Online Banking Agreements: Financial institutions increasingly rely on electronic contracts to facilitate banking services, including online banking, mobile banking, and electronic funds transfers. Online banking agreements, presented to customers upon account opening or through digital channels, govern the terms of use, security procedures, and liability provisions for online banking services. By studying online banking agreements from leading financial institutions, we can explore the legal and regulatory requirements, security protocols, and consumer protection measures associated with e-contracting in the financial services sector.

4. Legal Cases and Precedents:Case Study: ProCD, Inc. v. Zeidenberg (1996): ProCDInc. v. Zeidenberg[14] is a landmark U.S. legal case that established the enforceability of shrinkwrap agreements, where the terms and conditions of a contract are presented to the buyer inside the product packaging. In this case, the court held that by opening the shrinkwrap packaging of a software product, the buyer implicitly agreed to the terms of the license agreement printed inside, thereby forming a binding contract. This case illustrates the judicial recognition of e-contracts and their enforceability, setting a precedent for future cases involving electronic transactions.

Proposed Regulatory Framework : Given the dynamic nature of E-Contracts and their growing impact on various sectors, a forward-looking regulatory framework is essential. The following recommendations offer a roadmap for policymakers:

i. **Dynamic Regulatory Adaptation:** Regulators should adopt a dynamic approach, continuously reassessing and adapting regulations to keep pace with technological advancements. Regular dialogues between regulatory bodies, industry stakeholders, and technological experts can foster a responsive regulatory environment.

ii. **International Collaboration:** Recognizing the cross-border nature of E-Contracts, international collaboration is imperative. Harmonizing regulatory standards and fostering cooperation among regulatory bodies can create a unified approach, minimizing regulatory arbitrage and promoting global acceptance.

iii. **Privacy and Data Protection Guidelines:** As E-Contracts increasingly involve personal and sensitive data, comprehensive guidelines for privacy protection should be established. Regulators should work in tandem with technologists to strike a balance between data privacy and the transparency inherent in blockchain technology[15].

iv. **Consumer Education and Protection:** Given the complexity of E-Contracts, consumer education initiatives are crucial. Regulators should invest in awareness programs to empower users with the knowledge required to navigate and engage safely with E-Contracts. Simultaneously, robust consumer protection measures should be implemented to address potential risks[16].

v. **E-Contract Audits:** Implementing mechanisms for E-Contract audits can enhance security and reduce vulnerabilities. Regulators can encourage or mandate independent audits of E-Contracts before deployment, fostering a safer and more reliable ecosystem[17].

Conclusion: The research paper has provided a comprehensive exploration of electronic contracts (e-contracts) and their legal implications in the modern digital landscape. Through an examination of the historical background, jurisprudential aspects, legal regulation, international conventions, and practical considerations surrounding e-contracts, several key findings and insights

have emerged. Firstly, the evolution of contracts from traditional paper-based agreements to electronic transactions highlights the transformative impact of technology on commercial interactions. E-contracts have emerged as essential tools in facilitating global commerce, offering efficiency, accessibility, and convenience to businesses and individuals alike. Secondly, the legal framework governing e-contracts encompasses a complex interplay of statutes, regulations, case law, and international conventions. In jurisdictions around the world, laws such as the Indian Contract Act, 1872, the Information Technology Act, 2000, and international instruments like the UNCITRAL Model Law on Electronic Commerce provide the legal basis for the formation, validity, and enforcement of e-contracts. Thirdly, the jurisprudential aspects of contract law, including rights and duties, theories of contract, and the validity of agreements, shape the interpretation and application of e-contracts in legal practice. Understanding these foundational principles is essential for ensuring fairness, equity, and legal certainty in electronic transactions. Furthermore, international conventions such as those developed by UNCITRAL, the Hague Conference on Private International Law, and the International Chamber of Commerce play a crucial role in promoting harmonization and legal certainty in cross-border transactions, contributing to the growth and development of global e-commerce.

In conclusion, while e-contracts offer numerous benefits in terms of efficiency and accessibility, they also present unique challenges and legal considerations that must be addressed. By navigating the complexities of e-contracts with a nuanced understanding of the legal framework, practical implications, and international standards, businesses, legal practitioners, and policymakers can harness the full potential of electronic transactions while ensuring compliance with legal requirements and safeguarding the integrity of commercial relationships in the digital age.

References:-

1. Indian Contract Act, 1872. (1872). Retrieved from https://lddashboard.legislative.gov.in/actsofparliament fromtheyear/indian-contract-act-1872
2. Information Technology Act, 2000. (2000). Retrieved from https://www.indiacode.nic.in/bitstream/1234567 89/13116/1/it_act_2000_updated.pdf
3. The Indian Evidence Act, 1872. (1872). Retrieved from https://www.indiacode.nic.in/bitstream/123456789/ 15351/1/iea_1872.pdf
4. United Nations Commission on International Trade Law. (1996). UNCITRAL Model Law on Electronic Commerce. Retrieved from https://uncitral.un.org/en/ texts/ecommerce/modellaw/electronic_commerce
5. United Nations Commission on International Trade Law. (2001). UNCITRAL Model Law on Electronic Signatures.
6. Hague Conference on Private International Law. (2006). Hague Convention on the Law Applicable to Certain Rights in Respect of Securities Held with an Intermediary. Retrieved fromhttps://assets.hcch.net/ docs/d1513ec4-0c72-483b-8706-85d2719c11c5.pdf
7. International Chamber of Commerce. (n.d.). ICC Model Contract for the Sale of Goods. Retrieved from https:/ /iccwbo.org/business-solutions/model-contracts-clauses/icc-model-international-sale-contra
8. Ministry of Law and Justice, Government of India. (n.d.). Indian Easement Act, 1882.
9. Supreme Court of India. (1996). ProCD, Inc. v. Zeidenberg, 86 F.3d 1447 (7th Cir. 1996).

Footnotes:-

1. A. Antonopoulos, "Mastering Ethereum: Building E-Contracts and DApps" (O'Reilly Media, 2018).
2. Indian contract Act, 1872.
3. Section 10A, Information Technology Act, 2000.
4. Section 2(1)(ta), Section 3, Information Technology Act, 2000.
5. Section 2(1)(t),Information Technology Act, 2000.
6. Section 79,Information Technology Act, 2000.
7. Section 65B, Indian Evidence Act, 1872.
8. Section 85A, Indian Evidence Act, 1872.
9. AIR 1966 SC 543: 1966 (1) SCR 666.
10. 1955 (2) QB 327.
11. 1955 (2) QB 327.
12. https://uncitral.un.org/sites/uncitral.un.org/files/media-documents/uncitral/en/19-04970_ebook.pdf visited on 24th April, 2024.
13. https://download.microsoft.com/documents/useterms/ visual% 20studio%20.net%20professional_2003_ english_be8aa149-b0fd-494d-a902-07fdb2007b90.pdf visited on 24th April, 2024.
14. 86 F.3d 1447 (7th Cir., 1996).
15. European Data Protection Board (EDPB), "Guidelines 07/2020 on the Concepts of Controller and Processor in the GDPR" (2020).
16. S. R. Allen, "Blockchain & Cryptocurrency Regulation in the United States" (The Law Library of Congress, 2018).
17. Ethereum Foundation, "E-Contract Security Best Practices" (2021).

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

A Study of The Phenomena of Action, Meditation and Liberation in Early Buddhism

Dr. Punit Kumar Pandya* **Mr. Karmveer Singh Bhati****

*Asst. Professor (Education) JRN Rajasthan Vidyapeeth (Deemed to be University), Udaipur (Raj.) INDIA
** Research Scholar (Education) JRN Rajasthan Vidyapeeth (Deemed to be University), Udaipur (Raj.) INDIA

Abstract - To be is to act and to act is to be. Our being is very much constituted by the way we act and live. If one is stealing, then he is a thief. If one is teaching, he is a teacher. Buddhism upholds the view that our action determines what we are. Our suffering and the happiness are very much results of our actions. This doctrine seems to us a truism, a self-explanatory doctrine. We generally believe that good action results in happiness and bad action results in suffering. But this is not accepted by several thinkers at the time of Buddha. In the Sâmaññaphalasutta of Dîgh-nikâya there is a discussion of the view of MaEkhaliGoshalaka, who is adeterminist (niyativâdî) and upholds the view that it is wrong to believe that good conduct will lead to our desired results. There is no cause of the purity or impurity of living beings. Good and Bad acts do not affect our destiny. Any living being is purified only by passing in the cycle of 84000Mahâkalpathrough the various forms of life. Buddha opposed such types of view and advocated the middle path. The middle path is the path of Noble Eightfold Path, namely right view, right thought, right speech, right action, right livelihood, right effort, right mindfulness and right concentration. It is the path based on the truth that our destiny is determined by our good action or bad action.

Any action performed by us has two aspects inner and outer. The outer aspect is determined by our behavior and inner aspect by our good or bad thought or desire. Suppose we want to abuse someone but I am not abusing, because his bodily strength is superior to mine. Here outer aspect, the speechact is good but inner aspect is bad. This action, according to Buddhism, is not perfectly good because inner aspect is defective. A good action must be non-defective in inner as well as in outer forms. In order to perform such actions, a mental training is also necessary which is covered by Buddhist Way of meditation. A discussion of action will be incomplete without the discussion of the goal of action and life.Nibbâna is the goal of life. In order to cover all these points, we have made an effort, in the present thesis to study the phenomena of action, meditation and liberation.

Keywords: liberation, meditation.

Introduction - To be is to act and to act is to be. Our being is very much constituted by the way we act and live. If one is stealing, then he is a thief. If one is teaching, he is a teacher. Buddhism upholds the view that our action determines what we are. Our suffering and the happiness are very much results of our actions. This doctrine seems to us a truism, a self-explanatory doctrine. We generally believe that good action results in happiness and bad action results in suffering. But this is not accepted by several thinkers at the time of Buddha. In the Sâmaññaphalasutta of Dîgh-nikâya there is a discussion of the view of MaEkhaliGoshalaka, who is a determinist (niyativâdî) and upholds the view that it is wrong to believe that good conduct will lead to our desired results. There is no cause of the purity or impurity of living beings. Good and Bad acts do not affect our destiny. Any living being is purified only by passing in the cycle of 84,000 Mahâkalpa through the various forms of life. Buddha opposed such types of view and advocated the middle path. Allan R. Bomhard, his working The life and teachings of the Buddha according to the oldest tests. Refers to the meaning of the middle path that "The middle path is the path of Noble Eightfold Path, namely right understanding, right thought, right speech, right action, right livelihood, right effort, right mindfulness and right concentration. It is the path based on the truth that our destiny is determined by our good action or bad action". Every action performed by us has two internal and external aspects. The external aspect is determined by our behavior and the internal aspect by our good or bad thinking or desire. Suppose we want to abuse someone but I'm not abusing, because his body strength is greater than mine. Here, the external aspect, the vocal act is good, but the internal aspect is bad. This action, according to Buddhism, is not perfectly good because the internal aspect is defective. A good deed must be nondefective in internal and external forms. To perform such actions, mental training is also required and

is covered by the Buddhist form of meditation. An action discussion will be incomplete without action and discussion of life's goals. Nibbâna is the goal of life. To cover all these points, in this thesis we have made an effort to study the phenomena of action, meditation and liberation.

ChanchamnongSuwat, in his work The Buddha's Core Teachings content that Buddhism is known for the doctrine of Kamma. Buddhism takes Kamma (Pâli) or Karma (Sanskrit) as the cause of verities and operations pervading the world. The doctrine of Kamma is based on the doctrine of dependent origination. (Pratîtya-samutpâda). It also governs the law of morality, which asserts that an intentional action will lead to a result proportionate in the nature and intensity to its intention. Right deeds are those which are based on skillful or wholesome (Kusala) actions and non-right deeds are those which are based on unskillful or unwholesome (Akusala) action. A skillful deed produces a result which isdesirable, good, and happy while an unskillful deed brings about just the opposite. The word 'Kamma' or action is a neutral term represents the good deeds and bad deeds, if the good action is well known as 'a meritorious action' on the other hand if the bad action is called 'an evil action'. In Tripitaka, the Buddha has said that the action consists of intention only has called Kamma (ChetanâhaAbhikkhavekammaAvadâmi).

Review of literature:

Prof. Thinnaphan Nagata "Buddhism and Thai Society," book published in 1984 A.D

He wrote that the monk is respected by the people, because he gives suggestion and helps them solve their daily problems of rural community. The monk is highly respected because people believe that monk is a person who has spiritual understanding. Sometimes he has to be an engineer and he also has to do the work by himself. Therefore, monks always help and solve the problems of society. We have seen the value and necessity of two institutions namely, temple and monk.

PhraMethidhammaporn "Thai Monks Regulations B.E. 2505," book published in 1993 A.D.

The author writes that it is very necessary to make a plan of new reconstruction with the comprehensive interrelation of environmental development, ecological continuity and serene house complex. And its location is on both state and private land. This showed that the monk's role on these works had been considered by the King. On the maintenance work, precautions are essential which all the monks have to take to consideration. This is the most severe unawareness of the monk's role on their own responsibilities. And it might be called the National disaster.

Amarnath Thakur "Buddha and Buddhist Synods in India and Abroad," book published in 1996 A.D.

This book explains the various Buddhist synods which were held so far. An endeavor has been made to present, historically, all the aspects of each synod, its purpose, result and contribution to the cause of Buddhism. The first chapter deals with the life of Buddha and throws light on the contemporary religious condition. In the next four chapters, the details of the four synods, held in India, are mentioned. The next three chapters contain the description of the councils held in Ceylon. The last 10 two chapters deal with the councils which took place in Thailand and Myanmar.

Research Objective:

1. To study the nature and types of action (kamma) in early Buddhism
2. To study the nature and types of meditation in early Buddhism
3. To study the nature and types of Nibbãna in early Buddhism

Research hypotheses: Everlasting peace in human society is very much needed today. Any type of progress either material or spiritual is not possible without peace. Some human beings are involved in bad actions, engaging fully in terrorist activities and threatening the world peace.Buddhist philosophy ofAction, Meditation and Liberation may prepare an atmosphere for discouraging bad actions because bad actions are cause of bondage and suffering. Liberation is necessary not only for securing individual liberation from bondage and suffering but also for realizing world peace which is very much needed in our age.

Research methodology: We should try to present our view by reviewing following materials:

1. Information gathered from Tripitaka.
2. Information gathered from other Pâli texts like Visuddhimagga etc.
3. Information collected from writings, books, journals, articles of scholars of Buddhism.
4. Our own thesis presentation by reviewing digesting the above materials.

Scope of the Study: We believe that the scope of the study is very bright because there are many philosophies which are favoring the phenomena of bad actions. We are attempting in a humble way to deny such type of philosophies so that the importance of good actions can be realized for the progress and happiness of humanity. The scope of the study is co-terminus with happiness and peace of humanity.

Conclusion:

1. Actions done without intention are not considered as Kamma, because Kamma emphasizes on the motive or intention not on the deed itself.
2. The wholesome or unwholesome Kammas are performed through three channels (dvara) which are; the door of the body (kaya kamma), the door of the word (vacikamma) and the door of the mind (hand kamma). Although kamma are done through manas, but they all manifest through these three doors.
3. Kamma determines the nature of the new birth and the circumstances in which it takes place; that is, it determines rebirth, as well as the plans of existence

for birth to take place.

4. The four bases of awareness concern NîvaraGa, khandhâ, âyatana and saccâ.
5. Everyone has the opportunity to realize the ultimate truth of nature and progress towards the wisdom and purification of the mind in current life.
6. It is shown that the development of vision (vipassanâ) based on the four foundations of awareness taught by the Buddha is the primary way to help everyone achieve the ultimate goal of Buddhism.
7. Nibbâna is a state beyond space (position) and time (duration), beyond the scope of language and empirical determinations. It is the end of Kamma and rebirth, the cessation of suffering, the end of the process of becoming (saAsâra). Nibbâna is positively conceived as the declaration of eternal peace and highest happiness.
8. There are four kinds of development, namely, (i) physical development (kâya-bhâvanâ), (ii) moral development (sîla-bhâvanâ), (iii) emotional development (citta-bhâvanâ) and (iv) intellectual development (paññâ-bhâvanâ).

References:-

1. The Book of the Discipline. I. B. Horner, vol V, London: Pali Text Society, 1952.
2. Dhammapadammhakathâ ed. H.C. Norman, 5 vols., London: Pali Text Society, 1906-1915.
3. E. M. Hare. AEguttara-nikâya: The Book of the Gradual Sayings. vol IV, London: The Pali Text Society, 1978.
4. T. W. and C. A. F. Rhys Davids, Dîghanikâya: Dialogues of the Buddha. vol II, LUZAC & Company, 1959.
5. Vibhanga.ed. C.A.F. Rhys Davids. London: Pali Text Society, 1904.
6. The Book of Analysis, tr. U. Thittila. London: Pali Text Society, 1969.

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Different Learning Styles as the Method of Addressing Individual Child Needs

Manasvi Tungare Jaiswal*

***M.Ed. 1st Sem, Maharaja College, Ujjain (M.P.) INDIA**

Introduction - It is rightly said by Matshona Dhliwayo that "A garden's beauty never lies in one flower" even it is true in the context of a classroom. A classroom consists of variety of students. It is difficult to address and explain these diversified students.Diverse needs of learners, matching instructions for diverse learning styles can be difficult.In earlier times it was more difficult because of the use of traditional method for teaching but now-a-days various teaching and learning styles are practiced while teaching. These styles help in fulfilling basic needs of all students.Reaching all students with a variety of learning styles is necessary for full academic growth.

The term "learning styles" speaks to the understanding that every student learns differently. Technically, an individual's learning style refers to the preferential way in which the student absorbs, processes, comprehends and retains information. For example, when learning how to make the abacus, some students understand the process by following verbal instructions, while others have to physically manipulate the abacus themselves. This notion of individualized learning styles has gained widespread recognition in education theory and classroom management strategy. Individual learning styles depend on cognitive, emotional and environmental factors, as well as one's prior experience. In other words: everyone's different. It is important for educators to understand the differences in their students' learning styles, so that they can implement best practice strategies into their daily activities, curriculum and assessments.

Over the past century, much interest in the subject of Psychology has been around education. This is important to conduct proper research on different learning styles and to better identify how people can learn best. Many theorists projected their ideas on understanding different learning styles.

One of the most prominent was developed by Neil Fleming in 1987. He set out to help students and teachers adapt their practices to better help them retain new information. Named the VARK Model of learning, Fleming theorized that we are all one of the four main types of learners: visual, auditory, reading/writing and kinesthetic. Individuals are identified by the style they identify with the most when learning. The VARK model acknowledges that students have different approaches to how they process information, referred to as "preferred learning modes."

Information that is accessed through students' use of their modality preferences shows an increase in their levels of comprehension, motivation, and metacognition.
Identifying your students as visual, auditory, reading/writing, kinesthetic, learners, and aligning your overall curriculum with these learning styles, will prove to be beneficial for your entire classroom.Keeping in mind, sometimes you may find that it's a combination of all three sensory modalities that may be the best option. Allowing students to access information in terms they are comfortable with will increase their academic confidence. By understanding what kind of learner you or your students are, you can now gain a better perspective on how to implement these learning styles into your lesson plans and study techniques

1. Visual Learners: Visual Learners understand and retain information best by seeing. They would prefer to see information presented in a visually appealing way, rather than in a written format. Individuals that learn in this way tend to pay close attention to detail and body language and often imagine situations in their mind to help them process the information better; similar to how designers use visual hierarchy to emphasize specific design elements, visual learners thrive with clear pictures of information hierarchy.They retain information best by viewing pictures or images and respond well to colors and mind maps.
In terms of learning, graphic displays are most effective for visual learners. Some of these include:

i. Charts, illustrations, graphs and diagrams
ii. Animated videos, documentaries and other learning shows.
iii. Paper hand-outs with lots of images.
iv. Demonstrations
v. Color-coded notes, incorporated with plenty of white space etc.

2. Aural Learners : Aural learners tend to learn information

best by hearing it rather than getting actively involved in class or writing out notes, they prefer to listen to others present the information and then are usually able to recite back to them. This is usually through the format of conversation, but can also include recordings and music. Some learners also find that reading information out loud to themselves can help them recall it better. Because of the need for auditory learners to listen intently to lectures or information, its vital that they are able to study in a quite environment, away from distractions and any other noises which could distract or disrupt their learning. They best understand new content through listening and speaking in situations. Aural learners use repetition as a study technique and benefit from the use of mnemonic devices.Some of the best ways to study which could benefit the aural learners include:

i. Lectures or large classroom environmentswhere tutors present information.
ii. Transcribing hand written notes into recordings.
iii. Listening to podcasts, audio books or class recordings
iv. Personal one-to-one tutoring where new information can be talked through.

3. Reading And Writing Learners: There are always some studentswho have beautifully hand written, colour coded notes that have been divided perfectly topic by topic, such students benefit from writing new information. Tend to take in new information best when it's displayed as words and text. They'll often produce lists, read definitions and enjoy summarizing information in ways that best make sense to them.Students with a strong reading/writing preference learn best through words. These students may present themselves as copious note takers or avid readers, and are able to translate abstract concepts into words and essays. They best remember new information by:

i. Reading textbooks and summarizing with notes.
ii. Writing notes in class and highlighting important detail.
iii. Creating presentations.
iv. Story writing and getting creative with their notes.

4. Kinesthetic Learners: This type of individuals learns best by practically touching and doing things. Hands-on experience is an important component for kinesthetic learners, who have a "trial and error"approach to their learning. They enjoy having physical practice and directly manipulating objects and materials to better understand how it works. They enjoy and thrive at more practical based subjects, such as Arts Sports and Design and Technology. They understand information through tactile representations of information. These students are hands-on learners and learn best through figuring things out by hand (i.e. understanding how a clock works by putting one together).Taking a physically active role, kinesthetic learners are hands-on and thrive when engaging all of their senses during course work. These learners tend to work well in scientific studies due to the hands-on lab component of the course.Some of the best ways to study which could benefit the kinesthetic learners include:

i. Role playing, using things like flashcards or carrying out the action physically can help them learn things better.
ii. Using real life examples, applications and case studies.
iii. Redo lab experiments or projects.
iv. Utilize pictures and photographs that illustrate your ideas.

In addition to the 'VARK' model of different styles of learning, some more categories of learners are included with these four types of learners. All of the styles capture an individual strength that likely helps a person retain information more effectively. They each focus on one of the five senses or involve a social aspect. This theory is popular because, by finding an individual learner's style and tailoring teaching to it, it was thought their efficiency could be improved. The types of different styles of learning are: Visual, Auditory, Verbal (Reading/Writing), Physical (Kinesthetic), Logical, Social, Solitary (Intrapersonal)

Logical : Logical, or mathematical learners use logic and structures in order to learn effectively. They use analytical skills to understand a certain subject. Logic, order and steps are the keys to success for logical learners. Such people are good with numbers, easily make connections and can spot patterns. Such learners can examine cause and effect and comprehend abstract material with ease. They make well-organized lists and groups of information. They are good at chess style games. In terms of learning, they may get involved when

i. Questions are posed in such a way which needs interpretation.
ii. Providing lessons that enable them to solve issues.
iii. Pushing such learners to reach conclusion based on facts or reasoning.

Social : Due to preference for spending much time with others, social learners are frequently viewed as social butterflies. Such learners prefer group projects and teamwork activities since peer interaction helps children understand a subject more thoroughly, so they find it enjoyable. They gain knowledge by engaging with others. They are good in reading others' emotions and facial expressions. Majority of such learners excel at both verbal and non-verbal communication. They frequently have a good ear for listening and are good advisors. Such learners can learn more effectively by:

i. Participating in study activities with other people such as quizzing each other or having a study group.
ii. Engaging in role plays.
iii. Asking them to bounce ideas off of each other and come their ideas with others.
iv. Including them in group projects or assignments.

Solitary : Solitary or Intrapersonal learners are exactly opposite to that of social learners. These learners want to work independently and employ self-study. They have keen awareness of their emotions, personalities and strengths.

They spend a lot of time reflecting on themselves and improving themselves. Such learners should be provided with calm and silent environment. They work best by:

i. Making notes and reciting them back.
ii. Single student activities or experiments.
iii. Silent or independent reading.

Understanding learners learning styles is crucial since it can increase their chances of academic success. Teaching students according to their specific learning styles will result in improved learning. As rightly quoted by Robert John Meehan that "Every child has a different learning style and pace. Each child is unique, not only capable of learning but also capable of succeeding."

Reference:-

1. Personal Research

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Information and Communication Technology as Pedagogy For Effective Teaching

Rozina William*

*M.Ed Student, Maharaja College, Ujjain (M.P.)INDIA

Introduction - In the rapidly evolving landscape of education, the role of Information and Communication Technology (ICT) has emerged as a transformative force, redefining the dynamics of teaching and learning. The integration of ICT as a pedagogical tool holds the promise of revolutionizing traditional educational paradigms, offering new avenues for effective teaching and enhanced student engagement. As we navigate the digital age, the amalgamation of advanced technologies into pedagogy not only addresses the evolving needs of learners but also opens up a realm of possibilities for educators to craft dynamic and immersive learning experiences. This essay explores the profound impact of Information and Communication Technology as a pedagogical approach, delving into its potential to reshape education, foster interactive learning environments, and ultimately contribute to the cultivation of a generation adept at navigating the complexities of the 21st century.

Advantages of ICT Enabled Learning in Education

Enhanced Learning Resources: ICT provides teachers with a vast array of digital resources that can enrich the learning experience. Multimedia presentations, interactive simulations, and online databases offer a diverse range of materials, catering to different learning styles. This abundance of resources empowers educators to create engaging and dynamic lessons that capture students' attention and foster a deeper understanding of the subject matter.

Global Connectivity and Collaboration: The advent of the internet and communication technologies has virtually eliminated geographical barriers, allowing students to connect and collaborate with peers, experts, and resources worldwide. Virtual classrooms, video conferencing, and collaborative online platforms facilitate real-time interactions, promoting a global perspective and enhancing students' ability to work effectively in a connected world.

Personalized Learning: ICT enables personalized learning experiences tailored to individual student needs. Educational software and platforms can adapt to students' pace, providing additional support or challenges as necessary. This adaptability caters to diverse learning abilities and ensures that each student can progress at their own rate, fostering a more inclusive and effective learning environment.

Interactive Teaching Methods: Interactive whiteboards, educational apps, and virtual simulations allow teachers to create dynamic and interactive lessons. This departure from traditional teaching methods not only captures students' interest but also promotes active participation and hands-on learning. This shift towards interactivity enhances comprehension and retention of information, making the learning process more effective.

Real-World Application of Knowledge: ICT facilitates the integration of real-world scenarios into the classroom, bridging the gap between theoretical concepts and practical application. Virtual laboratories, simulations, and online case studies enable students to apply their knowledge in simulated real-world contexts, preparing them for the challenges they may face in their future careers.

Continuous Assessment and Feedback: Digital assessment tools and learning management systems streamline the evaluation process. Teachers can administer assessments, track progress, and provide timely feedback more efficiently. This continuous feedback loop enhances the learning experience, allowing students to identify areas of improvement and reinforcing positive learning outcomes.

Challenges in the integration of Information and **Communication Technology:** The integration of Information and Communication Technology (ICT) in education in India faces several challenges that impact its effectiveness as a pedagogical tool. These challenges are multifaceted and encompass various aspects of the educational system. Here are some key challenges:

Infrastructure and Connectivity Issues:

i. Uneven Distribution: Disparities exist in the distribution of ICT infrastructure, with urban areas having better access compared to rural regions. This inequality hampers the uniform implementation of technology in education across the country.

ii. Inadequate Internet Connectivity: Many schools, es-

pecially in remote areas, lack reliable internet connectivity. This limitation hinders access to online resources, collaborative learning platforms, and other internet-dependent educational tools.

Digital Divide:

i. Socioeconomic Disparities: Students from lower socioeconomic backgrounds may not have access to personal computers, tablets, or smartphones, leading to a digital divide. This gap in access to technology exacerbates educational inequalities.

ii. Limited Access to Devices: Even when schools have ICT infrastructure, the availability of devices for each student may be limited. This constraint restricts the scope of personalized learning and inhibits students from developing essential digital skills.

Teacher Training and Readiness:

i. Lack of Digital Literacy: Many teachers may not be adequately trained in using ICT tools for teaching. The absence of digital literacy skills among educators hinders their ability to effectively integrate technology into the curriculum.

ii. Resistance to Change: Some teachers may resist incorporating technology due to a fear of obsolescence, a lack of confidence, or a preference for traditional teaching methods. Overcoming this resistance requires comprehensive training and support.

Curricular Challenges:

i. Outdated Curriculum: The curriculum in many schools may not be designed to incorporate the latest technological advancements. Outdated content can impede the seamless integration of ICT, as the curriculum may not align with the skills demanded by the digital age.

ii. Assessment Methods: Traditional assessment methods may not be suitable for evaluating the effectiveness of ICT-based learning. There is a need for innovative assessment strategies that align with technology-driven pedagogy.

Content Relevance and Localization:

i. Language and Content Localization: Educational content and digital resources may not be available in regional languages, limiting their accessibility for students in non-English speaking regions. Adapting content to local contexts is crucial for effective learning.

ii. Relevance of Content: The relevance of digital content to the local context and students' everyday lives is essential. A lack of contextual relevance can diminish students' interest and engagement with the material.

Cost Constraints&Security and Privacy Concerns:

i. Financial Barriers: The cost of acquiring and maintaining ICT infrastructure can be a significant barrier for schools, particularly those with limited financial resources. Funding constraints may impede the purchase of updated hardware, software, and maintenance services.

ii. Data Security Issues: Concerns about data security and privacy may hinder the adoption of online platforms for learning. Protecting students' sensitive information and ensuring a secure online environment is a priority that needs to be addressed.

Policy and Regulatory Framework:

i. Lack of Clear Policies: Inconsistent or inadequate policies regarding the use of ICT in education can create ambiguity and hinder the systematic implementation of technology in schools. A clear regulatory framework is essential to guide schools and educators.

Addressing these challenges requires a coordinated effort from policymakers, educators, communities, and technology providers to create an inclusive and technology-enabled learning environment in India. Overcoming these obstacles is crucial for harnessing the full potential of Information and Communication Technology as a pedagogical tool for effective teaching.

Strategies to Promoting the use of Information and **Communication Technology (ICT) :** Promoting the use of Information and Communication Technology (ICT) in teaching requires a collaborative effort from various stakeholders, including educators, policymakers, parents, and the broader community. Here are strategies that each stakeholder group can adopt to facilitate the integration of ICT into pedagogy:

Educators:

i. Professional Development: Teachers should engage in ongoing professional development to enhance their ICT skills and stay abreast of technological advancements. Workshops, training programs, and conferences can provide opportunities for educators to learn and share best practices.

ii. Curriculum Integration: Integrate ICT seamlessly into the curriculum, aligning it with learning objectives. Demonstrate how technology enhances and supports traditional teaching methods, making lessons more engaging and effective.

iii. Collaborative Learning Communities: Foster communities of practice where educators can share experiences, resources, and innovative ways to incorporate ICT. Collaboration encourages the exchange of ideas and provides support for teachers navigating the challenges of integrating technology.

Policymakers:

i. Investment in Infrastructure: Allocate resources and funds to ensure that educational institutions have the necessary infrastructure, including reliable internet connectivity, updated hardware, and software. This infrastructure is fundamental for successful ICT integration.

ii. Policy Frameworks: Develop and implement policies that support the integration of ICT in education. This includes guidelines for curriculum development, teacher training, and the establishment of standards for ICT infrastructure in schools.

iii. Public Awareness Campaigns: Launch awareness campaigns to highlight the benefits of ICT in education. Demonstrating the positive impact of technology on learn-

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

ing outcomes can garner support from parents, educators, and the community.

Parents and Caregivers:

i. Digital Literacy at Home: Encourage digital literacy at home by providing access to educational technology and guiding children in its responsible use. Parents can play a crucial role in supporting and reinforcing the skills learned through ICT at school.

ii. Advocacy for Technology Integration: Advocate for the integration of ICT in schools during parent-teacher meetings and school board discussions. Informed and supportive parents can influence decision-making processes that impact the adoption of technology in education.

Community:

i. Community Engagement Events: Organize events that showcase the positive impact of ICT on education. This could include technology fairs, community workshops, or presentations by educators on how technology is enhancing learning experiences.

ii. Partnerships with Industry: Collaborate with local businesses and industries to provide resources, mentorship programs, and real-world applications of ICT in education. These partnerships can offer students insights into the practical uses of technology in various fields.

Technology Providers:

i. Affordable and Accessible Solutions: Develop and provide affordable and accessible ICT solutions for educational institutions. This includes software, hardware, and online platforms that cater to the specific needs of schools and teachers.

ii. Training and Support Services: Offer training programs and ongoing support services for educators to ensure they can effectively use and troubleshoot ICT tools. Providing readily available technical support can alleviate concerns and challenges associated with technology integration.

By adopting these strategies, each stakeholder can contribute to creating an environment that encourages and supports the effective use of Information and Communication Technology in teaching, ultimately enhancing the overall quality of education.

Conclusion: In conclusion, the integration of Information and Communication Technology (ICT) as a pedagogical tool holds immense potential to reshape the landscape of education in India. The advantages of ICT-enabled learning, as explored in this essay, demonstrate its capacity to enhance resources, connect students globally, personalize learning experiences, promote interactive teaching methods, facilitate real-world applications, and streamline assessment processes. However, the transformative journey is not without its challenges.

In essence, the effective use of Information and Communication Technology as a pedagogical tool requires a concerted and sustained effort from all stakeholders. By embracing these strategies and addressing challenges, we can pave the way for a future where technology not only enhances teaching effectiveness but also equips students with the skills and knowledge needed to navigate the complexities of the 21st century. The journey towards effective teaching through ICT is a collective endeavor that holds the promise of a more inclusive, engaging, and transformative educational experience for generations to come.

Reference:-

1. Personal Research

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

The Role of Critical Thinking in Education

Sakina Attar*

***M.A. 1ST Sem, Maharaja College, Ujjain (M.P.) INDIA**

Introduction - Thinking critically will boost creativity and enhance the way you use and manage your time (Hader, 2005) and critical thinking not only describes the ability to think in accordance with the rules of logic and probability, but also the ability to apply these skills to real-life problems, which are not content-independent. Critical thinking can provide you with a more insightful understanding of yourself. It will offer you an opportunity to be objective, less emotional, and more open-minded as you appreciate others' views and opinions. By thinking ahead, you will gain the confidence to present fresh perspectives and new insights into burden some concerns.

Thinking: Thinking is the base of all cognitive activities or processes and is unique to human beings. It involves manipulation and analysis of information received from the environment. Such manipulation and analysis occur by means of abstracting, reasoning, imagining, problem solving, judging, and decision-making. The mind is the idea while thinking processes of the brain involved in processing information such as when we form concepts, engage in problem solving, to reason and make decisions. The history of researches on thinking depends upon the time that human beings recognized that they think. Thinking is one of the features that distinguish humans from other living beings. Thinking is the manipulation or transformation of some internal representation. She says that when we start thinking, we use our knowledge to achieve some objective. In this sense thinking ability is the basic case of our life because all of us need to achieve an objective; on the other hand humans have relations in society and whereas nobody is alone. Descartes argued that thinking is reasoning, and that reason is a chain of simple ideas linked by applying strict rules of logic (McGregor, 2007). Both learning and thinking are the concepts which support and complete one another. When considered from this point of view, whereas learning style and critical thinking concepts have different qualifications, it can be stated that they can be used jointly. Likewise, when literature is examined, it is seen that there are researches handling learning styles and critical thinking concepts jointly (Guven & Kurum, 2004).

Critical Thinking : "Critical thinking is thinking about your thinking while you're thinking in order to make your thinking better."—*Richard W. Paul*

When the term of 'Critical Thinking' is searched, it is understood that there are meanings of it which are suggested in the frame of philosophy and psychology sciences but in general sense this term has not got a definite meaning. 'Critical', derived from the Greek word kritikos meaning to judge, arose out of the way analysis and Socratic argument comprised thinking at that time.(McGregor, 2007) and then the word kritikos passed to Latin as 'Criticus' that is the type of spreading to world languages from it (Hançerlioglu, 1996). According to Critical Thinking Cooperation (2006) critical thinking is an ability which is beyond memorization. When students think critically, they are encouraged to think for themselves, to question hypotheses, to analyze and synthesize the events, to go one step further by developing new hypotheses and test them against the facts. Questioning is the cornerstone of critical thinking which in turn is the source of knowledge formation and as such should be taught as a framework for all learning. Students are frequently conditioned in their approach to learning by experiences in teacher-cantered, textbook-driven classrooms (Sharma & Elbow 2000). This situation is a disturbing case for contemporary educators, and for this reason they would rather choose the latest models and methods which are more effective in directing students to thinking. Critical thinking occurs when students are analyzing, evaluating, interpreting, or synthesizing information and applying creative thought to form an argument, solve a problem, or reach a conclusion. The aim of Critical Thinking is to promote independent thinking, personal autonomy and reasoned judgment in thought and action. This involves two related dimensions:

1. the ability to reason well and
2. the disposition to do so.

Critical thinking involves logic as well as creativity. It may involve inductive and deductive reasoning, analysis and problem-solving as well as creative, innovative and complex approaches to the resolution of issues and challenges.

Thinking in Education: Education, perhaps the most basic

need for people, is the process that provides the development of human. According to Meyer (1976) the aim of education is to nurture the individual, to help, to realize the full potential that already exists inside him or her. There has always been a strand of educational thought that held that the strengthening of the child's thinking should be the chief business of the schools and not just an incidental outcome – if it happened at all (Lipman, 2003). Qualified education should show the way to students about what and how to learn. While students evaluate what they learned and their learning methods, they manifest their critical thinking abilities (Emir, 2009).

As Cotton indicates (1991): "If students are to function successfully in a highly technical society, then they must be equipped with lifelong learning and thinking skills necessary to acquire and process information in an ever changing world".

One of the aims of education should be developing students' thinking skills as well as motor skills, which is basic goal of contemporary approaches in education. According to Elder & Paul (2008) students are not passive but active while they are realizing critical thinking.

Critical Thinking and Education: One of the significant aims of education is to produce learners who are well informed, that is to say, learners should understand ideas that are important, useful, beautiful and powerful. Another is to create learners who have the appetite to think analytically and critically, to use what they know to enhance their own lives and also to contribute to their society, culture and civilization.

These two aims for education as a vehicle to promote critical thinking are based on certain assumptions.

1. Brains are biological. Minds are created. Curriculum is thus a mind-altering device. This raises the moral requirement to treat learners as independent centres of consciousness with the fundamental ability to determine the contours of their own minds and lives.
2. Education should seek to prepare learners for self-direction and not pre-conceived roles. It is, therefore, essential that learners be prepared for thinking their way through the maze of challenges that life will present independently.
3. Education systems usually induct the neophyte into the forms-of-representation and realms of meaning which humans have created thus far.
4. Careful analysis, clear thinking, and reasoned deliberation are fundamental to democracy and democratic life.

On the basis of these considerations the capacity for critical assessment and analysis emerges as fundamental for enjoying a good quality of life

Teaching Critical Thinking: Every pupil should have an effective skill of critical thinking, and they must not accept anything for granted but how can you teach thinking critically to students? There are several ways of organizing for instruction in critical thinking: We can teach a separate course or unit, we can infuse critical thinking into all that we teach, or we can use a mixed approach. The first approach of a separate course or unit requires materials that teach specifically for critical thinking dispositions, skills, and knowledge. The downside is that there may be little transfer from what the program or materials teach to the rest of the curriculum. Infusion, the second possible approach, requires that critical thinking be taught as an integral part of all subject areas (Wright, 2002). According to Hirose (1992) employers complain about employees' lack of reasoning and critical thinking abilities. Those abilities are essential because compared with the jobs in the past the modern work environment requires more thinking and problem solving abilities. This situation can be adapted to education, too. Teachers had better be equipped with high critical thinking skills. Critical thinking is not equal with intelligence and shouldn't be misunderstood with it. Critical thinking is skill which can be developed (Walsh and Paul, 1988). As well as critical thinking can be developed, it can be searched and analyzed with its different dimensions, so this shows that many scientists or experts hypothesize about critical thinking, because the vitality of critical thinking has been realized by many people recently. Educators are aware of the fact that critical thinking can be thought.

Studies Conducted on 'Critical Thinking': Initial studies conducted on critical thinking began in the years of 1960s. Researchers have intended to explain critical thinking with two main disciplines thorough these studies. Philosophical approach has dwelled on norms of good thinking, the concept and motive of human thought and cognitive skills necessary for an objective world view; while psychological approach have dwelled on thinking and experimental studies thinking, individual differences in learning thinking and the concept of problem solving which is a piece of critical thinking. Now I will give a few examples on the studies of critical thinking. Kurum (2002) put forward a study at Anadolu University Education Faculty. The goal of Kurum's study was to identify critical thinking abilities and the levels of thinking abilities that constitute this ability and the factors which influenced critical thinking of teacher trainees studying at Anadolu University Education Faculty. The results of the study showed that teacher trainees' critical thinking abilities and all levels of thinking abilities were at mid- level and that these abilities were affected by different factors such as age, high school types graduated, score type and level in university entrance exam, program being studied, education and income level of the family, and activities held for developing themselves.

Paul (1989) conducted a study touching upon the adaptation of critical thinking dispositions in learning environment. In this study Paul suggests dispositions to be disciplined and self-directed thinking could be taught. He maintained that critical thinking was constructed from skills, such as spotting conclusions, examining premises, forming

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

conclusions and diagnosing fallacies. Thus he proposed that critical thinking be constructed as 'disciplined, self-directed thinking which exemplifies perfection of thinking appropriate to a particular mode or domain of thinking. Critical thinking conceptualised in this way must be taught with a focus on developing fair-minded, critical thinkers, who were willing to take into account the interests of diverse persons or groups regardless of self-interest. Paul called it the dialogical or dialectical thinking model.

Giancarlo, Blohm, and Urdan (2004) were interested in the measurement of critical thinking disposition in adolescents as illustrated with four successive studies. The results of their studies provide support for the California Measure of Mental Motivation (abbreviated as CM3). This study was based on the assumption that critical thinking is a disposition and provided not only evidence that critical thinking disposition exists in adolescents but also a valuable tool for assessing this construct. The authors concluded that "CM3 assess the extent to which individuals perceive themselves as willing and inclined to approach challenging problems in a systematic, innovative, open-minded, and inquisitive way."

Conclusion: From the above discussion,Critical thinking is no doubt necessary in every field of life, but especially for professions that occupy with people. Finkelman (2001) took the attention and emphasized the importance that the people who work in the field of human health, especially the people who directly intervene to the person's life like psychologists, counsellors and educationalists have to be critical thinkers in both practice and management. In order for teachers and counsellors to be able to implement critical thinking into their classrooms they must first be committed to critical thinking and its philosophy.

Reference:-

1. Personal Research

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

प्रभावी शिक्षण के लिए, शिक्षा शास्त्र के रूप में सूचना एवं संचार तकनीकी प्रौद्योगिकी

डॉ. मिताली बजाज* बलजीत सिंह**

* सहायक प्राध्यापक, महाराजा कॉलेज, उज्जैन (म.प्र.) भारत
** शोधार्थी, महाराजा कॉलेज, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – मुख्यत: सूचना, तकनीक तथा विज्ञान के बढ़ते अनुप्रयोग, पहले से अधिक कार्यकुशलता तथा अधिक तेजी से किसी भी कार्य को सम्पन्न करने में, महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने में सहायक सिद्ध हुआ है।

प्राचीन काल में, मानव संसाधन तथा तकनीकी खोजों के अभाव में, किसी भी कार्य में कार्यकुशलता का कोई मापन या पैमाना ना होने से इसमें क्या फैक्टर्स प्रभावी रहे। इसका काई सामान्य या विशिष्ट लक्ष्य नहीं था। कृषि, उद्योग उत्पादन में, जितना भी प्राकृतिक रूप से, प्राप्त होता था, उससे प्रयोग में लाया जाता था। उत्पादन तथा उपभोग के बीच के अन्तर को पूरा करने का कोई लक्ष्य नहीं था। समय के साथ–साथ जनसंख्या वृद्धि, उत्पादन तथा उपभोग के बीच अन्तर को पाटना तथा अधिक से अधिक लाभ, उत्पादन, गुणवता आदि पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा।

उसी के साथ–साथ लोगों की असीमित मांग, वस्तुओं का आकर्षण, किसी भी वस्तुओं की गणना तथा मांग तथा पूर्ति के अन्तर की गणना करके उनकी पूर्ति हेतू उद्योगों का विकास हुआ। मशीनीकरण तथा तकनीकी विकास की इसी क्रमबद्धता में, संचार के साधनों का विकास हुआ।

संचार और तकनीकी आपस में गहरा सम्बन्ध है। विश्व के विकसित देशों में संगणक का विकास, उन्नयन्न तथा विकास के चलते इसमें कार्यक्षमता, कार्यकुशलता में प्रभावशाली विकास हुआ है। इसी सन्दर्भ में सेवा क्षेत्र, उद्योग क्षेत्र, शिक्षा क्षेत्र, कृषि क्षेत्र तथा परिवहन तथा उडडयन क्षेत्र में तकनीकी तथा संचार का प्रयोग जरूरी तथा समय की मांग के अनुसार अधिक हुआ है।

शिक्षा के क्षेत्र में, संचार तकनीकी (Information Communication & Technology) की प्रभावशीलता में अधिक प्रयोग हो रहे है।

भूमण्डलीकरण, वैश्वीकरण तथा ज्ञान के क्षेत्र में आपसी संवादों व विचारों, तकनीकी का आदान–प्रदान में, ICT की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई है।

सूचना क्रान्ति के इस युग में, Online Education, Blended Education, Face to Face Education की बजाए ICT के जरिये ज्ञान व शिक्षा प्रचार–प्रसार तकनीकी संसाधनों से जिस गति से बढ़ रहा है तथा Cloud Computing (क्लाउड कम्प्यूटिंग) तथा सुदूर संचार तथा तकनीकी संसाधनों के बढ़ते अनुप्रयोग से यह सम्भव हो पाया है।

प्रभावी शिक्षण के लिए, शिक्षा शास्त्र के रूप में सूचना एवं संचार तकनीकी प्रौद्योगिकी।

सूचना एवं संचार तकनीकी :– ICT

सूचना एवं संचार तकनीकी प्रौद्योगिकी मुख्यत: Information Communication & Technology शब्द का हिन्दी रूपांतरण है। तकनीकी मुख्यत: संचार से जुड़ें एक विशेष कोड में मानवीय भाषा को कोड में, बदलने तथा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के सुदूर जुड़े होने तथा उनके बीच भाषायी संचार तथा Electronics विद्युतीय तकनीकी उपकरणों से सुसज्जित प्रणाली का एक हिस्सा होता है।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के तीन घटक है जिनके माध्यम से समस्त सूचना, संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग करके सेवाओं को उपलब्ध करवाया जाता है।

1. कम्प्यूटर हार्डवेयर प्रौद्योगिकी
2. कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर प्रौद्योगिकी
3. दूरसंचार एवं नेटवर्क प्रौद्योगिकी

सूचना व संचार प्रौद्योगिकी में, अध्यापक व छात्रों के बीच मध्य ज्ञान का संचार, तकनीकी प्रौद्योगिकी के माध्यम से, मोबाइल, लेपटॉप, कम्प्यूटर के माध्यम से, विभिन्न शैक्षणिक एप या द्विस्तरीय बहु स्तरीय सम्पकीय प्लेटफॉर्म के माध्यम से होता है। जिसमें यू–टयूब, गुगल मीट, माइक्रोसॉफ्ट वर्ड, स्काई एप के माध्यम से लगातार द्विस्तरीय या बहुस्तरीय संवाद होता रहता है।

आज की तेजी से बदल रहे वैश्विक परिदृश्य में सीखने और शिक्षा को एक समग्र अनुभव बनाना महत्वपूर्ण है। इस बात को ध्यान में रखते हुए अध्यापक शिक्षा में नवप्रवर्तन की शुरूआत हो गई है।

सूचना एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में क्रम विस्तर के फलस्वरूप विश्व को एक ग्लोबल विलेज के रूप में देखा जा रहा है। इसी संदर्भ में, सूचना एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र को बढ़ावा मिला है। प्रभावशाली शिक्षण में, तकनीकी **संचार तथा प्रौद्योगिकी की भूमिका :** वर्तमान युग, विज्ञान का युग है तथा तकनीकी, संचार तथा प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग, ज्ञान, सूचना तथा अनुभवों को सांझा करने में, तकनीकी, संचार तथा प्रौद्योगिकी की महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

इसी संदर्भ में, Online Education, Blended Education तथा दूरवर्ती शिक्षा तथा पत्राचार शिक्षा के क्षेत्र में बेतहाशा वृद्धि हुई है।

इसी संदर्भ में, यू–ट्यूब, ऑनलाइन एप प्लेटफार्म, गुगल मिट, माइक्रोसॉफ्ट वर्ड तथा अन्य विभिन्न प्रकार के तकनीकी, संचारीय संसाधनों के माध्यम से ज्ञान तथा अनुभवों का आदान–प्रदान हो रहा है।

प्रभावी शिक्षण में तकनीकी संचार एवं प्रौद्योगिकी के लाभ :

क. समय की बचत – विभिन्न प्रदाताओं तथा अनुभवी विशेषज्ञों में आपसी संचार के माध्यम से, एक स्थान से, प्रसारित कक्षाकक्ष की सभी बातें तथा विषय से सम्बन्धित अनुभवों को, सुदूर अलग-अलग स्थानों पर बैठे समूहों, व्यक्तिगत रूप से ज्ञान का प्रवाह बिना, किसी रूकावट के होता रहता है। जिससे समय व धन की बचत होती है।

किसी भी आभाषी कक्षाकक्ष के जागरूक व्यक्ति अपने विशेषज्ञय से चल रहे संवाद के बीच किसी भी प्रकार के प्रश्न, शंका, समस्या के समाधान पा सकता है तथा अपने **अनुभव प्लेटफार्म पर जुड़े व्यक्ति से सांझा कर सकते है।**

ख. तकनीकी प्लेटफार्म पर सांझा की गई सूचनाओं का संग्रहण तथा बाद में सांझा करने में आसानी – कई बार व्यक्तिगत समस्याओं के चलते आभाषी कक्षाओं में उपस्थित रहना सम्भव नहीं होता इसलिए भविष्य में उन सभी सांझा की गई जानकारी, ज्ञान, अनुभवों को भविष्य में की गई संग्रहित सूचनाओं को बार-बार सूनना सम्भव है।

ग. दिव्यांगजनों के लाभकारी – दूसरों पर निर्भरता के कारण तथा चालुष्णता, एक स्थान से दूसरे स्थान पर चलने फिरने में दिक्कतों की वजह से शिक्षा से वंचित रह जाते है। इसलिए प्रौद्योगिकी दिव्यांगजन शैक्षणिक गतिविधियों के कारण, उन्हें शैक्षणिक गतिविधियों में शामिल होने में आसानी रहती है। शिक्षक, पाठ्यक्रम के इर्द-गिर्द ही रहता है।

घ. आवाज, विजुअल– दर्शयात्मक प्रणाली के कारण, समझने में आसानी रहती है। परन्तु प्रभावी शिक्षण के लिए, सूचना व संचार प्रौद्योगिकी के लाभ के साथ-साथ बहुत सी हानियां भी है। आवश्यक उपकरणों का होना, सक्रीय संचार की उपलब्धता, संचार व प्रौद्योगिकी का उन्नत होना तथा उनका प्रयोगकर्ता को प्रयोग करने की जानकारी होना इत्यादि सभी विषय महत्वपूर्ण है।

सूचना व संचार प्रौद्योगिकी की सीमितता :

क. सूचना व संचार प्रौद्योगिकी की पहली सीमितता तो यह है कि एक प्रभावशाली शिक्षण हेतू, प्रभावी कक्षाक़क्ष का होना, प्रभावशाली शिक्षण की पहली शर्त है।

ख. सामूहिक कक्षा-कक्ष में, विद्यार्थियों का मूल्यांकन – सामूहिक कक्षा-कक्ष में विद्यार्थियों का मूल्यांकन, उनकी प्रश्नों का उतर, जिज्ञासाओं का निवारण, जीवंत कक्षाकक्ष के माध्यम से ही सम्भव है। पीयर-ट्यूटरिंग, जैसे प्रभावशाली शिक्षण व्यवस्था में विद्यार्थी एक-दूसरे से सीखते है तथा आपसी संवेग, जीवंत भावनाओं, सहयोग, सहकारिता आदि का विकास इस प्रकार के शिक्षण व्यवस्था में संभव नहीं है।

ग. समूह की बजाय व्यक्तिवाद तथा भौतिकतावाद की अवधारणा – शैक्षिक कार्यक्रमों, पाठ्यचर्या में खेलकूद, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा सामूहिक क्रियाकलापों को इस प्रकार की शैक्षिक व्यवस्था में कोई ठोस निवारण नहीं है। देखकर या करके सीखने की जो विचारधारा शिक्षाविदों ने दी है उस पर सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से जो शिक्षण व्यवस्था प्राचीन समय से चली आ रही है, उसके अनुरूप यह पद्धति अधिक प्रभावी नहीं है।

कोविड महामारी के समय, जिन दृष्टिबाधित बच्चों को विकल्प के रूप में, सूचना व संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षण कार्यक्रमों को प्रबन्धन किया गया, उसमें महामारी के पश्चात उन पर किये गये शोधों से पता चलता है कि उनका ब्रेल लेखन, पठन, लगभग 90 प्रतिशत विद्यार्थियों का जीरो हो गया है तथा वे तकनीकी उपकरणों पर ज्यादा निर्भर हो गये है। इसके अलावा उनके मानसिक स्वास्थय तथा शारीरिक स्वास्थ्य पर भी नकारात्मक प्रभाव पाये गये है।

इसके अलावा उनके सोचने, समझने तथा व्यवहार में भी अंतर पाये गये है। इसके अलावा ऐसा पाया गया है सरकारी योजना के तहत बांटे गये टेब/मोबाइल का प्रयोग, विद्यार्थियों द्वारा उनके शैक्षिक कार्यक्रमों प्रयोग कम तथा फालतू के कार्यो में ज्यादा किया गया है। इससे पता चलता है कि प्रभावी शिक्षण के लिए सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के सकारात्मक व नकारात्मक दोनों पहलू पाये गये है।

उपसंहार – प्रभाव शिक्षण व्यवस्था में, परम्परागत तथा आधुनिक शैक्षणिक व्यवस्था जिसमें सूचना एवं संचार तकनीकी का प्रयोग समान रूप से किया जाने लगा है।

परम्परागत रूप शैक्षणिक व्यवस्था में, प्रभावी-कक्षाकक्ष, सामूहिक शिक्षण, संवार्गिक रूप से भी विद्यार्थियों पर, समान रूप से, सभी पर मूल्यांकन, गृहकार्य व लेखन-पठन तथा खेलकूद, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा उनकी व्यक्तिगत रूचि को ध्यान में रखकर शैक्षणिक कार्यो को किया जाता रहा है तथा उनकी मूल्यांकन भी किया जाता है परन्तु आधुनिकता तथा तकनीकी युग में शैक्षणिक कार्यक्रमों को सूचना व संचार प्रौद्योगिकी के तहत, ज्ञान को परोसा जाने लगा है।

उच्च शैक्षिक कार्यक्रमों में यह एक निश्चित सीमा तक सम्भव है परन्तु प्राथमिक व उच्च माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं में कोविड महामारी के दौरान दिये गये के शिक्षण पर किये गये शोधों से पता चलता है कि बच्चों में आदतों, तनाव, गुस्सा, लेखन तथा उनके अन्य कौशल में कमी पाई गई है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा वह परिवार समाज तथा सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से एक अच्छा नागरिक बन सकता है। इसलिए किसी भी विद्यार्थी के जीवन में शिक्षण संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है तथा सहयोगी शिक्षण, सामूहिक शिक्षण की व्यवस्था की प्रभावी शिक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. शैक्षिक अनुसंधान प्रणाली एवं सांख्यिकी, दिनेश कुमार, लवली प्रोफेशनल विश्वविद्यालय पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, दरयागंज, नई दिल्ली।
2. शैक्षिक प्रबन्धन, संयोजक, डॉ. अनिल कुमार जैन, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान।
3. शिक्षा शास्त्र, आर गुप्ता कृत, 2022, रमेश पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
4. ग्यानस्थली एजूकेशन, डॉ. ग्यानप्रकाश पी.सी.एस. भूतपूर्व सहायक प्रोफेसर, गवर्नमेंट पी.जी. कॉलेज, रानीखेत, 2023 ग्यानस्थली पब्लिकेशन, लखनऊ, उतरप्रदेश 226024
5. www.google.com

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

प्रभावी शिक्षण के लिए शिक्षाशास्त्र के रूप में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी

तृप्ति दवे*

* एम.एड. छात्र, महाराजा कॉलेज, उज्जैन (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना - आज के आधुनिक समाज में ज्ञान व्यक्ति के लिए, राज्य के लिए और एक देश की उन्नति के लिए अत्यन्त आवश्यक है। ज्ञान ही एक ऐसा माध्यम है जिससे मनुष्य अपनी सभी आवश्यकताएँ पूरी कर सकता है, पर ज्ञान को प्राप्त करने के लिए ज्ञान प्राप्ति के तरीकों को सीखने के लिए आवश्यकता है नवीन प्रौद्योगिकी की और यह नवीन प्रौद्योगिकी है 'सूचना एवं सम्प्रेषण।'

वर्तमान युग क्रांति का युग है। हम ज्ञान आधारित समाज में रह रहे हैं और ज्ञान से ही हमें किसी राष्ट्र की शक्ति एवं विकास का पता चलता है। उस ज्ञान को सभी लोगों तक पहुँचाने के लिए हमें शिक्षण पद्धति के साथ-साथ नई प्रौद्योगिकियों की आवश्यकता पड़ती है। सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी उन्हीं आधुनिक प्रोद्योगिकियों में से एक है।

प्रभावी शिक्षण के लिए शिक्षाशास्त्र के रूप में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की आवश्यकता को हम निम्नानुसार बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट कर सकते हैं :-

1. सूचना एवं सम्प्रेषण के माध्यम से हम ज्ञान ग्रहण करने एवं ज्ञान प्राप्ति के ढ़ंग को जानते तथा समझते हैं। वर्तमान समय में इसका उपयोग करके विद्यार्थी तथा शिक्षक शीघ्र ही सभी सूचनाएँ प्राप्त कर सकते हैं।
2. मनुष्य प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों तरीकों से ज्ञान प्राप्त कर सकता है। जब कभी किसी कारणवश कोई विद्यार्थी प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता तब ऐसी स्थिति में वह अप्रत्यक्ष रूप से ज्ञान प्राप्त करता है। अप्रत्यक्ष ढ़ंग से ज्ञान प्राप्त करने के कई माध्यम हो सकते हैं, जैसे किसी व्यक्ति से पूछकर, किताबों से, पत्र-पत्रिका के माध्यम से, टेप, कम्प्यूटर आदि से। उपर्युक्त माध्यमों से सूचना के आधार पर विद्यार्थी किसी व्यक्ति, स्थान या वस्तु विशेष के बारे में जानने का प्रयास करता है। यह सभी जितने भी सूचना के माध्यम हैं उन सभी से ठीक प्रकार से सूचनाएँ प्राप्त करने, संग्रह करने और आवश्यक होने पर इसके प्रयोग का ज्ञान आवश्यक है। इस प्रकार की गतिविधियाँ ही सूचना प्रौद्योगिकी कहलाती है।
3. वर्तमान आधुनिक जीवन का प्रत्येक क्षेत्र सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी से प्रभावित है। शिक्षा का क्षेत्र भी पूर्णतया इसके प्रभाव में है। आज कम्प्यूटर इंटरनेट का बढ़ता हुआ उपयोग शिक्षा को सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी के पास लाता है। शिक्षा का प्रत्येक अंग, विधियाँ, प्रविधियाँ, शिक्षण उद्देश्य, शोध इत्यादि सभी सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी के बिना अधूरा है। अत: सूचना एवं सम्प्रेषण का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसके अन्तर्गत शिक्षण प्रक्रिया में सम्मिलित की जाने वाली सामग्री का निर्धारण और इसके कार्य क्षेत्र की सीमाओं का निर्धारण करना भी शामिल है।
4. सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी की सहायता से शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है। इन उद्देश्यों को व्यावहारिक शब्दावली में लिखा जा सकता है। इन उद्देश्यों को निर्धारित कर विद्यार्थियों के अपेक्षित व्यवहार में परिवर्तन कर उनकी शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है।
5. सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी द्वारा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के लिए प्रयोग की जाने वाली व्यूह रचनाओं और युक्तियों का चुनाव एवं विकास बड़ी आसानी से किया जा सकता है। सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी शिक्षण प्रतिमानों का ज्ञान, विभिन्न विधियों एवं प्रविधियों का ज्ञान और उनके चुनाव करने में सहायता कर सकते हैं।
6. सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली तभी सफल मानी जाती है जब उसका सही मूल्यांकन होता है। सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली तभी सफल मानी जाती है जब उसका सही मूल्यांकन हो। प्रतिक्रिया द्वारा विद्यार्थियों और शिक्षकों को उनकी अधिगम और शिक्षण विधियों की सफलता के बारे में जाँच की जाती है और कुछ कमियाँ होने पर उसे दूर करने का प्रयास किया जाता है। सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी द्वारा मूल्यांकन या प्रतिक्रिया विधियों का चयन, विकास तथा उनकी उपयोगिता संभव हो सकती है।
7. सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसके लिए शिक्षण अभ्यास प्रतिमानों की रचना, सूक्ष्म-शिक्षण, अनुकरणीय शिक्षण एवं प्रणाली उपागम का उपयोग किया जाता है।
8. शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न उप-प्रणालियों के मूल्यांकन के लिए प्रणाली उपागम के प्रयोग में सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी महत्तवपूर्ण है। शिक्षा के क्षेत्र में ये उप-प्रणालियाँ कक्षा में, कक्षा के बाहर, लेकिन विद्यालय के वातावरण में ही प्रयुक्त होती हैं। इन प्रणालियों के तत्त्वों तथा उनकी कार्य-पद्धति के अध्ययन में सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी की प्रमुख भूमिका होती है।
9. सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी का कार्यक्षेत्र मशीनों एवं अन्य जन सम्पर्क माध्यमों तक फैला है। सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी इन मशीनों Hardware उपकरणों के उपयोग के लिए कार्य करती है। इन

मशीनों में रेडियो, टेलीविजन, टेपरिकार्डर, फिल्म प्रोजेक्टर, ओवरहेड प्रोजेक्टर, सेटेलाइट आदि सम्मिलित हैं। सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी इन सभी के लिए आधार तैयार करती है।

10. सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी का प्रयोग हम सामान्य व्यवस्था परीक्षण और अनुदेशन के कार्यक्षेत्रों में भी करते हैं। इस प्रकार सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का क्षेत्र काफी विस्तृत है। शैक्षिक तकनीकी ने शिक्षा के क्षेत्र में पुरानी अवधारणाओं में आधुनिक संदर्भ के साथ अभूतपूर्व क्रांतिकारी परिवर्तन कर उन्हें एक नवीन स्वरूप प्रदान किया है।

11. सूचना एवं सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी ने वर्तमान में सूचना के आदान-प्रदान करने में एक क्रांतिकारी भूमिका का निर्वहन किया है। इसके द्वारा सम्पूर्ण सूचनाएँ जो विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित होती हैं उन्हें एक स्थान पर बैठे-बैठे प्राप्त किया जा सकता है। यह श्रम, समय एवं कांगजी कार्य में बचत करता है। I.C.T. स्थानीय संस्कृति और विशेष रूप से इसके प्रबंधन एवं आकार के आधार पर कार्य करता है। I.C.T. की अवधारणा, समझ प्रबंधन और उपलब्ध विन्यास प्रौद्योगिकी के आधार पर भिन्न हो सकती है।

12. सूचना एवं सम्प्रेषण किसी कार्य को करने में प्रयुक्त उपकरणों एवं यंत्रों का एक संग्रह है। उपकरणों के एकीकृत प्रबंधन के तत्तवों, मंत्रों, सेवाओं एवं व्यवहारों का प्रयोग सूचनाओं के संग्रह उसकी प्रक्रिया तथा साझा करने के लिए किया जाता है। सूचना सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी उपकरण का प्रयोग सीखने को सक्षम बनाने, समस्या समाधान करते सहयोगी चिंतन में विस्तृत रूप से किया जाता है। इस प्रकार सूचना सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी का प्रयोग प्रौद्योगिकी के माध्यम से सूचनाओं का आदान-प्रदान करने तथा उसका उपयोग करने में प्रयुक्त होता है।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि प्रभावी शिक्षण के लिए शिक्षाशास्त्र के रूप में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकती है- सिद्ध हो रही है। यह सही है कि ज्ञान स्वयं में सीमातीत होता है, किन्तु शिक्षण के क्षेत्र में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी अपने समस्त कार्य व्यवहारों से शिक्षा और शिक्षण को प्रभावी और सुगम बनाने में सहायक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. व्यक्तिगत शोध के आधार पर।

****

सरकार की प्राथमिकता में शिक्षा का स्थान : शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में एक दृष्टिकोण

सिम्पल रजक*

* शोधार्थी, विक्रम विश्वविद्यालय,उज्जैन (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – किसी भी राष्ट्र के विकास में शिक्षा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जिस देश में शिक्षा का स्तर जितना, व्यवस्थित, संगठित, मजबूत तथा वर्तमान आवश्यकता के अनुसार होना वह देश उतनी ही तेजी से तरक्की की दिशा मे आगें बढेगा। भारत में शिक्षा के स्तर के सुधार के लिए कई नीतियॉ समय – समय पर बनाई गई। परन्तु अब की वर्तमान शिक्षा की स्थिति हमें यह सोचने पर मजबुर कर देती है। की 'क्या हम शिक्षा के उस स्तर को प्राप्त कर चुके है जो हमें विकसित देशो की श्रेणी में ला कर खड़ा कर सके। या फिर अब भी हमें शिक्षा के स्तर को सुधारने की आवश्यकता किसी नई सुदृण एवं क्रियात्मक शिक्षा नीति की आवश्यकता है।'

प्रस्तावना – 'शिक्षा सामाजिक एवं राष्ट्रीय शक्तिकरण के लिए प्रथम एवं मुलभूत साधन है। यह माना जाता है कि शिक्षा ही वह उपकरण है। जिससे कोई भी राष्ट्र अपने आय को सशक्त, विकसित तथा मजबूत बना सकता है। एक उत्तम शिक्षा व्यवस्था के द्धारा ही व्यक्ति अपना सर्वांगीण विकास कर सकता है। तथा व्यक्ति के विकास से ही समाज एवं राष्ट्र का विकास सम्भव होता है। और यह तभी समभ्व है जब एक अच्छी शिक्षा नीति का निर्माण किया जाए।

भारत आज भी एक विकासशील देश की श्रेणी में खड़ा है। इसका सबसे बड़ा कारण है, हमारी शिक्षा नीतियों का सफल ना हो पाना, उनकी कमियों पर ध्यान ना देना।

देश में कई शिक्षा नीतियों का निर्माण किया गया जो कभी भी पूरी तरह से सफल नही हो पाई. हमारे देश में अंतिम बार शिक्षा नीति वर्ष 9186 में बनाई गई थी और वर्ष 1992 में इसमें संशोधन किया गया था। यह नीतियों भी कमियों से भरी पड़ी थी, इसके बावजूद इस पर सरकार का ध्यान ना देना देश के विकास में बाधक सिद्ध हुआ। वर्तमान में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में एक बार फिर शिक्षा नीति के निर्माण की पहल की गई है। जिसमें 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020'का नाम दिया गया है। इस नीति से यह उम्मीद की जा रही है कि यह पुरानी शिक्षा नीति यों की तुलना में एक बेहतर, असरदार एवं भावी पीढ़ी के लिए 'मील का पत्थर साबित होगी।'

भारत के शिक्षा नीति – भारतीय शिक्षा का इतिहास भारतीय सभ्यता का भी इतिहास है। भारतीय समाज के विकास और उसमें होने वाले परिवर्तनों की रूपरेखा में शिक्षा की जगह और उसकी भूमिका को भी निरंतर विकासशील पाते हैं। सूत्रकाल तथा लोकायत के बीच शिक्षा की सार्वजनिक प्रणाली के पश्चात हम बौद्धकालीन शिक्षा को निरंतर भौतिक तथा सामाजिक प्रतिबद्धता से परिपूर्ण होते देखते हैं। बौद्धकाल में स्त्रियों और शूद्रों को भी शिक्षा की मुख्य धारा में सम्मिलित किया गया।

शिक्षा का केन्द्र रू तक्षशिला का बौद्ध मठ

नालन्दा बिहार के अवशेष

प्राचीन भारत में जिस शिक्षा व्यवस्था का निर्माण किया गया था वह समकालीन विश्व की शिक्षा व्यवस्था से समुन्नत व उत्कृष्ट थी लेकिन कालान्तर में भारतीय शिक्षा का व्यवस्था ह्रास हुआ। विदेशियों ने यहाँ की शिक्षा व्यवस्था को उस अनुपात में विकसित नहीं किया, जिस अनुपात में होना चाहिये था। अपने संक्रमण काल में भारतीय शिक्षा को कई चुनौतियों व समस्याओं का सामना करना पड़ा। आज भी ये चुनौतियाँ व समस्याएँ हमारे सामने हैं जिनसे दो-दो हाथ करना है।

भारतीय शिक्षा नीति को हम दो भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं।

1. आजादी के पूर्व भारतीय शिक्षा नीति।
2. आजादी के बाद भारतीय शिक्षा नीति।

आजादी के पूर्व भारत में शिक्षा नीति – भारत में बढ़ते साम्राज्य तथा राजनीतिक शक्ति के कारण ईस्ट इंडिया कम्पनी को एक ऐसे वर्ग की आवश्यकता हुई जो कि प्रशासन और व्यापार के कार्यो में उसकी सहायता कर सके। अत: कम्पनी ने अपने साम्राज्य का विस्तार करने तथा भारत की राजनीति एवं व्यापार में अपनी पकड़ मजबूत करने के लिए समय समय पर अनेक शिक्षा से सम्बंधित नीतियों का निर्माण किया वर्ष 1813 में ब्रिटेन की संसद द्धारा पारित चार्टर अधिनियम में भारत में शिक्षा के विकास हेतु प्रतिवर्ष 1 लाख रुपए के अनुदान का प्रावधान किया गया।

वर्ष 1835 में लॉर्ड मैकाले ने अपना प्रसिद्ध स्मरण-पत्र (Minute) गवर्नर जनरल की परिषद के समक्ष प्रस्तुत किया।

मैकाले ने इसके तहत 'अधोगामी निस्पंदन का सिद्धांत' (Downward Filtration Theory) दिया जिसके तहत भारत के उच्च तथा मध्यम वर्ग के एक छोटे से हिस्से को शिक्षित करना था ताकि एक ऐसा वर्ग तैयार हो जो रंग और खून से भारतीय हो लेकिन विचारों, नैतिकता तथा बुद्धिमत्ता में ब्रिटिश हो।

इसके पश्चात वर्ष 1854 में वुड्स डिस्पैच, 1882-83 में हंटर आयोग, 1904 में भारतीय विश्वविद्यालय आयोग, 1917-19 में सैडलर आयोग , 1929 में हरटोंग समिति, तथा वर्ष 1944 में शिक्षा पर सार्जेंट योजना जैसी

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

समितियों का गठन आजादी के पूर्व किया गया इन समितियों ने भारत की प्राचीन शिक्षा व्यवस्था के रूप को पूरी तरह परिवर्तित कर दिया साथ ही आधुनिक शिक्षा की नींव रखने में प्रमुख भूमिका निभाई।

आजादी के बाद भारत में शिक्षा नीति – 1947 में भारत की स्वतंत्रता के बाद सरकार ने शैक्षिक चुनौतियों का समाधान करने के लिए विभिन्न शिक्षा आयोगों की स्थापना की गई और भारत में शिक्षा प्रणाली में सुधार के लिए व्यापक नीतियों की सिफारिश की।

डॉ. एस. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में गठित विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948): इसके द्वारा क्षेत्र, जाति, लैंगिक विषमता पर ध्यान दिए बिना समाज के सभी वर्गों के लिए उच्च शिक्षा को सुलभ बनाने की अनुशंसा की गई।

डॉ. ए. लक्ष्मण स्वामी मुदलियार की अध्यक्षता में गठित माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952): इस समिति ने आउटकम की दक्षता में वृद्धि, मैट्रिक पाठ्यक्रमों का विविधीकरण, बहुउद्देशीय मैट्रिक विद्यालयों की स्थापना, सम्पूर्ण भारत में एक समान प्रारूप लागू करने और तकनीकी विद्यालयों की स्थापना की सिफारिश की।

डी. एस. कोठारी की अध्यक्षता में गठित भारतीय शिक्षा आयोग (1964-66): इसके द्वारा तीन मुख्य पहलुओं, यथा- 1. आंतरिक परिवर्तन 2. गुणात्मक सुधार और 3. शैक्षिक सुविधाओं का विस्तार, के आधार पर एक व्यापक पुनर्निर्माण की सिफारिश की गयी।

1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीतिरू यह नीति कोठारी आयोग की सिफारिशों के अनुसार तैयार की गई थी। इसने भारतीय संविधान में प्रस्तावित 6-14 वर्ष की आयु वर्गों के बच्चों के लिए अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान करनेय माध्यमिक विद्यालयों में क्षेत्रीय भाषाओं पर बल देनेय अंग्रेजी को विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम बनाने हिंदी को राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्वीकार करने एवं संस्कृत के विकास को बढ़ावा देने तथा राष्ट्रीय आय का 6 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय करने की सिफारिश की।

Figure 1. The shortcomings of the National policy Education 1968

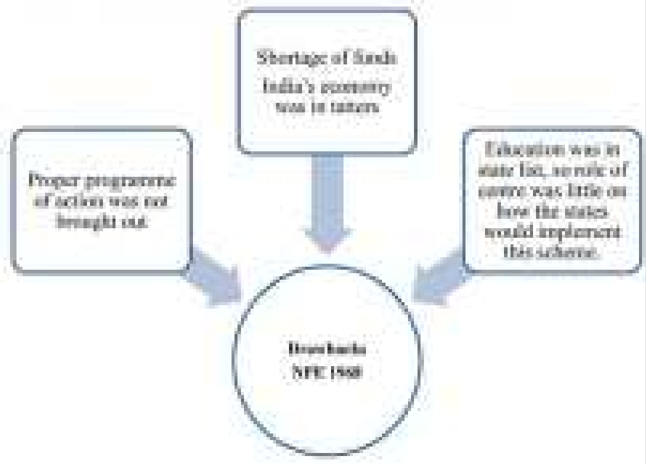

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986): इसके प्रमुख प्रावधानों में शामिल हैं- समाज के सभी वर्गों विशेष रूप से अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग और महिलाओं को शिक्षा प्रदान करनाय निर्धनों के लिए छात्रवृत्ति का प्रावधान, प्रौढ़ शिक्षा प्रदान करना, वंचित/पिछड़े वर्गों से शिक्षकों की भर्ती करना और नए स्कूलों एवं कॉलेजों का विकास करनाय छात्रों को प्राथमिक शिक्षा प्रदान करनाय गांधीवादी दर्शन के साथ ग्रामीण लोगों को शिक्षा प्रदान करनाय मुक्त विश्वविद्यालयों की स्थापना करनाय शिक्षा में IT का प्रचार करनाय तकनीकी शिक्षा क्षेत्र को प्रारम्भ करने के अतिरिक्त वृहद स्तर पर निजी उद्यम को बढ़ावा देना।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1992): भारत सरकार द्वारा 1990 में आचार्य राममूर्ति की अध्यक्षता में 1986 की राष्ट्रीय नीति के परिणामों का पुन: आकलन करने के लिए एक आयोग का गठन किया गया। इसकी प्रमुख सिफारिशों में शामिल थीं- केंद्र और राज्य सरकारों को सलाह देने के लिए उच्चतम सलाहकार निकाय के रूप में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड (Central Advisory Board of Education: CABE) का गठनय शिक्षा की गुणवत्ता में वृद्धि पर ध्यान केंद्रित करनाय छात्रों में नैतिक मूल्यों को विकसित करना तथा जीवन में शिक्षा को आत्मसात करने पर बल देना।

The eleven salient features of the national policy on education (1986) are as illustrated in the Figure.2

शिक्षा नीति में परिवर्तन की आवश्यकता क्यों?

बदलते वैश्विक परिदृश्य में ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये मौजूदा शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन की आवश्यकता थी।

शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाने, नवाचार और अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिये नई शिक्षा नीति की आवश्यकता थी।

भारतीय शिक्षण व्यवस्था की वैश्विक स्तर पर पहुँच सुनिश्चित करने के लिये शिक्षा के वैश्विक मानकों को अपनाने के लिये शिक्षा नीति में परिवर्तन की आवश्यकता थी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

नई शिक्षा नीति 2020 भारत की शिक्षा नीति है जिसे भारत सरकार द्वारा 29 जुलाई 2020 को घोषित किया गया। सन 1986 में जारी हुई नई शिक्षा नीति के बाद भारत की शिक्षा नीति में यह पहला नया परिवर्तन है।(1) (2) यह नीति अंतरिक्ष वैज्ञानिक के. कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता वाली समिति की रिपोर्ट पर आधारित है।

प्रमुख बातें (3)

1. नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के तहत वर्ष 2030 तक सकल

नामांकन अनुपात (Gross Enrolment Ratio & GER) को 100% लाने का लक्ष्य रखा गया है।

2. नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत शिक्षा क्षेत्र पर सकल घरेलू उत्पाद के 6% हिस्से के सार्वजनिक व्यय का लक्ष्य रखा गया है।
3. 'मानव संसाधन प्रबंधन मंत्रालय' का नाम परिवर्तित कर 'शिक्षा मंत्रालय' कर दिया गया है।
4. पाँचवीं कक्षा तक की शिक्षा में मातृभाषा/स्थानीय या क्षेत्रीय भाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने पर बल दिया गया है। साथ ही मातृभाषा को कक्षा-8 और आगे की शिक्षा के लिये प्राथमिकता देने का सुझाव दिया गया है।
5. देश भर के उच्च शिक्षा संस्थानों के लिये 'भारतीय उच्च शिक्षा परिषद' नामक एक एकल नियामक की परिकल्पना की गई है।
6. शिक्षा नीति में यह पहला परिवर्तन बहुत पहले लिया गया था लेकिन अबकी बार 2020 में जारी किया गया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के मुख्य बिंदु

इस शिक्षा नीति में 10+2 के फार्मेट को पूरी तरह खत्म कर दिया गया है। अब इसे 10+2 से बांटकर 5+3+3+4 फार्मेट में ढाला गया है।

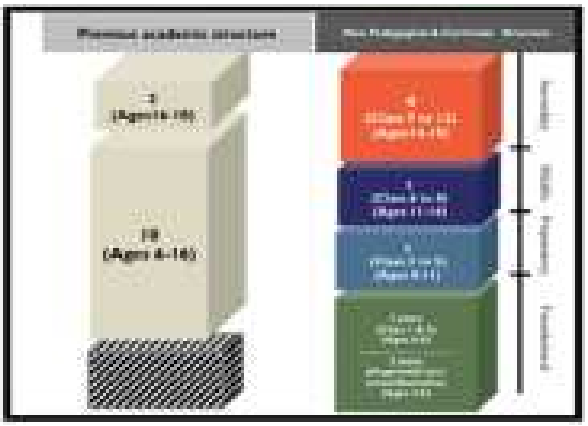

इस नए फार्मूले के नए पैटर्न में 3 साल की फ्री स्कूली शिक्षा को तथा 12 साल की स्कूली शिक्षा सम्मिलित की गई है। इस फार्मूले को सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थानों को फॉलो करना अनिवार्य किया गया है।

फाउंडेशन स्टेज- नई शिक्षा नीति के फाउंडेशन स्टेज में 3 से 8 साल तक के बच्चों को सम्मिलित किया गया है। जिसमें 3 साल की प्री स्कूली शिक्षा को सम्मिलित किया गया है जिसके अंतर्गत छात्रों का भाषा कौशल तथा शैक्षिक स्तर का मूल्यांकन किया जाएगा और उसके विकास में ध्यान केंद्रित किया जाएगा।

प्रीपेटरी स्टेज - इस स्टेज में 8 से 11 साल के बच्चों को सम्मिलित किया गया है जिसमें 3 से कक्षा 5 तक के बच्चे होंगे। नई शिक्षा नीति के इस स्टेज में छात्रों का संख्यात्मक कौशल को मजबूत करने पर विशेष ध्यान केंद्रित किया जाएगा वहीं सभी बच्चों को क्षेत्रीय भाषा का भी ज्ञान दिया जाएगा।

मिडिल स्टेज - इस स्टेज के भीतर छठवीं से आठवीं कक्षा तक के बच्चों को सम्मिलित किया गया है जिसमें छठवीं कक्षा के बच्चों से से ही कोडिंग सिखाना शुरू की जाएगा। वही सभी बच्चों को व्यवसायिक परीक्षण के साथ-साथ व्यवसाय इंटर्नशिप के अवसर भी प्रदान किए जाएंगे।

सेकेंडरी स्टेज - इस स्टेज में आठवीं कक्षा से 12वीं कक्षा तक के छात्रों को सम्मिलित किया गया है। इस स्टेज के भीतर आठवीं से 12वीं कक्षा के शैक्षिक पाठ्यक्रम को भी खत्म करके बहु वैकल्पिक शैक्षिक पाठ्यक्रम को शुरू किया गया है। छात्र किसी निर्धारित स्ट्रीम के भीतर नहीं बल्कि अपनी मनपसंद के अनुसार अपने विषयों को चुन सकते हैं। नई शिक्षा नीति के अंतर्गत छात्रों को विषयों को चुनने को लेकर स्वतंत्रता दी गई है , छात्र साइंस के विषयों के साथ-साथ आर्ट्स या कॉमर्स के विषय को भी एक साथ पढ़ सकते हैं।

उच्च शिक्षा से संबंधित प्रावधान

NEP-2020 के तहत उच्च शिक्षण संस्थानों में 'सकल नामांकन अनुपात' (Gross Enrolment Ratio) को 26.3% (वर्ष 2कि018) से बढ़ाकर 50% तक करने का लक्ष्य रखा गया है, इसके साथ ही देश के उच्च शिक्षण संस्थानों में 3.5 करोड़ नई सीटों को जोड़ा जाएगा।

NEP-2020 के तहत स्नातक पाठ्यक्रम में मल्टीपल एंट्री एंड एक्जिट व्यवस्था को अपनाया गया है, इसके तहत 3 या 4 वर्ष के स्नातक कार्यक्रम में छात्र कई स्तरों पर पाठ्यक्रम को छोड़ सकेंगे और उन्हें उसी के अनुरूप डिग्री या प्रमाण-पत्र प्रदान किया जाएगा (1 वर्ष के बाद प्रमाण-पत्र, 2 वर्षों के बाद एडवांस डिप्लोमा, 3 वर्षों के बाद स्नातक की डिग्री तथा 4 वर्षों के बाद शोध के साथ स्नातक)।

विभिन्न उच्च शिक्षण संस्थानों से प्राप्त अंकों या क्रेडिट को डिजिटल रूप से सुरक्षित रखने के लिये एक 'एकेडमिक बैंक ऑफ क्रेडिट' (Academic Bank of Credit) दिया जाएगा, ताकि अलग-अलग संस्थानों में छात्रों के प्रदर्शन के आधार पर उन्हें डिग्री प्रदान की जा सके।

नई शिक्षा नीति के तहत एम.फिल. (M.Phil) कार्यक्रम को समाप्त कर दिया गया।

नई शिक्षा नीति से संबंधित चुनौतियाँ

राज्यों का सहयोग: शिक्षा एक समवर्ती विषय होने के कारण अधिकांश राज्यों के अपने स्कूल बोर्ड हैं इसलिये इस फैसले के वास्तविक कार्यान्वयन हेतु राज्य सरकारों को सामने आना होगा। साथ ही शीर्ष नियंत्रण संगठन के तौर पर एक राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा नियामक परिषद को लाने संबंधी विचार का राज्यों द्वारा विरोध हो सकता है।

महँगी शिक्षा: नई शिक्षा नीति में विदेशी विश्वविद्यालयों में प्रवेश का मार्ग प्रशस्त किया गया है। विभिन्न शिक्षाविदों का मानना है कि विदेशी विश्वविद्यालयों में प्रवेश से भारतीय शिक्षण व्यवस्था के महँगी होने की आशंका है। इसके फलस्वरूप निम्न वर्ग के छात्रों के लिये उच्च शिक्षा प्राप्त करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है।

शिक्षा का संस्कृतिकरण: दक्षिण भारतीय राज्यों का यह आरोप है कि 'त्रि-भाषा' सूत्र से सरकार शिक्षा का संस्कृतिकरण करने का प्रयास कर रही है।

फंडिंग संबंधी जाँच का अपर्याप्त होना: कुछ राज्यों में अभी भी शुल्क संबंधी विनियमन मौजूद है, लेकिन ये नियामक प्रक्रियाएँ असीमित दान के रूप में मुनाफाखोरी पर अंकुश लगाने में असमर्थ हैं।

वित्तपोषण: वित्तपोषण का सुनिश्चित होना इस बात पर निर्भर करेगा कि शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय के रूप में जीडीपी के प्रस्तावित 6% खर्च करने की इच्छाशक्ति कितनी सशक्त है।

मानव संसाधन का अभाव: वर्तमान में प्रारंभिक शिक्षा के क्षेत्र में कुशल शिक्षकों का अभाव है, ऐसे में राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के तहत प्रारंभिक शिक्षा हेतु की गई व्यवस्था के क्रियान्वयन में व्यावहारिक समस्याएँ भी हैं।

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

निष्कर्ष-केंद्रीय मंत्रिमंडल ने 21वीं सदी के भारत की जरूरतों को पूरा करने के लिये भारतीय शिक्षा प्रणाली में बदलाव हेतु जिस नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 को मंजूरी दी है अगर उसका क्रियान्वयन सफल तरीके से होता है तो यह नई प्रणाली भारत को विश्व के अग्रणी देशों के समकक्ष ले आएगी। नई शिक्षा नीति, 2020 के तहत 3 साल से 18 साल तक के बच्चों को शिक्षा का अधिकार कानून, 2009 के अंतर्गत रखा गया है। 34 वर्षो पश्चात् आई इस नई शिक्षा नीति का उद्देश्य सभी छात्रों को उच्च शिक्षा प्रदान करना है जिसका लक्ष्य 2025 तक पूर्व-प्राथमिक शिक्षा (3-6 वर्ष की आयु सीमा) को सार्वभौमिक बनाना है। स्नातक शिक्षा में आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस, थ्री-डी मशीन, डेटा-विश्लेषण, जैवप्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों के समावेशन से अत्याधुनिक क्षेत्रों में भी कुशल पेशेवर तैयार होंगे और युवाओं की रोजगार क्षमता में वृद्धि होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1 hi.M.wikipedia.org. राष्ट्रीय शिक्षा नीति।
2. औपनिवेशिक भारत में शिक्षा का विकास drishtiias.com
3. https://bhashaprakashan.com
4. https://sarkariguide.com ब्रिटिश कालीन शिक्षा के उद्देश्य
5. https://www.jagaran.com
6. www.mhrd.gov.in Ministry of Education
7. hindi.hvshq.org
8. https://www.education.gov.in

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

Representation of Women in Jane Austen Pride & Prejudice

Prof. Swati Sharma*

*Department of English, Govt. Holkar (Model Autonomous) Science College, Indore (M.P.) INDIA

Abstract - "Pride and Prejudice epitomizes the intricacies of societal conduct, delineating the multifaceted circumstances endured by women amidst the backdrop of nineteenth-century England. Jane Austen astutely portrays a woman's felicity as contingent upon marriage, wherein her social standing is inexorably tethered to the selection of a husband. While happiness and affection ostensibly underpin marital unions, material affluence and the possessions of the suitor hold paramount significance. Thus, a woman endeavors to sculpt her identity to meet the exacting standards requisite for matrimonial acceptance, for the stigma of spinsterhood consigns unmarried daughters to the status of familial burdens. Regrettably, women's aspirations and preferences are frequently disregarded within the patriarchal paradigm, wherein authoritative male voices predominate. Subjugated to submissive roles, their voices muted, women are constrained to traverse the paths dictated by their male counterparts. Austen's narrative starkly illustrates the absence of self-made women, ensnared as they are within the constricting confines of societal norms."

Objectives: The current paper aims to achieve the following objectives:

1. Investigate the influence of material possessions on individuals' lives during the specified era.
2. Analyze the relinquishment of women's individuality.
3. Assess the objectification of women.
4. Examine the treatment of women within the societal framework.
5. Explore the marginalization of women's rights.

Introduction: In the annals of 19th-century British literature, Jane Austen's "Pride and Prejudice" endures as a timeless masterpiece, captivating the hearts and minds of contemporary readers with its enduring tale of romance and resolution. Originally christened "First Impression" upon its initial publication in 1796, the novel underwent a titular transformation to its current iconic moniker in 1813. Austen's literary oeuvre, often described as comprising mere "two inches of ivory," intricately weaves narratives centered around fully realized female protagonists, renowned for their complexity and depth. Much like the novels of American luminary Henry James, Austen's works deftly navigate the intricate social tapestry of a narrow segment of society, where characters serve as the primary agents propelling the narrative forward.

Austen's narrative technique draws inspiration from various literary traditions, seamlessly blending elements of Restoration-era comedy of manners with the epistolary form popularized by Samuel Richardson. Moreover, traces of Romanticism subtly permeate the text, adding layers of depth and complexity to the overarching themes. "Pride and Prejudice" serves as a poignant reflection of the socio-cultural milieu of the Victorian era, offering a window into the lived experiences of women within a patriarchal society. Central to Austen's exploration is her nuanced portrayal of female characters, notably exemplified through the indomitable spirit of Elizabeth Bennet and her sisters. Through their trials and tribulations, Austen deftly navigates the intricate web of societal expectations, class dynamics, and the institution of marriage, challenging conventional notions of femininity and advocating for individual agency and autonomy. By scrutinizing Austen's depiction of women, this essay seeks to unravel the layers of complexity inherent in her feminist discourse, shedding light on the enduring struggles and triumphs of women in a society that often seeks to constrain their aspirations and curtail their freedoms.

Contextualizing Women in Jane Austen's Historical Era: Within the historical milieu surrounding women in Jane Austen's era, it becomes imperative to delve into the intricate tapestry of societal conventions and gender dynamics that profoundly influenced their lived realities. Austen's early literary endeavors, meticulously examined in the dissertation authored by (Hunt et al.), not only unveil her nascent feminist convictions but also underscore her palpable discontentment with the entrenched status quo endured by women of her time. These literary juvenilia, serving as precursors to her more mature literary endeavors, not only enrich the feminist discourse of the

epoch but also align Austen with the radical ideologies espoused by pioneering thinkers such as Mary Wollstonecraft.

Moreover, as elucidated by the scholarly discourse led by (Valentinova Georgieva et al.), Austen's celebrated novels, including the perennial favorite "Pride and Prejudice," serve as veritable repositories of insight into the prevailing matrimonial customs and societal norms governing courtship rituals within her social milieu. Through meticulous analysis of Austen's oeuvre against the backdrop of societal expectations and the constricting constraints imposed upon women, we are afforded a profound opportunity to unravel the intricacies of female representation within her literary corpus, particularly within the seminal framework delineated in "Pride and Prejudice."

Portrayal of Female Characters in "Pride and Prejudice": In scrutinizing the portrayal of female characters within "Pride and Prejudice," the adaptations and reimagining's of the original text wield significant influence in shaping the narrative depiction of women. Through an intricate examination of costume adaptations and reinterpretations in media platforms, exemplified by the acclaimed 1995 BBC mini-series and the 2005 cinematic rendition of "Pride and Prejudice," it becomes apparent that adapters exercise deliberate discernment in modifying female characters to imbue the narrative with feminist motifs. Nevertheless, as underscored by analyses of adaptations of literary works such as "Lolita" and "Sense and Sensibility," there exists a palpable peril in such revisions potentially diluting the resilience and autonomy of the original female personas.

The juxtaposition between Austen's authentic portrayals and the adapted characters in renditions like "Pride and Prejudice and Zombies" serves to accentuate the variances in cultural values and perceptions of femininity and fortitude. This exploration into the depiction of female characters in "Pride and Prejudice" unveils the intricate interplay between adaptation, representation, and the preservation of the innate robustness of Austen's female protagonists within the evolving narrative milieu.

Social Norms and Limitations Encountered by Women in the Narrative: Within Jane Austen's literary tapestry "Pride and Prejudice," the motif of societal expectations and the constrictions imposed upon women are intricately interwoven, constituting a fundamental thematic underpinning of the narrative. Through a meticulous examination of critical discourses pertaining to the portrayal of women in literature, particularly within the context of domesticity and prevailing societal norms, Austen engenders a rich and multifaceted exploration of the trials encountered by female protagonists such as Elizabeth Bennet and her siblings. Austen's narrative canvas serves as a reflective mirror to the intricate complexities inherent in navigating a society wherein gender roles and societal expectations are rigidly demarcated, thereby echoing the broader discourse surrounding gender dynamics prevalent within the literary canon.

As evidenced by scholarly inquiries into women's experiences in leadership roles and the nuanced interplay between gender, entrepreneurship, and leadership dynamics (cite6), Austen's rendering of the social panorama in "Pride and Prejudice" unveils the myriad pressures weighing upon women as they endeavor to conform to societal dictates whilst simultaneously endeavoring to challenge them. This thematic exploration reverberates harmoniously with the broader discourse concerning the construction of femininity and the negotiation of societal expectations within literary narratives (cite5), thus underscoring the seminal significance of Austen's oeuvre in elucidating the myriad constraints encountered by women in traversing the labyrinthine corridors of social hierarchies and societal expectations within the novel's thematic framework.

Conclusion: In summation, Jane Austen's "Pride and Prejudice" presents a rich and intricate portrayal of women amidst the backdrop of the Regency era. Through the captivating personas of characters like Elizabeth Bennet, Jane Bennet, and Charlotte Lucas, Austen skillfully challenges conventional gender paradigms, offering discerning insights into the myriad challenges and opportunities confronting women within society's confines. The novel eloquently underscores the significance of intellect, astuteness, and tenacity in negotiating the intricate web of societal expectations while striving for personal fulfillment. Moreover, Austen's deft exploration of themes such as matrimonial unions, social class dynamics, and individual autonomy imbues the female characters with a profound sense of depth, revealing their innate strengths and vulnerabilities within the patriarchal milieu of their time. In essence, "Pride and Prejudice" emerges as a timeless testament to the intricacies of womanhood, weaving a captivating narrative tapestry that continues to captivate and resonate with contemporary audiences.

References:-

1. Turner, Helen, "Defining the Home from Chopin to McCarthy".
2. Ahl, Aidis, Al Dajani, Babalola, Bandura, Baron, Bass, Baum, Bendassolli, Bennett, Bernard, Bhuiyan, Bjerke, Boal, Bourne, Bruin, Brush, Campbell, Chandler, Charmaz, Choi, Cogliser, Corbett, Daily, Datta, Davis, Den Hartog, Drucker, Dzisi, Eagly, Eddleston, Ehrlich, Elliott, Ensley, Erikson, Fairhurst, Foss, Franco, Gaglio, Garcia, Gilligan, Grant, Guest, Gundry, Hargittai, Heckathorn, Helgesen, House, Hughes, Hutchinson, Idris, Ireland, Izyumov, Jamali, James, Jennings, Jensen, Kakabadse, Karataº-Özkan, Katz, Kennedy, Kirkwood, Kobia, Kolb, Kotter, Kreiser, Kroeck, Kuratko, Lee-Gosselin, Leitch, Lewis, Lipman-Blumen, Lord, Lowe, Luthans, Maak, Matzler, McKie, Miles,

Mirchandani, Moore, Mumford, Nicolopoulou, Osborn, Patton, Pech, Phillips, Pless, Renko, Rosener, Saldana, Schacter, Schein, Schumpeter, Scott, Sevä, Shabbir, Shane, Shinnar, Smirnova, Stewart, Strauss, Tatli, Teal, Thomas, Thornberry, Timmons, Tlaiss, Van Emmerik, Wee, Werner, Youssef-Morgan, Zhu, Özbilgin, "A gender perspective on entrepreneurial leadership:female leaders in Kazakhstan", 2017

3. Hunt, Sylvia, "Hoydens, Harridans, and Hyenas in Petticoats : Jane Austen's Juvenilia and their contribution to eighteenth-century feminist debate", 2008
4. Valentinova Georgieva, Ilianka, "The Marriage Politics in Jane Austen's Novels: Emma, Pride and Prejudice and Sense and Sensibility", 2018
5. DuChene, Courtney A, Ms., "Rewriting Women: A Feminist Examination of Lolita\u27s and Pride and Prejudice\u27s Costume and Revisionist Adaptations", 2019
6. McCoy, Rachel, "Strong Female Characters: Jane Austen\u27s vs. The Mashups\u27", 1979
7. DuChene, Courtney A, Ms., "Rewriting Women: A Feminist Examination of Lolita\u27s and Pride and Prejudice\u27s Costume and Revisionist Adaptations", 2019
8. "Evolution of a heroine: from Pride and prejudice to Bridget Jones's diary.", 2004

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

भारत में महिलाओं के विरूद्ध अपराध : एक सॉख्यकीय अध्ययन

विनोद कुमार तिवारी*

* सहायक प्राध्यापक, एम.बी.खालसा लॉ कालेज, इंदौर (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – प्रत्येक मनुष्य स्वतंत्रता की कामना करता है, किंतु जन्म से जीवन के प्रत्येक पग पर परिस्थितियॉ उसकी स्वतंत्रता में व्यवधान उत्पन्न करती है। अपनी परतंत्रता का ज्ञान होने पर वह स्वतंत्र रूप से जीवन यापन का अधिकार चाहता है। पुरूष की तुलना में महिलाओं परतंत्रता ज्यादा, स्वतंत्रता कम होती है। जबकि परिवार की खुशहाली एवं शांति हेतु महिला की स्वतंत्रता ज्यादा महत्व रखती है क्योंकि **'यदि महिला खुश तो घर खुशहाल'** होता है। अत: नारी के बहुमुखी विकास के लिए उसे पूर्ण स्वतंत्रता का अधिकार मिलना अत्यंत आवश्यक है।

भारतीय समाज में महिलाएं एक लम्बे समय से अवमानना, यातना और शोषण का शिकार रही है, समाज की प्रथाओं, रीति–रिवाजों ने महिलाओं के उत्पीडन को ओर बढाया है, जिसका मुख्य कारण भारतीय समाज में पुरूषों की प्रधानता है। समाज में महिलाओं के उत्पीडन महिलाओं के प्रति अपराधों को रोकने के लिए भारत में बनाये गये कानूनों, महिला शिक्षा व्यवस्था एवं महिलाओं की आर्थिक प्रगति के उन्नयन हेतु बनायी गई योजनाओं के बाबजुद भी, महिलाओं से छेडछाड, बलात्कार, यौनशोषण उत्पीडन, दहेज, घरेलु हिंसा आदि अपराध आज भी हो रहे है तथा आकडे बताते है इनका ग्राफ बढ रहा है। मानव संसाधन मंत्रालय के महिला एवं बालविकास विभाग के एक प्रतिवेदन के अनुसार भारत में प्रत्येक 54 मिनिट में एक महिला का बलात्कार, 51 मिनिट में छेडछाड, 16 मिनिट में बदसलूकी तथा 101 मिनिट में दहेज के कारण हत्या होती है। इस शोध पत्र के माध्यम से महिलाओं के प्रति घरेलु हिंसा एवं अपराधों का अध्ययन किया गया है।

शब्द कुंजी – अपराध, हिंसा, उत्पीडन, दहेज, कनूनी संरक्षण।

प्रस्तावना – भारत में आपराधिक विधि के अन्तर्गत स्त्री तथा पुरूष दोनों के शरीर स्वास्थय तथा सम्पत्ति की सुरक्षा संबंधी प्रावधान संहिताबद्ध किये गये हैं परंतु महिलाओं के संबंध में कुछ विशिष्ट प्रावधान भी दिये गये है, जो कि सिर्फ महिलाओं को ही प्राप्त है तथा ऐसा उनकी विशिष्ट स्थिति को ध्यान में रखते हुए किया गया है तथा कुछ प्रावधान बाद में शामिल किये गये जिसका उद्देश्य महिलाओं को घरेलु हिंसा से बचाना है। इस संबंध में कुछ विशिष्ट प्रावधानों जैसे भ्रुण हत्या, बलात्कार एवं किसी स्त्री के पति या नातेदार द्वारा उसके प्रति क्रुरता का उल्लेख किया जा सकता है।

भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत महिलाओं के विरूद्ध विभिन्न प्रकार के अपराधों को परिभाषित करते हुए उन्हें रोकने हेतु दण्डात्मक प्रावधान किये गये है।

भारत में घरेलु हिंसा से महिलाओं को संरक्षण प्रदान करने हेतु 2005 में घरेलु हिंसा से संरक्षण अधिनियम पारित किया गया। इसका उद्देश्य महिलाओं के साथ किसी भी तरह के भेदभाव को समाप्त करना तथा उनके मानवाधिकारों की सुरक्षा करना है। जहाँ महिला घर से बाहर अपने आप को असुरक्षित पाती है। वहीं परिवर्तित परिवेश में वह अपने आपको घर के अंदर भी असुरक्षित महसूस करती है। तथा कई अवसरों पर वह अपने घर के सदस्यों अपने पति द्वारा तथा पति के रिश्तेदारों द्वारा भी प्रताडना का शिकार होती रहती है।

भारतीय संविधान में नारी–पुरूष, अमीर–गरीब, शिक्षित–अशिक्षित सभी को समान सुरक्षा प्रदान की गई है, स्त्री पुरूष सभी को समाजिक, आर्थिक प्रथा राजनीतिक न्याय देने का आश्वासन दिया गया है। संविधान के अनुच्छेद 14 के द्वारा कानून के समक्ष समानता तथा कानून का समान संरक्षण सभी को प्राप्त हैं। अनुच्छेद 15 (3) में महिलाओं एवं बच्चों को कुछ विशेष सुविधा प्रदान की गई है, क्योंकि महिलाओं एवं बच्चों की स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण विशेष संरक्षण की आवश्कता होती है।

अनुच्छेद 21 के अनुसार किसी व्यक्ति को उसकी प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता से (चाहे महिला हो या पुरूष) विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के बिना वंचित नहीं किया जा सकता है तथा सभ्य समाज में महिलाओं को भी यह अधिकार है कि वे गरिमामय जीवन जी सके।

महिलाओं के विरूद्ध होने वाले अपराध :– महिलाओं के खिलाफ अपराध विभिन्न प्रकार के होते है जैसे– वैश्यावृत्ति, तरस्करी, दहेज हत्या, बलात्कार, हमला, सामूहिक बलात्कार, कार्य स्थल पर उत्पीडन, एसिड हमला, अपहरण, आर्थिक लाभ के लिए यौन संबंध से जुडे अपराध आदि।

बलात्कार :– भारत में महिलाओं के खिलाफ बलात्कार चौथा सबसे आम अपराध है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरों (NCRB) की 2021 की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार देशभर में 31677 बलात्कार के मामले दर्ज किये गये अर्थात औसतन प्रतिदिन 86 महिलाओं के साथ बलात्कार हुआ।

एनसीआरबी 2021 के आकडों के अनुसार राजस्थान में सर्वाधिक बलात्कार की घटनाए दर्ज की गई उसके बाद मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश का स्थान है। मेट्रो पालिटन शहरों में कोलकत्ता में बलात्कार के सबसे कम मामले दर्ज किये गये यहां बलात्कार की दर दर सबसे कम है।

2021 में किये गये एक नमूना सर्वे के आधार पर ह्यूमन राइट्स वॉच का अनुमान है कि भारत में हर साल 7200 से अधिक नाबालिगों (Minors)

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

के साथ बलात्कार किया जाता है।

वेश्यावृत्ति :- भारत को दुनिया के सबसे बडे व्यवसायिक 'सेक्स उद्योग' में से एक माना जाता है। भारत में सेक्स उद्योग अरबों डालर का है और सबसे तेजी से बढने वाले उद्योगों में से एक है। दैनिक भास्कर 28/05/2022 की रिपोर्ट के अनुसार भारत में 28 लाख से अधिक लडकिया वेश्यावृत्ति के पेशे में है। हमारे देश में वैश्यावृत्ति और कनूनी नहीं है, लेकिंन इसके लिए किसी को फोर्स करना और सार्वाजनिक वेश्यावृत्ति करना गैर कानुनी है। वेश्यालय का मालकाना हक भी अवैध है।

तस्करी :- महिलाओ और बच्चियों की तस्करी भारत में दूसरा सबसे बड़ा मानवाधिकार संबंधीत अपराध है। भारत में खास तौर से उत्तरपूर्वी राउयों की छोटी लड़कियों एवं युवा महिलाओं को एजेंट द्वारा उनके माता-पिता, संबंधियों को उनकी बेहतर पढ़ाई, नौकरी और पैसों का लालच देकर लाया जाता है, इसके बाद उन्हें धोखें से बंधुआ मजदूरी एवं यौन शोषण के लिए बेच दिया जाता है।

गैर सककारी संगठनल गेम्स 24/7 और कैलाश सत्यार्थी चिल्ड्रेन्स फाउडेशन (KSCF) द्वारा किये गये अध्ययन से भारत में बाल तस्करी के बारे में चौकाने वाले आकड़े सामने आये है प्री कोविड से वोस्ट कोविड लड़कियों की तस्करी के आकड़ो में इजाफा हुआ है।

(NCRB) के आकाड़ो के मुताबिक 2020 से 2022 तक में वेश्यावृत्ति के लिए की जा रही महिलाओं की तस्करी के आकड़ो में 24% का इजाफा हुआ है। 2020 में जहां 1714 मामले दर्ज हुए थे तो 2022 में बढ़कर 2,250 हो गये।

छहेज हत्या :- हमारे देश में दहेज की प्रथा का आज भी प्रचलन है। सरकार द्वारा तमाम नियम कानुन बनाये जाने के बाद भी दहेज प्रकरण कम नहीं हो रहे है और आये दिन देश में रोज दहेज हत्याए हो रही है (NCRB) के रिपोर्ट के अनुसार 2017 से 2021 के बीच प्रतिदिन करीब 20 दहेज हत्याए दर्ज की गई है। 2017 से 2021 के बीच देश में 35,493 दहेज हत्याए हुई।

कन्या भ्रूण हत्या :- केन्द्र सरकार के आकड़ो पर आधारित व्यू रिसर्च सेंटर के एक सोध वर्ष 2000 से 2019 में कम से कम 9 मिलियन महिलाओं की भ्रुण हत्या की गई। शोध में पाया गया की इनमें से 86.7% भ्रुण हत्याए हिन्दुओं द्वारा इसके बाद 4.9% भ्रुण हत्या सिखों द्वारा तथा 6.6% भ्रुण हत्या मुसलमानों द्वारा की गई है। 2023 में हुए एक अध्ययन के अनुसार 8000 गर्भपात में से 7997 गर्भपात कन्या भ्रुण पर किये गये है।

बाल विवाह :- 2023 में हुए एक अध्ययन के अनुसार भारत में दस वर्ष से कम उम्र की बच्चियों के 7.84 मिलियन बाल विवाह हुए।

एसिड अटैक :- NCRB के आकड़ो के अनुसार भारत में 2019 में 150 वर्ष 2020 में 105 और वर्ष 2021 में 102 मामले एसिड अटैक के दर्ज किये गये।

महिलाओं का अपहरण :- भारत में 2022 के दौरान 21,278 पुरूषों 88,861 महिलाओं और 01 ट्रास्जेन्डर सहित कुल 1,10,140 लोगों के अपहरण रिपोर्ट किये गये। जिनमें से 1 गृह मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुसार 2019 से 2021 तक 13 लाख से अधिक लड़किया गायब हुई। जिनमें से 18 साल से अधिक उम्र की 10,61,648 लड़कियां 18 साल तक उम्र वाली 2,51,430 लड़किया शामिल है।

भारत के राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरों के अनुसार 2022 के दौरान भारत में महिलाओं के खिलाफ अपराधों में 4% वृद्धि दर्ज की गई है। इसमें पतियों और रिश्तेदारों द्वारा क्रूरता, अपहरण हमलो और बलात्कार के मामले शामिल है, 2020 में जहां महिलाओं के खिलाफ 3,71,503 मामले दर्ज हुए थे जो 2022 में बढ़कर 4,45,256 हो गये।

2023 की रिपार्ट में बताया गया है कि भारतीय दण्ड संहिता (I.P.C.) के तहत महिलाओं, के खिलाफ अपराधों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा पति या रिश्तेदारों द्वारा क्रुरता 31.4% महिलाओं का व्यपहरण और अपहरण 19.2% महिलाओं पर हमला, शीलभंग करने का इरादा 18.7% और बलात्कार 7.1% प्रतिलाख जन संख्या पर, अपराध दर 2021 में 64.5% थी जो 2022 में 66.4% हो गई है।

निष्कर्ष - महिलाओं के खिलाफ अपराध एक वैश्विक घटना है और अपराधों के लिखाफ कदम उठाना और महिलाओं की सुरक्षा करना समय की मॉग है। हमारे समाज में महिलाओं को सुरक्षित महसूस कराना प्रत्येंक नागरिक की जिम्मेदारी है। गरिमापूर्ण एवं सम्मानित जीवन जीना प्रत्येक महिला का अधिकार है। महिलाएं सिर्फ मॉ, बहिन, बेटी नहीं है वे अपनी महत्वपूर्ण भूमिकाओं और कर्तव्यों के कारण हमारे समाज का मूल्यवान हिस्सा है। भारत में महिलाओं की सुरक्षा हेतु तमाम कानूनी प्रयास किये जा रहे है फिर भी वर्तमान आकड़ो से दर्शित होता है कि महिलाओं के प्रति अपराधों का ग्राफ बढ़ रहा है।

अत: कानूनी प्रावधानों का सम्यक रूप से ईमानदारी पूर्ण किया चयन होना चाहिए तभी हमारे देश में महिलाओं के विरूद्ध अपराध विशेष रूप से यौन अपराधों में कमी आयेगी। साथ ही महिला सशक्तीकरण को और बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सूर्य नाराण मिश्रा - भारतीय दण्ड संहिता
2. जे. एन. पाण्डे - भारत का संविधान
3. डॉ. बसंती लाल बाबेल - भारतीय दण्ड संहिता
4. NCRC रिपोर्ट- 2023
5. en.m.wikipedia.law
6. www.leadindia.law
7. https://medicamondiale.org

****

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

भरतपुर परिक्षेत्र की संस्कृति एवं पर्यटन

डॉ. निमेश कुमार चौबीसा* रोहित सिंह**

* सहायक आचार्य, एस.बी.पी. राजकीय महाविद्यालय, डूंगरपुर (राज.) भारत
** शोधार्थी (इतिहास) गोविन्द गुरू जनजातीय विश्वविद्यालय, बांसवाडा (राज.) भारत

प्रस्तावना – महामहिम पंडित राहुल सांस्कृत्यायन के अनुसार मानव एक जंगम प्राणी है। अपने अविर्भाव के प्रारम्भ से ही उसकी प्रकृति घुमक्कड़ी रहती है।[1] उसकी यही प्रवृत्ति वर्तमान परिदृश्य में पर्यटन शब्द से संबोधित की जाती है। आज पर्यटन का प्रयोग न केवल मनोरंजन के लिए अपितु विभिन्न देशों की अर्थव्यवस्था को आधार प्रदान करने वाले तत्व के रूप में किया जाता हैं। वर्तमान में पर्यटन का महत्व कई स्वरूपो में दृष्टिगत होता है। प्राकृतिक सौन्दर्य के दर्शन के साथ-साथ मानवीय कला कौशल के अद्वितीय स्वरूपों का परिचय प्रदान करने में पर्यटन सहायक है।

भारत के पर्यटन मानचित्र पर राजस्थान का अपना महत्व है। प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में पर्यटक राजस्थान में पर्यटन के उद्देश्य से आवागमन करते हैं। अपनी प्रारम्भिक स्थिति से वर्तमान स्वरूप प्राप्त करने की यात्रा से राजस्थान को सात संभागों में विभाजित किय गया है।[2] राज्य का प्रत्येक संभाग पर्यटन की दृष्टि से अद्वितीय स्थान रखता है। उक्त संभागों में उदयपुर, अजमेर, जयपुर, कोटा, जोधपुर, बीकानेर और भरतपुर की मुख्य भूमिका है। राज्य का भरतपुर परिक्षेत्र पर्यटन की दृष्टि से अत्यन्त धनी प्रदेश है।

राजस्थान का भरतपुर जिला रियासत काल में भरतपुर राज्य की राजधानी रहा है। इस राज्य की स्थापना राजा दशरथ के दूसरे पुत्र भरत के नाम पर हुई थी। इस राज्य के शासक एवं वंशज भरत के छोटे भाई लक्ष्मण की पूजा करते थे और उनका नाम मुद्राओं, हथियारों एवं महत्वपूर्ण दस्तावेजों पर अंकित किया करते थे।[3] वर्तमान भरतपुर जिला जिसे राजस्थान का पूर्वी प्रदेश द्वार के उपनाम से संबोधित किया जाता है। स्वयं में कई महत्वपूर्ण भौगोलिक परिदृश्य संजोए हुए है। जिले में कुछ भाग को मेवात प्रदेश के नाम से भी संबोधित किया जाता है।

भरतपुर जिले को राजस्थान का पूर्वी द्वार के नाम से संबोधित किया जाता है। राज्य के ब्रज क्षेत्र के राजधानी दिल्ली से लगभग 180 कि.मी. की दुरी पर स्थित है। भौगोलिक दृष्टि से यह जिला 26°22' से 27°83' उत्तरी अंक्षाश एवं 7653 से 7817 पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है।[4] जिले का गठन भूतपूर्व देशी रियासत भरतपुर से ही सम्पन्न हुआ है। भरतपुर जिला राजस्थान राज्य के कुल क्षेत्रफल के 1.48 प्रतिशित भू-भाग लगभग 5066 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में विस्तृत है।[5] सामान्यत: भरतपुर जिला राजस्थान का लगभग मैदानी जिला माना जाता है। जिसके उत्तरी एवं दक्षिणी भागों में कहीं-कहीं अरावली पर्वतमाला की पहाड़ियाँ विस्तृत दिखाई देती हैं। जिले की सीमा उत्तर से गुड़गाँव (हरियाणा), पूर्व में मथुरा और आगरा (उत्तर प्रदेश) दक्षिण में मुरैना (मध्यप्रदेश) और राजस्थान के धौलपुर जिले से मिलती है। राज्य के करौली और अलवर जिले इसका सीमांकन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।[6]

भरतपुर की संस्कृति–विभिन्न देशों, राष्ट्रों, जातियों, सभ्यताओं, महापुरुषों, संस्कृतियों, रहस्यों और उनकी उपयोगिता के सार्थक विवेचन के लिए इतिहास महत्वपूर्ण साधन है। प्राचीन सभ्यता और संस्कृति इस तथ्य की प्रधान परिचायक रही है कि मानवीय जीवन का प्रत्येक घटनाक्रम किसी न किसी स्थान पर घटित हुआ है। अत: प्रत्येक शोध कार्य की उपादेयता हेतु उसे क्षेत्र की भौगोलिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का अवलोकन अनिवार्य हो जाता है।

राजस्थान के भरतपुर जिले की सांस्कृतिक परम्पराऐं और विरासत अत्यन्त प्राचीन है। राजस्थान का पूर्वी प्रवेश द्वार कहे जाने वाले भरतपुर परिक्षेत्र पर जाट राजपूत, मराठा और मुस्लिम शासकों सहित कई राजा-महाराजाओं के शासन का प्रभाव रहा है। परिणामस्वरूप यहां के सांस्कृतिक रीति-रिवाजों, भाषा, कला, वास्तुकला में व्यापक विविधताऐं पाई जाती है। यहाँ की संस्कृति अत्यन्त व्यापक और समृद्ध है। जिसमें सम्पूर्ण भारतीय सांस्कृतिक परिदृश्य विशेषत: बृज संस्कृति में इतिहास को अद्वितीय स्थान प्राप्त है। ज्ञान भंडार के विभिन्न विषयों में इतिहास ऐसा प्रधान विषय है। जिसके बिना मानव जाति अपनी उन्नति में असमर्थ है।

संस्कृति से अभिप्राय – मनुष्य अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए प्राय: विभिन्न विधियों, प्रविधियों, उपकरणों रीति-रिवाजों और प्रभावों को जन्म देता है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होते रहते हैं। इन्हीं सब तत्वों के योग को संस्कृति शब्द से संबोधित किया जाता है। अन्य अर्थों में 'संस्कृति मनुष्य द्वारा अर्जित किया गया वह व्यवहार है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होता रहता है।'

व्यक्ति का संबंध समाज और संस्कृति के साथ समान रूप से है। मानव व्यवहार में समाज और संस्कृति दोनों का महत्वपूर्ण आधार है। इस प्रकार व्यक्ति समाज और संस्कृति तीनों एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित हैं। एक व्यक्ति का समग्र विकास समाज और संस्कृति दोनों से प्रभावित होता है। अत: स्पष्ट है कि जहाँ समाज का सामुहिक जीवन मानव के व्यवहार को प्रभावित करता है वहीं संस्कृति के नियम विधान मानव व्यवहार को दिशा प्रदान करते है।[7]

संस्कृति की परिभाषाएँ –समय-समय पर संस्कृति को विभिन्न विद्वानों द्वारा अलग-अलग अर्थों में परिभाषित किया गया है।

श्री.कून के अनुसार : 'संस्कृतिक उन विधियों का समुच्चय है, जिसमे

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 7.671
January to March 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLV

मनुष्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक सीखने के कारण रहता है।'

हाबल के अनुसार : 'संस्कृति सीखे हुए व्यवहार और प्रतिमानों का कुल योग है।'

बोगार्डस के अनुसार : 'संस्कृति किसी समूह के कार्य करने और विचार करने की समस्त रीतियों को कहते है।'

रेडफील्ड के अनुसार : 'संस्कृति कला और उपकरणों में उपस्थित परम्परागत ज्ञान का वह संगठित रूप है जो परम्परा के द्वारा संरक्षित होकर मानव समूह की विशेषता बन जाता है।'[8]

प्रायः समाज एवं संस्कृति में परस्पर सौहार्दपूर्ण मधुर और आध्यात्मिक संबंध होता है। जिसमें सामाजिक रीति-रिवाज किसी भी क्षेत्र के समाज की सांस्कृतिक दशा के निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान देते है। भरतपुर का सामाजिक संगठन मुख्यतः जाट राजपूत समुदाय से संबंधित था। यह सर्वविदित है कि जाट एक जाति नहीं होकर एक जीवित संस्कृति रही है। जिसका पल्लवन पोषण अतीत से वर्तमान तक सिंध और गंगा, यमुना के दोआब में मुख्यतः विस्तृत रहा है।[9] जिससे जाट संस्कृति के सभी मानवीय तत्व और रीति-रिवाज समाहित होते हैं। भरतपुर परिक्षेत्र के सामाजिक परिदृश्य में गुर्जर, अहीर, डूंग-कबीला, डागुर, पूनिया, भैनवार, चौधरी, सिनसिनवार, सोगरवाल, खूटेल, इंदौलिया आदि गौत्रों के जनसमुदाय समाहित हैं। भरतपुर राज्य के विकास में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र सभी वर्गों द्वारा अमित योगदान दिया गया। जिसके फलस्वरूप वर्तमान में भी कई वंशों के वंशजों के नाम पर यहां पुरोहित मोहल्ला, सुनार गली, लवानियाँ मोहल्ला, गुर्जर मोहल्ला, कसाई गली (कायस्थ मोहल्ला) बड़ा मोहल्ला आदि मौजूद है। इसी प्रकार कुछ महत्वपूर्ण व्यक्तियों के नाम पर भी स्थानों के नाम दृष्टिगत होत है। जैसे वीरनारायण के नाम पर बी-नारायण गेट (वीर नारायण नागा साधु के नाम पर)[10] गोपालसिंह के नाम पर गोपालगढ़ आदि।

भरतपुर परिक्षेत्र में सामाजिक-सांस्कृतिक उत्सव कार्यक्रम क्षेत्र विशेष के समाजों में पारिवारिक अवसरों पर सामूहिक रूप से मनाये जाने वाले सामुदायिक उत्सव होते हैं। जिनमें वहाँ की संस्कृति की झलक दिखाई देती है। मानव को इसके अतीत एवं पूर्वजों से आबद्ध रखने में रीति-रिवाज प्रत्यक्ष साधन होते हैं। इस दृष्टि से भरतपुर परिक्षेत्र की संस्कृति में ही नहीं वरन् भारतीय संस्कृति में भी इनकी अहम् प्रधान भूमिका है। भरतपुर परिक्षेत्र की संस्कृति यहाँ के रीति-रिवाजों, उत्सवों और विविध कार्यक्रमों यथा-जन्म, सोभड़[11], छठी पूजन, सतमासा पूजन[12], नामकरण, लटूरिया (मुण्डन) दस्टोन (कुआँ पूजन)[13], विवाह[14] गोदभराई रातिजगा, भात आदि आयोजित किए जाते है। जो क्षेत्र विशेष की सामाजिक संस्कृति के परिचायक है। भरतपुर परिक्षेत्र में सभी सामाजिक उत्सवों पर अनेक प्रकार के गीत गाने का प्रचलन रहा है। यहाँ लगभग प्रत्येक सामाजिक उत्सव पर पृथक-पृथक गीत गाये जाते है जो क्षेत्र विशेष के सांस्कृतिक ताने-बानें को प्रदर्शित करते हैं। कुछ प्रमुख उत्सवों पर गाये जाने वाले गीत इस प्रकार हैं -

1. **सोभड+ के गीत**

'आज महलों के बीच जच्चा ने सोर कियौ।
आवौ आवौ, सासु मेरी आवौ।।
मेरी सवारि के बीच चरूआ धराऔ आवौ, आवौ।
दाई री मेरी आवौ, नेंक हँसिक नारू कटावौ।।'[15]

2. **छठी पूजन**

'तेरे हाथ झुंझुना लाल रे।
बाबा के प्यारे खेलिरे, ताऊ के प्यारे खेलिरे।।
तेरी दादी खिलावै तू खेलिरे, तेरी ताई खिलावै तू खेलिरे।
तेरे फूफा लाए झुंझना, तेरी भूआ खिलावै तू खेलि रे।।'[16]

3. **भात के गीत**

'एरी सासू चलौ नौंति आमें भातु।
भात के मूडे देखी आवे जूनागढ़ के रूख।।
मैरा भईया नाओ-नाओ भतीजौ बाकी गौद कौन के न्योति आमे भातु।
मेरो बाबुल जोगी, जोगी बजावै हटतार।।'[17]

4. **रातजगा (रात्रिजागरण) के गीत**

'आगरे की गैल में लम्बों पेड़ खजूर।
बापै चढ़िके देखती मेरो बालम कितनी दूर।।
गैल भरतपुर बीच में परयो भुजंगी नाग।
खा लई होती बच गई व छैला के भाग।'[18]

उपरोक्त गीतों के अतिरिक्त भरतपुर परिक्षेत्र की सामाजिक संस्कृति के वाहक गीत में अन्य कई उत्सवों के गीत सम्मिलित है। जैसे - विदाई के गीत, हल्दी की रस्म के गीत, कंगन डोरे के गीत, लटूरिया के गीत, गोदभराई के गीत आदि।

संस्कृति का प्रतिबिम्ब धर्मोपासना में भी दृष्टिगत होता है। जो कला एवं साहित्य के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति करती है। भरतपुर परिक्षेत्र की धार्मिक संस्कृति राजस्थानी और ब्रज संस्कृति का सम्मिश्रण है। यहाँ की धार्मिक संस्कृति यहाँ के देवालयों, धार्मिक उत्सवों, ब्रज परिक्रमाओं, रासलीलाओं में दृष्टिगत होती है। भरतपुर परिक्षेत्र का समाज उत्सव प्रिय समाज है। अतः यहाँ की सांस्कृतिक चेतना अत्यन्त प्रबल है, यही कारण है कि भरतपुर की धार्मिक संस्कृति अधिक सजीव एवं सम्पन्न है।

भरतपुर परिक्षेत्र के धार्मिक स्वरूप का परिदर्शन वहाँ की धार्मिक मान्यताओं, उत्सवों, कार्यक्रमों, रीति-रिवाजों में स्वतः ही हो जाता है। इस क्षेत्र के धार्मिक स्वरूप का उल्लेख विविध माध्यमों जैसे - अभिवादन मांगलिक कृत्य, आदि में दृष्टिगत होता है। इस क्षेत्र में अभिवादन का नया वाक्य 'राम-राम साहब' महाराजा सूरजमज द्वारा प्रारंभ किया गया जो आज भी समाज के लगभग सभी वर्गों द्वारा अपनाया जाता है।[19]

भरतपुर ब्रज संस्कृति से ओत-प्रोत क्षेत्र है, साथ ही यहाँ की लोक संस्कृति यहाँ के धार्मिक उत्सवों त्यौहारों, मेलों में दृष्टिगोचर होती है। इससे संबंधित एक लोकोक्ति क्षेत्र में प्रसिद्ध है कि 'सात बार नौ त्यौहार'।[20] यहाँ प्रत्येक ऋतु में कई उत्सवो का आयोजन होता है। जिनमें बसंतोत्सव, शिव चौदस, होली, देवीपूजन, (करौली की कैला माता), टेसू और सांझी पुजन, गंगा दशहरा, विजयादशमी, रामलीला, दीपावली, गोवर्धन पूजा, देव उठनी ग्यारस, गणगौर आदि उल्लेखनीय है जो क्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत को प्रदर्शित करते है।

भरतपुर परिक्षेत्र में मौजूद विभिन्न हिन्दू सम्प्रदायों के देवालय क्षेत्र की धार्मिक संस्कृति का एक महत्वपूर्ण पक्ष हैं यहाँ कई सम्प्रदायों का विस्तार और विकास हुआ। जिनमें रामानंदी समुदाय, वल्लभ सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय उल्लेखनीय है। सभी सम्प्रदायों से संबंधित अनेक धार्मिक स्थल क्षेत्र में आज भी अस्तित्व में है। भरतपुर की धार्मिक संस्कृति में मुस्लिम प्रभाव भी देखने को मिलता है। यहाँ कई मुस्लिम पीर दरवेशों की दरगाहें

आज भी मौजूद है। जिनमें मीर मुहम्मद पनाह, दलखाँ उर्फ दल्ला मेव दरगाह, अली आजम की दरगार, मीर पतासा दरगाह सैय्यद पीर अली आदि। उक्त विवरण से भरतपुर परिक्षेत्र के समन्वयवादी दृष्टिकोण के प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त होते है।[21]

लोक संस्कृति के सुदृढ़ संवाहक क्षेत्र विशष के मेले होते हैं। जिनमें क्षेत्र की लोक संस्कृति के चहूंमुखी पक्षों के दर्शन होते है। मेले किसी भी क्षेत्र की आंचलिक लोक रंजन और सहिष्णुता के प्रत्यक्ष साक्ष्य होते है। भरतपुर परिक्षेत्र के इन मेलों में मुख्यत: जसवंत प्रदर्शनी, डीग की जवाहर प्रदर्शनी, कांमा का भोजनथाली मेला, झील के बाडे क़ा मेला, भरतपुर की मंगलहाट आदि उल्लेखनीय है।[22]

भरतपुर परिक्षेत्र बहुरंगी लोक संस्कृति का प्रत्यक्ष उदाहरण रहा है। जहाँ मानवीय जीवन के प्रत्येक अंग प्रत्यंग में राधा कृष्णन की रामलीला समाहित है। वहीं क्षेत्र में सामाजिक एवं समूहगत रूप से क्षेत्रीय लोक सांस्कृतिक आमोद-प्रमोद के बहुरंगी साधनों के रूप मे रसियाँ, स्वाँग, नौटंकी-भगत, ख्याल, बम वादन, ब्याहुलौ और जिकरी गायन आदि का प्रमुख स्थान है।[23]

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. राहुल सांस्कृत्यायन : घुम्मकड़ स्वामी, किताब महल इलाहबाद, दिल्ली, 2004, पृ. 1
2. गुप्ता मोहनलाल : भरतपुर संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2018, पृ. 10
3. सिंह जितेन्द्र : राजस्थान में पंचायती राज एवं भारतीय विकास भरतपुर जिले की सेवर पंचायत समिति की ग्राम पंचायतों के संदर्भ में अध्ययन कोटा विश्वविद्यालय 2019, पृ. 190, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध
4. राव कुँवर कनक सिह : धरोहर राजस्थान सामान्य ज्ञान, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2022 पृ. अ.27
5. व्यास कुलराज : जाट एवं मुगल ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक संबंध (18वीं सदी) भरतपुर धौलपुर के विशेष संदर्भ में कोटा विश्वविद्यालय कोटा, 2017, पृ .1
6. जिला सांख्यिकी की रूपरेखा 1971, भरतपुर जिला राजस्थान राज्य सांख्यिकी निदेशालय, राजस्थान, 1991
7. मुखर्जी, रविन्द्रनाथ, अग्रवाल भारत : 'समाजशास्त्र' एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन्स, आगरा 2015, पृ. 109-119
8. मीणा पप्पूराम : लोक संस्कृति की अवधारणा और राजस्थान का लोकजीवन, ज्योति पर्व प्रकाशन, दिल्ही, 2017, पृ. 17-25
9. कानूनगो, के.आर : जाटों का इतिहास, मयूर पैलेस लैक्स नोयड़ा, दिल्ली, 1996, पृ. 1-3
10. दीक्षित गोकुल चन्द्र : बृजेन्द्र वंश भास्कर, पृ. 183
11. सोभड़ : प्रसूता स्त्री के प्रसव को भरतपुर परिक्षेत्र में सोभड़ फैलने के नाम से पुकारा जाता है।
12. डॉ. गौरीशंकर सत्येन्द्र : साहित्य वानस्पति सेठ कन्हैयालाल : पौद्दार अभिनन्दन ग्रंथ, अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा, उत्तर प्रदेश, 1953, पृ. 913
13. टस्टोन - वस्तुत: यह जाति एटोम यज्ञ कहलाता है, जिसका भरतपुर परिक्षेत्र में आमजन 'दस्टोन' अपभ्रंश प्रचलित है।
14. विवाह : वैदिक सामाजिक व्यवस्थानुसार विवाह अनुलोम, प्रतिलोम दो भागों में वर्गीकृत थे। संगम साहित्य में विवाह के आठ प्रकारों का उल्लेख तोल्लकापियम् ग्रंथ से प्राप्त होता है।
15. गौरी शंकर सत्येन्द्र : पौद्दार अभिनन्दन ग्रंथ, अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा, उ.प्र 1953, पृ. 913
16. मधुकर मोहनलाल : बृज की कला अरू संस्कृति, शताब्दी ग्रंथ प्रकाशन हिंदी साहित्य समिति भरतपुर, 2011, पृ. 176
17. (i) बदनसिंह चौधरी : बृज के ब्याह गीत, कुन्ता प्रकाशन आगरा, उत्तर प्रदेश 2007, पृ 36
    (ii) विश्वास कुमार : ब्रज व कौरवी लोक गीतों में लोक चेतना वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2021 पृ. 73-123
18. कुम्हेरिया देवकीनन्दन : ब्रजलोक वैभर, राजस्थान ब्रज भाषा अकादमी, जयपुर, (राज.), 1997, पृ. 116
19. सिंह गंगी : हिंदी साहित्य अकादमी, भरतपुर, 2010, पृ. 106
20. शर्मा रामदास : ब्रज की कला अरू संस्कृति, राजस्थान ब्रज भाषा अकादमी जयपुर, 2011, पृ. 104
21. (i) दीक्षित सूर्य प्रसार एवं सतीश चन्द्र : ब्रज संस्कृति विश्वकोश खंड - 2, भाग - 1, ब्रज के सम्प्रदाय, वृन्दावन शोध संस्थान, 2018 के विविध पृष्ठ
    (ii) मित्तल पीडी : ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 165-175
22. मित्तल पी.डी. : ब्रज की संस्कृति का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1965, पृ 170-180
23. चतुर्वेदी गिरीश कुमार : ब्रज की लोक संस्कृति, कल्पत: प्रकाशन, नई दिल्ही, 2009, पृ. 112-122

****